आधुनिक यूरोप का इतिहास

1789 ई. से 1945 ई. तक

आधुनिक यूरोप का इतिहास

HISTORY OF MODERN EUROPE

बहुविकल्पीय प्रश्नों सहित

डॉ. ए. के. मित्तल
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
सहायक
डॉ. आर. अग्रवाल

पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्द्धित नवीन संस्करण

2012

साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा

ISBN-81-7288-332-3 **Price : ₹ 300/-**

Revised Edition

Printed & Published by

SAHITYA BHAWAN PUBLICATIONS

HOSPITAL ROAD, AGRA-282 003

Tel. 0562-4058468, 4030565 Fax : 0562-2851568

Email : sales.sbp1960@gmail.com; info.sbp1960@gmail.com

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रस्तुत पुस्तक को इतिहासविज्ञों तथा प्राध्यापकों द्वारा सराहा गया तथा विद्यार्थियों द्वारा एक उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तक के रूप में पसन्द किया गया।

पुस्तक के इस नवीन संस्करण में अनेक आवश्यक सुधार किए गए हैं तथा नवीन सामग्री को स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार जोड़ा गया है। पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से कुछ नवीन अध्याय भी इस संस्करण में जोड़े गए हैं तथा मानचित्रों की संख्या को भी बढ़ाया गया है। पुस्तक की भाषा को और अधिक सरल बनाया गया है तथा मुद्रण की गलतियों को भी दूर कर दिया गया है।

आशा है पुस्तक का यह पूर्णतया संशोधित संस्करण विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों के लिए उपयोगी प्रमाणित होगा।

(ए. के. मित्तल)
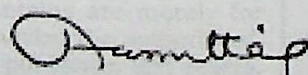
प्रथम संस्करण की भूमिका

आधुनिक यूरोप के इतिहास का अध्ययन करना सम्पूर्ण मानव समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है। सम्पूर्ण पाश्चात्य इतिहास का अल्प पृष्ठों में वर्णन करना अत्यन्त दुरूह कार्य है, अतः प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक यूरोप के इतिहास की प्रमुख धाराओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। फ्रांसीसी क्रान्ति मानव-इतिहास की एक प्रमुख घटना थी। इसने न केवल रुढ़िवादी परम्पराओं व पुरातन व्यवस्था का विरोध किया वरन् जनसाधारण में तार्किकता का विकास किया। पाश्चात्य जगत् में निरंकुशवाद का विरोध तथा भ्रातृत्व, स्वतन्त्रता व समानता के लिए संघर्ष आधुनिक युग की विशेषताएं थीं। उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य जगत् के देशों में जहां स्वतन्त्रता व समानता की भावनाएं प्रबल हो रही थीं, वहीं दूसरी ओर उन्हीं देशों द्वारा अफ्रीका व एशिया को साम्राज्यवादिता का शिकार बनाया जा रहा था। स्वतन्त्रता की भावनाओं व साम्राज्यवादी नीतियों का यह पारस्परिक संघर्ष न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से वरन् आधुनिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, अतः इसका अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

पुस्तक में पांच परिशिष्ट हैं जो विद्यार्थियों के लिए 'यूरोप का इतिहास—एक दृष्टि में' (European History—At a Glance) का कार्य करेंगी। इसके अतिरिक्त मानचित्रों के द्वारा विषय को सरल बनाने का प्रयास भी पुस्तक में किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल एवं परिमार्जित है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद होगी।

अन्त में, मैं पुस्तक के प्रकाशक श्री के. एल. बंसल का आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूं, जिनके सतत् प्रयत्नों से पुस्तक का समय से प्रकाशित होना सम्भव हो सका।

(ए. के. मित्तल)

विषय-सूची

मानचित्रों की सूची

1

फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व यूरोप
[EUROPE BEFORE THE FRENCH REVOLUTION]

भूमिका
(INTRODUCTION)

वर्तमान समय में यूरोप विश्व के प्रगतिशील एवं विकसित महाद्वीपों में सर्वाधिक अग्रणी है, किन्तु 18वीं शताब्दी तक सम्भवतः इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि यूरोप कभी इतना प्रगतिशील भी हो सकता है। फ्रांस की क्रान्ति से पहले ही यूरोप का अध्ययन करें तो पता चलता है कि यूरोप में एकता का पूर्ण अभाव था। सम्पूर्ण महाद्वीप छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभक्त था तथा उनकी शासन-पद्धतियां भी भिन्न-भिन्न थीं। कुछ राज्य ऐसे थे, जो चर्च के अधीन थे तथा ईसाई धर्म के सिद्धान्तों पर उनकी शासन व्यवस्था आधारित थी। टर्की में निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता का राज्य था। **यूरोप के प्रमुख देशों—फ्रांस, रूस, आस्ट्रिया और प्रशा में भी निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासन था।** यूरोप में एकमात्र ऐसा देश इंग्लैण्ड ही था, जहां संवैधानिक तरीके से शासन होता था। यूरोप में अनेक गणतन्त्र (हॉलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड आदि) भी थे, किन्तु उनकी स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी।

18वीं शताब्दी में यूरोप में दो ऐसी प्रमुख क्रान्तियां हुई, जिन्होंने यूरोप की कायापलट कर दी तथा उसे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से प्रगति के पथ पर अग्रसर कर दिया। इनमें से प्रथम **औद्योगिक क्रान्ति** (Industrial Revolution), व दूसरी **फ्रांस की राज्य क्रान्ति** (French Revolution) थी। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप, आर्थिक दृष्टि से समाज में दो वर्गों का उदय हुआ। ये थे—**पूंजीपति** (Capitalists) तथा **मजदूर** (Labourers), जिनके परस्पर संघर्ष ने भविष्य में राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। फ्रांस की क्रान्ति एक महान् क्रान्ति थी, जो **पुरातन व्यवस्था** (Ancient Regime) तथा तत्कालीन दोषपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध की गयी थी। 1789 ई. में हुई इस क्रान्ति से पूर्व की व्यवस्था को **पुरातन व्यवस्था** कहा जाता है जो कि गम्भीर दोषों से युक्त तथा अक्षम थी।[1]

1 **"The system of Government and the organization of society under which the European peoples lived before the Great French Revolution broke out in 1789 is commonly spoken of as the ancient regime or old regime. It was outmoded and inefficient system with glaring deficiencies."**

—Ferguson & Bruun, *A Survey of European Civilization*, p. 561.

हेजन ने लिखा है कि "**यूरोप के राज्यों में सरकारों की जो आम स्थिति थी तथा उन्होंने जिस नीति का अनुसरण किया, उसका हम जितने ही ध्यान से अध्ययन करते हैं, उतना ही उनकी बुद्धिमता और नैतिकता पर से विश्वास उठ जाता है। प्रत्येक देश में सम्पूर्ण शक्ति थोड़े से लोगों के हाथों में ही निहित थी तथा थोड़े लोगों के हितों के लिए ही उसका प्रयोग किया जाता था।**"[1] व्यावहारिक रूप से इस सिद्धान्त को कोई स्वीकार करने को तैयार न था कि राज्य का प्रथम कर्तव्य, जनता का कल्याण करना होता है। इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय उचित अथवा अनुचित तरीकों से भूमि का विस्तार करना तथा विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग कें लिए साधन जुटाना ही अपना कर्तव्य समझता था। यूरोप की व्यवस्था, अभिजाततन्त्रीय थी तथा अभिजात वर्ग के लिए ही थी। **इंग्लैण्ड में यद्यपि संसद थी, किन्तु वहां की स्थिति में भी कोई विशेष फर्क न था। वेनिस, जेनेवा तथा स्विट्जरलैण्ड के गणतन्त्रों की भी यही स्थिति थी।**

सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप के शासकों ने सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली तथा वे राज्य में सर्वेसर्वा बन गए थे। **राजा के शब्द ही कानून होते थे तथा राजा की इच्छा ही राज्य की खुशी।** राजाओं ने अपनी शक्तियां इतनी बढ़ा ली थीं कि वे जनसाधारण की बात सुनना तो दूर, किसी की भी बात मानने को तैयार न थे। वे स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे तथा 'राजा के दैवीय अधिकारों' (Divine Rights of the Kings) के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। **राजा के दैवीय अधिकार निम्नलिखित थे :**

(i) **राजा ही पृथ्वी पर ईश्वर की प्रतिमूर्ति है।**[2]

(ii) **राजा न केवल ईश्वर का प्रतिनिधि है, न केवल ईश्वर की गद्दी पर आसीन है, वरन् स्वयं ईश्वर के द्वारा भी वे ईश्वर कहलाते हैं।**[3]

(iii) **कोई भी मानवीय शक्ति किसी वैधानिक राजा को उसके अधिकारों से वंचित नहीं रख सकती।**[4]

(iv) **राजा ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है, किसी सांसारिक शक्ति अथवा संस्था के प्रति नहीं।**[5]

18 वीं शताब्दी में यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों की स्थिति निम्नलिखित थी—

1. इंग्लैण्ड (England)—इंग्लैण्ड यूरोप का एक प्रमुख राष्ट्र था। 18वीं शताब्दी इंग्लैण्ड के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इंग्लैण्ड में **संसदीय प्रणाली** (Parliamentary System) का विकास काफी समय पूर्व से प्रारम्भ हो गया था। 1714 ई. में **हैनोवर वंश** (Hanover Dynasty) की स्थापना से इसके विकास की गति तीव्र हो गयी। राजा व संसद के बीच प्रभुत्व के लिए संघर्ष **स्टुअर्ट-काल** (Stuart-Period) से ही चल रहा था। अठारहवीं शताब्दी में संसद की विजय हुई व वास्तविक सत्ता संसद के हाथों में आ गई।

1714 ई. में इंग्लैण्ड की गद्दी पर हैनोवर-वंशीय जार्ज प्रथम आसीन हुआ। जार्ज प्रथम जर्मनी के हैनोवर-राज्य का था। इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् वह हैनोवर के

1 **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 22।
2 Kings are the breathing images of God upon Earth.
3 Kings are not only God's lieutenants upon earth and not upon God's throne, but even by himself, they are called Gods.
4 That no human power could deprive a legitimate prince of his right.
5 King is not responsible to any worldly power or institutions, he is responsible to God only.

राजकुमार के रूप में भी कार्य करता रहा था। उसे इंग्लैण्ड से कोई मोह न था तथा इंग्लैण्ड की अपेक्षा हैनोवर-राज्य की अधिक चिन्ता थी। **जार्ज प्रथम की उल्लेखनीय बात यह है कि उसे अंग्रेजी भाषा बिल्कुल नहीं आती थी।** इंग्लैण्ड के शासन से विशेष लगाव न होने के कारण उसने राजकीय कार्यों को मन्त्रियों पर छोड़ दिया था। जार्ज द्वितीय ने भी जार्ज प्रथम के समान ही शासन किया। इस प्रकार 1760 ई. तक वास्तविक शासक संसद बनी रही। जार्ज द्वितीय के शासनकाल में ही **सप्तवर्षीय युद्ध** (1756-1763 ई.) प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में यद्यपि इंग्लैण्ड को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा, किन्तु पिट (Pitt the Elder) अपनी कुशल युद्ध नीति से इंग्लैण्ड को विजय दिलाने में सफल हुआ। पिट अपनी योग्यता को पहचानता था तथा वह स्वयं कहा करता था, "**केवल मैं ही इंग्लैण्ड की रक्षा कर सकता हूं।**"[1]

1760 **ई. में जार्ज तृतीय इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर आसीन हुआ।** जार्ज तृतीय के शासनकाल की उल्लेखनीय बात यह थी कि उसने राज्य की वास्तविक शक्ति को पुनः अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयास किया। **जार्ज तृतीय ने संसद के हाथों में कठपुतली** (Puppet) **बनकर शासन करने से इन्कार कर दिया तथा इस प्रणाली को चुनौती दी।** उल्लेखनीय है कि जार्ज तृतीय ने सैद्धान्तिक दृष्टि से कैबिनेट प्रणाली का विरोध ही नहीं किया, वरन् मन्त्रिमण्डल को ही अपने प्रभुत्व में लेने का प्रयास किया। इसके लिए उसने कानूनी व गैर-कानूनी सभी तरीकों का इस्तेमाल किया। उसने रिश्वत देने से लेकर अपने प्रभाव तक का प्रयोग किया। अपने उद्देश्य में जार्ज तृतीय सफल भी हुआ। इसके साथ ही इंग्लैण्ड में एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुआ। **विग दल**[2] (Whig Party), जिसका 1688 ई. से प्रभुत्व रहा था, के स्थान पर **टोरी दल** (Tory Partty) शक्तिशाली हुई, क्योंकि वे राजतन्त्र में ही विश्वास रखते थे। जार्ज तृतीय की नीतियों से इंग्लैण्ड को कालान्तर में अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी, जिसका अन्तिम परिणाम अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में हुआ, जिसमें इंग्लैण्ड को पराजय का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में फ्रांस ने अमरीका का साथ दिया। इस पराजय से इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को भारी आघात लगा। उसके आधिपत्य से अमरीका तो निकल ही गया, फ्रांस में भी यह भावना प्रबल हो गयी कि इंग्लैण्ड को भी पराजित किया जा सकता है। इस पराजय से इंग्लैण्ड को एक लाभ भी हुआ। राजा की पराजय के कारण 1782 ई. में उसके सहयोगी मन्त्रिमण्डल को लार्ड नार्थ के नेतृत्व में त्यागपत्र देना पड़ा। **इस प्रकार संसदीय प्रणाली की रक्षा हुई।**

पहले से चली आ रही इंग्लैण्ड व फ्रांस की प्रतिस्पर्द्धा 18वीं शताब्दी में भी चलती रही। हेजन[3] ने लिखा है कि फ्रांस की क्रान्ति के दौरान यह और अधिक प्रज्ज्वलित हो उठी

1 **"I know that only I can save the country and that no one else can do it."**
—Pitt the Elder.

2 इंग्लैण्ड में उस समय दो ही प्रमुख दल थे—**विग** व **टोरी**। विग उदारवादी (Liberal) विचारधारा के थे, अतः बाद में इस दल का नाम ही **उदार दल** (Liberal Party) पड़ गया। इसके विपरीत, टोरी अनुदार (Conservative) थे, अतः कालान्तर में उसे **अनुदानर दल** (Conservative Party) कहा जाने लगा। विग प्रगतिशील विचारों के थे एवं सुधारों में विश्वास रखते थे, जबकि टोरी परम्परावादी थे।

3 हेजन, **पूर्वोक्त**, पृ. 7.

और उसने भयंकर लपटों का रूप धारण कर लिया। **वाटरलू के युद्ध (Battle of Waterloo) तक के इस सम्पूर्ण काल में इसी तत्व की प्रधानता रही।**

अठारहवीं शताब्दी का इंग्लैण्ड के इतिहास में विशेष महत्व है। इस शताब्दी में इंग्लैण्ड में **तीन प्रमुख परिवर्तन** हुए। **प्रथम**, इंग्लैण्ड का कनाडा और भारत जैसे विशाल भूखण्डों पर प्रभुत्व स्थापित हुआ। व्यापारिक दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण था। **द्वितीय**, इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली की स्थापना हुई। इस प्रकार सत्ता शासकों के हाथों से निकलकर जनता के हाथों में
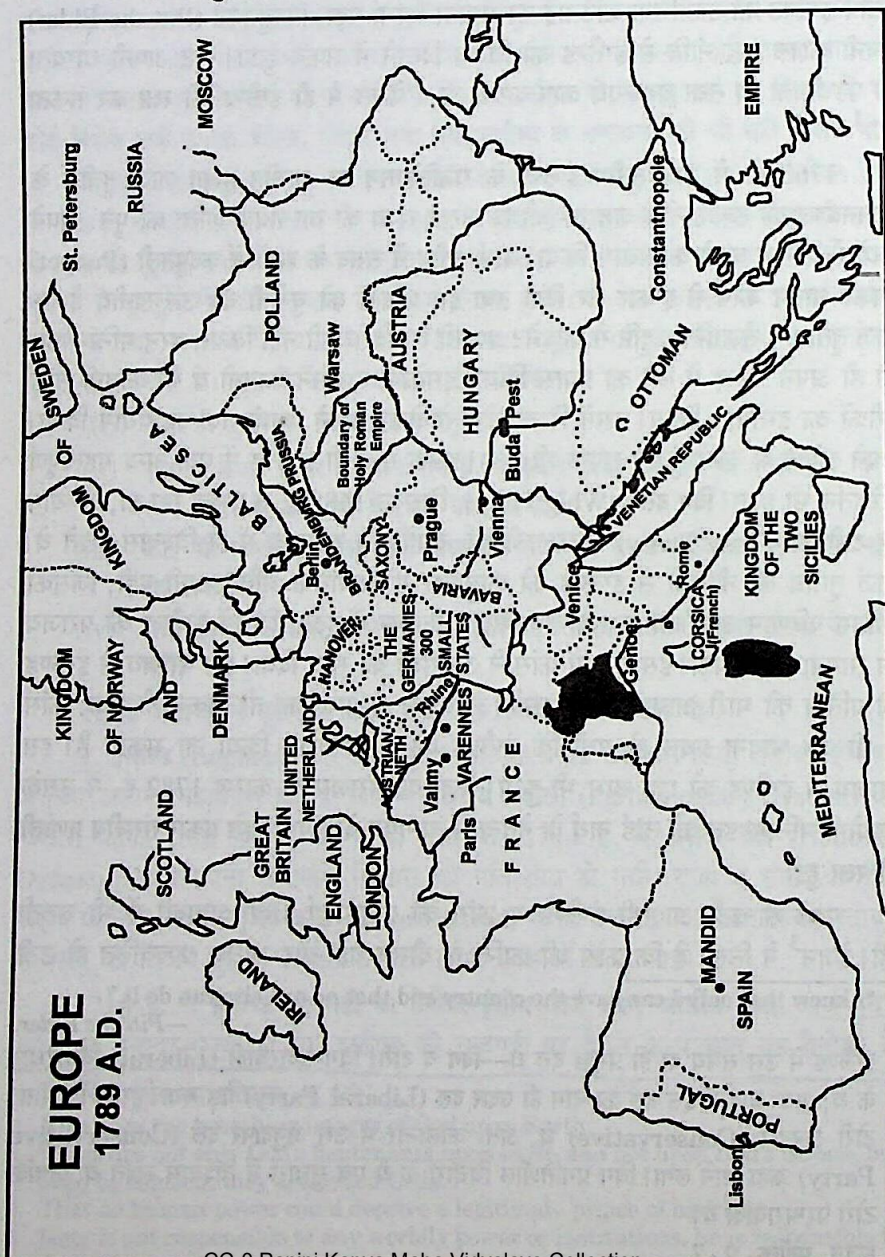
आ गयी। **तृतीय**, इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई, परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड विश्व का प्रमुखतम औद्योगिक एवं व्यापारिक देश बन गया।

2. फ्रांस (France)—यूरोप का एक अन्य प्रमुख राष्ट्र फ्रांस था। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। व्यवस्था व न्याय जैसी कोई वस्तु फ्रांस में विद्यमान न थी।**अधिकार प्राप्त वर्ग (Privileged Class) के अतिरिक्त शेष जनता का जीवन नारकीय था।** इसी कारण 1789 ई. में फ्रांस में महान् क्रान्ति हुई, जो न केवल फ्रांस के लिए वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिए एक असाधारण घटना थी। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की स्थिति का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

3. रूस (Russia)—यूरोप में सबसे विशाल राज्य रूस का था, किन्तु सत्रहवीं शताब्दी तक उसे एक वर्बर राज्य माना जाता था, अतः यूरोपीय राजनीति में उसका कोई महत्व न था। 18वीं शताब्दी का रूस के लिए भी अत्यधिक राजनीतिक महत्व है, क्योंकि इस समय में रूस की गणना यूरोप के प्रमुख राज्यों में की जाने लगी।

रूस को प्रगति के रास्ते पर अग्रसर कराने वाला शासक पीटर महान् (1672-1725 ई.) **था।** पीटर की गणना विश्व इतिहास के अत्यधिक कर्मठ और शक्तिशाली शासकों में होती है। उसका 36 वर्ष का शासनकाल (1689-1725 ई.) रूस के लिए एक महान् युग प्रमाणित हुआ। हेजन ने लिखा है, "**उसने अपने जीवन में महान् सफलताएं ही प्राप्त नहीं कीं, वरन् राष्ट्रीय जीवन के भावी उद्देश्य को भी बहुत कुछ निश्चित कर दिया।**"[1] उसने सिंहासन पर आरूढ़ होते ही अपने पिछड़े हुए देश का इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी व इटली, आदि प्रगतिशील एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी उन्नत देशों से अधिक से अधिक सम्बन्ध स्थापित किया ताकि रूस को भी प्रगतिशील एवं सुसंस्कृत बनाया ज़ा सके। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह ऐसा बन्दरगाह चाहता था जिसका सरलतापूर्वक उपयोग किया जा सके, क्योंकि तब तक रूस के अधीन आर्केजल का ही बन्दरगाह था जो वर्ष में 9 माह बर्फ जमने के कारण बन्द रहता था। इसी उद्देश्य से टर्की व स्वीडन से युद्ध लड़े व अन्त में स्वीडन से बाल्टिक के तट पर स्थित कोरलैण्ड, स्थोर्निया तथा लिवोर्निया पर अधिकार कर वहां के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। पीटर ने देश में अनेक सुधार किए तथा जनसाधारण को सभ्य बनाने का यथासम्भव प्रयास किया। उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप रूस का आर्थिक रूप से विकास हुआ, कारखाने खोले गए व नहरें बनायी गयीं। पीटर ने रूस की परम्परागत राजधानी को बदला व अपनी राजधानी सेंट पीटर्सबर्ग को बनाया।

पीटर के उत्तराधिकारियों में प्रमुख कैथरीन द्वितीय (1762-1796 ई.) **थी।** वह जार पीटर तृतीय की पत्नी थी तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् शासिका बनी थी। उसने 34 वर्षों तक कठोरतापूर्वक शासन किया तथा रूस का यूरोपीयकरण करने, राज्य का विस्तार करने और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसका स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके शासनकाल की महत्वपूर्ण घटना 1772 ई. में उसके द्वारा आस्ट्रिया व प्रशा से मिलकर पोलैण्ड का विभाजन करना था।

4. इटली (Italy)—18वीं शताब्दी में इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था तथा उसका यूरोपीय राजनीति में कोई महत्व न था। इटली में उस समय राजनीतिक एकता का

1 **हेजन, पूर्वोक्त**, पृ. 17.

अभाव था तथा वह आर्थिक व राजनीतिक रूप से पिछड़े राज्यों का एक समूह मात्र था। इन राज्यों में प्रमुख सेवाय, नेपिल्स, सार्डिनिया, लोम्बार्डी, पीडमाण्ट व टस्कनी, आदि थे।

18वीं शताब्दीं के अन्त तक इटली में राजनीतिक जागृति के लक्षण उत्पन्न होने लगे थे। हेजन ने लिखा है, "**नयी इटली के बीज उस समय अंकुरित होने लगे थे।**"[1]

5. **पोलैण्ड** (Poland)—मध्यकाल में पोलैण्ड एक शक्तिशाली राज्य था, किन्तु कालान्तर में उसकी शक्ति का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया। पोलैण्ड भौगोलिक दृष्टि से भी रूस के बाद यूरोप का दूसरा बड़ा राज्य था। पोलैण्ड में कमजोर सरकार होने का उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ा। पोलैण्ड की निर्बलता को देखते हुए उसके तीन पड़ोसी देशों—रूस, प्रशा व आस्ट्रिया—ने 1782 ई. में उसको आपस में बांट लिया। 1793 ई. व 1795 ई. में पुनः आक्रमण करके इन शक्तिशाली देशों ने पोलैण्ड को समूल नष्ट कर दिया।

6. **स्पेन** (Spain)—अठारहवीं शताब्दी में स्पेन बहुत शक्तिशाली राज्य नहीं रहा था। स्पेन में **बूर्बा-वंश** (Bourbon Dynasty) का शासन था। फ्रांस में भी बूर्बा-वंश का ही शासन होने के कारण स्पेन व फ्रांस के सम्बन्ध मधुर थे।

7. **हॉलैण्ड** (Holland)—हॉलैण्ड में शक्तिशाली **आरेन्ज-वंश** (Orange Dynasty) का शासक विलियम V का शासन था। विलियम V एक शक्तिशाली एवं निरंकुश शासक था।

8. **स्विट्जरलैण्ड** (Switzerland)—यह एक **गणतन्त्रात्मक राज्य** था। यूरोप में राजनीतिक दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड का विशेष महत्व न था।

9. **डेनमार्क, नार्वे व स्वीडन** (Denmark, Norway and Sweden)—डेनमार्क, नार्वे व स्वीडन छोटे-छोटे राज्य थे, जिनका यूरोपीय राजनीति पर विशेष प्रभाव न था।

10. **जर्मनी** (Germany)—इटली के समान जर्मनी भी अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिनकी संख्या 360 के लगभग थी, किन्तु इटली की तुलना में जर्मनी में बहुत अधिक राज्य थे। जर्मनी '**पवित्र रोमन साम्राज्य**' का ही एक अंग था। आस्ट्रिया व प्रशा भी पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत ही आते थे। पवित्र रोमन साम्राज्य अत्यन्त कमजोर था। यही कारण है कि वॉल्टेयर ने उसके विषय में लिखा है "**यह न तो पवित्र था, न ही रोमन था और न ही साम्राज्य था।**"[2] पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट का पद वंशानुगत नहीं था, अपितु इसके निर्वाचन का अधिकार जर्मनी के प्रमुख सात राज्यों को था, जिन्हें इसी कारण '**इलेक्टर**' (Elector) कहा जाता था। पद वंशानुगत न होने के पश्चात् भी सदियों से इसका सम्राट आस्ट्रिया का शासक ही था। पवित्र रोमन साम्राज्य का शासक अत्यन्त कमजोर था तथा वास्तविक शक्ति उसके हाथ में निहित नहीं थी।

11. **आस्ट्रिया** (Austria)—पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाला आस्ट्रिया, एक शक्तिशाली राज्य था। आस्ट्रिया में **हैप्सवर्ग वंश** का राज्य था, जो कि एक शक्तिशाली राजवंश था। आस्ट्रिया-साम्राज्य के अन्तर्गत बोहेमिया, हंगरी, मिलान, नीदरलैण्ड तथा आस्ट्रिया के प्रदेश थे। इन राज्यों में एकता की भावना विशेष प्रबल न थी। सत्रहवीं शताब्दी में आस्ट्रिया यूरोप के प्रमुख देशों में से एक था, किन्तु वेस्टफेलिया की सन्धि के पश्चात् उसके प्रभाव में कमी आ गई थी। फ्रांस से आस्ट्रिया के कटु सम्बन्ध थे तथा फ्रांस की शक्ति को कुचलना

---

1 **हेजन, पूर्वोक्त**, पृ. 8.
2 "It was neither Holy, nor Roman, nor Empire." —*Voltaire.*

उसका प्रमुख उद्देश्य था। 18वीं शताब्दी में आस्ट्रिया के प्रमुख शासक, चार्ल्स VI (1711-1740 ई.), मारिया थरेसा (1740-1765 ई.) तथा जोजेफ II (1765-1790) थे। फ्रांस की क्रान्ति के समय आस्ट्रिया का शासक जोजेफ II था, जो कि एक योग्य शासक था। अपने शासन के दौरान जोजेफ II ने अनेक सुधार किए। फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् आस्ट्रिया का यूरोपीय राजनीति में महत्व पुनः बढ़ गया।

12. प्रशा (Prussia)—प्रशा छोटा, किन्तु एक शक्तिशाली राष्ट्र था। प्रशा का वास्तविक इतिहास 1701 ई. से प्रारम्भ होता है। प्रशा में **होहेन जोलर्न वंश** (Hohen Zollern Dynasty) का शासन था। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक **फ्रेडरिक** II (1740-1786 ई.) हुआ। हेजन ने लिखा है, "**फ्रेडरिक II के लम्बे शासनकाल में इस राजवंश की चारित्रिक विशेषताओं, तरीकों और महत्वाकांक्षाओं की बहुत अच्छी अभिव्यक्ति हुई। निःसन्देह वह अपने वंश का योग्यतम शासक था और इसीलिए उसे महान् कहा जाता है।**"[1] राजगद्दी पर आसीन होते ही फ्रेडरिक ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया तथा अपने युद्धों द्वारा प्रशा के प्रभाव में वृद्धि की। इसके अतिरिक्त, उसने उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दिया। विद्यालयों की स्थापना कराई, जंगल साफ कराए तथा विदेशी आगन्तुकों को बसवाया। फ्रेडरिक एक धर्म-सहिष्णु सम्राट था। उसका कहना था, "**प्रशा में प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने ढंग से मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार है।**" फ्रेडरिक का उत्तराधिकारी फ्रेडरिक विलियम द्वितीय था, जो अत्यन्त निर्बल एवं अयोग्य था। फ्रेडरिक महान् के शासनकाल में प्रशा का जितना उत्कर्ष तथा यश-विस्तार हुआ था, इस काल में उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति को उतना ही आघात लगा।

इस प्रकार 18वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, आस्ट्रिया और प्रशा का ही प्रभुत्व छाया हुआ था। अठारहवीं शताब्दी का अन्तिम दशक ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हेजन ने लिखा है, "**अन्तिम दशक में अठारहवीं शताब्दी अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। यह दशक विश्व इतिहास का एक स्मरणीय युग है। फ्रांस की पुरातन व्यवस्था का जो उन्मूलन हुआ उसने सम्पूर्ण यूरोप की पुरातन व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर दिया। फ्रांस ने अपने आश्चर्यजनक कार्यों द्वारा आगामी चौथाई शताब्दी तक यूरोप को नियन्त्रित किया।**"[2]

प्रश्न

1. अठारहवीं शताब्दी में यूरोप की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व यूरोप की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
3. 'अठारहवीं शताब्दी में यूरोप' विषय पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

---

1 हेजन, **पूर्वोक्त**, पृ. 10.

2 **"The eighteenth century attained its legitimate climax in its closing decade, a memorable period in the history of the world. The Old Regime in Europe was rudely shattered by the overthrow of the Old Regime in France, which country by its astonishing actions, was to dominate the next quarter of a century."**

—Hazen, *Modern Europe*, p. 64.

2

1789 ई. की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस तथा फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण

[FRANCE BEFORE THE REVOLUTION AND THE CAUSES OF THE FRENCH REVOLUTION]

1789 ई. की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस
(FRANCE BEFORE THE REVOLUTION OF 1789)

मध्ययुगीन यूरोप के अधिकांश देशों में **सामन्ती व्यवस्था** (Feudal system) विद्यमान थी। फ्रांस भी इन्हीं देशों में से एक था। आधुनिक युग का प्रारम्भ होने के साथ ही सामन्ती व्यवस्था ओझिल होने लगी तथा उसका स्थान शक्तिशाली राजवंशों के शासन ने लेना प्रारम्भ कर दिया। फ्रांस में हेनरी IV (1589-1610 ई.) एक शक्तिशाली शासक हुआ। उसने एक नवीन राजवंश की स्थापना की जिसे **बूर्बां वंश** (Bourbon Dynasty) कहा जाता है। फ्रांस का बूर्बां वंश एक शक्तिशाली राजवंश प्रमाणित हुआ, जिसने फ्रांस में लगातार दो शताब्दियों तक कुशलतापूर्वक शासन किया।

हेनरी के पश्चात् उसका पुत्र लुई XIII (1610-1643 ई.) फ्रांस की राजगद्दी पर आसीन हुआ। उसने अपने योग्य मन्त्री **रिशलू** (Richelieu) की सहायता से फ्रांस को यूरोप की प्रमुख शक्तियों में से एक बनाने का यथासम्भव प्रयास किया। लुई XIII ने फ्रांस में सम्पूर्ण अधिकारों को अपने हाथों में लेने का प्रयास किया तथा निरंकुशतापूर्वक शासन किया। लुई XIII का उत्तराधिकारी लुई XIV (1643-1715 ई.) था जो अत्यन्त शक्तिशाली शासक प्रमाणित हुआ। वह '**राजा के दैवीय अधिकारों**' (Divine rights of the king) में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। उसने अपनी शक्ति के द्वारा यूरोप में फ्रांस को उच्च स्थान प्रदान कराया, यद्यपि ऐसा करने के लिए उसे अनेक युद्ध लड़ने पड़े। लुई XIV अत्यन्त निरंकुश शासक था। उसका कहना था। "**मैं ही राज्य हूं।**"[1] लुई XIV के युद्धों ने यद्यपि फ्रांस को यूरोप में सम्मान प्रदान किया, किन्तु उसकी इस नीति से फ्रांस को अत्यधिक आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा, जिससे फ्रांस की अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने लगी। लुई XIV के पश्चात्, फ्रांस का शासक लुई XV बना। लुई XV तब गद्दी पर बैठा जब वह मात्र पांच वर्ष का था, अतः उसने पहले तो अपने चाचा के संरक्षण में 1715 ई. से 1723 ई. तक तथा बाद

1 **'I am the State.'**

में कार्डिनल फ्लेरि के संरक्षण में 1723 ई. से 1743 तक शासन किया। 1743 ई. से 1774 ई. तक लुई XV ने स्वयं शासन किया। यह फ्रांस का दुर्भाग्य था कि लुई XV ने वहां इतने लम्बे समय तक शासन किया, क्योंकि वह एक अयोग्य शासक था। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन विलासिता में ही व्यतीत किया। **लुई XV के शासनकाल में ही वास्तविक अर्थों में फ्रांस में क्रान्ति के बीज बो दिए गए थे जो कुछ वर्षों पश्चात् 1789 ई. में अंकुरित हुए।** उसकी अकुशल नीतियों व गम्भीर आर्थिक स्थिति के कारण उसके उत्तराधिकारी लुई XVI (1774-1793 ई.) को अत्यधिक परेशानी का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार फ्रांस की क्रान्ति के समय वहां का शासक लुई XVI था।

अध्ययन की सुविधा के लिए क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की स्थिति को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—(1) राजनीतिक स्थिति, (2) आर्थिक स्थिति, (3) सामाजिक स्थिति, (4) धार्मिक स्थिति, व (5) बौद्धिक क्रान्ति।

राजनीतिक स्थिति
(POLITICAL CONDITION)

1789 ई. **से पूर्व फ्रांस में जो शासन व्यवस्था थी, उसे पुरातन व्यवस्था** (Old Regime) **कहा जाता है।** पुरातन व्यवस्था की प्रमुख विशेषता उसमें व्याप्त अनियमितताएं थीं, इसी कारण उसके लिए '**अपव्ययी अराजकता**' (A prodigal anarchy), तथ '**शक्तियों का कचरा**' (Debris of Powers) आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। पुरातन व्यवस्था के अन्तर्गत समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। उच्च वर्ग को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिससे निम्न वर्ग को अनेक अतिरिक्त कष्टों का सामना करना पड़ता था।

1. **राजा के अधिकार** (Rights of the King)—फ्रांस में क्रान्ति से पूर्व निरंकुश राजतन्त्र था, जिसका सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था, राजा, राज्य का उच्च तथा देदीप्यमान प्रमुख और राष्ट्र की शक्ति, प्रतिष्ठा तथा वैभव का प्रतीक होता था। राजा के अधिकार असीमित थे तथा उसकी शक्तियों को ललकारने वाला कोई न था। राजा '**दैवीय अधिकारों**' (Divine rights) में विश्वास करने के कारण, स्वयं को किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति उत्तरदायी नहीं मानता था तथा निरंकुशतापूर्वक शासन करना चाहता था, जैसा कि लुई XVI के कथन, "**चूंकि मैं चाहता हूं, इसलिए यह कानूनी है**" से स्पष्ट है। राजा ही कानून बनाता, वही कर लगाता, खर्च भी अपनी इच्छानुसार करता, युद्ध की घोषणा करता तथा अपनी स्वेच्छा से ही अन्य राष्ट्रों के साथ सन्धि करता था। राजा किसी भी व्यक्ति को बिना अभियोग लगाए बन्दी बना सकता था। यद्यपि **स्टेट्स-जनरल तथा पारलमां** (States-General and the Parlement) राजा की शक्तियों पर अंकुश लगाने वाली दो संस्थाएं थीं, किन्तु स्टेट्स-जनरल नियमित संस्था नहीं थी तथा राजा की इच्छा पर ही उसका अधिवेशन बुलाया जाता था। **स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन 1614 ई. के बाद से क्रान्ति तक एक बार भी नहीं बुलाया गया था।** फ्रांस में क्रान्ति के समय जब इसका अधिवेशन आमन्त्रित करने का प्रयास किया गया तो फ्रांस में उस समय किसी को इसके संगठन व चुनाव व्यवस्था की जानकारी न थी। अनेक कठिनाइयों के उपरान्त स्टेट्स-जनरल के चुनाव कराए गए। अतः इससे स्टेट्स-जनरल की महत्वहीनता स्वतः ही प्रमाणित हो जाती है। फ्रांस में दूसरी संस्था **पारलमां** थी जो प्रतिनिधि संस्था न होकर एक उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के समान थी। फ्रांस में कुल

मिलाकर 13 पारलमां थीं, जिनमें सबसे शक्तिशाली पेरिस की पारलमां थी। पारलमां का प्रमुख कार्य, न्याय करने के अतिरिक्त, राजा के आदेशों का पूंजीकरण करना था। लुई XVI के शासनकाल में पारलमां की शक्तियों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई थी तथा वह राजा का प्रतिरोध भी समय-समय पर करने लगी थी। स्टेट्स के अस्तित्वहीन होने के कारण पारलमां ही राजा और जनसाधारण के बीच एक माध्यम थी। अतः पारलमां का विशेष महत्व था।

2. **राजा की विलासिता** (Lustiness of the Kings)—फ्रांस के बूर्वा-वंशीय शासक अत्यन्त शानशौकत से रहते थे तथा अत्यन्त विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। फ्रांस की राजधानी पेरिस थी, किन्तु राजा वार्साय (Versaille) में रहते थे जो पेरिस से 12 मील की दूरी पर स्थित था। वार्साय में उनका आलीशान महल बना हुआ था, जिसे लुई XIV ने करोड़ों डालर खर्च करके बनवाया था। उस महल में सैकड़ों कमरे, गिरजाघर, नाट्यशाला, भोजन कक्ष, सत्कार-गृह, अगणित अतिथि-भवन तथा नौकरों के रहने के लिए सैकड़ों कमरे बने हुए थे। इस महल में ही अनेक उद्यान, मूर्तियां, फब्बारे तथा कृत्रिम सरोवर बने हुए थे। राजा व राज-परिवार के लोग आमोद-प्रमोद में विलीन रहते थे। हेजन ने लिखा है कि **''इसमें कोइ आश्चर्य की बात नहीं थी कि इन प्रासादों के निवासी अपने को सच्चे अर्थों में 'देवानां-प्रिय' समझते थे क्योंकि पृथ्वी पर उससे अधिक विलासिता और तड़क-भड़क कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती थी।''**

3. **राजा की अपव्ययता** (Extravagency of Kings)—राजाओं के खर्चे भी असीमित थे। राजा तथा रानी दोनों ही कृपापात्रों एवं सेवकों को खुले हाथों से धन लुटाते थे तथा उच्च पद व पेंशन देकर राजकीय धन का अपव्यय करते थे। राजा तथा रानी के सेवक-सेविकाओं की संख्या 500 थी। रानी की नौकरानियों को दीपक बेचने का विशेष अधिकार था। ये दीपक केवल एक बार जलाए जाते थे, लेकिन उनसे प्रत्येक बेचने वाली को डेढ़ लाख का लाभ हो जाता था। कहा जाता है कि लुई XIV ने 1789 से पूर्व के 15 वर्षों में तीस करोड़ रुपए इसी प्रकार के कार्यों में खर्च किए थे। इसी कारण हेजन ने लिखा है, **''राजा की छत्रछाया में फलने-फूलने वालों के लिए निःसन्देह यह एक स्वर्ण युग था।''** रानी ऑत्वानेत भी अत्यधिक अपव्ययी थी। कीमती चीजें खरीदने का उसे शौक था। प्रति सप्ताह वह चार जोड़ी जूते खरीदती थी। राजपरिवार के लोगों द्वारा निरन्तर इसी प्रकार से अपव्यय करने का राजकोष पर गम्भीर प्रभाव होता था। इसी कारण फ्रांस में लोग राज-दरबार को **'राष्ट्र की कब्र'** (Grave of the Nation) कहते थे।

4. **अक्षम प्रशासनिक व्यवस्था** (Inefficient Administration)—फ्रांस की सरकार की स्थिति अत्यन्त खराब थी। फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यधिक दोषपूर्ण तथा अक्षम थी। प्रशासन में योजना व व्यवस्था का पूर्णतया अभाव था। विभागों में कार्यों का वितरण भी तर्कसंगत न था। अनेक ऐसे कार्य थे, जिनकी जिम्मेदारी कई विभागों में विभक्त थी, जिससे कोई भी विभाग उस कार्य को नहीं करता था। राजा को परामर्श देने के लिए पांच समितियां थीं, जो कानून बनाने, आदेश ज़ारी करने तथा अन्य घरेलू व विदेशी कार्यों को भी करती थीं। प्रशासन की दृष्टि से फ्रांस 36 भागों में विभक्त था, जिन्हें **जिनेरालिते** (Generalities) कहा जाता था। प्रत्येक जिनेरालिते का अध्यक्ष **ऐतादां** (Intendant) कहलाता था। ऐतादां,

1 *Op. cit.*, p. 67.

साधारणतया मध्यम वर्ग का होता था। इसकी नियुक्ति स्वयं राजा के द्वारा ही की जाती थी। इसका काम राजधानी के आदेशों का पालन करना तथा अपने काम की आख्या राजधानी को भेजना था। ये ऐतादां, वास्तव में उस कुशासन को चलाने के साधन थे, जिसकी वास्तविक शक्ति पूर्वोक्त पांच समितियों के हाथों में थी। अतः ये भी निरंकुश रूप से ही प्रशासन करते थे।

फ्रांस में **स्थानीय स्वराज्य संस्थाएं** (Local Self-government institutions) नहीं था। स्थानीय प्रशासन की नीतियां भी वार्साय से ही नियन्त्रित होती थीं। हेजन ने लिखा है कि वास्तविक अर्थों में राज्यभर में लालफीताशाही (Redtapism) का ही बोलबाला था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत साधारण जनता की स्थिति मूक तथा असहाय पशुओं के समान थी, जो न तो बोल सकती थी और न ही कुछ कर सकती थी, जिधर को हांक दी जाती उधर ही चली जाती। उस समय फ्रांस में कोई ऐसी संस्था न थी जो जनता को राजनीतिक शिक्षा देती। सरकारी पदों पर नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं होती थी। उच्च वर्ग इन पदों को खरीद लेते थे तथा इस प्रकार अपनी आय व सम्मान को बढ़ाते थे। इन पदों के खरीदने व बेचने से भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता था।

फ्रांस में अलग-अलग स्थानों के लिए अलग-अलग कानून थे। फ्रांस में तेरह प्रान्तों में व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था, किन्तु अन्य प्रान्त एक-दूसरे से इस प्रकार पृथक् थे, जैसे अलग-अलग देश होते हैं। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को माल भेजने पर कर देना पड़ता था।

फ्रांस में न्याय व्यवस्था भी अत्यन्त पेचीदा व दोषपूर्ण थी। फ्रांस में लगभग 400 प्रकार के न्याय विधान थे। **एक कार्य जो एक कस्बे में उचित माना जाता था, दूसरे में गैर-कानूनी माना जाता था।** लिखित कानूनों की भी अधिकांश स्थानों पर व्यवस्था नहीं थी। कानून परम्परावादी तथा सामन्ती भावनाओं से ओत-प्रोत थे। एक ही अपराध के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग दण्ड का प्रावधान था। न्यांय व्यवस्था के उपरोक्त दोषों के अतिरिक्त सर्वाधिक दोषपूर्ण गैर-कानूनी गिरफ्तारियों तथा प्रतिबन्धों का प्रचलन था। राजा बिना किसी पूर्व सूचना के किसी भी व्यक्ति को बन्दी बनवा सकता था। राजा ही नहीं वरन् उसका कोई भी कृपापात्र **'लेत्रे दे शाशे'** (lettre de chachet) की सहायता से किसी को भी गिरफ्तार कर सकता था। यदि उस व्यक्ति का कोई प्रभावशाली व्यक्ति परिचित न हो तो सम्भवतः उसकी मृत्यु के समय तक भी उस केस को अदालत में प्रस्तुत नहीं किया जाता था। **वाल्टेयर तथा मीराबो को भी इस कुप्रणाली के द्वारा कुछ समय के लिए बन्दी बनाया गया था। फ्रांस का मध्य वर्ग इस कुप्रणाली का घोर विरोधी था।**[1]

फ्रांस के शासक इस प्रशासनिक व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन करना नहीं चाहते थे। राजा विलासिता में ही लिप्त रहते थे। राज्य की समस्याओं की ओर ध्यान देने का उनके पास समय ही नहीं था। **लुई XV के शासनकाल में जब उनके कुछ योग्य परामर्शदाताओं ने उसे सुझाव दिया कि फ्रांस में सुधार किए जाने की अत्यधिक आवश्यकता थी तो विलासी लुई**

1 **The worst terror in this legal jungle was the arbitrary power of the king and his ministers, who could imprison any citizen without warning, without trial, and without appeal, and on the sole authority of a royal letter de chachet confine him in a secret dungeon, "at the kings' pleasure."**

XV ने सुधार करने के स्थान पर जवाब दिया कि वर्तमान व्यवस्था में भी उसका समय तो कट ही जाएगा।[1] अतः स्पष्ट है कि फ्रांस के राजा अदूरदर्शी, विलासी एवं अयोग्य थे। ऐसे शासकों के अधीन अक्षम व कार्य कुशलविहीन प्रशासनिक व्यवस्था का होना स्वाभाविक ही था।

आर्थिक स्थिति
(ECONOMIC CONDITION)

क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की आर्थिक स्थिति इस प्रकार थी—

1. **शोचनीय आर्थिक स्थिति** (Deteriorating Economic Condition)—**बूर्बां वंश के अधीन फ्रांस में 'करदाताओं की इच्छा पर आधारित कर-व्यवस्था के सिद्धान्तों' का प्रतिपादन नहीं हुआ था। वित्त-प्रशासन भी न्याय प्रणाली व सरकार के अन्य विभागों के प्रशासनों के समान स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश था।**[2] फ्रांस की सरकार की योजना रहित आर्थिक नीति ने फ्रांस को आर्थिक रूप से खोखला कर दिया था। फर्गूसन ब्रून[3] ने लिखा है कि लुई XV का भी यह दुर्भाग्य था कि उसे वैदेशिक नीति में भी सफलता नहीं मिली। यदि वैदेशिक युद्धों में ही उसे सफलता प्राप्त हुई होती तो सम्भवतः फ्रांस की जनता ने सन्तोष कर लिया होता। फ्रांस की जनता जानती थी कि उनका देश यूरोप के प्रमुख, धनी, उर्वरक राज्यों में से एक था, किन्तु फिर भी आश्चर्य की बात थी कि राष्ट्रीय कर में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय आय का लगभग 50% भाग राष्ट्रीय ऋण की ब्याज देने में ही चुक जाता था। राज्य की कुल आय से खर्चा सदैव अधिक होने से पुनः सरकार को ऋण लेने के लिए विवश होना पड़ता था। हेजन ने लिखा है कि **राजकीय वित्त-नीति सामान्यतः उस सिद्धान्त पर चलती है कि खर्च आमदनी के अनुरूप हो, किन्तु फ्रांसीसी सरकार का सिद्धान्त उल्टा था। वह व्यय के अनुरूप आय को निश्चित करती थी।**[4] अतः ऋण का निरन्तर बढ़ना स्वाभाविक ही था।

2. **पदों को बेचना** (Selling of the Posts)—निरन्तर बढ़ते हुए ऋण से मुक्ति पाने का सरकार को एक उपाय सूझता था कि वह और अधिक ऋण ले तथा पदों को बेचकर धन एकत्र करे। इसके अतिरिक्त एक अन्य तरीका भी फ्रांसीसी सरकार ने अपनाया। इसके अन्तर्गत धनी व्यक्तियों का एक समूह राजा को धन दे देता था तथा बदले में उन्हें कर वसूलने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। इस प्रणाली को '**कर वसूलने का अधिकार**' (farming out the taxes) कहा जाता था। यह अत्यन्त दोषपूर्ण प्रणाली थी, क्योंकि वे लोग वास्तविक देय कर से अधिक वसूलते थे जिससे जनता प्रताड़ित होती थी तथा राज्य की आय कम हो जाती थी। फलतः सरकार को पुनः ऋण लेना पड़ता था। लुई XVI के समय में वह ऋण इतना अधिक बढ़ गया कि लोगों ने ऋण देना बन्द कर दिया, जिससे सरकार गम्भीर वित्तीय संकट

1 "When adviser warned Louis XV that reforms were desperately needed, the pleasure loving king replied the machine would last out his day."

2 "The principle of taxation by the will of the taxpayers was not raised in the Bourbon monarchy, and the financial administration, like administration of justice and the government, was arbitrary and absolute."

—Leo Gershoy, *The French Revolution and Napoleon*, p. 22.

3 *Op. cit.*, p. 565.

4 **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 12।

में फंस गयी। इस वित्तीय संकट का सामना कभी कर बढ़ाकर तथा कभी खर्च में कमी करके किया गया, किन्तु स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि उसमें कोई परिवर्तन न हुआ।

3. **बजट का अभाव** (Absence of Budget)—**फ्रांसीसी वित्तीय नीति का एक अन्य गम्भीर दोष बजट (Budget) का अभाव था।** बजट के अभाव में राज्य का आय-व्यय का लेखा-जोखा भी ठीक से नहीं रखा जा सकता था। राजा राजकीय धन को व्यक्तिगत धन समझकर मनमाने तरीके से खर्च करते थे। वह धन जो कि राष्ट्र के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने पर खर्च होना चाहिए था, राजा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं व विलासिता पर खर्च किया जाता था। ऐसी परिस्थिति में देश की आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

4. **दोषपूर्ण कर प्रणाली** (Defective Taxation System)—किसी भी देश की आय का प्रमुख स्रोत कर (tax) होते हैं। फ्रांस में कर-व्यवस्था (taxation systems) अत्यन्त दोषपूर्ण थी। कर दो प्रकार के होते थे—**प्रत्यक्ष** एवं **अप्रत्यक्ष**। प्रत्यक्ष कर व्यक्तिगत सम्पत्ति, आय व जागीर पर देने पड़ते थे, किन्तु अधिकांश कर ऐसे थे जिनसे सामन्त व चर्च के अधिकारी आदि जो कि **विशेषाधिकार वर्ग** (privileged class) में आते थे, मुक्त थे, अतः करों का सारा बोझ गरीब जनता पर पड़ता था। कितने आश्चर्य की बात है कि जो वर्ग कर देने में सक्षम था उसे कर देना ही नहीं पड़ता था और जो भूखे पेट थे, उनसे शरीर की हड्डियां भी मांगी जाती थीं। यही कारण है कि उस समय फ्रांस में कहा जाता था, "**सामन्त युद्ध करते हैं, पादरी पूजा करते हैं तथा जनता कर देती है।**"[1] इसके अतिरिक्त यदि उस वर्ग के लोगों पर कर लगता भी था तो वे आसानी से देते ही नहीं थे। इस प्रकार कर-प्रणाली पूर्णतया पक्षपात पर आधारित थी, किन्तु इसमें पक्ष सदैव सामन्तों व उच्च वर्ग का ही लिया जाता था।

फ्रांस में उस समय अनेक **अप्रत्यक्ष कर** (Indirect tax) भी थे। अप्रत्यक्ष कर वसूलने का कार्य सरकार द्वारा नहीं किया जाता था। अपितु कर वसूलने के कार्य का ठेका (contract) दे दिया जाता था। इन ठेकेदारों का कार्य लाभ कमाना होता था, अतः वे अधिक से अधिक कर के रूप में वसूलने का प्रयत्न करते थे। कर वसूलने के लिए ठेकेदार अत्यन्त कठोर व निर्मम तरीकों का प्रयोग करते थे, जिससे जनता को अपार कष्ट होता था। इसी कारण हेजन ने लिखा है, "**कर वसूल करने की यह प्रणाली प्राचीन तथा आधुनिक युग दोनों में ही अत्यन्त घृणित प्रमाणित हुई।**"[2] लियो गर्शोय ने भी इस प्रणाली की अत्यधिक आलोचना की है। उन्होंने लिखा है, "**कर वसूलने का तरीका भ्रष्ट व आर्थिक हानि का सामाजिक दृष्टि से अप्रिय तथा आर्थिक दृष्टि से अप्रतिरक्षणीय था। अप्रत्यक्ष करों को वसूलने के तरीके तो अत्यन्त दुखदायी तथा पाशविक थे।**"[3] फ्रांस में अठारहवीं शताब्दी में अनेक अप्रत्यक्ष कर इस प्रकार के थे, जो कि जनता के लिए अत्यन्त कष्टप्रद थे। इसी प्रकार का एक कर **नमक कर** (salt tax) था। इसके अन्तर्गत सात वर्ष से बड़े प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष में कम से कम सात पौण्ड नमक खरीदना

1 "The nobles fight, clergy pray, and the people pay."

2 **पूर्वोक्त**, पृ. 33.

3 "The methods of collection were financially wasteful and corrupt, socially offensive and economically indefensible, in the case of indirect taxes the methods were vexatious and brutal as well." —Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 22.

आवश्यक था। जिन गरीबों के पास रोटी खाने के लिए धन न था, वे नमक कहां से खरीदते। न खरीदने की स्थिति में उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार की दूषित कर-प्रणाली शराब के लिए भी थी। शराब, फ्रांस का एक प्रमुख उद्योग था, किन्तु उस पर इतने कर लगा दिए गए थे कि यह उद्योग ही ठप्प होने की स्थिति में पहुंच गया। उल्लेखनीय है कि नमक व शराब पर भी कर सम्पूर्ण फ्रांस में एक समान न थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनीतिक व्यवस्था के समान **फ्रांस का आर्थिक ढांचा भी असमानता, विशेषाधिकार, स्वेच्छाचारिता और अन्यायपूर्ण नियमों से ओत-प्रोत था।** नियम प्रायः परिवर्तित होते रहते थे, जिससे सदैव अनिश्चितता बनी रहती थी। अतः फ्रांस की जनता द्वारा इस उत्पीड़क व अन्यायपूर्ण वित्तीय नीति का विरोध करना स्वाभाविक ही था।

धार्मिक स्थिति
(RELIGIOUS CONDITION)

फ्रांस में आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं थी। बूर्बा वंश रोमन कैथोलिक चर्च का अनुयायी था, अतः इसी चर्च का फ्रांस में प्रभुत्व छाया हुआ था। कैथोलिक चर्च के पास अपार धन-सम्पदा थी तथा उसके अधिकारी अत्यन्त शान-शौकत एवं विलासिता से रहते थे। फ्रांस में बड़ी संख्या में **'प्रोटेस्टेण्ट'**[1] (Protestant) भी रहते थे। फ्रांस में इन्हें **'ह्यूगनॉट्स'** (Huguenots) कहा जाता था। हेनरी IV ने अपने शासन काल में इन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी थी, किन्तु मन्त्री रिशलू ने 'ह्यूगनॉट्स' पर अत्यधिक अत्याचार किए। लुई XIV ने भी ह्यूगनॉट्स को समाप्त करने के यथासम्भव प्रयास किए। 1685 ई. में ह्यूगनॉट्स के सभी विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया तथा उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता को छीन लिया गया। लुई XVI के समय में यद्यपि ह्यूगनॉट्स पर अत्याचार नहीं किए गए, किन्तु उन पर प्रतिबन्धों को पूर्ववत् बनाए रखा गया। यहूदियों के साथ भी फ्रांस में दुर्व्यवहार किया जाता था।

सामाजिक स्थिति
(SOCIAL CONDITION)

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति के समान ही सामाजिक ढांचा (social structure) भी अत्यन्त दोषपूर्ण एवं कष्टप्रद था। ऐसी अनेक कुरीतियां तथा बुराइयां तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान थीं, जिनका बुद्धि व जनहित से कोई सम्बन्ध न था। **इनमें से अधिकांश प्रथाएं सामन्ती युग** (feudal age) **से चली आ रही परम्पराएं थीं जो 18वीं शताब्दी के अनुकूल नहीं थीं।** तत्कालीन समाज में प्रत्येक व्यक्ति का व्यवसाय उसके जन्म के अनुसार बंटा हुआ था। जो जिस घराने में जन्म लेता था वह उन्हीं परिस्थितियों में रहता था, उसकी योग्यता अथवा अयोग्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसी

1 'प्रोटेस्टेण्ट' शब्द **प्रोटेस्ट** (Protest) से बना है जिसका अर्थ विरोध करना होता है। अतः जिन्होंने रोमन कैथोलिक चर्च के पोप का विरोध किया, उन्हें प्रोटेस्टेण्ट कहा गया। यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुयायी अलग-अलग देशों में अलग-अलग नामों से जाने जाते थे उदाहरणार्थ—(i) जर्मनी में प्रोटेस्टेण्ट (Protestant), (ii) इंग्लैण्ड में एंग्लिकन (Anglican), (iii) फ्रांस में ह्यूगनॉट्स (Hugnenots), तथा काल्विनवादी (Calvinists), (iv) स्काटलैण्ड में प्रेसबीटेरियन (Presbetarian), (v) अमरीका में एपिसकोपल (Episcople), (vi) स्विट्जरलैण्ड में ज्विंगलीवादी (Zwinglist), अथवा काल्विनवादी (Calvinists)। कभी-कभी 'प्योरिटन' शब्द का प्रयोग भी प्रोटेस्टेण्टवादियों के लिए किया जाता है।

प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लिओ गर्शोय ने लिखा है, "**फ्रांस का सामाजिक स्वरूप व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता व प्रसन्नता को वढ़ाने वाले सिद्धान्तों को प्रोन्नत करने वाला नहीं था, जब तक कि कोई व्यक्ति इतना भाग्यशाली न हो जो कि उसका जन्म उच्च वर्ग में हुआ हो।**[1]

सामाजिक वर्गीकरण (Social classification)—फ्रांसीसी समाज का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है—
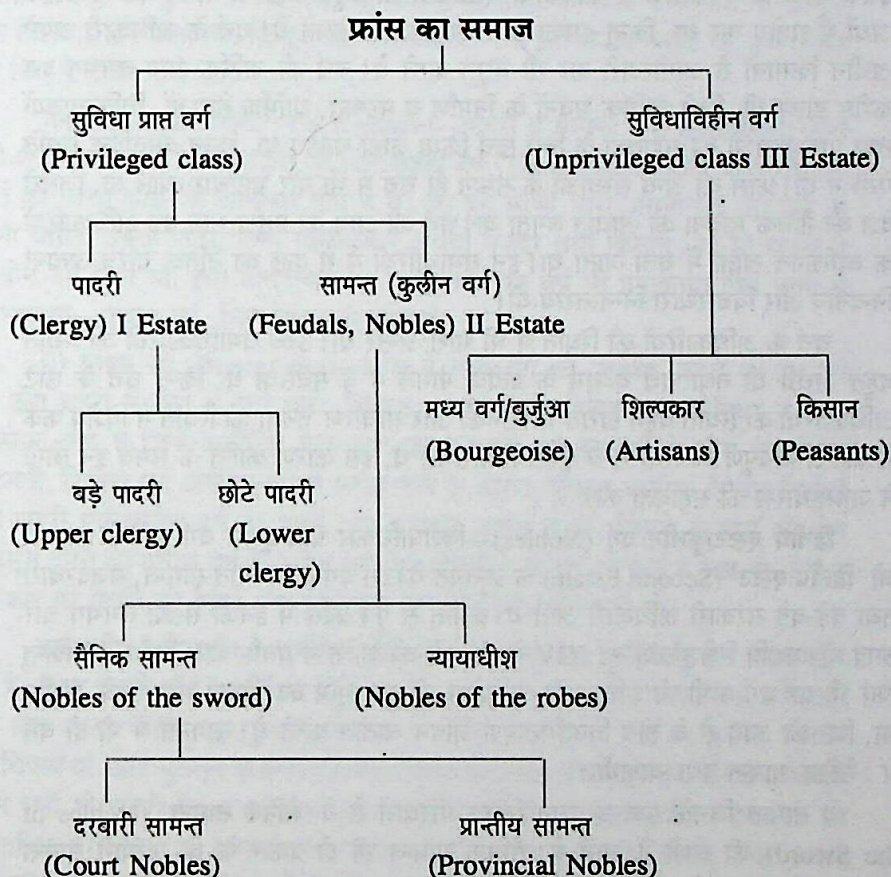
उपरोक्त चार्ट से स्पष्ट है कि फ्रांस का समाज दो प्रमुख वर्गों में बंटा हुआ था। प्रथम, **सुविधा प्राप्त वर्ग** (Privileged class), जिन्हें हर प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे। इस वर्ग में पादरी व कुलीन अथवा सामन्त आते थे। दूसरा वर्ग सुविधा अथवा **विशेषाधिकारविहीन वर्ग** (unprivileged class) था, जिनको किसी प्रकार की सुविधाएं न थीं तथा इनका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद था। इस वर्ग में जनसाधारण आता था। सुविधा प्राप्त वर्ग भी दो भागों—पादरियों व सामन्तों में बंटा हुआ था, अतः इस प्रकार फ्रांसीसी समाज में प्रमुखतया तीन वर्ग थे—

1 "The social structure of France was itself hardly conducive to promoting men's pursuit of his inalienable and imprescriptible rights of life, liberty and happiness-unless he happened to be of the fortunate few who were well bron."

—*The French Revolution and Napoleon*, p. 27.

पादरी, सामन्त (कुलीन) तथा जनसाधारण, इनको क्रमशः **प्रथम एस्टेट** (First Estate), **द्वितीय एस्टेट** (Second Estate) तथा **तृतीय एस्टेट** (Third Estate) कहा जाता था।

प्रथम एस्टेट/पादरी (Clergy)—पादरी प्रथम एस्टेट के अन्तर्गत आने वाला वर्ग था तथा इनका स्थान समाज में सर्वोच्च था। वे अत्यन्त शक्तिशाली तथा धनी थे। फ्रांस की कुल भूमि का लगभग 1/5वां भाग इनके अधीन था। इस भूमि से उन्हें अत्यधिक आय प्राप्त होती थी। **इसके अतिरिक्त वे किसानों से धार्मिक कर** (tithes) **भी वसूल करते थे।** यद्यपि यह वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय कर था, किन्तु इसका लाभ धर्माधिकारी उठाते थे। चर्च के अधिकारी अपने अधीन किसानों से जागीरदारी कर भी वसूल करते थे। चर्च की वार्षिक आय लगभग दस करोड़ डालर थी, जिसे धार्मिक भवनों के निर्माण व मरम्मत, धार्मिक सेवाओं, चिकित्सालयों तथा पाठशालाओं की सहायता के लिए खर्च किया जाना चाहिए था, किन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी न थी। फ्रांस की अन्य संस्थाओं के समान ही चर्च में भी घोर भ्रष्टाचार व्याप्त था, जिससे देश की नैतिक भावना को आघात लगता था। चर्च की आय का प्रमुख भाग बड़े अधिकारियों के व्यक्तिगत खातों में चला जाता था। इन धर्माचारियों में से कुछ का नैतिक चरित्र अत्यन्त निन्दनीय और विचारधारा निम्नस्तरीय थी।

चर्च के अधिकारियों की स्थिति में भी भारी अन्तर था। उच्च धर्माधिकारियों की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा चर्च व धर्म के प्रत्येक मामले में वे सर्वेसर्वा थे, किन्तु चर्च के छोटे अधिकारियों की स्थिति बहुत खराब थी। उनकी और साधारण जनता की स्थिति में विशेष फर्क न था। अन्यायपूर्ण व्यवस्था से वे पूर्णतया परिचित थे, इस कारण क्रान्ति के समय इन लोगों ने जनसाधारण की सहायता की।

द्वितीय एस्टेट/कुलीन वर्ग (Nobles)—विशेषाधिकार प्राप्त दूसरा वर्ग कुलीनों का था, जो '**द्वितीय एस्टेट**' (Second Estate) के अन्तर्गत थे। इस वर्ग के अन्तर्गत सामन्त, राजदरबारी तथा बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी आते थे। क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में इनकी संख्या लगभग चार लाख थी। यद्यपि रिशलू तथा लुई XIV ने सामन्तों की शक्ति में पर्याप्त ह्रास किया था, किन्तु फिर भी यह वर्ग अभी भी शक्तिशाली था। फ्रांस की कुल भूमि का चौथाई भाग उनके अधीन था, जिसकी आय से ये लोग विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। सामन्तों में भी दो वर्ग थे : **सैनिक सामन्त** तथा **न्यायाधीश**।

वे सामन्त जिनके सम्बन्ध पुराने सैनिक परिवारों से थे '**सैनिक सामन्त**' (Nobles of the Sword) की श्रेणी में आते थे। सैनिक सामन्त भी दो प्रकार के थे—**दरबारी सामन्त** (court nobles) तथा **प्रान्तीय सामन्त** (provincial nobles)। दरबारी सामन्त संख्या में कम थे, किन्तु वे अत्यन्त शान-शौकत व विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। राजदरबार में रहने के कारण उन्हें राजा के निकट आने का अवसर मिलता था, जिससे वे अत्यन्त शक्तिशाली हो गए थे। राज्य के अधिकांश उच्च पदों पर उनका एकाधिकार था। प्रान्तीय सामन्तों की संख्या बहुत अधिक थी, किन्तु ये इतने प्रभावशाली न थे। अपने-अपने प्रान्तों में रहने के कारण उनका राजाओं से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता था। अतः उनके प्रभावों में वृद्धि नहीं हो पाती थी। समाज में उन्हें न तो विशेष सम्मान ही प्राप्त थ और न ही उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। **फ्रांस की जनता के हृदय में सामन्त वर्ग के प्रति जो घृणा थी वह वास्तव में स्वार्थी तथा लालची दरबारी सामन्तों के लिए ही थी।**[1]

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 37।

सामन्तों का दूसरा वर्ग न्यायाधीशों (Nobles of the Robes) का था। फ्रांस की पुरातन व्यवस्था में पदों को खरीदा जा सकता था। ऐसा पद खरीदने पर, सरकार से उन्हें सामन्त (Noble) होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार सामन्तों के इस वर्ग का उदय हुआ था। ये लोग मध्यकालीन सामन्तों के वंशज न थे। इनमें से अधिकांश न्यायाधीश अथवा उच्चतर न्यायाधिकरणों के सदस्य थे, अतः इन्हें '**न्यायाधीश सामन्त**' कहा जाता था। यह वर्ग अन्य सामन्तों की तुलना में उदारवादी था तथा समय-समय पर राजा व सरकार के कानूनों का विरोध इन्होंने किया था, किन्तु अपने विशेषाधिकारों से इन्हें विशेष लगाव था, उन्हें छोड़ने के लिए वे तैयार न थे।

जनसाधारण/तृतीय एस्टेट (Third Estate)—पादरी व सामन्त वर्गों के अतिरिक्त फ्रांस की शेष जनता इसी वर्ग में आती थी जिसे **तृतीय वर्ग** (Third Estate) कहा जाता था। इस वर्ग को किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त न थे। इस वर्ग में भी भारी असमानता थी। धनी से धनी व्यक्ति अथवा प्रतिभाशाली साहित्यकार अथवा मजदूर तथा किसान, जो भी पादरी व कुलीन वर्ग में न था, इसी तीसरे वर्ग का सदस्य था। यह वर्ग भी प्रमुखतया तीन भागों में विभक्त था—मध्यम वर्ग, शिल्पकार तथा किसान।

(i) **मध्यम वर्ग** (Bourgeoise)—फ्रांस में मध्य वर्ग को '**बुर्जुआ**' कहते थे। इस वर्ग के लोग शहरों में रहते थे तथा धनी, शिक्षित, अध्यापक, साहित्यकार, इन्जीनियर व अन्य बौद्धिक लोग थे जिन्हें शारीरिक कार्य नहीं करना पड़ता था। इस वर्ग के लोग अक्लमन्द, मेहनती, शिक्षित एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण, पुरातन व्यवस्था के घोर विरोधी थे। पादरी एवं कुलीन वर्ग का इनके प्रति व्यवहार अच्छा न था, जिससे ये स्वयं को हीन महसूस करते थे। मध्यम वर्ग के अनेक धनी व्यापारियों ने सरकार को कर्ज दे रखा था, लेकिन सरकार की स्थिति को देखते हुए उन्हें अपने धन की चिन्ता होने लगी थी।

उल्लेखनीय है कि फ्रांस के सर्वाधिक बुद्धिमान धनी, सभ्य तथा प्रगतिवादी लोग मध्यमवर्गीय ही थे, किन्तु उनको कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।[1] मध्यम वर्ग राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करना चाहता था। पुरातन व्यवस्था में समस्त राजनीतिक पदों पर कुलीन वर्ग का आधिपत्य था, अतः पुरातन व्यवस्था की समाप्ति किए बिना मध्यम वर्ग को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते थे। राजनीतिक अधिकारों के अभाव में मध्यमवर्गीय व्यापारियों को अत्यधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता था। राजा तथा कुलीन वर्ग स्वेच्छा से कर लगाते थे तथा नीतियों में परिवर्तन करते थे, जिसका परिणाम मध्यम वर्ग को भुगतना पड़ा था व उनके व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था।

मध्यम वर्ग मात्र राजनीतिक व्यवस्था में ही परिवर्तन का इच्छुक न था, वरन् वही सामाजिक क्रान्ति भी चाहता था। हेजन ने लिखा है, "**वे सुरक्षित थे, उनके मस्तिष्क उस युग के साहित्य से, जिसका वे बड़े चाव के अध्ययन करते, ओत-प्रोत थे। वाल्टेयर, रूसो, मॉण्टेस्क्यू तथा अनेक अर्थशास्त्रियों के विचारों ने उन्हें आन्दोलित कर रखा था। व्यक्तिगत तुलना में वे उतने**

1 **"The middle class dwellers in the towns, though better off than peasants, were even more critical and discontented. The professional and business classes, the bourgeoise, included the most cultured, the most intelligent, and the most progressive elements in the nation, yet this energetic and intelligent class was denied political power."** —**Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 564.**

सुसंस्कृत न थे जितना कुलीन वर्ग। वे सामाजिक समता चाहते थे, उनकी प्रवल इच्छा थी कि कानून इस बात को स्वीकार कर ले कि बुर्जुआ वर्ग के लोग कुलीन वर्ग के समान हैं।''[1]

अत: मध्यम वर्ग के हितों के लिए फ्रांस की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक था। मध्यम वर्ग में अपने हितों की रक्षा करने की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही थी। यही कारण था कि फ्रांस की क्रान्ति में मध्यम वर्ग का प्रमुख योगदान रहा।

(ii) **शिल्पकार** (Artisans)—तृतीय वर्ग (Third Estate) मध्याम वर्ग के समान ही शहरों में रहने वाला दूसरा वर्ग शिल्पकारों का था। फ्रांस में उस समय इनकी संख्या लगभग 25 लाख थी। फ्रांस में महान् क्रान्ति से पूर्व उद्योग-धन्धे पूर्णतया विकसित नहीं हो सके थे, अत: इनकी संख्या कम ही थी। **शिल्पकार अनेक श्रेणियों में विभक्त थे तथा प्रत्येक श्रेणी के अपने-अपने नियम थे।** श्रेणियों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त खराब थे तथा इनमें आपस में अक्सर झगड़े होते रहते थे। सरकार की ओर से इन शिल्पकारों को किसी प्रकार की सुविधा प्रदान नहीं की जाती थी।

(iii) **किसान** (Peasants)—फ्रांस में तृतीय वर्ग में सर्वाधिक संख्या किसानों की थी। फ्रांस में कुल मिलाकर भी किसानों की संख्या सर्वाधिक थी। फ्रांस की कुल जनसंख्या का 9/10वां भाग किसान ही थे, किन्तु फिर भी सबसे शोचनीय स्थिति उन्हीं की थी। **करों का सम्पूर्ण भार भी इन्हीं गरीबों के कन्धों पर था।**[2] किसानों को अपनी कुल आय का आधे से भी अधिक भाग करों के रूप में देना पड़ता था। सामन्तों को उन्हें भूमिकर तथा चर्च को **धर्मांश कर** (Tithes) देना पड़ता था। इन सबका परिणाम यह होता था कि किसान सदैव आर्थिक संकट से ग्रस्त रहते थे। यदि कभी प्रकृति का प्रकोप हो जाता तो किसान भूखे मरने लगते थे, किन्तु सरकार को इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। **भूख से परेशान होकर हजारों किसान लुटेरे बन गए थे।** किसानों को हर कदम पर कर देना पड़ता था। पुलों तथा सड़कों तक का प्रयोग करने पर उनसे कर लिए जाते थे, आटे की चक्की तथा शराब बनाने के लिए, कोल्हू का प्रयोग करने के लिए भी उन पर प्रतिबन्ध था कि वे अपने ही सामन्त की चक्की अथवा कोल्हू का प्रयोग करें। चाहे उसके लिए उन्हें 4-5 मील जाना पड़ता था। चक्की अथवा कोल्हू का प्रयोग करने पर कर तो उन्हें देना ही पड़ता था।

उपरोक्त कारणों से किसानों के असन्तोष की भावना बलवती होती जा रही थी। उन्हें अनुभव होने लगा था कि उनकी स्थिति में तभी परिवर्तन हो सकता था जबकि पुरातन व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किया जाए। लियो गर्शोय ने लिखा है, ''**किसान इतने दुःखी हो चुके थे कि वे स्वयं ही एक क्रान्तिकारी तत्व के रूप में परिणत हो गए। उन्हें क्रान्ति करने के लिए मात्र एक संकेत की आवश्यकता थी तथा उन्हीं की प्रमुख भूमिका ने** 1789 **ई. की क्रान्ति को सफल बनाया था।''**[3]

---

1 पूर्वोक्त, पृ. 39।

2 "Taxation rested most heavily upon those least able to support it and crushed the peasant most cruelly of all." —Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 265.

3 "The peasants, taken as a group, had become a revolutionary element. They required only a signal to break out in revolt, and it was their active participation that made the revolutionary movement of 1789 a success."
—*The French Revolution and Napoleon*, p. 51..

बौद्धिक क्रान्ति
(INTELLECTUAL REVOLUTION)

अठारहवीं शताब्दी की एक प्रमुख विशेषता यूरोप में बौद्धिक क्रान्ति का होना था। इस युग में फ्रांस में भी अनेक ऐसे विद्वानों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग करके तृतीय वर्ग की सोयी हुई आत्मा को जागृत किया तथा उन्हें अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। **इन लेखकों ने फ्रांस में व्याप्त बुराइयों की कटु आलोचना की तथा अपनी कटु शैली और आलोचना के द्वारा समाज में व्याप्त असन्तोष की कुशल अभिव्यक्ति की।**

अठारहवीं शताब्दी के इन विद्वानों में प्रमुख मॉण्टेस्क्यू (कानून की आत्मा का लेखक) **वाल्टेयर, रूसो** (सामाजिक संविदा का रचयिता), **दिदरो आर्लेब्रेयर, केने** थे। इनके अतिरिक्त अनेक लेखकों ने अपनी रचनाओं में आर्थिक दोषों को दूर करने के लिए सरकार से अपील की।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस के लेखकों ने राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर फ्रांस की क्रान्ति को जन्म देने वाले कुछ **प्रमुख साहित्यकारों का वर्णन निम्नलिखित किया है—**

(1) **दिदरो** (Diderot, 1713 ई.-1784 ई.)—दिदरो का जन्म 1713 ई. में फ्रांस में हुआ था। दिदरो का विचार था कि सत्य के ज्ञान से सुख की प्राप्ति व दुखों का निराकरण हो सकता है। अतः उसने एक '**विश्वकोश** (Encyclopaedia) की रचना की, जिसमें उसने विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला। इस विश्वकोश को 17 खण्डों में 1751 ई. से 1772 ई. तक प्रकाशित किया गया। इस विश्वकोश की रचना में विभिन्न प्रख्यात विद्वानों के लेखों को भी दिदरो ने प्रकाशित किया, जिनमें प्रमुख वाल्टेयर (Voltaire) व क्वेस्ने थे। फ्रांस की रूढ़िवादी सरकार को दिदरो की विचारधारा स्वीकार न थी, अतः उसे विभिन्न तरीकों से प्रताड़ित किया गया। यहां तक कि दिदरो को कारागार में भी दिन काटने पड़े। विभिन्न समस्याओं का सामना करने के उपरान्त भी दिदरो अपने प्रयत्न में लगा रहा।

(2) **माण्टेस्क्यू** (Montesquieu, 1689-1758 ई.)—माण्टेस्क्यू का जन्म 18 जनवरी, 1689 ई. में फ्रांस के बोर्डो (Bordeaux) नगर के समीप '**ला ब्रेड**' (La Brede) नामक गांव में हुआ था। माण्टेस्क्यू का बचपन का नाम '**चार्ल्स लुई डी सेकेण्ड**' था। उसने बोर्डो विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की तथा 1721 ई. में वह वकील बन गया। 1715 ई. में उसका विवाह हुआ। 1716 ई. में अपने 'ताऊ' के कहने पर उसने अपना नाम माण्टेस्क्यू रखा। माण्टेस्क्यू ने लगभग 12 वर्ष तक बोर्डो के प्रधान न्यायाधीश के पद पर भी कार्य किया।

अध्ययन तथा लेखन कार्य में उसकी रुचि प्रारम्भ से ही थी, अतः उसने अपना अधिकांश समय इसी में व्यतीत किया। 1728 ई. में माण्टेस्क्यू ने यूरोप के अनेक देशों की यात्रा की। अपनी यात्रा के दौरान काफी समय तक वह इंग्लैण्ड में भी रहा तथा इंग्लैण्ड से बहुत प्रभावित हुआ। 10 फरवरी, 1758 ई. को उसकी मृत्यु हो गयी।

माण्टेस्क्यू ने अपने जीवनकाल में अनेक ग्रन्थों की रचना की। माण्टेस्क्यू की प्रथम रचना '**द पर्शिअन लैटर्स**' (The Persian Letters) 1721 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में माण्टेस्क्यू को अत्यधिक ख्याति मिली। तत्पश्चात्, माण्टेस्क्यू ने 1734 ई. में '**रोमन लोगों की महानता और पतन के कारणों पर विचार**' (*Reflections on the causes of the*

Greatness and Decline of the Romans) तथा 1745 ई. में **'सुल्ला और एक्रेटीज का संवाद'** (*Dialogue of Sulla and Ecrates*) प्रकाशित किया, किन्तु उसका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ **'कानून की आत्मा'** (*The Spirit of Law*) था, जो 1748 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के दो वर्ष में 22 संस्करण छपे, जो इस पुस्तक की लोकप्रियता का प्रमाण है।

'कानून की आत्मा' नामक पुस्तक में माण्टेस्क्यू ने सात शासन प्रणालियों का विस्तृत वर्णन किया। माण्टेस्क्यू ने इंग्लैण्ड की संवैधानिक व्यवस्था की अत्यन्त प्रशंसा की तथा फ्रांस में विद्यमान **'राजा के दैवीय अधिकारों के सिद्धान्त'** (Divine Right of the King) की कटु आलोचना की। माण्टेस्क्यू ने ही सर्वप्रथम विधिवत् **'शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त'** (Theory of Separation of Powers) की स्थापना की। माण्टेस्क्यू का विचार था कि इंग्लैण्ड की उत्तम शासन व्यवस्था का कारण वहां के नागरिकों को प्राप्त राजनीतिक स्वतन्त्रता का होना था। इसी आधार पर उसने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। माण्टेस्क्यू ने बताया कि निरंकुश शासन को समाप्त करने के लिए शासन के तीन प्रमुख अंगों—कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका का अलग-अलग होना आवश्यक है। उसने लिखा कि जब तक फ्रांस में उपरोक्त तीनों अंग एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित रहेंगे वहां सुधार की अपेक्षा करना व्यर्थ था। माण्टेस्क्यू के इन विचारों ने निस्सन्देह 1789 ई. की क्रान्ति के बीज बो दिए।

माण्टेस्क्यू के उपरोक्त विचारों के कारण ही उसे 18वीं शताब्दी के प्रमुख राजनीतिक चिन्तकों में से एक माना गया है। सेबाइन के शब्दों में, **''18वीं शताब्दी के समस्त फ्रांसीसी राजनीतिक चिन्तकों में (रूसो के अतिरिक्त) माण्टेस्क्यू सबसे महत्वपूर्ण है।''**[1] माण्टेस्क्यू के कार्यों व विचारों का मूल्यांकन करते हुए मैक्सी ने लिखा है, **''अमर व्यक्तियों में माण्टेस्क्यू का स्थान किसी से तुलना करके निर्धारित नहीं किया जा सकता। वह राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली और बोदां के समान विशिष्ट महत्व रखता है।''**[2]

(3) **वाल्टेयर** (Voltaire, 1691-1778 ई.)—18वीं शताब्दी के राजनीतिक साहित्यकारों में प्रमुख वाल्टेयर था। हेजन ने वाल्टेयर के विषय में लिखा है : **वाल्टेयर यूरोपीय इतिहास का एक महान् मनीषी हुआ है और उसके नाम पर एक युग का नाम पड़ गया है। जिस प्रकार लूथर अथवा इरैस्मस के युग का उल्लेख किया जाता है वैसे ही वाल्टेयर के काल की चर्चा की जाती है।''**

वाल्टेयर का जन्म फ्रांस के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उसके पिता उसे वकील बनाना चाहते थे, किन्तु उसकी रुचि साहित्य में थी। उसमें आलोचना करने की अद्भुत क्षमता थी। विभिन्न उच्च वर्ग के लोगों की आलोचना करने के कारण उसे अनेक बार अत्याचारों का सामना करना पड़ा था। उसे कई बार कारागार में भी रहना पड़ा। अनेक वर्ष उसे फ्रांस से बाहर रहने के लिए विवश होना पड़ा। अतः वाल्टेयर को फ्रांसीसी समाज तथा

1 **"Of all French political philosophers in the 18th century (other than Rousseau) the most important was Montesquieu."** —*Sabine*

2 **"Montesque's rank among the immortals is not to be determined by comparing him with others like Plato, Aristotle, Machiavelli and Bodine. He stands apart in unique and solitary eminence."** —*Maxey*

उसमें व्याप्त अराजकता का पूर्ण ज्ञान था। इसी कारण **रोज** ने उसके विषय में लिखा है, **"वह फ्रांसीसी विचारों का पूर्ण दर्पण था।"**[1]

वाल्टेयर मानव स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का उग्र समर्थक था तथा स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने के लिए सदैव तत्पर रहता था। पुरातन व्यवस्था के प्रति उसे अपार घृणा थी तथा किसी पर अत्याचार होते देखना उसके लिए सम्भव न था। जहां कहीं भी अत्याचार होते हुए देखता वह वहां पहुंच जाता तथा अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करता। इसी कारण उसके लिए कहा गया है कि मूलतः वह कोई राजनीतिक चिन्तक न था। शासन व्यवस्था में व्याप्त दोषों पर उसने अपनी लेखनी से आघात किया तथा राज्य पर जनता का विश्वास समाप्त कर दिया।

अत्याचार का विरोध करने के कारण ही वाल्टेयर का चर्च से भी संघर्ष हुआ। वाल्टेयर की दृष्टि से चर्च मानव स्वतन्त्रता का विरोधी तथा अन्धविश्वास उत्पन्न करने का स्थान था। चर्च को वह **'बदनाम स्थान'** (Pintame) कहता था। अतः उसने चर्च में व्याप्त आडम्बरों व भ्रष्टाचार की घोर आलोचना की।

इस प्रकार वाल्टेयर ने सम्पूर्ण जीवन मानवता के हित व स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने में लगा दिया। **हेजन** ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"उसके समय में उसका क्या महत्व था, इसका पता इस बात से चलता है कि लोगों ने उसे राजा वाल्टेयर का नाम दे रखा था। संसार में उससे अधिक स्वतन्त्र, निर्भीक व साहसी आत्माएं बहुत कम हुई हैं।"**

(4) जीन जैकस रूसो (Jean Jaques Rousseau, 1712-1778)—जीन जैकस रूसो 18वीं शताब्दी का सर्वप्रमुख राजनीतिक चिन्तक था। रूसो का जन्म 28 जून, 1712 को जेनेवा में हुआ था। उसके जन्म के कुछ समय पश्चात् ही उसकी मां की मृत्यु हो ज़ाने के कारण उसका बचपन उपेक्षित व्यतीत हुआ। उसका पालन-पोषण उसके सम्बन्धियों ने किया। 16 वर्ष की आयु में वह जेनेवा छोड़कर चल दिया व इधर-उधर घूमता रहा। **रूसो 14 वर्षों तक इसी प्रकार यायावर का जीवन व्यतीत करता रहा।** यह चौदह वर्ष उसके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणित हुए क्योंकि इन्हीं दिनों वह दिदरो जैसे विद्वानों के सम्पर्क में आया तथा उसे फ्रांस की निर्धन जनता को निकट से देखने का अवसर मिला।

एक लेखक के रूप में रूसो का जीवन 1749 ई. से प्रारम्भ हुआ। उस वर्ष 'डिजोन की अकादमी' (Academy of Dijon) द्वारा **'विज्ञान तथा कलाओं की प्रगति ने नैतिकता को पवित्र किया है अथवा भ्रष्ट'** नामक विषय पर निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में रूसो को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। इससे रूसो को एक लेखक के रूप में प्रसिद्धि मिली। 1761 ई. में रूसो ने **'न्यू हैलोइज'** (*New Heloise*) तथा 1761 ई. में **'सामाजिक समझौता'** (*Social Contract*) व **'इमाइल'** (*Emile*) की रचना की। इन ग्रन्थों से रूसो को अपार ख्याति प्राप्त हुई। इन ग्रन्थों में व्यक्त उसके क्रान्तिकारी विचारों के कारण राज अधिकारी व चर्च के अधिकारी उसके विरोधी हो गए, परिणामस्वरूप उसे फ्रांस छोड़ कर जाना पड़ा। 1767 ई. में वह पुनः फ्रांस आ गया व अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें प्रमुख **'द कन्फैशन्स'** (*The Confessions*), **'द डाइलाग्स'** (*The Dialouges*) व **'द रेवरीज'** (*The Reveries*) हैं। 2 जुलाई, 1778 ई. को रूसो की मृत्यु हुई।

1 **"He was the completest mirror of the French thought."** —*Rose*

रूसो के विचार अपने समकालीन लेखकों से अधिक प्रगतिशील थे। वह समाज का नवीन ढंग से पुनर्संगठन करना आवश्यक समझता था, क्योंकि उसका विचार था कि वर्तमान व्यवस्था को सुधारना सम्भव न था, अतः एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना आवश्यक था। इसी उद्देश्य से उसने '**सामाजिक समझौता**' की रचना की। इस ग्रन्थ का पहला वाक्य ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसने लिखा है, "**मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होता है, किन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।**"[1] इस विचार के आधार पर ही रूसो ने एक आदर्श राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की। रूसो ने लिखा कि समाज का आधार उन व्यक्तियों का परस्पर समझौता होता है जिनसे मिलकर वह (समाज) बनता है। प्रभुत्व सम्पूर्ण जनता में होता है, व्यक्ति विशेष में नहीं। सभी व्यक्ति समान तथा स्वतन्त्र हैं। सरकार का प्रमुख कर्तव्य प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों व उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करना है। इस प्रकार रूसो ने दो लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों—जनता का प्रभुत्व तथा नागरिकों की राजनीतिक स्वतन्त्रता की स्थापना की। व्यक्तियों की स्वतन्त्रता व समानता के अधिकारों का प्रतिपादन करके उसने लोकतान्त्रिक शक्तियों को प्रबल बनाया। सेबाइन ने रूसो के विषय में लिखा है, "**रूसो के राजनीतिक चिन्तन में समाजवाद, निरकुंशतावाद और लोकतन्त्र सभी के बीज विद्यमान हैं।**"[2]

रूसो ही पहला विचारक था जिसने समानता, स्वतन्त्रता व जनतन्त्र के विचारों का प्रतिपादन किया तथा सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता का मूल स्रोत जनता को माना। रूसो असमानता का भी विरोधी था। उसका विचार था कि राज्य में कोई व्यक्ति इतना समृद्ध नहीं होना चाहिए कि वह दूसरे को खरीद सके और न ही कोई इतना गरीब होना चाहिए कि वह स्वयं को बेच दे।

रूसो के विचारों ने जनसाधारण को असाधारण रूप से प्रभावित किया। वेपर (Wayper) ने रूसो के विषय में लिखा है, "**आधुनिक विश्व के मस्तिष्क पर उससे (रूसो) अधिक प्रभाव डालने वाले व्यक्ति गिने-चुने हैं।**" रूसो ने अपने समय की दूषित शासन व्यवस्था व सामाजिक व्यवस्था की कटु आलोचना की तथा समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताओं व शोषण को जनसाधारण के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर उनमें तीव्र आक्रोश व असन्तोष की भावना जागृत की। मैक्गवर्न ने लिखा है, "**रूसो की रचनाओं ने वर्तमान स्थितियों के प्रति घोर असन्तोष उत्पन्न कर दिया और यह भावना पैदा कर दी कि वर्तमान बुराइयों को दूर करने के लिए कुछ क्रान्तिकारी कदम उठाए जाने चाहिए।**"

इस प्रकार क्रान्तिकारी विचारों को जनता में प्रबल बनाने के कारण रूसो को '**क्रान्ति का मसीहा**' (Prophet of the Revolution) भी कहा जाता है।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस के लेखकों ने राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर फ्रांस को राजनीतिक एवं सामाजिक क्रान्ति के कगार पर ला खड़ा किया। इन लेखकों ने क्रान्ति के नेताओं में निश्चयात्मक सिद्धान्त भर दिए तथा उन्हें कुछ सैद्धान्तिक वाक्यों तथा तर्कों से सुसज्जित कर दिया। इन लेखकों ने फ्रांस के तृतीय वर्ग के समक्ष शक्तिशाली स्वप्न प्रस्तुत किए और उन्हें आशावादी बनाया। हेजन[3] ने लिखा है कि इन लेखकों ने क्रान्ति के

1 "Man is born free and everywhere he is in chains."
2 "Rousseaus's political theory contains the seeds of Socialism, Absolutism and Democracy."
3 **पूर्वोक्त**, पृ. 47।

कारण को अत्यन्त चतुरता से जनता के समक्ष स्पष्ट किया तथा उनकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। लोगों को वाद-विवाद के लिए बाध्य किया तथा पुरातन व्यवस्था के विरुद्ध क्रोध एवं घृणा को प्रज्ज्वलित किया। इन्हीं लेखकों ने फ्रांसीसी जनता को स्वतन्त्रता (Liberty), भ्रातृत्व (Fraternity) एवं समानता (Equality) का पाठ पढ़ाया।

फ्रांस की क्रान्ति के कारण
(CAUSES OF THE FRENCH REVOLUTION)

गूच के अनुसार, फ्रांस की क्रान्ति यूरोप के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी,[1] किन्तु वास्तव में फ्रांस की क्रान्ति केवल फ्रांस और यूरोप के इतिहास की ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास में भी महत्वपूर्ण घटना थी। इस क्रान्ति ने लोगों के समक्ष स्वतन्त्रता, **समानता** तथा **भ्रातृत्व** (Liberty, Equality and Fraternity) के आदर्श विचार प्रस्तुत किए जो आज विश्व के कोने-कोने तक पहुंच चुके हैं। फ्रांस की क्रान्ति सैनिक ही नहीं, अपितु विचारों की भी लड़ाई थी।

क्रान्तियां कभी अचानक नहीं होतीं और संयोगवश तो कभी भी नहीं। एक छोटी-सी घटना सुरंग में चिंगारी का कार्य कर आग तो प्रज्ज्वलित कर सकती है, परन्तु सुरंग का पहले से ही बारूद से भरा होना नितान्त आवश्यक है। फ्रांस की क्रान्ति में भी ऐसा ही हुआ। **क्रान्ति रूपी सुरंग तो लगभग दो शताब्दियों पूर्व से ही तैयार होनी प्रारम्भ हो गयी थी**, 1789 **ई. में उसे केवल विस्फोटित कर दिया गया।** यद्यपि उस समय यूरोप के सभी देशों की स्थिति एक समान थी, परन्तु फ्रांस की स्थिति सर्वाधिक शोचनीय थी और यही कारण था कि सर्वप्रथम फ्रांस में ही क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति ने फ्रांस की काया ही पलट दी। धनवान तथा निर्धनों का भेद-भाव ही मिटा देने का प्रयत्न किया गया, जमींदारों तथा पादरियों की सत्ता को समाप्त कर दिया गया।

फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नवत् थे—

(1) राजनीतिक कारण
(POLITICAL CAUSES)

फ्रांस की क्रान्ति के राजनीतिक कारण निम्नलिखित थे—

(अ) लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी (Successors of Louis XIV)—फ्रांस में शताब्दियों से समस्त राजनीतिक शक्ति राजा के हाथों में ही केन्द्रित थी। फ्रांस का राजा लुई चौदहवां यद्यपि एक निरंकुश शासक था, तथापि वह एक योग्य व्यक्ति था, उसके शासनकाल में फ्रांस की उन्नति चरम सीमा पर पहुंच गयी थी, परन्तु अन्त में अनेक युद्धों के कारण तथा **सप्तवर्षीय युद्ध** (Seven Years War) के कारण उसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी थी। उसने अपने पोते लुई पन्द्रहवें से अपनी मृत्यु के समय निम्नलिखित शब्द कहे थे—**'मेरे बच्चे ! अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहने का प्रयत्न करना, जितना जल्दी हो सके लोगों को छुटकारा देने का यत्न करना और इस प्रकार वह कार्य पूरा करना जिसे दुर्भाग्यवश मैं पूरा न कर सका।'**

1 'The French Revolution is the most important event in the history of Europe.'
—*Gooch*

लुई पन्द्रहवां एक अयोग्य शासक प्रमाणित हुआ। सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस के साम्राज्य का बहुत बड़ा भू-भाग उसके अधिकार से निकल गया तथा जनता के कष्टों में और वृद्धि हो गयी। लुई पन्द्रहवें के पश्चात् लुई सोलहवां और भी अयोग्य निकला। मेडलिन ने लिखा है, **'वह पैदाइशी राजा नहीं था।'**[1] एक फ्रेंच इतिहासकार ने लिखा है—**'लुई चौदहवें के उत्तराधिकारियों ने राजवंश में सड़ांध पैदा कर दी और उससे जी मितला देने वाली बदबू उठने लगी थी।'** लुई सोलहवें को शासन प्रबन्ध में विशेष रुचि न थी। उस पर अपनी पत्नी एनटोयनेटी (Marine Antoinette) जो कि मेरिया थरेसा की लड़की थी, का अत्यधिक प्रभाव था। **मिराब्यू** ने लिखा है, **'राजा के निकट केवल एक ही व्यक्ति है, उसकी पत्नी।'**[2] फ्रांस के लोग मेरी एनटोयनेटी से अत्यन्त घृणा करते थे। उसको **'दि आस्ट्रियन'** (The Austrian) या **'मैडम डैफिसिट'** (Madame Deficit) के नाम से पुकारा जाता था। वह अत्यदिक अपव्ययी थी तथा बिना आवश्यकता के जनता का धन पानी की तरह बहाती थी।

(ब) दोषयुक्त शासन व्यवस्था (Defective Administrative System)—फ्रांस की क्रान्ति का एक अन्य एवं प्रमुख कारण वहां की बुरी शासन व्यवस्था थी। राजा देश का प्रधान था और वह स्वेच्छानुसार आचरण करता था। लुई चौदहवें का विचार था कि देश की सर्वोच्च सत्ता व्यक्तिगत रूप से उसी में है; कानून बनाने की शक्ति एकमात्र उसी में ही विद्यमान है; उसकी प्रजा का अस्तित्व उसी के साथ ही है और राष्ट्रीय अधिकार केवल उसी के हाथों में ही है। ऐसी व्यवस्था कभी भी सुचारु रूप से नहीं चल सकती थी। राजा देश के विभिन्न भागों की स्थिति देखने के लिए दौरा नहीं करता था। परिणामस्वरूप, जनता के साथ उसका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध न था। राजा जनता के दुःखों और इच्छाओं से पूर्णतया अनभिज्ञ था। राजा अपना ध्यान राजधानी में ही लगाए रहता था, जहां देश भर से दरबार के ओछे और निरर्थक कार्यों में भाग लेने कुलीन लोग आते थे। **कहा गया था कि दरबार देश का मकबरा है।**[3] एक्टन ने लुई सोलहवें के शासन को *'The Era of Repentant Monarchy'* कहा है।

देश की शासन व्यवस्था अत्यधिक असन्तोषजनक थी। प्रशासन की दृष्टि से किए गए देश के भागों में से अनेक भागों की सीमाएं ठीक तरह निश्चित नहीं थीं और उनके कार्य-क्षेत्राधिकारियों का एक-दूसरे से संघर्ष होने की सम्भावना रहती थी। देश की कानून व्यवस्था (Legal System) भी दोषपूर्ण थी। सम्पूर्ण देश के लिए कोई एकरूप कानूनी व्यवस्था नहीं थी। देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न कानून प्रचलित थे। 'कानून, अत्यधिक कठोर व अन्यायपूर्ण थे तथा साधारण अपराधों के लिए कठोर दण्डों की व्यवस्था थी। अपराधी का अपराध निश्चित करने और उसको दण्डित करने की कोई निश्चित प्रणाली नहीं थी। किसी प्रभावशाली व्यक्ति की इच्छा से कोई भी व्यक्ति कैद किया जा सकता था। बन्दी बनाने के लिए मात्र **'लैटरे डी कैचे'** (Lettre de Cachet) को प्राप्त करने की आवश्यकता होती थी और इसे प्राप्त करने के पश्चात् सम्बन्धित व्यक्ति अनिश्चित काल के लिए बिना किसी अदालती कार्यवाही के जेल में बन्द रखा जा सकता था।

करों को वसूल करने की प्रणाली भी अत्यधिक दोषपूर्ण थी। राज्य स्वयं अपने अधिकारियों द्वारा कर वसूल नहीं करवाता था। अपितु यह अधिकार सबसे अधिक बोली देने वाले व्यक्ति

1 'He was not born a king'. —*Madelin*
2 'The king has only one man about him, his wife.' —*Mirabeu*
3 'Court is the tomb of Nation.'

को दिया जाता था। परिणामस्वरूप जहां कर वसूलने वाले व्यक्ति राज्य को एक निश्चित रकम देते थे वहां दूसरी ओर जनता से अधिक से अधिक धन वसूल करने का प्रयत्न करते थे। जहां एक ओर जनता का शोषण किया जाता वहां दूसरी ओर राज्य को कोई लाभ न होता था। चूंकि कुलीन वर्ग व पादरी कर नहीं देते थे, अतः सम्पूर्ण बोझ साधारण वर्ग पर ही पड़ता था। फ्रांस की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था को ही सुधारना आवश्यक था।

(2) सामाजिक कारण
(SOCIAL CAUSES)

फ्रांस की क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण कारण सामाजिक असमानता था। मेडलिन के अनुसार, '1789 ई. की क्रान्ति का विद्रोह तानाशाही से अधिक असमानता के प्रति था।'[1] फ्रांस की क्रान्ति के समय फ्रांस में समाज में अत्यधिक असमानता व्याप्त थी। समाज दो वर्गों में विभाजित था—विशेषाधिकार वाले वर्ग में कुलीन लोगा और पादरी थे। जहां एक ओर इन्हें विशेषाधिकार प्राप्त थे वहां दूसरी ओर वे करों आदि से भी मुक्त थे। फ्रांस में प्रसिद्ध था, **'सरदार (nobles) लड़ते हैं, पादरी प्रार्थना करते हैं और जनता व्यय का भार उठाती है।'** एक ओर तो इस वर्ग को इतनी सुविधाएं प्राप्त थीं, दूसरी ओर साधारण वर्ग के लोगों की अवस्था सन्तोषजनक भी नहीं थी। किसानों की स्थिति विशेष रूप से शोचनीय थी। किसानों को जमींदार, चर्च और राजा को अनेक कर देने पड़ते थे। साधारणतः उनको अपने जमींदार की जमीन पर सप्ताह में तीन दिन और कटाई के दिनों में पांच दिन काम करना पड़ता था। खेती की भूमि बेची जाती तो मूल्य का पांचवां भाग जमींदार को मिलता था। राजा को दिए जाने वाले करों की संख्या सबसे अधिक थी।

अनुमान लगाया जाता है कि करों को देने के पश्चात् फ्रांस के किसान के पास अपनी उपज का कुल 20 प्रतिशत भाग शेष रह जाता था। फ्रांस के कुछ भागों में किसान इन करों को चुकाने के पश्चात् किसी तरह निर्वाह कर लेते थे, परन्तु शेष भाग में उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। अच्छी से अच्छी फसल के उपरान्त भी वे अपना निर्वाह करने में स्वयं को असमर्थ पाते थे। कहा जाता था कि 'फ्रांस में जनता का 9/10 भाग भूख से और 1/10 भाग अधिक खाने से मरा।'[2]

यद्यपि रिशलू (Richelieu) ने सत्रहवीं सदी में नोबल्स की राजनीतिक शक्तियां समाप्त कर दी थीं, किन्तु इससे कुलीन वर्ग में साधारण वर्ग के लिए और भी घृणा उत्पन्न हो गयी। **मैरियट** ने इस विषय में लिखा है—'**1789 ई. की क्रान्ति के लिए रिशलू बहुत अधिक उत्तरदायी था।**'[3]

मध्यम वर्ग के लोग भी फ्रांस के समाज के साधारण वर्ग में शामिल थे। इस श्रेणी के अन्तर्गत प्रोफेसर, वकील, साहूकार व व्यापारी, न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट आदि थे। ये धनी भी थे और योग्य भी तथा संसार के कई भागों में घूम चुके थे, अतः पुराने राज्य (Ancient Regime) द्वारा दी गयी नीची सामाजिक स्थिति (Inferior Status) को स्वीकार करने के

1 'The Revolution of 1789 was much less a rebellion against despotism than a rebellion aganist inequality.' —*Madelin*

2 'In France nine-tenth of the population died of hunger and one-tenth of indigestion.'

3 'Richelieu was largely responsible for the revolution of 1789.' —*Marriot*

लिए तैयार न थे। **इसी वर्ग के लोग ही फ्रांस की जनता के द्वारा पुराने राज्य के विरुद्ध किए गए विद्रोह में उसके नेता वने।**

(3) आर्थिक कारण
(ECONOMIC CAUSES)

फ्रांस की दयनीय आर्थिक अवस्था फ्रांस की क्रान्ति का प्रमुख कारण थी। कहा गया है कि फ्रांस की क्रान्ति को शीघ्र लाने का उत्तरदायित्व आर्थिक कारणों पर था, और दार्शनिक विद्वानों द्वारा तैयार किया गया बारूद आर्थिक कारणों के द्वारा भड़काया गया था। **लुई चौदहवें के युद्धों ने देश की आर्थिक व्यवस्था को अत्यधिक शोचनीय बना दिया था। जिस समय उसकी मृत्यु हुई, उस समय देश की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त खराब थी।** यद्यपि उसने लुई पन्द्रहवें को आर्थिक व्यवस्था सुधारने और युद्धों से बचने का परामर्श दिया था, किन्तु लुई पन्द्रहवें ने उसके परामर्श पर विशेष ध्यान न दिया, अपितु उसने बहुत से युद्धों में भाग लिया। राजमहल और प्रेमिकाओं पर भी बहुत रुपया नष्ट किया। जब लुई सोलहवां फ्रांस की राजगद्दी पर बैठा तो उस समय फ्रांस का दिवाला निकलने वाला था, परन्तु फिर भी फ्रांस ने अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अमरीका के स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लेने से ही फ्रांस में वह आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ जो आगे चलकर फ्रांस की क्रान्ति का कारण बना।

फ्रांस की अर्थव्यवस्था शोचनीय ती। कुलीन वर्ग के लोग और पादरी राज्य के कोष में कुछ भी योगदान नहीं देते थे। अतः आश्चर्य नहीं कि करों का सारा बोझ साधारण जनता पर पड़ता था। यह अपने में ही असन्तोष उत्पन्न करने का कारण था। राष्ट्रीय ऋण भी बहुत अधिक बढ़ गया था। सरकार की आय उसके द्वारा दी जाने वाली राष्ट्रीय ऋण के ब्याज की राशि से भी कम थी, अतः सरकार के लिए बजट को सन्तुलित रखना असम्भव ही था। **एडम स्मिथ तथा आर्थर यंग ने फ्रांस को आर्थिक गलतियों का अजायबघर[3] बताया, यद्यपि तुरगोट (Turgot) जो** '*No Bankruptcy, no increase in taxation, no more borrowing*' में विश्वास रखता था, ने फ्रांस को इस संकट से निकालने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया, किन्तु वह कुलीन वर्ग का सामना न कर सका। **नेकर (Necker) ने भी आर्थिक संकट दूर करने की कोशिश की, किन्तु वह भी असफल रहा।**

इस आर्थिक संकट को दूर करने के इरादे से लुई सोलहवें ने 1787 ई. में कुलीन वर्ग की एक सभा बुलाई। उसे आशा थी कि ये लोग विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग (privileged class) के लोगों पर कर लगाने के प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे देंगे, परन्तु कुलीन वर्ग राजा पर यह कृपा करने के लिए तैयार न था। राजा ने और ऋण प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु पेरिस की संसद ने अन्य कर्ज और नए करों की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। **इसने अधिकारों का एक घोषणा-पत्र (Declaration of Rights) तैयार किया और यह दावा किया कि धन की मांगें संवैधानिक दृष्टि से केवल एस्टेट्स-जनरल (Estates General) के द्वारा ही स्वीकृत की जा सकती हैं।** सरकार ने पेरिस की संसद के विरुद्ध कार्यवाही की और उसको समाप्त कर दिया। इससे जनता में अत्यधिक आक्रोश उत्पन्न हुआ और सैनिकों ने जजों को गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया। जनता ने एस्टेट्स-जनरल के अधिवेशन की मांग की।

1 "A veritable museum of economic errors."

इन परिस्थितियों में राजा को झुकना पड़ा और उसने 175 वर्षों (1614-1789 ई.) के बाद ऐस्टेट्स-जनरल के निर्वाचनों के लिए आदेश जारी किए। **इस प्रकार फ्रांस की 1789 ई. की क्रान्ति प्रारम्भ हुई।**

(4) फ्रांस के दार्शनिक
(PHILOSOPHERS OF FRANCE)

पुनर्जागरण आन्दोलन ने फ्रांस में जागृति उत्पन्न कर दी थी। अनेक विद्वान तथा लेखक फ्रांस में जन्म ले चुके थे। इन विद्वानों का प्रभाव मध्यम वर्ग पर सर्वाधिक हुआ। यह वर्ग राजनीति में भाग लेने की तीव्र इच्छा रखता था, इस इच्छा को बढ़ाने में दार्शनिकों का विशेष हाथ था। चैट्यूब्रिआंड के अनुसार, '**भौतिक कठिनाइयों तथा बौद्धिक उफान के संयोग के कारण ही फ्रांस की क्रान्ति हुई।**'[1] इस सन्दर्भ' में **केटलवी** ने लिखा है, "लेखक फ्रांसीसी समाज के असन्तोष को उभार रहे थे। वे जनता को प्रेरणा दे रहे थे, उसके असन्तोष को उभार रहे थे .....उन्होंने फ्रांस की संस्थाओं के खोखलेपन को अनेक तरह से प्रकट कर दिया।"

माण्टेस्क्यू, वाल्टेयर और रूसो उस युग के तीन प्रमुख विद्वान थे। मॉण्टेस्क्यू एक प्रसिद्ध वकील था। वह अत्यन्त विद्वान और गम्भीर, पैनी बुद्धि वाला विद्यार्थी रहा था। उसकी लेखन-शैली अत्यन्त तीखी और प्रभावशाली थी। उनके लेख युक्तिसंगत, वैज्ञानिक और मध्यम वर्ग (moderate in tone) के होते थे। **उसने एक दार्शनिक आन्दोलन आरम्भ किया और समालोचना के व्यंग्य-वाण छोड़े, जिन्होंने फ्रांस के पुराने राज्य** (Ancient regime) **की जड़ें हिला दीं।** वह संवैधानिक शासन पद्धति और कानून की सर्वोच्च सत्ता के पक्ष में था। मॉण्टेस्क्यू ने सरकार को चलाने वाले और नियमित करने वाले कानूनों और रीति-रिवाजों का विश्लेषण किया और इस प्रकार फ्रांस की पुरानी संस्थाओं के प्रति अन्धविश्वास को समाप्त किया।

वाल्टेयर ने गद्य, पद्य, इतिहास, नाटक, आदि सभी प्रकार की रचनाओं में प्राचीन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और कुप्रथाओं पर आक्रमण किया। वाल्टेयर की दुर्लभ सर्वतोमुखी प्रतिभा, उसका तीक्ष्ण सामान्य ज्ञान, उसकी युक्तिप्रियता ने उसके देश के लोगों को अत्यधिक प्रभावित किया। उसने इस दार्शनिक आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया। उसकी आलोचना का मुख्य केन्द्र फ्रांस का चर्च था। वह उसको एक कुत्सित संस्था मानता था। उसने ईसाइयों की धार्मिक कट्टरता और धर्महठता की समालोचना की। **वह धार्मिक सहिष्णुता का पक्षपाती था।** उसका मानना था, "क्योंकि हम सभी गल्तियों और मूर्खताओं के शिकार हैं, इसलिए हमें आंपस में एक-दूसरे की मूर्खताओं के लिए एक-दूसरे को क्षमा कर देना चाहिए। अपने साहित्यिक गुणों और विशेषताओं के कारण वाल्टेयर के लेख बहुत से लोगों के द्वारा पढ़े गए और इसमें आश्चर्य नहीं कि उसने अपने युग में जनता को अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

फ्रांस के दार्शनिक विद्वानों में सबसे प्रभावपूर्ण रूसो था। उसने जनता के हाथों में **राज्य की सर्वोच्च सत्ता होने** (Sovereignty of the People) **के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।** उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति राज्य की सामान्य इच्छा (General Will) की अभिव्यक्ति था। चूंकि राज्य की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित है इसलिए कोई भी राज्य या सरकार उसे जनता से छीन नहीं सकती। जनता को सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार है।

1 "The French revolution sprang from a combination of intellectual ferment and material grievances."
—*Chateaubriand*

रूसो ने तत्कालीन सभी संस्थाओं की समालोचना की और उसकी नीवें हिला दीं। उसकी रचनाओं का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने जनता में स्वतन्त्र होने के लिए उत्साह उत्पन्न किया। **रूसो की पुस्तक '*The Social Contract*'** ने क्रान्ति की सामग्री प्रदान करके क्रान्ति की चिंगारी फूंकी। यह जैकोबिन पार्टी के लिए ईश्वर की आवाज बन गयी और शैब्जबरी उस आवाज को जनता तक पहुंचाने के लिए धर्मोपदेशक (High priest) बन गया। लॉर्ड मार्ले ने रूसो के प्रभाव का निम्न शब्दों में मूल्यांकन किया है, "**सबसे पहली बात तो यह है कि रूसो ने वे शब्द कहे जिनका प्रभाव कभी समाप्त नहीं किया जा सकता और उसने ऐसी आशा पैदा कर दी जिसको मिटाया नहीं जा सकता। पहले तो उसने अपने पवित्र और सच्चे दृढ़ विश्वास से लोगों को तत्कालीन स्थिति की बुराइयों के विरुद्ध भड़काया और मानवता के एक भारी भाग के लिए सभ्यता को तुच्छ सिद्ध कर दिया। फिर उसने अपनी तीक्ष्ण वक्तृत्व शक्ति** (fluid eloquence) **और दृढ़ विश्वास के गुणों से, जो उसने लोगों की भारी संख्या में भी पैदा कर दिए थे, फ्रांस में उस मृत्यु जैसी जड़ता और सुस्ती** (torpor) **से जो कि उस (फ्रांस) पर शीघ्रता से काबू पा रही थी, जगाने के लिए पयाप्त शक्ति पैदा कर दी।**"

इन तीन दार्शनिक विद्वानों के साथ-साथ ही अन्य भी कई लेखकों ने जनता के सोचने के ढंग पर प्रभाव डाला। **दिड्रौट** (Diderot) एनसाइक्लोपीडिया का जिसमें बहुत-से लेखकों ने अपनी रचनाएं दी थीं, सम्पादक था। वह अपने आपको अभिव्यक्त करने में अत्यन्त जोशीला, तीक्ष्ण और विचार करने में अत्यन्त कल्पनाशील था। **हैल्वेटियस** (Helvetius) ने मनुष्य के विचारों और आचरण के स्वहित की भावना के द्वारा निश्चित किए जाने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। **हालब्रैक** (Holbach) ने राजाओं के दुर्गुणों और मनुष्यों की शोचनीय स्थिति की ओर संकेत किया। वह क्रान्ति का पक्षपाती था। **उसके अनुसार, 'धार्मिक और राजनीतिक भूलों ने ब्रह्माण्ड को अश्रुओं के घर के रूप में परिणत कर लिया है।'**

मैलेट (Mallet) के अनुसार, इन आश्चर्यजनक लेखकों के द्वारा वोए गए बीज उपजाऊ भूमि पर पड़े। मेडलिन के अनुसार '**पहले से तैयार हथियारों को लोगों से चलवाने का काम दार्शनिकों ने किया।**"[1]

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त कारणों से क्रान्ति रूपी रेलगाड़ी को फ्रांस में बारूद से भरा गया और तीन घटनाओं ने उसमें चिंगारी उत्पन्न करने का कार्य किया—पहली घटना अमरीका की बस्तियों का स्वतन्त्र होना, दूसरी पेरिस की संसद द्वारा स्टेट्स जनरल की मांग, और तीसरी 1788-89 ई. के जाड़ों में फ्रांस में भयंकर अकाल का पड़ना था।

1789 ई. में क्रान्ति हो गयी और राजा को बन्दी बना लिया गया। 1793 ई. में राजा तथा रानी को मौत के घाट उतार दिया गया। राजवंशीय व्यक्तियों तथा दरबारियों की हत्या कर दी गयी तथा फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना हो गयी।

प्रश्न

1. 1789 ई. की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. क्रान्ति के समय फ्रांस की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

(पूर्वांचल, 1995)

1 **"Philosophy had caused the weapons to drop from hands already over defined."** —***Madelin***

3. फ्रांस में हुई बौद्धिक क्रान्ति का वर्णन कीजिए।
4. फ्रांस की क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालिए।
   (गोरखपुर, 1991, 93, 95; लखनऊ, 1990, 92, 94; पूर्वांचल, 1990)
5. फ्रांस की क्रान्ति में दार्शनिकों के योगदान का वर्णन कीजिए।
   (गोरखपुर, 1987, 89, 94; लखनऊ, 1993)
6. फ्रांसीसी क्रान्ति के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों का विश्लेषण कीजिए।
   (पूर्वांचल, 1992, 93)
7. फ्रांसीसी क्रान्ति के बौद्धिक एवं आर्थिक कारणों का विश्लेषण कीजिए। **(पूर्वांचल, 1994)**

3

फ्रांस की क्रान्ति का प्रारम्भ, राष्ट्रीय संवैधानिक सभा तथा व्यवस्थापिका सभा

[OUTBREAK OF THE FRENCH REVOLUTION, NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY AND THE LEGISLATIVE ASSEMBLY]

फ्रांस की क्रान्ति का प्रारम्भ होना
(OUTBREAK OF THE FRENCH REVOLUTION)

फ्रांस की आर्थिक स्थिति लुई XVI (Louis XVI) के शासनकाल तक अत्यन्त खराब हो चुकी थी। सरकार की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी तथा दिवालियेपन का संकट सरकार पर छाया हुआ था। इस समस्या का समाधान करने के लिए तुर्गो (Turgot, 1774-76), नेकर (Necker, 1776-81), कालोन (Calonne, 1783-1788) तथा ब्रीएन (Brienne, 1887) को अवसर प्रदान किया गया, किन्तु वे सभी अपने प्रयत्नों में असफल रहे। इनके असफल होने में भी राजदरबार के षड्यन्त्र ही प्रमुख थे। इन परिस्थितियों में राजा ने अध्यादेशों (Ordinances) के द्वारा शासन करना चाहा, किन्तु **पेरिस की पार्लेमां** (Parlement) ने राजा द्वारा लगाए करों को मानने से इन्कार कर दिया। इस पार्लेमां ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि केवल राज्य को ही **'स्टेट्स जनरल'** (Estates General) के द्वारा नवीन कर लगाने का अधिकार प्राप्त ता। **पार्लेमां ने निम्नलिखित अन्य मुद्दों को भी स्पष्ट कर दिया—**

(i) राजा को न्यायाधीशों को बर्खास्त करने का अधिकार नहीं है।

(ii) प्रत्येक गिरफ्तार व्यक्ति की सुनवाई उचित न्यायालय में होनी चाहिए।

(iii) प्रान्तीय पार्लेमां के अधिकार अक्षुण्ण हैं।

पार्लेमां के उपरोक्त कार्यों के परिणामस्वरूप राजा ने पार्लेमां को भंग करने का प्रयास किया, किन्तु वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। इसके साथ ही सम्पूर्ण फ्रांस में स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की मांग जोर पकड़ने लगी।

फ्रांस में स्टेट्स जनरल की स्थापना 1320 ई. में हुई थी तथा वर्ष में एक बार अथवा जरूरत होने पर अनेक बार इसका अधिवेशन बुलाया जा सकता था। स्टेट्स जनरल का मुख्य कार्य परामर्श देना था। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्र की समस्याओं व उनके निदान को भी इस सभा में प्रस्तुत करता था। कालान्तर में, निरंकुशवादी तत्वों के बढ़ने से स्टेट्स जनरल का महत्व शनैः-शनैः कम होने लगा। इसका अन्तिम अधिवेशन 1614 ई. में हुआ। अब लगभग 175 वर्षों के उपरान्त पुनः इसका अधिवेशन बुलाए जाने की मांग जोर पकड़ने लगी थी क्योंकि फ्रांस की जनता व पार्लेमां का विचार था कि फ्रांस की शोचनीय आर्थिक स्थिति का सामना करने के लिए इसका अधिवेशन बुलाना आवश्यक था।

राजा स्टेट्स जनरल के अधिवेशन को बुलाने के लिए तैयार न था, किन्तु परिस्थितियों से विवश होकर उसे इसको बुलाने की घोषणा करनी पड़ी। यह **निःसन्देह एक क्रान्तिकारी घटना थी।** स्टेट्स जनरल में तीन सदन थे। पहला सदन **कुलीन वर्ग**, दूसरा **पादरी वर्ग** व तीसरा **जनसाधारण** के लिए था। इन तीनों ही सदनों में सदस्यों की संख्या समान थी। साधारणतया यह 300 के लगभग होती थी। इनमें से पहले व दूसरे वर्ग के हित एकसमान होने के कारण वे मिलकर जनसाधारण वर्ग की अवहेलना करते थे। अतः जनसाधारण का विचार था कि उन्हें वर्तमान संख्या का दुगुना प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इस बात को नेकर के परामर्श पर राजा ने स्वीकार कर लिया, किन्तु यह स्पष्ट नहीं हो सका कि तीनों वर्गों के प्रतिनिधि सम्मिलित रूप से एक ही स्थान पर बैठकर निर्णय करेंगे अथवा भिन्न-भिन्न भवनों में बैठेंगे। **जनसाधारण वर्ग वाला सदन 90 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करता था।** यदि दोनों सदनों की बैठक एक साथ न होती तो मतदान में एक व्यक्ति का मत न मानकर एक सदन का मत माना जाता तो तीसरे सदन में सदस्यों की संख्या को दुगुना करने से कोई लाभ नहीं था।

स्टेट्स जनरल के सदस्यों का निर्वाचन
(ELECTION OF THE MEMBERS OF ESTATE GENERAL)

1789 ई.. में स्टेट्स जनरल के सदस्यों का चुनाव किया गया। इस अधिवेशन के लिए 285 कुलीन वर्ग, 308 पादरी वर्ग, व 621 जनसाधारण वर्ग के सदस्यों का चुनाव किया जाना था। प्रत्येक व्यक्ति जो 25 **वर्ष से अधिक आयु का हो तथा कर देता हो अथवा किसी विशिष्ट कार्य में दक्ष हो, वोट देने का अधिकारी था।** पेरिस में अनेक प्रतिबन्ध लगाकर गरीबों को निर्वाचन से वंचित रखा गया। उल्लेखनीय है कि इस निर्वाचन में जो लोग चुने गए वे राजनीति के अच्छे ज्ञाता थे। **यह फ्रांस में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का प्रमाण था।** स्टेट्स जनरल के निर्वाचन में मिराब्यू ने नेकर से निवेदन किया था कि उसको कुलीन वर्ग का प्रतिनिधि स्वीकार कर लिया जाए, परन्तु नेकर सहमत न हुआ। **फलस्वरूप मिराब्यू** (Mirabeau) **तृतीय स्टेट्स (जनसाधारण वर्ग) की ओर से चुनाव के लिए उम्मीदवार बना तथा एक्स** (Aix) **एवं मार्साई** (Marseiss) **नामक दो नगरों से निर्वाचित हुआ।**[1] सभा में निर्वाचन पुरानी पद्धति के अनुसार ही किया गया। तृतीय श्रेणी में अधिकांश सदस्य शिक्षित एवं मध्यम वर्ग के थे। **कुछ प्रमुख नेता भी इसी वर्ग में थे**—उदाहरणार्थ, मिराब्यू (Mirabeau), सिए (Sieyes),

1 **A mad dog ! That may be ! but elect me and despotism and privilege will die of my bite.** यह ऐतिहासिक वाक्य मिराब्यू ने अपने निर्वाचन के सम्बन्ध में कहा था।

राब्सपियर (Robespierre), जोसेफ मुनिए (Joseph Mounier), विक्टर मालों (Victor Malouet), इत्यादि। इस समय इस वर्ग के सदस्यों की संख्या पहले से दुगुनी किए जाने के कारण इसके उत्साह में भी अपार वृद्धि हुई थी।

स्टेट्स जनरल का अधिवेशन प्रारम्भ
(BEGINNING OF THE SESSION OF ESTATES GENERAL)

5 मई, 1789 ई. को धूमधाम से स्टेट्स जनरल का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ।[1] लुई XVI का विचार था कि इस धूमधाम में ही स्टेट्स जनरल के सदस्य खो जाएंगे, किन्तु ऐसा न हुआ। समस्याएं प्रारम्भ से ही सिर उठाने लगीं। फ्रांस की जनता स्टेट्स जनरल के अधिवेशन से बहुत अधिक आशाएं लगाए थी।

इस अधिवेशन के समय सभी प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्र की समस्याओं का मसविदा साथ लाए थे जिन्हें कायिहा या कॉए (Cahiers) कहा जाता था। इस सभा में ऐसे शिकायती-पत्रों (Cahiers) की संख्या लगभग साठ हजार थी। शिकायती पत्रों की सूची में अधिकांश शिकायतें एकसमान थीं, परन्तु कछु मांगें अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं। उदाहरणार्थ, राजा व नागरिकों के अधिकारों की घोषणा की जाए, प्रेस की स्वतन्त्रता स्थापित हो, कर समान रूप से लगाए जाएं, स्टेट्स जनरल के अधिवेशन नियमित रूप से बुलाए जाएं, सामन्ती करों को समाप्त किया जाए, बेगार प्रथा को समाप्त किया जाए, सरकार की शक्तियां कम की जाएं। **इन्हें पुरातन व्यवस्था की अन्तिम इच्छा और वसीयत कहा गया है। इसमें निरंकुशता की सामान्यतः आलोचना और राष्ट्रीय संविधान की उपेक्षा की गयी थी।**

स्टेट्स जनरल का अधिवेशन राजा लुई XVI के भाषण से प्रारम्भ हुआ। कुलीन एवं पादरी वर्ग चाहते थे कि **वोट भवन के अनुसार** (Vote by order) जबकि जनसाधारण के प्रतिनिधियों की मांग थी कि प्रत्येक **प्रतिनिधि के अनुसार वोट का अधिकार** (Vote by head) होना चाहिए। जनसाधारण की मांग को मानना अन्य वर्गों के लिए कठिन था क्योंकि इससे कुलीन एवं पादरियों के विशेषाधिकार की समाप्ति हो जाती, अतः वे इसके लिए तैयार न हुए। इस अधिवेशन में कुलीन एवं पादरी वर्ग को अलग-अलग भवन दिए गए तथा जनसाधारण वर्ग को स्टेट्स जनरल का पुराना भवन दिया गया। 12 जून, 1789 ई. को सिए (Sieyes) ने कुलीन एवं पादरी वर्ग से जनसाधारण के वर्ग में सम्मिलित होने के लिए कहा, किन्तु दोनों ही वर्ग इसके लिए सहमत न हुए। इसी समय छोटे पादरी, जैसे (Jallet) के नेतृत्व में, जनसाधारण वर्ग में सम्मिलित हो गए। मेडलिन ने इस घटना के विषय में लिखा है : **"यह क्रान्ति का प्रथम चरण था।"**[2] जून 1789 को सिए के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जनसाधारण वर्ग ने एक प्रस्ताव पारित करके स्वयं को **राष्ट्रीय सभा** (National Assembly) घोषित कर दिया जो कि फ्रांस की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था बनी। इसी समय एक अन्य प्रस्ताव भी पारित किया गया कि राष्ट्रीय सभा की अनुमति के बिना भविष्य में कोई भी कर नहीं लगाया जाएगा। 17 जून, 1789 ई. को पादरी वर्ग द्वारा जनसाधारण वर्ग में सम्मिलित होने का निर्णय लिया गया। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था क्योंकि इससे जनसाधारण वर्ग की स्थिति

1 1789 ई. में हुई क्रान्ति किस तिथि को प्रारम्भ हुई, इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वान यह तिथि 5 मई, 1789 ई. को मानते हैं जब स्टेट्स जनरल का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। अन्य विद्वान यह तिथि 14 जुलाई, 1789 ई. मानते हैं जब बास्तील का पतन हुआ था।

2 "This was the first step of the Revolution."
—*Medelin*

बहुत मजबूत हो गयी। जनसाधारण वर्ग अब राष्ट्र हित में राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने को तैयार थे। राजा के मित्रों ने इस स्थिति में राजा को परामर्श दिया कि वह सभा भवन बन्द करा दे। **अतः मरम्मत कराने के बहाने जिस सभा में अधिवेशन होना था उसे 20 जून, 1789 ई. को बन्द कर दिया गया।**

टेनिस कोर्ट की शपथ
(OATH OF TENNIS COURT)

राजा लुई XVI ने जनसाधारण वर्ग के सभा भवन को 20 जून को बन्द करा दिया था तथा जनसाधारण वर्ग से कहा गया कि वे 23 जून, 1789 ई. को होने वाले राजकीय समारोह तक अपना अधिवेशन स्थगित रखें, परन्तु जनसाधारण वर्ग के सदस्य 20 जून को ही सभा भवन पहुंच गए, किन्तु उन्होंने उसे बन्द पाया। सभा भवन की पहरेदारी सैनिक कर रहे थे। अतः वर्षा से बचने के लिए जनसाधारण वर्ग के 600 सदस्यों ने एक भवन में शरण ली जो टेनिस खेलने के काम आता था। वहां पर इन सदस्यों ने बेली (Bailly) के नेतृत्व में शपथ ली जिसे **'टेनिस कोर्ट की शपथ'** कहा जाता है। इस शपथ में कहा गया था, **''जब तक वे फ्रांस के लिए नवीन संविधान की रचना नहीं कर लेते वे स्वयं को भंग नहीं होने देंगे।''**[1] वास्तव में, यह एक क्रान्तिकारी घटना थी जिसने राजतन्त्र की जड़ों को हिला दिया। हेज ने इस घटना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, **''टेनिस कोर्ट की शपथ फ्रांसीसी क्रान्ति का वास्तविक प्रारम्भ था। राजा की शासन-आज्ञा के विरुद्ध एवं बिना स्वीकृति के राष्ट्र के प्रतिनिधियों की साधारण घोषणा ने प्राचीन सामन्तवादी स्टेट्स जनरल को राष्ट्रीय सभा में रूपान्तरित किया तथा इसे फ्रांस में वैधानिक शासन स्थापित करने का उत्तरदायित्व सौंपा। टेनिस कोर्ट की शपथ, दैविक अधिकारों पर आधाग्नि निरंकुश राजतन्त्र की समाप्ति एवं जन इच्छा पर आधारित सीमित राजतन्त्र के प्रारम्भ होने की घोषणा थी।''**[2]

संयुक्त अधिवेशन
(JOINT SESSION)

टेनिस कोर्ट की शपथ से चिन्तित होकर लुई XVI ने 23 जून को तीनों वर्गों का संयुक्त अधिवेशन आमिन्त्रत किया। इस अधिवेशन में राजा ने घोषणा की कि जनसाधारण वर्ग ने जो कार्य किए हैं वे अवैध तथा असंवैधानिक हैं। तत्पश्चात् उसने घोषणा की कि तीनों वर्गों के प्रतिनिधि अपने-अपने सभागारों में जाकर विचार-विमर्श करें। कुलीन एवं पादरी वर्ग तो उठकर चलाया गया, किन्तु जनसाधारण वर्ग बैठा रहा। जब राजा ने उत्सवों के अध्यक्ष ड्यू ब्रे (Dreux Breze) के द्वारा उन्हें वहां से जाने के लिए कहलवाया तो मिराब्यू

1 "They would never allow themselves to be dissolved untill the constitution had been established and set on fine foundation."

2 "The Oath of Tennis Court was the true beginning of the French Revolution. Without royal sanction in fact, against the express commands of the king the ancient Feudal Estate-General had been transformed by simple proclamation of the nation's representative into a National Assembly charged with the duty of establishing constitutional government in France. The oath of the Tennis Court was the declaration of the end of absolute divine right of monarchy and of the beginning of a limited monarchy based on the popular will."

—Hayes, *A Political and Social History of Modern Europe*, p. 17.

(Mirabeau) ने कहा, "**महानुभावो ! आपने प्रस्तावों को सुना, परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने की आज्ञा कौन देगा? ये आज्ञाएं जनता के प्रतिनिधि देंगे।**" उसने पुनः कहा, "**यहां हम राष्ट्र की इच्छा से एकत्र हुए हैं केवल ताकत ही हमें तितर-वितर कर सकती है।**"[1]

अन्ततः विवश होकर लुई XVI को जनसाधारण वर्ग की बात माननी पड़ी। 27 जून, 1789 ई. को तीनों सदनों को एक बनाने की आज्ञा की घोषणा कर दी गयी। राष्ट्रीय सभा (National Assembly) को भी मान्यता प्रदान कर दी गयी। **इस प्रकार शक्ति राजा के हाथों से निकल कर जनता के हाथों में आ गयी।** इस घटना के विषय में केटल्बी ने लिखा है, "**यह जनता की प्रथम विजय थी। राजा विवश किया जा चुका था और राजसत्ता राजा के हाथों से निकलकर राष्ट्रीय सभा के हाथों से चली गयी थी।**"[2]

जनता द्वारा विद्रोह
(REVOLT BY THE PEOPLE)

लुई XVI ने विवशतावश यद्यपि राष्ट्रीय सभा को मान्यता प्रदान कर दी थी, किन्तु मन में वह इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। अतः उसने शक्ति द्वारा क्रान्तिकारी भावनाओं को कुचलने का प्रयास किया। लुई XVI ने जनसाधारण को भयभीत करने के उद्देश्य से विदेशी सैनिकों को पेरिस में व वार्साय में तैनात कर दिया। इससे पेरिस में स्थिति अत्यन्त तनावपूर्ण हो गयी। पेरिस में स्थिति पहले से ही कुछ तनावपूर्ण थी। स्टेट्स जनरल का अधिवेशन पेरिस में न बुलाए जाने के कारण पेरिस की जनता नाखुश थी। कारखानों के बन्द हो जाने के कारण मजदूर बेकार हो गए थे। 27 जून, 1789 ई. को इन बेरोजगारों ने कारखाने के मालिकों व व्यापारियों पर हमला कर दिया। इस घटना का कठोरतापूर्वक दमन किया गया, किन्तु दंगे बढ़ते ही चले गए क्योंकि रोटी का दाम भी बहुत अधिक बढ़ गया था। **इसी समय लुई XVI ने एक अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य किया। कुछ लोगों के वहकावे में आकर लुई XVI ने 11 जुलाई, 1789 ई. को वित्त मन्त्री पद पर नेकर के स्थान पर बारो द ब्रेतोल** (Baron de Bretiul) **को नियुक्त कर दिया।**[3] ऐसा करना लुई XVI की भारी भूल थी, क्योंकि नेकर के हटाए जाने से जनता का यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि राजा कठोरता का रास्ता अपनाने जा रहा है तथा उन लोगों को रास्ते से हटा रहा है जो जनता के समर्थक हैं। जनता ने लाफायते (Lafayette) के नेतृत्व में **नागरिक सुरक्षा दल** (Civil Guards) तथा बाद में **राष्ट्रीय सुरक्षा दल** (National Guards) की स्थापना की।

राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के सदस्यों ने इस स्थिति में मिराब्यू के द्वारा लुई XVI को सन्देश भिजवाया कि वह सैनिकों को वापस बुला ले, किन्तु राजा ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इसी समय **कामील देमूले** (Camille Desmoulin) जो एक पत्रकार था, ने जनता को शस्त्र इत्यादि से सुसज्जित रहने का आह्वान किया। देमूले ने कहाः "**नेकर को पदच्युत किया गया व राजा शीघ्र ही हमारे ऊपर आक्रमण करने की योजना बना**

1 "Go, tell your master that we are here by the will of the people and that we shall not leave except at the point of bayonet." —*Mirabeau*

2 Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 59.

3 नेकर को न केवल मन्त्री पद से हटाया गया था अपितु उसे फ्रांस से बाहर चले जाने का आदेश भी दिया गया था।

रहा है, अतः हमको अपनी रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने चाहिए। यदि हम शीघ्र ही तैयार नहीं होंगे, तो जर्मन व स्विस सेनाएं[1] हमारा विनाश कर देंगी।'' देमूले के भाषण से जनता अत्यधिक प्रभावित हुई तथा लोग शस्त्र लेकर एकत्रित होने लगे। शीघ्र ही लगभग दस हजार लोग एकत्र हो गए। लुई XVI के फ्रांसीसी सुरक्षा सैनिक व अंगरक्षक भी जनता के साथ हो गए। अतः स्थिति विस्फोटक हो गयी।

बास्तील का पतन
(FALL OF BASTILLE)

पेरिस से कुछ ही दूर छोटा-सा किला था जिसे बास्तील कहा जाता था। इस किले में प्रायः राजनीतिक कैदियों को रखा जाता था। इस प्राचीन दुर्ग को प्रतिक्रियावादियों का गढ़ माना जाता था। लियो गर्शोय ने इस दुर्ग के विषय में लिखा है : **''बास्तील निरंकुशता और निर्दयता का घृणित चिह्न था।''[2]** इस किले का गवर्नर **द लाने** (De Lawney) था। इस दुर्ग में शस्त्रों का विशाल भण्डार भी था। 13 जुलाई, 1789 ई. को यह समाचार फैला कि जनता की भावनाओं को कुचलने के लिए और अधिक सैनिकों को पेरिस भेजा जा रहा था, अतः इस दुर्ग से हथियार प्राप्त करने के उद्देश्य से 14 जुलाई, 1789 ई. को जनता ने बास्तील के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। दोनों पक्षों में पांच घण्टे तक संघर्ष होता रहा जिसमें जनता के 200 व्यक्ति हताहत हुए। जनता ने अन्ततः विजय प्राप्त की व कैदियों को मुक्त कर दिया गया। गवर्नर द लाने की हत्या कर दी गयी। जनता ने गवर्नर व उसके सिपाहियों के सिर काट कर भालों पर टांग लिए। किले के समस्त हथियारों पर जनता का अधिकार हो गया। बास्तील के किले को जनता ने ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार बास्तील के किले का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

लुई XVI को जब बास्तील के पतन की सूचना मिली तो उसने पूछा, **'क्या यह केवल विद्रोह है।'** इस पर मन्त्री ने समझाया कि **'यह विद्रोह नहीं क्रान्ति है।'** लुई XVI 17 जुलाई, 1789 ई. को स्वयं पेरिस पहुंचा तथा **होटल डी विले** (Hotel de Ville) में उसने बेली को पेरिस का मेयर व लाफायते को राष्ट्रीय सुरक्षा दल का सेनापति स्वीकार कर लिया।

बास्तील के पतन का महत्व (Significance of the fall of Bastille)

बास्तील का पतन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। इस घटना का महत्व इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि फ्रांस का राष्ट्रीय दिवस इसी घटना के आधार पर 14 जुलाई को ही मनाया जाता है। निःसन्देह यह जनता की निरंकुशता पर विजय थी। दूसरे शब्दों में इसे प्रजातन्त्र की राजतन्त्र पर विजय भी कहा जा सकता है। यद्यपि प्रत्यक्षतः बास्तील का पतन कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं थी, जिसमें जनता ने एक किले को ध्वस्त कर दिया था, किन्तु यह घटना परोक्ष रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इस घटना ने यूरोप के निरंकुश शासकों के सिंहासनों को हिला दिया। इस घटना के विषय में जानकर सम्पूर्ण विश्व में प्रजातन्त्र के समर्थकों द्वारा हर्ष प्रकट किया गया। राजतन्त्रवाद के समर्थकों को यह स्पष्ट हो गया कि शस्त्रों

---

1 लुई XVI ने पेरिस व वार्साय में जो सैनिक नियुक्त किए थे वे विदेशी थे तथा अधिकांशतया जर्मन अथवा स्विस थे।

2 **"Bastille was the hateful symbol of despotism and oppression."**
—Leo Gershoy, *French Revolution and Napoleon*, p. 117.

से अब क्रान्ति अथवा जनता की भावनाओं को नहीं दबाया जा सकता। इसी कारण काउण्ट आर्त्वा (Count of Artois) फ्रांस से पलायन कर गया। बास्तील के पतन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए तत्कालीन राजदूत डॉरसेट ने लिखा, **"इसी क्षण से हम फ्रांस को एक स्वतन्त्र देश व राजा को सीमित शक्तियों वाला नरेश मान सकते हैं। लोग नेतृत्व कर रहे थे तथा वह उनका अनुकरण कर रहा था। पहले उन्होंने् राष्ट्रीय सभा के माध्यम से नेतृत्व किया और बाद में शक्ति तथा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से।"**[1]

बास्तील के पतन के तात्कालिक व दूरगामी दोनों परिणाम हुए। बास्तील की घटना को फ्रांस में अनेक स्थानों पर दोहराया गया। सामन्तों की हवेलियों पर आक्रमण किए गए व उन्हें लूटा गया। पेरिस अब क्रान्ति का केन्द्र बन गया। इस घटना के महत्व के विषय में प्रो. गुडविन ने लिखा है, **"शान्तिकाल में बास्तील के पतन जैसी बहुमुखी एवं दूरगामी परिणामों वाली अन्य कोई अकेली घटना नहीं हुई। दुर्ग का पतन केवल फ्रांस में ही नहीं अपितू पूरे विश्व में स्वतन्त्रता की उत्पत्ति का परिचायक माना गया।"**[2] तत्कालीन स्थिति के विषय में प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने लिखा, **"फ्रांस में जीवन इस समय इतना सुखकर है और इस समय युवा होना मानो स्वर्ग का ही सुख भोगना है।"**[3] एडमण्ड बर्क (Edmund Burke) ने भी कहा, **"इस घटना ने नैसर्गिक सुख के द्वार खोल दिए हैं।"** इस प्रकार स्पष्ट है कि बास्तील के पतन की घटना न केवल फ्रांस अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थी।

सामन्ती व्यवस्था के प्रति विद्रोह
(REVOLT AGAINST THE FEUDALISM)

14 जुलाई को हुए बास्तील के पतन के उपरान्त सम्पूर्ण फ्रांस में स्थान-स्थान पर विद्रोह एवं हत्याकाण्ड हुए। जनता ने सामन्तों व जमींदारों के मकानों को आग लगा दी तथा कर देने से इन्कार कर दिया। अनेक सामन्तों व जमींदारों की हत्या कर दी गयी। इस घटना से भयभीत होकर सामन्त व जमींदार अपने-अपने स्थानों से भागने लगे। इस स्थिति के विषय में बेली (Bailly) ने कहा, **"प्रत्येक व्यक्ति आदेश देना चाहता है, परन्तु कोई भी आज्ञापालन करना नहीं जानता।"**[4] फ्रांस में व्याप्त अराजकता को देखकर लाफायत ने त्यागपत्र दे दिया, किन्तु राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के अन्य सदस्यों के समझाने पर उसने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया। जनता द्वारा स्थान-स्थान पर विद्रोह किए जाने का लाभ यह हुआ कि फ्रांस में सामन्ती प्रथा (Feudalism) की समाप्ति हो गयी।

स्थिति में सुधार करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सभा में लाफायत के ही एक साथी नोई (Viscount of Noailles) ने एक प्रस्ताव रखा। इसमें प्रत्येक वर्ग पर समान कर लगाए जाने का प्रस्ताव किया गया था। राष्ट्रीय सभा का यह अधिवेशन 4 अगस्त, 1789 ई. को

1 "France was now a free country and its king a constitutional monarch.... The people led and he followed, they led at first through the organ of Assembly and later through more brutal and direct intervention."

2 "No other single event in the revolution has so many far reaching results as the fal of Bastille. The fall of the fortress was widely acclaimed as heralding a new birth of liberty, not only in France but throughout the world."

—*Goodwin The French Revolution*, p. 62.

3 "Bliss was it in that dawn to be alive, but to be Young was very heaven."

4 Everybody know how to command nobody knew how to obey." —*Bailly*

रात्रि दो बजे तक चला जिसमें सामन्तों एवं पादरियों ने अपने-अपने विशेषाधिकारों को त्यागने की घोषणा की।[1] इस प्रकार फ्रांस में सामन्त प्रथा का पूर्णरूप से अन्त हो गया। इस उपलब्धि के विषय में एक सदस्य ने कहा, "**हमने कई महीनों का कार्य केवल 10 घण्टों में समाप्त कर दिया।**"[2]

राष्ट्रीय सभा में यद्यपि उपलब्धि प्राप्त की जा चुकी थी, किन्तु इस बात की कोई सम्भावना नहीं थी कि सामन्त वर्ग सदैव इन प्रस्तावों को मानता ही रहेगा। दूसरी ओर रानी एवं कुछ अन्य दरबारी राजा को निरन्तर इस बात के लिए प्रेरित कर रहे थे कि शक्ति के द्वारा राष्ट्रीय सभा का दमन कर देना चाहिए।

पेरिस की स्त्रियों का वार्साय अभियान
(WOMEN'S CAMPAIGN OF VERSAILLES)

5 अक्टूबर, 1789 ई. को 8-10 हजार स्त्रियों ने पेरिस से वार्साय की ओर प्रस्थान किया। ये स्त्रियां '**हमें रोटी दो**' (**We want bread**) के नारे लगा रही थीं। स्त्रियों द्वारा इस प्रकार वार्साय की ओर प्रस्थान करने के कारण निम्नलिखित थे :

(i) पेरिस में अन्न की अत्यधिक कमी थी।
(ii) 1 अक्टूबर को वार्साय में एक शानदार दावत दी गयी थी।
(iii) इससे पेरिस में अत्यधिक असन्तोष उत्पन्न हुआ। पेरिस में और सेना भेजी जाने वाली थी। इससे अन्न की कमी और बढ़ जाती।
(iv) राजा व दरबारियों ने क्रान्ति के तिरंगे झण्डे को पांवों तले कुचला।
(v) कुछ सैनिकों ने घोषणा की कि वे राजा के साथ हैं।
(vi) राजा लुई XVI मानव अधिकारों की घोषणा को स्वीकृति प्रदान करने में विलम्ब कर रहा था।
(vii) जनता का विश्वास था कि पेरिस में सेनाएं भेजकर राजा क्रान्ति का दमन करना चाहता था।

उपरोक्त कारणोंवश पेरिस की स्त्रियों ने वार्साय की ओर प्रस्थान किया। स्त्रियों के इस समूह के साथ अनेक क्रान्तिकारी भी मिल गए। 6 अक्टूबर की सुबह इन लोगों ने महल के फाटक तोड़ डाले व रक्षकों की हत्या करके महल पर अधिकार कर लिया। राजा एवं उसके परिवार को पेरिस चलने के लिए विवश किया गया। लौटते समय जनसमूह अत्यन्त प्रसन्न था। उन्होंने कला, "**रोटी वाला, रोटी वाली और उनका पुत्र हमारे साथ है।**"[3] राजा के वार्साय स्थित महल पर किसी व्यंगकार ने '**किराए के लिए खाली है**'[4] का नोटिस लगा दिया। इस प्रकार जनसमूह राजा व उसके परिवार को पेरिस ले आया व उन्हें ट्यूलरिज (Tuileries) के पुराने महल में रखा गया। इस प्रकार राजा जनसमूह का बन्दी बनकर रह गया था।

---

1 4 अगस्त को पारित प्रस्तावों में प्रमुख थे—(i) सामन्तों के शिकार खेलने, मछली पकड़ने व न्यायिक अधिकारों की समाप्ति। (ii) चर्च को दिया जाने वाला टिथे (Tithes) कर समाप्त कर दिया गया। (iii) प्रत्येक पद योग्यता के आधार पर आबण्टित होगा। (iv) पादरी व सामन्त भी कर देंगे। (v) फ्रांस में कोई वर्ग नहीं होगा, सब केवल फ्रांसीसी होंगे।

2 **"In ten hours, we have done what might have gone on for months."**

3 **"We have the baker, the wife and the little cook boy. Now we shall have bread."**

4 **'Versailles—'To Let.'**

लुई XVI द्वारा भागने का प्रयास
(LOUIS XVI TRIES TO FLEE)

20 जून, 1791 ई. को राजा ने पेरिस से भागने का प्रयत्न किया। लुई XVI अपनी पत्नी व पुत्र के साथ वेश बदलकर मेज (Meuse) की ओर चल दिया, किन्तु वारेन (Vernnes) नामक स्थान पर उसे पुनः बन्दी बना लिया गया व 25 जून को पेरिस पहुंचा दिया गया। राजा द्वारा इस प्रकार भागने का प्रयास करने से उसकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। जनसमूह ने उसे गद्दार कहा तथा सिंहासन से हटाने की मांग की। जुलाई 1791 ई. में राष्ट्रीय सभा ने यह निर्णय लिया कि राजा के स्थान पर उसके सहायकों को दण्डित किया जाए। यह निर्णय कार्यान्वित हो पाता उससे पूर्व ही राजा के सहायक फ्रांस छोड़कर भाग गए।

राष्ट्रीय सभा अथवा राष्ट्रीय संवैधानिक सभा
(NATIONAL ASSEMBLY OR NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY)

जिस समय.फ्रांस में क्रान्ति अपनी चरम सीमा पर थी उस समय देश में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय संवैधानिक सभा ने महत्वपूर्ण कार्य किए। टेनिस कोर्ट की शपथ के अनुसार उसे एक संविधान बनाना था। **इस कार्य में बहुत कठिनाइयां थीं क्योंकि उसे राजतन्त्र के उपर प्रजातन्त्र स्थापित करना था।** कठोर परिश्रम एवं अनेक कठिनाइयों के उपरान्त इस सभा द्वारा एक संविधान का निर्माण किया गया तथा शासन में काफी सुधार हुए। यह सब कार्य राष्ट्रीय संवैधानिक सभा ने केवल दो वर्ष की अवधि (अक्टूबर 1789 से सितम्बर 1791) में सम्पन्न कर लिए। प्रारम्भिक वाद-विवाद के आधार पर राष्ट्रीय सभा में **दक्षिणमार्गी** एवं **वाममार्गी** दो वर्गों का उदय हुआ। दक्षिणमार्गी वर्ग के नेता एबी मारी (Abbe Maury), कैजलीज (Czales), अबी द माण्टेस्क्यू (Abbe De Montesquion), मालुए (Malouet), मिराब्यू (Mirabeau) थे तथा वाममार्गी नेता—लैली तालेन्दल (Lally Tollendal), तालीरॉ (Talleyrand), क्लेमां तान (Clemnot Tonn) एवं राब्सपियर (Robespierre) प्रमुख थे।

संवैधानिक सभा के प्रारम्भिक काल में मिराब्यू द्वारा राजा एवं असेम्बली में समझौता कराने के प्रयत्न किए गए, किन्तु इन दोनों को मिराब्यू पर विश्वास नहीं था। उनका ख्याल था कि मिराब्यू यह कार्य राजा का मन्त्री बनने के लिए कर रहा है। इसलिए असेम्बली ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि उसका कोई भी सदस्य राजा का मन्त्री नहीं हो सकता, इस प्रस्ताव से मिराब्यू बहुत नाराज हुआ और स्वयं मन्त्रिमण्डल से बाहर हो गया। मिराब्यू के साथ-साथ लाफायत (Lafayette) तथा तालीरां (Talleyrand) भी सदैव के लिए मन्त्रिमण्डल से बाहर हो गए।

राष्ट्रीय संवैधानिक सभा के कार्य
(WORKS OF NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY)

इस सभा द्वारा किए गए कार्यों का विवरण इस प्रकार है—

(1) **सामन्तवादिता का अन्त** (End of Feudalism)—4 अगस्त, 1789 को होने वाले राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन में सामन्तों तथा पादरियों ने अपने विशेषाधिकारों को त्याग दिया। गुडविन (Goodvi··) का मानना है कि वास्तव में सामन्तों और पादरियों ने स्वेच्छा से अपने विशेषाधिकारों का त्याग नहीं किया था बल्कि भय के कारण उन्होंने ऐसा किया था। **4 अगस्त की रात्रि को अग्र प्रस्ताव पास किए गए—**

(i) योग्यता के आधार पर सब मनुष्यों को राज्य के समस्त पद प्रदान किए जाएंगे।

(ii) चर्च का दशांश (Tithes) नामक कर समाप्त कर दिया गया तथा सामन्तों और पादरियों पर भी कर लगाए गए।

(iii) सभी व्यक्ति एकमात्र फ्रांसीसी समझे जाएंगे, कोई भी व्यक्ति समाज के किसी वर्ग के नाम से सम्बोधित नहीं होगा।

(iv) सामन्तों के विशेषाधिकार, शिकार करने, मछली पकड़ने तथा न्याय करने के अधिकार समाप्त कर दिए गए। इसके साथ ही नगरपालिकाओं, कारपोरेशन तथा प्रान्तों आदि के विशेष अधिकारी भी समाप्त कर दिए गए।

इस प्रकार 4 अगस्त को बने इस कानून से सामन्त प्रथा का अन्त हो गया यद्यपि बहुत से प्रतिनिधियों द्वारा विशेषाधिकारों का समर्थन करने से इस प्रथा के अवशेष बने रहे।

(2) **मानव अधिकारों की घोषणा** (Declaration of Human Rights)—27 अगस्त, 1789 ई. को राष्ट्रीय संवैधानिक सभा द्वारा रूसो के समझौते के आधार पर मनुष्य के अधिकारों की घोषणा की गयी जिसके अन्तर्गत प्रमुख निम्न बातें थीं—

(i) प्रत्येक मनुष्य को समानता का अधिकार प्राप्त है।

(ii) मुआवजा दिए बिना किसी की सम्पत्ति का अपहरण नहीं किया जाएगा।

(iii) सभी मनुष्य अपनी योग्यता के अनुरूप सरकारी पद प्राप्त कर सकते हैं। सरकारी कर्मचारी समाज सेवा करना अपना प्रमुख कर्तव्य समझें।

(iv) धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ ही साथ सबको लेखन, भाषण तथा प्रकाशन की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी।

(v) सबके लिए समान न्याय होगा। किसी को गैर-कानूनी ढंग से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, कानून को सामान्य इच्छा (General Will) का प्रकाशन कहा गया था।[1]

(vi) राज-सत्ता (sovereignty) राज्य तथा पार्लियामेण्ट में न मानकर राष्ट्र में मानी गयी थी।

घोषणा-पत्र का मूल्यांकन (Evaluation of the Declaration)—बहुत महत्वपूर्ण होते हुए भी इस घोषणा-पत्र में कुछ त्रुटियां रह गयी थीं जो इस प्रकार हैं—

(1) सर्वप्रथम त्रुटि यह थी कि अधिकारों की घोषणा के साथ कर्तव्य की घोषणा का कहीं उल्लेख नहीं था।

(2) व्यापार तथा व्यवसाय की स्वतन्त्रता का कोई उल्लेख नहीं था।

(3) सार्वजनिक शिक्षा के बारे में कुछ नहीं कहा गया था।

(4) नागरिकों को सम्पत्ति रखने का अधिकार सीमित मात्रा में दिया गया था। राज्य द्वारा किसी भी बहाने सम्पत्ति का अपहरण किया जा सकता था।

लेकिन इन अनेक त्रुटियों के होते हुए भी यह घोषणा-पत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण था।[2] फ्रांस के लिए तो इसका वही महत्व है, जो **मेग्ना कार्टा** (Magna Carta) तथा **बिल ऑफ राइट्स** (Bill of Rights) का इंग्लैण्ड के लिए और **स्वतन्त्रता की घोषणा** का अमरीका के

1 "Law is the expression of the general will."

2 "The Declaration....became the catechism of the revolution in France and translated in to other languages it soon carried the same message to all of Europe."
—Palmer, *A History of Modern World*, p. 433.

लिए है। हेजन का मत है कि "**घोषणा-पत्र का समस्त संसार पर प्रभाव पड़ा है।**"[1] लियो गर्शोय ने भी इसकी प्रशंसा की है।[2] एक्टन का कथन भी उल्लेखनीय है।[3]

(3) **चर्च की जागीरों एवं मठों का अन्त** (Property of Church and Monastries Abolished)—इस समय राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी; फ्रांस की समस्त भूमि का 1/3 भाग चर्च के अधीन था। अत: तालीरां (Talleyrand) द्वारा 10 अक्टूबर, 1789 ई. को चर्च की जागीरें बेचने का प्रस्ताव रखा गया। मुआवजे के रूप में पादरियों को उनकी आय का 2/3 भाग नियत करना निश्चित किया गया। काफी विवाद के पश्चात् यह प्रस्ताव पास हो गया। इस प्रस्ताव के अनुसार चर्च की सम्पत्ति पर सरकार का अधिकार हो गया, बदले में पादरियों एवं निर्धनों को दान देने का उत्तरदायित्व सरकार का हो गया। फ्रांस में भिक्षुओं की संख्या बहुत अधिक होने से अनेक मठ थे। 6 फरवरी, 1791 ई. को संविधान सभा ने घोषणा की कि भविष्य में कोई भी भिक्षु, भिक्षुणी न बने तथा पुराने भिक्षु, भिक्षुणियां भी सांसारिक जीवन बिता सकते हैं। इससे कई संन्यासियों ने मठों को छोड़ दिया, इस प्रकार मठों का विनाश हो गया।

(4) **धार्मिक व्यवस्था बनाए रखने हेतु संविधान बनाना** (Constitution formed to Maintain Religious Order)—जुलाई 1790 ई. में राष्ट्रीय सभा द्वारा Civil Constitution of the Clergy' नामक कानून पास किया गया। इसके अन्तर्गत निम्न निर्णय लिए गए—

(i) पादरियों एवं बिशपों का निर्वाचन जनता द्वारा होगा।
(ii) एक प्रान्त में केवल एक ही विशप नियुक्त हो सकता था, इसलिए फ्रांस में 83 बिशपों की संख्या निश्चित की गयी।
(iii) बिशप पोप के अधीन न रहकर राज्य के अधीन रहकर कार्य करेंगे तथा समस्त धार्मिक पदाधिकारियों को राज्य से वेतन दिया जाएगा।
(iv) नवम्बर 1790 ई. में यह भी निर्णय लिया गया कि फ्रांस के कैथोलिक पादरियों को इस संविधान को ग्रहण करने की शपथ उठानी पड़ेगी।

पोप पायस छठा (Pious VI) पहले ही चर्च की सम्पत्ति के अपहरण एवं मठों के अन्त से बहुत क्रोधित हुआ। शपथ उठाने के आदेश से उसके क्रोध में और अधिक वृद्धि हुई। उसने घोषणा की कि '**कोई भी पादरी या बिशप शपथ ग्रहण न करे।**' शपथ लेने वालों को ईसाई समाज से बहिष्कृत कर दिया जाए। असेम्बली द्वारा शपथ ग्रहण न करने वाले पादरियों को पुरस्कृत किया जाए। इस सम्बन्ध में गर्शोय का विचार है, "**क्रान्तिकारी विचारों को इससे अधिक हानि किसी अन्य घटना से नहीं हुई। इससे फ्रांस दो भागों में विभक्त हो गया।**"[4]

इस घटना के पश्चात् पादरियों ने राज्य का विरोध करना आरम्भ कर दिया, वे क्रान्ति विरोधी हो गए। कई पादरियों ने देश से बाहर जाकर फ्रांस की क्रान्ति के शत्रुओं से सम्बन्ध

1 "It has been an indisputable factor in the political and social revolution of Modern World." —*Hazen*
2 "It was the death certificate of the old regime, but it contained the promise of a new life for France." —Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 125.
3 "The Declaration of the rights of man was stronger than all the armies of Napoleon." —Acton, *op. cit.*, p. 107.
4 "No other measure harmed the revolutionary cause so much. France was split into two." —Gershoy

स्थापित किए जो कि फ्रांस के लिए अहितकारी सिद्ध हुआ। इस संविधान का एक यह प्रभाव अच्छा हुआ कि वे सब क्रान्ति के पक्षपाती हो गए जिन्हें राज्य से वेतन मिलने लगा तथा चर्च की अपहरण की हुई सम्पत्ति भी प्राप्त हुई।

(5) **नवीन संविधान का निर्माण** (Formation of New Constitution)—यह कार्य राष्ट्रीय असेम्बली का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। यह दो वर्षों के कठोर परिश्रम के पश्चात् 1791 ई. में तैयार हुआ था। उस समय तक यूरोप में ऐसा कोई लिखित संविधान नहीं था। इस संविधान की धाराओं को देखने से ज्ञात होता है कि **यह जनतन्त्रात्मक भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं बनाया गया था बल्कि इसका निर्माण राजा के प्रति वैमनस्य से प्रेरित होकर हुआ था।**[1]

इस संविधान द्वारा निम्न व्यवस्था की गयी थी—

(i) **राजा के अधिकार सीमित कर दिए गए थे।** उसे कर लगाने, सन्धि अथवा युद्ध करने का अधिकार न था। यद्यपि राजा प्रशासन का अध्यक्ष था, लेकिन वह प्रशासन सम्बन्धी अधिकारियों की नियुक्ति नहीं कर सकता था। उनका निर्वाचन किया जाता था। राजा इन निर्वाचित पदाधिकारियों को पदच्युत भी नहीं कर सकता था। इस संविधान द्वारा राजा की स्थिति केवल नाममात्र की थी।

(ii) **मन्त्रिगण सम्राट के प्रति उत्तरदायी नहीं होंगे** अपितु राष्ट्रीय धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे।

इस संविधान हेतु एक भवन वाली व्यवस्थापिका सभा की व्यवस्था की गयी। इसके सदस्यों की संख्या 750 थी तथा इसके सदस्यों का चुनाव केवल दो वर्ष के लिए होता था। सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष रूप से होता था। **व्यवस्थापिका सभा द्वारा नागरिकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया—**

(1) सक्रिय नागरिक, (2) निष्क्रिय नागरिक। जो नागरिक कर देते थे वे सक्रिय नागरिक कहलाए तथा उन्हें मताधिकार प्रदान किया गया। जो निर्धन एवं सम्पत्तिहीन वर्ग के व्यक्ति थे, वे निष्क्रिय नागरिक कहलाए। उन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

यद्यपि मनुष्यों के अधिकारों की घोषणा में यह घोषित किया गया था कि सब मनुष्य समान हैं, किन्तु संविधान बनाते समय सिद्धान्त की हत्या कर दी गयी। **रूसो के सिद्धान्त के स्थान पर मॉण्टेस्क्यू के सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया गया।** निर्वाचित पद्धति की आलोचना करते हुए एक सदस्य ने कहा था—**"यदि आज रूसो जीवित होता तो फ्रांस की इस नवीन व्यवस्थापिका सभा का सदस्य नहीं हो सकता था।"**

इस व्यवस्था द्वारा न्यायाधीशों के पदों का क्रय-विक्रय समाप्त कर दिया गया। निर्वाचन पद्धति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रारम्भ की गयी। न्याय निःशुल्क करने की व्यवस्था की गयी तथा सभी को समान न्याय प्रदान करने की घोषणा की गयी।

(6) **आर्थिक दशा सुधारने हेतु किए गए कार्य** (Works of Improve Economic Condition)—देश की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु राष्ट्रीय सभा ने निम्न कार्य किए—(1) निर्धनों की सहायता करने के लिए असेम्बली ने 'चेरिटी वर्कशाप्स' की स्थापना की। (2) पादरियों और सामन्तों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए थे इससे वे अब किसानों से

1 **"They were more anxious to rule the king than to rule through him."**—***Mirabeau***

मनमाना कर वसूल नहीं कर सकते थे। (3) किसानों पर केवल भूमि-कर लगाया गया। नमक कर तथा अन्य अप्रत्यक्ष कर समाप्त कर दिए गए, व्यापार तथा उद्योग-धन्धों पर भी कर लगाए गए, लेकिन अनाज का व्यापार कर-मुक्त था। स्थानीय चुंगिया तथा श्रेणियां समाप्त कर दी गयीं। (4) मजदूरों के प्रदर्शन तथा हड़ताल के अधिकार को अवैध घोषित कर दिया गया। (5) चर्च की सम्पत्ति का अपहरण किया जाना भी आर्थिक स्थिति सुधारने का एक प्रयत्न था।

राष्ट्रीय संवैधानिक सभा की त्रुटियां अथवा दोष
(DEFECTS OF THE NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY)

यद्यपि इस सभा द्वारा बड़े परिश्रम के साथ संविधान का निर्माण किया गया तथा यह एक प्रगतिशील कदम था, पर इसमें अनेक दोष थे—

(1) नागरिकों के लिए घोषित अधिकारों में से बहुत से अधिकार जनता को नहीं दिए गए थे।

(2) नागरिकों को सक्रिय एवं निष्क्रिय श्रेणियों में विभाजित करके निर्धन वर्ग को मताधिकार से वंचित कर दिया गया।

(3) व्यवस्थापिका व कार्यपालिका को पृथक् करने से वे एक-दूसरे की सहायक न रहकर विरोधी हो गयीं।

(4) फ्रांस को 83 विभागों में तो बांट दिया गया, लेकिन उनमें परस्पर सम्बन्ध की कोई योजना नहीं थी।

(5) पादरियों के लिए बनाए गए संविधान से धार्मिक कलह प्रारम्भ हो गयी।

(6) असेम्बली द्वारा बहुत से लोगों (Mob Rule) को प्रोत्साहन देना खतरनाक सिद्धान्त सिद्ध हुआ।

(7) विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त से स्थानीय शासन में शिथिलता आयी।

(8) मध्यम श्रेणी के लोगों के हितों को अधिक प्रोत्साहन दिए जाने से कृषकों एवं मजदूरों को कोई लाभ नहीं हुआ। इस संविधान ने अपनी नीति तथा कार्यों द्वारा निर्धन, पादरी एवं सामन्त तीनों ही वर्गों को नाराज कर दिया।

(9) व्यवस्थापिका सभा के सदस्य दूसरी बार उसके सदस्य नहीं हो सकते थे जिससे प्रत्येक बार अनुभवहीन व्यक्ति उसके सदस्य बनते थे तथा व्यवस्थापिका सभा का कार्यकाल दो वर्ष ही था जो कि बहुत कम था। इतनी कम अवधि में कोई भी व्यवस्थापिका सभा अपने उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर पाती थी।

राष्ट्रीय संवैधानिक सभा की समाप्ति
(END OF THE NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY)

दो वर्ष के अपने कार्यकाल में इस सभा ने राष्ट्र के लिए एक विधान का निर्माण किया तथा 25,000 आदेश लागू किए। 21 सितम्बर को राजा ने नए संविधान को स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करने का वचन दिया। फलतः 30 सितम्बर, 1791 ई. को यह सभा विसर्जित कर दी गयी। प्रसिद्ध इतिहासकार हेजन के अनुसार, "**अपने विसर्जन से पहले राष्ट्रीय सभा ने एक अन्तिम एवं अनावशयक गलती कर दी। एक प्रस्ताव पास किया कि इस सभा का कोई भी सदस्य अपनी व्यवस्थापिका का सदस्य न हो सकेगा। इस प्रकार दो वर्ष के अनुभव को**

तिलांजलि देकर संविधान ऐसे लोगों के हाथ में सौंप दिया जिन्होंने उसकी रचना में कोई भाग नहीं लिया था। आत्म त्याग की यह भावना घातक सिद्ध हुई।''[1]

राष्ट्रीय सभा का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY)

राष्ट्रीय सभा के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इसके सदस्यों को किसी प्रकार का अनुभव न होते हुए भी उन्होंने राष्ट्र के लिए एक विस्तृत विधान का निर्माण किया। कुछ मनुष्यों ने असेम्बली के कार्यों की निन्दा करते हुए कहा है कि उसने निर्माण की अपेक्षा विध्वंस अधिक किया था तथा दीर्घकालीन सभी व्यवस्थाओं का अन्त कर दिया था, लेकिन ये मत निराधार हैं। इस संविधान की महत्ता इस बात से प्रकट होती है कि इसने फ्रांस में बनने वाले आगामी सभी संविधानों को प्रभावित किया। इस सम्बन्ध में हेज का मत है, **''फ्रांस के तूफानी वातावरण में राष्ट्रीय संविधान सभा ने देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए जो कार्य अल्पकाल में ही पूर्ण किए अन्य सभाएं वर्षों तक पूरा करने में सफल न हो पायी थीं।''**

फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम
(EFFECTS OF THE FRENCH REVOLUTION)

फ्रांस की क्रान्ति एक युग परिवर्तनकारी घटना थी। इसकी उपलब्धियों एवं परिणामों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए गए हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह एक जनतन्त्र-विरोधी, अप्रगतिशील तथा अराजकतावादी आन्दोलन था। इसके विपरीत अन्य लेखकों व इतिहासकारों ने फ्रांस की क्रान्ति को आधुनिक इतिहास की महानतम् घटना बताया है। इतिहासकार **हेजन** के अनुसार, **''फ्रांस की क्रान्ति ने राज्यों के सम्बन्ध में एक नई धारणा को जन्म दिया, राजनीतिक तथा समाज के विषय में नए सिद्धान्त प्रतिपादित किए, जीवन का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा और एक नई आशा तथा विश्वास उत्पन्न किया। इन सबसे बहुमत जनता की कल्पना और विचार प्रज्ज्वलित हुए, उनमें एक अद्वितीय उत्साह का संचार हुआ तथा असीम आशाओं ने उन्हें अनुप्राणित किया।''** सामाजिक समानता, सामन्ती विशेषाधिकारों का अन्त, निरंकुश तथा भ्रष्ट प्रशासन में सुधार, न्याय तथा करों में समानता इन्हीं उद्देश्यों को पाने के लिए क्रान्ति की शुरूआत हुई थी। **इस क्रान्ति के क्या परिणाम हुए उनका वर्णन निम्नवत् है :**

(1) सामन्तशाही का अन्त (End of Feudalism)—फ्रांसीसी क्रान्ति की महत्वपूर्ण देन सामन्ती व्यवस्था का अन्त करना था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बहुत वर्षों तक सामान्य जनता का शोषण किया गया, आर्थिक शोषण तो इस व्यवस्था की चारित्रिक विशेषता थी। फ्रांस की क्रान्ति द्वारा विशेषाधिकारों का अन्त करके समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इसं क्रान्ति का अन्य देशों पर भी प्रभाव पड़ा कि यूरोप के अन्य देशों में भी धीरे-धीरे सामन्तशाही का अन्त हो गया।

(2) धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना (Establishment of a Secular State)—इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में धार्मिक सहिष्णुता का प्रादुर्भाव हुआ एवं लोगों को धार्मिक उपासना की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तथा धर्म के सम्बन्ध में राजा का कोई हस्तक्षेप नहीं रहा।

---

1 सी. डी. हेजन, अनुवादक डॉ. सत्यनारायण दुबे, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 73।

(3) राजनीतिक स्वतन्त्रता, सामाजिक समानता एवं राष्ट्रीय बन्धुत्व की भावना का विकास (Growth of the feelings of Political Freedom, Social Equality and National Fraternity)—क्रान्ति के समय क्रान्तिकारियों द्वारा इन्हीं तीन सिद्धान्तों के प्रसार को अपना ध्येय बनाया गया। क्रान्ति ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से प्रत्येक नागरिक को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया। स्वतन्त्रता (Liberty), समानता (Equality) व बन्धुत्व (Fraternity) का प्रचार केवल फ्रांस में ही नहीं, अपितु समस्त यूरोप में किया गया।

(4) राष्ट्रीयता की भावना का विकास (Growth of National Feeling)—इस क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण देन नागरिकों के हृदय में अपने देश की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करना है, जब विदेशी सेनाओं ने राजतन्त्र की सुरक्षा के लिए फ्रांस पर आक्रमण किया तो **उस समय किसान, मजदूर एवं अन्य लोगों ने सेना में भर्ती होकर अत्यन्त वीरता के साथ विदेशी सेनाओं का सामना किया तथा विजय प्राप्त की।** यह राष्ट्रीयता की भावना का ही एक ज्वलन्त उदाहरण है। राष्ट्रीयता की यह भावना यूरोप के अन्य देशों में भी व्याप्त होती गयी। 1830 ई., 1848 ई. की व्यापक क्रान्तियां तथा 1870-71 में इटली व जर्मनी का एकीकरण इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(5) लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन (Principle of Popular Sovereignty Established)—इस क्रान्ति के द्वारा राजनीतिक दृष्टि से राजाओं के '**दैवी अधिकार के सिद्धान्त**' का अन्त करके लोकप्रिय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। कानून अब एक व्यक्ति अर्थात् राजा की इच्छा का परिणाम न होकर राष्ट्र के निर्वाचित प्रतिनिधियों की इच्छा का परिणाम था। वंशानुगत एवं भ्रष्ट न्यायाधीशों के स्थान पर अब निर्वाचित न्यायपालिका एवं जूरी पद्धति का प्रारम्भ हुआ। सर्वसाधारण द्वारा देश की राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा बटाने से उनमें आत्मविश्वास की भावना का संचार हुआ।

(6) समाजवाद की स्थापना (Socialism Founded)—कुछ इतिहासकारों के अनुसार फ्रांस की क्रान्ति समाजवादी विचारधारा का स्रोत थी। राष्ट्रीय सभा ने मनुष्यों के आधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा, जिसमें प्रजातन्त्र का शिलान्यास किया गया। इस घोषणा में स्पष्ट रूप से कहा गया कि **"सभी मनुष्य समान हैं तथा उन्नति का अवसर प्रत्येक को समान रूप से दिया जाना चाहिए।"** रूसो के सिद्धान्त के अनुसार सब मनुष्य समान रूप से स्वतन्त्र जन्म लेते हैं, किन्तु सामाजिक बन्धन उनको जकड़ लेते हैं। उन बन्धनों को तोड़ने के लिए नेशनल असेम्बली ने अधिक परिश्रम किया, सभी के लिए एक समान कानून तथा कर की व्यवस्था की गयी। विशेषाधिकार युक्त वर्ग का अन्त करने के लिए 4 अगस्त, 1789 ई. को एक प्रस्ताव पास किया गया जिसके द्वारा कुलीनवर्ग का अन्त हो गया। अब कुलीन लोग भी साधारण वर्ग के समान ही थे तथा अब वे दरिद्र किसानों पर अत्याचार नहीं कर सकते थे। दास प्रथा का भी अन्त हो गया। जागीरदारों ने जनता के रुख को देखकर स्वयं ही अपने विशेषाधिकार त्याग दिए तथा फ्रांस से असमानता समाप्त हो गयी।

(7) शिक्षा एवं संस्कृति का विकास (Growth of Education and Culture)—फ्रांस की क्रान्ति ने शिक्षा को चर्च के आधिपत्य से निकालकर उसे राष्ट्रीय, सार्वभौमिक तथा

धर्मनिरपेक्ष बनाया, साथ ही पुरातन व्यवस्था के अन्धविश्वासों को नष्ट किया। यूरोपीय साहित्य में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन भी क्रान्ति का ही परिणाम था।

क्रान्ति के सम्बन्ध में लार्ड एल्टन का कथन है कि **''सामाजिक समानता और व्यवस्था क्रान्ति के उद्देश्य थे, जो प्राप्त कर लिए गए। सैनिक गौरव तथा भूमि का कृषकों को हस्तान्तरण, क्रान्ति की अन्य उपलब्धियां थीं। आधुनिक फ्रांस की राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की नींव भी क्रान्ति ने रखी।**

क्रान्ति के स्थायी परिणाम (Permanent effects of the Revolution)—क्रान्ति के समय होने वाले भीषण रक्तपात एवं अव्यवस्था से जनता थक चुकी थी, अतः अब वह शासन सुदृढ़ हाथों में देखना चाहती थी। इन परिस्थितियों ने नेपोलियन बोनापार्ट का मार्ग प्रशस्त कर दिया। **कई वर्षों की क्रान्ति के पश्चात् नेपोलियन का एक डिक्टेटर के रूप में उदय हुआ।** नेपोलियन ने सही अर्थों में अपने को क्रान्ति का उत्तराधिकारी सिद्ध कर दिखाया। यद्यपि उसके शासन में स्वतन्त्रता को स्थान नहीं था, किन्तु क्रान्ति की दो अन्य भावनाओं (समानता, एवं बन्धुत्व) का उसने पूर्णतया पालन किया। नेपोलियन ने इटली, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया व स्पेन, आदि देशों में भी इन भावनाओं को फैलाया। नेपोलियन के पतन के पश्चात् 1815 ई. में विएना की कांग्रेस में प्रतिक्रियावादी लोगों ने सन्धि करते समय इन भावनाओं का ख्याल नहीं रखा, फलतः सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। यूरोपवासी उस सन्धि को तोड़कर क्रान्तिकारी भावनाओं से प्रोत्साहित होकर अपने राष्ट्रों के निर्माण करने का प्रयत्न करने लगे। **अन्त में सम्पूर्ण यूरोप में नवयुग का प्रारम्भ हुआ जिसका सम्पूर्ण श्रेय फ्रांस की क्रान्ति को दिया जा सकता है, क्योंकि सर्वप्रथम इसी के द्वारा नवयुगीन गणतन्त्रात्मक भावनाओं का विकास हुआ।**

व्यवस्थापिका सभा
(LEGISLATIVE ASSEMBLY)

(1 अक्टूबर, 1791 से 20 सितम्बर, 1792 ई. तक)

राष्ट्रीय सभा का मुख्य उद्देश्य फ्रांस के लिए संविधान का निर्माण करना था। अपने उद्देश्य को पूरा करने के पश्चात् राष्ट्रीय सभा भंग हो गयी। नवीन संविधान के अनुसार व्यवस्थापिका सभा के लिए निर्वाचन हुए व 1 अक्टूबर, 1791 ई. को व्यवस्थापिका सभा की पहली बैठक हुई। व्यवस्थापिका सभा के प्रथम अधिवेशन के समय सम्पूर्ण फ्रांस में खुशियां मनायी गयीं क्योंकि राजा द्वारा नवीन संविधान को स्वीकार कर लिया गया था। फ्रांस की जनता का विचार था कि क्रान्ति समाप्त हो गयी है[1] व सुखमय भविष्य के चिह्न उन्हें दृष्टिगत हो रहे थे, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ।

व्यवस्थापिका सभा में सदस्यों की कुल संख्या 745 थी। ये सभी सदस्य नए व कम आयु के थे। इसलिए इस व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के विषय में कहा जाता था कि इनमें से कोई भी सफेद बालों वाला नहीं था। **व्यवस्थापिका सभा के अधिकांश सदस्य मध्यम वर्ग के थे, अतः क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित थे।**

1 "Paris celebrated the end of the Revolution, but the Revolution had not ended with the acceptance of the constitution." —Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 198

व्यवस्थापिका सभा में दलबन्दी
(GROUPISM IN THE LEGISLATIVE ASSEMBLY)

व्यवस्थापिका सभा कई दलों में विभक्त थी जिनमें प्रमुख दल निम्न थे—

(i) **राजतन्त्रवादी** (Monarchists)—राजतन्त्रवादियों की संख्या लगभग 100 थी। राजतन्त्रवादी राजा लुई XVI के समर्थक थे।

(ii) **संविधानवादी** (Constitutionalisits)—संविधानवादी सदस्य संविधान के समर्थक थे तथा राजा के सीमित अधिकारों में विश्वास रखते थे। इन सदस्यों को **फेइयां** (Feaillants) भी कहा जाता था क्योंकि संविधानवादी फेइयां के चर्च में एकत्र होते थे। संविधानवादियों की संख्या 164 थी।

(iii) **सेण्टर पार्टी** (Centre Party)—इस दल के सदस्य प्रारम्भ में स्वतन्त्र थे। वे किसी भी दल के सदस्य न थे। इनकी संख्या 245 थी।

(iv) **गणतन्त्रवादी** (Republicans)—व्यवस्थापिका सभा में गणतन्त्रवादी सदस्यों की संख्या 236 थी। ये राजा लुई XVI की सत्ता को पूर्णतया समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। गणतन्त्रवादी अत्यन्त उग्रवादी थे। गणतन्त्रवादी सदस्य भी विचारों की भिन्नता के कारण दो दलों में विभक्त थे। ये दो दल थे—

जिरोंदिन[1] (Girondits), तथा **जैकोबिन** (Jacobins)।

जिरोंदिन दल के प्रमुख नेता **ब्रिसों** (Brissot), **वेरियों** (Verginiaud), **कोन्दोर्स** (Condorcet), **दुमूरिये** (Dumouriez) थे। **इस दल के अधिकांश सदस्य जिरोंद** (Gironde) **नामक स्थान के थे, अतः इस दल को जिरोंदित्स कहा जाता था।** जिरोंदित्स दल के सदस्य प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त में विश्वास करते थे तथा किसी भी बाहरी हस्तक्षेप को सहने के लिए वे तैयार न ते। जिरोंदिन दल के सदस्य अत्यन्त सभ्य व उच्च बौद्धिक स्तर के थे। इसके विपरीत, **जैकोबिन दल** के सदस्य असभ्य और हिंसक प्रवृत्ति के थे। इस दल के प्रमुख नेता **राब्सपीयर** (Robespierre), **दांतों** (Danton) तथा **मारा** (Marat) थे। जैकोबिन वास्तव में एक चर्च का नाम था। जिस समय राष्ट्रीय सभा लुई XVI के साथ पेरिस आ गयी उस समय राष्ट्रीय सभा के कुछ सदस्य इस चर्च में रहने लगे। वहीं पर वे अपनी बैठकें करते थे, अतः उनके क्लब को **जैकोबिन क्लब** कहा जाने लगा। कालान्तर में इसी आधार पर जैकोबिन दल का नाम पड़ा। प्रारम्भ में इस दल की शाखाएं कम थीं। शीघ्र ही जैकोबिन दल की शाखाएं सम्पूर्ण फ्रांस में खुल गयीं। 1792 ई. तक इसकी 406 शाखाएं स्थापित हो चुकी थीं। व्यवस्थापिका सभा में भी जैकोबिन दल के 140 सदस्य थे। जैकोबिन दल भी फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था, किन्तु उसका तरीका जिरोंदित्स दल से अलग था। जैकोबिन हिंसा एवं शक्ति के द्वारा फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था।

व्यवस्थापिका सभा के समक्ष समस्याएं
(PROBLEMS OF THE LEGISLATIVE ASSEMBLY)

व्यवस्थापिका सभा में इस समय जिरोंदित्स दल का मन्त्रिमण्डल था। व्यवस्थापिका सभा के समक्ष अनेक समस्याएं थीं। 1789 ई. की क्रान्ति के कारण अनेक फ्रांसीसी जो राजस्व के

1 जिरोंदिन दल ने एपेल नोमिनल (Appel Nominal) प्रणाली लागू की जिसके द्वारा विधान सभा के प्रतिनिधियों को नाम लेकर पुकारा जाने लगा।

सिद्धान्त में विश्वास रखते थे, फ्रांस से पलायन कर गए थे। इन लोगों ने जर्मनी के राज्यों में शरण ली थी। इस प्रकार फ्रांस से भागे हुए लोगों में फ्रांस के राजा लुई XVI के दो भाई **काउण्ट ऑफ आर्त्वा**[1] (Count of Artois) व **काउण्ट ऑफ प्रोविन्स**[2] (Count of Provence) भी थे। इन दोनों ने कोब्लेन्ज (Coblentz) नगर को अपना केन्द्र बना रखा था तथा वहीं पर उन्होंने एक सेना का संगठन कर लिया था तथा यूरोप के अन्य देशों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे।

व्यवस्थापिका सभा ने फ्रांस से पलायन कर गए व्यक्तियों को आदेश दिया कि वे दो माह के अन्दर फ्रांस लौट आएं अन्यथा उन्हें अनेक अधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा तथा इस आदेश का पालन न करने वाले व्यक्तियों को देशद्रोही माना जाएगा। राजा लुई XVI ने इस आदेश पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

व्यवस्थापिका सभा के समक्ष एक अन्य प्रमुख समस्या उन पादरियों की थी जिन्होंने लौकिक संविधान (Civil Constitution) **के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण नहीं की थी।** व्यवस्थापिका सभा ने यह आदेश पारित किया कि जो पादरी शपथ नहीं लेंगे उन्हें पदमुक्त कर दिया जाए व उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाए। राजा लुई XVI ने इस आदेश पर भी हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। व्यवस्थापिका सभा भी वास्तव में यह चाहती थी क्योंकि राजा के इस कार्य से उसे राजा के विरुद्ध आन्दोलन करने का बहाना मिल गया।

व्यवस्थापिका सभा की इस नीति के विषय में केटल्बी ने लिखा है कि व्यवस्थापिका सभा भागे हुए **कुलीनों** (Emigres) तथा पादरियों की आड़ में राजतन्त्र पर चोट पहुंचाना चाहते थे।[3] लियो गर्शोय ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं।[4] व्यवस्थापिका सभा की इस नीति से फ्रांस में राजतन्त्र के पतन व गणतन्त्र की स्थापना का मार्ग स्पष्ट हो गया। **व्यवस्थापिका सभा का विचार था कि राजतन्त्र का पालन करने के लिए राजा को क्रान्ति का विरोधी प्रमाणित करना आवश्यक था।** यह केवल युद्ध के द्वारा ही सम्भव था। व्यवस्थापिका सभा चाहती थी कि यदि प्रशा व आस्ट्रिया से युद्ध हो तो राजा की स्थिति विषम हो जाएगी क्योंकि प्रशा व आस्ट्रिया लुई XVI के मित्र थे और यदि वह प्रशा व आस्ट्रिया का साथ देगा तो देशद्रोही प्रमाणित हो जाएगा। इस प्रकार फ्रांस में राजतन्त्र का अन्त हो जाता।

पिलनित्स की घोषणा
(DECLARATION OF PILLNITZ)

फ्रांस की क्रान्ति का यूरोप के राजतन्त्रात्मक देशों द्वारा विरोध किया जा रहा था। इन देशों का विचार था कि यदि वे सम्मिलित रूप से लुई XVI की सहायता करें तो फ्रांस में

1 यह बाद में चार्ल्स X के नाम से फ्रांस का शासक बना।

2 यह बाद में लुई XVIII के नाम से फ्रांस का शासक बना।

3 "But these decrees were bait to catch a larger fish, and behind the emigres and the non-furing priests the girondists aimed at the throne."

—Ketelbey, *op. cit.*, p. 72.

4 "Most of them, (Girondists) were free thinkers but there was no doubt in their minds that the refractory priests were the "accomplish of emigres." and Louis XVI, who had vetoed both decrees, was regarded by all patriots as the defender of the treacherous priests at home as well as the ally of the conspiring emigres abroad."

—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 202.

राजतन्त्र की पुनः स्थापना की जा सकती थी। इसी उद्देश्य से अगस्त 1791 ई. में आस्ट्रिया के शासक लिओपोल्ड II (Leopold II) ने प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम II (Frederic William II) से पिलनित्स नामक स्थान पर भेंट की तथा 27 अगस्त, 1791 ई. को एक घोषणा की। इस घोषणा को **पिलनित्स की घोषणा** कहा जाता है। **इस घोषणा में कहा गया था कि फ्रांस की समस्या यूरोपीय समस्या थी तथा यदि यूरोप के अन्य राष्ट्र सहयोग दें तो आस्ट्रिया व प्रशा फ्रांस में सशस्त्र हस्तक्षेप करने को तैयार थे।** यद्यपि यूरोप के किसी भी राष्ट्र ने इस घोषणा का समर्थन नहीं किया, किन्तु इससे फ्रांस में सनसनी उत्पन्न हो गयी। पिलनित्स की घोषणा खुलेआम फ्रांस के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की घोषणा थी।

युद्ध आरम्भ
(WAR BEGINGS)

आस्ट्रिया के सम्राट लियोपोल्ड II को यह आशा नहीं थी कि पिलनित्स की घोषणा से युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा। उसका विचार था कि व्यवस्थापिका सभा व जिरोंदित्स दल इस घोषणा से भयभीत हो जाएंगे, किन्तु इस घोषणा का प्रभाव इसके विपरीत हुआ। जिरोंदिन को इससे आस्ट्रिया व प्रशा के विरुद्ध युद्ध करने व राजा लुई XVI के विषय में यह प्रमाणित करने का अवसर मिल गया कि वह आस्ट्रिया व प्रशा से मिला हुआ था।

जिरोंदिन का विचार था कि फ्रांस से राजतन्त्र पूर्णतया समाप्त करने के लिए युद्ध का होना आवश्यक था।[1] **इस अवसर पर जिरोंदिन नेता रोलां (Madame Roland) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गणतन्त्र के लिए उत्साही भावनाओं के जन्म व राजतन्त्र के पतन के लिए युद्ध आवश्यक था।**[2]

अतः व्यवस्थापिका सभा में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध का प्रस्ताव रखा गया जो भारी बहुमत से पारित हुआ। मात्र 7 वोट इसके विरोध में पड़े। इसी समय लुई सोलहवें की रानी मेरी अन्तायनेत (Marie Antoinette) ने अपने भाई व आस्ट्रिया के शासक लियोपोल्ड II को लुई XVI की ओर से युद्ध करने को कहा। व्यवस्थापिका को इस बात की सूचना मिल गयी जिससे राजा की स्थिति और भी विकट हो गयी। इसी समय 1 मार्च, 1792 ई. को लियोपोल्ड की मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् फ्रांसिस II (Francis II) आस्ट्रिया का शासक बना। फ्रांसिस ने फ्रांस पर दूसरे राष्ट्रों की सुरक्षा संकट में डालने का आरोप लगाया।

20 अप्रैल, 1792 ई. को फ्रांस ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। लाफायते को फ्रांस का प्रमुख सेनापति बनाया गया। युद्ध के प्रारम्भिक पांच माह फ्रांस के लिए अत्यन्त खराब रहे। अनेक स्थानों पर फ्रांस की सेनाओं को पराजित होना पड़ा। फ्रांस की इन पराजयों का दोषी जनता ने राजा लुई XVI को माना क्योंकि उनका विचार था कि लुई XVI आस्ट्रिया से मिला हुआ था। अतः क्रोधित व उत्तेजित होकर 20 जून, 1793 ई. को जनता ने तुइलरी (Tuilerie) के महल पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार जनता द्वारा राजमहल पर आक्रमण करने का एक अन्य कारण राजा द्वारा उन दो आदेशों पर हस्ताक्षर

1 "The Girondins wanted war because they were ambitious for power and popularity. They wanted war to unmask the king, whose treason to the Revolution they suspected."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 203

2 "Madam Roland regarded war as the force that was necessary to raise the feeling of France into republican enthusiasm and to overthrow the monarchy."
—Grant & Temperley, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 34.

करने से इन्कार करना था जिनके द्वारा पलायन कर गए फ्रांसीसी व्यक्तियों को वापस आने व पादरियों से संविधान के प्रति शपथ लेने को कहा गया था। जनता ने महल का द्वार तोड़ दिया व महल में घुसकर राजा के विरुद्ध नारे लगाए, जिनमें कहा गया था। **'पादरी मुर्दाबाद'** (Down with the Priests) व **आदेशों पर हस्ताक्षर करो** (Sign the Decrees)। लुई XVI व रानी अन्तायनेत को जनता द्वारा अत्यधिक अपमानित किया गया। लेजेण्डर (Legendure) नामक एक व्यक्ति ने तो लुई XVI से यहां तक कह दिया, **''श्रीमान, आप देशद्रोही हैं। आपने हमें सदैव धोखा दिया है और इस समय भी आप हमें धोखा दे रहे हैं। आप सावधान हो जाएं अव सब्र का प्याला भर चुका है।''**[1] किन्तु इस समय लुई XVI अवसर को पहचानते हुए शान्त रहा व क्रान्तिकारियों की टोपी पहन ली जिससे जनता शान्त होकर लौट गयी।

ब्रुन्सविक की घोषणा
(DECLARATION OF BRUNSWICK)

25 जुलाई, 1792 ई. को प्रशा ने भी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 27 जुलाई, 1792 ई. को प्रशा के सेनापति ड्यूक ऑफ ब्रुन्सविक (Duke of Brunswick) ने एक घोषणा की जिसे **ब्रुन्सविक की घोषणा** कहा जाता है। इसमें ड्यूक ऑफ ब्रुन्सविक ने कहा कि **फ्रांस की जनता राजसत्ता लुई XVI को सौंप दे तथा यदि किसी ने लुई XVI अथवा उसके परिवार को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाई और आस्ट्रिया व प्रशा की सेना का विरोध किया तो पेरिस को ध्वस्त कर दिया जाएगा।**

ब्रुन्सविक की इस घोषणा से फ्रांसीसी जनता भड़क उठी। उन्हें यह भी स्पष्ट हो गया कि लुई XVI आस्ट्रिया व प्रशा से मिला हुआ है। अतः 10 अगस्त, 1792 ई. को उत्तेजित भीड़ ने पुनः तुइलरी के महल पर आक्रमण किया। राजमहल के पहरेदार व अंगरक्षक मारे गए। राजा ने भागकर व्यवस्थापिका सभा में शरण ली। ब्रुन्सविक की घोषणा के विषय में हेज ने लिखा है : **''ब्रुन्सविक की घोषणा ने राजतन्त्र के द्वार को बन्द कर दिया।''**[2]

राजतन्त्र की समाप्ति
(END OF MONARCHY)

11 अगस्त, 1792 ई. को व्यवस्थापिका सभा में राजा लुई XVI के विषय में विचार-विमर्श किया गया। तत्पश्चात् उसे निलम्बित (Suspend) कर दिया गया। गणतन्त्र की स्थापना के लिए नवीन संविधान की रचना करना आवश्यक था, किन्तु संविधान बनाने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा के हाथों में था। अतः राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) बुलाकर यह निर्णय लिया गया कि नवीन चुनावों के द्वारा राष्ट्रीय सम्मेलन के चुनाव कराए जाएं।

अन्तरिक सरकार की स्थापना
(ESTABLISHMENT OF INTERIM GOVT.)

चुनाव होने व नयी सरकार बनने तक अन्तरिम सरकार की स्थापना किया जाना आवश्यक था। अतः 11 अगस्त, 1792 ई. को व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly)

1 "Sir, you are a traitor, you have always deceived us, you are deceiving us still. Beware, the cup is full."

2 "The declaration of Brunswick sealed the fate of the French monarchy."

Hayes, *op. cit.*, p. 627.

को भंग कर दिया गया व फ्रांस में शासन का भार पेरिस की एक नागरिक सभा **पेरिस कम्यून** (Paris Commune) को सौंपा गया। पेरिस कम्यून ने ही लुई XVI को हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। पेरिस कम्यून निम्न वर्ग की संस्था थी। इसने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के चुनावों के लिए सम्पत्ति पर आधारित मताधिकार के नियम को भंग कर दिया व प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्रदान किया। लुई XVI व उसके परिवार को भी पेरिस कम्यून ने बन्दी बनाया व टेम्पल (Temple) के किले में रखा। इस प्रकार फ्रांस में 10 अगस्त, 1792 ई. को राजतन्त्र का पतन हुआ व लोकतन्त्र की स्थापना हुई।

पेरिस कम्यून निम्नवर्गीय व जैकोबिन संस्था होने के कारण मध्यम वर्ग का प्रभाव फ्रांस से कुछ समय के लिए कम हो गया। पेरिस कम्यून ने 11 अगस्त से 20 सितम्बर तक शासन किया। इस पर राब्सपियर, दांतो व मारा आदि नेताओं का प्रभाव था। मध्यम, वर्ग के नेता लाफायते को फ्रांस से पलायन करना पड़ा क्योंकि वह राजा व उसके परिवार को मुक्त कराना चाहता था।

सितम्बर हत्याकाण्ड
(SEPTEMBER MASSACRE)

पेरिस कम्यून का शासन अत्यन्त अल्पकालीन था, किन्तु इसमें एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई जिसने क्रान्ति पर धब्बा लगा दिया। पेरिस कम्यून के नेता क्रान्ति के विरोधियों को सहने के लिए तैयार न थे। दांतों का विचार था : **"साहस, अधिक साहस तथा और अधिक साहस के द्वारा ही आन्तरिक व बाह्य शत्रु का सामना किया जा सकता है।"**[1] अतः पेरिस कम्यून क्रान्ति-विरोधियों का दमन करना चाहते थे। इसी समय यह समाचार मिला कि आस्ट्रिया व प्रशा की सेनाएं पेरिस की ओर बढ़ रही हैं, अतः कम्यून के सदस्य मारा ने विचार व्यक्त किया कि बाह्य शत्रु से निबटने से पूर्व फ्रांस में ही विद्यमान देशद्रोहियों को मार्ग से हटा देना चाहिए। अतः 2 **सितम्बर से** 6 **सितम्बर**, 1792 ई. तक भयंकर रक्तपात हुआ जिसमें हजारों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस घटना को **'सितम्बर हत्याकाण्ड'** कहा जाता है। **हेंजन ने लिखा है कि विद्रोही पादरी, सन्देह के शिकार व्यक्ति तथा वे लोग जिन पर सामन्तवाद का आक्षेप लगाया गया था, निर्ममतापूर्वक मारे गए। न किसी पर मुकदमा चलाया गया न ही स्त्री तथा पुरुष का ध्यान रखा गया। हत्याकाण्ड व्यवस्थापूर्वक उन लोगों द्वारा किया गया जिन्हें कम्यून के कुछ सदस्यों ने किराए पर भर्ती किया था।**[2] फर्गुसन एवं ब्रून ने भी इस हत्याकाण्ड की आलोचना की है।[3]

सितम्बर हत्याकाण्ड के परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण हुए जिनमें से प्रमुख निम्नवत् थे—

(i). इस हत्याकाण्ड से क्रान्ति बदनाम हो गयी।

(ii) राष्ट्रीय सम्मेलन के चुनावों पर भी इसका प्रभाव हुआ।

---

1 "The way to stop the enemy is to terrify the royalists. Audocity, more Audocity and always greater audocity." —Hayes, *op. cit.*, p. 625.

2 Hazen, *op. cit.*, p. 131.

3 "The annals of revolution offer no darker page or bloodier example of popular violence than these on the first day of September, 1792." —Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 588.

(iii) जिरोंदित्स व जैकोबिन दलों में खूनी संघर्ष आरम्भ हो गया क्योंकि जिरोंदित्स दल के सदस्य सितम्बर हत्याकाण्ड के दोषी मारा को दण्डित करना चाहते थे। जैकोबिन दल इस पक्ष में न था।

वामी का युद्ध
(BATTLE OF VALMI)

वामी का युद्ध फ्रांस के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। इस युद्ध में विजय के कारण ही फ्रांस में क्रान्ति सुरक्षित रह सकी। वामी के युद्ध में फ्रांसीसी सेनापति दूमोरिये (Dumouriex) ने आस्ट्रिया व प्रशा की सेनाओं को परास्त किया। यह युद्ध 20 सितम्बर, 1792 ई. को लड़ा गया था। इस विजय से फ्रांसीसी सेनाओं का मनोबल उठा व उन्होंने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की।

जिस दिन वामी का युद्ध हुआ उसी दिन अर्थात् 20 **सितम्बर,** 1792 **ई. को राष्ट्रीय सम्मेलन** (National Convention) **के चुनाव हुए** व फ्रांस में राष्ट्रीय सम्मेलन का शासन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार फ्रांस में गणतन्त्रात्मक शासन की स्थापना हुई।

प्रश्न

1. 1789 ई. से 1792 ई. तक वैधानिक राजतन्त्र के लिए किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रीय संवैधानिक सभा के कार्यों का वर्णन कीजिए। **(गोरखपुर,** 1990, 92)
3. व्यवस्थापिका सभा के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। **(लखनऊ,** 1991, 95)
4. फ्रांस की क्रान्ति के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
5. फ्रांसीसी क्रान्ति के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए। **(गोरखपुर,** 1988)
6. फ्रांसीसी राष्ट्रीय सभा की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। **(पूर्वांचल,** 1992, 94)

4

राष्ट्रीय सम्मेलन

[NATIONAL CONVENTION]

(21 सितम्बर, 1792 से 26 अक्टूबर, 1795 ई.)

भूमिका
(INTRODUCTION)

10 अगस्त, 1792 ई. को जनता द्वारा तुइलरी (Tuilleries) के महल पर दूसरी बार आक्रमण किया गया व राजा लुई XVI को भागकर व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) में शरण लेनी पड़ी। इस घटना ने फ्रांस के राजनीतिक पटल पर गम्भीर प्रभाव डाला। **व्यवस्थापिका सभा द्वारा निर्णय लिया गया कि नवीन संविधान का निर्माण करके फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना की जाए, किन्तु संविधान को बनाने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को न था, अतः चुनाव करा कर राष्ट्रीय सम्मेलन को शासन सौंपना आवश्यक था।** इसी उद्देश्य से 11 अगस्त, 1792 ई. को व्यवस्थापिका सभा को समाप्त कर दिया गया तथा चुनाव होने तक अन्तरिम सरकार के रूप में कार्य करने का उत्तरदायित्व **पेरिस कम्यून** (Paris Commune)[1] को सौंपा गया। राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए चुनाव 20 सितम्बर, 1792 ई. को हुए। इस प्रकार 21 सितम्बर, 1792 ई. को राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रांस की बागडोर अपने हाथों में ले ली। **राष्ट्रीय सम्मेलन फ्रांस की तीसरी क्रान्तिकारी सभा थी।** इसने 21 सितम्बर, 1792 ई. से 20 अक्टूबर, 1795 ई. तक शासन किया।

राष्ट्रीय सम्मेलन में सदस्यों की कुल संख्या 782 थी जिसमें 200 जिरोंदिन, 100 जैकोबिन व 482 स्वतन्त्र सदस्य थे।

राष्ट्रीय सम्मेलन की समस्याएं
(PROBLEMS FACED BY NATIONAL CONVENTION)

राष्ट्रीय सम्मेलन का पहला अधिवेशन 22 सितम्बर, 1792 ई. को हुआ। इस राष्ट्रीय सम्मेलन का मुख्य कार्य फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करने के लिए नवीन संविधान की रचना करना था, किन्तु इस राष्ट्रीय सम्मेलन को प्रारम्भ से ही अत्यधिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसी कारण **हेज** ने लिखा है, **"सम्भवतः शायद ही किसी वैधानिक संस्था को प्रारम्भ से**

1 **पेरिस कम्यून एक निम्नवर्गीय संस्था थी जिसने राजा लुई XVI को तुइलरी के महल से भगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।**

ही इतनी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा हो जितना कि राष्ट्रीय सम्मेलन को करना पड़ा।"[1]

राष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित थीं।

(i) **लुई** XVI **की समस्या** (Problems of Louis XVI)—लुई XVI 10 अगस्त, 1792 ई. तक फ्रांस का शासक रहा था। यह सर्वविदित था कि वह राजतन्त्र का समर्थक तथा क्रान्ति का विरोधी था। अतः लुई XVI को क्या दण्ड दिया जाए, इस पर राष्ट्रीय सम्मेलन को विचार करना था। सामान्य परिस्थितियों में यह कोई बड़ी समस्या नहीं थी, किन्तु राष्ट्रीय सम्मेलन में इस विषय को लेकर जिरोंदिन व जैकोबिन दलों में मतभेद था। यद्यपि दोनों दल गणतन्त्र के समर्थक थे, किन्तु जैकोबिन दल राजा को मृत्यु-दण्ड देना चाहता था जबकि जिरोंदिन लुई XVI को मृत्यु-दण्ड देने के पक्ष में न थे।

(ii) **नवीन संविधान का निर्माण** (To Prepare New Constitution)—राष्ट्रीय सम्मेलन का सबसे प्रमुख कार्य फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करने के लिए नए संविधान को तैयार करना था।

(iii) **शान्ति की स्थापना करना** (To Establish Peace in France)—1789 ई. के पश्चात् से फ्रांस में स्थिति शान्तिमय नहीं थी। जगह-जगह विद्रोह हो रहे थे तथा राजतन्त्र समर्थकों व क्रान्तिकारियों में निरन्तर संघर्ष चल रहा था। अतः राष्ट्रीय सम्मेलन इस समस्या को सुलझाकर फ्रांस में शान्ति की स्थापना करे। इसके साथ ही फ्रांस में एक सुदृढ़ सरकार की स्थापना करना भी आवश्यक था।

(iv) **सामाजिक समस्याएं** (Social Problems)—फ्रांस की क्रान्ति ने समानता (Equality) का पाठ जनता को पढ़ाया था तथा राष्ट्रीय सम्मेलन से पूर्व अनेक सामाजिक सुधारों की घोषणा की गयी थी, किन्तु जनता में अभी भी अत्यधिक असन्तोष व्याप्त था। जनसाधारण किए गए सुधारों को स्थायी बनाना तथा अनेक नवीन सुधार चाहता था। अतः राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए आवश्यक था कि वह जनसाधारण की सामाजिक समस्याओं का समाधान करे।

(v) **आर्थिक समस्याएं** (Economic Problems)—फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व ही फ्रांस की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। क्रान्ति के दौरान उत्पन्न अराजकता एवं दुर्व्यवस्था ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति को और अधिक शोचनीय बना दिया। क्रान्ति के कारण उद्योग-धन्धे, व्यापार व कृषि नष्ट हो गए। अनाज की भीषण कमी थी। विदेशों में फ्रांस की मुद्रा को स्वीकारने के लिए कोई तैयार न था। फ्रांस इस समय गम्भीर आर्थिक संकट में था, अतः इस संकट से फ्रांस को निकालना, राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए एक चुनौती थी।

(vi) **धार्मिक समस्याएं** (Religious Problems)—फ्रांस में इस समय अनेक धार्मिक समस्याएं भी थीं। फ्रांस में अधिकांश जनता कैथोलिक धर्म की अनुयायी थी, किन्तु क्रान्तिकारी पोप के विरोधी थे क्योंकि पोप राजतन्त्र का समर्थक था। अनेक पादरी लौकिक संविधान (Civil Constitution) के प्रति शपथ लेने को तैयार न थे। अतः इन धार्मिक समस्याओं को सुलझाना भी राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए आवश्यक था।

---

1 **"Perhaps no legislative body in history has been called upon to solve such knotty problems as those which confronted the National convention at the beginning of its session."** —**Hayes, *op. cit.*, p. 629.**

(vii) **जिरोंदिन तथा जैकोबिन दलों में मतभेद** (Differences between Girondins and the Jacobins)—राष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष सबसे कठिन समस्या जिरोंदिन व जैकोबिन दलों के मध्य मतभेद था। यद्यपि दोनों ही दल गणतन्त्र के समर्थक थे तथा फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे, किन्तु उनके तरीके व विचारधारा भिन्न-भिन्न थे। **जिरोंदिन यह कार्य शान्ति से करना चाहते थे जबकि जैकोबिन हिंसा में विश्वास रखते थे।** यद्यपि राष्ट्रीय सम्मेलन में जिरोंदिन दल के सदस्यों की संख्या अधिक थी, किन्तु जैकोबिनों को राष्ट्रीय सम्मेलन के बाहर अपार समर्थन प्राप्त था। अतः यह समस्या अत्यन्त विकट थी।

(viii) **विदेशी आक्रमणों की समस्या** (Problem of Foreign attacks)—राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा फ्रांस का शासन ग्रहण करते समय विदेशी आक्रमण का भय फ्रांस पर छाया हुआ था। आस्ट्रिया एवं प्रशा की सेनाएं फ्रांस की सीमा तक पहुंची हुई थीं। फ्रांस की सेना विशेष व्यवस्थित एवं संगठित नहीं थी, अतः फ्रांस की रक्षा करने की समस्या राष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष थी।

उपरोक्त समस्याओं का समाधान करने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन को अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ा।

राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा किए गए कार्य/गृह-नीति
(WORKS DONE BY NATIONAL CONVENTION/HOME POLICY)

21 सितम्बर, 1792 ई. को कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मेलन ने अनेक समस्याओं के होते हुए भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। **राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा किए गए प्रमुख कार्य निम्नवत् थे :**

(i) **फ्रांस के लिए नवीन कलेण्डर** (New Calendar for France)—22 सितम्बर, 1792 ई. को ही फ्रांस में एक नवीन कलेण्डर की स्थापना की गयी। इस कलेण्डर में 12 माह थे जिनके नाम ऋतुओं के आधार पर थे।[1] एक माह में 30 दिन निर्धारित किए गए। प्रत्येक दसवां दिन (17 सितम्बर से 31 सितम्बर) छुट्टी का होता था। छुट्टी के इस समय को **सांज क्युलोत** कहते थे। प्रत्येक वर्ष के अन्त में 5 दिनों का अवकाश होना था। यह कलेण्डर 1792 ई. से 1806 ई. तक प्रयोग में लाया गया।

---

1 नवीन कलेण्डर में महीनों के नाम व तिथियां निम्नवत् थीं :

(i) वैदेमियर (22 सितम्बर—11 अक्टूबर)
(ii) ब्रूमेयर (22 अक्टूबर—20 नवम्बर)
(iii) फ्रिमेयर (21 नवम्बर—20 दिसम्बर)
(iv) निवोसे (21 दिसम्बर—19 जनवरी)
(v) प्लूवियोसे (20 जनवरी—18 फरवरी)
(vi) वेंटोज (19 फरवरी—20 मार्च) (vii) जर्मिनल (21 मार्च—19 अप्रैल)
(viii) फ्लोरियल (20 अप्रैल—19 मई)
(ix) प्रेयरियल (20 मई—18 जून)
(x) मर्सिडोर (19 जून—18 जुलाई)
(xi) थर्मिडोर (19 जुलाई—17 अगस्त)
(xii) फ्रक्टिडोर (18 अगस्त—16 सितम्बर)

(ii) **फ्रांस में राजतन्त्र की समाप्ति** (End of Monarchy in France)—राष्ट्रीय सम्मेलन ने अपने अधिवेशन के पहले ही दिन (21 सितम्बर, 1792 ई.) फ्रांस में राजतन्त्र की समाप्ति की घोषणा कर दी। यह प्रस्ताव राष्ट्रीय सम्मेलन में सर्वसम्मति से पारित हुआ। अगले ही दिन (22 सितम्बर, 1792 ई.) को फ्रांस में गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी। यह घोषणा औपचारिक रूप से नहीं की गयी थी केवल परोक्ष रूप में उसका उल्लेख किया गया। हेजन ने लिखा है, "**इस प्रकार बिना किसी दिखावे और धूमधाम के गणतन्त्र का उदय हुआ।**"[1] फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना राष्ट्रीय सम्मेलन का एक प्रमुख कार्य था।

(iii) **राजा लुई XVI को मृत्युदण्ड** (Death sentence to Louis XVI)—राष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष एक अन्य समस्या राजा लुई XVI के रूप में विद्यमान थी। राष्ट्रीय सम्मेलन को यह निर्णय लेना था कि राजा लुई XVI के साथ क्या व्यवहार किया जाए। दांतो ने राष्ट्रीय सम्मेलन में लोहे का एक बक्सा प्रस्तुत किया जिसे राजा के महल से प्राप्त किया गया था। इसमें अनेक ऐसे पत्र थे जिससे यह प्रमाणित होता था कि राजा क्रान्ति का विरोधी था तथा अन्य देशों से उसके सम्बन्ध थे। अतः राजा का देशद्रोही होना भी प्रमाणित हो गया। जिरोंदिन दल के सदस्य राजा को मृत्युदण्ड देने के पक्ष में न थे। जैकोबिन लुई XVI को किसी भी दया अथवा रियायत के अयोग्य समझते थे। राब्सपीयर ने लुई XVI को मृत्युदण्ड दिए जाने का समर्थन करते हुए कहा, "**राज्य को जीवित रखने के लिए राजा की मृत्यु आवश्यक है।**"[2] जैकोबिन दल तो बिना मुकदमा चलाए राजा को दण्डित करने के पक्ष में था, तथापि राजा पर मुकदमा चलाया गया तथा उसे दोषी पाया गया। अतः 16 जनवरी, 1793 ई. को राष्ट्रीय सम्मेलन में इस बात पर मतदान हुआ कि राजा को मृत्युदण्ड दिया जाए अथवा नहीं। इस मतदान में कुल 721 लोगों ने मतदान किया जिसमें से 387 मत मृत्यु के पक्ष में व 334 विपक्ष में पड़े। इस प्रकार लुई XVI की मृत्यु निश्चित हो गयी।

21 जनवरी, 1793 ई. को तुइलरी राजमहल के सामने **गिलोटिन** (Gullotine) को खड़ा किया गया। दिन में 10 बजे लुई XVI को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। इस स्थान को आजकल **गणतन्त्र चौक** (Republic Square) कहा जाता है। लुई XVI ने साहसपूर्वक मौत को गले लगा लिया।[3] गिलोटिन पर चढ़ते समय लुई XVI ने जनता को सम्बोधित करके कहा, "**सज्जनो, मैं निर्दोष हूं। मुझ पर लगाए गए आरोप झूठे हैं। मेरा रक्त फ्रांस की जनता के लिए कल्याणकारी हो यही मेरी कामना है।**"[4]

लुई XVI को यद्यपि गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया, किन्तु इसका प्रभाव फ्रांस के हित में अच्छा नहीं हुआ। हेजन ने लिखा है, "**राजा के वध का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के शत्रुओं की संख्या बढ़ गयी और उसके प्रति उनकी घृणा और भी अधिक गहरी हो गयी।**"[5]

---

1 "Thus unostentatiously did the Republic make its appearance upon the scene." —Hazen, *op. cit.*, p. 132.

2 "The king must die so that the state may live." —*Robespierre.*

3 "He was greater on the scaffold than he had been upon the throne." —Hazen, *op. cit.*, p. 133.

4 "Gentlemen, I am innocent of that of which I am accused. May may blood assure the happiness of the French." —*Louis* XVI

5 "The immediate consequence of the execution was a great increase in the number of enemies." —Hazen, *op. cit.*, p. 133.

लुई XVI की मृत्यु के निम्नलिखित प्रभाव हुए :

(i) फ्रांस के शत्रुओं में पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ा।

(ii) इंग्लैण्ड ने लुई XVI की मृत्यु की आलोचना की। इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री छोटे पिट (Pitt the Younger) ने इसे एक अमानवीय घटना (Inhuman Act) बताया। लुई XVI की हत्या के पश्चात् इंग्लैण्ड भी आस्ट्रिया व प्रशा का साथी बन गया।

(iii) राजतन्त्र समर्थक राष्ट्रीय सम्मेलन के घोर विरोधी हो गए। अनेक स्थानों पर विद्रोह हो गए।

(iv) जैकोबिन व जिरोंदिन दल के सम्बन्ध और खराब हो गए।

(v) फ्रांस की सेना का योग्य सेनापति दूमरिज (Domoriez) भी राष्ट्रीय सम्मेलन का विरोधी हो गया क्योंकि वह लुई XVI की मृत्यु के पक्ष में न था।[1]

(iv) **शक्तिशाली सरकार का संगठन** (Organization of the Strong Government)—राष्ट्रीय सम्मेलन के चारों ओर अनेक समस्याएं थीं। लुई XVI को मृत्युदण्ड दिए जाने से राष्ट्रीय सम्मेलन की समस्याएं और अधिक बढ़ गयीं। इन विषम परिस्थितियों का राष्ट्रीय सम्मेलन ने अत्यन्त साहस के साथ सामना किया। हेजन ने लिखा है, **"किसी अन्य सरकार ने कभी इससे अधिक क्रियाशीलता, साहस और निर्भीकता का परिचय नहीं दिया।"**[2] राष्ट्रीय सम्मेलन ने एक आदेश जारी करके युवा एवं शक्तिशाली व्यक्तियों को सेना में भर्ती किया। इस प्रकार तीन लाख सैनिकों को भर्ती किया गया। जिससे सेना शक्तिशाली हो गयी। इसके साथ ही वृद्धों व स्त्रियों को युद्ध सम्बन्धी साज-सामान बनाने तथा सैनिकों की देखभाल का कार्य भी सौंपा गया, जो उस समय की स्थिति को देखते हुए आवश्यक था, क्योंकि मित्र राष्ट्रों के आक्रमण का खतरा फ्रांस पर मंडरा रहा था। **इस प्रकार फ्रांस को युद्ध के लिए तैयार करने का श्रेय तत्कालीन रक्षा-मन्त्री कार्नो** (Carnot) **को है जिसने सैनिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु मनोवैज्ञानिक रूप से भी फ्रांस को युद्ध का सामना करने व विद्रोहियों का दमन करने के लिए तैयार कर दिया।**

इसके अतिरिक्त फ्रांस की आन्तरिक स्थिति को देखते हुए फ्रांस में एक शक्तिशाली सरकार का होना आवश्यक था। सरकार शक्तिशाली तभी हो सकती थी जबकि उसे शक्तियां प्रदान की जातीं। अतः 6 अप्रैल, 1793 को एक समिति का गठन किया गया जिसे **लोक सुरक्षा समिति** (Committee for Public Safety) कहा गया। इस समिति को कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के असीमित अधिकार सौंपे गए। यद्यपि इसका कार्य लोक सुरक्षा था, किन्तु इसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए अत्यधिक अत्याचार किए। इसी कारण **समिति को आतंक का राज्य** (Reign of terror) **की आत्मा कहा गया है। इस समिति में 12 सदस्य थे।** इनमें राब्सपीयर व कार्नो (Carnot) प्रमुख थे। लोक सुरक्षा समिति के अतिरिक्त एक अन्य समिति की भी स्थापना की गयी। इसे **सामान्य रक्षा समिति** (Committee for General Security) कहा गया। इस समिति के 21 सदस्य थे। इस समिति का कार्य देश में शान्ति

1 "It was true, Louis XVI was a perfidious scoundrel but it was folly to cut his head off."
—*Dumoriez*

2 "The convention stiffened for the fray, resolved to do or die, or both, if necessary. No government was ever more energetic." —Hazen, *op. cit.*, p. 134.

और व्यवस्था बनाए रखना था। एक प्रकार से इसका कार्य आधुनिक पुलिस के समान था। इस समिति को भी व्यापक अधिकार दिए गए। यह समिति किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती थी। इस सुविधा के लिए एक कानून **'लॉ ऑफ सस्पेक्ट'** (Law of Suspect) बनाया गया था। इसके अतिरिक्त एक न्यायालय की भी स्थापना की गयी जिसे **'क्रान्तिकारी न्यायालय'** (Revolutionary Tribunal) कहते थे। क्रान्ति के सिद्धान्तों का विरोध करने वालों पर इस न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता था व उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। इसी कारण राष्ट्रीय सम्मेलन के एक सदस्य ने इस न्यायालय की कार्यप्रणाली पर टिप्पणी करते हुए कहा था, **"कानून के नाम पर, निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने के लिए इन न्यायालयों को बनाया गया।"**[1]

(v) **सामाजिक सुधार** (Social Reforms)—राष्ट्रीय सम्मेलन ने अनेक राष्ट्रीय सुधार भी किए। **नीग्रो दासता** (Negro Slavery) **का फ्रांस से उन्मूलन किया गया।** फ्रांस में वर्ग के स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति को फ्रांस के नागरिक के रूप में जाना गया। बड़े-बड़े जमींदारों की भूमि को सरकार ने अपने अधीन कर गरीब किसानों में वितरित कर दिया ताकि सामाजिक-आर्थिक समानता स्थापित हो सके। विवाह व तलाक के नियमों को सरल बना दिया गया। सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकारों को स्पष्ट किया गया। इसके अतिरिक्त फ्रेंच को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया ताकि राष्ट्रीयता की भावना प्रबल हो सके। **फ्रांस में विभिन्न उपाधियों को भी समाप्त कर दिया गया। राजा को भी एक साधारण नागरिक ही समझा जाता था।**[2] शिक्षा के क्षेत्र में भी राष्ट्रीय सम्मेलन ने सुधार किए। विभिन्न स्कूलों व पुस्तकालयों की स्थापना की गयी।

(vi) **आर्थिक सुधार** (Economic Reforms)—राष्ट्रीय सम्मेलन के शासन काल के दौरान फ्रांस में अनेक आर्थिक सुधार भी किए गए। आवश्यक वस्तुओं के मूल्य व मजदूरी को निश्चित कर दिया गया। ऐसा न करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी। फ्रांस में मीट्रिक प्रणाली की भी स्थापना की गयी। प्रवासी सामन्तों (Emigres) व पादरियों की सम्पत्ति को सरकार ने जब्त कर लिया। राज्य की वित्तीय समस्याओं का समाधान करने के लिए एक **'वित्त विशेषज्ञ परिषद'** (Financial Committee) की स्थापना की गयी।

(vii) **कानूनी सुधार** (Code of Law)—कानूनी क्षेत्र में राष्ट्रीय सम्मेलन ने अत्यन्त महत्वपूर्ण सुधार किए। फ्रांस में बने हुए कानूनों को संहिता (Code) का रूप प्रदान करने का कार्य प्रारम्भ किया गया। उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों में संशोधन किया गया। ऋण वापस न लौटाने की स्थिति के लिए भी कानून में संशोधन किया गया। पहले ऋण न लौटाने पर जेल भेजने की व्यवस्था थी, इसे अब समाप्त कर दिया।

(viii) **धार्मिक सुधार** (Religious Reforms)—राष्ट्रीय सम्मेलन के शासन के दौरान महत्वपूर्ण धार्मिक परिवर्तन किए गए। राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्य पोप की सार्वभौम सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे। राष्ट्रीय सम्मेलन के द्वारा ईसाई ईश्वर के स्थान पर **बुद्धि पूजा** (Worship

1 "It (Revolution Tribunal) is to enable men to murder innocence under the shadow of law."

2 राष्ट्रीय सम्मेलन के लोगों को राजा एवं रानी से इतनी नफरत थी कि कहा जाता है कि ताश के पत्तों में से भी राजा व रानी को हटा दिया था।

of Reasoning) को महत्ता दी गयी व गिरजाघरों को **तर्क के मन्दिर** (Temples of Reasoning) बनाने का प्रयास किया गया। गिरजाघरों से घण्टे हटा दिए गए। गिरजाघरों के शिखर तोड़ डाले गए क्योंकि वे अन्य इमारतों से ऊंचे थे, अतः समानता के सिद्धान्त का विरोध करते थे। 10 नवम्बर, 1793 ई. को नात्रे डेम (Notre Dome) के चर्च को '**बुद्धि के मन्दिर**' में परिवर्तित कर दिया गया। गणतन्त्र के तीन रंगों से सजाकर एक युवती को बुद्धि की देवी का रूप प्रदान किया गया। उस समय की स्थिति को हरवर्ड के निम्न कथन से भली-भांति समझा जा सकता है। उसने कहा, "**प्रकृति के अतिरिक्त हमें अन्य कोई धर्म नहीं चाहिए, तर्क के अतिरिक्त कोई मन्दिर, तथा स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व के अतिरिक्त कोई आराधना नहीं चाहिए।**"

(ix) **नवीन संविधान का निर्माण** (New Constitution)—राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य नवीन संविधान की स्थापना करना था। अतः 1793 ई. में एक नवीन संविधान की रचना की गयी। इस संविधान में विभागों के अधिकारों तथा जनता के अधिकारों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया था। जनता को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया तथा यह भी निश्चित किया गया कि प्रत्येक कानून पारित करने से पूर्व उसे जनता के समक्ष रखा जाएगा, किन्तु **आतंक का शासन** (Reign of Terror) लागू हो जाने के कारण यह संविधान कार्यान्वित न हो सका। अतः 1795 ई. में एक नवीन संविधान तैयार किया गया। इस संविधान को '**तृतीय वर्ष का संविधान**' (Constitution of the III-Year) भी कहा जाता है, क्योंकि राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा जिस नए कलेण्डर की स्थापना की गयी थी उसके तीसरे वर्ष में यह संविधान तैयार हुआ था।

1795 **ई. में इस नवीन संविधान के द्वारा दो सदन** (Houses) **वाले विधानमण्डल की स्थापना की गयी। प्रथम सदन को बुजुर्गों का सदन** (Council of Elders) **कहा गया।** इस सदन का सदस्य 40 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति नहीं बन सकता था। इन सदस्यों का विवाहित होना भी अनिवार्य था। बुजुर्गों के सदन के सदस्यों को वीटो (Veto) का अधिकार था। इस सदन में सदस्यों की संख्या 250 थी। **दूसरे सदन को पांच सौ का सदन** (Council of Five Hundred) **कहते थे क्योंकि इसमें सदस्यों की संख्या पांच सौ थी।** इनकी आयु कम से कम 30 वर्ष होना अनिवार्य था। इस सदन का कार्य कानून बनाना था। दोनों ही सदनों के सदस्यों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव (Indirect Election) होता था। प्रत्येक वर्ष दोनों ही सदनों के एक-तिहाई सदस्यों को सेवानिवृत्त किया जाता था।

उपरोक्त सदनों के द्वारा डाइरेक्टरी (Directory) **के लिए सदस्यों को चुना जाता था।** कार्यपालिका के समस्त अधिकार डाइरेक्टरी में ही निहित थे। डाइरेक्टरी में पांच सदस्य होते थे। इनको चुनने के लिए पहले पांच सौ सदस्यों का सदन (Council of 500 Hundred) किन्हीं पचास को चुनता था। उनमें से पांच का चुनाव बुजुर्गों के सदन के द्वारा किया जाता था। इस प्रकार डाइरेक्टरी के पांच सदस्यों में से प्रत्येक तीन-तीन माह के लिए डाइरेक्टरी का अध्यक्ष बनता था। प्रत्येक वर्ष डाइरेक्टरी के एक सदस्य को सेवानिवृत्त कर दिया जाता था। डाइरेक्टरी एक मन्त्रिमण्डल का गठन करती थी जिसमें 6 सदस्य होते थे। 1795 **ई. में निर्मित नवीन संविधान को अग्र तालिका से समझा जा सकता है :**
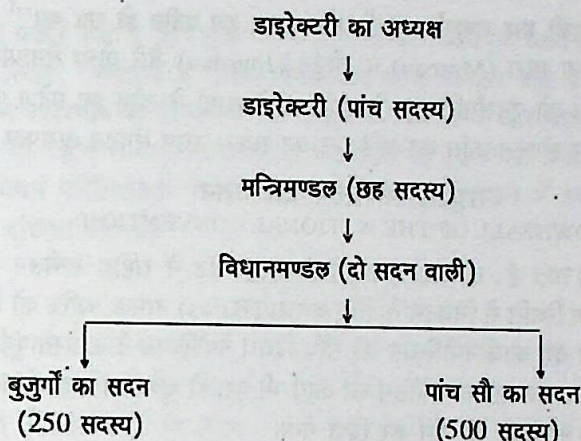
नवीन संविधान में प्रान्तीय प्रशासन को 1791 ई. के संविधान के अनुरूप ही रखा गया। इसके द्वारा समाचार-पत्रों को स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। नवीन संविधान की एक अन्य विशेषता धर्म-पूजन की स्वतन्त्रता प्रदान किया जाना भी थी। इस संविधान के द्वारा **'अवरोध और नियन्त्रण के सिद्धान्त'** को अपनाया गया था जिससे शक्ति किसी एक संस्था अथवा व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित न हो सके।[1]

राष्ट्रीय सम्मेलन की वैदेशिक नीति
(FOREIGN POLICY OF NATIONAL CONVENTION)

आन्तरिक मामलों के समान ही वैदेशिक मामलों में भी राष्ट्रीय सम्मेलन ने महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त कीं। जिस समय राष्ट्रीय सम्मेलन शक्ति में आया था, फ्रांस चारों ओर से संकट से घिरा हुआ था। विदेशी सेनाएं फ्रांस की सीमाओं पर पड़ी थीं। राष्ट्रीय सम्मेलन के शासनकाल में ही लुई XVI को गिलोटिन पर चढ़ा दिए जाने के परिणामस्वरूप वैदेशिक आक्रमण का भय और बढ़ गया क्योंकि इस घटना ने यूरोप के सभी राजतन्त्रात्मक राज्यों के अध्यक्षों को भयभीत कर दिया था। राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रशासन काल के दौरान निम्नलिखित प्रमुख घटनाएं हुईं—

प्रथम संगठन (First Coalition)—फ्रांस के विरुद्ध यूरोप के राज्यों ने मिलकर 1793 ई. में एक संगठन बनाया। इस संगठन के सदस्य आस्ट्रिया, प्रशा, हालैण्ड, स्पेन, सार्डीनिया और इंग्लैण्ड थे! इस संगठन ने 1792 ई. में फ्रांस पर आक्रमण कर दिया व बेल्जियम, सेवाय, नाइस, राइन क्षेत्र पर मित्रराष्ट्रों की सेना ने अधिकार कर लिया। फ्रांस को पराजय का सामना करना पड़ा।

फ्रांस की विजय (Conquest of France)—फ्रांस इस पराजय से हतोत्साहित न हुआ। इसी समय फ्रांस को कार्नो (Carnot) के रूप में अत्यन्त योग्य युद्ध मन्त्री मिल गया। कार्नो सैनिक प्रबन्ध में अद्वितीय था। कार्नो ने फ्रांस की सेना को अत्यधिक शक्तिशाली बनाया। इसके साथ ही उसने सम्पूर्ण फ्रांस में युद्ध की भावनाएं प्रेरित कर दीं। हेज ने लिखा है :

1 "On the whole the new constitutional charter established a system of checks and balances, designed to prevent the unrestrained control of the people and the concentration of power in the hands of and individual."
—Leo Gershou, *op. cit.*, p. 307.

"आधुनिक युग में पहली बार सम्पूर्ण राष्ट्र ही शस्त्र उठाए हुए प्रतीत हो रहा था।"[1] फ्रांस के सौभाग्य से उसके पास मारा (Marcau) व जोर्डन (Jourdan) जैसे योग्य सेनापति थे।

इस प्रकार सेना को पुनर्संगठित करके फ्रांस ने मित्रराष्ट्रों से खोए हुए प्रदेश पुनः जीत लिए। इस प्रकार प्रथम संगठन फ्रांस का अहित न कर सका। प्रथम संगठन असफल हो गया।

राष्ट्रीय सम्मेलन का पतन
(DOWNFALL OF THE NATIONAL CONVENTION)

5 अक्टूबर, 1795 ई. को 30 हजार के लगभग भीड़ ने राष्ट्रीय सम्मेलन पर धावा बोल दिया। इस भीषण स्थिति से निबटने के लिए बारास (Baras) नामक व्यक्ति को जिम्मेदारी सौंपी गयी। बारास ने यह कार्य नेपोलियन को सौंप दिया। नेपोलियन ने कठोरतापूर्वक इसका दमन किया। इस समय तक राष्ट्रीय सम्मेलन का कार्य भी पूरा हो चुका था, अतः 26 **अक्टूबर, 1795 ई. को राष्ट्रीय सम्मेलन को भंग कर दिया गया।**

राष्ट्रीय सम्मेलन का मूल्यांकन
(EVALUATION OF NATIONAL CONVENTION)

राष्ट्रीय सम्मेलन ने 1792 ई. से 1795 ई. तक शासन किया। जिस समय राष्ट्रीय सम्मेलन शक्ति में आया था फ्रांस आन्तरिक व बाह्य समस्याओं से घिरा हुआ था। राष्ट्रीय सम्मेलन ने आन्तरिक व बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में अद्भुत सफलता प्राप्त की। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता। जैसा कि लियो गर्शोय ने लिखा है : **"राष्ट्रीय सम्मेलन ने डाइरेक्टरी को युद्ध एवं दिवालियापन के तोहफे दिए।"**[2]

किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था। राष्ट्रीय सम्मेलन की कुछ प्रमुख उपलब्धियां निम्नवत् थीं—

(i) मीट्रिक प्रणाली (दशमलव प्रणाली) का प्रचलन किया।
(ii) राष्ट्रीय सम्मेलन ने विधि संहिता (code) तैयार की।
(iii) राष्ट्रीय सम्मेलन ने शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया।
(iv) धर्म के क्षेत्र में भी अनेक सुधार किए गए।
(v) राष्ट्रीय भावना में वृद्धि की।
(vi) आर्थिक सुधारों द्वारा फ्रांस में समानता की स्थापना की। इसी कारण डेविड थामसन ने राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, **"जनता व सरकार, समाज व राज्यों के सम्बन्ध निश्चित रूप से पहले की तुलना में घनिष्ठ हो गए।"**[3]
(vii) फ्रांस को सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाया तथा प्रथम संगठन (First Coalition) के विरुद्ध सफलता प्रदान करायी।[4]

---

1 "For the first time in modern history a nation was truly in arms."
—Hayes, *op. cit.*

2 "The immediate gifts of the convention to the government of the Directory were war and bankruptcy."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 316.

3 "The relation between government and governed, between State and Society, became definitely more reciprocal and intimated."
—David Thomson, *Europe Since Napoleon*, p. 42.

4 "It saved France from its enemies." —Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 36.

इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सम्मेलन ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए थे। इसी कारण हेजन ने लिखा, "**गणतन्त्र के अनेक विजयोपहार इतने शानदार और उसकी सफलताओं का लेखा इतना आदरणीय था कि बाद में भी पीढ़ियों ने उनसे प्रेरणा और शिक्षा ग्रहण की।**"[1] लियो गर्शोय ने भी राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उसने समस्त कार्य अत्यन्त विषम परिस्थितियों में किए, अतः इस तथ्य को ध्यान में रखने पर उसके कार्य अद्वितीय दृष्टिगत होते हैं।[2]

आतंक का शासन
(REIGN OF TERROR)

किसी भी क्रान्ति के पश्चात्, क्रान्ति से हुए परिवर्तनों को बनाए रखना अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि क्रान्ति विरोधी तत्व पुनः पूर्व स्थिति लाने का प्रयास करते हैं। फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् भी यह स्थिति थी। फ्रांस में न केवल आन्तरिक समस्याएं थीं वरन् बाह्य संकट भी उस पर छाया हुआ था। विदेशी सेनाएं फ्रांस की सीमा पर खड़ी थीं जो कभी भी आक्रमण कर सकती थीं। फ्रांस के राजतन्त्र समर्थक आस्ट्रिया की सहायता से फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। इन परिस्थितियों में '**आतंक के शासन**' की स्थापना की गयी। आतंक के शासन का उद्देश्य फ्रांस में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के साथ ही विदेशी आक्रमणों से फ्रांस की रक्षा करना था। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन ने आतंक तथा हिंसा का रास्ता अपनाया जिसके द्वारा क्रान्ति विरोधी लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार आतंक एवं हिंसा के इस शासन को **आतंक का शासन** (Reign of Terror) कहा जाता है। **ग्रांट एण्ड टेम्परले** ने लिखा है, "**इतिहास में अनेक आतंक के शासन हुए हैं, अनेक सरकारें हुई हैं जिन्होंने शक्ति के द्वारा शासन किया है, किन्तु फ्रांस में आतंकवादी शासन की उल्लेखनीय बात यह है कि फ्रांस में यह प्रजातन्त्र तथा जनता के प्रभुत्व के नाम पर किया गया।**"[3]

आतंक का शासन कब प्रारम्भ हुआ यह कहना कठिन है। फिर भी क्रान्तिकारी न्यायालय की स्थापना से राब्सपीयर की मृत्यु तक के समय को 'आतंक के शासन का काल' माना जा सकता है। इस तरह आतंक का शासन 9 मार्च, 1793 ई. से 28 जुलाई, 1794 ई. तक रहा।

आतंक का शासन स्थापित करने के कारण
(CAUSES OF ESTABLISHING THE REIGN OF TERROR)

राष्ट्रीय सम्मेलन ने जिस समय शासन करना प्रारम्भ किया। फ्रांस चारों ओर से संकटों से घिरा हुआ था। फ्रांस में गृह-युद्ध के आसार नजर आ रहे थे तथा सीमाओं पर आस्ट्रिया

1 "The Republic had its glorious Trophies, its honourable records, from which later times were to derive inspiration and instruction." —Hazen, *op. cit.*, p. 148.

2 "When one considers that France was continuously at war from 1792 to 1795 that there was civil war, dictatorship, food shortage and an economic and political crisis, the convention's achievements appear stupendous."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 316.

3 "There have been many Reigns of terror in history—many governments, that is to say, which have held power by violence and by frightening their opponents. What is peculiarly ironic about the position of the Jecobins is that their rule, though it rested upon the Revolutionary Tribunal and the guillotine, was exercised all the times in the name of democracy and the sovereignty of people."
—Grant and Temperley, *op. cit.*, pp. 43-44.

व प्रशा की सेनाएं खड़ी थीं। इसी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए दांतों ने कहा था, "**क्रान्ति दो पाटों के बीच में है—घर में भी शत्रु हैं, सीमा पर भी शत्रु हैं।**"[1] अतः क्रान्ति के समर्थकों का विचार था कि जो भी क्रान्ति अथवा उसके सिद्धान्तों का विरोध करता हो उसका विनाश कर देना चाहिए।[2] इन्हीं उद्देश्यों को लेकर फ्रांस में आतंक के शासन की स्थापना की गयी। **आतंक का शासन स्थापित किए जाने के निम्नलिखित कारण थे :**

(i) **आन्तरिक समस्याएं** (Internal Problems)—फ्रांस की आन्तरिक स्थिति बहुत खराब थी। राजतन्त्र समर्थक निरन्तर षड्यन्त्र करके फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की स्थापना करना चाह रहे थे। जिरोंदिन एवं जैकोबिन दलों में पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। इसी समय ब्रिटेनी तथा लावेण्डी नामक प्रान्तों में विद्रोह हो गया। इन विद्रोहों के साथ ही फ्रांस के विभिन्न भागों में विद्रोह होने लगे। इन विद्रोहों को दबाने के लिए शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता थी। अतः आतंक के शासन की स्थापना की गयी।

(ii) **विदेशी आक्रमण** (Foreign attacks)—राजतन्त्र समर्थक देश फ्रांस के विरोधी हो गए तथा शक्ति के द्वारा फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। **इसी उद्देश्य से इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री छोटे पिट से फ्रांस के विरुद्ध प्रथम संगठन** (First coalition) **बनाया जिसमें इंग्लैण्ड के अतिरिक्त आस्ट्रिया, प्रशा, स्पेन, हालैण्ड, इत्यादि देश थे।** इस संगठन ने आक्रमण करके बेल्जियम, राइन प्रदेश, सेवाय, नाइस, आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। ऐसे में फांस का अस्तित्व खतरे में था। अतः फ्रांस की सुरक्षा के लिए '**आतंक का शासन**' प्रारम्भ किया गया ताकि सेना को सुसंगठित किया जा सके। आतंक का शासन स्थापित करके कार्नो (Carnot) को युद्ध मन्त्री बनाया जिसने सेना को सुसंगठित किया व फ्रांस के गौरव को बचाया।

(iii) **लुई XVI को मृत्यु-दण्ड** (Louis XVI Guillotined)—21 जनवरी, 1793 ई. को लुई XVI को गिलोटिन पर चढ़ाकर मृत्यु-दण्ड दिया गया। लुई XVI को मृत्यु-दण्ड देने से देश के अन्दर व बाहर राष्ट्रीय सम्मेलन के अनेक शत्रु हो गए। अतः इस स्थिति का सामना करने के लिए एक शक्तिशाली सरकार का होना आवश्यक था। अतः दांतों व जैकोबिन दल के अन्य नेताओं ने आतंक के राज्य की स्थापना की।

(iv) **जैकोबिन दल का शक्ति में आना** (Jacobins come to Power)—फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् कुछ लोगों का यह मानना था कि फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश ऐसे लोग दो दलों में विभक्त हो गए जिन्हें जिरोंदिन व जैकोबिन कहा जाता था। जैकोबिन दल हिंसा में विश्वास रखता था। राष्ट्रीय सम्मेलन में यद्यपि जिरोंदिन दल के सदस्यों की संख्या अधिक थी, किन्तु जैकोबिन दल का जनसाधारण पर अच्छा प्रभाव था। 31 मई, 1793 ई. को जैकोबिन दल ने राष्ट्रीय सम्मेलन पर अधिकार कर लिया तथा जिरोंदिन दल के प्रमुख नेताओं को बन्दी बना लिया। इस प्रकार फ्रांस पर जैकोबिन दल का प्रभुत्व स्थापित हो गया। जैकोबिन हिंसा में विश्वास रखते थे, अतः उन्होंने आतंक का शासन प्रारम्भ

1 **"The Revolution is between two fires, enemy at home and enemy at border."**
—*Danton*

2 **"What constitutes the Republic is the complete destruction of everything that is opposed to it."**
—*St. Just*

कर दिया। ग्रांट एण्ड टेम्परले ने भी इस विषय में लिखा है, "**आतंक का राज्य, जो अगस्त, 1792 ई. में प्रारम्भ हुआ था, जिरोंदिनों के पतन से चरम सीमा पर पहुंच गया।**"[1]

आतंक के राज्य की स्थापना
(ESTABLISHMENT OF REIGN OF TERROR)

31 मई, 1793 ई. को जैकोबिनों ने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार फ्रांस में जैकोबिन दल का शासन प्रारम्भ हुआ। जैकोबिन दल के प्रमुख नेताओं में **दांतों** (Danton), **राब्सपीयर** (Rabespierre), **सेंट जस्ट** (St. Just) तथा **कार्नो** (Carnot) थे। इन नेताओं का विचार था कि फ्रांस में व्याप्त अशान्ति, दुराचार व अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना किया जाना आवश्यक था। अतः सरकार को शक्तिशाली बनाने के लिए अनेक कदम उठाए गए, जिनके परिणामस्वरूप फ्रांस में आतंक के शासन की स्थापना हुई, जिनका वर्णन निम्नवत् है—

(i) **लोक सुरक्षा समिति** (Committee for Public Safety)—लोक सुरक्षा समिति की स्थापना आतंक का शासन प्रारम्भ किए जाने का मुख्य स्तम्भ थी। **इस समिति को कार्यपालिका** (Executive) **व व्यवस्थापिका** (Legislature) **के असीमित अधिकार सौंपे गए।** यद्यपि इस समिति का कार्य लोक सुरक्षा था, किन्तु इसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए अत्यधिक अत्याचार किए। इसी कारण इस समिति को **आतंक के राज्य की आत्मा** (Soul of the Terror) कहा गया है। इस समिति में सदस्यों की संख्या 12 थी जिसमें राब्सपीयर व कार्नो प्रमुख थे।

(ii) **सामान्य सुरक्षा समिति** (Committee for General Safety)—सामान्य सुरक्षा समिति में 21 सदस्य थे। इस समिति का कार्य देश में सुरक्षा व शान्ति बनाए रखना था। इस समिति को भी व्यापक अधिकार प्राप्त थे। यह समिति किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती थी। इस सुविधा के लिए '**लॉ ऑफ सस्पेक्ट**' (Law of Suspects) बनाया गया था।

(iii) **क्रान्तिकारी न्यायालय** (Revolutionary Tribunal)—क्रान्ति व क्रान्ति के सिद्धान्तों का विरोध करने वालों पर मुकदमा चलाने व दण्डित करने के लिए पेरिस में क्रान्तिकारी न्यायालय की स्थापना की गयी। शीघ्र ही सम्पूर्ण फ्रांस में ऐसे न्यायालय स्थापित हो गए। इन न्यायालयों में मुकदमे का दिखावा किया जाता था तथा अधिकांशतया अपराधी को मृत्युदण्ड ही प्रदान किया जाता था। इसी कारण राष्ट्रीय सम्मेलन के एक सदस्य ने इन न्यायालयों के विषय में कहा था, "**कानून के नाम पर निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने के लिए, इन न्यायालयों को बनाया गया है।**"[2] इन न्यायालयों ने हजारों व्यक्तियों को मृत्युदण्ड प्रदान किया। मृत्युदण्ड फैसला सुनाने के कुछ ही घण्टों के पश्चात् दे दिया जाता था।

(iv) **गिलोटिन** (Guillotine)—आतंक का राज्य स्थापित करने में गिलोटिन नामक यन्त्र ने भी अत्यधिक सहायता की। इस यन्त्र का आविष्कार डॉ. गिलोटिन ने किया था, अतः उसी के नाम पर इसे गिलोटिन कहा गया। इस यन्त्र का प्रयोग मृत्युदण्ड देने के लिए किया

1 "With the fall of the Girondists the Reign of Terror, which really began in August 1792, may be said to have reached its culmination."

—Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 43.

2 "It is to enable men to murder innocence under the shadow of law."

जाता था। इस यन्त्र में दो स्तम्भों के बीच में एक तेज धार वाला ब्लेड लटका रहता था। जिनको मृत्युदण्ड देना होता था उसे दोनों स्तम्भों के बीच में लिटाकर उसकी गर्दन पर यह ब्लेड गिरा दिया जाता था जिससे उसकी गर्दन कट जाती थी। इस यन्त्र के द्वारा मृत्युदण्ड सार्वजनिक स्थान पर दिया जाता था ताकि लोग आतंकित होकर क्रान्ति के विरुद्ध आवाज न उठाएं।

(v) **अन्य आतंकवादी कार्य** (Other Terrorist Measures)—जैकोबिन दल ने जैकोबिन क्लब की स्थापना की जिसकी शाखाएं अनेक नगरों में खोली गयीं। इसके सदस्य क्रान्ति विरोधी गतिविधियों पर नजर रखते थे तथा उनकी सूचना पर लोक रक्षा समिति कार्यवाही करती थी तत्पश्चात् सन्देह के आधार पर गिरफ्तार व्यक्तियों को मृत्युदण्ड प्रदान किया जाता था।

आतंकवादी शासन प्रारम्भ
(REIGN OF TERROR STARTED)

इस प्रकार विभिन्न अधिकारों से स्वयं को शक्तिशाली बनाने के पश्चात् जैकोबिन दल ने आतंक का शासन स्थापित किया। जैकोबिन दल ने आदेश जारी किया कि जो लोग क्रान्ति का विरोध करेंगे उन्हें मृत्युदण्ड दिया जाएगा। इस आधार पर हजारों व्यक्तियों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। **राजपरिवार के अनेक सदस्य, जिरोंदिन दल के सदस्य व प्रवासी कुलीनों** (Emigres) **को मृत्युदण्ड प्रदान किया गया।** लुई XVI की पत्नी रानी अन्त्वायनेत (Queen Antoinette) को भी गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। रानी अन्त्वायनेत के अतिरिक्त जिन अन्य व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया गया उनमें प्रमुख थे—ड्यूक ऑफ आर्लियन्स (Duke of Orleans), बेली (Bailly), बीरों (Biron) व मादाम रोलां (Madam Roland)। मादाम रोलां ने गिलोटिन पर जाते समय कहा, '**हे स्वतन्त्रता, तेरे नाम पर कितने अपराध किए जाते हैं।**''[1]

आतंक के शासन काल में जैकोबिन दल के तीन भाग थे, जिनके नेता क्रमशः दांतों (Danton), हरबर्ट (Herbert) तथा राब्सपीयर (Robespierre) थे। इन दलों में पारस्परिक फूट थी। दांतों व राब्सपीयर ने मिलकर हरबर्ट की हत्या करवा दी व दांतों जैकोबिन दल का प्रमुख बन गया। कालान्तर में दांतों की भी हत्या कर दी गयी व राब्सपीयर आतंक के शासन क सर्वेसर्वा बन गया।

आतंक के शासन में अनेक स्थानों पर भयंकर विद्रोह हुए, किन्तु उनका कठोरतापूर्वक दमन किया गया। ला वेंडी (La Vendee) नामक स्थान पर 1,800 व्यक्तियों को नदी में डुबो दिया गया। लियान्ज (Lyons) नामक स्थान पर भी भीषण विद्रोह हुआ, किन्तु सेना ने पूरा लिआन्ज नगर ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अनेक अन्य नगरों, जहां विद्रोह हुए, की जनता पर अनेक अत्याचार किए गए।

राब्सपीयर की निरंकुशता के कारण धीरे-धीरे उसका विरोध बढ़ने लगा। फ्रांस में प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन संकट में दिख रहा था। **कोई नहीं जानता था कि कब किस को सन्देह में ही गिलोटिन पर चढ़ा दिया जाएगा।** 27 जुलाई, 1794 ई. को जब राब्सपीयर राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण दे रहा था, उसके विरोधियों ने उसे घेर लिया व उसे व उसके साथियों को बन्दी

1 "Liberty ! What crimes are committed in thy name."

बना लिया। अगले दिन 28 जुलाई, 1974 ई. को राब्सपीयर को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। राब्सपीयर को बन्दी बनाने व उसे गिलोटिन पर चढ़ाने की घटना को फ्रांस के इतिहास में **'थर्मीडोरियन क्रान्ति'** (Thermidorian Revolution) के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार राब्सपीयर की मृत्यु के साथ ही आतंक का राज्य भी समाप्त हो गया।

आतंक का शासन समाप्त होने के कारण
(CAUSES FOR THE END OF THE REIGN OF TERROR)

आतंक के शासन के दौरान फ्रांस की जनता को अत्यधिक अत्याचारों का सामना करना पड़ा। सौभाग्य से, यह शासन अल्पकालीन ही रहा। **इसके पतन के लिए निम्नलिखित प्रमुख कारण थे :**

(i) जैकोबिन दल में फूट आतंक के शासन के पतन का मुख्य कारण था। इसी कारण से जैकेबिन नेता स्वयं ही एक-दूसरे की हत्या करने लगे। दांतों व राब्सपीयर ने हरबर्ट की हत्या करायी। राब्सपीयर ने दांतों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया।

(ii) जैकोबिन दल के नेताओं द्वारा आपस में ही हत्याकाण्ड करने से जैकोबिन दल के सदस्य भी भयभीत होने लगे। उन्हें स्वयं भी यह भय होने लगा कि उन्हें भी कभी भी मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता था।

(iii) आतंक का शासन जनता की इच्छा के विरुद्ध कायम किया गया था।

(iv) इस शासन के द्वारा क्रान्तिकारी स्वयं ही क्रान्ति विरोधी कार्य कर रहे थे। अतः इसका पतन निश्चित था।

(v) अधिक दिनों तक शक्ति के द्वारा किसी भी देश पर शासन नहीं किया जा सकता। अतः आतंक के शासन का पतन होना स्वाभाविक था।

(vi) फ्रांस ने अनेक देशों से सन्धियां कर बाह्य आक्रमण के खतरे को टाल दिया था। जनता का विचार था कि अब आतंक के शासन की आवश्यकता नहीं थी।

अतः उपरोक्त कारणोंवश आंतक के शासन का पतन हो गया।

आतंक के शासन का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE REIGN OF TERROR)

आतंक के शासन के दौरान अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए गए। जिस समय फ्रांस में आतंकवादी शासन की स्थापना की गयी थी फ्रांस की आन्तरिक व बाह्य स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। आतंक के शासन ने फ्रांस को संगठित करने के साथ ही शान्ति की भी स्थापना की। फ्रांस में राजतन्त्र समर्थक निरन्तर गणतन्त्र का विरोध कर रहे थे। **इस शासन ने गणतन्त्र विरोधियों का सफाया कर फ्रांस में गणतन्त्र को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया।** आतंक के शासन के दौरान युद्ध मन्त्री कार्नो (Carnot) ने सेना को संगठित व शक्तिशाली बनाया, जिसने फ्रांस को प्रथम संगठन (First Coalition) के हाथों अपमानित होने से बचाया।

इसके पश्चात् भी आतंक के शासन की कटु आलोचना इतिहासकारों के द्वारा की गयी है। ऐसे इतिहासकारों ने इस शासन को फ्रांस के इतिहास पर धब्बा बताया है तथा इसकी तुलना के क्रूरतम कालों से की है। इतिहासकारों द्वारा इस प्रकार का वर्णन करने का एक प्रमुख कारण यह है कि आतंक के शासन का यूरोप के अन्य देशों ने घोर विरोध किया था, क्योंकि उन राज्यों में राजतन्त्र कायम था। अतः आतंक के शासन के पश्चात् जितने भी ग्रन्थ

अन्य देशों के इतिहासकारों ने लिखे, उनमें इसकी कटु आलोचना की गयी। **इसके अतिरिक्त आतंक के शासन के दौरान उच्च वर्ग के लोग ही सर्वाधिक प्रताड़ित किए गए थे, अतः आतंक के शासन की अधिक आलोचना हुई।** फ्रांस में लुई XVI, उसकी रानी मेरी के स्थान पर यदि जनसाधारण में से किसी व्यक्ति व उसकी पत्नी को गिलोटिन पर चढ़ाया जाता तो सम्भवत: कोई कुछ न कहता, किन्तु कुलीनों व उच्च वर्ग के लोगों को गिलोटिन पर चढ़ाए जाने से सम्पूर्ण यूरोप आतंक के शासन का विरोधी हो गया। इतिहास साक्षी है कि सदैव निर्धन वर्ग ही अत्याचारों का शिकार होता आया है, किन्तु आतंक के शासन के दौरान उच्च वर्ग को प्रताड़ित किए जाने के कारण तीव्र प्रतिक्रिया हुई। वास्तव में, आतंक के शासन में निम्न वर्ग के लोगों को न तो गिलोटिन पर चढ़ाया गया और न ही उन्हें किसी प्रकार से परेशान किया गया, अपितु इससे जनसाधारण ने स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया था। अत: आतंक के शासन की आलोचना करना उचित एवं तर्कसंगत नहीं है। **तत्कालीन परिस्थितियां ही इस प्रकार की थीं जिसमें कठोर शासन के अभाव में फ्रांस में शान्ति व व्यवस्था की स्थापना करना सम्भव न था।**[1] राइकर ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, **"यह एक साधारण एवं असंवैधानिक शासन तन्त्र था। ऐसा होना आवश्यक भी था क्योंकि यह अनुभव किया गया कि ऐसे समय (संकटकालीन) में सरकार के हाथ संविधान से बंधे हुए नहीं होने चाहिए।"**[2]

प्रश्न

1. राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. आतंक के शासन का वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
4. राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रांस की समस्याओं का हल करने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त की। **(गोरखपुर,** 1989, 93)
5. नेशनल कन्वेन्शन की गृह एवं विदेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। **(गोरखपुर,** 1994)

1 "The question that arises, whether or not the Terror was justified is essentially irrelevant. Under the circumstances sanguinary and arbitrary was unavoidable."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 277.

2 "It was obviously an abnormal regime but times themselves were abnormal. It was an unconstitutional regime, for it was felt that the Government's hand must not be fattered by a constitution."
—Riker, *A Short History of Modern Europe*, p. 327.

5

डाइरेक्टरी का शासन
[RULE OF THE DIRECTORY]

भूमिका
(INTRODUCTION)

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) का 1795 ई. में अन्त हो गया, किन्तु पतन से पूर्व उसके द्वारा 1795 ई. में ही एक संविधान की रचना की गयी थी, जिसे **तृतीय वर्ष का संविधान** (Constitution of the Third Year) भी कहा जाता है। इस संविधान ने फ्रांस के भविष्य को निर्धारित किया। **इसके अनुसार फ्रांस में पांच सदस्यों की एक डाइरेक्टरी** (Directory) **के द्वारा शासन किया जाना था।** इस डाइरेक्टरी का अध्यक्ष इन्हीं पांच सदस्यों में से एक को बारी-बारी से होना था। ऐसा इसलिए किया गया था ताकि सम्पूर्ण शक्ति किसी एक ही व्यक्ति को सौंपने से उसके निरंकुश हो जाने का खतरा था। फ्रांस की जनता निरंकुशता से ऊब चुकी थी व गणतन्त्रात्मक शासन चाहती थी।

डाइरेक्टरी का कार्यकाल एवं उसके सदस्य
(TENURE AND THE MEMBERS OF THE DIRECTORY)

डाइरेक्टरी का शासनकाल 27 **अक्टूबर**, 1793 **ई. से** 19 **नवम्बर**, 1799 **ई. तक रहा।** डाइरेक्टरी के पांच सदस्य **बर्रास** (Barrus), **कार्नो** (Carnot), **एबेसिए** (Abbesieyes), **रूबेल** (Reubell) तथ **ला रिबेलियरे** (La Revelliere) थे।

डाइरेक्टरी के समक्ष समस्याएं
(PROBLEMS BEFORE THE DIRECTORY)

डाइरेक्टरी ने लगभग चार वर्षों तक शासन किया। उसका शासनकाल विपत्तियों से भरा हुआ था। डाइरेक्टरी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। हेजन ने लिखा है, **"डाइरेक्टरी का चार वर्ष का इतिहास अनिश्चित तथा संकटपूर्ण रहा और अन्त में बलपूर्वक उसको उखाड़ फेंका गया।"**[1] डाइरेक्टरी के समक्ष प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित थीं :

(i) फ्रांस की **आर्थिक स्थिति** दयनीय थी। फ्रांस की मुद्रा **आसीया** (Assignats) का अवमूल्यन हो गया था। तत्कालीन फ्रांस की आर्थिक स्थिति के विषय में लियो गर्शोय ने लिखा

1. "Its history of four years was troubled, uncertain and ended in a violent overthrow." —Hazen, *op. cit.*, p. 151.

है : **"जिस समय डाइरेक्टरी ने शासन प्रारम्भ किया खजाना खाली था, सेना व प्रशासन को बनाए रखने के लिए भी धन नहीं था। कर के रूप में वसूल किया जाने वाला धन आवश्यकता से कहीं कम था।"**[1] अतः फ्रांस की आर्थिक स्थिति को सुधारना आवश्यक था।

(ii) डाइरेक्टरी के शासन से **पहले फ्रांस में राष्ट्रीय सम्मेलन के अन्तर्गत आतंक का शासन** था। आतंक के शासन से फ्रांसीसी जनता बुरी तरह ऊब चुकी थी। सरकार पर से उसका विश्वास उठ गया था। उस विश्वास को पुनः स्थापित करना आवश्यक था।

(iii) 1789 ई. की क्रान्ति के पश्चात् से फ्रांस में **निरन्तर अशान्ति का वातावरण रहा था।** जनता इस वातावरण से ऊब चुकी थी तथा शान्ति चाहती थी।[2] डाइरेक्टरी को इस ओर भी ध्यान देना था तथा जनता को रचनात्मक कार्य करके दिखाना आवश्यक था।

(iv) डाइरेक्टरी की स्थापना व उसके **शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र** किए जा रहे थे उनको दबाना भी डाइरेक्टरी के लिए एक प्रमुख कार्य था।

(v) फ्रांस पर **वैदेशिक आक्रमणों का भय** छाया हुआ था, उनसे निबटना भी डाइरेक्टरी के लिए आवश्यक था।

डाइरेक्टरी की गृह नीति
(HOME POLICY OF DIRECTORY)

डाइरेक्टरी के समक्ष इतनी अधिक समस्याएं थीं कि उन्हें सुलझाने के लिए अत्यन्त योग्य एवं कार्यकुशल व्यक्तियों का डाइरेक्टरी का सदस्य होना आवश्यक था, किन्तु यह फ्रांस का दुर्भाग्य था कि डाइरेक्टरी के अधिकांश सदस्य नाकारा व भ्रष्ट थे। परिणामस्वरूप डाइरेक्टरी के शासनकाल में घूसखोरी व भ्रष्टाचार का बोलबाला रहा। डाइरेक्टरी के सदस्य अपने-अपने स्वार्थों में निहित थे, फ्रांस की जनता की समस्याओं की ओर ध्यान देने वाला कोई न था। डाइरेक्टरी जनता की किसी भी समस्या को सुलझाने में असफल ही रही। **परिणामस्वरूप, डाइरेक्टरी के विरुद्ध विद्रोह बनने लगे।**

पेन्थियन विद्रोह (Pantheon Revolt)—पेन्थियन विद्रोह डाइरेक्टरी के शासनकाल की एक प्रमुख घटना थी। इस विद्रोह का उद्देश्य फ्रांस से पूंजीवादी मध्यमवर्गीय राजनीति को समाप्त कर सर्वहारा सरकार की स्थापना करना था। इस विद्रोह का जन्मदाता बेबुफ (Bebeuf) नामक व्यक्ति था, इसी कारण इस घटना को **बेबुफ षड्यन्त्र** (Bebeuf's Plot) भी कहा जाता है। बेबुफ ने 1795 ई. में एक संस्था की स्थापना की जिसे **'पेन्थियन संस्था'** (Society of the Pantheons) कहा गया। पेन्थियन संस्था का संस्थापक बेबुफ **'ट्रिब्यून'** नामक अखबार का सम्पादक भी था। बेबुफ के प्रयत्नों से पेन्थियन संस्था के सदस्यों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। जैकोबिन दल के अनेक सदस्यों का समर्थन भी पेन्थियन संस्था को प्राप्त था। इस संस्था

1 "When the government entered upon its functions, the treasury was empty and money was locking for the barest needs of the administration and the troops......The returns from taxation were far from sufficient for the needs."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 321.

2 "France in 1795 was tired and wornout. The revolutionary fever had exhausted it. People wanted rest and order after the hurly-burly and the privations of revolution and war. Their enthusiasm had given place to disillusion."
—Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 317.

ने भारी मात्रा में हथियार एकत्र कर लिए व डाइरेक्टरी के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी होने लगी। इस संस्था द्वारा एक अलग डाइरेक्टरी की स्थापना की गयी। योजना के अनुसार एक निश्चित दिन पेरिस में एकत्र होकर जनता द्वारा सरकार का तख्ता उलटाया जाना था, किन्तु इस बीच सरकार को इस षड्यन्त्र की जानकारी हो गयी व बेबुफ तथा उसके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। बेबुफ को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार यह विद्रोह असफल समाप्त हो गया, किन्तु यूरोप के इतिहास में इस विद्रोह को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। **यदि यह विद्रोह सफल हो गया होता तो फ्रांस में जनता का वास्तविक शासन स्थापित हो गया होता। इस प्रकार फ्रांस में नवीन युग का आविर्भाव हो गया होता, किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हुआ।**

वैदेशिक नीति
(FOREIGN POLICY)

डाइरेक्टरी के समक्ष सबसे बड़ी समस्या उन युद्धों को जारी रखने की थी जो राष्ट्रीय सम्मेलन के शासनकाल में प्रारम्भ हो चुके थे। राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के समय में प्रशा, स्पेन व हॉलैण्ड ने सन्धि कर ली थी, किन्तु इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया के साथ युद्ध चल रहा था। अतः डाइरेक्टरी के लिए यह आवश्यक था कि वह युद्ध जारी रखकर शत्रुओं को परास्त करे।[1] इंग्लैण्ड पर आक्रमण तब तक नहीं हो सकता था जब तक कि फ्रांस की नौसेना अत्यधिक शक्तिशाली न होती। अतः डाइरेक्टरी ने अपना ध्यान आस्ट्रिया की ओर केन्द्रित किया।

डाइरेक्टरी के शासनकाल में वैदेशिक नीति के अन्तर्गत लड़े गए युद्धों के लिए 'नेपोलियन का युग' अध्याय (में नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक सफलताएं शीर्षक) को देखिए।

डाइरेक्टरी का पतन
(END OF DIRECTORY'S RULE)

नेपोलियन की सैन्य सफलताओं ने उसे फ्रांस में **'राष्ट्रीय नायक'** (National Hero) बना दिया था, अतः नेपोलियन ने अपनी लोकप्रियता व डाइरेक्टरी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा व 10 नवम्बर, 1799 ई. को उसने डाइरेक्टरी का अन्त कर **कान्स्यूलेट शासन** (Consulate Rule) की स्थापना की तथा स्वयं को प्रथम कान्सल (First Consul) नियुक्त किया। इस प्रकार डाइरेक्टरी के शासन का पतन हो गया। डाइरेक्टरी के शासन के पतन में दो कारणों ने प्रमुख भूमिका निभाई। **प्रथम**, फ्रांस में सैनिकवाद का प्रभाव निरन्तर बढ़ना; व **द्वितीय**, डाइरेक्टरी द्वारा मजबूत सरकार की स्थापना करने में असफल रहना था।

डाइरेक्टरी के कार्यों का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE WORKS OF DIRECTORY)

डाइरेक्टरी की स्थापना के समय फ्रांस आन्तरिक व बाह्य समस्याओं से जूझ रहा था। बाह्य समस्याओं कां निराकरण करने में डाइरेक्टरी का शासन काफी हद तक सफल रहा। नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांस की सेनाओं ने अनेक विजयें प्राप्त कर फ्रांस को गौरवान्वित

1 "The first duty of the directory was, therefore, to continue the war with them and to defeat them." —Hazen, *op. cit.*, p. 150.

किया, किन्तु आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने में डाइरेक्टरी असफल रही और यही उसके पतन का मुख्य कारण भी बना। जनता को डाइरेक्टरी से बहुत आशाएं थीं, किन्तु वह उनके स्वप्नों को साकार न कर सकी।

प्रश्न

1. डाइरेक्टरी के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. डाइरेक्टरी के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
3. डाइरेक्टरी के समक्ष कौन-कौनसी समस्याएं थीं? उनका समाधान किस प्रकार किया गया?

6

नेपोलियन का युग
[THE ERA OF NAPOLEON]

भूमिका
(INTRODUCTION)

26 अक्टूबर, 1795 ई. **को नेशनल कन्वेन्शन शासन की डोर पांच सदस्यों की समिति** (Directory) **को सौंपकर भंग हो गयी।** डाइरेक्टरी के शासन के समय फ्रांस, आस्ट्रिया, सार्डीनिया तथा इंग्लैण्ड से युद्ध कर रहा था। डाइरेक्टरी ने पहले सार्डीनिया एवं आस्ट्रिया को पराजित करने की योजना बनायी। राइन नदी की ओर से आस्ट्रिया पर आक्रमण करने का उत्तरदायित्व मोरियू तथा जार्डन को सौंपा गया तथा इटली की ओर से आक्रमण करने का कार्य नेपोलियन को दिया गया। इस कार्य में नेपोलियन ने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया जिससे उसकी ख्याति में असीमित वृद्धि हुई। इस समय तक फ्रांस की जनता भी निरन्तर व्याप्त अव्यवस्था एवं रक्तपात से थक चुकी थी। फ्रांस की जनता की इस अभिलाषा को नेपोलियन ने साकार करने का प्रयास किया। **इतिहास में प्रायः देखा गया है कि दीर्घकालीन अशान्ति एवं अव्यवस्था के पश्चात् किसी निरंकुश शासक** (Dictator) **का उदय होता है।** फ्रांस में भी कई वर्षों की क्रान्ति, अशान्ति एवं अव्यवस्था के पश्चात् एक निरंकुश शासक के रूप में नेपोलियन का उदय हुआ जिसने न केवल फ्रांस अपितु सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। इसी कारण इतिहासकार हेज ने लिखा है, "1799 **ई. से** 1814 **ई. तक का यूरोपीय इतिहास वास्तव में फ्रांस का इतिहास था तथा फ्रांस का इतिहास वास्तव में नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी थी।**"[1]

नेपोलियन का प्रारम्भिक जीवन
(EARLY LIFE OF NAPOLEON BONAPART)

नेपोलियन का जन्म 15 अगस्त, 1769 ई. को कार्सिका (Carcica) द्वीप के **अजाकियो** (Ajaccio) नामक नगर में एक निर्धन, किन्तु कुलीन वकील के घर हुआ था। उसके पिता का नाम चार्ल्स बोनापार्ट था जो मूलतः फ्लोरेंस का निवासी था। नेपोलियन की मां मेरी लिटिजिया रामोलिनो (Merie Litizia Ramolino) थी जो कार्सिका की निवासिनी थी। नेपोलियन के पिता की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण नेपोलियन का प्रारम्भिक जीवन

1 "From 1799 to 1814 the history of Europe was the history of France and the history of France was the biography of Napoleon Bonapart."
—Hayes, *A Political and Social History of Modern Europe*, p. 533.

सुखद नहीं था, किन्तु उसकी मां ने सदैव उसे महान् बनने की प्रेरणा दी। नेपोलियन ने फ्रांस में **ब्रीन** (Brienne) में अपनी शिक्षा प्रारम्भ कीं। स्कूल में अन्य विद्यार्थी उसकी गरीबी व नाम का मजाक उड़ाते थे। नेपोलियन अत्यन्त मेधावी छात्र था। उसके एक शिक्षक ने उसके विषय में कहा था, "**यह बालक ग्रेनाइट का बना हुआ है, लेकिन इसके भीतर एक ज्वालामुखी है।**"[1] नेपोलियन ने अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान इतिहास, भूगोल, राजनीति व गणित आदि विषयों का गहन अध्ययन किया। नेपोलियन ने वाल्टेयर, रूसो, माण्टेस्क्यू, आदि विचारकों की रचनाओं का भी अध्ययन किया तथा वह उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ।

मात्र 16 वर्ष की ही आयु में वह सेना में द्वितीय लेफ्टिनेण्ट के पद पर नियुक्त हो गया। नेपोलियन बहुत अनुशासनप्रिय था तथा फ्रांस की क्रान्ति के समय उत्पन्न हुई अव्यवस्था का विरोधी था।

फ्रांसीसी क्रान्ति ने नेपोलियन के उन्नति करने के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। 1789 ई. में कार्सिका द्वीप ने फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। **नेपोलियन जो बचपन में कार्सिका द्वीप की स्वतन्त्रता का स्वप्न देखता आ रहा था, को अपनी इच्छा पूर्ण करने का अवसर मिल गया।** नेपोलियन, जो काफी समय से कार्सिका में ही रह रहा था। (इसी कारण उसकी नौकरी भी छूट गयी थी) ने इस युद्ध में सक्रिय भाग लिया तथा कार्सिका द्वीप को राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस के अन्य प्रान्तों जैसी समानता प्रदान कर दी। नेपोलियन 1793 ई. में अपने परिवार के साथ फ्रांस आ गया तथा उसने **जैकोबिन दल** (Jacobin Party) की सदस्यता ग्रहण कर ली। जैकोबिन दल के सदस्य बन जाने से उसे अपनी नौकरी पुनः प्राप्त हो गयी।

नेपोलियन को उन्नति करने का वास्तविक अवसर तूलों (Toulon) **में मिला।** 28 अगस्त, 1793 ई. को अंग्रेजी जहाजी बेड़े ने फ्रांस पर आक्रमण किया व तूलों पर अधिकार कर लिया, किन्तु इसी समय नेपोलियन ने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करके उसे परास्त किया। नेपोलियन के जीवन की यह प्रथम महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इस विजय के परिणामस्वरूप नेपोलियन को ब्रिगेडियर जनरल का पद प्रदान किया गया।

नेपोलियन को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का दूसरा अवसर 1795 **ई. में मिला।** 5 अक्टूबर, 1795 ई. को प्रजातन्त्रवादियों ने राजतन्त्रवादियों व संविधान से असन्तुष्ट होकर पेरिस की भीड़ को संगठित किया तथा राष्ट्रीय सभा (National Convention) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राष्ट्रीय सभा की सुरक्षा का कार्य नेपोलियन को सौंप दिया गया।[2] नेपोलियन ने 40 तोपों से भीषण गोलाबारी करके दो घण्टे के अन्दर ही विद्रोहियों को भागने पर विवश कर दिया। इस संघर्ष में 400 विद्रोही मारे गए। यद्यपि 200 सैनिक नेपोलियन के भी हताहत हुए, किन्तु नेपोलियन ने विद्रोहियों का पूर्णरूप से दमन करके फ्रांस को गृह-युद्ध (Civil War) से बचा लिया व राष्ट्रीय सभा की रक्षा की। इस सफलता के परिणामस्वरूप नेपोलियन को **समस्त आन्तरिक सेना** (Army of the interior) का सेनापति नियुक्त किया गया। इस घटना के बाद से उसे **'प्रजातन्त्र का रक्षक'** (Defender of the Democracy) भी कहा जाने लगा।

1 "The younger is made of granite, but there is a volcano inside."

2 "The convention once more entrusted its defence to Barras. Barras called to his aid the yound corrican artillery officer, who had done good service two years before at Toulon."
—Robertson

नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक सफलताएं[1]
(EARLY ACHIEVEMENTS OF NAPOLEON)

26 अक्टूबर, 1797 ई. को फ्रांस में राष्ट्रीय सभा (National Convention) का पतन हो गया तथा **'डाइरेक्टरी'** का शासन प्रारम्भ हुआ। डाइरेक्टरी के शासन के दौरान आस्ट्रिया पर दो ओर से आक्रमण करने की योजना बनायी। आस्ट्रिया पर एक ओर से आक्रमण करने का उत्तरदायित्व नेपोलियन को सौंपा गया।[2] नेपोलियन ने आस्ट्रिया पर आक्रमण करने की योजना अत्यन्त उत्साह से बनायी। आस्ट्रिया पर आक्रमण करने से पूर्व उसने अपने सैनिकों का नैतिक बल (moral force) बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण भाषण दिया। नेपोलियन ने कहा, **"मैं तुम्हें विश्व के सबसे उपजाऊ प्रदेश में ले चलूंगा। धनी प्रदेश तथा महान् शहर आप लोगों के अधीन होंगे। वहां आपको गौरव, सम्मान तथा अपार सम्पत्ति मिलेगी। क्या आप लोग साहस तथा दृढ़ता में असफल हो जाएंगे।"**[3]

1. **इटली का अभियान** (Invasion of Italy)—आस्ट्रिया पर आक्रमण करने से पूर्व नेपोलियन ने इटली के विभिन्न राज्यों का अभियान किया। सर्वप्रथम, नेपोलियन ने अपनी सेना के साथ आल्पस पर्वत पार करके सार्डीनिया पर आक्रमण किया तथा उसकी सेना को परास्त किया। 28 अप्रैल, 1796 ई. को पीडमाण्ट के राजा ने नेपोलियन से सन्धि कर ली। इस सन्धि के परिणामस्वरूप सेवाय (Savay) तथा नीस (Nice) पर फ्रांस का अधिकार स्थापित हो गया। इसके साथ ही उसने नेपोलियन को आगे बढ़ने का मार्ग भी दे दिया। 10 मई, 1796 ई. को नेपोलियन ने मिलान (Milan) पर आक्रमण करके उस पर भी अधिकार कर लिया। मिलान में अनेक सम्मानित व्यक्तियों द्वारा उसे अमूल्य भेंट प्रदान की गयीं जो उसने डाइरेक्टरी के पास भिजवा दीं। तत्पश्चात्, नेपोलियन ने माण्टुआ (Mantua) का घेरा डाला। आस्ट्रिया द्वारा इस घेरे को तोड़ने के लिए सेना भेजी गयी, परन्तु नेपोलियन ने अनेक स्थानों पर आस्ट्रिया की सेना को परास्त किया। **नेपोलियन की इन विजयों में आरकोला** (Arcola) **तथा रिवोली** (Revoli) **की विजयों का विशेष महत्व है।** अन्ततः 2 फरवरी, 1797 ई. को माण्टुआ पर नेपोलियन ने अधिकार कर लिया। नेपोलियन ने मोडेना, रेग्गियो (Reggio), बोलोन (Boulogne) तथा फरारा (Ferrara) को मिलाकर एक गणतन्त्र की स्थापना की जिसे **ट्रांसपोडेन गणराज्य** (Transpodane Republic) कहा गया।

पोप से समझौता (Agreement with Pope)—उपरोक्त विजयों के पश्चात् नेपोलियन ने पोप को शक्ति का भय प्रदर्शित कर उसे समझौता करने के लिए विवश किया। पोप ने

1 नेपोलियन की सैनिक सफलताओं का विस्तार से वर्णन इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

2 आस्ट्रिया पर आक्रमण करने का कार्य नेपोलियन को दो कारणों से मिला था। डाइरेक्टरी के सदस्य बारा (Barras) तथा नेपोलियन की पत्नी जोसेफीन बोआर्ने (Josephine Beauharnais) के प्रयत्नों के कारण ही यह सम्भव हुआ था। जोसेफीन बोआर्ने विधवा, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली महिला थी। उसका पहला पति जनरल बोआर्ने था जिसकी 'आतंक के राज्य' में हत्या कर दी गयी थी।

3 "I will lead you into the most fertile plains in the world. Rich provinces and great cities will be in your power. You will find there honour and glory and riches. Will you fall in courage and constancy." —*Napoleon*

नेपोलियन से **टोलेण्टिनो** (Tolentino) नामक स्थान पर समझौता कर लिया। इस समझौते की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् थीं—

(i) पोप ने नेपोलियन द्वारा स्थापित **ट्रांसपोडेन गणतन्त्र** (Transpodane Republic) को मान्यता प्रदान कर दी।

(ii) पोप ने तीन करोड़ फ्रांक, 500 हस्तलिखित ग्रन्थ तथा अनेक महत्वपूर्ण कलाकृतियां नेपोलियन को प्रदान कीं।

(iii) आवीनयो (Avignon) पर फ्रांस का अधिकार पोप द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

इस प्रकार इटली में महत्वपूर्ण सफलताएं अर्जित करने के पश्चात् नेपोलियन ने आस्ट्रिया की ओर प्रस्थान किया।

2. **आस्ट्रिया का अभियान** (Expedition to Austria)—नेपोलियन ने आस्ट्रिया की ओर प्रस्थान करते हुए वेनिस (Venice) पर विजय प्राप्त की तथा ल्योबेन (Leoben) पर भी अधिकार कर लिया। नेपोलियन ने उत्तरी इटली के राज्यों को मिलाकर **सिस-अल्पाइन** (Cis-Alpine) गणतन्त्र व **लगुरियन गणराज्य** (Ligurian Republic) की स्थापना की। नेपोलियन के इन कार्यों का वहां की जनता द्वारा स्वागत किया गया। नेपोलियन ने आस्ट्रिया के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह लोम्बार्डी (Lombardi) पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लेगा तो युद्ध समाप्त कर दिया जाएगा। अन्ततः आस्ट्रिया ने नेपोलियन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया व 17 अक्टूबर, 1797 ई. को सन्धि कर ली, जिसे **कैम्पोफार्मिया की सन्धि** (Treaty of Campoformia) कहा जाता है। **इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं—**

(i) आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस को बेल्जियम प्रदान किया गया।

(ii) लोम्बार्डी पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

(iii) राइन का प्रदेश भी फ्रांस को दे दिया गया।

(iv) फ्रांस द्वारा वेनिस के इस्ट्रिया तथा डालमेशिया प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिए गए तथा वेनिस का पश्चिमी भाग सिस-अल्पाइन गणतन्त्र (Cis-Alpine Republic) में मिला दिया गया।

केम्पोफार्मिया की सन्धि का अत्यधिक राजनीतिक महत्व है। इस सन्धि ने नेपोलियन की ख्याति में चार चांद लगा दिए। नेपोलियन, इस सन्धि के द्वारा इटली से आस्ट्रिया के प्रभाव को कम करने में सफल हो गया। इस सन्धि ने यूरोप के राजनीतिक मानचित्र में भी परिवर्तन किया। फ्रांस की राजनीतिक सीमा उसकी प्राकृतिक सीमा तक पहुंच गयी। इस सन्धि से इटली पर फ्रांस के प्रभाव में वृद्धि हुई। इस सन्धि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो. मार्खम ने लिखा है, **"यह सन्धि फ्रांस तथा नेपोलियन के लिए महत्वपूर्ण थी, किन्तु इसने भविष्य में युद्ध के बीज बो दिए।"**[1]

3. **नेपोलियन का फ्रांस लौटना** (Return of Napoleon to France)—आस्ट्रिया से केम्पोफार्मिया की सन्धि करने के पश्चात् नेपोलियन 5 दिसम्बर, 1797 ई. को लौटकर पेरिस पहुंचा। फ्रांस में नेपोलियन का भव्य स्वागत किया गया तथा उसे **'राष्ट्रीय नायक'** (National

1. "It was a brilliant peace for France and Napoleon, but lead the seeds of future war." —Prof. Markham, *Napoleon and Awakening of Europe*, p. 33.

Hero) माना जाने लगा। नेपोलियन ने आस्ट्रिया के अभियान के दौरान अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। उसने केवल युद्ध के सम्पूर्ण खर्च को वसूला अपितु-अनेक महत्वपूर्ण कलाकृतियां भी वह इटली से फ्रांस लाया। इसके साथ ही उसने फ्रांस की राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तन करके फ्रांस के सम्मान में वृद्धि की। अतः नेपोलियन का **'राष्ट्रीय नायक'** के रूप में सम्मान किया जाना स्वाभाविक ही था।

4. **मिस्र का अभियान** (Campaign to Egypt)—नेपोलियन द्वारा इटली व आस्ट्रिया में प्राप्त सफलताओं व उसकी फ्रांस में बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर डाइरेक्टरी के सदस्य उससे भयभीत होने लगे। डाइरेक्टरी के सदस्यों को अपना अस्तित्व संकट में दिखाई देने लगा। अतः उन्होंने नेपोलियन को फ्रांस से दूर ही रखने का प्रयत्न किया। इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। डाइरेक्टरी के सदस्य बारा ने नेपोलियन ने कहा, **'जाओ और उस समुद्री डाकू को पकड़ लो जो समुद्र में उत्पात मचाता है।'**[1] नेपोलियन ने इस चुनौती को स्वीकार किया। नेपोलियन जानता था कि इंग्लैण्ड को एक द्वीप के रूप में परास्त करना कठिन था, इसलिए उसने इंग्लैण्ड को एक साम्राज्य के रूप में परास्त करने की योजना बनाई। इसी उद्देश्य से उसने मिस्र पर आक्रमण करने का निर्णय किया, क्योंकि मिस्र पर अधिकार कर लेने से भारत के लिए फ्रांस का मार्ग प्रशस्त हो सकता था तथा नेपोलियन जानता था कि भारत इंग्लैण्ड का एक महत्वपूर्ण उपनिवेश था। नेपोलियन की इस योजना को डाइरेक्टरी ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

नेपोलियन 19 मई, 1797 ई. को टूलों (Tonlon) गया तथा वहां से अपने साथ अड़तीस हजार सैनिक व चार सौ जहाजों को लेकर उसने मिस्र के लिए प्रस्थान किया। नेपोलियन इस अभियान में अपने साथ मार्मा (Marmont), क्लेबर (Claber), लान (Lannes), मूरा (Murat), देसे (Desaix) तथा बर्तिए (Berthier) जैसे योग्य सेनापतियों को भी ले गया था। मिस्र पहुंचकर नेपोलियन ने **'पिरामिडों के देश'** (Country of Pyramids) पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने सैनिकों को उत्साहित किया। नेपोलियन ने आक्रमण करके माल्टा तथा सिकन्दरिया (Alexandria) पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने काहिरा की ओर प्रस्थान किया। 21 जुलाई, 1798 को मिस्र व नेपोलियन की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ, जिसे **पिरामिडों का युद्ध** (Battle of Pyramids) कहा जाता है। इस युद्ध के कुछ समय पश्चात् ही काहिरा पर भी नेपोलियन ने अधिकार कर लिया। मिस्र पर अधिकार करना उतना कठिन नहीं था जितना कि उस अधिकार को बनाए रखना कठिन था। नेपोलियन ने वहां कूटनीति का प्रयोग किया। **नेपोलियन ने वहां स्वयं को मुसलमान घोषित किया तथा कुरान के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।**[2] मिस्र के लोगों को प्रभावित करने के लिए नेपोलियन ने मस्जिदों का निर्माण कराया। नेपोलियन के इन कार्यों से उसे कोई सफलता नहीं मिली तथा मिस्र में विद्रोह होते रहे।

5. **नील नदी का युद्ध** (Battle of Nile)—जिस समय नेपोलियन काहिरा में था अंग्रेजी सेनापति नेल्सन (Nelson) उसका पीछा करते हुए सिकन्दरिया (Alexandria) तक पहुंच

1 "Go, and capture the great corsair that infests the seas." —*Barras*

2 "I was the Mohammadan in Egypt, I shall be in a catholic (France) here for the good of the people." —*Napoleon*

गया। नेल्सन व नेपोलियन की सेनाओं के मध्य अबूकर की खाड़ी (Bay of Abukir) मेण भीषण युद्ध हुआ। अंग्रेजों की नौ-सेना अत्यन्त शक्तिशाली थी। नेल्सन ने नेपोलियन की सेना को तहस-नहस कर दिया। नेपोलियन के 400 जहाजों में से 396 जहाज इस युद्ध में नष्ट हो गए व केवल चार जहाज शेष बचे। नेल्सन व नेपोलियन के मध्य हुआ यह युद्ध **नील नदी के युद्ध** (Battle of Nile) के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में अपार हानि के पश्चात् भी नेपोलियन निराश नहीं हुआ व कुशल सेनानायक का परिचय देते हुए उसने अपने बचे हुए सैनिकों में अपने भाषण से उत्साह का संचार किया। नेपोलियन ने कहा, **'तूफानों की बाढ़ से अपने मस्तकों को ऊपर रखना चाहिए। तूफान स्वतः शान्त हो जाएंगे।'**'[1]

6. **सीरिया पर विजय** (Conquest of Syria)—नील के युद्ध में नेल्सन के हाथों पराजित हो जाने व उसके जहाजी बेड़े के नष्ट हो जाने के कारण नेपोलियन को अपार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जहाजी बेड़ा नष्ट हो जाने के कारण नेपोलियन के लिए समुद्र मार्ग से फ्रांस लौटना सम्भव न था। अतः उसने सीरिया होते हुए फ्रांस लौटने का निर्णय लिया। **इसी समय टर्की ने भी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जिससे नेपोलियन की कठिनाइयां और बढ़ गयीं।** अन्य कोई और रास्ता न देखकर नेपोलियन ने फरवरी 1799 ई. में सीरिया पर आक्रमण कर दिया। सीरिया भी टर्की-साम्राज्य का ही अंग था। प्रारम्भ में इस युद्ध में नेपोलियन को सफलता मिली व उसने गाजा व जाफा पर अधिकार कर लिया, किन्तु एकरे (Acre) में उसे पराजित होना पड़ा तथा विवश होकर वह पुनः काहिरा लौटा। काहिरा पहुंचने पर उसे ज्ञात हुआ कि यूरोप में पुनः संघर्ष प्रारम्भ हो गया है व इटली से फ्रांस की सेना को निष्कासित कर दिया गया है। उसे यह भी सूचना मिली कि फ्रांस के विरुद्ध आस्ट्रिया, रूस व इंग्लैण्ड मिल गए हैं। अतः नेपोलियन ने ऐसी परिस्थिति में वापस फ्रांस लौटना ही उचित समझा व 21 अगस्त, 1799 ई. को अपनी सेना के साथ एक जहाज में बैठकर उसने गुप्त रूप से फ्रांस की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार नेपोलियन का मिस्र का अभियान असफल ही रहा। केटेलबी ने इस विषय में लिखा है, ''**एक महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य के रूप में मिस्र का अभियान असफल रहा।**''[2] असफल होकर लौटने के पश्चात् भी फ्रांस की जनता ने नेपोलियन का स्वागत किया। जनता में सर्वत्र यह चर्चा थी कि **'फ्रांस का रक्षक'** (Defender of France) आ गया है।

डाइरेक्टरी का शासन समाप्त
(END OF THE RULE OF THE DIRECTORY)

इस समय तक फ्रांस की जनता डाइरेक्टरी के शासन से तंग आ चुकी थी। सम्पूर्ण देश में घूसखोरी व अशान्ति का वातावरण था। इसी कारण नेपोलियन के मिस्र से लौटने पर जनता द्वारा उसका स्वागत किया गया था। जनता को नेपोलियन से आशा थी कि यह स्थिति में परिवर्तन करेगा। इस प्रकार नेपोलियन बचपन से जिस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था, वह उसे मिल गया। उसने घोषणा की, ''**ऐसा प्रतीत होता है कि सब मेरा ही इन्तजार कर रहे**

1 "We must raise our head above the floods of the temptest and flood will be tamed."
—*Napoleon*

2 "As a magnificient political enterprise, the Egyptian venture has failed."
—Ketelbey, *History of Modern Times*, p. 104.

थे। एक क्षण भी पहले आना उचित नहीं था और एक दिन बाद आने से बहुत देर हो जाती। मैं एकदम सही क्षण पर आया हूं।"[1] नेपोलियन ने सिये (Sieyes) व ड्यूको (Ducos) नामक दो डाइरेक्टरों (डाइरेक्टरी के सदस्य) से गुप्त समझौता किया तथा 10 नवम्बर, 1799 ई. को उसने 500 सदस्यों की सभा पर सैनिकों की सहायता से आक्रमण किया। इस प्रकार नेपोलियन के समर्थक सदस्यों को छोड़ कर अन्य भाग गए। इस प्रकार डाइरेक्टरी का पतन हो गया।

10 नवम्बर, 1799 ई. को डाइरेक्टरी के शासन का अन्त करके शासन की बागडोर तीन व्यक्तियों—नेपोलियन, सिये तथा ड्यूको के हाथ में दे दी गयी। इस प्रकार फ्रांस में **कान्स्यूलेट शासन** (Consulate Rule) की स्थापना हुई। नेपोलियन को प्रधान कान्सल बनाया गया। कान्सल ने देश के लिए एक नवीन संविधान की रचना की। फ्रांस के इतिहास में इस घटना को **'रक्तहीन क्रान्ति'**[2] (Bloodless Revolution) कहा जाता है। इस घटना ने नेपोलियन की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। नेपोलियन ने स्वयं ही अत्यन्त हर्ष के साथ कहा था, **"यह मेरे जीवन की एक प्रमुख घटना है जिसमें मैंने अभूतपूर्व योग्यता का परिचय दिया।"**[3]

कान्स्यूलेट का संविधान
(CONSTITUTION OF THE CONSULATE)

डाइरेक्टरी के शासन की समाप्ति के पश्चात् कान्स्यूलेट शासन की स्थापना हुई। **इस शासन के लिए नवीन संविधान की रचना की गई जिसे आठवें वर्ष का संविधान** (Constitution of the VIII year) **भी कहा जाता है। इस नवीन संविधान के अनुसार, कार्यकारिणी के सभी अधिकार तीन सदस्यों की कान्स्यूलेट** (Consulate) **को दिए गए।** कान्स्यूलेट के सदस्यों का चुनाव 10 वर्ष के लिए होना था। कान्स्यूलेट से तीन सदस्यों के **प्रथम** कान्सल (First consul) को सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किए गए थे। **द्वितीय** तथा **तृतीय** कान्सल (II & III consul) का कार्य प्रथम कान्सल को परामर्श देना था। प्रथम कान्सल कानून बना सकता तथा सिविल एवं सैनिक उच्चाधिकारियों की नियुक्ति कर सकता था। कान्स्यूलेट शासन के अन्तर्गत नेपोलियन को प्रथम कान्सल नियुक्त किया गया था, इस प्रकार नेपोलियन के हाथों में ही सम्पूर्ण अधिकार आ गए।

नवीन संविधान के अन्तर्गत चार वैधानिक संस्थाओं की स्थापना की गयी। **ये चार संस्थाएं निम्नवत् थीं—**

(i) **काउन्सिल ऑफ स्टेट** (Council of State)—काउन्सिल ऑफ स्टेट के सदस्यों को प्रथम काउन्सल द्वारा नियुक्त किया जाता था। कानून का खांका (Draft) तैयार करने का कार्य इन्हीं का था।

---

1. "It looks as if every one had been waiting for me. A while back would have been too soon. Tomorrow would have been too late. I have come at the right moment."
—*Napoleon*

2. इस घटना को 19वीं **ब्रूमेयर का विद्रोह** (Coup'd Etat of 19th Brumaire) भी कहा जाता है।

3. "It is the epoch of my life in which I have shown utmost ability." —*Napoleon*

(ii) **ट्रिब्यूनेट** (Tribunate)—ट्रिब्यूनेट के सदस्यों की संख्या 100 होती थी जिसका कार्य काउन्सिल ऑफ स्टेट द्वारा तैयार कानून के ड्राफ्ट पर बहस करना होता था।

(iii) **व्यवस्थापिका सभा** (Legislative body)—इसके सदस्यों को बहस करने का अधिकार नहीं था,[1] परन्तु काउन्सिल ऑफ स्टेट द्वारा तैयार कानून के मसविदे पर मतदान करती थी।

(iv) **सीनेट** (Senate)—सीनेट के सदस्यों की संख्या 60 होती थी। इसका कार्य यह निर्णय देना था कि कोई भी कानून संविधान की दृष्टि से उचित है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त ट्रिब्यूनेट तथा लेजिस्लेटिव सभा के सदस्यों को चुनती थी।

नवीन संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जिसकी आयु 21 वर्ष हो मताधिकार प्रदान किया गया। मतदान का तरीका अप्रत्यक्ष (Indiret Election System) था।

संविधान की समीक्षा (Criticism of Constitution)—कान्स्यूलेट शासन के अन्तर्गत सम्पूर्ण शक्ति प्रथम कान्सल में निहित कर दी गयी थी, अतः सम्पूर्ण शक्ति नेपोलियन के हाथों में केन्द्रित हो गयी। इस प्रकार नेपोलियन ने एक निरंकुश शासन की स्थापना की। इस संविधान ने गणतान्त्रिक प्रणाली को पूर्णतया समाप्त कर दिया। इसी कारण हेजन ने लिखा है : "**नामक के लिए फ्रांस अब भी गणतन्त्र था, किन्तु वास्तव में उसने एक प्रच्छन्न राजतन्त्र का रूप धारण कर लिया था।**"[2] इस विषय में लियो गर्शोय का कथन भी उल्लेखनीय है : "**इसने (नवीन संविधान ने) नेपोलियन को फ्रांस में अनुशासन रखने वाला 'ड्रिल मास्टर' बना दिया जिसका कार्य अपने आदेशों का तत्काल पालन करवाना था।**"[3] फिशर का कथन भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। फिशर के शब्दों में, "**कान्स्यूलेट और 'साम्राज्य' के शासन को हम क्रूर शासन कह सकते हैं, किन्तु उनसे पूर्व के शासन की तुलना में यह स्वतन्त्र था।**"[4]

सम्भवतः फ्रांस में व्याप्त भ्रष्टाचार व अव्यवस्था को देखते हुए निरंकुश शासन की स्थापना समय के अनुकूल ही थी। इसी कारण फ्रांस की जनता ने नेपोलियन के निरंकुश शासन को स्वीकार कर लिया।

प्रथम कान्सल के रूप में नेपोलियन (1799-1804 ई.)
(NEPOLEON AS THE FIRST CONSUL)

नेपोलियन ने जिस समय फ्रांस में प्रथम कान्सल का पद ग्रहण किया, उसके समक्ष अनेक समस्याएं विद्यमान थीं। **फ्रांस की क्रान्ति तथा उसके बाद के दस वर्षों में उत्पन्न अराजकता एवं अव्यवस्था के कारण फ्रांस की स्थिति दयनीय थी।** फ्रांस की पुरानी सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गयी थी, अतः नेपोलियन के लिए यह आवश्यक था कि वह एक नवीन एवं सुदृढ़ व्यवस्था की स्थापना करे ताकि फ्रांस की स्थिति को सुधारां जा सके। नेपोलियन

1 इसी कारण व्यवस्थापिका सभा को '**मूक सभा**' भी कहा जाता था।

2 "France was still a republic in name, practically, however, it was a monarchy." —Hazen, *Modern Europe*, p. 176.

3 "It organised the rule of a drill master and isciplinarian who had no other conception of Government then that of a nation yielding prompt obedience to his command." —Leo Gershoy, *The French Revolution and Napoleon*, pp. 352-353.

4 "We may call the Government of the consulate and the Empire a tyranny, but compared with the Government which went before, it was reign of freedom." —Fisher, *A History of Europe*, p. 47.

ने ऐसी विषम परिस्थिति में एक कुशल प्रशासक होने का परिचय दिया तथा अनेक सुधारों के द्वारा उसने फ्रांस की स्थिति में सुधार किया। **नेपोलियन की सुधारवादी नीति में चार तथ्यों पर विशेष बल दिया गया था।** ये थे केन्द्रीकरण (Centralization), आर्थिक स्थिति को दृढ़ करना (Strong Economic Condition), समझौता करना (Conciliation) तथा सक्षम प्रशासन (Efficient Administrative System)।

नेपोलियन ने प्रथम कान्सल के रूप में निम्नलिखित सुधार किए :

(1) **सामाजिक समानता** (Social Equality)—नेपोलियन ने स्वतन्त्रता (Liberty) की अपेक्षा समानता (Equality) को अधिक महत्व दिया। नेपोलियन ने उच्च व निम्न वर्गों के भेद को समाप्त कर दिया। अपनी योग्यता के बल पर कोई भी व्यक्ति शासन के समस्त पदों को प्राप्त कर सकता था। इसके अतिरिक्त नेपोलियन ने फ्रांस से भागे हुए कुलीनों एवं पादरियों के विरुद्ध पारित किए गए कानूनों का अन्त करके उन्हें क्षमा प्रदान कर दी जिससे 40 हजार से भी अधिक परिवार फ्रांस में पुनः आ गए।

(2) **सार्वजनिक कार्य** (Public Works)—नेपोलियन ने प्रथम कान्सल के रूप में अनेक सार्वजनिक कार्य करवाए। नवीन सड़कों का निर्माण किया गया तथा पुरानी सड़कों को सुधारा गया। सिंचाई के उद्देश्य से नहरों की भी व्यवस्था की गयी। इसके अतिरिक्त, **पेरिस के सौन्दर्यीकरण का कार्य भी इन वर्षों में नेपोलियन ने कराया।** अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण, मार्गों के किनारे वृक्षारोपण व सुन्दर सड़कें इसी उद्देश्य से बनवायी गयीं। राजमहलों को भी सुसज्जित किया गया तथा विभिन्न देशों से लायी गयी कलाकृतियों का संग्रह भी फ्रांस में नेपोलियन के द्वारा कराया गया।

(3) **प्रशासन में सुधार** (Reforms in the Administration)—नेपोलियन ने प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारु रूप प्रदान करने के उद्देश्य से अनेक सुधार किए। उसका मानना था कि "**फ्रांस के लोग स्वतन्त्रता के नहीं, बल्कि समानता के इच्छुक हैं।**"[1] अतः उसने 1800 ई. में प्रशासन की सम्पूर्ण शक्ति को उसने अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया। **इस प्रकार वह प्रशासन में कोई भी सुधार कर सकता था। उसने एक नवीन कानून बनाया जिसके द्वारा स्थानीय संस्थाओं** (Local Institutions) **को केन्द्र के अधीन कर दिया गया।** अब प्रत्येक विभाग **प्रीफेक्ट** (Prefect) के, जिला (Arrondisement) **उप-प्रीफेक्ट** (Sub-Prefect)तथा कम्यून '**मेयर**' (Mayor) के अधीन होता था। इन सभी अधिकारियों की नियुक्ति नेपोलियन ने स्वयं की तथा उन्हें केन्द्र के अधीन ही कार्य करना था। इन अधिकारियों की सहायता के लिए '**निर्वाचित परिषदों**' (Elective Councils) की स्थापना भी की गयी जिनका कार्य प्रमुखतया अपने स्थानों के लिए राष्ट्रीय करों को तय करना था। इस प्रकार नेपोलियन ने केन्द्रीय कानून को लागू कर प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारु एवं समान बनाया। नेपोलियन की इस नीति के विषय में हाल तथा रोज ने लिखा है, "**इस प्रकार फ्रांस में स्थानीय स्वशासन के स्थान पर प्रशासनिक निरंकुशता की स्थापना हुई जिसने राजनीतिक निरंकुशवाद के मार्ग को प्रशस्त किया।**"[2]

1 "What the French people want, is equality not liberty." —*Napoleon*

2 "France passed from local-self government to an administrative autocracy which prepared the way for a political despotism."
—Hall and Rose, *The Personality of Nepoleon*, p. 98.

(4) **न्याय एवं दण्ड व्यवस्था** (Judiciary and the Punishments)—नेपोलियन नें न्याय एवं दण्ड व्यवस्था को सुधारने के भी व्यापक प्रयास किए। अनेक सिविल एवं दण्ड (Criminal) न्यायालयों की स्थापना की गयी। न्यायाधीशों की नियुक्ति का कार्य नेपोलियन स्वयं करता था। इस प्रकार **न्याय व्यवस्था को भी केन्द्र के ही अधीन किया गया।** नेपोलियन का दण्ड विधान बहुत कठोर था। साधारण अपराधों के लिए भी मृत्युदण्ड की व्यवस्था थी। नेपोलियन ने क्रान्तिकारियों को पकड़ने के लिए **मुद्रित पत्रों** (Letters de Catchet) का पुनः प्रचलन किया। नेपोलियन ने जूरी की प्रथा भी प्रारम्भ की। नवीन दण्ड व्यवस्था में यह भी व्यवस्था की गयी कि कोई भी मुकदमा गुप्त रूप से नहीं हो सकता था। इस व्यवस्था की एक कमी यह थी कि अवैध कारावास को रोकने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था।

(5) **प्रतिष्ठा मण्डल की स्थापना** (Legion of Honour Established)—इसके अन्तर्गत योग्यता के आधार पर इस मण्डल में कुलीनों को सम्मिलित किया जाता था। यह कार्य नेपोलियन ने फ्रांसीसियों में स्वयं के प्रति आदर की भावना जागृत करने के उद्देश्य से किया था। **यह उपाधि केवल उन्हीं लोगों को दी जाती थी जिन्होंने कोई असाधारण अथवा वीरतापूर्ण कार्य किया हो।** किसी अयोग्य व्यक्ति को चाहे वह किसी भी परिवार अथवा वंश का क्यों न हो, यह सम्मान प्रदान नहीं किया जाता था। इसी प्रकार भूमिखण्डों के पुरस्कार द्वारा उसने एक नवीन कुलीनता का विकास किया।

(6) **प्रेस पर प्रतिबन्ध** (Press Censorship)—नेपोलियन ने प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। प्रेस अपनी इच्छा से कुछ भी छापने के लिए स्वतन्त्र नहीं थी। प्रेस पर नियन्त्रण रखने के लिए दो सेन्सर बोर्ड नियुक्त किए गए थे। इस कारण अनेक अखबारों का प्रकाशन बन्द हो गया।

(7) **सैन्य व्यवस्था** (Military organization)—नेपोलियन ने सैन्य व्यवस्था में भी पर्याप्त सुधार किए। उसने सैनिक सेवा को अनिवार्य बना दिया तथा अनेक देशों में उन्हीं के खर्चे पर सेना रखकर फ्रांस की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया।

(8) **शिक्षा के क्षेत्र में सुधार** (Educational Reforms)—नेपोलियन शिक्षा के महत्व से अच्छी तरह परिचित था। अतः उसने शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर दिया। नेपोलियन का मानना था कि शिक्षा पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण परिवर्तन के लिए आवश्यक है। अतः 1802 ई. में नेपोलियन ने शिक्षा को चर्च के हाथों से निकलकर राज्य के अधीन कर दिया। **तत्पश्चात् नेपोलियन ने चार प्रकार की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की।**—

(i) **प्राइमरी स्कूल** (Primary School)—प्रत्येक कम्यून में प्राइमरी स्कूल खोले गए जिनका उत्तरदायित्व प्रीफेक्ट अथवा उप-प्रीफेक्ट पर होता था।

(ii) **माध्यमिक अथवा ग्रामर स्कूल** (Grammar School)—माध्यमिक विद्यालयों की संख्या बहुत अधिक थी। इनमें कला, भाषा, विज्ञान व फ्रेंच भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

(iii) **हाई स्कूल** (High School)—इन स्कूलों को **लेसी** (Lecees) कहा जाता था तथा इन्हें बड़े नगरों में खोला गया था। इन स्कूलों के अध्यापकों की नियुक्ति व वेतन सरकार देती थी।

(iv) **विशेष स्कूल** (Speical Schools)—विशेष स्कूलों की व्यवस्था की गयी थी। प्रथम, जिनमें कला तथा विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी; द्वितीय, जिनमें व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध था उदाहरणार्थ सैनिक स्कूल, सिविल सेवा स्कूल, इत्यादि।

उपरोक्त सुधारों के अतिरिक्त अध्यापकों को अध्ययन कार्य में शिक्षित बनाने के लिए प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गयी। 1808 ई. में पेरिस में एक विश्वविद्यालय (University of France) की स्थापना की गयी थी जिसमें लैटिन, फ्रेंच, साधारण विज्ञान तथा गणित इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। नेपोलियन ने सभी विद्यालयों में राष्ट्रप्रेम व देशभक्ति की शिक्षा अनिवार्य कर दी। नेपोलियन ने राजनीति एवं नैतिक विज्ञान विषयों को बन्द करवा दिया।[1]

(9) **आर्थिक सुधार** (Economic Reforms)—फ्रांस की आर्थिक स्थिति लुई XVI के शासनकाल से खराब हो चुकी थी तथा वह निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। डाइरेक्टरी के शासन में फ्रांस की आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ था। प्रथम कान्सल बनने के बाद नेपोलियन ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। सर्वप्रथम, **कर वसूलने का कार्य केन्द्रीय सरकार को सौंप कर** बेकारों को कार्य दिलाने का प्रबन्ध किया गया। फ्रांस की साख दृढ़ करने के उद्देश्य से **बैंक ऑफ फ्रांस** की स्थापना की गयी। बैंक ऑफ फ्रांस के संगठन व कार्यप्रणाली को प्रसिद्ध बैंक शास्त्री (Banker) **परेगो** (Perregaux) से तैयार करवाया गया। 1803 ई. में बैंक ऑफ फ्रांस को नोट छापने का कार्य भी दे दिया। नेपोलियन द्वारा बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना करना आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। हेज ने नेपोलियन के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "**नेपोलियन की वित्तीय पुनर्संगठन की सर्वप्रमुख सफलता बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना थी जो उसी समय से विश्व की सबसे सुदृढ़ वित्तीय संस्था रही है।**"[2]

नेपोलियन ने फ्रांस के व्यय को भी कम किया। अनावश्यक खर्चों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के लिए भी नेपोलियन ने प्रयत्न किए। 1802 ई. में **'चैम्बर ऑफ कॉमर्स'** (Chamber of Commerce) की स्थापना की गयी। नेपोलियन ने फ्रांस के सभी नागरिकों पर कर भी लगाया। भ्रष्ट अधिकारियों को दण्डित किया गया। इस प्रकार नेपोलियन के निरन्तर प्रयासों से फ्रांस की आर्थिक स्थिति आश्चर्यजनक ढंग से सुधरी। हेजन ने नेपोलियन की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "**महत्वाकांक्षी बोनापार्ट ने उद्योगों तथा वाणिज्य की ओर विशेष ध्यान दिया। सड़कों का सुधार किया, नहरें खोदी गयीं और बन्दरगाहों का उद्धार किया गया। देश का आर्थिक विकास इतनी तेजी से हुआ कि इंग्लैण्ड भी चिन्तित हो उठा।**"[3]

1 "The political and moral science were the alchohal which went to the brains of rhetoricians and Journalists the cause of disorder and inconvenient curiosity."
—*Bonapartism*, p. 57.

2 "The crowing achievement of his financial re-adjustment was the establishment of the Bank of France, which has over since been one of the soundest financial institutions of the world."
—Hayes, *A Political and Social History of Modern Europe*, p. 653.

3 "Industry and commerce received the interested attention of the ambitious ruler. Roads were improved, canals were cut, ports were dredged. The economic development was so rapid as to occasion some uneasiness in England."
—Hazen, *Modern Europe*, p. 183.

(10) **धार्मिक सुधार** (Religious Reforms)—फ्रांस की जनता चर्च की विरोधी थी। उनका विचार था कि चर्च का कार्य जनसाधारण का शोषण करना ही है। चर्च में सुधार करने की दृष्टि से **'पादरी-विधान'** (Constitution of the Clergy) पारित किया गया था, किन्तु अधिकांश जनता इस विधान के विरुद्ध थी। अतः प्रथम कान्सल बनने के पश्चात् नेपोलियन ने पोप से जुलाई 1801 ई. में समझौता कर लिया। इस समझौते को **कांकार्डट** (Concodart) कहा जाता है। हेजन ने लिखा है, "**उसका (नेपोलियन का) विचार था कि धर्म की बागडोर भी शासक के हाथों में ही होनी चाहिए। एक बार उसने कहा था, 'बिना इसके शासन करना असम्भव है।' इसलिए उसने पोप के साथ सन्धि कर ली। उसका कहना था कि यदि पोप पहले से न होता तो इस अवसर के लिए मुझे पोप बनना पड़ता।**"[1]

अतः समझौते के अनुसार अग्रवत् निर्णय लिए गए—

(i) पोप ने चर्च की जब्त की गयी सम्पत्ति तथा भूमि पर से अपना अधिकार त्याग दिया।

(ii) शिक्षा संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण स्वीकार किया गया।

(iii) राज्य की आज्ञा के बिना कोई पादरी देश से बाहर आ-जा नहीं सकता था। बिशप परस्पर अथवा पोप से पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते थे।

(iv) पादरियों को राज्य के प्रति भक्ति की शपथ लेना आवश्यक था। देश के सभी गिरजाघरों पर राज्य का अधिकार हो गया।

(v) क्रान्ति के समय गिरफ्तार सभी पादरियों को मुक्त कर दिया गया तथा देश छोड़कर भागे हुए पादरियों को पुनः फ्रांस लौटने की अनुमति दे दी गयी।

(vi) कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार कर लिया गया तथा कैथोलिक चर्च को सार्वजनिक पूजा का अधिकार दे दिया गया। इस प्रकार चर्च राज्य का एक अंग बन गया।

इस समझौते से जनसाधारण को बहुत सन्तोष हुआ। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो लोगों को अपने धर्म पर निर्विघ्न आचरण करने का अधिकार मिल गया तथा **दूसरे** क्रान्ति के दिनों में चर्च की जो भूमि उन्होंने खरीद ली थी। उस पर उनका अधिकार विधिवत् हो गया।[2]

इस समझौते की हेजन ने आलोचना की है।[3] **हेजन** नें लिखा है कि **इस समझौते को नेपोलियन की एक महान् भूल समझना चाहिए।** फ्रांस ने चर्च और राज्य के पूर्ण पृथक्करण की नीति अपना ली थी। यदि उसको जारी रहने दिया जाता तो इससे बड़ा देश का कल्याण होता। जनता को धीरे-धीरे सहिष्णुता के सिद्धान्त पर चलने का अभ्यास हो जाता, किन्तु इस समझौते ने इस आशा पर पानी फेर दिया तथा चर्च और राजा का पुनः गठबन्धन करके एक खतरनाक समस्या उत्पन्न कर दी जो 19वीं शताब्दी में भय व विक्षोभ का कारण बनी रही। शीघ्र ही दोनों सन्धि से भी ऊकता गए। नेपोलियन तथा पोप के बीच भी बहुत दिनों तक अच्छे सम्बन्ध न रह सके। कुछ ही वर्षों में दोनों के मध्य झगड़ा इतना बढ़ गया कि पोप ने नेपोलियन को धर्म से बहिष्कृत कर दिया तथा नेपोलियन ने पोप को बन्दी बना लिया।

1 **हेजन, आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 134।

2 **वही**, पृ. 135।

3 **हेजन, आधुनिक रोम का इतिहास**, पृ. 135।

नेपोलियन स्वयं भी यह अनुभव करने लगा था कि यह समझौता करके उसने भारी भूल की थी, किन्तु फिर भी इस समझौते से तात्कालिक लाभ हुए।[1]

(11) **सिविल कोड की स्थापना** (Civil Code)—इस समय फ्रांस में अनेक कानून थे, किन्तु कोई एक सुनिश्चित संहिता (Code) नहीं थी। नेपोलियन ने इस कार्य में व्यक्तिगत रुचि ली तथा 1894 ई. में **'सिविल कोड'** तैयार करवाया। नेपोलियन का यह कार्य उसकी महान् उपलब्धि थी। इसी कारण इसे **नेपोलियन संहिता** (Napoleon Code) भी कहा जाता है। स्वयं नेपोलियन ने इस संहिता के विषय में घोषणा की थी, **''मेरे कानूनों का संग्रह मेरी विजयों से अधिक स्थायी रहेगा।''**[2]

नेपोलियन ने सिविल कोड तैयार कराने के लिए 1804 ई. में एक समिति नियुक्त की जिसका नेतृत्व प्रसिद्ध विधि-विशेषज्ञ कैम्बासेरेस (Cambaceres) ने किया। इस समिति ने चार माह के कठोर परिश्रम के पश्चात् एक सिविल कोड तैयार किया। फिशर ने इस कोड की अत्यन्त प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है : **''जिस कार्य के लिए आधुनिक सरकारें 15 वर्षों का समय लेती हैं, नेपोलियन ने वह चार महीनों में कर दिखाया।''**[3] यह संहिता फ्रांस के लिए वरदान प्रमाणित हुई।

इस सिविल कोड के पांच भाग थे—

(i) **व्यावहारिक संहिता** (Civil Code)—इस संहिता के अन्तर्गत व्यक्तियों, वस्तुओं व सम्पत्ति आदि के विषय में कानून थे।

(ii) **व्यावहारिक प्रक्रिया संहिता** (Code of Civil Procedure)—इसमें 1737-38 ई. के अध्यादेशों का संग्रह था।

(iii) **दण्ड संहिता** (Penal Code)—इसमें विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न दण्ड देने का प्रावधान था।

(iv) **दण्ड प्रक्रिया संहिता** (Code of Criminal Procedure)—इसके अन्तर्गत अपराधी को न्यायालयों में अपने पक्ष में वकील आदि करने का अधिकार दिया।

(v) **वाणिज्य संहिता** (Commercial Code)—इस संहिता के अन्तर्गत व्यापार सम्बन्धी नियम थे। उल्लेखनीय है कि इस सिविल कोड के निर्माण में नेपोलियन का निजी हाथ भी बहुत अधिक था। नेपोलियन स्वयं विधिविज्ञ नहीं था और न ही उसे कानून का विशेष ज्ञान था, किन्तु उसकी बौद्धिक प्रतिभा अत्यन्त प्रखर, सूझ-बूझ और विचार शक्ति तथ्यगम्य थी,

1 यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पोप व नेपोलियन के सम्बन्ध अधिक समय तक कायम न रह सके। पोप व नेपोलियन के मध्य मनमुटाव के कारणों में प्रमुख थे—(i) सम्राट बनते समय नेपोलियन द्वारा ताज पोप के स्थान पर स्वयं अपने हाथों से अपने लिए सिर पर रखना, (ii) नेपिल्स पर पोप अधिकार करना चाहता था, किन्तु नेपोलियन ने वहां अपने भाई जोसेफ को शासक नियुक्त कर दिया, (iii) पोप नेपोलियन के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगा था, (iv) नेपोलियन द्वारा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करना, (v) नेपोलियन द्वारा पोप को फाउण्टेब्ल्यू में गिरफ्तार करना।

2 "The code will outline my victories." —*Napoleon*

3 "The task for which modern government devote 15 years of exhausting efforts, Nepoleon dared to accomplish in four months."
—Fisher : *A History of Europe*, p. 926.

इसलिए उसने जो अनेक सुझाव, आलोचनाएं और प्रश्न प्रस्तुत किए उससे पूरी संहिता का रूप भी परिष्कृत होकर निखर उठा। हेजन ने लिखा है, **''धर्म सम्बन्धी अपनी शब्दावली और अभिव्यंजना के कारण पादरियों ने उसे (नेपोलियन को) 'कान्स्टेण्टाइन' की उपाधि दी और विधिविज्ञों ने उसे नया 'जस्टीनियन' कहा, किन्तु सत्य यह है कि अनेक बातों में वह दोनों से बढ़कर था।''**[1]

सिविल कोड का मूल्यांकन (Evaluation of the Civil Code)—नेपोलियन द्वारा तैयार कराए गए सिविल कोड की कुछ लोगों ने कटु आलोचना की। उन्होंने इस सिविल कोड को **'कानून के मूल सिद्धान्तों की एक छोटी-सी नोट बुक'** अथवा **'शीघ्रतापूर्वक खड़ा किया गया एक खोखला ढांचा'** कहा, किन्तु सत्य इसके विपरीत प्रतीत होता है क्योंकि अधिकांश इतिहासकारों ने इस संहिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। केटल्वी ने लिखा है, **''यह संहिता सामान्य बुद्धि तथा अनुभव पर आधारित थी न कि सिद्धान्तों पर। इसमें कोई राजनीतिक अथवा धार्मिक पक्षपात नहीं था। यह धार्मिक सहनशीलता तथा समानता की गारण्टी देती थी तथा सिविल विवाह तथा तलाक की अनुमति देती थी। दूसरी ओर यह पारिवारिक जीवन के मूल्य तथा पिता की प्रभुसत्ता, निजी सम्पत्ति की सुरक्षा करती थी।''**[2] वर्तमान समय में सिविल कोड सम्भवतः उतना महत्वपूर्ण प्रतीत न होता, किन्तु तत्कालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए निःसन्देह यह अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसने फ्रांस की जनता के तत्कालीन कष्टों को दूर किया। फ्रांस का सिविल कोड समानता के सिद्धान्त (Principle of equality) पर आधारित था। इससे मध्य वर्ग (बुर्जुआ वर्ग) को विशेष लाभ हुआ। इस संहिता (Code) के महत्व पर प्रकाश डालते हुए हेज ने लिखा है, **''फ्रांस का कोड विश्व भर में सबसे सुविधाजनक और सबसे प्रबुद्ध कानून रहा। बोनापार्ट (नेपोलियन) को आधुनिक जस्टीनियन कहना उचित ही है।**[3] रोज ने भी 'नेपोलियन कोड' की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **''नेपोलियन की प्रसिद्धि उसके द्वारा विजित 40 युद्धों में नहीं, वरन् काउन्सिल ऑफ स्टेट की विर्तकता तथा नेपोलियन कोड में निहित है।''**[4] लियो गर्शोय ने भी इस संहिता की अत्यधिक प्रशंसा की है।[5]

---

1 **पूर्वोक्त**, पृ. 136।

2 "It was based on common sense and expereicne rather than on theory, and it was animated by no political or religious prejudices. It granted religious toleration and equity, enjoined civil marriage and permitted divorce. On the other hand, it upheld strongly the value of family life, the authority of father, the sanctity of private property."
—Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 121.

2 "The French code remained not only the most convenient but the most enlightened of set of laws in the world. Bonapart was rightly hailded as a second Justinian."
—Hayes, *op. cit.*, p. 654.

3 "Napoleon's glory consisted not in having won forty battles, but in the delibera-tions."
—Rose, *The Personality of Napoleon*, p. 139.

4 'It was atonce 'a summary and a correction of the Revolution.' It gave the unity of legislation that France had so long desired......It defended the revolutionary principle of equality by guaranteeing civil liberty and civil equality."
—Leo Gershoy, *The Revolution and Nepoleon*, p. 456.

5 "The memories represented Napoleon Bonapart in the light of a true son and heir of the Revolution, who had been raised by the will of the French people to great power in order that he might substantiate the revolutionary idea of liberty equality and fraternity."
—Hayes, *op. cit.*, p. 651.

प्रथम कान्सल के रूप में नेपोलियन के कार्यों का मूल्यांकन
(EVALUATION OF NAPOLEON'S WORKS AS THE FIRST CONSUL)

नेपोलियन ने प्रथम कान्सल बनने के पश्चात् फ्रांस की आन्तरिक स्थिति को सुधारने के लिए असाधारण प्रयास किए जिसका परिणाम अनेक सुधारों के रूप में सामने आया। नेपोलियन के द्वारा प्रथम कान्सल के रूप में किए गए सुधारों का अत्यधिक महत्व है। जिस समय नेपोलियन प्रथम कान्सल बना था उस समय फ्रांस की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। जनता उस समय सुदृढ़ शासन चाहती थी। इतिहासकार हेज ने लिखा है, "**फ्रांस् की जनता उस समय स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की भावना की स्थापना चाहती थी। नेपोलियन ने यह कार्य करके स्वयं को क्रान्ति का वास्तविक पुत्र एवं उत्तराधिकारी प्रमाणित किया।**"[1] डेविड टामसन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "**उसका (नेपोलियन) वास्तविक उद्देश्य फ्रांस के वैधानिक, वित्तीय तथा प्रशासनिक संस्थाओं का तरतीब से पुनर्संगठन करना था जिसने नेपोलियन को अठारहवीं शताब्दी का अन्तिम, किन्तु महानतम् उदारवादी निरंकुश शासक बना दिया।**"[2] ग्रांट तथा टेम्परले ने भी नेपोलियन की सुधारवादी नीति की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "**एक राजनीतिज्ञ के रूप में नेपोलियन का मुख्य आधार उसकी गृह-नीति के अन्तर्गत किए गए कार्य ही हैं, जिसने उसे विद्वान सैनिक का अद्वितीय स्थान भी प्रदत्त किया।**"[3]

प्रथम कान्सल के रूप में नेपोलियन की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF NAPOLEON AS FIRST CONSUL)

नेपोलियन ने प्रथम कान्सल के रूप में गृह नीति में ही सफलता प्राप्त नहीं की वरन् वैदेशिक नीति में भी वह सफल रहा। उसकी कार्य-प्रणाली इस प्रकार से थी—

(1) **इटली का द्वितीय अभियान** (Second Campaign against Italy)—नेपोलियन ने प्रथम कान्सल बनने के बाद आस्ट्रिया पर दो ओर से आक्रमण करने की योजना बनायी। उसने एक सेना प्रसिद्ध सेनापति मोरो (Moreau) के नेतृत्व में दक्षिण जर्मनी की ओर से आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए भेजी। दूसरी सेना का नेतृत्व स्वयं नेपोलियन ने किया। उसने इस बार इटली पर आक्रमण करने के लिए आल्पस की दुर्गम पहाड़ियों को पार करने का निर्णय किया। नेपोलियन ने **बर्नार्ड के दर्रे** (Great St. Bernard Pass) को पार करके इटली में प्रवेश किया। मोरेंगो (Morrengo) नामक स्थान पर नेपोलियन व आस्ट्रियन सेनाओं के मध्य भीषण युद्ध हुआ। नेपोलियन की इस युद्ध से विजय हुई। दूसरी ओर से मोरो निरन्तर सफलता प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ रहा था। **मोरो ने 3 दिसम्बर, 1800 ई. को होहेनलिण्डन** (Hohenlinden) **नामक स्थान पर आस्ट्रिया की सेना को परास्त किया।** आस्ट्रिया का सम्राट फ्रान्सिस II (Francis II) नेपोलियन व मोरो की निरन्तर सफलताओं से भयभीत हो उठा व विवश होकर उसने फ्रांस के साथ 1801 ई. में **ल्यूनेविले की सन्धि** (Treaty of Luneville) कर ली।

---

1 "His over all purpose was a systematic reconstruction of the main legal, financial and administrative institutions of France, which gives Bonapart a strong claim to be the last and greatest of the eighteenth century benevolent despots."
—David Thomson, *Europe Since Nepoleon*, p. 37.

2 "Napoleon's claim to statesmanship, which gives him a unique place among soldiers of genius, rests primarily on the measures of domestic policy."
—Grant & Temperley, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 83.

इस सन्धि से फ्रांस को बहुत लाभ हुआ। इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नवत् थीं—

(i) आस्ट्रिया हैल्वेटिक (Halvetic), बेटेवियन (Batavian) तथा सिस-अल्पाइन (Cis-alpine) गणराज्यों को मान्यता प्रदान करने के लिए तैयार हो गया।
(ii) इटली के गणराज्यों को मान्यता प्रदान कर दी गयी।
(iii) बेल्जियम पर फ्रांस का अधिकार मान लिया गया।
(iv) केम्पोफोमिया की सन्धि को पुनः स्वीकार किया गया।

(2) **इंग्लैण्ड से समझौता** (Agreement with England)—फ्रांस और इंग्लैण्ड परस्पर लम्बे समय से युद्ध करते-करते ऊब चुके थे। नेपोलियन यह समझ चुका था कि शक्तिशाली नौ-सेना के बिना इंग्लैण्ड को परास्त करना सम्भव न था। दूसरी ओर इंग्लैण्ड को भी आभास हो गया था कि शक्तिशाली थल सेना के अभाव में फ्रांस पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती थी। अतः 27 मार्च, 1802 ई. को दोनों देशों के मध्य **आमियां की सन्धि** (Treaty of Amines) हो गई। **इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं—**

(i) इंग्लैण्ड ने फ्रांस की कान्स्यूलेट (Consulate) सरकार को मान्यता प्रदान की।
(ii) इंग्लैण्ड ने श्रीलंका व ट्रिनिडाड को छोड़कर शेष सभी उपनिवेश जिन्हें उसने पिछले युद्धों में फ्रांस से जीता था, फ्रांस को लौटा दिए।
(iii) इंग्लैण्ड ने ल्यूनेविले की सन्धि (Treaty of Luneville) को मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार कुछ समय के लिए दोनों प्रमुख प्रतिद्वन्द्वियों के मध्य युद्ध विराम हो गया, किन्तु दुर्भाग्यवश यह सन्धि स्थाई प्रमाणित नहीं हुई। एक वर्ष के पश्चात् ही यह सन्धि टूट गई, किन्तु यह सन्धि निःसन्देह नेपोलियन के लिए एक कूटनीतिक विजय थी क्योंकि इसके द्वारा इंग्लैण्ड ने फ्रांस की सरकार को मान्यता प्रदान की थी।

नेपोलियन की हत्या के प्रयत्न
(ATTEMPTS ON NAPOLEON'S LIFE)

नेपोलियन ने अल्प समय में ही जितनी उन्नति की थी उससे कुछ लोग प्रसन्न न थे। विशेष रूप से नेपोलियन की उन्नति से जैकोबिन दल (Jacobin Party) व राजतन्त्रवादी अत्यन्त भयभीत थे। नेपोलियन जैकोबिन दल की शक्ति से चिन्तित था। राजतन्त्रवादियों से उसको इतना भय नहीं था। नेपोलियन ने राजतन्त्रवादियों के लिए कहा था : **"मैं ऐसे षड्यन्त्रकारी से नहीं डरता जो सुबह नौ बजे सोकर उठता हो तथा स्वच्छ कमीज पहनता हो।"**[1] परन्तु उल्लेखनीय है कि उसके विरुद्ध दोनों बार षड्यन्त्र राजतन्त्रवादियों ने ही किए। पहली बार 1800 ई. में जब नेपोलियन नाट्यशाला की ओर जा रहा था, उस पर बम फेंका गया, जिसमें 20 व्यक्ति मारे गए, किन्तु नेपोलियन बच गया। इस अपराध में नेपोलियन ने यह जानते हुए भी कि यह कार्य राजतन्त्रवादियों का है अनेक जैकोबिनों को मौत के घाट उतार दिया। नेपोलियन की हत्या का दूसरा षड्यन्त्र 1804 ई. में लन्दन निवासी आर्त्वा के काउण्ट ने जार्ज कैडोडल (George Cadoudal) पिशेग्रू (Pichegru) तथा मोरो (Moreau) की सहायता से रचा, किन्तु नेपोलियन को इस षड्यन्त्र की जानकारी हो गयी। केडोडल को मृत्युदण्ड दिया गया तथा पिशेग्रू को कारागार में डाल दिया गया जहां उसने आत्महत्या करके

1 "I am not afraid of the sort of conspirator who gets up at nine O'clock and puts on a clear shirt." —*Napoleon*

अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। मोरो को फ्रांस से निष्कासित कर दिया गया। लन्दन निवासी आर्त्वा के काउण्ट का नेपोलियन कुछ न बिगाड़ सका, अतः उसने प्रतिशोध के वशीभूत होकर बूर्बां-वंश के एक निर्दोष राजकुमार ड्यूक द आंगियां (Duke d' Euglin) को 1804 ई. में मृत्युदण्ड दे दिया। नेपोलियन का यह कार्य उसकी बहुत बड़ी गलती थी। बी. सी. पाण्डे ने लिखा है : **"इस घटना को सुनकर इंग्लैण्ड, रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया में बहुत असन्तोष फैला। रूस में ड्यूक के लिए मातम मनाया गया। प्रशा जो फ्रांस से सन्धि करने को तैयार था, अब रूस की ओर झुकने लगा। इंग्लैण्ड ने इसका लाभ उठाकर इन देशों को नेपोलियन के विरुद्ध तीसरा संघ बनाने के लिए राजी कर लिया। इस प्रकार ड्यूक की हत्या नेपोलियन की बहुत बड़ी राजनीतिक भूल थी।"**[1]

नेपोलियन फ्रांस के सम्राट के रूप में
(NAPOLEON AS AN EMPEROR OF FRANCE)

नेपोलियन अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह 1799 ई. में फ्रांस का प्रथम कान्सल बना। उसकी यह नियुक्ति 10 वर्षों के लिए थी। 1802 ई. में नेपोलियन को 10 वर्ष के स्थान पर जीवन भर के लिए प्रथम कान्सल बना दिया गया। नेपोलियन की महत्वाकांक्षाएं इतने से सन्तुष्ट न हुईं। समस्त परिस्थितियां नेपोलियन के पक्ष में थीं। जनता उसे राष्ट्रीय नायक (National Hero) मानती थी। उससे 1804 ई. में जनमत करवा कर स्वयं को फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया। 2 दिसम्बर, 1804 ई. को नाटरडम (Notredame) में उसका धूम-धाम से राज्याभिषेक किया गया। नेपोलियन के राज्याभिषेक के अवसर पर पोप को भी आमन्त्रित किया गया था। **राज्याभिषेक के समय जब पोप उसके सिर पर ताज रखने लगा तो नेपोलियन ने ताज उसके हाथों से ले लिया तथा स्वयं अपने हाथों से अपने मस्तक पर रखा। इस प्रकार उसने विश्व को यह दर्शाया कि ताज उसने स्वयं प्राप्त किया है न कि पोप की कृपा से।**[2] नेपोलियन स्वयं भी कहा करता था, **"मुझे फ्रांस का राजमुकुट पृथ्वी पर पड़ा मिला जिसे मैंने तलवार की नोंक से उठाकर अपने मस्तक पर रखा।"**[3]

इस प्रकार फ्रांस में गणतन्त्र का अन्त हुआ व नेपोलियन का एकतन्त्रात्मक शासन प्रारम्भ हुआ। यहां पर यह जानना आवश्यक है कि फ्रांस की प्रजा ने, जो राजतन्त्रात्मक शासन प्रद्धति की घोर विरोधी थी, नेपोलियन को सम्राट क्यों स्वीकार कर लिया। इसका प्रमुख कारण यह था कि नेपोलियन 1804 ई. तक अपनी छवि **राष्ट्रीय नायक** (National Hero) की स्थापित कर चुका था। जनता को नेपोलियन व उसकी क्षमता पर पूर्ण विश्वास था। इसके अतिरिक्त डाइरेक्टरी के शासन से जनता दुःखी हो चुकी थी, अतः जनसाधारण एक स्थिर एवं सक्षम सरकार चाहता था। **नेपोलियन ने पोप से समझौता करके रोमन कैथोलिक जनता को अपने पक्ष में कर लिया था।** इसके अलावा नेपोलियन के प्रथम कान्सल के रूप में किए गए सुधारों से जनता को अपेक्षा थी कि सम्राट बनने के पश्चात् नेपोलियन उनकी समस्त समस्याओं का समाधान कर सकेगा।

---

1 **यूरोप का इतिहास**, पृ. 130।

2 इसी कारण पोप नेपोलियन से नाराज हो गया था।

3 **"I found the Crown of France lying on the ground and I picked it up with my sword."** —*Napoleon*

सैनिक उपलब्धियां
(MARTIAL ACHIEVEMENTS)

1804 ई. में सम्राट बनने के पश्चात् नेपोलियन ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं फ्रांस के सम्मान को ऊंचा उठाने के उद्देश्य से अनेक युद्ध किए। नेपोलियन द्वारा लड़े गए अनेक युद्ध निम्नवत् थे :

नेपोलियन के युद्ध
(WARS OF NAPOLEON)

1802 ई. में नेपोलियन 10 वर्ष की अवधि के स्थान पर जन्म भर के लिए कान्सल बन गया था, परन्तु वह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ था। वह फ्रांस का सम्राट बनना चाहता था, अतः उसके संकेत पर सीनेट ने 1804 ई. में उसको सम्राट घोषित कर दिया तथा जनता द्वारा इसका अनुमोदन किया गया। 2 दिसम्बर, 1804 ई. को नाटरडाम (NOTREDAME) के गिरजाघर में समारोहपूर्वक नेपोलियन का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। **सम्राट बनने के पश्चात् नेपोलियन द्वारा निम्नलिखित युद्ध किए गए :**

1. **आस्ट्रिया के साथ युद्ध** (War against Austria)—सम्राट बनने से पूर्व ही डिक्टेटर के रूप में नेपोलियन ने आस्ट्रिया पर आक्रमण करके उसे सन्धि करने पर मजबूर किया था जिसका विस्तृत वर्णन पहले दिया जा चुका है।[1] आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध बनने वाले प्रत्येक संघ में भाग लिया था। इसलिए नेपोलियन उसे अपना शत्रु जानकर उसके विरुद्ध पहले ही सारी तैयारी कर चुका था। आस्ट्रिया भी युद्ध की सम्भावना को समझ चुका था। नेपोलियन ने तुरन्त ही आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए अपनी विशाल सेना भेजी। आस्ट्रिया का यह अनुमान गलत साबित हुआ कि नेपोलियन का प्रमुख आक्रमण इटली की ओर से होगा। अपने अनुमान के आधार पर उसने अधिकांश सेना इटली भेज दी। दक्षिणी जर्मनी में 50 हजार सैनिक ही रखे जिससे दक्षिणी जर्मनी असुरक्षित हो गया। इसका लाभ नेपोलियन को प्राप्त हुआ। आस्ट्रिया ने रूस की सेना की प्रतीक्षा किए बिना ही युद्ध प्रारम्भ कर दिया। फ्रांसीसी सेनाएं डेन्यूब नदी की ओर गयीं। 20 अक्टूबर, 1805 ई. को उल्म (Ulm) के पास फ्रांसीसी सेनाओं ने आस्ट्रिया के सेनापति मैक (MACK) को अपनी 50 हजार सेना के साथ आत्मसमर्पण करने पर मजबूर किया। इस प्रकार नेपोलियन की शानदार विजय हुई, जिसका काफी श्रेय आस्ट्रिया के गलत युद्ध संचालन को था। नेपोलियन की इस विजय की उसके विरोधियों तक ने प्रशंसा की है।

2. **ट्राफल्गार** (Trafalgar) **के युद्ध में इंग्लैण्ड द्वारा पराजित**—आस्ट्रिया को पराजित करने के तुरन्त बाद ही नेपोलियन को भीषण पराजय का मुंह देखना पड़ा। 22 अक्टूबर, 1805 ई. को इंग्लैण्ड के जल सेनानायक नेल्सन के ट्राफल्गार के अन्तरीप के समीप घमासान जल युद्ध में फ्रांस और स्पेन के संयुक्त जहाजी बेड़े को पूरी तरह परास्त करके नष्ट कर दिया। डाइरेक्टरी के शासन में भी नेल्सन द्वारा फ्रांसीसी जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया गया था।[2] ट्राफल्गार के इस युद्ध में सेनापति नेल्स मारा गया था, इसलिए इंग्लैण्ड में इस विजय से अधिक हर्ष नहीं मनाया गया। फ्रांस के लिए यह पराजय बहुत भयंकर सिद्ध हुई। इसके

1 देखें : 'डिक्टेटर के रूप में नेपोलियन के युद्ध।'
2 देखें : 'डिक्टेटर के रूप में नेपोलियन के युद्ध।'

पश्चात् नेपोलियन ने समुद्र के रास्ते इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का विचार सदैव के लिए त्याग दिया। नेपोलियन का कहना था, **''यदि मात्र छह घण्टे के लिए मेरा समुद्र पर अधिकार हो जाए तो इंग्लैण्ड का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।''**[1]

3. **आस्टर्लिज के युद्ध में नेपोलियन की विजय** (Victory of Napoleon)—ट्राफल्गार की पराजय के शीघ्र बाद ही नेपोलियन ने आस्ट्रिया की राजधानी विएना पर अधिकार कर लिंया। आस्ट्रिया एवं रूस की सेनाएं आपस में सम्मिलित होकर नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध के लिए आस्टर्लिज के पास इकट्ठी हुई थीं। 2 दिसम्बर, 1805 ई. को इन तीनों देशों (फ्रांस, आस्ट्रिया तथा रूस) के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसे इतिहास में **'तीन सम्राटों का युद्ध'** कहा जाता है। इस युद्ध में आस्ट्रिया एवं रूस की संयुक्त सेनाएं पराजित हो गयीं। उनके 15 हजार सैनिक मारे गए तथा 30 हजार कैद कर लिए गए। नेपोलियन को बहुत-सी तोपें एवं युद्ध सामग्री प्राप्त हुई। विवश होकर आस्ट्रिया को सन्धि करनी पड़ी।

आस्टिया के साथ की गयी प्रेसबर्ग (Pressburg) **की सन्धि**—इस युद्ध में पराजित होने के उपरान्त रूस का सम्राट भाग गया और आस्ट्रिया के सम्राट को पराजित होकर सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी। फलतः 26 दिसम्बर, 1805 ई. को नेपोलियन ने प्रेसबर्ग में आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर ली। यह आस्ट्रिया के लिए बहुत अपमानजनक रही। **इसकी मुख्य शर्तें निम्न प्रकार थीं :**

(i) आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस को वेनिस तथा डालमेशिया के प्रदेश दिए गए।

(ii) फ्रांस के मित्र बवेरिया को टाइरोल तथा स्वेबिया के प्रदेश देने पड़े।

(iii) बवेरिया, बर्टमबर्ग तथा बैडेन को आस-पास के अनेक प्रदेश दिए तथा बवेरिया एवं बर्टमबर्ग के सामन्तों को राजा की उपाधि प्रदान की गयी।

यह सन्धि नेपोलियन तथा फ्रांस के लिए बहुत सम्मानजनक रही। आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को इस सन्धि से काफी ठेस पहुंची। उसे लगभग तीस लाख जनसंख्या वाले प्रान्तों को छोड़ना पड़ा तथा राइन, इटली तथा स्विट्जरलैण्ड से भी उसका सम्बन्ध टूट गया।

4. **नेपोलियन द्वारा पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त एवं राइन संघ का निर्माण** (Formation of Rhine confederation)—नेपोलियन ने 6 अगस्त, 1806 ई. को पवित्र रोमन सम्राट के पद का अन्त कर दिया। विवश होकर सम्राट फ्रांसिस ने स्वयं को आस्ट्रिया का सम्राट घोषित किया तथा पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि को त्याग दिया। इस प्रकार पवित्र रोमन साम्राज्य के समाप्त हो जाने से आस्ट्रिया के सम्राट के पद एवं शक्ति में कमी आ गयी। इसके पश्चात् नेपोलियन ने **'पवित्र रोमन साम्राज्य'** (Roman Empire) के कुछ राज्यों को पृथक् करके अपने अधीन **'राइन के राज्य संघ'** का निर्माण किया तथा स्वयं को इस संघ का संरक्षक घोषित किया। इसके अलावा यह भी तय किया कि युद्ध के समय प्रत्येक राज्य नेपोलियन की सहायता के लिए एक निश्चित संख्या में सैनिक देगा।

नेपोलियन द्वारा इटली में अपना प्रभाव स्थापित—प्रेसबर्ग की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन का प्रभाव इटली में 8 वर्ष तक बना रहा। उसने इटली में अपने सम्बन्धियों तथा सेनापतियों को बड़े-बड़े पदों पर आसीन किया। इटली ने युद्धों में नेपोलियन की सहायता की। नेपोलियन

1 **"If can only be master of the sea for six hours, England will cease to exist."**

—*Napoleon*

ने वेनिस आस्ट्रिया से छीनकर इटली में मिला दिया। उसने स्वयं को रोम का बादशाह घोषित किया। नेपोलियन के इन कार्यों से अप्रत्यक्ष रूप से इटली के एकीकरण में सहायता पहुंची।

5. **प्रशा के साथ युद्ध** (War against Prussia)—बेसिल की सन्धि के बाद से प्रशा तटस्थता की नीति अपना रहा था, परन्तु हैनोवर पर आक्रमण करते समय नेपोलियन ने तटस्थ प्रशा राज्य में से अपनी सेनाओं को निकालने का आदेश दिया। प्रशा को नेपोलियन का यह कार्य असहनीय लगा, प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने नेपोलियन से यह मांग की कि वह नेपिल्स, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड और पीडमोण्ट को खाली कर दे तथा प्रशा को हैनोवर वापस कर दे, परन्तु नेपोलियन ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। फलतः प्रशा ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 14 अक्टूबर, 1806 ई. को फ्रांस ने **जेना** (Jena) तथा **आवेरस्टाट** (Averstadt) के युद्धों में प्रशा की सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया। इस युद्ध में प्रशा का सेनापति ब्रुजविक मारा गया तत्पश्चात् प्रशा के सेनापति ब्लूचर ने युद्ध जारी रखा। अन्ततः वह भी मारा गया। तत्पश्चात् 25 अक्टूबर, 1806 ई. को फ्रांसीसी सेना बर्लिन में प्रवेश कर गयी व नेपोलियन ने प्रशा की शक्ति को पूर्णतः समाप्त कर दिया।

6. **रूस के विरुद्ध अभियान** (Compaign Against Russia)—प्रशा को पराजित करने के पश्चात् नेपोलियन ने प्रशा से सन्धि किए बिना ही रूस पर आक्रमण करने का विचार किया। सर्वप्रथम उसने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तथा 15 दिसम्बर, 1806 ई. को पोलैण्ड की राजधानी वार्सा में प्रवेश किया। तत्पश्चात् आइलो (Eyleau) के मैदान में नेपोलियन तथा रूस की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों पक्षों के लगभग 35 हजार सैनिक मारे गए, किन्तु रूस को युद्ध से पीछे हटना पड़ा। 8 फरवरी, 1807 ई. को होने वाला यह युद्ध अनिर्णायक रहा। इस युद्ध के सम्बन्ध में एक सेनानायक ने कहा था **"कैसा भयंकर नर संहार ! और कुछ भी परिणाम नहीं"** कुछ समय पश्चात् 14 जून, 1807 ई. को नेपोलियन ने फ्रीडलैण्ड के मैदान में रूस के सम्राट को पराजित कर दिया। इस युद्ध में रूस के 2,500 सैनिक मारे गए। रूस के सम्राट को विवश होकर सन्धि के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। अन्त में **टिलसिट** (Tilsit) नामक स्थान पर दोनों सम्राटों ने भेंट की।

8 **जुलाई**, 1807 **ई. को नेपोलियन तथा रूस के सम्राट एलेक्जैण्डर प्रथम के बीच टिलसिट की सन्धि** (Treaty of Tilsit) हुई। जिसकी शर्तें निम्नलिखित थीं—

इस सन्धि की शर्तों को तीन भागों में बांटा जा सकता है :

(i) नेपोलियन तथा एलेक्जेण्डर ने यूरोप को आपस में बांट लिया। पश्चिमी यूरोप में नेपोलियन को तथा पूर्वी यूरोप में एलेक्जेण्डर को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल गयी।

(ii) जार ने उन राज्यों को स्वीकार कर लिया जिनका निर्माण नेपोलियन ने किया था।

(iii) रूस से युद्ध का कोई हर्जाना नहीं लिया गया बल्कि उसे फिनलैण्ड तथा तुर्की की ओर साम्राज्य विस्तार करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया।

(ब) गुप्त रूप से की गयी सन्धि—इसके अनुसार दोनों सम्राटों ने तय किया कि इंग्लैण्ड अपने सामुद्रिक अधिकारों को छोड़ दे तथा फ्रांस से सन्धि करने के लिए रूस मध्यस्थता करे। यदि इंग्लैण्ड एक महीने के अन्दर यह स्वीकार नहीं करता है तो रूस फ्रांस के साथ मिलकर

इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा तथा डेनमार्क, स्वीडन और पुर्तगाल को भी इसके लिए प्रोत्साहित करेगा। इसी प्रकार रूस और टर्की के बीच मध्यस्थता का कार्य फ्रांस को करना पड़ेगा। यदि टर्की फ्रांस की मध्यस्थता को अस्वीकार कर देगा तो रूस और फ्रांस टर्की को आपस में बांट लेंगे।

(स) प्रशा के साथ सन्धि—जार के आग्रह पर नेपोलियन ने प्रशा के राज्य की पूर्णतः समाप्ति नहीं की लेकिन उसके बहुत से प्रदेशों को छीन लिया। **इस सन्धि की निम्न शर्तें थीं**—

(i) पोलैण्ड का वह भाग जो प्रशा के पास था, उससे छीन लिया गया।

(ii) राइन नदी के किनारे के सब प्रदेश प्रशा से छीनकर एक नए राज्य वेस्टफेलिया (Westphalia) का निर्माण किया गया।

(iii) युद्ध का भारी हर्जाना प्रशा पर लादा गया। यह भी निश्चित किया गया कि जब तक प्रशा हर्जाना अदा नहीं करेगा तब तक फ्रांस की सेना प्रशा में रहेगी तथा प्रशा ही उनका व्यय वहन करेगा।

(iv) प्रशा ने नेपोलियन के नए राज्यों को स्वीकार कर लिया तथा यह भी वायदा किया कि वह अपने बन्दरगाहों को अंग्रेजी व्यापार के लिए बन्द कर देगा।

(v) प्रशा की सेना घटाकर 22 हजार निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार अनेक युद्धों में विजयी रहकर नेपोलियन शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इस सम्बन्ध में **ग्रांट** एवं **टेम्परले** का कथन है, "**यदि इस वर्ष नेपोलियन की मृत्यु हो जाती तो उसका जीवन यूरोप तथा सम्भवतः विश्व के सैनिक इतिहास में अद्वितीय रहा होता।**"[1] इस समय नेपोलियन विश्व के सम्राटों में सबसे अधिक शक्तिशाली एवं विशाल साम्राज्य का मालिक था। उसका साम्राज्य पो नदी से उत्तरी सागर और पेरेनीज पर्वत तक तथा पोप के राज्य से राइन नदी तक फैला था। इंग्लैण्ड के अतिरिक्त लगभग समस्त यूरोप पर उसका आधिपत्य था।

7. **स्पेन से युद्ध** (War Aganist Spain)[2]—नेपोलियन ने 1808 ई. में स्पेन पर आक्रमण किया। स्पेन पर आक्रमण के साथ ही उसके पतन का मार्ग प्रशस्त होने लगा। नेपोलियन के समय में स्पेन व फ्रांस के सम्बन्ध मधुर थे तथा स्पेन के राजा ने सदैव नेपोलियन की सहायता की थी, किन्तु नेपोलियन की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा से उसे अपने व पराए की सूझ न रही तथा वह स्पेन पर आक्रमण करने की गलती कर बैठा जो कि निःसन्देह उसकी राजनीतिक भूल थी। **नेपोलियन द्वारा स्पेन पर आक्रमण करने के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे**—

(i) नेपोलियन समृद्ध स्पेन पर अधिकार चाहता था।

(ii) नेपोलियन बूर्बां वंश (Bourbon Dynasty) को समूल नष्ट करना चाहता था। स्पेन का राजा चार्ल्स भी बूर्बां वंश ही का था।

(iii) 1806 ई. में स्पेन ने नेपोलियन के प्रशा के विरुद्ध युद्ध में रत होने का लाभ उठाकर फ्रांस पर आक्रमण करना चाहा था, किन्तु प्रशा के पराजित हो जाने के कारण वह ऐसा न कर सका।

(iv) स्पेन का राजा चार्ल्स IV अयोग्य शासक था। अतः नेपोलियन का विचार था कि इटली के समान स्पेन में भी जनता उसका स्वागत करेगी।

1 **"Had he died in that year his career would have seemed the most miraculous in the military annals of Europe and perhaps of the world."—*Grant and Temperley***

2 विस्तृत वर्णन के लिए देखिए इसी अध्याय में 'नेपोलियन और प्रायद्वीपीय युद्ध'।

(v) स्पेन पर अधिकार करके वह **महाद्वीपीय व्यवस्था** (Continental System) को सुदृढ़ बनाना चाहता था।
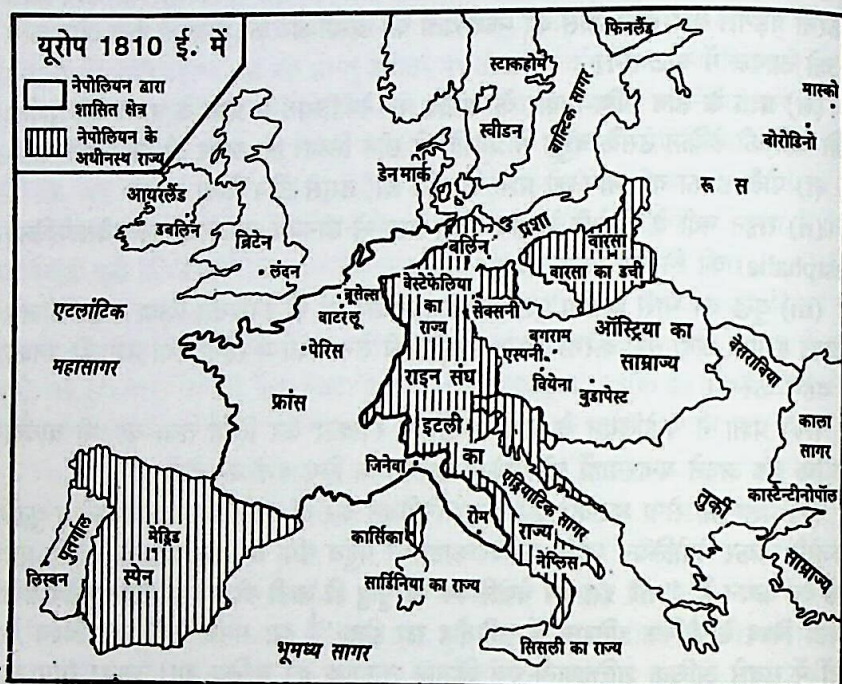
उपरोक्त कारणोंवश नेपोलियन ने लगभग एक लाख सैनिक स्पेन भेजे जिन्होंने स्पेन के अनेक दुर्गों (Forts) पर अधिकार कर लिया, किन्तु स्पेन की जनता को बाहरी हस्तक्षेप पसन्द न आया तथा वे फ्रांस की सेना का विरोध तथा राजा चार्ल्स के स्थान पर युवराज फर्डिनेण्ड को राजा बनाए जाने की मांग करने लगे। नेपोलियन ने चार्ल्स व फर्डिनेण्ड को पदच्युत करके अपने भाई जोसेफ (Joseph) को स्पेन का शासक नियुक्त किया, किन्तु जनता ने इसका घोर विरोध किया तथा नेपोलियन व जोसेफ के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। **जून 1808 ई. में बेलेन नामक स्थान पर स्पेनी जनता ने फ्रांसीसी सेना को परास्त किया तथा जोसेफ को स्पेन से भागने पर विवश किया।** उसी समय इंग्लैण्ड की सैनिक सहायता भी स्पेनवासियों को प्राप्त हो गयी। अतः विमरो के युद्ध में भी फ्रांसीसी सेना परास्त हुई।

फ्रांसीसी सेनाओं के निरन्तर परास्त होने के कारण 1808 ई. के अन्त में नेपोलियन स्वयं एक शक्तिशाली सेना के साथ स्पेन पहुंचा व स्पेनी सेना को परास्त करके जोसेफ को पुनः स्पेन का शासक नियुक्त किया। इस समय आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने से नेपोलियन को पुनः लौटना पड़ा। नेपोलियन के लौटते ही स्पेनी जनता ने अंग्रेजी सेनाओं की सहायता से पुनः विद्रोह कर दिया व अनेक स्थानों पर फ्रांसीसी सेनाओं को परास्त किया। अतः नेपोलियन को एक शक्तिशाली सेना स्पेन में रखने के लिए विवश होना पड़ा।

इस प्रकार स्पेन के सम्बन्ध में नेपोलियन की नीति पूर्णतः गलत प्रमाणित हुई। नेपोलियन को इससे अत्यधिक हानि हुई व उसकी प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। फ्रांस की अजेय

समझी जाने वाली सेना की वास्तविक शक्ति यूरोप के राष्ट्रों के समक्ष स्पष्ट हो गयी तथा इंग्लैण्ड को फ्रांस के विरुद्ध अप्रत्यक्ष कार्यवाही करने का सुअवसर प्राप्त हो गया था। नेपोलियन ने भी स्पेन पर आक्रमण करने की अपनी भूल को स्वीकार किया था। नेपोलियन ने कहा था, **"स्पेनी नासूर ने मेरा विनाश कर दिया।"**[1]

8. **मास्को अभियान** (Moscow Campaign)[2]—1807 ई. में हुई टिलसिट की सन्धि के परिणामस्वरूप रूस व फ्रांस से मित्रता हो गयी, किन्तु रूसी जनता इस मित्रता के पक्ष में न थी। इसके अतिरिक्त नेपोलियन ने **महाद्वीपीय व्यवस्था** लागू करने के पश्चात् रूस पर भी उसका पालन करने के लिए दबाव डाला। रूस इसके पक्ष में न था क्योंकि दैनिक जीवन की अनेक वस्तुएं इंग्लैण्ड से ही आती थीं। रूस कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) परअधिकार करना चाहता था, किन्तु नेपोलियन इसके लिए तैयार न था। अतः रूस का झुकाव इंग्लैण्ड की ओर होने लगा। फिर भी रूस स्पष्ट रूप से फ्रांस के विरुद्ध नहीं हुआ था, किन्तु 1809 ई. में जब नेपोलियन ने पोलैण्ड को रूस में मिलाने के स्थान पर **'ग्रांड डची ऑफ वारसा'** की स्थापना की तो रूस की सहन शक्ति जवाब दे गयी। रूस ने इंग्लैण्ड के साथ व्यापार पुनः प्रारम्भ कर दिया। इससे नेपोलियन अत्यधिक क्रोधित हुआ व रूस पर आक्रमण की योजना बनाने लगा। रूस पर नेपोलियन द्वारा आक्रमण करने का एक कारण यह भी था कि वह विजेता बनना चाहता था। उसका विचार था कि रूस पर अधिकार कर लेने के पश्चात् भारत पर भी अधिकार करने में विशेष कठिनाई नहीं होगी। नेपोलियन ने स्वयं कहा भी था **"मास्को भारत के आधे रास्ते में स्थित है।"**[3]

रूस एक विशाल देश था तथा उस पर विजय प्राप्त करने के लिए एक विशाल सेना की आवश्यकता थी। अतः नेपोलियन ने अत्यन्त शक्तिशाली सेना का निर्माण किया जिसमें लगभग 6 लाख सैनिक थे। तत्पश्चात्, नेपोलियन ने 24 जून, 1812 ई. को रूस के लिए प्रस्थान किया। रूसी सेनाएं निरन्तर पीछे हटती गयीं व खेतों तथा खलियानों को नष्ट करती गयीं। 14 अक्टूबर, 1812 ई. को नेपोलियन मास्को पहुंच गया, किन्तु तब तक रूस में अपार सर्दी पड़ने लगी थी जिससे उसके सैनिकों की मृत्यु होने लगी। विवश होकर नेपोलियन ने वापसी यात्रा प्रारम्भ की, किन्तु अन्न के अभाव में सर्दी के कारण उसके सैनिकों को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े। इसी समय रूसी सैनिकों ने फ्रांसीसी सेना पर आक्रमण किया। नेपोलियन 6 लाख सैनिकों के साथ फ्रांस से चला था जब वह वापस फ्रांस पहुंचा तो मात्र 20 हजार सैनिक जीवित बचे थे। इस प्रकार **नेपोलियन को मास्को अभियान के दौरान अत्यधिक हानि का सामना करना पड़ा तथा उसकी प्रतिष्ठा को तीव्र आघात पहुंचा। परिणामस्वरूप, अन्य देश भी उसके विरुद्ध युद्ध की तैयारी करने लगे।**

9. **राष्ट्रों का युद्ध**[4] (War of Nations)—जनवरी 1813 ई. में रूस ने यूरोप के अन्य देशों से नेपोलियन को परास्त करने की अपील की। शीघ्र ही प्रशा ने रूस को सहायता देने का वचन दिया। जर्मनी के अनेक अन्य राज्यों ने भी रूस की अपील को स्वीकार कर लिया।

1 "Spanish Ulcer has ruined me." —*Napoleon*

2 विस्तृत वर्णन के लिए देखिए इसी अध्याय में आगे 'रूस से युद्ध'।

3 "Moscow is half way house to India." —*Napoleon*

4 विस्तृत वर्णन के लिए देखिए इसी अध्याय में आगे 'राष्ट्रों का युद्ध'।

अतः नेपोलियन ने रूस तथा प्रशा की सम्मिलित सेनाओं का सामना किया व 2 मई, 1813 ई. को उन पर विजय प्राप्त की। इसी समय आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटरनिख ने यूरोप में शान्ति स्थापित करने के लिए कुछ प्रस्ताव नेपोलियन के समक्ष रखे, किन्तु नेपोलियन ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। **अतः आस्ट्रिया भी रूस व प्रशा के साथ मिल गया।**

इंग्लैण्ड ने इस अवसर से लाभ उठाया तथा रूस आस्ट्रिया व प्रशा को सहायता दी। इसके साथ ही नेपोलियन को परास्त करने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों ने एक संगठन (Foruth coalition) बनाया, जिसमें रूस, आस्ट्रिया, प्रशा, इंग्लैण्ड, स्वीडन तथा अन्य देश थे।

अगस्त, 1813 ई. में नेपोलियन ने आस्ट्रिया की सेना को ड्रेसडन (Dresdan) में परास्त किया। **ड्रेसडन की विजय ही नेपोलियन की अन्तिम प्रमुख विजय थी।** अक्टूबर, 1813 ई. में मित्र राष्ट्रों की सेना ने **लिपजिग** (Lipzig) के मैदान में नेपोलियन को परास्त किया तथा उसे भागकर पेरिस में शरण लेनी पड़ी। लिपजिग में हुए युद्ध को **'राष्ट्रों का युद्ध'** (War of Nations) कहा जाता है। इस युद्ध से नेपोलियन को अपार हानि हुई तथा उसका साम्राज्य भी संकुचित हो गया।

लिपजिग में नेपोलियन को परास्त करने के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने शान्ति वार्ता के लिए प्रयास किया, किन्तु नेपोलियन तैयार न हुआ। अतः मित्र राष्ट्रों ने मार्च 1814 ई. में **चाउमांट की सन्धि** की, जिसके द्वारा यह तय किया गया कि कोई भी राष्ट्र अलग से नेपोलियन से सन्धि नहीं करेगा। तत्पश्चात् मित्र राष्ट्रों की सेना ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया व अन्ततः नेपोलियन को परास्त कर अप्रैल 1814 ई. में उसे **एल्बा** (Alba) द्वीप भेज दिया।

10. **वाटरलू का युद्ध**[2] (Battle of Waterloo)—नेपोलियन को एल्बा द्वीप निष्कासित करके मित्र राष्ट्र यूरोप में शान्ति के प्रति निश्चिन्त हो गए थे, किन्तु 26 फरवरी, 1815 ई. को नेपोलियन एल्बा द्वीप से भागकर मार्च, 1815 ई. में फ्रांस के कैनेस बन्दरगाह पहुंच गया। वहां से उसने पेरिस के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में जनता द्वारा उसका शानदार स्वागत किया गया। 20 मार्च, 1815 ई. को वह पेरिस पहुंचा। **इससे पूर्व ही फ्रांस का सम्राट लुई XVIII बेल्जियम भाग गया, अतः नेपोलियन पुनः फ्रांस का सम्राट बन गया।**

मित्रराष्ट्रों को जब नेपोलियन के पुनः सम्राट बन जाने की सूचना मिली तो वैलिंगटन (Wellington) के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेना ने नेपोलियन को परास्त करने के लिए प्रस्थान किया। नेपोलियन ने सर्वप्रथम प्रशा की सेना को परास्त किया जो ब्लेचर के नेतृत्व में थी। तत्पश्चात् 18 जून, 1815 ई. को वाटरलू (Waterloo) के मैदान में नेपोलियन व वैलिंगटन की सेनाओं के मध्य भीषण युद्ध हुआ। नेपोलियन ने इस युद्ध में असाधारण वीरता व योग्यता का परिचय दिया तथा मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के पांव उखड़ने लगे। इस समय ब्लूचर के नेतृत्व में प्रशा की सेना वैलिंगटन की सहायतार्थ वाटरलू पहुंच गयी, अन्ततः उसे मित्र राष्ट्रों की सेना ने कैद कर लिया व **सेंट हेलेना** (St. Helena) के द्वीप भेज दिया गया। 1821 ई. में नेपोलियन की मृत्यु हो गयी।

1 विस्तृत वर्णन के लिए देखिए इसी अध्याय में आगे 'वाटरलू का युद्ध'।

नेपोलियन की महाद्वीपीय योजना
(NAPOLEON'S CONTINENTAL SYSTEM)

1807 ई. में हुई टिलसिट (Tilsit) की सन्धि के समय नेपोलियन अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंच गया था।[1] थामसन ने लिखा है, **"टिलसिट की सन्धि के समय नेपोलियन का साम्राज्य न केवल अपने चरम उत्कर्ष पर था वरन् अत्यन्त सुदृढ़ भी था।"**[2] लगभग सम्पूर्ण यूरोप पर इस समय तक नेपोलियन का प्रभाव स्थापित हो चुका था। यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों आस्ट्रिया, प्रशा व रूस को वह क्रमशः 1805 ई. 1806 ई. व 1807 ई. में परास्त कर चुका था। यूरोप में केवल इंग्लैण्ड ही एक ऐसा देश था जो फ्रांस को निरन्तर चुनौती दे रहा था। ट्राफल्गार के युद्ध के पश्चात् नेपोलियन समझ चुका था कि शक्तिशाली नौसेना के रहते इंग्लैण्ड को पराजित करना सम्भव न था। इसी कारण नेपोलियन स्वयं कहा करता था : **"बालोन से फॉल्कस्टोन तक सेना भेजने की तुलना में पेरिस से दिल्ली सेना भेजना सरल है।"** ऐसी स्थिति में इंग्लैण्ड को परास्त करना अत्यन्त कठिन था। इसी समय नेपोलियन को माण्टगैलार्ड[3] ने परामर्श दिया कि इंग्लैण्ड ऐक व्यापारिक देश था, अतः उसे आर्थिक युद्ध के द्वारा परास्त किया जा सकता था। नेपोलियन ने इस परामर्श को स्वीकार किया व इंग्लैण्ड पर जलमार्ग पर विजय करने के विचार को त्याग दिया। नेपोलियन ने इंग्लैण्ड से आर्थिक युद्ध करने के लिए नवीन एवं विशाल योजना द्वारा इंग्लैण्ड के आयात एवं निर्यात को बन्द करने का निश्चय दिया। उसकी इस योजना को इतिहास में **महाद्वीपीय योजना** (Continental System) अथवा **महाद्वीपीय अवरोध** (Continental Blockade) कहा जाता है। नेपोलियन जानता था कि इंग्लैण्ड एक व्यापारिक देश था तथा अपने यहां निर्मित माल को अन्य देशों को निर्यात करता था। अन्न इत्यादि खाने की वस्तुएं इंग्लैण्ड अन्य देशों से आयात करता था। अतः नेपोलियन का विचार था कि यदि इंग्लैण्ड के आयात-निर्यात को बन्द कर दिया जाए तो आर्थिक स्थिति के खराब होने व खाने-पीने की वस्तुओं के अभाव के कारण इंग्लैण्ड को घुटने टेकने के लिए विवश होना पड़ेगा। इसके साथ ही नेपोलियन यूरोप में ऐसी अर्थव्यवस्था को लागू करना चाहता था जिसका केन्द्र लन्दन में न होकर पेरिस में हो। जैसा कि पामर ने भी लिखा है, **"महाद्वीपीय व्यवस्था इंग्लैण्ड के निर्यात को नष्ट करने की योजना थी। इसका उद्देश्य यूरोप में ऐसी अर्थव्यवस्था को विकसित करना भी था जिसका मुख्य केन्द्र फ्रांस हो।"**[4]

महाद्वीपीय योजना प्रारम्भ
(BEGINNING OF CONTINENTAL SYSTEM)

नेपोलियन ने महाद्वीपीय योजना को कार्यान्वित करने के लिए अनेक आदेश जारी किए। वे आदेश अग्रवत् थे—

1 "At Tilsit Napoleon was at the height of its power."
—Schevill, *A Hiroty of Europe*, p. 434.

2 "The treaty of Tilsit and its consequences represent the moment when the Napoleon empire reached not its greatest extent but its firmest consolidation."
—Thomson, *Europe Since Napoleon*, p. 64.

3 "It is through her commerce that England must be attacked. To destroy British commerce is to strike England to the heart." —*Montgaillard*

4 "Continental system was more than a device for destroying the export trade of Great Britain. It was also a scheme for developing the economy of Continental Europe around France as the main centre."
—Palmer, *A History of Modern World*, p. 391.

(i) **बर्लिन आदेश** (Berlin Decree)—इसको नेपोलियन ने 21 नवम्बर, 1806 ई. को घोषित किया। इस प्रकार महाद्वीपीय प्रणाली प्रारम्भ हो गई। इस आदेश में उसने कहा कि **"ब्रिटिश द्वीप समूह तथा अंग्रेजी उपनिवेशों का घेरा प्रारम्भ किया जाता है। अब यदि ब्रिटिश द्वीप समूह अंग्रेजी उपनिवेशों का कोई जहाज फ्रांस अथवा उसके मित्र राष्ट्रों के किसी बन्दरगाह में प्रवेश करेगा तो उसे जब्त कर लिया जाएगा।"**[1] इस आदेश में यह भी कहा गया था कि यूरोप का कोई भी राज्य इंग्लैण्ड से व्यापार नहीं करेगा। इंग्लैण्ड के जितने भी लोग उन देशों में हों उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाए व उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाए।

(ii) **वार्सा आदेश** (Warsaw Decree)—25 जनवरी, 1807 ई. को नेपोलियन ने वार्सा आदेश (Warsaw Decree) जारी किए। इसके द्वारा प्रशा तथा हेनोवर के समुद्र तटों पर भी अंग्रेजी व्यापार के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगा दिया गया। टिलसिट सन्धि के पश्चात् रूस, प्रशा तथा डेनमार्क ने भी ब्रिटिश माल का बहिष्कार कर दिया। इससे इंग्लैण्ड को अत्यधिक आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा।

इंग्लैण्ड द्वारा इन आदेशों का प्रत्युत्तर (The British Reply)—नेपोलियन के आदेशों का जवाब देने के लिए इंग्लैण्ड ने **'आर्डर इन कौंसिल'** (Order in Council) पारित किया। इसके द्वारा घोषित किया गया कि—

(अ) यदि किसी जहाज में फ्रांस अथवा उसके उपनिवेशों का बना हुआ सामान पाया जाएगा तो उसे जब्त कर लिया जाएगा।

(ब) अपने विदेशी व्यापार को बनाए रखने के लिए अंग्रेजों ने तटस्थ राज्यों को कम करों पर सामान देना घोषित किया।

(स) कोई भी तटस्थ राज्य फ्रांस के किसी जहाज को न खरीदे।

(द) इंग्लैण्ड की ओर से व्यापार करने वाले तटस्थ देशों के जहाजों को प्रत्येक सुविधा प्रदान की जाएगी।

(य) प्रशा तथा पुर्तगाल आदि देशों द्वारा विवशता में महाद्वीपीय योजना स्वीकार की गई अतः उनके जहाजों को छोड़ दिया जाएगा।

इस प्रकार 'आर्डर इन कौंसिल' के द्वारा इंग्लैण्ड ने अपने व्यापार को सजीव बनाए रखने की चेष्टा की।

(iii) **मिलान आदेश** (Milan Decree)—17 दिसम्बर, 1807 ई. को नेपोलियन ने मिलान आदेश जारी किए। इसके अनुसार यह घोषणा की गई कि अंग्रेजी बन्दरगाहों में उपस्थित अथवा अंग्रेजों को तलाशी देने वाले जहाज को जब्त कर लिया जाएगा चाहे वह किसी भी देश का क्यों न हो।

इस समय इंग्लैण्ड ने भी दूसरा **'आर्डर इन कौंसिल'** (Order in Council) पारित किया। इसमें कहा गया था कि जो देश अंग्रेजी माल स्वीकार नहीं करेगा, इंग्लैण्ड उसका अवरोध करेगा। तटस्थ देशों से कहा गया कि वे इंग्लैण्ड के जहाजों को सुविधा प्रदान कराएं।

1 "The British islanders are hence-forth blockaded, letters and packages with an English address will be confiscated as also every store of English goods on the continent within the border of France and her Allies, every piece of English goods, all English vessles and all those laden with staples from English colonies, will be excluded form the [illegible]

(iv) **फाण्टेंब्ल्यू आदेश** (Fontainebleau Decree)—18 अक्टूबर, 1810 ई. को नेपोलियन ने सबसे कठोर आदेश जारी किए, जिन्हें फाण्टेंब्ल्यू आदेश कहा जाता है। इन आदेशों में कहा गया कि ज़ब्त अंग्रेजी सामान को जला दिया जाए। अवैध ढंग से व्यापार करने वालों के लिए कठोर दण्ड व पृथक् न्यायालय की स्थापना की गयी।

उपरोक्त आदेशों का इंग्लैण्ड के अंग्रेजी व्यापार पर गहरा प्रभाव हुआ, किन्तु इसके पश्चात् भी तटस्थ देशों के जहाज छिपकर अवैध रूप से उत्तरी सागर तथा मध्य सागर के देशों में माल पहुंचा रहे थे तथा वहां से यह माल स्थल मार्ग से यूरोप के विभिन्न देशों में पहुंचाया जाता था। इसके अतिरिक्त, फर्जी लाइसेन्सों के द्वारा भी व्यापार किया जा रहा था। इसको रोकने के लिए नेपोलियन ने अंग्रेजी वस्तुओं पर चुंगी लगा दी। इस प्रकार अंग्रेजी व्यापार को बहुत हानि हुई।

उपरोक्त आदेश जारी करने के अतिरिक्त भी नेपोलियन ने महाद्वीपीय व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक प्रयास किए जिनमें प्रमुख निम्नलिखित थे—

(1) **रूस के साथ समझौता** (Agreement with Russia)—टिलसिट की सन्धि में रूस के जार के द्वारा इस योजना को स्वीकार कराने के लिए नेपोलियन ने उसे फिनलैण्ड तथा तुर्की का कुछ भाग देने का लालच दिया।

(2) **आस्ट्रिया पर दबाव** (Austria Pressurized)—28 फरवरी, 1808 ई. को नेपोलियन ने आस्ट्रिया को महाद्वीपीय योजना को स्वीकार करने के लिए विवश किया।

(3) **स्पेन पर अधिकार** (Spain Captured)—नेपोलियन ने स्पेन के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था, अतः स्पेन ने स्वतः ही इस योजना को स्वीकारा।

(4) **पुर्तगाल पर अधिकार** (Portugal Captured)—नेपोलियन ने पुर्तगाल से इस योजना को स्वीकार करने के लिए कहा, किन्तु पुर्तगाल ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। अतः नेपोलियन ने पुर्तगाल पर आक्रमण किया। पुर्तगाल का राजा राज्य छोड़कर ब्राजील भाग गया। यहीं से प्रायद्वीपीय युद्ध (Peninsular war) प्रारम्भ हुआ, जिसके घातक परिणाम हुए।

(5) **पोप को बन्दी बनाना** (Pope was arrested)—पोप ने महाद्वीपीय योजना में भाग न लेते हुए स्वयं को तटस्थ (Neutral) घोषित कर दिया, अतः क्रोधित होकर नेपोलियन ने पोप पर आक्रमण किया व उसे बन्दी बना लिया। नेपोलियन द्वारा ऐसा करना उसकी एक राजनीतिक भूल (Political blunder) थी क्योंकि इस प्रकार उसने कैथोलिकों को नाराज कर दिया।

(6) **प्रशा से सन्धि** (Treaty with Prussia)—महाद्वीपीय योजना में प्रशा को सम्मिलित करने के लिए नेपोलियन ने उससे सन्धि की।

(7) **स्वीडन को पराजित** (Sweden Conquered)—1808 ई. में नेपोलियन ने स्वीडन पर विजय प्राप्त करके उसे भी महाद्वीपीय योजना में शामिल किया।

(8) **हॉलैण्ड का फ्रांस में विलय** (Holland annexed with France)—हॉलैण्ड का शासक नेपोलियन का भाई लुई बोनापार्ट था, किन्तु फिर भी वह वहां महाद्वीपीय व्यवस्था लागू न कर सका, अतः 9 जुलाई, 1810 ई..को नेपोलियन ने हॉलैण्ड को फ्रांस में मिला दिया।

महाद्वीपीय योजना के परिणाम
(EFFECTS OF THE CONTINENTAL SYSTEM)

नेपोलियन द्वारा प्रारम्भ की गयी महाद्वीपीय योजना के दूरगामी परिणाम हुए। इस नीति से हॉलैण्ड को उतनी हानि नहीं हुई जितनी कि नेपोलियन ने अपेक्षा की थी। **इस योजना के निम्नलिखित परिणाम हुए—**

(I) इंग्लैण्ड से व्यापार बन्द होने से फ्रांस तथा उसके मित्र देशों में दैनिक वस्तुओं का अभाव होने लगा। इससे वे नेपोलियन के विरोधी हो गए।

(ii) इस योजना को लागू करने के लिए नेपोलियन ने अनेक देशों से युद्ध किए, जिससे उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ी। अन्ततः यही युद्ध नेपोलियन के पतन के कारण बने।

(iii) इस योजना का इंग्लैण्ड पर प्रभाव होना स्वाभाविक था। देश में अनाज महंगा हो गया व अंग्रेजी वस्तुओं के दामों में भारी कमी आयी। अतः आर्थिक सन्तुलन बनाए रखने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड की सरकार को जनता पर लगे हुए करों में वृद्धि करनी पड़ी व अन्य देशों से ऋण लेना पड़ा, किन्तु नेपोलियन ने जितना सोचा था उतना प्रभाव इस व्यवस्था का इंग्लैण्ड पर नहीं हुआ। यूरोप के साथ इंग्लैण्ड का व्यापार 1805 ई. में (महाद्वीपीय व्यवस्था लागू होने से पहले) 37.8%, 1806 ई. में 30.9%, 1807 ई. में 25.5%, 1808 ई. में 25.7% तथा 1809 ई. 35.3% रहा। इसी प्रकार विदेशों में जो माल इंग्लैण्ड के द्वारा बेचा गया उसकी कुल कीमत 1805 ई. में 41 लाख पौंड, 1806 ई. में 44 लाख पौंड, 1807 ई. 40 लाख पौंड, 1808 ई. में 40 लाख पौंड व 1809 में 50 लाख पौंड थी।[1] उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि इस योजना का प्रभाव सर्वाधिक 1807 ई. में रहा। अन्य वर्षों में कोई विशेष प्रभाव नहीं रहा था। सम्भवतः इसी कारण स्टीफेन्स ने लिखा है : **"इस व्यवस्था ने इंग्लैण्ड की सम्पन्नता को कम करने के स्थान पर उसमें वृद्धि की।"**[2]

(iv) इस व्यवस्था का आर्थिक प्रभाव फ्रांस पर भी पड़ा। वहां हजारों मजदूर बेकार हो गए। फ्रांस का मध्यवर्ग भी नेपोलियन का विरोधी हो गया।

(v) इस व्यवस्था ने भविष्य में अनेक युद्धों (प्रायद्वीपीय युद्ध इत्यादि) को जन्म दिया।

(vi) कैथोलिक जनता नेपोलियन की विरोधी हो गयी क्योंकि उसने पोप को बन्दी बनाया था।

(vii) इंग्लैण्ड ने अपने यहां बना माल अनेक ऐसे देशों को भेजा जो प्रत्यक्षतः उसके पक्ष में न थे। इस प्रकार इंग्लैण्ड को अपने सम्बन्ध सुधारने का अवसर मिल गया।

(viii) टिलसिट की सन्धि के पश्चात् जो देश फ्रांस के मित्र बन गए थे वे भी इस महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण नेपोलियन के विरुद्ध हो गए। नेपोलियन इस व्यवस्था के कारण ऐसे व्यूह-जाल में फंस गया जिससे वह कभी बाहर न निकल सका।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस व्यवस्था के व्यापक परिणाम हुए।

1 अहमद एवं सम्रवाल, आधुनिक यूरोप का इतिहास, पृ. 172।
2 "The system increased rather than diminished the commercial prosperity of England." —Stephens, *Revolutionary Europe*, p. 315.

महाद्वीप व्यवस्था की असफलता के कारण
(CAUSES OF THE FAILURE OF CONTINENTAL SYSTEM)

नेपोलियन ने इस व्यवस्था को सफल बनाने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किए थे, किन्तु फिर भी इस कार्य में वह सफल न हो सका। तत्कालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त इस योजना में अनेक मूलभूत दोष थे जिनके कारण यह व्यवस्था असफल प्रमाणित हुई। **इस योजना के असफल होने के कारण निम्नलिखित थे—**

(i) इंग्लैण्ड में अन्न की बहुत कमी थी। नेपोलियन को चाहिए था कि वह अन्न का आयात इंग्लैण्ड में न होने देता, किन्तु नेपोलियन ऐसा न कर सका। रोज ने लिखा है, "**महाद्वीपीय योजना तभी सफल हो सकती थी जबकि नेपोलियन वहां अनाज को भेजा जाना बन्द कर देता, परन्तु नेपोलियन यह अमानवीय कार्य न कर सका और इसलिए यह योजना भी सफल न हुई।**"

(ii) इंग्लैण्ड से चोरी-छिपे होने वाले व्यापार को भी नेपोलियन रोक नहीं सका।

(iii) अनेक राज्यों ने किन्हीं विवशताओं के कारण इस व्यवस्था को स्वीकार किया था, उन्होंने अवसर मिलते ही इंग्लैण्ड से व्यापारिक सम्बन्ध पुनः कायम कर लिए।

(iv) यूरोप के राज्यों की जनता को दैनिक उपयोग की वस्तुएं न मिल पाने के कारण जनता नेपोलियन व उसकी इस नीति का विरोध करने लगी। स्वयं फ्रांस की जनता इस महाद्वीपीय व्यवस्था से तंग आ गयी थी।

(v) तटस्थ देश भी नेपोलियन के विरोधी हो गए क्योंकि नेपोलियन ने उन पर भी इस व्यवस्था को लागू करने का प्रयास किया।

(vi) नेपोलियन ने पोप पर आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया था। इससे कैथोलिक जनता नेपोलियन की विरोधी हो गयी।

(vii) स्पेन व पुर्तगाल ने इंग्लैण्ड का ही समर्थन किया।

(viii) महाद्वीपीय योजना एक अव्यावहारिक योजना थी। सम्पूर्ण यूरोप के विशाल क्षेत्र पर किसी भी एक देश के लिए नियन्त्रण व निगरानी रखना सम्भव न था। इसके अतिरिक्त नेपोलियन का यह विचार कि यूरोप के लोग इंग्लैण्ड को परास्त करने के लिए अपना सब कुछ त्याग देंगे व अपार कष्ट सहन कर लेंगे, तर्क संगत नहीं था, यह निःसन्देह नेपोलियन की एक महान् भूल थी।

(ix) महाद्वीपीय व्यवस्था शक्तिशाली नौसेना के अभाव में सफल नहीं हो सकती थी। फ्रांस की नौसेना शक्तिशाली नहीं थी, अतः इस योजना का असफल होना स्वाभाविक ही था।

महाद्वीपीय व्यवस्था का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE CONTINENTAL SYSTEM)

नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था के विषय में फिशर ने लिखा है, "**महाद्वीपीय व्यवस्था का तर्कपूर्ण परिणाम ही नेपोलियन के जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी।**"[1] निःसन्देह, महाद्वीपीय योजना नेपोलियन की असफल योजनाओं में से एक थी। नेपोलियन का विचार था कि इस

1. "Napoleon's catastrophe was the logical consequence of his continental system." —Fisher, *Napoleon*, p. 112.

नीति के द्वारा वह इंग्लैण्ड को घुटने टेकने पर विवश कर देगा, किन्तु ऐसा सोचना उसकी भारी भूल थी। नेपोलियन की इस नीति ने अधीन देशों को उसका शत्रु बना दिया। न केवल यूरोप अपितु फ्रांस के लोग भी नेपोलियन के विरोधी हो गए। नेपोलियन की इंग्लैण्ड के निर्यात को नष्ट करने की नीति सफल नहीं हो सकी क्योंकि इंग्लैण्ड ने अपनी शक्तिशाली नौसेना की सहायता से नवीन बाजारों का निर्माण कर लिया। महाद्वीपीय नीति के कारण नेपोलियन को अनेक भीषण युद्धों से उलझना पड़ा, जिसके कारण उसकी सम्पूर्ण शक्ति नष्ट हो गयी। इसी कारण हेजन ने लिखा है, "**अन्ततः इस नीति ने उसे अनिवार्य रूप से आक्रामक युद्धों की नीति में उलझा दिया .....जिसके परिणाम नाशकारी हुए और उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी।**"[1] इस प्रकार असफल होने के कारण 1813 ई. में महाद्वीपीय व्यवस्था समाप्त हो गयी।[2]

नेपोलियन और प्रायद्वीपीय युद्ध (1808-13 ई.)
(NAPOLEON AND THE PENINSULAR WAR)

टिलसिट की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन यूरोप की प्रमुख शक्तियों में से एक बन चुका था। लगभग सम्पूर्ण यूरोप उसके प्रभाव क्षेत्र में था, किन्तु इंग्लैण्ड ने फ्रांस के समक्ष अपनी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इस प्रकार इंग्लैण्ड नेपोलियन के लिए एक चुनौती बना हुआ था। इंग्लैण्ड की शक्तिशाली नौसेना के होते इंग्लैण्ड को परास्त करना नेपोलियन के लिए सम्भव न था। नेपोलियन भी इस कटु तथ्य को समझ चुका था। अतः उसने इंग्लैण्ड को **आर्थिक युद्ध** (Economic Warfare) के द्वारा परास्त करना चाहा। इसी उद्देश्य से नेपोलियन ने '**महाद्वीपीय व्यवस्था**' (Continental System) की घोषणा की। नेपोलियन ने यूरोप के अन्य राज्यों से भी यह अपेक्षा की कि वे महाद्वीपीय व्यवस्था को स्वीकार करें जिसके द्वारा इंग्लैण्ड का आर्थिक बहिष्कार किया जाना था। यूरोप के अनेक राज्य इस पक्ष में न थे, किन्तु नेपोलियन के भय से ऐसा करने के लिए वे विवश थे। पुर्तगाल ने भी इस महाद्वीपीय व्यवस्था का विरोध किया। कुछ समय तक तो पुर्तगाल ने इंग्लैण्ड से व्यापार बन्द कर दिया, किन्तु शीघ्र ही उसने इंग्लैण्ड से व्यापारिक सम्बन्ध पुनः जोड़ लिए। पुर्तगाल ने इंग्लैण्ड के जहाजों को अपने बन्दरगाहों में शरण भी दी। नेपोलियन ने अपनी आज्ञा की अवहेलना होते देखकर अपने सेनापति जूनो (Junot) को पुर्तगाल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। जूनो ने 1 दिसम्बर, 1807 ई. को पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया। पुर्तगाल के राजा ने ब्राजील में शरण प्राप्त की। यद्यपि इस युद्ध का विशेष सामरिक महत्व नहीं है, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण था। **इस युद्ध को स्पेन पर होने वाले आक्रमण की भूमिका कहा जा सकता है।** पुर्तगाल पर पूर्णतया अधिकार बनाए रखने के लिए स्पेन पर अधिकार करना आवश्यक था, अतः नेपोलियन ने स्पेन पर आक्रमण कर दिया। स्पेन और फ्रांस के मध्य युद्ध लम्बे समय तक चलता रहा। स्पेन तथा पुर्तगाल एक **प्रायद्वीप** (Peninsula) हैं, इसी कारण इस युद्ध को "**प्रायद्वीपीय युद्ध**' (Peninsular war) कहते हैं। यह युद्ध 1808 ई. में प्रारम्भ हुआ व 1813 ई. तक चलता रहा।

---

1 "It involved him inevitably and in the end, disastrously, in a policy of systematic and widespread aggressions upon other countries, consequently in a costly succession of wars."
—Hazen, *Modern Europe*, p. 207.

2 "The continental system had to be virtually abandoned in 1813 because it was a failure."
—Thomson, *Europe Since Napoleon*, p. 42.

प्रायद्वीपीय युद्ध के कारण (Causes of the Peninsualr War)—नेपोलियन के समय में फ्रांस व स्पेन के सम्बन्ध मधुर थे। स्पेन के शासक चार्ल्स चतुर्थ (Charles IV) ने हमेशा नेपोलियन का साथ दिया था, किन्तु नेपोलियन अपनी असीमित महत्वाकांक्षाओं के कारण स्पेन पर आक्रमण करने की भूल कर बैठा, जिसका उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ा। **नेपोलियन के द्वारा स्पेन पर आक्रमण किए जाने के मुख्य कारण निम्नलिखित थे :**

(i) स्पेन पर अधिकार करके नेपोलियन महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाना चाहता था।

(ii) स्पेन एक अत्यन्त समृद्ध देश था। नेपोलियन समृद्ध स्पेन पर अधिकार करना चाहता था।

(iii) स्पेन का शासक चार्ल्स चतुर्थ बूर्बां (Bourbon) वंश का था। नेपोलियन बूर्बां वंश का समूल नाश करना चाहता था।

(iv) चार्ल्स IV एक अयोग्य एवं दुर्बल शासक था, अतः नेपोलियन का विचार था कि स्पेन की जनता उसका उसी प्रकार स्वागत करेगी जैसा इटली में किया गया था,[1] किन्तु स्पेन की जनता किसी बाह्य व्यक्ति को शासक मानने को तैयार न थी।

(v) जिस समय नेपोलियन 1806 ई. में प्रशा के साथ युद्धरत था, स्पेन ने फ्रांस पर आक्रमण करने का प्रयास किया था। नेपोलियन स्पेन से इसका प्रतिशोध लेना चाहता था।

(vi) स्पेन के शासक चार्ल्स IV (1788-1808 ई.) की पत्नी लुईसा गोदाय (Goday) नामक व्यक्ति के प्रभाव में थी। स्पेन की सत्ता मूलतः गोदाय के हाथों में ही थी। स्पेन का युवराज फर्डिनेण्ड (Ferdinand) योग्य स्वयं महत्वाकांक्षी व्यक्ति था तथा वह अत्यन्त लोकप्रिय भी था। फर्डिनेण्ड गोदाय का विरोधी था। **नेपोलियन ने इस अवसर से लाभ उठाते हुए स्पेन के राजपरिवार को बेयोन** (Bayonne) **नामक स्थान पर बुलाया व चार्ल्स IV को धमका कर इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह गद्दी छोड़ दे।** नेपोलियन ने नेपिल्स के शासक जोसेफ बोनापार्ट (Josaph Bonapart) को स्पेन का शासक घोषित किया। नेपोलियन के इस कार्य से स्पेन की जनता ने विद्रोह कर दिया। स्पेन की जनता जोसेफ बोनापार्ट को अपना शासक मानने को तैयार न थी। अतः नेपोलियन ने स्पेन पर आक्रमण कर दिया।

(vii) स्पेन की कैथोलिक जनता का विचार था कि नेपोलियन कैथोलिकों पर पोप का विरोधी है। स्पेन की जनता की नेपोलियन में कोई श्रद्धा न थी, वे उसे एक चोर व तिकड़मी व्यक्ति (Thief and Trickstes) मानते थे। अतः स्पेन की जनता ने फर्डिनेण्ड के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। नेपोलियन ने इस विद्रोह की चिन्ता न करते हुए कहा, **"भिक्षुओं से भरे हुए स्पेन को हराना एक सरल कार्य है।"**[2] किन्तु नेपोलियन का ऐसा सोचना उसकी भूल थी।

युद्ध का प्रारम्भ होना (War Begins)—नेपोलियन के स्पेन विरोधी कार्यों से स्पेन की जनता ने विद्रोह कर दिया व सम्पूर्ण स्पेन में **'स्पेन स्पेनवासियों का है'**, (Spain for Spaniards) के नारे लगाए। इस विद्रोह के विषय में फिशर ने लिखा है, **"स्पेन का विद्रोह उन राष्ट्रीय आन्दोलनों का अगुआ था जिन्होंने अन्ततोगत्वा नेपोलियन का साम्राज्य नष्ट कर दिया।**

1 "Napoleon believed that Spain would offer no greater resistence than Italy had done." —Grant and Temperley, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 113.
2 "Countries full of monks like yours are easy to subdue." —*Napoleon*

उनकी दृष्टि में नेपोलियन राष्ट्रीय धर्म का शत्रु, राष्ट्रीय एकता का संहारक और राजमुकुट का विनाशक था।'' स्पेन व फ्रांसीसी सेना के मध्य प्रथम प्रमुख लड़ाई बेलेन (Baylen) नामक स्थान पर हुई। स्पेनी सेना ने फ्रांसीसी सेना को 19 जुलाई, 1808 ई. को परास्त किया। स्पेन की इस विजय ने यूरोप के अन्य राष्ट्रों में भी उत्साह की लहर प्रवाहित कर दी। स्पेन का शासक जोसेफ बोनापार्ट 1 अगस्त, 1808 ई. को स्पेन छोड़कर भागने पर विवश हो गया।

जोसेफ बोनापार्ट के भागने व फ्रांस की सेना की पराजय का समाचार पाकर नेपोलियन अत्यधिक क्रोधित हुआ तथा उससे स्पेन पर आक्रमण करने की योजना एक बार फिर बनायी। ऐसी विषम परिस्थितियों में स्पेन ने इंग्लैण्ड से सहायता मांगी जिसे इंग्लैण्ड ने सहर्ष स्वीकार किया। **इंग्लैण्ड ने सर आर्थर वेलेसबली** (Sir Arther Wellesbly) **के नेतृत्व में एक सेना स्पेन भेजी जिसने अनेक स्थानों पर फ्रांसीसी सेना को परास्त किया।** तब नेपोलियन स्वयं एक शक्तिशाली सेना के साथ स्पेन पहुंचा व मेड्रिड पर पुनः अधिकार कर लिया व जोसेफ को फिर से स्पेन का शासक नियुक्त किया।

यद्यपि नेपोलियन ने मेड्रिड पर पुनः अधिकार कर लिया था, किन्तु इस युद्ध ने नेपोलियन की स्थिति दयनीय कर दी। वास्तव में यह युद्ध स्पेन व फ्रांस के बीच न होकर फ्रांस व इंग्लैण्ड के मध्य होने लगा, जो स्पेन की धरती पर लड़ा जा रहा था। स्पेन से इस युद्ध के कारण नेपोलियन व्यूह में फंस गया था। न तो वह उससे निकल पा रहा था और न ही वह व्यूह तोड़ सकने में समर्थ था। इस युद्ध ने नेपोलियन को अपार क्षति पहुंचाई व उसके पतन का एक प्रमुख कारण बना।

1809 ई. में स्पेन ने पुनः विद्रोह कर दिया। नेपोलियन जिस समय मेड्रिड से लौटा था उसने अपने सेनापति **सोल्ट** (Soult) को आदेश दिया था कि **'वह अंग्रेजी तेंदुए को सागर में फेंक दे'**[1], किन्तु यह कार्य इतना सरल न था। स्पेन की सेना यद्यपि संगठित न थी, किन्तु सैनिकों में उत्साह की कमी न थी। स्पेनी सेना के द्वारा पुनः विद्रोह करने के समय नेपोलियन आस्ट्रिया में व्यस्त था, अतः अंग्रेजी सेनापति वैलिंगटन (Wellington) ने तालावेरा (Talavera) के युद्ध में फ्रांस की सेना पर विजय प्राप्त की। एक अन्य अंग्रेजी सेनापति वेलेसली ने मेड्रिड पर अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु फ्रांसीसी सेनापति सोल्ट (Soult) ने वेलेसली को सफल न होने दिया, किन्तु फ्रांसीसी सैनिक अधिक समय तक मेड्रिड पर अधिकार बनाए न रख सके। 1812 **ई. में वेलेसली ने फ्रांसीसी सेनापति मारमां** (Marmont) **को सेलेमेनका** (Salamanca) **नामक स्थान पर हराया व मेड्रिड पर अधिकार कर लिया।** नेपोलियन इस समय अन्य यूरोपीय युद्धों में व्यस्त था, अतः स्पेन की ओर विशेष ध्यान न दे सका, किन्तु फिर भी फ्रांसीसी सेना ने एक बार फिर मेड्रिड पर अधिकार कर लिया। 1813 ई. में वेलेसली ने विक्टोरिया (Victoria) नामक स्थान पर स्पेन के शासक जोसेफ बोनापार्ट व जनरल जोर्डन (Jourdan) को परास्त किया। जोसेफ व जोर्डन भागकर फ्रांस पहुंच गए। 12 अप्रैल, 1814 ई. को वैलिंगटन ने टूलोज (Toulouse) पर भी अधिकार कर लिया। **इसी बीच नेपोलियन की लिप्जिग के युद्ध** (Battle of Leipzig) **में पराजय हो चुकी थी। अतः प्रायद्वीपीय युद्ध भी समाप्त हो गया।**

1 "Drive the English Leopard into the sea." —*Napoleon*

प्रायद्वीपीय युद्ध में नेपोलियन की पराजय के कारण (Causes of Napoleon's defeat in the Peninsular War)

स्पेन पर आक्रमण करना नेपोलियन की एक ऐसी भूल थी जो उसे ले डूबी। यह युद्ध नेपोलियन द्वारा लड़ा गया सबसे लम्बे समय तक चलने वाला युद्ध था। **इस युद्ध में नेपोलियन की पराजय के निम्नलिखित कारण थे :**

(i) स्पेन एक पर्वतीय प्रदेश है। फ्रांस के सैनिकों को इस युद्ध में भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अपार कष्ट का सामना करना पड़ा।

(ii) स्पेन के सैनिकों में देश के प्रति श्रद्धा व प्रेम कूट-कूट कर भरा था।[1] वे इस युद्ध में अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे थे, जबकि फ्रांसीसी सैनिकों के साथ ऐसा न था।

(iii) नेपोलियन का विचार था कि स्पेन एक धार्मिक देश है, अतः उसे आसानी से जीता जा सकता है। वह स्पेन की शक्ति का सही अनुमान न लगा सका।

(iv) स्पेन की विजय का मुख्य श्रेय अंग्रेजी सहायता को है। यदि स्पेन की सहायता इंग्लैण्ड न करता तो स्पेन नेपोलियन को पराजित नहीं कर सकता था। इंग्लैण्ड ने लार्ड वैलिंगटन व वेलेसली जैसे योग्य सेनापति स्पेन की सहायतार्थ भेजे जिन्होंने फ्रांसीसी सेना के छक्के छुड़ा दिए।

(v) नेपोलियन ने पोप के साथ दुर्व्यवहार किया था, अतः सम्पूर्ण कैथोलिक सम्प्रदाय नेपोलियन के विरुद्ध हो गया था। कैथोलिक पादरियों ने लोगों से धर्म रक्षा के लिए नेपोलियन के विरुद्ध एक जुट होने के लिए कहा।

(vi) जिस समय फ्रांस व स्पेन के मध्य संघर्ष चल रहा था उसी समय नेपोलियन को यूरोप में अन्यत्र भी युद्धों में व्यस्त होना पड़ा, अतः नेपोलियन इस युद्ध में अपनी सम्पूर्ण शक्ति न लगा सका।

(vii) नेपोलियन द्वारा स्पेन को राजपरिवार के साथ दुर्व्यवहार करने व जोसेफ बोनापार्ट को बलपूर्वक स्पेन का सम्राट बनाने के कारण स्पेन की जनता की राष्ट्रीय भावनाओं पर आघात हुआ जिसने **''भिक्षुओं के देश को सैनिक देश में बदल दिया।''**[2]

(viii) स्पेन की सेना ने फ्रांसीसी सेना के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपनाई, अतः फ्रांसीसी सेना को अपार कष्ट का सामना करना पड़ा।

उपरोक्त कारणों ने सम्मिलित रूप से इस युद्ध में नेपोलियन की पराजय में सहयोग दिया।

प्रायद्वीपीय युद्ध का महत्व (Significance of the Peninsular War)—प्रायद्वीपीय युद्ध का यूरोप के इतिहास में विशेष महत्व है। यह युद्ध नेपोलियन के पतन के प्रमुख कारणों में से एक था, अतः यदि यह युद्ध न होता और यदि नेपोलियन का पतन न हुआ होता तो

1 स्पेन की जनता में देश प्रेम कितना अधिक था इसको जोसेफ बोनापार्ट के निम्न कथन से समझा जा सकता है जिसमें उसने कहा—

"It is a country, like no other, we can find in it neither a spy nor a coutier to carry messages." —*Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 116.

2 "...Nation of Monks' was converted into Nation in Arms."

यूरोप का इतिहास ही कुछ और होता। **इस प्रकार प्रायद्वीपीय युद्ध को यूरोप के इतिहास की एक निर्णायक घटना** (Epoch making event) **कहा जा सकता है।**

प्रायद्वीपीय युद्ध से नेपोलियन को अत्यधिक हानि हुई व फ्रांस की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। फ्रांस की अजेय समझी जाने वाली सेना की दुर्बलता को इस युद्ध ने यूरोप के समक्ष स्पष्ट कर दिया। इस युद्ध ने इंग्लैण्ड को फ्रांस के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से कार्यवाही करने का अवसर प्रदान कर दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस युद्ध ने लिप्जिग व वाटरलू (Waterloo) के युद्धों में नेपोलियन की पराजय की भूमिका को तैयार कर दिया। ग्रांट एण्ड टेम्परले ने इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, **"स्पेन के युद्ध को ऐसा कैंसर उचित ही कहा गया है जिसने नेपोलियन की शक्ति को खींच लिया।"**[1] नेपोलियन ने स्वयं भी इस युद्ध के विषय में कहा था, **"स्पेनी नासूर ने मेरा विनाश कर दिया।"**[2] इस युद्ध ने नेपोलियन को पतन के मार्ग पर अग्रसर कर दिया।

आस्ट्रिया से युद्ध
(WAR AGAINST AUSTRIA)

स्पेन की जनता जिस प्रकार से नेपोलियन से संघर्ष कर रही थी, उसका प्रभाव यूरोप के अन्य देशों पर भी पड़ा। आस्ट्रिया भी इस प्रभाव से अछूता न रह सका। आस्ट्रिया 1792 ई. के पश्चात् से निरन्तर क्रान्तिकारी फ्रांस का विरोध कर रहा था तथा नेपोलियन के द्वारा कई बार अपमानित हो चुका था। आस्ट्रिया अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील था। नेपोलियन जब स्पेन के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था, तब उचित अवसर समझ कर आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध 1809 ई. में युद्ध की घोषणा कर दी। नेपोलियन तुरन्त सेना सहित आस्ट्रिया पहुंचा व आस्ट्रिया की सेनाओं को अनेक स्थानों पर पराजित किया। यद्यपि अनेक स्थानों पर नेपोलियन को भी हानि का सामना करना पड़ा, किन्तु निरुत्साहित न होते हुए नेपोलियन अन्ततः आस्ट्रिया को वेग्राम (Wagram) के युद्ध में पराजित करने में सफल हो गया। आस्ट्रिया ने नेपोलियन से 14 अक्टूबर, 1809 ई. को **'विएना की सन्धि'** (Treaty of Vienna) कर ली। यह सन्धि आस्ट्रिया के लिए अत्यन्त अपमानजनक थी व इससे आस्ट्रिया को बहुत हानि हुई। इस सन्धि के कारण आस्ट्रिया को न केवल हर्जाने के रूप में विशाल धनराशि फ्रांस को देनी पड़ी अपितु आस्ट्रिया के विशाल भू-भाग पर फ्रांस ने अधिकार कर लिया। **नेपोलियन ने सन्धि के कुछ समय पश्चात् अपनी पत्नी जोसेफीन से तलाक लेकर आस्ट्रिया की राजकुमारी मारिया लुईसा** (Maria Louise) **से 1810 ई. में विवाह कर लिया।** इस प्रकार नेपोलियन आस्ट्रिया से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर आस्ट्रिया को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेना चाहता था। मारिया लुईसा को नेपोलियन से 1811 ई. में पुत्र प्राप्त हुआ, जिसे नेपोलियन ने **'रोम का सम्राट'** घोषित किया।

रूस से युद्ध
(WAR AGAINST RUSSIA)

1807 ई. में रूस व फ्रांस के मध्य टिलसिट की सन्धि हो गयी थी जिसमें दोनों देशों के मध्य मित्रता हो गयी। रूस की जनता इस मित्रता के पक्ष में न थी। रूस का अभिजात

1 "The Spanish war has been well called the cancer that drained away the strength of Napoleon."

—Grant and Temperely, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 116.

2 "Spanish ulcer has ruined me."

—*Napoleon*

वर्ग अत्यन्त शक्तिशाली था तथा वह इस सन्धि का घोर विरोधी था क्योंकि नेपोलियन ने फ्रांस में अभिजात वर्ग को समाप्त कर दिया था। **रूस का जार अलेक्जेण्डर प्रथम** (Czar Alexander I) **भी फ्रांस के साथ मित्रता बनाए रखने के लिए उत्सुक न था क्योंकि जो लाभ रूस को इस सन्धि से मिल सकते थे वे उसे प्राप्त हो चुके थे।** रूस कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु नेपोलियन इसके लिए तैयार न था। जार टर्की साम्राज्य का विभाजन चाहता था, किन्तु नेपोलियन इसका विरोधी था। इसके अतिरिक्त **गांड डची ऑफ वारसा**[1] (Grand Duchy of Warsaw) के विषय में भी नेपोलियन की नीतियों से जार अलेक्जेण्डर सहमत न था। पोलैण्ड के कुछ भाग रूस के अधीन भी था, अतः रूस को भय था कि नेपोलियन की 'ग्रांड डची ऑफ वारसा' के प्रति नीति से रूस के अधीन पोलैण्ड के भागों में विद्रोह न हो जाए। इसके अतिरिक्त रूस व फ्रांस के मध्य सम्बन्ध खराब होने का सबसे प्रमुख कारण 'महाद्वीपीय व्यवस्था' (Continental System) थी। रूस को इस व्यवस्था से अत्यधिक कठिनाई व आर्थिक हानि हो रही थी। अतः रूस अब इस व्यवस्था को और अधिक स्वीकार करने को तैयार न था। दूसरी ओर नेपोलियन इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कटिबद्ध था। अतः नेपोलियन ने रूस से महाद्वीपीय व्यवस्था का पालन करने का आग्रह किया, किन्तु रूस ने नेपोलियन के इस आग्रह का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। **अतः नेपोलियन ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।**[2]

नेपोलियन ने एक विशाल सेना तैयार की जिसमें आस्ट्रिया, इटली, डेनमार्क, प्रशा, सैक्सनी इत्यादि अनेक देशों के सैनिक थे। कुल मिलाकर सैनिकों की संख्या 5 लाख से भी अधिक थी। नेपोलियन की इस सेना को रूसी **'बीस राष्ट्रों की सेना'** (Army of Twenty Nations) कहते थे। नेपोलियन का विचार था कि इस शक्तिशाली सेना की सहायता से वह आसानी से रूस को परास्त कर लेगा। नेपोलियन ने 24 जून, 1812 ई. को इस शक्तिशाली सेना के साथ रूस की ओर प्रस्थान किया। नेपोलियन ने स्वयं ही उस अभियान के सम्बन्ध में कहा, **"यह नाटक का 'अन्तिम अंक है।"**[3] यह नाटक का अन्तिम अंक प्रमाणित नहीं हुआ, अपितु स्वयं नेपोलियन के पतन का प्रमुख कारण बना। जैसा कि केटल्बी ने लिखा है, **"मास्को के लिए अभियान नेपोलियन के पतन की दुखद कहानी का प्रथम भाग था।"**[4]

नेपोलियन ने नीमेन (Nemen) नदी को पार करके रूस की ओर प्रस्थान किया। रूस की सेनाओं ने भी इस बीच में सैनिक व राजनीतिक तैयारी कर ली थी। रूस ने इंग्लैण्ड की

---

1 'ग्रांड डची ऑफ वारसा' पोलैण्ड के उन प्रदेशों को मिलाकर बनाया गया था जो आस्ट्रिया व प्रशा के अधिकार में थे।

2 रूस के विरुद्ध नेपोलियन द्वारा युद्ध की घोषणा करने का एक अन्य कारण उसकी साम्राज्यवादी नीति थी। नेपोलियन विश्व-विजेता बनना चाहता था। उसका मानना था कि रूस पर अधिकार कर लेने से भारत विजय का मार्ग प्रशस्त हो जाता। उसने स्वयं कहा भी था, **'मास्को भारत के आधे रास्ते पर स्थित है।'** (Moscow is halfway house to India)। यदि वह अपने उद्देश्य में सफल हो जाता तो उसे अपने परम्परागत शत्रु इंग्लैण्ड को भी नीचा दिखाने का अवसर मिल जाता।

3 "Napoleon spoke of the last expedition as the 'Last Act' of the play."
—Hazen, *op. cit.*, p. 221.

4 "The expedition to Moscow was the first act in the great tragedy of Napoleon's fall."
—Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 135.

सहायता से तुर्की से सन्धि कर ली। इस प्रकार फ्रांस के आक्रमण के समय तुर्की द्वारा रूस पर आक्रमण किए जाने का भय समाप्त हो गया। रूस ने स्वीडन के साथ भी मित्रता कर ली। जिस समय नेपोलियन सेना के साथ रूस की सीमा में पहुंचा रूसी अपनी युद्ध-नीति (War Strategy) तय कर चुके थे। उन्होंने फ्रांस की सेना का सामना न करने की नीति अपनायी क्योंकि वे जानते थे कि इतनी विशाल सेना का सामना करना उसके लिए सम्भव न था। रूसी सैनिक पीछे हटते चले गए। हटते समय रास्ते में पड़ने वाले गांवों व नगरों को नष्ट करते जाते थे, ताकि आगे बढ़ती हुई फ्रांस की सेना को खाद्य सामग्री व अन्य आवश्यक वस्तुएं प्राप्त न हो सकें। **हेजन[1] ने लिखा है कि संख्या में सदैव ही शक्ति निवास नहीं करती, बल्कि कभी-कभी वह स्वयं दुर्बलता का कारण भी बन जाती है। यह विशाल मशीन (फ्रांस की सेना) अपने ही भार से टूटने लगी।** सेना पांच दिन भी न चल पायी थी कि खाद्य सामग्री की कमी होने लगी। घोड़ों को भी समुचित दाना न मिल सका। अतः हजारों की संख्या में घोड़े मरने लगे जिससे रसद विभाग का मनोबल टूटने लगा तथा तोपखाने के लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया। नेपोलियन आगे बढ़ना नहीं चाहता था, किन्तु क्योंकि रूसी सेना पीछे हटती जा रही थी, अतः उसे विवश होकर आगे बढ़ना पड़ा। नीपेन से मास्को 700 मील दूर था। अन्ततः रूसियों ने **बारोडीनो** (Borodino) नामक स्थान पर मोर्चा जमाया। दोनों सेनाओं के मध्य 7 सितम्बर, 1811 को युद्ध हुआ। इस युद्ध में तीस हजार फ्रांसीसी व चालीस हजार रूसी सैनिक मारे गए। इसी कारण हेजन ने लिखा है, "**इस लड़ाई की गणना उस युग की सर्वाधिक संहारकारी युद्धों में है।**"[2] फिर भी नेपोलियन पूर्णतया रूसी सेना को परास्त न कर सका। रूसी सेना पुनः पीछे हट गयी व मास्को को उजड़ा छोड़ गयी। नेपोलियन ने 15 सितम्बर, 1812 ई. को मास्को में प्रवेश किया। रूसियों ने मास्को में जानबूझकर आग लगा दी, अतः नेपोलियन के कष्टों का अन्त मास्को पहुंचकर भी नहीं हुआ। नेपोलियन लगभग एक माह तक मास्को में रुका रहा। उसे आशा थी कि रूसी उससे शान्ति वार्ता करेंगे, किन्तु रूसियों ने ऐसा नहीं किया। रूस में बढ़ती सर्दी को देखते हुए उसे विवश होकर 19 अक्टूबर, 1812 ई. को वापस कूच करना पड़ा।[3] वापसी के समय जगह-जगह रूसी सेना ने नेपोलियन की सेना पर आक्रमण किया। रूस की भयंकर सर्दी से परेशान भूखी-प्यासी फ्रांस की सेना को रूस से लौटने में अपार कष्ट सहने पड़े। **हेजन ने लिखा है कि इस पलायन और भगदड़ के दौरान फ्रांस की सेना को जितने कष्ट सहने पड़े उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है।**[4]

नेपोलियन स्वयं वेश बदलकर सेना से अलग किसी प्रकार 18 दिसम्बर, 1812 ई. को पेरिस पहुंचा। नेपोलियन 5 लाख से अधिक सेना के साथ फ्रांस से चला था और जब वापस उसकी सेना पेरिस पहुंची तो उसमें मात्र बीस हजार सैनिक बचे थे।

युद्ध के परिणाम (Results of the War)—नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण किए जाने व फ्रांसीसी सेना की दुर्गति होने के व्यापक परिणाम हुए। नेपोलियन की शक्ति को

1 Hazen, *op. cit.*, p. 221-222.
2 "The battle was one of the bloodiest of the whole epoch."—Hazen, *op. cit.*, p. 222.
3 "The Napoleonic retreat from Moscow is one of the most horrible episodes in history." —Hayes, *op. cit.*, p. 685.
4 Hazen, *op. cit.*, p. 223.

इस पराजय से भारी धक्का लगा। अन्य देशों में नेपोलियन की इस पराजय से उत्साह का संचार हुआ तथा वे अपनी-अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील हो उठे।

नेपोलियन के प्रशंसकों ने नेपोलियन की पराजय का सम्पूर्ण दोष प्रकृति को दिया है। उनका मानना है कि रूस की सर्दी के कारण ही नेपोलियन परास्त हुआ, किन्तु ऐसा मानना आंशिक रूप से सत्य होगा। वास्तव में, इस अभियान के असफल होने के तीन प्रमुख कारण **प्राकृतिक विपदाएं** (Natural Calamities), **सैन्य गलतियां** (Military Blunders) तथा **दोषपूर्ण योजना** (Defective Planning) थे। नेपोलियन को मास्को में एक माह तक नहीं रुकना चाहिए था तथा विशाल सेना के लिए रसद विभाग पर विशेष ध्यान देना चाहिए था, किन्तु नेपोलियन ने ऐसा नहीं किया, अतः परिणाम उसके विपरीत होना स्वाभाविक ही था। **नेपोलियन ने स्वयं इस बात को स्वीकार भी किया कि उसे रूस का अभियान नहीं करना चाहिए था।**[1]

प्रशा का विद्रोह
(REVOLT BY PRUSSIA)

रूसी अभियान में असफल होने के कारण नेपोलियन की प्रतिष्ठा व शक्ति पर आघात हुआ था। नेपोलियन की कमाजेर स्थिति का लाभ उठाते हुए अनेक राज्यों ने स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए। प्रशा पर पिछले कुछ वर्षों में जितने अत्याचार हुए थे उनका प्रतिशोध लेने का समय आ गया था, अतः प्रशा में राष्ट्रीय भावनाएं प्रबल होने लगीं। प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम III (Frederic William III) ने प्रत्येक क्षेत्र में सुधार करके इन भावनाओं को और प्रबल बनाया व जनता में उत्साह का संचार किया। प्रशा ने रूस से भी सन्धि कर ली। इस सन्धि को **कैलिस की सन्धि** (Treaty of Kalisch) कहा जाता है। इस सन्धि में तय हुआ था कि रूस तब तक फ्रांस के विरुद्ध युद्ध बन्द नहीं करेगा जब तक प्रशा को उसका पुराना सम्पूर्ण क्षेत्र प्राप्त न हो जाए। प्रशा के पोलैण्ड वाले क्षेत्रों पर जिनमें ग्रांड डची ऑफ वारसा भी सम्मिलित था, रूस अधिकार करेगा और उसकी जगह प्रशा उत्तरी जर्मनी के क्षेत्रों पर अधिकार करेगा।

प्रशा ने **'कैलिस की सन्धि'** करने के पश्चात् नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नेपोलियन ने दो स्थानों **बाट्जेन** (Bautzen) तथा **लुट्जेन** (Lutzen) नामक स्थानों पर प्रशा व रूस की सम्मिलित सेनाओं को परास्त किया। इसी बीच आस्ट्रिया की मध्यस्थता से नेपोलियन ने **प्लेसविज का युद्ध विराम**[2] (Armistice of Pleswitz) स्वीकार कर लिया जो 4 जून, 1813 ई. को हुआ। नेपोलियन द्वारा इस युद्ध विराम को स्वीकार करना उसकी एक गम्भीर भूल थी। इससे प्रशा व रूस को फिर से तैयारी करने का अवसर मिल गया। आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री ने नेपोलियन व प्रशा और रूस के मध्य समझौता कराने के लिए **मध्यस्थ** का कार्य किया। **मैटरनिख ने नेपोलियन के समक्ष निम्न प्रस्ताव रखा—**

(i) प्रशा से जीते हुए प्रदेशों को नेपोलियन लौटा दे।

(ii) प्रशा, रूस तथा आस्ट्रिया के मध्य 'ग्रांड डची ऑफ वारसा' को बांट दे।

---

1 "Perhaps I made a mistake in going to Moscow." —*Napoleon*

2 यह युद्ध विराम 4 जून, 1813 ई. से 28 जुलाई, 1813 ई. तक के लिए किया गया था। यह आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटरनिख की कूटनीतिक चाल थी जिसे नेपोलियन समझ न सका।

(iii) राइन-संघ (Rhine Confederation) को भंग कर दे।

(iv) इलीरिया का राज्य आस्ट्रिया को लौटा दे।

नेपोलियन ने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया जो कि उसके लिए अत्यन्त अपमानजनक थे। नेपोलियन ने नाराज होकर यहां तक कह दिया कि वह आस्ट्रिया पर भी विजय प्राप्त करेगा।[1] इस प्रकार समझौते का यह प्रयत्न असफल हो गया।

अब आस्ट्रिया ने भी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी व रूस, प्रशा और इंग्लैण्ड के साथ मिलकर चतुर्थ संगठन (Fourth Coalition) की स्थापना की। इस संघ में स्वीडन तथा कुछ अन्य देश भी शामिल हो गए।

राष्ट्रों का युद्ध (1813-14 ई.)
(WAR OF NATIONS)

चतुर्थ संगठन बन जाने के कारण नेपोलियन का सामना अब इस संगठन की सम्मिलित सेना से होना था।

सर्वप्रथम नेपोलियन का सामना अगस्त, 1812 ई. में आस्ट्रिया के साथ **ड्रेस्डन** (Dresdan) नामक स्थान पर हुआ। नेपोलियन ने **ड्रेस्डन के युद्ध** में आस्ट्रिया को परास्त किया। **उल्लेखनीय है कि ड्रेस्डन की विजय ही नेपोलियन की अन्तिम प्रमुख विजय थी।** इस युद्ध में यद्यपि उसकी विजय हुई थी, किन्तु नेपोलियन को भी अत्यधिक हानि का सामना करना पड़ा।

चतुर्थ संगठन के सदस्यों ने **टॉप्लिस की सन्धि** (Treaty of Toplitz) करके अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ रूप प्रदान किया। इसी समय बवेरिया का शासक जो नेपोलियन का मित्र था, भी मित्र-राष्ट्रों से मिल गया।

मित्र राष्ट्रों व नेपोलियन के मध्य निर्णायक युद्ध लिप्जिग (Leipzig) के मैदान में 16 अक्टूबर से 18 अक्टूबर, 1813 ई. को हुआ। मित्र राष्ट्रों की तीन लाख सेना ने नेपोलियन की लगभग दो लाख सेना को चारों ओर से घेर लिया। लिप्जिग के मैदान में जो युद्ध हुआ उसे **'राष्ट्रों का युद्ध'** (War of Nations) कहा जाता है। इस युद्ध में नेपोलियन की भीषण पराजय हुई। नेपोलियन को अपनी बची हुई सेना के साथ भागना पड़ा।

इस युद्ध के व्यापक परिणाम हुए। नेपोलियन द्वारा बनाया गया राइन संघ समाप्त हो गया। **इस युद्ध के साथ ही महाद्वीपीय व्यवस्था** (Continental System) **का भी अन्त हो गया।** जर्मनी भी स्वतन्त्र हो गया तथा डेनमार्क मित्र राष्ट्रों से मिल गया।

लिप्जिग के युद्ध के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन से शान्ति वार्ता का प्रस्ताव किया जिसे नेपोलियन ने ठुकरा दिया। 28 मार्च, 1814 ई. को मित्र राष्ट्रों ने **शोमां की सन्धि** (Treaty of Chaumont) की जिसके द्वारा यह तय किया गया कि कोई भी देश नेपोलियन से अलग से सन्धि नहीं करेगा।

फ्रांस पर आक्रमण (Attack on France)—तत्पश्चात् मित्र राष्ट्रों की सेना ने फ्रांस पर आक्रमण किया। नेपोलियन फाउण्टेनब्ल्यू (Fountainbleau) पहुंच गया। मित्र राष्ट्रों की सेना ने 31 मार्च, 1814 ई. को पेरिस में प्रवेश किया। नेपोलियन ने फाउण्टेनब्ल्यू से ही मित्र राष्ट्रों से सन्धि कर ली व उसे सिंहासन को त्यागना पड़ा। मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन को

1 "Napoleon talked at one time about going to Vienna again, as the head of his army, to settle the dispute." —Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 126.

एल्बा (Elba)[1] का शासक नियुक्त किया। 20 अप्रैल, 1814 ई. को नेपोलियन को एल्बा द्वीप भेज दिया गया। फ्रांस में पुनः बूर्बां वंश के लुई XVIII को राजगद्दी पर आसीन कर दिया गया।

नेपोलियन की वापसी (Return of Napoleon)—नेपोलियन को एल्बा द्वीप भेजने के पश्चात् मित्र राष्ट्रों को यह विश्वास हो गया था कि अब यूरोप में शान्ति रहेगी, किन्तु नेपोलियन मात्र एल्बा द्वीप पर शासन करने से सन्तुष्ट न था। 1 मार्च, 1815 ई. को नेपोलियन एल्बा से अपने कुछ सैनिकों के साथ भाग निकला व फ्रांस के कैनेस (Cannes) बन्दरगाह पर पहुंचा। 20 मार्च को वह पुनः फ्रांस पहुंचा, लुई XVIII फ्रांस से बेल्जियम भाग गया। फ्रांस में नेपोलियन का भव्य स्वागत हुआ। सेना ने उसका साथ दिया अतः वह एक बार फिर फ्रांस का सम्राट बन गया। **नेपोलियन ने इस बार फ्रांस पर 100 दिनों तक शासन किया इसलिए इसको सौ दिवसीय शासन** (Hundred days Rule) **कहते हैं।**

वाटरलू का युद्ध
(BATTLE OF WATERLOO)

यह सूचना कि नेपोलियन पुनः फ्रांस का सम्राट बन गया है, मित्र राष्ट्रों के लिए वज्रपात के समान थी। मित्र राष्ट्रों ने फ्रांस पर चारों ओर से आक्रमण करने का निर्णय लिया। नेपोलियन ने भी अपने सैनिकों को तैयार किया तथा उनका मनोबल उठाने के लिए उत्साही भाषण दिया। नेपोलियन ने कहा "**सैनिको ! हमें जीता नहीं गया है, हमारे साथ विश्वासघात हुआ है। सैनिको आओ ! अपने सेनापति के झण्डे के नीचे एकत्र हो जाओ। उसका अस्तित्व आप पर निर्भर करता है। उसके हित, सम्मान और यश में ही आपका हित है, सम्मान और यश है। जब विजय दुगुनी गति से आएगी तो आपको गर्व होगा कि आपने क्या किया है। आप अपने देश के मुक्तिदाता होंगे।**"[2] तत्पश्चात्, नेपोलियन ने ब्लेचर (Bleecher) के नेतृत्व वाली प्रशा की सेना को परास्त किया। अन्ततः 18 जून, 1815 ई. को नेपोलियन व मित्र राष्ट्रों की सेना के बीच **वाटरलू का युद्ध**[3] (Battle of Waterloo) हुआ। मित्र राष्ट्रों की सेना का नेतृत्व वैलिंगटन कर रहा था। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व नेपोलियन ने अपने सैनिकों से कहा, "**मैं आपको बता रहा हूं कि वैलिंगटन एक योग्य सेनापति नहीं है तथा अंग्रेज अच्छे योद्धा नहीं हैं। हम खाने के समय तक युद्ध को समाप्त कर देंगे।**"[4] इस युद्ध में नेपोलियन व उसकी सेना ने असाधारण साहस का परिचय दिया, जिसके परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्रों की सेना के पांव उखड़ने लगे, किन्तु उसी वक्त ब्लेचर के नेतृत्व में प्रशा की सेना वैलिंगटन की सहायता के

1 एल्बा (Elba) उन्नीस मील लम्बा व छह मील चौड़ा द्वीप है जो टस्कनी (Tuscany) के तट पर स्थित है।

2 "Soldiers ! we have not been conquered. We were betrayed. Soldiers ! come and range yourselves under the banner of your chief; his existence depends wholly on yours; his interests, his honour, and his glory are your interests, your honour, your glory. Come ! victory will march at double quick.......then you will be able to boast of what you have done, you will be the liberator of your country."

—Hazen, *op. cit.*, p. 228.

3 वाटरलू नामक स्थान फ्रांस में ही स्थित था।

4 "I tell you Wellington is a poor general, the English are poor soldiers, we will settle the matter by lunch time."

—Quoted by Ferguson and Bruun, *A Survey of European Civilization*, p. 614.

लिए पहुंच गयी। अन्त में, नेपोलियन परास्त हुआ। नेपोलियन भागकर पेरिस पहुंचा, किन्तु मित्र राष्ट्रों की सेना ने उसका पीछा किया। नेपोलियन को आत्मसमर्पण करना पड़ा। नेपोलियन ने कहा था, **"मैंने समय नष्ट किया, समय ने मुझे नष्ट कर दिया"**[1] (I spoiled time and time spoiled me.)।

नेपोलियन को 1815 ई. में ही दक्षिणी एटलाण्टिक में स्थित सेंट हेलेना (St. Helena) भेज दिया गया, जहां 6 वर्ष पश्चात् 5 मई, 1821 ई. को पेट के कैंसर के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय नेपोलियन की आयु 52 वर्ष थी।

नेपोलियन के पतन के कारण
(CAUSES OF NAPOLEON'S DOWNFALL)

नेपोलियन न केवल यूरोप अपितु विश्व-इतिहास का एक महान् व्यक्तित्व था। यूरोप के राजनीतिक पटल पर अचानक व तेजी से उसका पदार्पण हुआ, किन्तु उतनी ही शीघ्रता से वह विलुप्त भी हो गया। 1799 ई. से 1814 ई. तक वह यूरोप पर छाया रहा तथा अपने कार्यों, विजयों व व्यक्तित्व से न केवल फ्रांस अपितु सम्पूर्ण विश्व को उसने प्रभावित किया। एक साधारण परिवार में जन्मा, एक सिपाही के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करने वाला नेपोलियन असाधारण योग्यता एवं प्रतिभा का स्वामी था जिसके द्वारा ही वह फ्रांस के सम्राट के पद तक जा पहुंचा। 1807 ई. में वह अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था। ग्रांट एण्ड टेम्परले ने लिखा है : "1807 **ई. में नेपोलियन अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था। यदि वह उसी वर्ष मर जाता तो उसका जीवन यूरोप के सैन्य इतिहास एवं सम्भवतः विश्व के इतिहास में सबसे चमत्कारपूर्ण बन जाता।**"[2] उल्लेखनीय है कि 1807 ई. से पहले के 7 वर्ष में नेपोलियन ने जिस तेजी के साथ उन्नति की थी, 1807 ई. के बाद उतनी ही तीव्रता से वह पतन की ओर अग्रसर हुआ।

इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक साम्राज्य अथवा सम्राट का चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो एक निश्चित अवधि के पश्चात् पतन होने लगता है। नेपोलियन भी इस ऐतिहासिक सत्य का अपवाद न था। **'असम्भव'** शब्द को न मानने वाला नेपोलियन भी अन्ततोगत्वा पतन के गर्भ में समा गया। **नेपोलियन के पतन में अनेक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कारणों ने सहयोग दिया, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित थे—**

1. **एक व्यक्ति की योग्यता पर आधारित राज्य** (Empire based on only one Person)—नेपोलियन अपनी योग्यता के आधार पर शासक बना था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नेपोलियन प्रतिभा का स्वामी था, किन्तु फिर भी राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए परामर्शदाताओं की आवश्यकता होती है। नेपोलियन किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करता था और न ही किसी से परामर्श लेता था यहां तक **तालीरॉं** (Talleyrand),

---

1 नेपोलियन का प्रयत्न था कि मित्र राष्ट्रों की सेनाएं एक साथ एकत्र न हो पाएं क्योंकि अलग-अलग परास्त करना सरल था, किन्तु, नेपोलियन ने समय गंवा दिया, जिसका नेपोलियन को भारी मूल्य चुकाना पड़ा। यदि वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन ने जल्दी ही आक्रमण कर दिया होता तो ब्लेचर को वैलिंगटन की मदद करने का मौका ही नहीं मिलता।

2 "But 1807 marks the zenith of his power. Had he died in that year his career would have been seemed the most miraculous in the military annals of Europe and perhaps of the world." —Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 105.

फूशे (Fouche) जैसे योग्य व्यक्तियों से परामर्श लेना भी उसने छोड़ दिया। नेपोलियन यह भूल गया था कि वह ईश्वर नहीं वरन् एक मनुष्य है और मनुष्य की क्षमताएं सीमित होती हैं, चाहे वह कितना भी योग्य क्यों न हो।

2. **असीमित महत्वाकांक्षी होना** (Over ambitious)—उन्नति करने के लिए मनुष्य का महत्वाकांक्षी होना आवश्यक है, किन्तु जब महत्वाकांक्षाएं मनुष्य की क्षमता से अधिक होने लगती हैं तो उसका पतन होना लगता है। नेपोलियन के साथ भी यही हुआ था। नेपोलियन के पतन के लिए अन्य बाहरी कारणों से अधिक उसकी अपनी महत्वाकांक्षाएं अधिक उत्तरदायी थीं। नेपोलियन अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में किसी भी प्राकृतिक बाधा को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। वह एक साधारण सिपाही से फ्रांस का सम्राट बन गया था, किन्तु फिर भी उसकी अभिलाषाएं समाप्त न हुईं। फ्रांस का सम्राट बनने के पश्चात् वह विश्व विजय के स्वप्न देखने लगा। यही उसके पतन का कारण बन गया क्योंकि यूरोप के राष्ट्रों ने उसके विरुद्ध संगठन कर उसके पतन के बीज बो दिए।

3. **नेपोलियन का खराब स्वास्थ्य** (Ill health of Napoleon)—बढ़ती आयु के साथ-साथ नेपोलियन का स्वास्थ्य भी खराब होने लगा था। यद्यपि रोज इत्यादि कुछ इतिहासकारों का मानना था कि वाटरलू के युद्ध के समय नेपोलियन पूर्णतया स्वस्थ था। केवल उसकी निर्णय शक्ति कमजोर हो गई थी, किन्तु इस बात को स्वीकार करना कठिन है। रूस के अभियान के पश्चात् उसका स्वास्थ्य गिरा था, इसके अतिरिक्त यदि रोज की बात को भी मानें तो यदि सम्राट की निर्णय शक्ति ही कमजोर हो जाएगी तो उसका पतन होना स्वाभाविक ही है। सम्भवतः इसी कारण उसने लिप्जिग व वाटरलू के युद्ध में अनेक भूलें कीं। डॉ. स्लोन ने लिखा है, "**नेपोलियन के पतन के समस्त कारण एक ही शब्द 'थकान' में निहित हैं।**"[1] निःसन्देह, निरन्तर युद्धों में रत रहने से नेपोलियन थक चुका होगा, जिससे उसकी कार्यक्षमता व युद्ध क्षमता पर असर हुआ।

4. **सैनिकवादी नीति** (Policy of Militarism)—नेपोलियन ने अपने जीवनकाल में जो उन्नति की थी उसका आधार सैनिकवादी नीति ही थी। अतः नेपोलियन का विचार था कि सैन्य बल के द्वारा ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। उसने एक बार कहा था, "**यदि मैं और अधिक यश व विजयें नहीं करूंगा तो मेरी सत्ता समाप्त हो जाएगी। जो मैं हूं वह मुझे विजयों ने ही बनाया है तथा विजयें ही मुझे इस स्थान पर बनाए रख सकती हैं।**"[2] नेपोलियन का विचार था कि उसका सम्मान व यश विजयों द्वारा ही सुरक्षित रह सकता है। उसका कहना था कि "**ईश्वर महानतम् सेनाओं का साथ देता है।**"[3] इस प्रकार नेपोलियन ने फ्रांस की राष्ट्रीय भावनाओं को सैन्यवाद में परिवर्तित कर दिया। नेपोलियन यह भूल गया कि सैन्यवादी नीति किसी एक सीमित उद्देश्य की पूर्ति के लिए उचित हो सकती है, किन्तु प्रत्येक अवसर पर सेना का प्रयोग करना उचित नहीं होता और न ही सैनिक शक्ति के द्वारा राज्य को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। शीघ्र ही यह स्थिति उत्पन्न हो गयी। नेपोलियन की

1 "The cause of decline may be summed up in a single word-exhaustion." —*Dr. Sloane*

2 "My power would fall if I did not base it on still more glory and still more victories. Conquest made me what I am, consequest alone can keep me there." —*Napoleon*

3 "God marches with the biggest battalions." —*Napoleon*

सैन्य आवश्यकताएं इतनी अधिक बढ़ गयीं जिनको पूरा करना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप उसे अन्य देशों के सैनिक भी अपनी सेना में लेने पड़े जिसका परिणाम उसके हित में नहीं हुआ। नेपोलियन को सम्राट पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपना देश शान्ति के सिद्धान्तों पर आधारित करना चाहिए था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया, अतः वह पतन की ओर अग्रसर हो गया।

5. **नेपोलियन के सम्बन्धी** (Relatives of Napoleon)—नेपोलियन का व्यवहार अपने सम्बन्धियों के प्रति अत्यन्त उदार था। उसने अपने सम्बन्धियों की अत्यधिक सहायता की तथा उच्च पद प्रदान किए। उसने अपने भाइयों—लुई नेपोलियन जोसेफ, जेरोम (Jerome) को क्रमशः हॉलैण्ड, स्पेन व वेस्टफेलिया का शासक नियुक्त किया, किन्तु संकट के समय में किसी भी सम्बन्धी ने उसकी सहायता नहीं की। नेपोलियन ने स्वयं भी इस बात को महसूस करते हुए मैटरनिख को लिखा था, "**मैंने अपने सम्बन्धियों का जितना भला किया, उन्होंने उससे अधिक मेरा नुकसान किया।**"[1]

6. **पोप के साथ दुर्व्यवहार** (Misbehaviour with Pope)—प्रारम्भ में नेपोलियन के पोप के साथ सम्बन्ध ठीक थे, किन्तु महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) के प्रश्न पर पोप व नेपोलियन के सम्बन्धों में कटुता आ गई। नेपोलियन ने अपनी शक्ति के मद में पोप को बन्दी बना लिया। नेपोलियन द्वारा पोप को बन्दी बनाना उसकी भारी भूल थी। रोज ने लिखा है, "**पोप के साथ दुर्व्यवहार करना नेपोलियन की भयंकर भूल थी।**"[2] पोप को बन्दी बनाए जाने से सम्पूर्ण कैथोलिक वर्ग नेपोलियन के विरुद्ध हो गया जिसका भारी मूल्य नेपोलियन को चुकाना पड़ा।

7. **महाद्वीपीय व्यवस्था** (Continental System)—नेपोलियन ने इंग्लैण्ड को परास्त करने के लिए आर्थिक युद्ध का सहारा लिया। इसी के अन्तर्गत नेपोलियन ने महाद्वीपीय व्यवस्था लागू करने की घोषणा की। नेपोलियन इंग्लैण्ड को **व्यापारियों का देश** (Nation of Shopkeepers) कहता था। उसका विचार था कि यदि इंग्लैण्ड के व्यापार को बन्द कर दिया जाए तो इंग्लैण्ड आर्थिक रूप से टूट जाएगा तथा फ्रांस के समक्ष घुटने टेक देगा। नेपोलियन की योजना पूर्णतया असफल हो गई। इंग्लैण्ड यूरोप के प्रत्येक देश को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करता था। अतः इस व्यवस्था से प्रत्येक देश में आवश्यक वस्तुओं की कमी हो गयी तथा अन्य देशों ने इस व्यवस्था का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। जब नेपोलियन ने अन्य देशों पर दबाव डाला तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध खराब होने लगे इससे नेपोलियन को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। महाद्वीपीय व्यवस्था नेपोलियन के पतन का एक प्रमुख कारण थी। हेजन ने लिखा है, "**अन्ततः इस नीति (महाद्वीपीय नीति) ने उसे अनिवार्य रूप से आक्रामक युद्धों की नीति में उलझा दिया......जिसके परिणाम नाशकारी हुए और उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी।**"[3]

1 "My relatives have done more harm than I have done them good." —*Napoleon*
2 Rose, J. H. *The Personality of Napoleon*, p. 241.
3 "It involved him inevitably and, in the end, disastrously in a policy of systematic and widespread aggressions upon other countries, consequently in a costly succession of wars." —Hazen, *Modern Europe*, p. 237

8. **स्पेन से युद्ध** (War against Spain)—नेपोलियन द्वारा स्पेन पर आक्रमण करना उसकी भारी भूल थी। इस युद्ध के कारण नेपोलियन को अत्यधिक हानि का सामना करना पड़ा। नेपोलियन के जीवन का यह सबसे लम्बा युद्ध था। नेपोलियन ने स्वयं इस युद्ध के विषय में कहा था, **"स्पेनी नासूर ने मेरा विनाश कर दिया।"**[1]

9. **रूसी अभियान** (Russian Campaign)—स्पेन के अभियान के समान ही नेपोलियन का रूसी अभियान भी उसके लिए विनाशकारी प्रमाणित हुआ। यद्यपि 1807 ई. की टिलसिट की सन्धि (Treaty of Tilsit) से दोनों देशों के सम्बन्ध सुधर गए थे, किन्तु महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) के कारण दोनों के सम्बन्ध पुनः खराब हो गए। 1812 ई. में नेपोलियन ने 5 लाख सैनिकों के साथ रूस के लिए प्रस्थान किया व जब वह वापस फ्रांस पहुंचा तो मात्र 20 हजार सैनिक बचे थे। इन आंकड़ों से इस अभियान में नेपोलियन को कितनी क्षति हुई, अनुमान किया जा सकता है। **इस अभियान ने नेपोलियन की शक्ति को बहुत धक्का पहुंचाया तथा उसकी छवि को खराब किया।** इस युद्ध ने फ्रांस की सेना की कमजोरियों को यूरोप के राष्ट्रों के समक्ष स्पष्ट कर दिया तथा वे भी अपनी स्वतन्त्रता का प्रयास करने लगे।

10. **राष्ट्रीयता की भावनाएं जागृत** (Rise of Nationalism)—नेपोलियन ने अपने अधीनस्थ राज्यों पर अत्यधिक अत्याचार किया तथा भीषण कर लगाए थे। उन राज्यों में नेपोलियन के विरुद्ध भावनाएं प्रबल हो रही थीं। स्पेन व रूस के अभियानों में नेपोलियन की असफलता को देखकर इन राष्ट्रों में राष्ट्रीय भावना की लहर दौड़ गयी। प्रशा प्रतिरोध लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। इटली में भी राष्ट्रवाद प्रबल हो रहा था। नेपोलियन इस राष्ट्रवाद का सामना न कर सका।

11. **नेपोलियन का स्वभाव** (Nature of Napoleon)—नेपोलियन के पतन में उसके स्वभाव का भी प्रमुख हाथ था। नेपोलियन अत्यन्त हठी स्वभाव का व्यक्ति था तथा अपने विचारों के अतिरिक्त किसी की बात मानने को वह कदापि तैयार नहीं होता था। **इसी कारण तालीरॉं (Talleyrand) जैसे व्यक्तियों ने उसका साथ छोड़ दिया था।** वह जानता था कि महाद्वीपीय व्यवस्था असम्भव थी, किन्तु फिर भी उसने उसे लागू किया। राइन संघ को भी वह स्वयं गलत (a bad calculation) मानता था, किन्तु फिर भी उसे बनाए रखा। नेपोलियन जानता था कि उसे इतने युद्ध नहीं करने चाहिए थे, किन्तु फिर भी उसने किए। नेपोलियन ने 1814 ई. में स्वयं यह बात स्वीकार करते हुए कहा था, **"मैं डरता हूं इस तथ्य को स्वीकार करने से कि मैंने बहुत ज्यादा युद्ध किए हैं, मैं विश्व पर फ्रांस का प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।"**[2] प्रो. मारखम ने लिखा है, **"अपने कार्यों में वह एक दैवीय भूल कर रहा था।"**[3] नेपोलियन को मिली प्रारम्भिक सफलताओं से उसे घमण्ड भी हो गया था। इसी कारण आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटरनिख ने नेपोलियन से कहा था, **"आपका पतन निश्चित है, यह मुझे लगा था जब मैं यहां आया था, अब जबकि मैं जा रहा हूं मुझे यह निश्चित हो गया है।"**[4] 26 जून, 1813 ई. को

1 "Spanish ulcer has ruined me." —*Napoleon*
2 "I am afraid to admit that I have waged war too much. I wanted to assure for France the mastery of the world." —*Napoleon*
3 "A streak of divine folly runs through all his work."
—Prof. Markham, *Napoleon and the Awakening of Europe*, p. 175.
4 "Sire, you are lost. I felt it when I came, and now that I go, I am certain." —*Metternich*

मैटरनिख ने जब ड्रेस्डन (Dresden) में समझाने का प्रयास किया था तो नेपोलियन ने जवाब दिया, "**क्या तुम यह चाहते हो कि मैं अपने आपको स्वयं अपमानित करूं। मैं ऐसा कदापि नहीं करूंगा। मैं जानता हूं कि कैसे मरा जाता है, किन्तु मैं एक इंच भी भूमि न दूंगा......तुम एक सैनिक नहीं हो, अतः तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि एक सैनिक की आत्मा में क्या होता है। मैं बड़ा ही युद्ध क्षेत्र में हुआ हूं, अतः मैं लाखों लोगों की जिन्दगी की परवाह नहीं करता।**"[1] इसी प्रकार अपने अहं के कारण उसने शत्रु को सदैव कमजोर समझा। उसने अपने सेनापति सॉल्ट (Soult) से अंग्रेजी जनरल के विषय में कहा था, "**वैलिंगटन एक अयोग्य जनरल है तथा अंग्रेज अच्छे योद्धा नहीं हैं।**"[2] नेपोलियन के इस प्रकार के स्वभाव के कारण इसका पतन होना स्वाभाविक ही था।

12. **नेपोलियन की भूलें** (Blunders of Napoleon)—नेपोलियन ने अपने राजनीतिक एवं सैन्य जीवन के दौरान अनेक भयंकर भूलें कीं जिनका परिणाम उसे भुगतना पड़ा। **उसके द्वारा की गयी कुछ प्रमुख गलतियां निम्नवत् थीं—**

(i) महाद्वीपीय व्यवस्था लागू करना।

(ii) महाद्वीपीय व्यवस्था के दौरान इंग्लैण्ड के लिए अनाज जाने देना।

(iii) स्पेन पर आक्रमण करना।

(iv) रूस के अभियान के दौरान मास्को में एक माह से अधिक समय तक रुके रहना।

(v) 4 जून, 1813 ई. को '**प्लेसविज का युद्ध विराम**' (Armistice of Pleswitz) करना।

(vi) शत्रु सेना को कमजोर समझना।

(vii) वाटरलू के युद्ध (Battle of Waterloo) के समय आक्रमण में देर करना।

नेपोलियन की उपरोक्त भूलें उसके पतन का प्रमुख कारण बनीं।

13. **इंग्लैण्ड से दुश्मनी** (Enemity with England)—यह नेपोलियन का दुर्भाग्य था कि उसका प्रमुख शत्रु इंग्लैण्ड था। इंग्लैण्ड अत्यन्त शक्तिशाली था तथा चारों ओर समुद्र से घिरा होने के कारण सुरक्षित था। इंग्लैण्ड की नौसेना अत्यधिक शक्तिशाली थी, अतः फ्रांस तमाम प्रयत्नों के पश्चात् भी उसे परास्त करने में असफल रहा। इंग्लैण्ड ने राजनीतिक एवं कूटनीतिक श्रेष्ठता का परिचय देते हुए फ्रांस के विरुद्ध अन्य राष्ट्रों के साथ चार संगठन (Four Coalitions) बनाए तथा अन्ततः वाटरलू के युद्ध में परास्त कर उसके राजनीतिक जीवन का अन्त कर दिया।

इस प्रकार उपरोक्त समस्त कारण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नेपोलियन के पतन के लिए उत्तरदायी थे। नेपोलियन ने जिन मूल्यों पर अपने साम्राज्य की नींव रखी थी वे मूल्य ही उसे ले डूबे। उसने युद्ध के द्वारा ही साम्राज्य का निर्माण किया था तथा युद्धों ने ही उसका पतन कर दिया। इसी कारण थामसन ने लिखा है, "**जिन तत्वों ने नेपोलियन के साम्राज्य का**

1 "What is it you wish for me that I should dishonour myself? Never, I shall know to die but never yield an inch of territory. You are not a soldier, you do not know what happens in the soul of a soldier. I have grown up upon battlefield, a man such as I, care little for the life of a million men." —*Napoleon*

2 "I tell you Wellington is a poor General, the English are poor soldiers." —*Napoleon*

निर्माण किया था उन्हीं तत्वों ने उसका विनाश भी कर दिया।"[1] इसी कारण फिशर ने लिखा है : **"नेपोलियन के पतन के नाटक में तीन दृश्य मास्को, लिप्जिग तथा फाउण्टेनब्ल्यू प्रमुख हैं। वाटरलू इस नाटक का उपसंहार है। यह कहना उचित ही है कि निरंकुश सत्ता पर राष्ट्रीय भावना की विजय ही इस नाटक का मूल उद्देश्य है।"**[2]

नेपोलियन : क्रान्ति का पुत्र
(NAPOLEON : THE SON OF THE REVOLUTION)

नेपोलियन स्वयं को क्रान्ति का पुत्र कहता था।[3] **वह स्वयं को क्रान्ति भी कहता था।**[4] इतिहासकारों में इस विषय में मतभेद है कि नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था अथवा नहीं।

नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था, इस मत के **पक्ष में निम्नलिखित तर्क** प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

(i) नेपोलियन का आविर्भाव क्रान्ति के समय ही हुआ था।

(ii) फ्रांसीसी क्रान्ति ने ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की थीं जिनका लाभ उठाकर वह उच्चतम शिखर तक जा पहुंचा।

(iii) उसने सामाजिक भेदभावों को मिटाकर सामाजिक समानता (Social equality) की स्थापना की।

(iv) फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात् उत्पन्न दुर्व्यवस्था को समाप्त कर एक सुदृढ़ शासन की स्थापना की।

(v) नेपोलियन ने **सामन्ती प्रथा** (Feudal System) को समाप्त किया।

(vi) विजित प्रदेशों में प्राचीन संस्थाओं को समाप्त कर नवीन संस्थाओं की स्थापना की।

(vii) फ्रांस में सामाजिक व आर्थिक सुधार करके क्रान्ति की मांग को उसने पूरा किया।

(viii) अपनी विजयों से उसने फ्रांस को यूरोप का प्रमुख देश बना दिया।

उपरोक्त तर्कों के पश्चात् भी अनेक **इतिहासकार नेपोलियन को क्रान्ति का पुत्र स्वीकार नहीं करते**, तथा अपने मत के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(i) नेपोलियन ने क्रान्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य किए।

(ii) नेपोलियन ने **राष्ट्रीयता** (Nationality) के सिद्धान्त की पूर्णतया अवहेलना की।

(iii) विजित देशों में उसने अपने रिश्तेदारों को शासक नियुक्त किया। प्रजा की इच्छा के विरुद्ध शासक नियुक्त करना निःसन्देह क्रान्ति के सिद्धान्तों के विपरीत था।

(iv) अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए उसने फ्रांस को निरन्तर युद्धों में रत रखा।

---

1 "The methods by which the Empire was created were one of the main reasons for its defeat." —Dr. Thomson, *op. cit.*, p. 101.

2 "The downfall of Napoleon is a triology of which Moscow, Leipzig and Fountainbleau are the successive pieces and Waterloo the epilogue....It is truism to point out that moral of this triology is the victory of the national spirit over the alien tyranny." —Fisher, *Napoleon*, p. 158.

3 "I am the child of Revolution." —*Napoleon*

4 "I am the Revolution."

(v) नेपोलियन ने महाद्वीपीय नीति के द्वारा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अन्य देशों के लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न कीं व अन्य देशों के मामलों में हस्तक्षेप किया।

(vi) केन्द्रीकरण की नीति अपनाकर सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में ले ली।

(vii) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना निःसन्देह क्रान्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध था।

(viii) उसने कई पुरानी परम्पराओं को पुनः अपना लिया। उदाहरणार्थ, सम्राट की उपाधि धारण करना, लिजियन का सम्मान (Honour of Legion) इत्यादि।

अतः नेपोलियन को क्रान्ति का पुत्र स्वीकार करना कठिन है। इस विषय में ग्रांड एण्ड टेम्परले का कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है, **"नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था, किन्तु उसने उन सिद्धान्तों व उद्देश्यों को उलट दिया, जिनसे उसका आविर्भाव हुआ था।"**[1]

नेपोलियन का मूल्यांकन
(EVALUATION OF NAPOLEON)

नेपोलियन को आधुनिक युग का सबसे महान् व्यक्ति माना जाता है।[2] अत्यन्त साधारण घर में जन्मे नेपोलियन ने अपनी असाधारण योग्यता के बल पर एक सैनिक के पद से उन्नति प्राप्त करते हुए फ्रांस के सम्राट का पद ग्रहण किया। ग्रांट एण्ड टेम्परले (Grant and Temperley) ने लिखा है, **"नेपोलियन एक असाधारण चरित्र व योग्यता वाला व्यक्ति था जो किसी भी देश में, किन्हीं भी परिस्थितियों में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच सकता था।"**[3] नेपोलियन ने जितनी भी सफलताएं प्राप्त कीं अपनी योग्यता के बल पर ही प्राप्त की थीं।

नेपोलियन ने अपनी असाधारण विजयों से लगभग सम्पूर्ण यूरोप को प्रभाव क्षेत्र में ला दिया था। इस प्रकार फ्रांस के सम्मान को उसने उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा दिया। नेपोलियन ने पेरिस को यूरोप का केन्द्र बना दिया। यद्यपि नेपोलियन द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य स्थिर न रह सका, किन्तु इससे पूर्व फ्रांस की राजनीतिक सीमाओं का विस्तार इतना अधिक कभी नहीं हुआ था। उसने समानता की भावनाओं का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार किया।

नेपोलियन एक कुशल सेनानायक ही नहीं अपितु एक कुशल प्रशासक भी था। नेपोलियन ने प्रथम कान्सल के रूप में तथा उसके बाद सम्राट के रूप में अत्यधिक सुधार किए। नेपोलियन ने फ्रांस में वर्गविहीन समाज की स्थापना की। उसने सामाजिक समानता पर अत्यधिक बल दिया। **'नेपोलियन विधि संहिता'** (Napoleon Code) की स्थापना नेपोलियन की फ्रांस को एक अमूल्य भेंट थी। नेपोलियन फ्रांस में अत्यधिक लोकप्रिय था जिसका प्रमाण यह है कि अकेले नेपोलियन के विषय में इतना अधिक साहित्य रचा गया है जितना अन्य किसी व्यक्ति के विषय में नहीं लिखा गया। ग्रांट एण्ड टेम्परले ने लिखा है, **"वह ईश्वर प्रतीत होता था जो मार भी सकता था व जीवित भी कर सकता था।"**[4]

---

1 "Napoleon was the child of the Revolution, but in many ways he reversed the aims and principles of the movement from which he sprang."
—Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 86.

2 "The most gigantic being of modern times." —*Migret*

3 "Napoleon was without question a man of extra-ordinary force of brain and character, who under all circumstances and in all countries would have been for himself a high position."
—Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 59.

4 "He seemed a god to kill and to make alive."
—Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 105.

अपने कार्यों से नेपोलियन ने केवल फ्रांस को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। इसी कारण 1799 ई. से 1814 ई. के समय को **'नेपोलियन युग'** (Napoleon Era) कहा जाता है। अपने कार्यों के कारण वह अपने शत्रुओं में अत्यधिक अलोकप्रिय था। इसी कारण फिशर ने लिखा है, **"सम्भवतः सम्पूर्ण मानव इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसको अपने समय में इतनी प्रशंसा, विरोध व घृणा प्राप्त हुई हो।"**[1]

नेपोलियन असाधारण प्रतिभा व व्यक्तित्व वाला व्यक्ति था। जनसमूह पर अपने भाषणों की ओजता से प्रभाव डालने में उसे दक्षता प्राप्त थी। उसके सैनिक भी उससे अत्यधिक प्रभावित रहते थे, जिसका प्रमाण एल्बा (Elba) द्वीप से लौटने पर सैनिकों द्वारा उसका स्वागत करना व साथ देना है। नेपोलियन अत्यधिक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जिसने अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए निरन्तर युद्ध किए। इन युद्धों में उसके सैनिकों ने सदैव उसका साथ दिया। अन्ततः यही महत्वाकांक्षाएं ही उसके पतन का कारण भी बन गयीं। इस तरह 1815 में नेपोलियन का पतन हो गया, किन्तु नेपोलियन युग का यश स्थायी था। नेपोलियन के विषय में तालीरां का कथन उल्लेखनीय है, **"नेपोलियन जैसा व्यक्तित्व न किसी ने देखा है और न ही आने वाली कई शताब्दियों में ऐसा असाधारण व्यक्ति जन्म ले सकेगा।"**[2]

प्रश्न

1. नेपोलियन के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।
2. प्रथम कान्सल के रूप में नेपोलियन द्वारा किए गए सुधारों का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1993; लखनऊ, 1990, 94; पूर्वांचल, 1994)
3. नेपोलियन की विजयों का वर्णन कीजिए। (पूर्वांचल, 1995)
4. 'नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था।' व्याख्या कीजिए। (गोरखपुर, 1989)
5. नेपोलियन के मास्को अभियान का वर्णन कीजिए।
6. नेपोलियन के स्पेन से युद्ध व उसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
7. महाद्वीपीय-व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? महाद्वीपीय व्यवस्था का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1995; लखनऊ, 1995)
8. प्रायद्वीपीय युद्ध के कारणों व परिणामों का वर्णन कीजिए।
9. नेपोलियन के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए। (गोरखपुर, 1988; लखनऊ, 1994; पूर्वांचल, 1990, 95)
10. नेपोलियन के आन्तरिक सुधारों का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1987)
11. नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था का वर्णन कीजिए तथा इसकी असफलता के कारण बताइए। (गोरखपुर, 1990, 92; लखनऊ, 1992; पूर्वांचल, 1992, 94)
12. नेपोलियन प्रथम की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1991; लखनऊ, 1992)
13. नेपोलियन बोनापार्ट के उत्थान की परिस्थितियां क्या थीं? (गोरखपुर, 1995; लखनऊ, 1991, 93; 95; पूर्वांचल, 1993)

---

1 "Perhaps in the whole range of history no one has aroused emotions so opposite and so intense or within his own lifetime has claimed so much of administration, fear and the hatred of mankind." —Fisher, *Napoleon*, p. 1

2 "He was certainly the most extraordinary man, I ever saw and in my opinion the most extraordinary man as lived for many centuries." —*Talleyrand.*

7

फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रमुख नेता तथा विश्व पर फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव

[PROMINENT LEADERS OF THE FRENCH REVOLUTION AND IMPACT OF THE FRENCH REVOLUTION UPON THE WORLD]

फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख नेता
(PROMINENT LEADERS OF THE FRENCH REVOLUTION)

फ्रांस में 1789 ई. में क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति विभिन्न कारणों से हुई थी तथा अनेक दार्शनिकों ने इसमें प्रमुख भूमिका निभाई थी। क्रान्ति के जन्म के पश्चात् यदि उसको सही दिशा न प्रदान की जाती तो क्रान्ति का कोई महत्व नहीं रह जाता। क्रान्ति को उचित मार्गदर्शन प्रदान करने वाले नेताओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इन नेताओं में प्रमुख ला फायते (La Fayette), मारॉ (Marat), सिए (Sieyas), ब्रीसो (Brisso), कार्नो (Carnot), दांतों (Danton), मिराबो (Mirabeau), तथा राब्सपीयर (Robespierre) थे। **इन नेताओं ने समानता, स्वतन्त्रता व भ्रातृत्व के सिद्धान्तों के लिए संघर्ष किया व राजतन्त्र समर्थकों का वीरतापूर्वक सामना किया।** इन नेताओं ने फ्रांस में अनेक सुधार करके राजतन्त्रकालीन फ्रांस में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। फ्रांस की क्रान्ति का अध्ययन सम्भवतः तब तक अपूर्ण ही रहेगा जब तक कि इन नेताओं के कार्यकलापों व विचारधाराओं पर प्रकाश न डाला जाए।

ला फायते (1757-1834 ई.)
(LA FAYETTE)

ला फायते का पूरा नाम गिलबर्ट डी ला फायते (Gilbert de La Fayette) था। उसका जन्म 1757 ई. में फ्रांस के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। ला फायते जब दो वर्ष का ही था कि उसके पिता की मृत्यु हो गयी। उसका प्रारम्भिक जीवन कष्टप्रद रहा। 13 वर्ष की आयु में उसकी माता की भी मृत्यु हो गयी। ला फायते रूसो की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था, अतः स्वतन्त्रता (Liberty), समानता (Equality) व भ्रातृत्व (Fraternity) का घोर समर्थक था। इसी कारण अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए वह अमरीका चला गया। अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम के नेता जार्ज वाशिंगटन (Geroge

Washington) ने ला फायते का स्वागत किया व उसे मेजर जनरल नियुक्त किया। अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम में ला फायते ने असाधारण वीरता का परिचय दिया। व 1781 ई. में उसने अंग्रेजी सेनापति कार्नवालिस की सेना को परास्त किया। इस कारण अमरीका में ला फायते को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था।

अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण ला फायते की विचारधारा में स्वतन्त्रता व समानता का महत्व और अधिक हो गया। 1789 ई. में ला फायते को कुलीन वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में एस्टेट्स जनरल (Estates General) का सदस्य निर्वाचित किया गया। एस्टेट्स जनरल के सदस्य के रूप में वह अत्यन्त सक्रिय रहा। राष्ट्रीय सभा में उसने मिराबो के साथ मिलकर सेना को पेरिस से हटाए जाने की मांग की। ला फायते का एक प्रमुख कार्य **मानव अधिकारों की घोषणा** (Declaration of Human Rights) के मसविदे को तैयार करना था। ला फायते का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

14 जुलाई, 1789 ई. को फ्रांस की जनत ने बास्तील के किले पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इस घटना के पश्चात् फ्रांस में दुर्व्यवस्था फैल गयी, अतः स्थिति को सुधारने के लिए एक **राष्ट्रीय सुरक्षा दल** (National Guard) की स्थापना की गयी। ला फायते को राष्ट्रीय सुरक्षा दल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस पद पर वह दो वर्ष तक कार्य करता रहा। पेरिस कम्यून (Paris Commune) पर भी ला फायते का काफी प्रभाव था, किन्तु अधिक समय तक ला फायते का प्रभाव स्थिर न रह सका। **धीरे-धीरे उसकी लोकप्रियता कम होने लगी। इसके अनेक कारण थे जिनमें प्रमुख निम्नवत् थे—**

(i) ला फायते यद्यपि क्रान्ति का समर्थक था, किन्तु वह राजा का अहित करना नहीं चाहता था,[1] इसी कारण जब लुई XVI ने आस्ट्रिया भागने का प्रयास किया, तब ला फायते पर यह आरोप लगाया गया कि इस घटना में ला फायते का हाथ था। इससे ला फायते की बहुत बदनामी हुई। यद्यपि ला फायते का इस घटना में कोई हाथ न था, फिर भी उसने अपने को निर्दोष साबित करने का प्रयास न किया।

(ii) पेरिस में भीड़ पर ला फायते द्वारा गोली चलाई गई जिसमें अनेक व्यक्ति मारे गए, इससे ला फायते की लोकप्रियता घटी।

(iii) 1792 ई. में ला फायते ने बेल्जियम पर आक्रमण किया, किन्तु इस अभियान में उसे असफलता मिली। 1794 ई. से 1799 ई. तक उसे आस्ट्रिया तथा प्रशा में बन्दी बन कर रहना पड़ा।

(iv) ला फायते में स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति का अभाव था।[2]

(v) फ्रांस में धीरे-धीरे मिराबो, दांतों व राब्सपीयर का प्रभाव स्थापित होता जा रहा था।

उपरोक्त कारणों से ला फायते का प्रभाव बहुत कम हो गया। नेपोलियन द्वारा सत्ता हथियाए जाने पर ला फायते ने उसका विरोध किया, किन्तु उसे सफलता न मिली। 1815 ई. में नेपोलियन के पतन के पश्चात् उसने पुनः राजनीति में सक्रिय होने का प्रयास किया, किन्तु

1 "If the king accepts the constitution, I will defend him. If he refuses it I will oppose him." —*La Fayette*

2 "La Fayette risked life and fortune as an aid to Washington (Greorge) in the American Revolution, but he lacked the judgement for independent leadership." —Ferguson & Bruun, *A Survey of European Civilization*, p. 584.

असफल रहा। 1823 ई. में वह अमरीका गया। अमरीका में उसका भव्य स्वागत किया गया। 1830 ई. की फ्रांस की क्रान्ति में ला फायते ने भाग लिया व राष्ट्रीय सुरक्षा दल का सेनापति बन गया। लुई XVI को गद्दी से हटाने व लुई फिलिप को सिंहासनारूढ़ करने में ला फायते ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

इस प्रकार ला फायते का जीवन सफलता व असफलता का मिश्रण रहा।

मारा (1742-1793 ई.)
(MARAT)

मारा का पूरा नाम **जीन पाल मारा** (Jean Paul Marat) था। मारा का जन्म 1732 ई. में फ्रांस के एक साधारण परिवार में हुआ। पेशे की दृष्टि से वह एक चिकित्सक था तथा उसने इस क्षेत्र में अत्यधिक नाम कमाया था। वह लुई XVI के भाई काउण्ट ऑफ आर्त्वा (Count of Artois) का चिकित्सक भी था। मारा की चिकित्सा के क्षेत्र में उपलब्धियों को देखते हुए स्काटलैण्ड के सेंट एण्ड्रयूज विश्वविद्यालय (University of St. Andrews) ने उसे **'डाक्टर'** की उपाधि से विभूषित किया था। मारा अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि का व्यक्ति था।

मारा की लेखन में भी अत्यधिक रुचि थी। चिकित्सा से सम्बन्धित उसने अनेक लेख लिखे। कालान्तर में क्रान्ति के समर्थन व राजतन्त्र विरोधी लेख लिखे। उसने एक पत्र 'द फ्रेण्ड्स ऑफ द पीपुल' (The Friends of the People) का प्रकाशन 1789 ई. से प्रारम्भ किया व 1792 ई. तक इसका सम्पादन करता रहा। इस समाचार-पत्र के द्वारा उसने राजतन्त्र, पादरियों, सामन्तों व कुलीनों पर निरन्तर आघात किए।

मारा के राजनीतिक विचार अत्यन्त उग्र (Radical) थे। उसका मानना था कि राजसत्तावादियों का सफाया कर देना चाहिए। वह गणतन्त्र का समर्थक नहीं था व **'सीमित राजतन्त्र'** में विश्वास करता था। उसका कहना था, **"राजा की निरंकुशता को समाप्त करने के लिए हमें स्वतन्त्रता की निरंकुशता की स्थापना करनी चाहिए।"**[1] वह कहा करता था, **"मैं सिर काटना पसन्द करता हूं।" इसी कारण हेजन ने उसे उस समय के सर्वाधिक रक्त-पिपासु व्यक्तियों में से एक माना है।**[2]

1789 ई. में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन आमन्त्रित किए जाने पर मारा ने राजनीति में प्रवेश किया। 1792 ई. तक वह गणतन्त्र का समर्थक नहीं था, किन्तु 1792 ई. में उसके विचारों में परिवर्तन हुआ तथा वह गणतन्त्र का समर्थक बन गया। मारा जैकोबिन दल का सदस्य था तथा जनता में अत्यन्त लोकप्रिय था। 1792 ई. के सितम्बर हत्याकाण्ड में उसका प्रमुख हाथ था। राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के लिए भी उसे चुना गया तथा जिरोंदिन व जैकोबिन दल के पारस्परिक संघर्ष में भी उसने भाग लिया था।

13 जुलाई, 1793 ई. को नौर्मण्डी (Normandy) की एक महिला शारलोत कोर्डे (Charlotte Corday) ने उसकी हत्या कर दी। शारलोत कोर्डे को मृत्युदण्ड दिया गया।

1 "We must establish the despotism of liberty to crush the despotism of the king."
—Dr. Marat

2 "Marat, one of the most blood-thirsty characters of the time."
—Hazen, *op. cit.*, p. 130.

मरते समय उसने गर्व से कहा, "**मैंने फ्रांस को एक दानव से मुक्त कर दिया है।**"[1] किन्तु जनता ने उसकी मृत्यु पर गहरा शोक मनाया व उसे '**शहीद**' की उपाधि दी गयी।

सिए (1749-1830 ई.)
(SIEYES)

सिए का पूरा नाम ऐबे सिए (Abbe Sieyes) था। सिए का जन्म 1749 ई. में फ्रांस के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। सिए को फ्रांस की क्रान्ति के महान् नेताओं में से एक माना जाता है। सिए के माता-पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे। इसी कारण सिए के विचार अत्यन्त धार्मिक थे। सिए ने अपने माता-पिता की इच्छानुसार लगभग 10 वर्षों तक पादरी के रूप में कार्य किया। इसी कारण सिए चर्च की बुराइयों से भली-भांति परिचित था व उसे चर्च के प्रति लगाव व श्रद्धा नहीं थी। सिए की रुचि राजनीति में थी तथा वह स्वयं कहता भी था, "**मेरे विचार में राजनीति विज्ञान में मैं परिपूर्ण हूं।**"[2]

एस्टेट्स जनरल के चुनाव के समय, सिए के चर्च विरोधी विचारों के कारण उसे पादरी वर्ग ने अपना प्रतिनिधि नियुक्त नहीं किया। सिए अत्यन्त सुधारवादी था तथा चर्च, समाज व प्रशासन में महत्वपूर्ण सुधार करना उसका ध्येय था।

सिए एस्टेट्स जनरल में जनसाधारण वर्ग (Third Estate) का प्रतिनिधि बन गया। इसी समय उसने एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें तृतीय सदन (Third Estate) के विषय पर व्यापक प्रकाश डाला गया था। तृतीय सदन के विषय में इस पुस्तक में उसने स्वयं ही प्रश्न किए व स्वयं ही उत्तर दिए। सिए ने लिखा[3] है—

प्रश्न—तृतीय सदन क्या है?

उत्तर—सब कुछ।

प्रश्न—अब तक राजनीतिक क्षेत्र में उसकी कैसी स्थिति रही है?

उत्तर—कुछ भी नहीं।

प्रश्न—तृतीय सदन क्या चाहता है?

उत्तर—वह कुछ प्राप्त करना चाहता है।

इस प्रकार के लेखन से सिए फ्रांस में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। इस रचना ने तृतीय सदन को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की।

सिए यद्यपि क्रान्तिकारी था, किन्तु संवैधानिक राजतन्त्र व जनता के सीमित अधिकारों का समर्थक था। '**टेनिस कोर्ट की शपथ**' लेने में सिए ने मिराबो का साथ दिया। सिए ने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) व डाइरेक्टरी के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। '**आतंक के राज्य**' (Riegn of Terror) के समय व राजनीतिक रूप से पूर्णतया उदासीन ही रहा। राब्सपीयर को गिलोटिन पर चढ़ा दिए जाने के बाद वह पुनः सक्रिय हो उठा व

1 "I killed Marat in order to save the lives of 1,00,000 others." —*Charlotte Carday*

2 "The Science of Politics is one in which, I think, I a, perfect." —*Sieyes*

3 "Q.—What is the Third Estate?
A.—Everything.
Q.—What has it been hitherto in the political order?
A.—Nothing.
Q.—What does it desire?
A.—To be something."

1795 ई. में **जन रक्षा समिति** (Committee for Public Safety) का सदस्य बना। 1795 ई. के संविधान के निर्माण में सिए ने प्रमुख भूमिका निभाई। 1795 ई. में पेरिस की जनता से उसने राष्ट्रीय सम्मेलन की रक्षा की। डाइरेक्टरी व कान्स्यूलेट शासन में भी सिए सक्रिय रहा, किन्तु नेपोलियन द्वारा स्वयं को फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिए जाने पर वह पुन: उदासीन हो गया।

1830 ई. में सिए की मृत्यु हो गयी। सिए के विषय में लार्ड एक्टन ने लिखा है, **"ऐबे सिए फ्रांस की राज्यक्रान्ति का सबसे मौलिक विचारक था।"**

ब्रीसो (1754-1793 ई.)
(BRISSOT)

ब्रीसो का जन्म फरवरी, 1754 ई. में फ्रांस के मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। ब्रीसो का पिता उसे वकील बनाना चाहता था, किन्तु ब्रीसो की इस कार्य में कोई रुचि नहीं थी। ब्रीसो को पत्रकारिता में अत्यधिक रुचि थी, अत: उसने पत्रकारिता को ही अपना व्यवसाय चुना। ब्रीसो को अध्ययन से अत्यधिक प्रेम था। वह एक विद्वान व्यक्ति था तथा अनेक भाषाओं का ज्ञाता था। ब्रीसो के विचारों पर लॉक व मॉण्टेस्क्यू के विचारों का प्रभाव था। ब्रीसो ने 1789 ई. से एक पत्र का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसक नाम **'पेट्रियट'** (Patriot) था। ब्रीसो अनेक पुस्तकों का रचयिता भी था।

ब्रीसो एक सीधा-सादा व सरल हृदय वाला व्यक्ति था। यह स्वतन्त्रता का विरोधी था तथा फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। वह स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व में विश्वास रखता था। अपने विचारों को वास्तविकता का रूप प्रदान करने के लिए वह राजा को पदच्युत करना चाहता था। उसका राजनीतिक जीवन 1791 ई. में प्रारम्भ हुआ। उसका राष्ट्रीय सभा तथा राष्ट्रीय सम्मेलन पर गहरा प्रभाव था, किन्तु कालान्तर में जैकोबिनों का प्रभाव बढ़ने पर उसका प्रभाव कम होता चला गया।

ब्रीसो ने राजा को उसके पद से हटाने के लिए फ्रांस को आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। उसका विचार था कि यदि इस युद्ध में वह सफल हो गया तो फ्रांस में उसका प्रभाव बढ़ जाएगा जिसकी सहायता से वह राजा को पदच्युत कर सकेगा। यदि इस युद्ध में उसकी पराजय हो गयी तो उसका दोष राजा पर डालकर वह राजा को हटाएगा, किन्तु फ्रांस इस समय युद्ध के लिए तैयार न था, अत: उसकी पराजय हुई। इससे जनता उसके विरुद्ध हो गयी।

जून 1793 ई. में ब्रीसा को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार एक प्रमुख क्रान्तिकारी का दुखद अन्त हो गया।

कार्नो (1753-1823 ई.)
(CARNOT)

कार्नो का पूरा नाम लजारे निकोलस मार्गयूराइट कार्नो (Lazare Nicholas Marguerite Carnot) था। कार्नो का जन्म 1753 ई. में फ्रांस के मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। कार्नो के प्रारम्भिक जीवन के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। कार्नो को यश 'आतंक के राज्य' के दौरान प्राप्त हुआ। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि आतंक का राज्य कार्नो की ही देन थी। कार्नो का यश एक क्रान्तिकारी से अधिक उसके द्वारा किए

गए सैन्य संगठन व सैनिक विजयों को है। राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) ने जिस समय फ्रांस के शासन की बागडोर सम्हाली, फ्रांस की स्थिति शोचनीय थी। फ्रांस पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे, किन्तु फ्रांस की सेना अत्यन्त कमजोर थी। ऐसे समय में कार्नो को युद्ध मन्त्री बनाया गया। कार्नो ने असाधारण सैनिक प्रतिभा का परिचय देते हुए फ्रांस की सेना का पुनर्संगठन किया।

फ्रांस की सेना को संगठित करने के लिए कार्नो ने एक आदेश जारी करके युवा एवं शक्तिशाली लोगों को सेना में भर्ती किया। इस प्रकार तीन लाख सैनिकों को नियुक्त किया गया। इसके साथ ही वृद्धों एवं स्त्रियों को युद्ध सम्बन्धी साज-सामान बनाने तथा सैनिकों की देखभाल का कार्य भी सौंपा गया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश में सैनिक वातावरण हो गया जो उस समय की स्थिति को देखते हुए आवश्यक था। इस प्रकार सैनिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु मनोवैज्ञानिक रूप से भी फ्रांस को युद्ध का सामना करने व विद्रोहियों का दमन करने के लिए कार्नो ने तैयार किया। इसी कारण हेज ने लिखा है, **'आधुनिक युग में पहली बार सम्पूर्ण राष्ट्र ही शस्त्र उठाए हुए प्रतीत हो रहा था।''**[1]

इस प्रकार सेना का पुनर्संगठन कर कार्नो के निदेशन में फ्रांस की सेनाओं ने अपार सफलताएं प्राप्त कीं। इससे फ्रांस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। इसी कारण फ्रांस की जनता प्यार से कार्नो को **'विजय का संगठनकर्ता'** (Organizer of the Victory) कहती थी। डेविड थामसन ने उसे 'अतिबुद्धिमान' (Genius) कहा है।[2]

दांतो (1759-1794 ई.)
(DANTON)

दांतो का पूरा नाम जार्ज जेकस दांतों (Geroge Jacques Danton) था। उसका जन्म 26 अक्टूबर, 1759 ई. को पेरिस के निकट एक गांव में हुआ था। दांतों का पिता एक किसान था। यद्यपि वह मध्यवर्गीय था, किन्तु अध्ययन से अत्यधिक लगाव होने के कारण उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा वकालत के व्यवसाय को अपनाया। उसने वकालत के व्यवसाय में खूब नाम कमाया। वह अत्यन्त कुशल वक्ता था तथा उसकी आवाज बहुत अच्छी थी। जिस समय वह भाषण देता था लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। श्रोताओं को अपने धाराप्रवाह भाषण से बांधे रखने में वह सक्षम था। दांतो के सौभाग्य से उसे मिराबो (Mirabeau) का सहयोग प्राप्त हो गया जिससे उसको बहुत लाभ हुआ। कालान्तर में उसने अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर स्वयं को लोकप्रिय बनाया था। दांतो यद्यपि मध्यमवर्गीय था, किन्तु उसे निम्नवर्ग से अत्यधिक सहानुभूति थी तथा उनके उत्थान के लिए वह कुछ करने के लिए प्रयत्नशील था।[3]

दांतो ने राजनीतिक जीवन जैकोबिन दल के सदस्य के रूप में शुरू किया। 1789 ई. में दांतों ने मारा (Marat) तथा दमोली (Desmoulins) के सहयोग से **कार्डेलियर क्लब** (Cordilier Club) की स्थापना की। इस क्लब के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए उसने

1 "For the first time in Modern History, a nation was truely in arms."
—Hayes, *op. cit.*

2 "Lazare Carnot, the military genius of the committee of public safety who had directed the campaigns was acclaimed. 'The organizer of victory."
—Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 591.

3 "David Thomson, *op. cit.* p. 24.

राजतन्त्र पर कठोर आघात किए जिससे उसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी। दांतों ने जैकोबिन व जिरोंदिन दलों के मध्य समझौता कराने का प्रयास भी किया, किन्तु वह असफल रहा, यदि यह समझौता हो गया होता तो सम्भवतः फ्रांस का इतिहास कुछ और ही होता। उसके इन कार्यों से फ्रांस में उसका प्रभाव बढ़ता गया। पेरिस कम्यून (Paris Commune) पर भी उसका गहरा प्रभाव था।

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) का शासन प्रारम्भ होने के समय विदेशी आक्रमण के कारण फ्रांस की स्थिति नाजुक थी। राष्ट्रीय सम्मेलन में जिरोंदिनों का प्रभुत्व था, किन्तु जिरोंदिन दल फ्रांस को मित्र राष्ट्रों के हाथों पराजित होने से न बचा सका। बेल्जियम में फ्रांस को पराजय का मुख देखना पड़ा। इसी समय 27 जुलाई, 1792 ई. को ब्रुंजविक (Brunswick) की घोषणा ने स्थिति को और खराब कर दिया। प्रशा के सेनापति ब्रुंजविक ने कहा कि यदि राजा लुई XVI व उसके परिवार को कोई हानि पहुंचायी गयी तो पेरिस को ध्वस्त कर देगा। इससे पेरिस की जनता भड़क उठी व जनता ने 10 अगस्त, 1792 ई. को दांतों के नेतृत्व में राजा को बन्दी बना लिया। इस घटना के बाद से फ्रांस पर दांतो का प्रभुत्व छा गया। उसने घोषणा की, **"फ्रांस के शत्रुओं को नष्ट करना और संविधान के अन्तर्गत सुव्यवस्था स्थापित करना ही मेरा उद्देश्य है।"** उसने पुनः कहा, **"क्रान्ति दो अग्नियों के बीच घिरी हुई है—आन्तरिक शत्रु व वैदेशिक शत्रु।"**[1] अतः क्रान्ति की रक्षा करने व फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करने के उद्देश्य से उसने फ्रांस में **'आतंक के राज्य'** (Regin of Terror) की स्थापना की। उसने सर्वप्रथम अपने प्रतिद्वन्द्वी दल जिरोंदिन के अनेक नेताओं को गिलोटिन पर चढ़ा दिया तथा जिरोंदिन दल की शक्ति को कुचल दिया। कार्नो को रक्षा मन्त्री नियुक्त कर सेना को शक्तिशाली बनाया व मित्र राष्ट्रों की सेना को परास्त कर फ्रांस के गौरव की रक्षा की।

दांतो ने फ्रांस की स्थिति को सुधारने के पश्चात् 1794 ई. में आतंक के राज्य को समाप्त करना चाहा, किन्तु राब्सपीयर व अन्य जैकोबिन नेता इसके लिए तैयार न हुए। राब्सपीयर ने दांतो को गिरफ्तार कर लिया। 5 अप्रैल, 1794 ई. को उसे गिल़ोटिन पर चढ़ा दिया गया।

दांतो निःसन्देह एक महान् देशभक्त नेता था। नेलॉक ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"दांतो के चरित्र ने अन्य क्रान्तिकारियों की अपेक्षा विश्व को अधिक प्रभावित किया है।"**[2] हेजन ने भी दांतो की प्रशंसा की है। हेजन के शब्दों में, **"वह एक योग्य, चतुर व निरंकुश नेता था।"**[3]

मिराबो (1749-1791 ई.)
(MIRABEAU)

फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रमुख नेताओं में से एक मिराबो था। उसका पूरा नाम गेब्रील आर. मिराबो (Gabriel Riqueti Mirabeau) था। मिराबो का जन्म 1749 ई. में हुआ था। उसके

1 "The Revolution is between the two fires—enemy at home and enemy at border."
2 "The character of Danton has more widely impressed the world than that of any other revolutionary leader." —H. Belloc, *The French Revolution*, pp. 67-68.
3 "Danton, a lawyer, with an exceptional power of downright and epigramatic speech, an able, astute and ruthless leader." —Hazen, *op. cit.*, p. 122.

पिता एक सामन्त थे। बचपन से ही मिराबो अत्यन्त चंचल प्रवृत्ति का एवं उद्दण्ड स्वभाव का था। मिराबो देखने में अत्यन्त भद्दा एवं कुरूप था। उसके चेहरे पर चेचक के गहरे दाग थे। चेहरे की कुरूपता के समान ही उसका चरित्र भी था। उसमें अनेक चारित्रिक दुर्बलताएं थीं। उसमें नैतिकता की भारी कमी थी। वह सिद्धान्तवादी नहीं था और अवसर के अनुकूल अपने सिद्धान्तों को बदलता रहता था। उस पर भ्रष्टाचार व रिश्वत लेने के भी अनेक आरोप लगे थे। उसके चरित्र को इस बात से भली-भांति समझा जा सकता है कि स्वयं उसके पिता ने उसको अनेक बार जेल भिजवाया था। उसके इस प्रकार के चरित्र के कारण ही मेडलिन ने उसके विषय में लिखा था, "**उसका कुरूप चेहरा उसके खराब चरित्र का द्योतक था।**"[1]

उपरोक्त दुर्बलताओं के होने के बावजूद उसमें कुछ महत्वपूर्ण गुण भी थे। वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि व दूरदर्शी व्यक्ति था।[2] वह अपनी धुन का पक्का था, जिस कार्य को करने की ठान लेता उसे करके ही दम लेता था। अपने उद्देश्य को पूरा करने में वह नैतिकता को भी एक ओर रख सकता था। मिराबो ने अनेक देशों की यात्रा की थी जिसका उसकी विचारधारा पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। इंग्लैण्ड की यात्रा के दौरान उसने वहां की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन किया व वहां की **वैधानिक राजतन्त्रात्मक प्रणाली** (Constitutional Monarchy) से अत्यधिक प्रभावित हुआ। इसी प्रकार की शासन पद्धति वह फ्रांस में भी स्थापित करना चाहता था। इसी कारण उसने राजा को समझाने का प्रयत्न किया कि वह प्रजा का नेतृत्व स्वीकार कर ले। इसी के साथ-साथ उसने व्यवस्थापिका सभा को भी समझाने का प्रयास किया कि वह राजा के प्रति उदार बनी रही, किन्तु यह मिराबो का दुर्भाग्य था कि न राजा ने और न ही व्यवस्थापिका सभा ने उसका विश्वास किया, अतः वह अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहा। मिराबो प्रारम्भ में जैकोबिन दल (Jacobin Party) का सदस्य था, किन्तु कुछ समय पश्चात् उसने स्वयं को जैकोबिन दल से अलग कर लिया। मिराबो के किसी दल का सदस्य न होने से उसे काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा। यदि मिराबो की मृत्यु 1791 ई. में न हुई होती तो सम्भवतः वह स्थिति को सम्हाल लेता।

सामन्त वर्ग मिराबो को पसन्द नहीं करता था। इसी कारण एस्टेट्स जनरल के लिए वह जनसाधारण वर्ग (Third Estate) के सदस्य के रूप में एस्टेट्स जनरल का सदस्य चुना गया। शीघ्र ही वह जनसाधारण वर्ग का नेता बन गया।

टेनिस कोर्ट की शपथ (Oath of Tennis Court) की घटना में उसका प्रमुख हाथ था। मिराबो ने ही बेली (Bailly) की अध्यक्षता में उपस्थित समुदाय को शपथ दिलवाई थी। जब राजा के प्रतिनिधि ने जनसाधारण वर्ग के लोगों को वहां से चले जाने को कहा तो मिराबो ने राजा के प्रतिनिधि से कहा, "**जाओ जाकर कह दो उनसे जिन्होंने तुम्हें भेजा है कि संगीनों की शक्ति जनता की शक्ति के आगे कुछ नहीं है।**"[3] मिराबो ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य कराए। उसी के प्रयासों से पेरिस से सेना को हटाने के लिए लुई XVI को विवश होना पड़ा। मिराबो ने ही मतदान भवन (Vote by Order) के स्थान पर प्रतिनिधि के अनुसार

1 **"His scarred face was the symbol of his scarred character in Estate General."**
—*Madilin*

4 **"A practical, clear-sighted, far-seeing man, with a brain and heart of fire."**
—Ketelbey, *op. cit.*, p. 64.

3 **"Go, tell those who sent you that the force of bayonets has no power against the will of the nation."**
—*Mirabeau*

वोट का अधिकार (Vote by Head) कराया। मिराबो के प्रयत्नों से ही जनता से वसूल किया जाने वाला टिथेस कर (Tithes Tax) समाप्त किया गया। इस प्रकार व्यवस्थापिका सभा पर मिराबो का गहरा प्रभाव आ गया था।

मिराबो अत्यन्त योग्य व्यक्ति था, किन्तु यह उसका व फ्रांस का दुर्भाग्य था कि किसी ने भी उस पर विश्वास न किया। उसकी योग्यता का प्रमाण यह है कि राजा ने गुप्त रूप से उसे अपना परामर्शदाता (Advisor) नियुक्त किया, इसी कारण बाद में उसकी कटु आलोचना भी की गयी।[1] राजा ने यद्यपि उसे अपना परामर्शदाता नियुक्त किया, किन्तु दुर्भाग्यवश उसके परामर्शों का पालन नहीं किया अन्यथा राजा को गिलोटिन पर न चढ़ना पड़ता और न ही फ्रांस को इतने संकटों का सामना करना पड़ता। मिराबो ने स्वयं ही इस बात को भांप लिया था। उसने कहा था कि मेरी मृत्यु के पश्चात् राजतन्त्र की अर्थी उठ जाएगी। उसका यह कथन पूर्णतया सही प्रमाणित हुआ।

मिराबो की तमाम बुराइयों के पश्चात् भी इतिहासकारों व राजनीतिज्ञों ने प्रशंसा की है। लियो गर्शोय[2] ने उसके अद्भुत वक्ता होने के लिए,तो केटलबी[3] ने व्यवस्थापिका सभा व राजा के बीच सम्बन्ध बनाए रखने के लिए मिराबो को सराहा है।

2 अप्रैल, 1791 ई. को मिराबो की मृत्यु हो गयी। मिराबो की मृत्यु के समय कहा गया, **"उसकी मृत्यु से फ्रांस ने एक कर्णधार खो दिया।"**[4]

राब्सपीयर (1748-1794 ई.)
(ROBESPIERRE)

राब्सपीयर का पूरा नाम मैक्सिमिलेन राब्सपीयर (Maximilen Robespierre) था। उसका जन्म 7 मई, 1748 ई. को आरा (Arras) नामक नगर में हुआ था। राब्सपीयर का पारिवारिक व्यवसाय वकालत था, अतः उसने भी पेरिस विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा ग्रहण की। वकील के रूप में उसने प्रसिद्धि अर्जित की। उसके यश व योग्यता को देखते हुए उसे फौजदारी (Criminal) न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया। इस पद पर राब्सपीयर ने अधिक समय तक कार्य नहीं किया क्योंकि किसी भी अपराधी को मृत्युदण्ड देने में उसे आत्मिक कष्ट होता था। (**उल्लेखनीय है कि इसी राब्सपीयर ने आतंक के दौरान हजारों व्यक्तियों को गिलोटिन पर चढ़वा दिया था।**) वकील व न्यायाधीश के रूप में कार्य करते हुए राब्सपीयर को फ्रांस के कानून की खामियों के विषय में जानकारी हुई। कुछ समय न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के पश्चात् राब्सपीयर ने इस पद से त्यागपत्र दे दिया।

राब्सपीयर को अध्ययन में भी विशेष रुचि थी। उसने अनेक लेख लिखे व भाषण दिए। शीघ्र ही उसकी एक कुशल एवं प्रभावशाली वक्ता की छवि बन गयी। उसकी शैली

1 "Mirabeau sided with the commoners but accepted secret subsidies from Louis XVI to 'guide' the revolution. Honoured as a great statesman when he died in 1791, Mirabeau was later denounced as a traitor when these secret payments came to light." —Ferguson & Bruun, *op. cit.*, p. 587.

2 "He (Mirabeau) was never ill informed. His words always rang with authority. As a debater he was unsurpassed in the entire revolution." —Leo Gershoy, *op. cit.*, p. 135.

3 "The only man who could have led the Wild Assess' of Assembly and the 'Royal Cattle' of the court into the paths of harmony." —Ketelbey, *op. cit.*, p. 60.

4 "With his (Mirabeau's death New France lost a Pilot."

सही, संक्षिप्त, औपचारिक एवं शास्त्रीय थी। वह सदैव नैतिकता के उपदेश देता था। उसका कहना था, **''मैंने नीचता और भ्रष्टता के जुए के नीचे कभी सिर नहीं झुकाया है।''** इसी कारण लोगों ने उसका नाम **'अभ्रष्टनीय'** रख दिया था।[1]

राब्सपीयर ने रूसो की कृति 'सामाजिक समझौता' (Social Contract) का गहन अध्ययन किया था वह रूसो की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था तथा स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व के सिद्धान्त को कार्यान्वित करना चाहता था। **राब्सपीयर रूसो के विचारों की प्रतिमूर्ति** (Apostle of Rousseau) **था।**

राब्सपीयर अत्यधिक राष्ट्र प्रेमी था तथा फ्रांस के हित के लिए कुछ भी कर सकता था। उसके देश प्रेम व लगन को देखकर मिराबो ने राब्सपीयर के विषय में कहा था, **''यह युवक बहुत उन्नति करेगा क्योंकि जो कुछ यह कहता है उस पर विश्वास भी करता है।''**[2]

राब्सपीयर 1789 ई. में एस्टेट्स जनरल का सदस्य जैकोबिन दल के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुआ। राब्सपीयर यद्यपि मध्यमवर्गीय था, किन्तु निम्नवर्ग के प्रति भी उसे सहानुभूति थी तथा उन्हीं का उसने नेतृत्व भी किया। राब्सपीयर को अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ में विशेष सफवता नहीं मिली क्योंकि उस समय राजनीति पर मिराबो का प्रभाव छाया हुआ था, किन्तु शीघ्र ही अपनी योग्यता से उसने अपना प्रभाव जमाना प्रारम्भ कर दिया। उसने व्यवस्थापिका सभा में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए जिनमें भाषण की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech) पर एक महत्वपूर्ण वक्तव्य देना, मृत्युदण्ड विरोधी वक्तव्य व मताधिकार सम्पत्ति के अनुसार नहीं होना चाहिए प्रस्ताव रखना प्रमुख हैं।

राष्ट्रीयं असेम्बली में यद्यपि वह अपना विशेष प्रभाव न स्थापित कर पाया, किन्तु पेरिस कम्यून (Paris Commune) पर उसका गहरा प्रभाव था। राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के शासन के दौरान वह अत्यन्त शक्तिशाली हो गया तथा दांतो, सेण्ट जस्ट, हरबर्ट व कार्नो, आदि जैकोबिन नेताओं के साथ मिलकर उसने **'आतंक का राज्य'** स्थापित किया। आतंक के राज्य के दौरान उसने जिरोंदिन दल की शक्ति को कुचल दिया तथा क्रान्ति का विरोध करने वालों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। आतंक के शासन के दौरान हजारों व्यक्तियों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। 1794 ई. में दांतो द्वारा आतंक के राज्य को समाप्त करने का राब्सपीयर ने विरोध किया व दांतों को गिलोटिन पर चढ़ाकर सर्वशक्तिमान बन गया।

राब्सपीयर आतंक के शासन को अधिक समय तक कायम न रख सका, क्योंकि उसके अपने ही दल के लोग उससे भयभीत होने लगे। हर व्यक्ति को अपनी मौत का खतरा नजर आने लगा था, अतः धीरे-धीरे उसका विरोध होना प्रारम्भ हो गया। राब्सपीयर द्वारा नवीन धर्म लादने व क्रान्तिकारी न्यायालयों की स्थापना से राष्ट्रीय सम्मेलन के लोग भयभीत थे। अतः 26 जुलाई, 1794 ई. को राब्सपीयर को गिरफ्तार कर लिया गया व 8 जुलाई, 1974 ई. को उसे गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार राब्सपीयर का अन्त हो गया।

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास** (हिन्दी अनुवाद), पृ. 152।
2 **"That man will go far, he believes what he says."** —*Mirabeau*

राब्सपीयर की अनेक इतिहासकारों ने प्रशंसा की है। टामसन ने राब्सपीयर की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"फ्रांस के क्रान्तिकारी व्यक्तियों में राब्सपीयर सर्वाधिक स्मरणीय एवं प्रतीकात्मक है।"**[1] ग्रांट एण्ड टेम्परले ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, **"राब्सपीयर, निःसन्देह पेरिस में अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्तित्व था। यह उसका दुर्भाग्य था कि उसने फ्रांस के पुनर्गठन एवं पुनर्जीवन का कार्य ऐसे समय में करने का प्रयास किया जब फ्रांस में हिंसा एवं युद्ध का बातावरण था।"**[2] यद्यपि राब्सपीयर में अनेक गुण थे, तथापि उसमें अनेक दोष थे। उसने अपनी शक्ति का प्रयोग व्याकुल देश को शान्ति देने, घावों को भरने, क्रान्ति का कार्य पूरा करने के लिए नहीं किया, उसने रूसो के विचारों को कानून का रूप देने के लिए राष्ट्रों को बाध्य करने की चेष्टा की।[3] राब्सपीयर के विचार दो सनकी कार्यों से भी स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पहला कार्य **कलेण्डर में परिवर्तन** तथा दूसरा ईसाई धर्म के प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास करना। जनता ने इन दोनों कार्यों को स्वीकार नहीं किया। ग्रांड एण्ड टेम्परले ने लिखा है, **"उसके गुणों के समक्ष उसकी बुराइयों को हमें नहीं भुलाना चाहिए.......वह घमण्डी था तथा उसका अहंकार उसके दोस्तों द्वारा प्रशंसा किए जाने से और बढ़ गया था।"**[4]

विश्व पर फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव
(IMPACT OF FRENCH REVOLUTION ON THE WORLD)

1789 की इस क्रान्ति का प्रादुर्भाव यद्यपि फ्रांस में हुआ था, लेकिन उसने यूरोप के समस्त देशों को प्रभावित किया। इसका प्रभाव यूरोप में ही नहीं अपितु संसार के अधिकतर भागों पर छा गया, इसी कारण 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। फ्रांस की क्रान्ति के विश्वगामी प्रभावों को ध्यान में रखते हुए जान स्टीवार्ट ने लिखा है, **"फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम इतने दूरगामी हैं कि उनका साधारण मूल्यांकन करने पर भी फ्रांस का सम्पूर्ण इतिहास यूरोप के इतिहास में परिवर्तित हो जाता है।"**[5] इसने सम्पूर्ण विश्व को **स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, राष्ट्रीयता एवं लोकप्रिय शासन** की भावना की शिक्षा दी।[6] क्रान्ति की अपूर्व शक्तियां आज भी संसार भर के राष्ट्रों पर अप्रत्यक्ष रूप से

1 "Of all the great French revolutionary personalities Robespierre remains somehow the most memorable and most symbolic." —David Thomson, *op. cit.*, p. 18.

2 "Robespierre was without question an extremely popular figure in Paris. It was the tragedy of his life and the cause of his failure that the attempts which he made for the reconstitution and regeneration of France had to be made in an atmosphere of war and violence." —Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 449.

3 पार्थ सारथि पुप्ता (स.)—**यूरोप का इतिहास**, पृ. 46।

4 "His good qualities must not blind us to his obvious defects, he was vain, and his vanity was increased by the administration of his friends." —Grant and Temperley, *op. cit.*, p. 49

5 "The consequences of the French Revolution are so far-reaching that any satisfactory estimate of them would take the form of the entire history of France and Europe since 1789." —John H. Stewart, *The Documentary of the French Revolution*, p. 785.

6 "The blood they (The France) shed was for humanity the sufferings they endured were borne for the entire human race their struggles, the ideas they gave to the world, the shock of these ideas, are all included in the heritage of mankind. All have brone fruit and will bear more as we advance towards those wide horizons opening out before us where like some great Beacon to point the way, Flame the words Liberty, Equality and Fraternity." —*Prince Cropotkin.*

अपना प्रभाव डालकर उनका भाग्य निर्माण कर रही हैं। फ्रांस की क्रान्ति ने किसी न किसी रूप में समस्त विश्व को प्रभावित किया, लेकिन मुख्य रूप से कुछ देशों पर इसका प्रत्यक्ष एवं व्यापक प्रभाव पड़ा।

यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम
(GREEK WAR OF INDEPENDENCE)

फ्रांस की क्रान्ति ने विश्व को स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृ-भाव की भावनाएं प्रदान की थीं जिसके फलस्वरूप तुर्की साम्राज्य में भी ये भावनाएं जागृत हुईं और तुर्की के अधीन राज्य स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करने लगे। टर्की साम्राज्य में यूनानियों का बहुत बड़ा भाग था। ऐसा कहा जाता था कि देश में केवल दो ही जातियां हैं—तुर्की और यूनानी।[1] 1783 ई. में रूस ने टर्की के सुल्तान से एक सन्धि करके यूनानियों को विशेष व्यापारिक एवं सामुद्रिक अधिकार देने की सिफारिश की। टर्की के सुल्तान ने यूनानियों को अपना **यूनानी पुरातन धर्म** (Greek orthodox) का पालन करने का भी अधिकार दिया था। टर्की के सुल्तान द्वारा पेट्रीआर्क के माध्यम से ही यूनानियों से बातचीत की जाती थी।[2]

यूनान को प्रत्येक सुविधाएं प्राप्त होने पर भी वह स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करने लगा क्योंकि यूनान के ऊपर फ्रांसीसी क्रान्ति का बहुत प्रभाव पड़ा था जिससे यूनानियों में बौद्धिक जागृति उत्पन्न हो गयी। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति की स्वतन्त्रता एवं समानता की भावनाएं सम्पूर्ण यूरोप में फैल गयीं। इस भावना से प्रभावित होकर यूनान के स्वतन्त्र होने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ व्यापारियों ने मिलकर ओडेसा में **फिल्केहितारिया** नामक संस्था की स्थापना की।

स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ (पहला चरण 1821-1827) (Freedom Struggle begins)—इस स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व फिल्केहितारिया नामक संस्था ने किया। 1821 ई. में जेनिना के गवर्नर अलीपाशा ने स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह किया। इस विद्रोह का लाभ उठाकर सीलाण्टी के नेतृत्व में वलाशिया तथा मोल्डविया में भी विद्रोह हो गया। मैटरनिख के प्रभाव में आ जाने के कारण रूस ने यूनानियों को सहायता न दी जिससे वलाशिया एवं मोल्डविया की जनता को बहुत दुख हुआ और वहां के किसानों ने यूनानियों का साथ नहीं दिया। फलस्वरूप यह विद्रोह सफल न हो सका।

भीषण हत्याकाण्ड तथा यूनानियों के धर्माध्यक्ष की हत्या (Massive massaere)—अप्रैल, 1821 ई. में तुर्की का भीषण हत्याकाण्ड प्रारम्भ हुआ। केवल मोरिया में ही लगभग 25 हजार तुर्कों की हत्या कर दी गयी तथा मोरिया से तुर्कों का राज्य समाप्त कर दिया गया। तुर्कों ने भी इसका बदला लेने के लिए यूनानियों के धर्माध्यक्ष (कुस्तुन्तुनिया का पेट्रीआर्क) की हत्या कर दी तथा तीन आर्कबिशपों को फांसी पर लटका दिया।

इस विद्रोह का दमन करने के लिए तुर्की के सुल्तान ने मेहमत अली (मिस्र का गवर्नर) से सहायता ली। मेहमत अली ने अपने पुत्र इब्राहिम सहित 11 हजार सैनिक तुर्की की

1 "Superior class of Christians forming a counterpart of the Turcks." —*Illiot*
2 "A kind of under-secretary to the Grand Vizier for the affairs of the orthodox Christians." —*Finley*

सहायता के लिए भेजे। इस सेना की सहायता से तुर्की ने मोरिया के यूनानियों को बुरी तरह परास्त किया, जिससे यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम निर्बल हो गया।

संग्राम का द्वितीय चरण (1827-1829 ई.) (Second phase of the War)—1828 ई. से पूर्व की अवधि में यूनान ने अकेले ही स्वतन्त्रता संग्राम का संचालन किया था। इस अवधि में उसे किसी भी राष्ट्र द्वारा सहायता नहीं दी गयी, किन्तु 1827 ई. के पश्चात् परिस्थितियों में अचानक बदलाव आ गया। यूरोप के अनेक देशों द्वारा यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम में हस्तक्षेप किया गया।

नेवारिनो का भयंकर जल युद्ध (Battle of Navarino)—जिस समय मोराविया में इब्राहीम पाशा द्वारा भयंकर कत्लेआम किया जा रहा था उस समय तुर्की जहाजी बेड़ा नेवारिनो की खाड़ी में जमा हुआ था। मित्र राष्ट्रों द्वारा भी अपना जहाजी बेड़ा नेवारिनो भेजा गया। मित्र राष्ट्रों ने यह कार्य इब्राहीम को समझाने या डराने के लिए किया था, लेकिन तुर्कों ने गोली चला दी। इसलिए मित्र राष्ट्रों ने भी युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार 20 अक्टूबर, 1792 ई. को नेवारिनो का भयंकर जल युद्ध हुआ। इस युद्ध में तुर्की जहाजी बेड़ा पूर्णतया नष्ट हो गया।[1]

प्रोटोकल ऑफ लन्दन एक्ट (Protocal of London Act)—अन्ततः 1830 ई. में प्रोटोकल ऑफ लन्दन एक्ट तीन देशों—इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस द्वारा मिलकर पास किया गया। इसके अनुसार यूनान को स्वतन्त्रता दे दी गयी तथा मित्र राष्ट्रों ने उसकी रक्षा का आश्वासन भी दिया। इन तीनों राष्ट्रों द्वारा यूनान के विकास के लिए उसे 6 करोड़ फ्रेंक का ऋण देना भी स्वीकार किया गया।

यूनान के शासक की घोषणा (Declaration of the king of Greece)—इसके अतिरिक्त 1833 ई. में फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा रूस द्वारा बवेरिया के राजकुमार प्रिंस आटो को यूनान का शासक बनाया गया।

इस प्रकार यूनान ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की। यूनान की स्वतन्त्रता में फ्रांस की क्रान्ति ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, क्योंकि क्रान्ति के सिद्धान्तों से ही यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम को बल मिला।

फ्रांस की क्रान्ति का इटली पर प्रभाव
(IMPACT OF FRENCH REVOLUTION ON ITALY)

फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों में आपस में कोई संगठन नहीं था तथा कुछ राज्य विदेशियों के अधीन थे। इटली का अस्तित्व केवल भौगोलिक मात्र था। उसका राजनीतिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं था। इटली के सभी राज्यों में राजतन्त्र का बोलबाला था। किसी फ्रांसीसी दार्शनिक ने उचित ही कहा था कि **'इटली में विभिन्न सभ्यताओं के सात या आठ केन्द्र हैं।'** इसी समय यूरोप में उपनिवेशों के लिए दौड़ आरम्भ हो गयी, फ्रांस तथा आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्य इटली की दुर्बलता से लाभ उठाकर उसके राज्यों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए तत्पर थे। फ्रांस की क्रान्ति के स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के आधार पर इटली निवासियों में भी एक होने की भावना का संचार हुआ। इटली के एकीकरण में नेपोलियन की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी तथा नेपोलियन का

1 "The Turko-Egyptian fleet had disappeared, the bay of Navarino was covered with their wreck."

उदय फ्रांस की क्रान्ति का ही परिणाम था। प्रेसवर्ग की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन ने इटली पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था तथा उसका यह प्रभाव 8 वर्ष तक बना रहा। उसने इटली में अपने सम्बन्धियों तथा सेनापतियों को बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किया। इटली द्वारा नेपोलियन के युद्धों में सहायता की गयी। नेपोलियन ने आस्ट्रिया से वेनिस छीनकर उसे इटली में मिला दिया तथा टाइरोल को भी आस्ट्रिया से छीनकर उसे अपने मित्र बवेरिया को दे दिया। नेपोलियन के सेनापति मेसेना ने नेपिल्स को बूर्बां वंश के सम्राट फर्डिनेण्ड से छीन लिया तथा नेपोलियन द्वारा उसे अपने भाई जोसेफ को दे दिया गया। नेपोलियन ने रोम को पोप की कोई परवाह न करते हुए स्वयं को रोम का बादशाह घोषित कर दिया। उसके इन कार्यों ने इटली के एकीकरण में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता पहुंचाई। इसी प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से फ्रांस की क्रान्ति ने इटली में अपना प्रभाव छोड़ा तथा इटली के एकीकरण की भूमिका बनायी।

जर्मनी पर प्रभाव
(IMPACT ON GERMANY)

फ्रांस की क्रान्ति से पहले अर्थात् 18वीं शताब्दी में जर्मनी छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था तथा इसमें लगभग 360 राज्य थे, जिनमें किसी प्रकार की राजनीतिक एकता नहीं थी केवल जर्मनी के सभी राज्य **पवित्र रोमन सम्राट** के अधीन थे। इन राज्यों में सबसे शक्तिशाली राज्य प्रशा का था जो जर्मनी की राष्ट्रीयता का प्रतीक था। 18वीं शताब्दी में जर्मनी में अव्यवस्था व्याप्त थी उसके राज्यों में पारस्परिक वैमनस्यता थी। पवित्र रोमन साम्राज्य की आज्ञाओं का उल्लंघन साधारण बात थी।

फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् समस्त विश्व में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हुआ। राष्ट्रीयता की भावना ने जर्मनी को भी प्रभावित किया। इसने निरंकुश साम्राज्य की जड़ें उखाड़ दीं तथा फ्रांस में नेपोलियन का शासन स्थापित हो गया। नेपोलियन ने 1806 ई. में पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त कर दिया। नेपोलियन ने बाल्टेयर के इस कथन का पूर्णतया समर्थन किया था कि, "**पवित्र रोमन साम्राज्य न तो पवित्र है न रोमन है और न साम्राज्य है।**"[1] पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त करके नेपोलियन ने उस साम्राज्य के कुछ राज्यों को पृथक् करके अपने अधीन 'राईन के राज्य संघ' का निर्माण किया तथा स्वयं को इस संघ का संरक्षक घोषित किया। नेपोलियन ने यह भी तय किया कि प्रत्येक राज्य युद्ध के समय नेपोलियन की सहायता के लिए एक निश्चित संख्या में सैनिक देगा। नेपोलियन द्वारा पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त करने पर जर्मनवासियों ने राहत की सांस ली। नेपोलियन ने स्वयं भी उनमें राष्ट्रीयता की भावना भरने का प्रयास किया जिससे प्रेरित होकर जर्मन के राज्य स्वतन्त्रता हेतु प्रयास करने लगे। इस प्रकार नेपोलियन द्वारा जर्मनी के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की गयी।[2]

1 "Holy Roman Empire is neither Holy nor Roman nor Empire."
2 "It is one of the ironies of history that Napolean was the creator of Modern Germany. Directly by his constructive statesmanship and indirectly by the result which opposition to his rule arouse, he contributed to the Formation of a united Germany and laid the Foundation of the German Emprie."
—Lipson, *Europe in the 19th & 20th Centuries.*

इस प्रकार फ्रांस की क्रान्ति ने जर्मनी में राष्ट्रीयता का प्रसार करके उसके एकीकरण में सहायता पहुंचायी।

इंग्लैण्ड पर प्रभाव
(IMPACT ON ENGLAND)

फ्रांस की क्रान्ति द्वारा **'जब फ्रांस को जुकाम होता है तो सारा यूरोप छींकता है'**[1] नामक कहावत को चरितार्थ किया गया है। रैम्जे म्योर के शब्दों में, **"यह एक विश्व क्रान्ति थी जो मई 1789 ई. में हुई, न कि केवल फ्रांसीसी क्रान्ति।"**[2] फ्रांस की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव विश्व पर पड़ा तथा इंग्लैण्ड भी इसके प्रभाव से अछूता न रह सका।

प्रारम्भ में फ्रांस की क्रान्ति का इंग्लैण्ड में स्वागत किया गया वह जगह-जगह खुशियां मनायी गयीं। फ्राक्स ने कहा—'संसार के इतिहास में यह कितनी महान् घटना है और कितनी अच्छी।' इंग्लैण्ड की जनता यह विचार करके प्रसन्न थी कि फ्रांस में निरंकुश शासन की समाप्ति हो जाएगी।

फ्रांस की क्रान्ति के इंग्लैण्ड में विभिन्न क्षेत्रों पर हुए प्रभाव निम्नवत् थे—

(1) **कवियों के प्रभाव**—फ्रांस की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव इंग्लैण्ड के साहित्यकारों पर पड़ा। मनुष्य के अधिकारों का घोषणा-पत्र (Declaration of Rights of Man) युवा कवियों को प्रोत्साहित करने वाला था वर्ड्सवर्थ, कालरिज, सूथ, वर्नस शैले और वायरन ने उत्साहपूर्वक मानव मात्र की समानता पर बल देना प्रारम्भ किया। फ्रांस की क्रान्ति की प्रारम्भिक घटनाओं का समाचार सुनने पर वर्ड्सवर्थ ने प्रफुल्लित होकर कहा था—**"इस युग में रहना भाग्यशाली है और वह भी युवक के लिए तो स्वर्ग के समान है।"**[3]

(2) **लेखकों पर प्रभाव**—जहां जनता में आनन्द की भावना ओत-प्रोत होती प्रतीत हो रही थी वहां कुछ विचारक फ्रांस की क्रान्ति को मानव मात्र के लिए भयानक प्रमाणित कर रहे थे। इंग्लैण्ड का महान् विचारक बर्क क्रान्ति के भयानक परिणामों की भविष्यवाणी कर रहा था। उसने 1790 ई. में एक पुस्तक '*Reflection on French Revolution*' लिखकर प्रकाशित की। उसने इस पुस्तक में भविष्यवाणी की थी कि फ्रांस की क्रान्ति अपने पीछे भयानक रक्तपात लाएगी और सम्भव है कि फ्रांस में सैनिक शासन स्थापित हो जाए। बर्क की दोनों भविष्यवाणियां सत्य सिद्ध हुईं। 1792 ई. में फ्रांस ने न केवल राजतन्त्र को समाप्त किया, बल्कि राजा, रानी तथा राजवंश एवं उनके पक्षपातियों को भी मौत के घाट उतार दिया। इस आतंक के राज्य (Reign of Terror) के पश्चात् वहां नेपोलियन का सैनिक शासन स्थापित हुआ।

क्रान्ति के पक्षपातियों ने बर्क का विरोध किया और थामस पेन ने अपनी '*Right of Man*' लिखकर 1791 ई. में बर्क के तर्कों का खण्डन किया और क्रान्ति को एक शुभ सन्देश बताया। उसने इंग्लैण्ड की जनता से अपील की कि वह भी फ्रांस के समान अपनी पुरानी तथा भ्रष्ट राजनीतिक संस्थाओं को समाप्त कर दे और बिलकुल नयी संस्थाओं को जन्म दे। ये विचार बड़े क्रान्तिकारी थे और युवकों को उत्साहित करने वाले थे।

1 "When France catches cold, all Europe sneezes."
2 "It was a world revolution which began in May, 1789, and not merely a French Revolution." —Ramsay Muir
3 "Bliss it was in that age of live and to be young was very heaven." —Wordsworth

विलियम गोडविन (William Godwin) ने भी एक पुस्तक **'क्रान्तिकारी विचारधारा'** के सन्दर्भ में प्रकाशित की। उनकी पुस्तक का नाम **'राजनीतिक न्याय'** (Political Justice) था जो कठिन व दुरूह होने के कारण अधिक लोकप्रिय न हो सकी।

(3) **सुधारों के लिए चेतना**—फ्रांस की क्रान्ति ने इंग्लैण्ड की जनता में राजनीतिक चेतना को जन्म दिया। वे संसदीय सुधारों की मांग करने लगे। नवीन संस्थाएं स्थापित होने लगीं। जनता को संगठित कर एक समान विचारधारा अपनाने का प्रयास प्रारम्भ होने लगा। 1792 ई. में **'सोसायटी फार कान्स्टीट्यूशनल इन्फार्मेशन'** (Society for Constitutional Information) की स्थापना हुई। उसी वर्ष **'सोसायटी ऑफ फ्रेण्ड्स एण्ड दि पीपुल'** (Society of Frends and the People) की स्थापना हुई। इस सोसायटी के एक सदस्य, जिसका नाम ग्रे (Gray) था, ने 1832 ई. में अपने प्रधानमन्त्रित्व काल में **'रिफॉर्म एक्ट'** (Reform Act) पारित करवाया। इसी प्रकार थामस हार्डी ने कौरेस्पाण्डिंग सोसायटी (Corresponding Society) स्थापित की। इस सोसायटी की सदस्यता शीघ्र ही 10,000 हो गयी।

इन संस्थाओं द्वारा फ्रांस के जैकोबिन क्लब ऑफ पेरिस से पत्र-व्यवहार होने लगा। बधाई के सन्देशों का आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया। इन संस्थाओं को सरकार के विरुद्ध विद्रोह फैलाने का साधन समझा जाने लगा।

(4) **इंग्लैण्ड में क्रान्ति की प्रतिक्रिया**—फ्रांस की क्रान्ति के समय इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री छोटा पिट था। वह बर्क या पेन के विचारों को पढ़ता था, परन्तु दोनों के प्रभावों से दूर रहता था। वह शान्तिपूर्वक घटनाओं का अवलोकन कर रहा था यद्यपि वह भी सुधारक था, परन्तु समय देखकर कार्य करने वाला व्यक्ति था। जब फ्रांस के माराट (Marat) ने क्रान्तिकारी संसद में कहा—हमें सम्राटों की निरंकुश सत्ता को कुचलने के लिए स्वतन्त्रता की निरंकुश सत्ता स्थापित करनी चाहिए, तो पिट ने समझ लिया कि यह क्रान्ति फ्रांस तक ही सीमित नहीं है, यह तो विश्व के सम्राटों को चुनौती देती है। क्रान्तिकारियों ने नीदरलैण्ड पर आक्रमण कर दिया और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को समाप्त कर दिया। उसने शल्डिट (Scheldt) नदी को सब देशों के प्रयोग के लिए खोल दिया।

छोटे पिट को विवश होकर 1793 ई. में फ्रांस के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करना पड़ा और इंग्लैण्ड में भी दमन नीति से कार्य लेना पड़ा।

फ्रांस में हो रही घटनाओं ने इंग्लैण्ड की जनता को इतना भयभीत कर दिया कि वहां आतंक छा गया, तथा हिंसा का वातावरण फैलता प्रतीत होने लगा, कुछ लोगों ने बर्मिंघम में 'जोजफ प्रीस्टले' के मकान को घेर लिया और उसमें आग लगा दी। उसका समस्त वैज्ञानिक सामान फूंक दिया।

पिट ने संसद में **'ऐलियन एक्ट'** पास कराया। इस एक्ट का अर्थ विदेशियों की देख-रेख करना था। 1794 ई. में उसने 'हैबियस कॉरपस एक्ट' को स्थापित कर दिया। 1795 ई. में उसने विद्रोहियों को कुचलने के लिए सभा करने पर रोक लगा दी। प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया गया। 1799 ई. में मजदूरों को भी संगठन बनाने से रोक दिया गया। इस प्रकार फ्रांस की क्रान्ति ने इंग्लैण्ड की जनता की सारी स्वतन्त्रताएं समाप्त कर दी, परन्तु जनता ने उसका विशेष विरोध न किया क्योंकि जनता आतंक का राज्य पसन्द न करती थी और सुधारों को

शनैः-शनैः प्राप्त करना चाहती थी। **'फ्रांस की क्रान्ति के फलस्वरूप हुए रक्तपात ने इंग्लैण्डवासियों को क्रान्ति का विरोधी बना दिया।'**

रैम्जे म्योर के शब्दों में, **'फ्रांस की क्रान्ति का एक तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि इंग्लैण्ड में राजनीतिक सुधारों का समर्थन करने वाले आन्दोलन कुचल दिया गया और ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की अन्तिम कीमती और पीढ़ियों से चली आ रही तथा अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तु, भाषण और विचार की स्वतन्त्रता को कम कर दिया गया।'**

प्रश्न

1. फ्रांस की क्रान्ति का यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम पर हुए प्रभाव का वर्णन कीजिए।
2. फ्रांस की क्रान्ति इटली व जर्मनी के एकीकरण में किस प्रकार सहायक बनी? वर्णन कीजिए।
3. फ्रांस की क्रान्ति का इंग्लैण्ड पर हुए प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख नेताओं के कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. मिराबो के कार्यों का वर्णन कीजिए।
6. राब्सपीयर की विचारधारा एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

आस्ट्रिया का चार

8

प्रतिक्रियावादीं युग

[THE AGE OF REACTION]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1815 ई. से 1848 ई. तक के काल को इतिहासकारों ने **'प्रतिक्रियावादी युग'** अथवा **'मैटरनिख का युग'** कहा है क्योंकि इस काल में यूरोपीय राजनीति पर मैटरनिख छाया हुआ था। मैटरनिख ने पुरातन व्यवस्था को बनाएं रखने के लिए न केवल आस्ट्रिया में वरन् सम्पूर्ण यूरोप में निरन्तर प्रयत्न किए। इसी कारण उसकी नीति को 'प्रतिक्रियावादी नीति' तथा उसके काल को प्रतिक्रियावादी युग कहा गया।

मैटरनिख (1773 ई.-1859 ई.)
(METTERNICH)

नेपोलियन के पतन के उपरान्त यूरोप में एक महान् राजनीतिज्ञ का आविर्भाव हुआ, जिसका नाम मैटरनिख था। मैटरनिख लगभग 33 वर्षों तक यूरोप की राजनीति पर छाया रहा, इसी कारण 1815 ई. से 1848 ई. के समय को **'मैटरनिख का युग'** (Age of Matternich) कहा जाता है। हेजन ने लिखा है, **"उन्नीसवीं शताब्दी में जितने भी राजनीतिज्ञ हुए उनमें मैटरनिख सर्वाधिक प्रख्यात एवं प्रभावशाली था।"**[1] अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, वाक्‌पटुता एवं कूटनीतिक चातुर्य के कारण वह यूरोप के प्रमुख राजनीतिज्ञों में से एक बन सका। मैटरनिख में अत्यधिक आत्मविश्वास था तथा वह स्वयं को सर्वज्ञ समझते हुए कहा करता था, **"मेरा जन्म यूरोपीय समाज के पतनशील ढांचे को सहारा देने के लिए हुआ है।"**[2]

प्रारम्भिक जीवन (Early life)—मैटरनिख का पूरा नाम काउण्ट क्लीमेंस वान मैटरनिख (Count Clemens Von Metternich) था। उसका जन्म 15 मई, 1773 ई. को कौब्लेंज (Coblong) नामक नगर में हुआ। मैटरनिख के पिता आस्ट्रिया में राजनयिक सेवा में उच्च पद पर आसीन थे। मैटरनिख ने उच्च शिक्षा स्ट्रासबर्ग तथा मेज विश्वविद्यालयों में प्राप्त की तथा इसी समय उसने फ्रांस की क्रान्ति के विषय में सुना। जैकोबिन दल के कार्यों ने उसके

1 "He was the most famous statesman. He was the central figure not only in Austrian and German politics, but in European diplomacy."
—Hazen, *op. cit.*, p. 242.

2 "To prop up the decaying structure of Europe." —*Metternich*

हृदय में क्रान्ति विरोधी बीज बो दिये। 1795 ई. में मैटरनिख का विवाह आस्ट्रिया के चांसलर कानिज की पौत्री से हुआ। इस विवाह का उसके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा तथा उसकी प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि हुई। 1801 ई. से 1806 ई. के मध्य वह यूरोप के अनेक देशों में राजदूत के रूप में नियुक्त हुआ। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम ने 1809 ई. में उसे आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री (चांसलर) नियुक्त किया। मैटरनिख इस पद पर 1809 ई, से 1848 ई. तक कार्य करता रहा। 1809 ई. से 1815 ई. के मध्य मैटरनिख ने नेपोलियन की महत्वाकांक्षाओं से आस्ट्रिया की रक्षा की, किन्तु यूरोप पर उसका वास्तविक प्रभाव 1815 ई. से होना प्रारम्भ हुआ।

मैटरनिख की विचारधारा (Political Thinking of Metternich)—मैटरनिख परम्परावादी एवं पुरातन व्यवस्था का समर्थक था। सौभाग्य से उसका सम्राट फ्रांसिस प्रथम भी उसी के समान विचारधारा वाला था। फ्रांस की क्रान्ति के कारण यूरोप में उस समय '**स्वतन्त्रता, समानता, तथा भ्रातृत्व**' (Liberty, Equality and Fraternity) के विचार प्रबल होते जा रहे थे। **मैटरनिख इन सिद्धान्तों व क्रान्ति का घोर विरोधी था।**[1] मैटरनिख का विचार था कि ये विचार छूत के रोग के समान हैं, जिनका समय से इलाज करना आवश्यक था। मैटरनिख का विचार था कि प्रतिक्रियावादी नीतियों के द्वारा ही यूरोप में शान्ति बनाए रखी जा सकती थी। हेज ने लिखा है, "**इसी कारण 1815 ई. 1848 ई. तक उसने प्रतिक्रियावाद को आस्ट्रिया में तथा आस्ट्रिया को यूरोप में प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया।**" आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम का कहना था, "**शासन करो, किन्तु कोई परिवर्तन न करो।**" मैटरनिख भी इसी सिद्धान्त का समर्थक था तथा यूरोप में यथास्थिति (Status quo) बनाए रखना चाहता था। मैटरनिख का विचार था कि ऐसा निरंकुश राजतन्त्र के द्वारा ही सम्भव था, अतः वह सदैव प्रतिक्रियावादी नीतियों को अपनाता रहा तथा उनका समर्थन करता रहा।

मैटरनिख की गृह नीति
(HOME POLICY OF METTERNICH)

मध्यकाल से आस्ट्रिया साम्राज्य **हैप्सबर्ग** (Hapsburg) वंश के अधीन था। आस्ट्रिया साम्राज्य के अन्तर्गत आस्ट्रिया, हंगरी, बोहेमिया तथा इटली के कुछ भाग थे। आस्ट्रिया के इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक जातियां निवास करती थीं, जिनके धर्म, संस्कृति व भाषा अलग-अलग थे। इसी कारण आस्ट्रिया को विभिन्न जातियों का अजायबघर कहा जाता था। फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् इन जातियों में भी स्वतन्त्रता की भावनाएं प्रबल होने लगी थीं।

मैटरनिख ने गृह नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए थे—

(i) उदारवादी विचारों का दमन (Oppression of the Liberal Views)—मैटरनिख जानता था कि आस्ट्रिया साम्राज्य की रक्षा तब ही की जा सकती है जबकि वहां उदारवादी विचारों को फैलने से रोका जाए। अतः वह जीवनपर्यन्त उदार दलों के दमन तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं में लगा रहा। क्रान्ति का वह घोर विरोधी था। उसके विचार में क्रान्ति, "**एक रोग जिसका उपचार करना आवश्यक था, एक ज्वालामुखी जिसे बुझाना चाहिए, एक गन्दा फोड़ा**

1 "Democracy could only change the day light into darkest night." —*Metternich*

जिसे गर्म सलाखों से जला देना चाहिए तथा हाइड्रा जो समूची सामाजिक व्यवस्था को निगलने के लिए तैयार था।"[1] थी। उसने क्रान्तिकारी विचारों को कुचलने के लिए गुप्तचरों को आदेश दिया कि वे नवीनता एवं परिवर्तन के इच्छुक व्यक्तियों का पता लगाएं व उन्हें कठोर दण्ड प्रदान करें। जनता की भावनाएं दबाने के लिए प्रेस तथा भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीयता की चर्चा करने पर भी दण्ड दिया जाता था। पुस्तकों को भी छानबीन के पश्चात् पढ़ने के लिए दिया जाता था। बाहर से आने वाले साहित्य पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। प्रचार के सभी साधनों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया ताकि नवीन विचारों का आस्ट्रिया में आना रोका जा सके।

(ii) **पूर्वास्थिति बनाए रखना** (Maintained *status quo*)—आस्ट्रिया की सामाजिक व्यवस्था सामन्तवादी थी। ये विशाल भूखण्ड के स्वामी थे, जिन्हें अत्यधिक अधिकार थे। सामन्तों को अपनी जागीर में कर लगाने, न्याय करने व बेगार लेने का भी अधिकार था। इसके विपरीत किसानों की स्थिति अत्यन्त खराब थी। दिन-रात मेहनत करके उगायी गयी फसल का अधिकांश भाग सामन्तों के पास चला जाता था। अतः किसानों की स्थिति अत्यन्त खराब थी। औद्योगिक क्रान्ति के कारण अनेक मजदूर भी बेरोजगार हो गए थे। अतः मजदूरों की स्थिति भी अत्यन्त खराब थी। मैटरनिख ने उनकी दशा सुधारने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। इस कारण धनी प्रतिदिन धनी व गरीब और गरीब होने लगे। अतः असन्तोष बढ़ने लगा।

(iii) **कर-व्यवस्था** (Taxation)—मैटरनिख ने उचित कर-व्यवस्था की भी स्थापना नहीं की। अधिकांश करों का भार जनता को ही वहन करना पड़ा था। उसने सीमा शुल्क को भी बहुत बढ़ा दिया, जिससे व्यापार को हानि पहुंची।

गृह नीति के दोष (Defects of Home Policy)—मैटरनिख की नीति में अनेक दोष थे, जिसके कारण उसके विरुद्ध अत्यधिक जन असन्तोष आस्ट्रिया में उत्पन्न हो गया। मैटरनिख की नीतियों के कारण कृषि व व्यापार पर बहुत बुरा असर पड़ा। तमाम प्रतिबन्धों के पश्चात् भी विदेशों से क्रान्तिकारी साहित्य आस्ट्रिया में आता रहा व जनता को विद्रोह के लिए प्रेरित करता रहा।

मैटरनिख ने आस्ट्रिया की सम्पूर्ण शक्ति प्रजातन्त्र का दमन करने के लिए लगा दी, अतः आस्ट्रिया का राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विकास रुक गया व अन्य देशों के समान प्रगति न कर सका।

मैटरनिख की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF METTERNICH)

मैटरनिख एक योग्य राजनीतिज्ञ था। उसने नेपोलियन के पतन में विशेष भूमिका निभाई थी, इसलिए उसका प्रभाव यूरोप की राजनीति में प्रमुख हो गया था। इस प्रभाव को मैटरनिख ने निरन्तर बढ़ाया व 1815 ई. से 1848 ई. तक यूरोप की राजनीति को वह अपने इशारों पर नचाता रहा। सम्पूर्ण यूरोप उसके प्रभाव को मानता था। मैटरनिख की विदेश नीति का उद्देश्य यूरोप में शान्ति बनाए रखना व आस्ट्रिया के प्रभाव को बढ़ाना था। उसका

1 **"The disease which must be cured, the volcano which must be extinguished, the gangrene which must be burned out with the hot iron, the Hydra with jaws open to swallow up the social order."** —***Metternich***

विचार था कि यूरोप की रक्षा आस्ट्रिया ही कर सकता था, किन्तु ऐसा करने के लिए यूरोप के अन्य राज्यों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक था। ए. जे. पी. टेलर ने उसकी विचारधारा के विषय में लिखा है, **"मैटरनिख के विचार में यूरोप के लिए आस्ट्रिया आवश्यक था और आस्ट्रिया के लिए यूरोप आवश्यक था।"** इसी नीति पर उसने अपनी विदेश नीति को आधारित किया था।

मैटरनिख ने विदेश नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए थे—

(i) **मैटरनिख एवं नेपोलियन**—नेपोलियन की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं को रोकने के लिए मित्र-राष्ट्रों ने संयुक्त रूप से नेपोलियन का सामना किया था। मैटरनिख ने भी नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों में भाग लिया व से परास्त करने में प्रमुख भूमिका निभायी। इस प्रकार नेपोलियन के पतन के पश्चात् हुए विएना सम्मेलन में उसका महत्व बहुत बढ़ गया।

(ii) **मैटरनिख व विएना कांग्रेस**—नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप की पुनर्व्यवस्था करने के उद्देश्य से आस्ट्रिया की राजधानी विएना में मित्र राष्ट्रों का एक सम्मेलन 1815 ई. में हुआ। इस सम्मेलन में मैटरनिख ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। विएना कांग्रेस के लगभग सभी निर्णय उससे प्रभावित थे।

(iii) **मैटरनिख एवं यूरोप की संयुक्त व्यवस्था**—मैटरनिख यूरोप में शान्ति की स्थापना करना चाहता था। अतः यूरोप की समस्याओं का शान्तिपूर्ण समाधान करने के उद्देश्य से **संयुक्त व्यवस्था** (Concert of Europe) की स्थापना की, जिसके सदस्य इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, प्रशा व रूस थे। बाद में फ्रांस भी इसमें सम्मिलित हो गया। यह व्यवस्था 1815 ई. से 1825 ई. तक कार्य करती रही। बाद में पारस्परिक मतभेद के कारण यह व्यवस्था समाप्त हो गयी, किन्तु 1822 ई. तक इस पर पूर्णतया मैटरनिख का प्रभाव छाया रहा। इस व्यवस्था के कारण यूरोप में आगामी 40 वर्षों तक शान्ति स्थापित रही।

(iv) **मैटरनिख एवं जर्मनी**—विएना कांग्रेस ने जर्मनी में 39 राज्यों को एक संघ में परिणत कर दिया था, जिसका अध्यक्ष आस्ट्रिया के सम्राट को बनाया गया। जर्मनी में शीघ्र ही राष्ट्रवादी भावनाएं प्रबल होने लगीं। मैटरनिख इन भावनाओं को खतरनाक समझता था, अतः उसने इनको दबाने का प्रयास किया। जर्मनी में स्थान-स्थान पर विद्रोह व सभाएं होने लगीं। मैटरनिख ने इनका दमन करने के लिए **'एक्स-ला शापेल'** की कांग्रेस से अनुमति ले ली। इसी बीच 23 मार्च, 1819 ई. को जर्मनी में कात्सेबू (Kotezebue) नामक पत्रकार की हत्या हो गयी। इससे फायदा उठाकर मैटरनिख ने जर्मनी में **'कार्ल्सबाद आदेश'** (Carlsbad Decrees) की घोषणा की जिसके द्वारा विद्यार्थी आन्दोलनों, आमोद-प्रमोद की संस्थाओं, पत्रों आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सम्पूर्ण जर्मनी में कठोर नीतियों का पालन करके वहां शान्ति की स्थापना मैटरनिख ने की।

जर्मनी में राष्ट्रवादी भावनाओं को अधिक समय तक दबाया नहीं जा सका। 1830 ई. की क्रान्ति के पश्चात् जर्मनी में क्रान्तिकारी विचार पुनः प्रबल हो उठे। मैटरनिख ने पुनः 'कार्स के आदेशों' को लागू किया, किन्तु फिर भी इन विचारों का दमन करना कठिन हो गया। तत्कालीन साहित्यकारों ने भी इस विचारों को प्रबल बनाने में सहयोग दिया।

जर्मनी में 1818 ई. में **जोलावरीन** (Zollaverin) नामक आर्थिक संघ की स्थापना हुई थी। इस संघ के जर्मनी के सभी राज्य सदस्य बन गए। इससे व्यापार में बहुत उन्नति हुई।

इस संघ की योजना के द्वारा सभी राज्यों को एक-दूसरे के साथ मुक्त व्यापार करना था। इस योजना से शीघ्र ही सभी राज्य आर्थिक रूप से सम्पन्न हो गए। प्रो. चौहान ने लिखा है, **"इस आर्थिक संघ ने जर्मनी में मैटरनिख के उद्देश्य विफल कर दिए और प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया।"**

मैटरनिख और इटली—नेपोलियन ने इटली का आंशिक रूप से एकीकरण (Unification) किया था। 1815 ई. में हुई विएना कांग्रेस ने इटली को पुनः अनेक राज्यों में विभक्त कर दिया। इटली के लोम्बार्डी व वेनेशिया राज्य पर आस्ट्रिया का अधिकार हो गया। शेष इटली पर भी आस्ट्रिया का प्रभाव था। मैटरनिख के प्रयत्नों से सम्पूर्ण इटली में निरंकुश शासन की स्थापना हो गयी व जनता करों के बोझ से दबने लगी। नेपिल्स व पीडमाण्ट ने इस निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु मैटरनिख ने कठोरता से इसका दमन कर दिया। 1830 ई. में फ्रांस में हुई क्रान्ति से प्रेरित होकर माडेना ने विद्रोह कर दिया, किन्तु वहां भी विद्रोह को दबा दिया गया। 1830 ई. के पश्चात् मैजिनी के नेतृत्व में **'यंग इटली'** नामक संस्था ने इटली को संगठित करने व स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया, किन्तु फिर भी आस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त न हो सका।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मैटरनिख ने सम्पूर्ण यूरोप पर अपना प्रभाव बनाए रखा तथा अपनी नीतियों से उसने आस्ट्रिया को यूरोप के प्रमुख देशों में से एक बनाया।

मैटरनिख का पतन
(DOWNFALL OF METTERNICH)

1848 ई. में फ्रांस में क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के प्रभाव से मैटरनिख न बच सका। आस्ट्रिया की जनता मैटरनिख के प्रतिक्रियावादी शासन से ऊब चुकी थी। 1848 ई. की क्रान्ति ने उसमें उत्साह की नयी लहर उत्पन्न की। हंगरी व कौसुथ (Kossuch) नामक नेता ने उत्तेजक भाषण दिया व उसकी प्रतियां सर्वत्र बंटवायी। उसके भाषण से जनता भड़क उठी तथा 13 मार्च, 1848 ई. को उन्होंने मैटरनिख तथा सम्राट के महलों को घेर लिया। जनता ने **'मैटरनिख मुर्दाबाद'** (Down with Metternich) के नारे लगाए। मैटरनिख त्यागपत्र देकर आस्ट्रिया छोड़कर भागने पर विवश हुआ। इस प्रकार उसकी निरंकुश नीतियों का अन्त हो गया। एलीसन फिलिप्स ने **'माडर्न यूरोप'** में लिखा है, **"जिस प्रकार 1789 ई. में बास्तील के पतन का एक नवीन युग के उदय के प्रतीक के समान स्वागत हुआ था, उसी प्रकार 1848 ई. के मैटरनिख के पतन का स्वतन्त्रता विरोधी शक्तियों के गुट के पतन की तरह स्वागत हुआ।"**

मैटरनिख का मूल्यांकन
(EVALUATION OF METTERNICH)

मैटरनिख निःसन्देह एक योग्य नेता था। 1809 ई. में आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री बनने के पश्चात् उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी योग्यता प्रमाणित करने का अवसर मिला। मैटरनिख ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा 1815 ई. से 1848 ई. तक वह यूरोप की राजनीति पर छाया रहा। इस युग में सम्पूर्ण यूरोप उसके प्रभाव में था तथा आस्ट्रिया के राजनीतिक महत्व में असाधारण वृद्धि हुई थी। मैटरनिख का प्रमुख उद्देश्य यूरोप में शान्ति बनाए रखना था, जिसमें वह सफल रहा। लिप्सन ने उसके इस कार्य की प्रशंसा करते हुए

लिखा है, **"अपने दीर्घ कार्यकाल में उसने यूरोप की शान्ति बनाए रखने का यथासम्भव प्रयास किया। नेपोलियन के युद्धों से रक्तरंजित यूरोप को ऐसा विश्राम व शान्ति प्रदान की जिसकी उस समय बहुत आवश्यकता थी।"**

मैटरनिख का सबसे बड़ा दोष यह था कि वह समय के अनुकूल न चल सका। वह स्वयं भी कहा करता था **"मैं विश्व में या तो बहुत पहले आया हूं या बहुत बाद में।"**[1] मैटरनिख की विचारधारा प्रतिक्रियावादी थी तथा इस विचारधारा को उसने न केवल आस्ट्रिया पर अपितु सम्पूर्ण विश्व पर उसे लादने का प्रयास किया। मैटरनिख उदारवादी तथा नवीन विचारों का घोर विरोधी था। इसी कारण अनेक विद्वानों ने उसकी कटु आलोचना की है। यहां तक की उसने मैटरनिख के सहयोगी गैंज (Gentz) ने लिखा है, **'यदि मुझे 15 वर्षों का इतिहास लिखना पड़े तो उसमें मैटरनिख की आलोचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।'** तालीरां ने भी उसकी आलोचना की है। तालीरां (Talleyrand) के शब्दों में, **"मैटरनिख सत्य और सम्मान की उपेक्षा करके सदैव अपनी नीति तथा उद्देश्य बदलने वाला अवसरवादी था।"**

किन्तु, मैटरनिख की आलोचना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आस्ट्रिया के **प्रधानमन्त्री** के रूप में उसे कठोर नीति अपनाना आवश्यक था क्योंकि आस्ट्रिया में विभिन्न जातियों, धर्मों व राज्यों के लोग रहते थे। उदारवादी अथवा क्रान्तिकारी विचारों के फैलने पर आस्ट्रिया के साम्राज्य को एक सूत्र में बांध कर रखना कठिन हो जाता। अतः मैटरनिख प्रतिक्रियावादी नीति का पालन करने के लिए विवश था। इसी मत का समर्थन करते हुए नेमियर ने 'वेनिश्ड सुप्रीमेसीज' में लिखा है, **"मैटरनिख वास्तव में इतना प्रतिक्रियावादी नहीं था, जितना उसे सामान्यतया प्रदर्शित किया जाता है। वह इतना बुद्धिमान, सतर्क और सन्तुलित था कि वह पूर्ण रूप से प्रतिक्रियावादी हो ही नहीं सकता था।"** केटलबी ने मैटरनिख की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"विएना के भंवर जाल में वह मछली के समान तैर सकता था।"**[2]

विएना कांग्रेस
(VIENNA CONGRESS)

1815 ई. में वाटरलू के युद्ध (Battle of Waterloo) में मित्र-राष्ट्रों ने 'क्रान्ति के पुत्र' (Son of the Revolution) नेपोलियन को पराजित कर उसे सेंट हेलेना (St. Helena) के निर्जन टापू पर भेज दिया। नेपोलियन के पतन के साथ ही फ्रांस में क्रान्ति के युग की भी समाप्ति हो गयी।[3] नेपोलियन ने अपनी विजयों के द्वारा यूरोप के मानचित्र में जो परिवर्तन कर दिए थे, उसका पुनर्निर्माण करने के लिए आस्ट्रिया की राजधानी विएना में यूरोप के प्रमुख राजनीतिक एकत्र हुए। इस सम्मेलन को **'विएना कांग्रेस'** कहा जाता है। **इस सम्मेलन के लिए विएना को चुनने का कारण यह था कि यह महाद्वीप के मध्य में था। इसके अतिरिक्त यह नेपोलियन के युद्धों का भी केन्द्र रहा था तथा नेपोलियन की पराजय में आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटरनिख (Metternich) का प्रमुख हाथ रहा था। फर्गूसन तथा ब्रून ने कांग्रेस का स्थान विएना चुनने के लिए एक अन्य कारण भी बताया है।** उन्होंने लिखा है कि प्रतिक्रियावादियों के सम्मेलन

1 "I have come into the world either too early or too late." —*Matternich*

2 "He could swim like a fiah in the sparkling whirlpool of Vienna."
—Ketelbey, *History of Modern Times*, p. 147.

3 "The overthrow of Napoleon brought the revolutionary era to a close."
—Ferguson and Bruun, *A Survey of European Civilization*, p. 615.

के लिए यूरोप के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी राष्ट्र (आस्ट्रिया) की राजधानी विएना को सम्मेलन स्थल बनाना स्वाभाविक एवं उचित ही था।[1]

विएना कांग्रेस के प्रमुख प्रतिनिधि
(PROMINENT PARTICIPANTS OF VIENNA CONGRESS)

विएना कांग्रेस सितम्बर, 1814 ई. में प्रारम्भ हुई, किन्तु इससे पूर्व कि इसमें कुछ निर्णय लिए जाते, नेपोलियन एल्बा द्वीप से भाग निकलने में सफल हो गया। अतः कुछ समय के लिए इस कांग्रेस को स्थगित करना पड़ा। यह कांग्रेस पुनः नवम्बर 1814 ई. में प्रारम्भ हुई तथा नेपोलियन के वाटरलू के युद्ध में परास्त होने (18 जून, 1815 ई.) के कुछ दिन पूर्व ही (9 जून, 1815 ई. को) इस कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने अन्तिम निर्णयों पर हस्ताक्षर किए।

विएना कांग्रेस में कुल 90 बड़े महाराजा तथा 63 राजा या उनके प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। **टर्की के अतिरिक्त यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित हुए थे। यूरोप के इतिहास में पहली बार इतना विशाल सम्मेलन का आयोजन हुआ।** यद्यपि विएना कांग्रेस में विशाल संख्या में प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, किन्तु **चार महाशक्तियों** (इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया व प्रशा) को इस कांग्रेस में विशेष स्थान प्राप्त था तथा इस कांग्रेस के निर्णय भी मुख्यतया इनके प्रतिनिधियों द्वारा ही निर्धारित किए गए थे। **विएना कांग्रेस में भाग लेने वाले प्रमुख देश एवं उनके प्रतिनिधि निम्नलिखित थे :**

1. **आस्ट्रिया**—विएना कांग्रेस में आस्ट्रिया का प्रतिनिधि **मैटरनिख** था, जो इस कांग्रेस में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में निःसन्देह सर्वोपरि एवं असाधारण व्यक्तित्व का स्वामी था। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम (1792-1835 A. D.) ने 1809 ई. में मैटरनिख को आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री (Chancellor) नियुक्त किया था। 1809 ई. से 1848 ई. तक मैटरनिख यूरोप की राजनीति पर छाया रहा। यही कारण है कि इस काल को **'मैटरनिख का युग'** (Age of Metternich) कहा जाता है। इसी कारण उसे विएना कांग्रेस का अध्यक्ष भी बनाया गया था।

विएना कांग्रेस में मैटरनिख का प्रमुख उद्देश्य आस्ट्रिया के हितों की रक्षा करना था। मैटरनिख एक **प्रतिक्रियावादी** (Reactionary) व्यक्ति था, तथा वह इस बात से अच्छी तरह परिचित था कि आस्ट्रिया ऐसे राज्यों का समूह था जिनको निरंकुश शक्ति के द्वारा ही अक्षुण्ण रखा जा सकता था। इसी कारण वह **स्वतन्त्रता व समानता** (Liberty and Equality) के सिद्धान्तों का घोर विरोधी था।[3] वह जानता था कि यदि इन सिद्धान्तों को दबाया नहीं गया

---

1 "The choice of Viena as the seat of the peace conferences was a tacit recognition of this revival in Austrian prestige, for it second natural and fitting that a congress of reactionaries should choose for their sessions the capital of the most reactionary state in Europe." —Ferguson and Bruun, *Ibid.*, p. 616.

2 "Liberty and equality, he recognized as submersive and disintegrating ideas which might have destroyed the Austrian Empire if they had not been checked." —*Metternich*

3 "Hold to the Old, for it is good. Our ancestors found it to be good so why should not we." —*Metternich*

तो आस्ट्रिया साम्राज्य को खतरा उत्पन्न हो सकता है। **उसका विचार था कि पुरातन व्यवस्था ही उचित थी तथा उसी को अपनाना आवश्यक था।**[1] **उसके अनुसार लोकतन्त्र दिन के प्रकाश को रात्रि के अन्धकार में बदल सकता है,**[2] अतः राजतन्त्रात्मक पद्धति को अपनाना आवश्यक है। 'क्रान्ति' शब्द से ही उसे घृणा थी। उसका कहना था, **"यह (क्रान्ति) एक रोग है जिसका उपचार होना चाहिए, एक ज्वालामुखी है, जिसको बुझाना आवश्यक है, एक प्रकार का गलाव है जिसे लोहे की गर्म सलाखों से जला दिया जाए, एक अनेक फनों वाला सर्प है, जो सामाजिक व्यवस्था को निगल जाने के लिए मुंह फैलाए हुए हैं।"**[3] वह घोर निरंकुशता में विश्वास रखता था।[4]

विएना कांग्रेस पर भी मैटरनिख छाया रहा तथा इस कांग्रेस के सभी निर्णय उससे प्रभावित थे। यही कारण था कि इस कांग्रेस के निर्णय प्रतिक्रियावादी थे।[5]

2. **रूस**—विएना कांग्रेस में रूस का प्रतिनिधि **जार एलेक्जेण्डर प्रथम** (Tsar Alexander I) था। एलेक्जेण्डर प्रथम शक्तिशाली शासक था, किन्तु उसमें मैटरनिख के समान राजनीतिक एवं कूटनीतिक गुण न थे। नेपोलियन को परास्त करने में उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, इसी कारणवश उसे इस कांग्रेस में आमन्त्रित किया गया था। केटलबी ने लिखा है कि **एलेक्जेण्डर प्रथम एक कल्पनाशील, अस्थिर, अभिमानी, सरलता से प्रभावित होने वाला तथा अव्यावहारिक व्यक्ति था।**[5] मैटरनिख उसे एक पागल व्यक्ति समझता था, किन्तु उसके विचारों की आसानी से अवहेलना नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वह एक शक्तिशाली शासक था। इंग्लैण्ड व आस्ट्रिया भी उसकी बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत थे।

3. **प्रशा**—विएना कांग्रेस में प्रशा का प्रतिनिधि हार्डेनबर्ग था। हार्डेनबर्ग राष्ट्रवाद एवं सैनिकवाद में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। अपने देश को शक्तिशाली बनाना उसका प्रमुख उद्देश्य था।

4. **इंग्लैण्ड**—इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में वहां का विदेशमन्त्री कैसलरे (Castlereagh) विएना आया था। कैसलरे एक योग्य व्यक्ति एवं कुशल राजनीतिज्ञ था। इंग्लैण्ड ने नेपोलियन को परास्त करने में सर्वप्रमुख भूमिका निभाई थी, अतः इस कांग्रेस में इंग्लैण्ड का विशेष स्थान था। नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों में इंग्लैण्ड ने मित्र राष्ट्रों के लिए साहूकार (Banker) का कार्य किया था तथा इन युद्धों से इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति डावांडोल हो गयी थी। राष्ट्रीय ऋण पहले से चार गुना हो गया था। अतः कैसलरे को इस कांग्रेस में अपने देश के राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही पक्षों को देखना था तथा अपने उद्देश्य में कैसलरे सफल भी हुआ। राजनीतिक रूप से इंग्लैण्ड शक्ति-सन्तुलन बनाए रखना चाहता था, ताकि यूरोप में शान्ति की स्थापना की जा सके। **मैटरनिख के पश्चात् इस कांग्रेस में कैसलरे दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति था।**

1 "Democracy could only change day light into darkest night." —*Metternich*
2 "It (Revolutoin) was a disease which must be cured, the volcano which must be burned out with the hot iron, the hydra with jaws open to swallow up the social order." —*Metternich*
3 "He believed in absolute monarchy." —Hazen, *op. cit.*, p. 248.
4 "Restoration of the status quo antibellum was therefore the ostensible order of the day in Vienna." —Carrie, *A Diplomatic History of Europe*, p. 9.
5 "By nature Alexander was unstable, impressionable, well intentioned, but infirm of purpose, a susceptible, imaginative egoist, an unpractical, inconsistent idealist." —Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 149.

5. **फ्रांस**—फ्रांस की ओर से प्रतिनिधित्व तालीरां (Telleyrand) ने किया। तालीरां नेपोलियन के अधीन 1797 ई. से 1807 ई. तक फ्रांस का विदेशमन्त्री रहा था, किन्तु स्पेन एवं पुर्तगाल पर नेपोलियन द्वारा आक्रमण की योजना का विरोध करने के कारण उसमें तथा नेपोलियन में तनाव उत्पन्न हो गया। नेपोलियन के शब्दों में, "**वह रेशमी कपड़ों में लिपटा हुआ गोबर का टुकड़ा था।**"[1] अतः तालीरां मित्र राष्ट्रों से मिल गया। तालीरां अत्यन्त अनुभवी राजनीतिज्ञ था, उसी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप फ्रांस को इस कांग्रेस की चार महाशक्तियों के साथ स्थान मिला तथा उसके '**वैधता के सिद्धान्त**' (Principle of Legitimacy) के प्रस्ताव को भी मान लिया गया। इस प्रकार यूरोपीय राजनीति में तालीरां ने फ्रांस को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया।

विएना कांग्रेस के सम्मुख प्रमुख समस्याएं
(MAIN PROBLEMS BEFORE THE VIENNA CONGRESS)

विएना कांग्रेस के सम्मुख निम्नलिखित प्रमुख समस्याएं थीं :

(i) **शान्ति की स्थापना**—नेपोलियन के विरुद्ध संघर्ष के समय मित्र-राष्ट्रों ने उसे शान्ति एवं मानवता का शत्रु घोषित किया था। उसके विरुद्ध युद्धों से हुए रक्तपात एवं जनसंकट की सम्पूर्ण जिम्मेदारी नेपोलियन पर ही डाली थी। मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि वे अत्याचार एवं सामाजिक अन्याय के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे, अतः नेपोलियन के पतन के पश्चात् जनसाधारण यह अपेक्षा कर रहा था कि विएना कांग्रेस के द्वारा न केवल अन्तर्यूरोपीय शान्ति की स्थापना की जाएगी, वरन् यह एक शान्ति एवं सद्भावनापूर्ण विश्व की आधारशिला रखने में भी सफल होगी। अतः विएना कांग्रेस के समक्ष सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण कार्य यूरोप में स्थायी शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करना था।

(ii) **पराजित राजाओं को दण्डित करना**—मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध जिन देशों ने नेपोलियन को सहायता दी थी, उन्हें किस प्रकार दण्डित किया जाए, यह इसी कांग्रेस के द्वारा निर्धारित किया जाना था।

(iii) **यूरोप का पुनर्निर्माण—नेपोलियन ने अपनी सैनिक विजयों के द्वारा यूरोप के मानचित्र को ही बदल दिया था।** उसने अनेक राज्यों को विजित कर फ्रांस के अधीन कर दिया था। अतः विएना कांग्रेस के समक्ष यह प्रश्न था कि ऐसे राज्यों का क्या किया जाए तथा यूरोप का पुनर्निर्माण किस प्रकार किया जाए।

(iv) **फ्रांस की शक्ति पर अंकुश लगाना**—नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों में मित्र राष्ट्रों को अपार जन-धन की हानि को सहना पड़ा था। अतः उनके लिए आवश्यक था कि वे कुछ ऐसी व्यवस्था करें, जिससे भविष्य में फ्रांस पुनः अन्य यूरोपीय राज्यों के लिए खतरा न बन सके।

(v) **चर्च की समस्या**—विएना कांग्रेस के समक्ष एक धार्मिक समस्या थी। नेपोलियन तथा कुछ अन्य देशों के नेताओं ने गिरजाघरों की भूमि को किसानों को बेच दिया था तथा चर्च को राजकीय संस्था (Government Institution) घोषित कर दिया था। इस प्रकार चर्च की सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य के अधीन हो गयी थी। प्रतिक्रियावादी शासक, नेपोलियन के पश्चात्, चर्च तथा उससे सम्बन्धित संस्थाओं की पुनर्स्थापना करना चाहते थे।

1 "A piece of dung in a silk stocking."

(vi) **क्रान्ति की समस्या**—फ्रांस की क्रान्ति ने यूरोप को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया था। इस क्रान्ति ने अपने **स्वतन्त्रता** (Liberty), **समानता** (Equality) तथा **भ्रातृत्व** (Fraternity) की भावनाओं को विश्वव्यापी बना दिया था। अनेक देशों के लोग इन भावनाओं से प्रभावित होकर अपने-अपने देशों में जनतन्त्रात्मक शासन-पद्धति की स्थापना करना चाहते थे। विएना कांग्रेस के प्रतिनिधि प्रमुखतया प्रतिक्रियावादी होने के नाते ऐसा नहीं होने देना चाहते थे। अतः उनके समक्ष यह भी समस्या थी कि किस प्रकार स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व की भावनाओं को फैलने से रोकें तथा अन्य देशों में क्रान्ति की सम्भावनाओं को क्षीण करें। इस प्रकार क्रान्तिकारी और प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों के संघर्ष का फैसला करना विएना कांग्रेस के लिए एक दर्द था।[1]

(vii) **विजित प्रदेशों का बंटवारा**—नेपोलियन को परास्त करने में मित्रराष्ट्रों ने अत्यधिक संघर्ष किया था तथा अपार जन-धन की हानि को सहा था। अतः इस कांग्रेस में उपस्थित मित्रराष्ट्रों में से प्रत्येक का प्रतिनिधि विजित प्रदेशों में से अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहता था। अतः मित्रराष्ट्रों में जीते हुए प्रदेशों को विभाजित भी इसी कांग्रेस में होना था।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त समस्याओं का हल ढूंढने के उद्देश्य से यह कांग्रेस नवम्बर 1814 ई. में प्रारम्भ हुई।

विएना कांग्रेस की कार्य-प्रणाली
(WORKING OF THE CONGRESS)

विएना कांग्रेस के कार्य करने की कोई ठोस एवं निश्चित प्रणाली नहीं थी। प्रारम्भ में चार प्रमुख राष्ट्र—इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया और प्रशा—अपने हितों को प्राप्त करने के लिए कांग्रेस को अपनी इच्छानुसार संचालित करना चाहते थे, किन्तु फ्रांस के प्रतिनिधि तालीरां ने उनकी इस कार्य-पद्धति को चुनौती दी तथा उन्हें आठ राज्यों की समिति बनाने के लिए विवश किया। ये आठ राज्य—इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा स्वीडन थे। **जनवरी 1815 ई. में फ्रांस को भी पांचवां राज्य मान लिया गया।** विशिष्ट समस्याओं पर विचार करने के लिए 10 उपसमितियों की भी घोषणा की गयी। इन समितियों के बन जाने के पश्चात् भी इस कांग्रेस पर पांच बड़े राज्यों (Big Five) का ही प्रभुत्व बना रहा।[3]

इसके अतिरिक्त इस कांग्रेस में किसी भी विषय पर निर्णय लेने का कोई निश्चित तरीका नहीं था। **न तो कोई प्रस्ताव पारित होते थे और न ही वोट आदि देने जैसी कोई व्यवस्था थी। नाच घरों तथा बड़ी-बड़ी दावतों में राज्य की सीमाओं का निर्धारण हो जाता था। गम्भीर राजनीतिक समस्याएं संगीत सम्मेलनों में तय हो जाती थीं।** किसी प्रतिनिधि ने मजाक में कोई बात कही, वह दूसरों को अच्छी लगी तो उसे मान लिया जाता था। इस प्रकार वास्तविक

1 **मथुरालाल शर्मा—यूरोप का इतिहास**, पृ. 7।

2 "The real purpose of the Congress was to divide amongst the conquerors the soils taken from the vanquished." —*Gentz*

3 "The Congress of Vienna by its procedure set the seal upon the principle that the settlement of the affairs of Europe appertained to the Great Powers, and that the other states had merely to decide whether they would accede to such settlement or not." —*Cambridge Modern History*, Vol. IX, p. 652.

कांग्रेस जिस प्रकार होती है, उसका एक प्रकार से मजाक उड़ाया गया। यही कारण है कि हेज ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है, "**विएना कांग्रेस वास्तव में कोई कांग्रेस नहीं थी।**"[1] डॉ. विमल चन्द्र पाण्डे ने लिखा है कि इसका अर्थ यह हुआ कि इस कांग्रेस में जो निर्णय हुए थे, वे उस कांग्रेस के पूर्व ही गुप्त अथवा खुले रूप से तय कर लिए गए थे। **विएना कांग्रेस ने तो केवल पंजीकरण** (Registration) **का कार्य किया।** इसमें कूटनीतिज्ञों का दोष नहीं था। यह तो उन्हें विवशतावश करना पड़ा था, क्योंकि पूर्व सन्धियों एवं गुप्त सन्धियों के कारण उनके हाथ बंधे थे।

विएना कांग्रेस के प्रमुख सिद्धान्त
(MAIN PRINCIPLES OF VIENNA CONGRESS)

विएना कांग्रेस में पांच महाशक्तियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः इस कांग्रेस में हुए निर्णय भी उन्हीं के हितों को ध्यान में रखकर लिए गए थे। विएना कांग्रेस में लिए गए निर्णय तीन प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित थे, जिनका पांच महाशक्तियों ने स्वेच्छा से पालन किया था क्योंकि इन सिद्धान्तों से सर्वाधिक लाभ इन्हीं शक्तियों को होना था।

विएना कांग्रेस के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित थे :

(i) **न्यायोचित राजवंश का सिद्धान्त** (Principle of Legitimacy)—विएना कांग्रेस में फ्रांस का प्रतिनिधि तालीरां फ्रांस में **बूर्बा वंश** (Bourbon Dynasty) को प्रतिस्थापित करना चाहता था, अतः उसने न्यायोचित राजवंश के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार यूरोप के उन देशों के वे पुराने राजवंश जो फ्रांस की क्रान्ति अथवा नेपोलियन की विजयों द्वारा अपदस्थ कर दिए गए थे, पुनः राजगद्दी पर आसीन किए गए। **इस सिद्धान्त के कारण फ्रांस में बूर्बा वंश की पुनर्स्थापना हो गयी।**

(ii) **शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त** (Principle of Balance of Power)—यूरोप के राष्ट्र नेपोलियन के विरुद्ध निरन्तर युद्धों से तंग आ गए थे, अतः वे यूरोप में ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे, जिससे स्थायी शान्ति की स्थापना हो सके। यूरोप के राजनीतिज्ञों, विशेषकर इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि कैसलरे का विचार था कि ऐसा तभी सम्भव था, जबकि शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त का पालन किया जाए। **इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी देश को इतना शक्तिशाली होने से रोकना था कि वह अन्य देशों के लिए खतरा बन जाए।** फ्रांस पिछले 25 वर्षों तक यूरोप के अन्य देशों के लिए खतरा बना रहा था, अतः विएना कांग्रेस में शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त के द्वारा उसे चारों ओर से शक्तिशाली राष्ट्रों से घेर दिया गया।

(iii) **पुरस्कार एवं दण्ड का सिद्धान्त** (Principle of Rewards and Punishments)—यूरोप के जिन मित्र-राष्ट्रों ने नेपोलियन का सामना किया था, उन्हें अपार हानि का सामना करना पड़ा था, अतः वे राष्ट्र युद्धों में हुई क्षति की पूर्ति करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त मित्र-राष्ट्रों को सहायता करने वाले देशों को पुरस्कार देना तथा नेपोलियन का साथ देने वाले देशों को दण्डित करना भी विएना कांग्रेस में आवश्यक समझा गया था। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत इसी बात का पालन किया गया था। उदाहरणार्थ, डेनमार्क, जिसने नेपोलियन की सहायता की थी, से नार्वे छीनकर स्वीडन को दे दिया गया, क्योंकि स्वीडन मित्र-राष्ट्रों के साथ रहा था।

1 *Modern Europe*, p. 587.

विएना कांग्रेस द्वारा यूरोप का पुनर्निर्माण
(RECONSTRUCTION OF EUROPE BY VIENNA CONGRESS)

नेपोलियन द्वारा अस्त-व्यस्त कर दिए गए यूरोप की पुनर्व्यवस्था करने हेतु ही विएना कांग्रेस में ऊपर वर्णित तीन प्रमुख सिद्धान्तों का पालन करते हुए अनेक निर्णय लिए गए, जिन्होंने यूरोप के मानचित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। **विएना कांग्रेस के निर्णयों से यूरोप के प्रत्येक देश में हुए परिवर्तनों का वर्णन निम्नलिखित है :**

1. **फ्रांस**—रूस तथा प्रशा फ्रांस को पूर्ण रूप से कुचलने के पक्ष में थे, किन्तु इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि इसके विरुद्ध था। कैसलरे का कहना था, "**हमारा उद्देश्य दूसरे देशों से बड़े-बड़े उपहार या भेंट एकत्र करना नहीं है, बल्कि हम यह चाहते हैं कि सारे संसार में सुख-शान्ति की स्थापना हो जाए।**" अतः फ्रांस के प्रति भी बहुत कठोर रुख नहीं अपनाया गया, किन्तु फिर भी फ्रांस से उन समस्त प्रदेशों को छीन लिया गया जो उसने नेपोलियन के समय में अपने अधिकार में कर लिए थे। **फ्रांस की सीमाएं वही निर्धारित की गयीं जो 1790 ई. से पहले थीं।**[1] फ्रांस पर 70 करोड़ फ्रैंक का युद्ध हर्जाना (War Indemnity) भी लगाया गया तथा यह तय किया गया कि जब तक फ्रांस इस युद्ध हर्जाने को नहीं देगा, तब तक वैलिंगटन (इंग्लैण्ड का सेनापति) के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों की एक सेना वहां रहेगी। **फ्रांस की महत्वाकांक्षाओं को रोकने के लिए उसके चारों ओर शक्तिशाली राज्यों की स्थापना की गयी।** उत्तर में हॉलैण्ड के साथ बेल्जियम, दक्षिण में सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ जेनेवा का राज्य तथा पूर्व में प्रशा के साथ राइन प्रदेश को मिलाकर फ्रांस को शक्तिशाली राज्यों से घेर दिया गया।

इसके अतिरिक्त तालीरां की इच्छानुसार न्यायोचित राजवंश के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए फ्रांस में बूर्बां वंश की पुनर्स्थापना की गयी तथा लुई अठारहवें को फ्रांस का शासक स्वीकार किया गया।

2. **रूस**—विएना कांग्रेस से रूस को काफी लाभ हुआ। नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों में रूस ने फिनलैण्ड व बसराबिया जीता था। इन प्रदेशों पर उसका ही अधिकार मान लिया गया। इसके अतिरिक्त दक्षिण-पूर्व की ओर टर्की के क्षेत्रों पर भी उसका अधिकार बना रहा। हेजन ने लिखा है कि रूस को सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि **'ग्राण्ड डची ऑफ वारसा'**[2] (Grand Duchy of Warsaw) का अधिकांश भाग उसे प्राप्त हो गया, जिससे उसकी सीमाएं यूरोप में पश्चिम की ओर काफी दूर तक फैल गयीं। यूरोप में रूस के राजनीतिक महत्व में वृद्धि हुई।[3]

3. **हॉलैण्ड**—फ्रांस को उत्तर में बढ़ने से रोकने के लिए हॉलैण्ड में बेल्जियम को मिला दिया गया तथा वहां **औरेन्ज वंश** (Orange Dynasty) की स्थापना की गयी।

1 "France had to go back to the frontiers of 1790 instead of those of 1792."
—Carrie, *op. cit.*, p. 11.

2 पोलैण्ड की सीमाएं रूस, प्रशा और आस्ट्रिया की सीमाओं से मिली हुई थीं। 1795 ई. में तीनों ने पोलैण्ड को आपस में विभाजित कर, उसके अस्तित्व को समाप्त कर दिया। बाद में नेपोलियन ने प्रशा व आस्ट्रिया के अधीन पोलैण्ड के भागों को छीन लिया व उसका नाम **'ग्राण्ड डची ऑफ वारसा'** रखा।

3 *Modern Europe*, p. 237.

4. **प्रशा**—विएना कांग्रेस से लाभान्वित होने वाले प्रमुख देशों में प्रशा भी एक था। प्रशा को अनेक नवीन प्रदेश प्राप्त हुए जिनमें प्रमुख राइन नदी का पश्चिमी प्रदेश, सैक्सनी राज्य का लगभग आधा भाग, पोलैण्ड एवं पोमेरेनिया के भी कुछ प्रदेश थे। इन प्रदेशों पर अधिकार होने से प्रशा की शक्ति में वृद्धि हुई तथा उसकी गणना यूरोप के प्रमुख देशों में होने लगी।

विएना कांग्रेस ने जर्मनी के अनेक राज्यों के विषय में भी निर्णय लिए। जर्मनी में प्रशा के अतिरिक्त कुल 38 राज्यों को कायम रखा गया जिन्हें **नवीन जर्मन राज्य संघ** (New German Federation) के अधीन रखा गया। इस संघ को **'जर्मन परिसंघ'** (Germaine Bound) कहा गया। इस नवीन जर्मन परिसंघ की एक केन्द्रीय राज्य राज सभा (Federal Diet) बनायी गयी, जिसका अध्यक्ष आस्ट्रिया को बनाया गया।

5. **स्विट्ज़रलैण्ड**—स्विट्ज़रलैण्ड को तटस्थ देश घोषित किया गया। फ्रांस के तीन प्रदेशों को भी स्विट्ज़रलैण्ड को दे दिया गया, जिससे उसकी शक्ति में वृद्धि हुई।

6. **स्पेन**—स्पेन में बूर्बां वंश की पुनर्स्थापना की गयी तथा फर्डिनेण्ड सप्तम को वहां का शासक बनाया गया। स्पेन से ट्रिनिडाड लेकर इंग्लैण्ड को दिया गया।

7. **पुर्तगाल**—पुर्तगाल ने यद्यपि मित्र-राष्ट्रों की मदद की थी, किन्तु फिर भी उसे कुछ नहीं दिया गया। पुर्तगाल में जॉन चतुर्थ का शासन पुनः स्थापित किया गया।

8. **डेनमार्क एवं स्वीडन**—डेनमार्क ने नेपोलियन की सहायता की थी, अतः उससे नार्वे छीनकर स्वीडन को दे दिया गया। फिनलैण्ड स्वीडन से लेकर रूस को दे दिया गया।

9. **इटली—इटली को विएना कांग्रेस से अत्यधिक हानि हुई।** इटली के विषय में महाशक्तियों ने पहले ही तय कर लिया था कि आस्ट्रिया को इसमें से नीदरलैण्ड में हुई हानि का मुआवजा दिया जाएगा। अतः आस्ट्रिया को लोम्बार्डी तथा वेनेशिया प्रदेश दे दिए गए, जो इटली के सबसे धनी और सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रान्त थे। इसके अतिरिक्त नेपल्स में बूर्बां वंशीय शासक फर्डिनेण्ड सप्तम को पुनर्स्थापित किया गया। पीडमाण्ट का राज्य सार्डीनिया को दे दिया गया। इस प्रकार सार्डीनिया एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिणत हो गया। इससे फ्रांस के लिए दक्षिण-पूर्व में भी बढ़ना कठिन हो गया। टस्कनी तथा मौडेना में पुनः पुराने राजवंशों की स्थापना की गयी तथा नेपोलियन की पत्नी मारिया लुईसा को, जो आस्ट्रिया की राजकुमारी थी, परमा राज्य दे दिया गया। **इस प्रकार इटली पर आस्ट्रिया का प्रभुत्व बना रहा तथा इटली मात्र एक भौगोलिक नाम** (Geographical Expression) **रह गया।**

10. **आस्ट्रिया**—विएना कांग्रेस से लाभान्वित होने वाले देशों में एक आस्ट्रिया भी था। विएना कांग्रेस का अधिवेशन मैटरनिख की अध्यक्षता में हुआ था, अतः मैटरनिख ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया व अपने देश के सम्मान और शक्ति में वृद्धि करने में सफल हुआ। आस्ट्रिया को पोलैण्ड के कुछ क्षेत्र, एड्रियाटिक के पूर्वी तट पर स्थित इलीरियन प्रान्त, लोम्बार्डी और वेनेशिया के प्रदेश प्राप्त हुए। इस प्रकार आस्ट्रिया को ऐसे प्रदेश प्राप्त हुए जिससे केन्द्रीय यूरोप में उसकी शक्ति बढ़ गयी।

11. **इंग्लैण्ड—विएना कांग्रेस से सर्वाधिक लाभ इंग्लैण्ड को हुआ।** इंग्लैण्ड, जो नेपोलियन का सर्वप्रमुख शत्रु था तथा जिसने बार-बार उसके विरुद्ध गुटों का निर्माण किया था, तथा जिसने मित्र-राष्ट्रों के लिए साहूकार (Banker) का कार्य किया था, को यूरोप से बाहर अनेक प्रदेश मिले, जिससे इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक साम्राज्य में पर्याप्त वृद्धि हुई। इंग्लैण्ड का उत्तर

सागर में स्थित हेलीगोलैण्ड, भूमध्य सागर में स्थित माल्टा तथा आयोज द्वीपसमूह, दक्षिण अफ्रीका में केप कोलोनी तथा श्रीलंका एवं अन्य द्वीपों पर आधिपत्य हो गया। **इन उपनिवेशों के मिलने से इंग्लैण्ड सर्वश्रेष्ठ औपनिवेशिक शक्ति (Colonial Power) बन गया।**
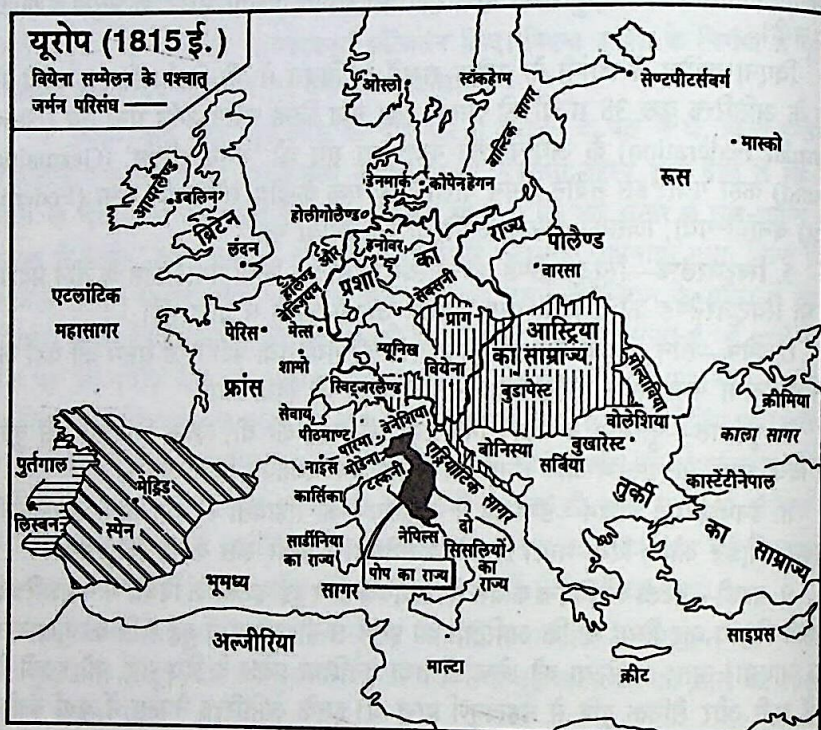
इस प्रकार अपने विभिन्न निर्णयों के द्वारा विएना कांग्रेस ने यूरोप के मानचित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त, विएना कांग्रेस में कुछ अन्य भी महत्वपूर्ण कार्य किए गए, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित थे :

(i) **दास प्रथा समाप्त करने के प्रयास**—तत्कालीन यूरोप के कुछ देशों में दास प्रथा (Slavery System) प्रचलित थी। अफ्रीका के काले दासों का व्यापार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ था जिससे इंगलैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल तथा फ्रांस आदि लाभान्वित हो रहे थे। **इस प्रथा के विरोध में इंग्लैण्ड में विल्बरफोर्स के नेतृत्व में प्रबल आन्दोलन चल रहा था।** अतः विएना कांग्रेस में कैसलरे ने इस कुप्रथा को समाप्त कराने का प्रयास किया। यद्यपि कैसलरे अपने प्रयत्न में पूर्णतया सफल न हो सका, किन्तु फिर भी इस कांग्रेस में एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसके द्वारा दास प्रथा को अनैतिक, अमानवीय तथा सभ्यता और मानव अधिकारों के विपरीत बताया गया।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय कानून**—यूरोप की कुछ समस्याओं का हल ढूंढने के लिए विएना कांग्रेस में अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने का प्रयास किया गया। इन कानूनों के अन्तर्गत प्रमुख युद्ध और शान्तिकाल में व्यापार एवं वाणिज्य, अन्तर्राष्ट्रीय जल का उपयोग, आदि थे।

(iii) **यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की स्थापना**—यूरोप में शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य से एक संस्था का भी निर्माण किया गया, जिसे यूरोपीय **संयुक्त व्यवस्था** (Concert of Europe) कहा गया।

उपर्युक्त निर्णयों पर 9 जून, 1815 ई. को विएना कांग्रेस के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए।

मूल्यांकन
(EVALUATION)

विएना कांग्रेस के निर्णयों का यूरोपीय इतिहास में विशेष स्थान है। इस कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य विश्व शान्ति के लिए व्यावंहारिक व्यवस्था करना था। प्रो. फिफे (Fyffe) के अनुसार, **विएना समझौते के नियम, दो युगों को सीमा बनाने के कारण, इतिहास में अपना विशेष महत्व रखते हैं।** इस कांग्रेस के द्वारा क्रान्तियों एवं युद्धों के युग की समाप्ति हुई तथा प्रतिक्रियावादी एवं परम्परावादी शासन की यूरोपीय राष्ट्रों में स्थापना हुई।

विएना कांग्रेस के दोष
(DEFECTS OF VIENNA CONGRESS)

'नैतिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण', 'यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था की पुनःस्थापना', 'राजनीतिक शक्ति के न्यायोचित पुनर्विभाजन पर आधारित स्थायी शक्ति' आदि महान् उद्देश्य एवं आदर्शों की घोषणाओं के साथ विएना कांग्रेस का प्रारम्भ हुआ था। यूरोप की जनता को इस सम्मेलन से बहुत आशाएं थीं, किन्तु कांग्रेस के निर्णयों ने सभी को निराश किया।[1] इसी कारण विएना कांग्रेस की कटु आलोचना की गयी है। **विएना कांग्रेस के निर्णयों में निम्नलिखित प्रमुख दोष थे :**

(i) **राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ण उपेक्षा**—विएना कांग्रेस की आलोचना किए जाने का प्रमुख कारण इसके द्वारा राष्ट्रीयता की भावनाओं की उपेक्षा किया जाना था। विएना के प्रतिनिधियों ने अपनी इच्छानुसार यूरोप की पुनर्व्यवस्था की, मानो वह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हो। बेल्जियम एवं हॉलैण्ड, जो भाषा, धर्म एवं संस्कृति, प्रत्येक दृष्टि से पूर्णतया भिन्न थे, उनको फ्रांस की महत्वाकांक्षाओं का रोकने के लिए एक कर दिया गया। इसी प्रकार नार्वे को डेनमार्क से छीनकर स्वीडन को दे दिया गया। पोलैण्ड को भी विभाजित कर उसकी राष्ट्रीय भावनाओं पर कुठाराघात किया गया। इटली को तो मात्र एक **भौगोलिक अभिव्यक्ति** (Geographical Expression) के रूप में परिणत कर उसके एकीकरण की सम्भावनाओं पर चोट की गयी। कैटलबी ने विएना कांग्रेस की आलोचना करते हुए लिखा है, **"उन्होंने केवल शक्ति-सन्तुलन के आधार पर राष्ट्रीय सीमाओं को निर्धारित किया, किन्तु उन्होंने यह प्रयत्न नहीं किया कि राष्ट्रीयता के आधार पर उनके प्रदेश मिल जाएं। परम्परागत कूटनीति पुराने राजवंश और पुराने राज्यों को यथाशक्ति में रखना उन्होंने अधिक उचित समझा, किन्तु राज्यों के पुनर्गठन में उन्होंने लोकमत अथवा राष्ट्रीय भावनाओं को कोई महत्व नहीं दिया।"**[2] हेजन ने भी इस

1 चौहान, देवेन्द्रसिंह—यूरोप का इतिहास, पृ. 13।

2 "They ignored the challenge of the French Revolution, they failed to see the new force of democracy and nationalism were becoming determining political factors.......they accepted the criterion of the Balance of Power, not the meausre of popular sentiment, the right in terms of tradition diplomacy, of dynasties and states not in those of popular sympathies of national self-expression."
—*A History of Modern Times*, p. 115.

नीति की कटु आलोचना की है। हेजन के शब्दों में, "**विएना सम्मेलन अभिजातवर्गीय लोगों का सम्मेलन था, वे लोग राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के उन आदर्शों को समझने में असमर्थ थे अथवा उनसे घृणा करते थे।**"[1]

(ii) **प्रतिक्रियावाद का प्रभुत्व**—विएना कांग्रेस मैटरनिख की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी। मैटरनिख घोर प्रतिक्रियावादी व्यक्ति था, अतः इस कांग्रेस के निर्णयों पर प्रतिक्रियावाद का प्रभाव होना स्वाभाविक ही था। कैसलरे के उपस्थित रहने के कारण यद्यपि प्रतिक्रियावादी एवं प्रतिशोधात्मक नीति पूर्णतया तो मैटरनिख न अपना सका, किन्तु फिर भी इसके निर्णयों पर प्रतिक्रियावादी शक्तियों की अमिट छाप थी। **कांग्रेस का विचार था कि स्थायी शान्ति प्राचीन राजवंशों की पुनर्स्थापना से ही सम्भव थी, तर्कहीन एवं प्रतिक्रियावादी था।** इटली को छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित कर उन्हें आस्ट्रिया के संरक्षण में देना प्रतिक्रियावाद का दूसरा उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार पुरातन एवं नवीन विचारों के संघर्ष को विएना कांग्रेस समाप्त करने में असफल रही।

(iii) **जन एवं क्रान्तिकारी भावनाओं की अवहेलना**—विएना कांग्रेस की एक गलती यह भी थी कि उसमें क्रान्तिकारी एवं जनता की इच्छाओं की ओर कोई ध्यान न दिया। जनता के साथ उन्होंने शिशुवत व्यवहार किया, जो अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करने में असमर्थ होते हैं तथा जिन्हें अनुभवहीनता तथा अपरिपक्वता के कारण अपनी बात कहने का अधिकार नहीं होता। उनका विचार था कि ईश्वर ने उनको इसलिए नियुक्त व अभिषिक्त किया है कि वे विश्व को अपने संरक्षण में रख सकें और अपनी बुद्धि और अनुभव के अनुसार उनके जीवन का संचालन करें। विएना कांग्रेस ने फ्रांस की क्रान्ति से उत्पन्न स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व के सिद्धान्तों की भी अवहेलना की, जो कि दिन-प्रतिदिन प्रबल होते जा रहे थे जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया था तथा कालान्तर में जो विश्व पर छा गए। केटलबी ने इन विषय में लिखा है, "**इस प्रकार उन्होंने (विएना कांग्रेस के प्रतिनिधियों) गतिशील सामाजिक विचारधाराओं के विरुद्ध कार्य किया। इसी कारण शताब्दी के समाप्त होने के पहले ही उनके निर्णय निरर्थक हो गए।**"[2]

(iv) **अन्य दोष**—इनके अतिरिक्त भी विएना कांग्रेस ने अनेक भूलें कीं। **यूरोप में अशान्ति फैलाने का मुख्य उत्तरदायित्व फ्रांस पर था, किन्तु इस कांग्रेस से वास्तविक हानि फ्रांस को नहीं वरन् छोटे राज्यों को हुई जिनके हितों पर तुषारापात किया गया।** कांग्रेस ने पक्षपातपूर्ण नीति अपनाते हुए कुछ राज्यों को वंशगत कारणों से अधिक भू-भाग दिया तथा कुछ को दिए गए वचनों को भी याद न रखा, जैसा कि हैनोवर, डार्मस्टट व इटली के कुछ राज्यों के साथ किया गया। जिनोवा को स्वतन्त्र करने का वचन देकर भी सार्डीनिया के अधीन करना कांग्रेस की पक्षपातपूर्ण नीति का द्योतक है। इसके अतिरिक्त विएना कांग्रेस ने अनेक कार्यों को अपूर्ण छोड़ दिया। उदाहरणार्थ, यूरोप में स्थायी शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से सात राज्यों ने '**कांग्रेस के अन्तिम अधिनियम**' (Final Act of the Congress) पर हस्ताक्षर किए थे

1 "The Congress of Vienna was a Congress of aristocrate to whom the ideas of nationality and democracy as proclaimed by the French Revolution were incomprehensible of loathsome."
—Hazen, *Modern Europe*, p. 239.

2 "Vienna Powers, themselves worked against the dynamic forces of the age which before the century was out to undo much of their work."
—Ketelbey, *op. cit.*, p. 151.

तथा एक **'गारण्टी की सन्धि'** (Treaty of Guarantee) जिसका कैसलरे ने प्रस्ताव रखा था, जो कभी कार्यान्वित न किया जा सका। पूर्वी समस्या आदि की ओर भी विएना कांग्रेस ने कोई ध्यान न दिया। इसी प्रकार मोडेना एवं टस्कनी में हैप्सबर्ग वंश की स्थापना की गयी, जो कि अत्यन्त अत्याचारी एवं प्रतिक्रियावादी वंश था।

अतः स्पष्ट है कि विएना कांग्रेस के निर्णयों में अनेक दोष निहित थे। यही कारण था कि विएना कांग्रेस के निर्णय अधिक समय तक कायम न रह सके। 1830 ई. तक विएना कांग्रेस की व्यवस्थाएं चलती रहीं, परन्तु 1830 ई. में फ्रांस में पुनः क्रान्ति हुई, किन्तु अन्य देशों के प्रतिक्रियावादी प्रतिनिधियों ने इसे दबा दिया। 1848 ई. में फ्रांस में पुनः क्रान्ति हो गयी जिसने प्रबल प्रतिक्रियावादी मैटरनिख की शक्ति की नींव हिला दी। धीरे-धीरे यूरोप के राष्ट्रों में राजनीतिक चेतना का आविर्भाव हुआ, परिणामस्वरूप विएना कांग्रेस की व्यवस्था धीरे-धीरे भंग होने लगी। हॉलैण्ड व बेल्जियम मात्र 15 वर्ष तथा स्वीडन व नार्वे 10 वर्ष पश्चात् ही अलग-अलग हो गए। इटली और जर्मनी भी 1870 ई. में स्वतन्त्र एवं एकीकृत राष्ट्रों में परिणत हो गए। **विएना कांग्रेस के निर्णयों के असफल होने का प्रमुख कारण यह था कि उसने नवीन सिद्धान्तों की अवहेलना की तथा प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त को अपनाया।** इसने इतनी समस्याएं हल नहीं कीं जितनी की उत्पन्न कर दीं।[1] यही कारण है कि विएना कांग्रेस की आलोचना करते हुए हेजन ने लिखा है, "**1815 ई. से अब तक का यूरोप का इतिहास विएना सम्मेलन की भारी भूलों को संशोधित करने का इतिहास है।**"[2]

विएना कांग्रेस का महत्व
(SIGNIFICANCE OF THE VIENNA CONGRESS)

यद्यपि विएना कांग्रेस ने अनेक भूलें कीं, किन्तु फिर भी उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। उसके साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि विएना कांग्रेस किन परिस्थितियों में हुई थी। युद्धों से त्रस्त हुए यूरोप में शान्ति स्थापित करना इसका प्रमुख उद्देश्य था, जिसमें यह सफल हुई थी। यह भी निर्विवाद है कि **विएना कांग्रेस द्वारा की गयी व्यवस्था 1919 ई. में पेरिस व्यवस्था से कहीं अधिक उच्चकोटि की थी।** विएना कांग्रेस में समझौते व स्थापित शान्ति को प्रमुख स्थान देते हुए फ्रांस को किसी प्रकार से अपमानित करने का प्रयास नहीं किया गया, यहां तक कि मित्र राष्ट्रों ने फ्रांस को अपने समान ही स्थान दिया, जबकि 1919 ई. में जर्मनी के साथ अत्यधिक कठोर व्यवहार कर उसे पुनः युद्ध करने के लिए प्रेरित करने का बीज बो दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप 1939 ई. में ही द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके विपरीत विएना कांग्रेस के लगभग 100 वर्षों तक विश्वयुद्ध न हुआ।

विएना सम्मेलन के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम हुए, जिनका वर्णन निम्नलिखित है :

(i) विएना कांग्रेस ने यूरोप में शान्ति की स्थापना की तथा आगामी 40 वर्षों तक यूरोप में कोई युद्ध न हुआ।

(ii) इस कांग्रेस द्वारा यूरोप के राज्यों को पहली बार यह आभास हुआ कि यूरोपीय झगड़ों को विचार-विमर्श से भी सुलझाया जा सकता है।

---

1 "The Congress of Vienna created more problems than it solved."

2 "The history of Europe after 1815 was destined to witness repeated, and often successful, attempts to rectify this cardinal error of the Congress of Vienna."
—Hazen, *Modern Europe*, p. 240.

(iii) इस कांग्रेस के परिणामस्वरूप ही कुछ वर्षों के उपरान्त **पवित्र संघ** (Holy Alliance) एवं **चतुर्मुख संघ** (Quadruple Alliance) की स्थापना हुई।

(iv) इस कांग्रेस में ही इस नियम का भी प्रतिपादन किया गया कि यदि दो राज्य परस्पर मिला दिए जाएं तो दूसरे राज्य के प्रतिनिधि भी उस राज्य की संसद में आ जाएंगे तथा उसकी स्थानीय संस्थाओं एवं हितों का ध्यान रखा जाएगा।

(v) विएना कांग्रेस में दास प्रथा की भी भर्त्सना की गयी।

(vi) विएना कांग्रेस में ही कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का भी प्रतिपादन किया गया।

(vii) इस कांग्रेस में ही जर्मनी व इटली के एकीकरण की भूमिका की नींव पड़ी।

विएना कांग्रेस के प्रतिनिधियों पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने जनभावनाओं एवं लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों की अवहेलना की, किन्तु उनकी आलोचना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस संकट के समय में यदि जनमत को निर्णय का आधार बनाया जाता तो यूरोप में पुनः युद्ध के बादल छा जाते क्योंकि लोकतान्त्रिक प्रवृत्तियां तब तक विकास की अवस्था में थीं न कि परिपक्व स्थिति में। डेविड टामसन ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है, **"विएना का समझौता पुरानी परिपाटी के शासकों एवं अभिजातवर्गीय कूटनीतिज्ञों द्वारा सम्पन्न हुआ था और वह 18वीं शताब्दी की विचारधारा से ओतप्रोत था। अतः 19वीं शताब्दी के तीव्र गति से बदलते हुए विश्व में उसके निर्णयों की उपयुक्तता एवं स्थायित्व बने रहने की आशा नहीं की जा सकती थी। विएना के समझौते के निर्माताओं को राष्ट्रीयता अथवा उदारवाद की भावनाओं के महत्व को न समझने के लिए दोषी ठहराना अनुचित होगा क्योंकि 1885 ई. में बहुत कम लोग उनका महत्व समझते थे।"**[1] ग्रांड एण्ड टेम्परले ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं। उसके शब्दों में, **"यह सत्य है कि वे (विएना कांग्रेस के प्रतिनिधि) प्राचीन व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे और अधिकांश रूप से नवीन विचारों से अछूते थे, किन्तु वे पुराने शासन के निकृष्ट रूप के नहीं, उत्कृष्टतम रूप के प्रतिनिधि थे और उनकी व्यवस्था ने यूरोप को 40 वर्ष तक युद्धों से बचाए रखा।"**[2] इसके साथ ही विएना कांग्रेस के कार्यों का मूल्यांकन करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसके प्रतिनिधियों के हाथ पूर्व सन्धियों से बंधे हुए थे।

अतः स्पष्ट है कि विभिन्न दोषों एवं अवगुणों के पश्चात् भी विएना कांग्रेस का यूरोपीय इतिहास में विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि विएना कांग्रेस के विषय में कैटलबी ने लिखा है, **"इस कांग्रेस में राजनीति, संयम और दूरदर्शिता से काम लिया गया तथा इसने एक ऐसा आधार तैयार किया जिस पर भविष्य के यूरोप की नींव रखी गयी।"**[3]

1 "It was a settlement framed by monarchs and aristocratic diplomates of the old order and it was infused wit the spirit of the eighteenth century. As such, it could have only limited applicability and longevity in the fast moving world of the ninettenth century. But it would be wrong to blame the makers of the settlement for failing to appreciate the power of nationalism or liberalism, which few realized in 1815."
—David Thomson, *Europe Since Napoleon*, p. 25.

2 *Europe in the ninettenth and Twentieth centuries*, p. 153.

3 "It showed both moderation and political wisdom, and it provided a real foundation on which later Europe was to build."
—Ketelbey, *op. cit.*, p. 153.

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
(THE CONCEPT OF EUROPE)

नेपोलियन ने यूरोप की शान्ति को भंग किया था। मित्र राष्ट्रों ने पारस्परिक सहयोग से नेपोलियन को परास्त किया तथा विएना कांग्रेस के द्वारा यूरोप की पुनर्व्यवस्था की गयी, किन्तु यूरोप के देश यूरोप में स्थायी शान्ति की स्थापना करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उस समय यूरोप के निरंकुश शासकों को भी परस्पर सहयोग की आवश्यकता थी क्योंकि यूरोप में राष्ट्रवादी भावनाओं व प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का निरन्तर प्रचार हो रहा था।

यूरोप में संयुक्त व्यवस्था की स्थापना का विचार कोई नया नहीं था। इससे पूर्व भी इस प्रकार की भावनाओं को अनेक बार प्रस्तुत किया गया था। 1791 ई. में आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री काउण्ट कानिज (Count Khunitz) ने तथा 1804 ई. में रूस के जार एलेक्जेण्डर ने इसी प्रकार के प्रस्ताव रखे थे। 1815 ई. में यूरोप में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया तथा रूस भी इसी प्रकार की व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था हेतु पहले रूस के जार एलेक्जेण्डर ने **'पवित्र संघ'** (Holy Alliance) की घोषणा की, तत्पश्चात् मैटरनिख व कैसलरे ने **'चतुर्मुख मित्रमण्डल'** (Quadruple Alliance) की घोषणा की। इन दोनों के आधार पर ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था की गयी।

पवित्र संघ
(HOLY ALLIANCE)

रूस के जार एलेक्जेण्डर प्रथम द्वारा 26 सितम्बर, 1815 ई. को पवित्र संघ की घोषणा की। इस घोषणा में जार ने कहा, **"भविष्य में सब राजा अपने को एक-दूसरे का भाई समझें। वे सत्य एवं भ्रातृत्व के बन्धन में बंध जाएं। प्रजा को वे अपना बच्चा समझें तथा उन पर वे ऐसे ही शासन करें जैसे पिता अपने कुटुम्ब पर करता है।"** एलेक्जेण्डर ने कहा कि यह घोषणा प्रत्येक यूरोपीय राजा के लिए थी तथा राजाओं को अपना शासन पवित्र धर्म, न्याय, उदारता एवं शान्ति के सिद्धान्तों पर आधारित करना चाहिए। उसने कहा कि, **"वास्तव में, संसार में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई सम्राट होने योग्य नहीं है। सम्पूर्ण शक्ति का वही स्वामी है।"**

इस घोषणा का उद्देश्य यूरोप में शान्ति की स्थापना करना व उसे बनाए रखना था। पोप, तुर्की के सुल्तान तथा इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री कैसलरे के अतिरिक्त यूरोप के अन्य राज्यों ने इस घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए व पवित्र संघ के सदस्य बने। कैसलरे ने इसलिए इसको अस्वीकार किया क्योंकि इसको स्वीकार करने पर, इंग्लैण्ड द्वारा की गयी अन्य सन्धियां इससे प्रभावित होतीं। इंग्लैण्ड यूरोप का एक प्रमुख देश था। उसके द्वारा इसे अस्वीकार किए जाने से यह पवित्र संघ सफल न हो सका। आस्ट्रिया व मैटरनिख को भी इसमें विश्वास नहीं था, किन्तु जार को प्रसन्न करने के लिए उसने इसे स्वीकार कर लिया।

मूल्यांकन—जार की पवित्र संघ की योजना की अधिकांश तत्कालीन राजनीतिज्ञों तथा इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है।[1] यूरोप के अधिकांश राजनीतिज्ञों का इसमें विश्वास नहीं था। मैटरनिख पवित्र संघ को **"बड़ी दिखने वाली निरर्थक योजना मानता था।"**[2] कैसलरे

1 **"The only important thing about the holy alliance was its name, which was, in the opinion of all Liberals, too good to be lost."** —**Hazen, *op. cit.*, p. 241.**

2 **"High sounding and nothing."** ***—Metternich***

के विचार में, **यह व्यर्थ की बकवास तथा रहस्यवादी थी।"**[1] तालीरां की दृष्टि में पवित्र संघ की घोषणा एक हास्यास्पद बात थी।[2] मैरियट ने भी इसे **'रहस्यवादी निष्ठा'** कहा।

किन्तु कुछ लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। गेटे के शब्दों में, **"मानवता के लिए इससे महान् व उपयोगी योजना कभी नहीं बनी थी।"**[3] केटलबी के अनुसार, **"अपने उद्देश्यों में पवित्र संघ न तो कपटपूर्ण था और न ही अनुदार।"**

पवित्र संघ का कोई विशेष राजनीतिक महत्व तो न था, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह जार एलेक्जेण्डर की दयालुता एवं धार्मिकता का प्रतीक था। 1815 ई. में जार एलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गयी तथा उसके साथ ही पवित्र संघ भी समाप्त हो गया।

चतुर्मुखी राष्ट्र संघ
(QUADRUPLE ALLIANCE)

पवित्र संघ के असफल हो जाने के पश्चात् भी यूरोप के राजनीतिज्ञ, यूरोप में शान्ति बनाए रखने के लिए किसी उचित व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे। इस उद्देश्य से आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटरनिख ने एक योजना प्रस्तुत की जिसे यूरोप की अन्य प्रमुख शक्तियों—इंग्लैण्ड, रूस तथा प्रशा ने स्वीकार किया। इस योजना को क्योंकि चार देशों ने स्वीकार किया, अतः इसे **'चतुर्मुखी राष्ट्र मैत्री'** अथवा **'चतुर्मुखी राष्ट्र संघ'** कहा गया तथा इसके द्वारा स्थापित व्यवस्था को यूरोप की संयुक्त व्यवस्था कहा गया।

यह चार राष्ट्रों के मध्य हुई एक सन्धि थी, जिसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(i) विएना कांग्रेस के निर्णयों का पालन करना।
(ii) यूरोप की समस्त समस्याओं का समाधान शान्तिपूर्ण व पारस्परिक विचार-विमर्श के द्वारा करना।
(iii) नेपोलियन तथा उसके वंशजों को फ्रांस के सिंहासन पर बैठने देना।
(iv) समय-समय पर पारस्परिक बैठकों का आयोजन करना।
(v) क्रान्ति के विचारों का सामूहिक रूप से दमन करना।
(vi) यूरोप में शान्ति बनाए रखना।

इस प्रकार यह संघ पवित्र मैत्री से पूर्णतः भिन्न था, जबकि दोनों के उद्देश्य समान थे। दोनों का ही प्रमुख उद्देश्य यूरोप में शान्ति की स्थापना तथा शान्ति बनाए रखना था। **'पवित्र मैत्री' व 'चतुर्मुखी राष्ट्र-संघ' में निम्नलिखित प्रमुख अन्तर थे—**

(i) यूरोप की संयुक्त व्यवस्था, पवित्र मैत्री की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक थी, क्योंकि इसके द्वारा विएना कांग्रेस की व्यवस्था तथा शासकों की प्रभुसत्ता को बनाए रख सका।
(ii) संयुक्त व्यवस्था शासकों के भ्रातृत्व के स्थान पर उनके अधिनायकवाद पर आधारित थी। पवित्र मैत्री भ्रातृत्व पर आधारित थी।
(iii) संयुक्त व्यवस्था एक सन्धि थी, जो चार राष्ट्रों के मध्य हुई थी। पवित्र मैत्री सन्धि नहीं थी।

1 "A piece of subline mysticism and nonsense." —*Castlereagh*
2 "A ludicrous contract." —*Talleyrand*
3 "Nothing greater or more useful for mankind has been invented."

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) 1815 ई. से 1822 ई. तक बनी रही। इंग्लैण्ड का विदेश मन्त्री कैसलरे इसका घोर समर्थक था। वह इस व्यवस्था को **'शान्ति स्थापना की गारण्टी'** समझता था। 1815 ई. से 1822 ई. तक यूरोप की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक सम्मेलन (Congress) हुए, इसलिए इस युग को **'सम्मेलनों का युग'** (Era of Congresses) कहा जाता है। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत हुई कांग्रेसों का वर्णन निम्नलिखित है—

(1) **एक्स-ला शापेल का सम्मेलन** (Congress of Aix-La-Chappelle)—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत प्रथम सम्मेलन अक्टूबर 1818 ई. में एक्स-ला-शापेल नामक स्थान पर हुआ। इस सम्मेलन में फ्रांस ने मांग की कि क्योंकि उसने युद्ध हर्जाने की क्षतिपूर्ति कर दी थी, अतः उसे भी इस व्यवस्था का सदस्य बनाया जाए। उसकी इस मांग को स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार **चतुर्मुखी** (Quardruple Alliance) के स्थान पर **पंचमुखी संघ** (Quintuple Alliance) की स्थापना हुई। फिर भी उन्हें फ्रांस पर विश्वास न था तथा उन्होंने 15 नवम्बर, 1818 ई. को एक गुप्त मीटिंग की, जिसमें यह तय किया गया कि फ्रांस में क्रान्ति या विद्रोही विचारधारा के उत्पन्न होने पर, संयुक्त रूप से उसका दमन किया जाएगा।

एक्स-ला-शापेल के सम्मेलन में निम्नलिखित प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया—

(i) डेनमार्क व स्वीडन की समस्या।
(ii) आस्ट्रिया व प्रशा के यहूदियों की समस्या।
(iii) वेडन के उत्तराधिकार की समस्या।
(iv) जर्मनी के 'हेस' नामक राज्य के राजा की उपाधि की समस्या।
(v) मोनको में अल्पसंख्यकों की समस्या।

उपरोक्त सभी समस्याओं का समाधान करने में यह सम्मेलन अत्यन्त सफल रहा। इसी कारण मैटरनिख ने कहा, **"मैंने अपने जीवन में ऐसा सुन्दर सम्मेलन नहीं देखा था।"**

यद्यपि एक्स-ला-शापेल का सम्मेलन सफल रहा था, किन्तु इसी समय से संयुक्त व्यवस्था स्थापित करने वाले देशों में फूट पड़ने लगी। **इस सम्मेलन में अनेक विवादास्पद समस्याएं उत्पन्न हो गयीं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित थीं :**

(i) दास व्यवस्था को रोकने के लिए इंग्लैण्ड ने प्रत्येक देश को दूसरे देश के जहाजों की तलाशी लेने के अधिकार के लिए कहा। इस प्रस्ताव को अन्य सदस्यों ने ठुकरा दिया।

(ii) जर्मनी में बढ़ती हुई क्रान्तिकारी भावनाओं को देखते हुए मैटरनिख ने वहां **'कार्ल्सबाद के आदेश'**[1] (Carlsbad Decrees) जारी करने के लिए कहा। रूस ने इसका विरोध किया।

(iii) स्पेन के कुछ उपनिवेशों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। स्पेन के राजा फर्डिनेण्ड ने उन पर पुनः अधिकार करने के लिए पंचमुखी संघ से सहायता की अपील की। रूस व आस्ट्रिया सहायता देने को तैयार थे, किन्तु इंग्लैण्ड ने इसका घोर विरोध किया।

इस प्रकार की कुछ अन्य समस्याओं को लेकर पंचमुखी संघ के राष्ट्रों में मतभेद उत्पन्न हो गए। आस्ट्रिया व रूस सदैव जनता के दमन के लिए तैयार रहते थे। कैसलरे (इंग्लैण्ड

1 कार्ल्सबाद के आदेश के अनुसार विद्यार्थी आन्दोलनों, समाचार-पत्रों व विश्वविद्यालयों, आदि पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए जाते थे।

का विदेशी मन्त्री) इसका विरोधी था। उसका मानना था, **हमें किसी भी देश के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।** इस प्रकार पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण यह स्पष्ट हो गया कि यूरोप की संयुक्त व्यवस्था अधिक समय तक नहीं चल सकती थी, जैसा कि **निकोलस ने भी लिखा है, "इसी समय से इंग्लैण्ड तथा निरंकुश राज्यों में सैद्धान्तिक मतभेद स्पष्ट होने लगे और सभी विचारशील लोगों की दृष्टि से यही उसके अन्त का आरम्भ था।"**

(2) **ट्रोपाउ का सम्मेलन** (Congress of Troppau)—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत अगला सम्मेलन ट्रोपाउ नामक स्थान पर अक्टूबर, 1820 ई. में हुआ। इस सम्मेलन में आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशा ने भाग लिया। इंग्लैण्ड व फ्रांस ने इसमें भाग लिया था।

यह सम्मेलन मुख्यतया नेपिल्स की समस्या व विद्रोह को समाप्त करने के लिए हुआ था। मैटरनिख अत्यन्त प्रतिक्रियावादी था। इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड द्वारा भाग न लिए जाने के कारण मैटरनिख ने एक प्रतिक्रियावादी पूर्वलेख (Protocol) तैयार किया। 19 नवम्बर, 1820 ई. को इस पूर्वलेख को प्रशा व रूस ने भी स्वीकार कर लिया। इस पूर्वलेख के द्वारा दूसरे देश के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। **इस पूर्वलेख में दो प्रमुख बातों की घोषणा की गयी :**

(i) 'वे जनता के ऐसे सिद्धान्त को मान्यता नहीं देंगे जो उस देश के शासक की शक्ति को कम करता हो।'[1]

(ii) 'किसी राज्य में विद्रोह होने पर यदि उससे पड़ोसी राज्य को भी खतरा हो, तो पड़ोसी राज्य को सेना द्वारा उस विद्रोह का दमन करने का अधिकार होगा।'

इस पूर्वलेख, जिसे **ट्रोपाउ पूर्वलेख**' (Troppau Protocol) कहा जाता है, की घोषणा के पश्चात् यह सम्मेलन समाप्त हो गया।

(3) **लैबाख का सम्मेलन** (Congress of Laibach)—नेपिल्स की समस्या पर विचार करने के लिए ही प्रमुखतया यह सम्मेलन जनवरी, 1821 ई. में हुआ। इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड के विरोध के पश्चात् भी आस्ट्रिया को सेना भेजकर इस विद्रोह को दबाने का अधिकार दे दिया गया। मार्च, 1821 ई. में आस्ट्रिया ने नेपिल्स व पीडमाण्ट के विद्रोहों का दमन कर दिया।

इस सम्मेलन में मैटरनिख अपने उद्देश्यों में सफल हो गया, किन्तु इंग्लैण्ड द्वारा निरन्तर विरोध होने के कारण 'संयुक्त व्यवस्था' के टूटने के लक्षण दृष्टिगत होने लगे।

(4) **बेरोना का सम्मेलन** (Congress of Verona)—1822 ई. में इटली के प्रसिद्ध नगर वेरोना में अलग सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के प्रारम्भ होने से पूर्व इंग्लैण्ड का विदेश मन्त्री कैनिंग बन चुका था। इस सम्मेलन में लार्ड वैलिंगटन ने इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। **इस सम्मेलन के समक्ष प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित थीं :**

(i) यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम,

(ii) स्पेन का विद्रोह।

1821 ई. में यूनान ने टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। रूस यूनान की सहायता करना चाहता था, किन्तु इंग्लैण्ड ने इसका विरोध किया, क्योंकि ऐसा होने पर यूनान पर रूस का प्रभाव हो जाता। अतः यह समस्या हल न हो सकी।

1 **"We would never recognize the right of people to circumscribe the power of their king."**

दूसरी समस्या स्पेन की थी। स्पेन की जनता ने फर्डिनेण्ड सप्तम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फ्रांस तथा रूस फर्डिनेण्ड की सहायता करना चाहते थे, किन्तु लार्ड वैलिंगटन ने इसका घोर विरोध किया। इसके पश्चात् भी फ्रांस ने फर्डिनेण्ड को सहायता दी व विद्रोह को दबा दिया। इंग्लैण्ड इससे अत्यन्त क्रोधित हुआ व उसने स्वयं को संयुक्त व्यवस्था से अलग कर दिया। कैनिंग ने इस अवसर पर कहा, **"प्रत्येक राष्ट्र अपने लिए और भगवान सबके लिए।"**[1]

एक अन्य समस्या स्पेन के अमरीकी उपनिवेशों की थी। 1823 ई. में इन उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया। स्पेन उन पर पुनः अधिकार करना चाहता था, किन्तु इंग्लैण्ड ने इसका विरोध किया। इसके अतिरिक्त उसने अमरीका के राष्ट्रपति मुनरो (Monroe) को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वह घोषणा करे कि **"अमरीका अमरीकन लोगों के लिए ही है। हम किसी यूरोपीय शक्ति का हस्तक्षेप दक्षिणी अथवा उत्तरी अमरीका में सहन नहीं कर सकते।"**[2] अमरीका के राष्ट्रपति की इस घोषणा को **'मुनरो सिद्धान्त'** (Monroe Doctrine) के नाम से जाना जाता है।

अमरीका व इंग्लैण्ड इस विषय में एक हो गए थे, अतः रूस, आस्ट्रिया व प्रशा कुछ न कर सके। अतः स्पेन के उपनिवेश स्वतन्त्र हो गए।

संयुक्त व्यवस्था की असफलता के कारण (Causes of concert of Europe's Failure)—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था अधिक समय तक न चल सकी। 1822 ई. में हुई वेरोना कांग्रेस के पश्चात् यह समाप्त हो गयी। **यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के असफल हो जाने के कारण निम्नलिखित प्रमुख कारण थे :**

(i) **छोटे राज्यों का शामिल किया जाना**—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था प्रमुख पांच देशों के हाथ में थी। यूरोप के छोटे-छोटे राज्यों को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया था। इससे उनमें इस व्यवस्था के प्रति अत्यधिक रोष था। छोटे राज्यों को इस व्यवस्था के संरक्षकों से सदैव खतरा बना रहता था, अतः वे निरन्तर इस व्यवस्था के विरोधी होते जा रहे थे।

(ii) **नेपोलियन की मृत्यु**—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था यूरोप में शान्ति बनाए रखने के लिए की गयी थी। यूरोप को मुख्य खतरा नेपोलियन की ओर से रहता था। नेपोलियन की 1821 ई. में मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् मित्र-राष्ट्रों को यह खतरा न रहा, अतः यह व्यवस्था स्वतः ही समाप्त होने लगी।

(iii) **विरोधी हित**—यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के प्रतिपादक देशों के हित अलग-अलग थे। प्रत्येक देश अपने हित की बात सोचता था तथा उसी के अनुरूप कार्यवाही करना चाहता था। रूस यूनान को सहायता देना चाहता था, किन्तु इंग्लैण्ड उसका विरोध कर रहा था क्योंकि ऐसा होने से इंग्लैण्ड के भारतीय उपनिवेश को खतरा उत्पन्न हो जाता। इसी प्रकार प्रत्येक देश के हित अलग-अलग थे। ऐसी स्थिति में यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकती थी।

(iv) **प्रतिक्रियावादी विचारधारा**—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के पतन का एक प्रमुख कारण आस्ट्रिया, रूस व प्रशा की निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी विचारधारा थी। फ्रांस की क्रान्ति से यूरोप में उत्पन्न समानता, स्वतन्त्रता व भ्रातृत्व की भावना को वे शक्ति के द्वारा कुचलना

1 "Every nation for itself, and God for us all." —*Canning*

2 "America is for Americans. We can tolerate no European intervention in South or North America." —*Monroe*

चाहते थे। डेविड टामसन ने इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "**आस्ट्रिया, रूस व प्रशा यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का प्रयोग प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों की बाढ़ रोकने के लिए करना चाहते थे।**" इंग्लैण्ड इस प्रतिक्रियावाद का विरोधी था। इसी कारण पंचमुखी संघ में फूट पड़ गयी तथा वह व्यवस्था पतन की ओर अग्रसर हो गयी।

(v) **इंग्लैण्ड का अलग होना**—पंचमुखी संघ के राष्ट्रों की निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी नीतियों को इंग्लैण्ड अधिक समय तक सह न सका तथा वह इससे अलग हो गया। इंग्लैण्ड यूरोप का एक अत्यन्त प्रमुख देश था। उसके अलग होते ही यह व्यवस्था चरमरा गयी व शीघ्र ही इसका अन्त हो गया। केटलबी ने लिखा है, **ब्रिटेन का इस व्यवस्था से अलग होना, कांग्रेस प्रणाली के विघटन का प्रमुख कारण था।**"[1] इसी कारण मैटरनिख ने क्रुद्ध होकर कैनिंग के लिए कहा, **यह क्रुद्ध ईश्वर द्वारा यूरोप पर फेंका गया एक अनिष्टकारी उल्का।**"[2]

(vi) **हस्तक्षेप की नीति**—इस व्यवस्था के पतन का एक मुख्य कारण अन्य देशों के मामलों में मित्र राष्ट्रों द्वारा हस्तक्षेप करना था। इंग्लैण्ड इस नीति का विरोधी था तथा किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता था। अतः संघ के देशों में आपसी मतभेद उत्पन्न हो गया व इस व्यवस्था का पतन हो गया।

महत्व—इस प्रकार उपरोक्त सभी कारणों से यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का पतन हो गया। यह व्यवस्था 1815 ई. से 1822 ई. तक यूरोप पर छायी रही तथा उसके द्वारा ही यूरोपीय समस्याओं का निराकरण होता रहा। यद्यपि इस व्यवस्था को प्रारम्भ करने का उद्देश्य अच्छा था, किन्तु इसके सदस्य देशों के परस्पर हितों के कारण यह व्यवस्था अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। फिर भी इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। आधुनिक राष्ट्रसंघ व संयुक्त राष्ट्र संघ को इस व्यवस्था का ही विकसित रूप माना जाता है। इस व्यवस्था के कारण ही 1830 ई. व 1848 ई. की क्रान्तियों का विशेष प्रभाव यूरोप पर न हुआ। इस प्रकार यह व्यवस्था आगामी 30-40 वर्षों तक यूरोप में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने में सफल हुई। फिशर ने लिखा है, "**अपनी परिसीमाओं के होते हुए भी इसने यूरोप को 40 वर्षों तक शान्ति प्रदान की।**"[3]

प्रश्न

1. मैटरनिख की नीतियों की समीक्षा कीजिए।
2. क्या मैटरनिख प्रतिक्रियावादी था? समीक्षा कीजिए।
3. मैटरनिख की गृह-नीति का वर्णन कीजिए। क्या उसकी प्रतिक्रियावादी नीति सफल रही?
4. मैटरनिख की विदेश नीति का वर्णन कीजिए। मैटरनिख अपने उद्देश्यों में कहां तक सफल रहा?
5. विएना कांग्रेस के उद्देश्य क्या थे? अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में यह कांग्रेस कहां तक सफल हुई। **(लखनऊ, 1990)**
6. विएना कांग्रेस के कार्यों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए। **(लखनऊ, 1994)**
7. विएना कांग्रेस के सिद्धान्त क्या थे? उनका कहां तक पालन किया गया?

1 **ए हिस्ट्री ऑफ मार्डन टाइम्स**, पृ. 160.
2 **"Malevolent meteor hurled by an angry providence upon Europe."** —*Metternich*
3 **फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप**, पृ. 959.

8. विएना कांग्रेस में मैटरनिख की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
9. कांग्रेस के द्वारा लिए गए निर्णयों का मूल्यांकन कीजिए। (पूर्वांचल, 1990, 92)
10. विएना कांग्रेस ने यूरोप के मानचित्र में क्या परिवर्तन किए? वर्णन कीजिए।
11. कांग्रेस के गुण एवं दोषों पर प्रकाश डालिए।
12. विएना सम्मेलन की उपलब्धियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (गोरखपुर, 1987, 90)
13. पवित्र मैत्री संघ का वर्णन कीजिए।
14. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
(गोरखपुर, 1995; लखनऊ, 1995; पूर्वांचल, 1991, 94)
15. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था तथा उसके असफल होने के कारणों का वर्णन कीजिए।
(लखनऊ, 1991, 93)
16. मैटरनिख की उपलब्धियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (गोरखपुर, 1988, 90, 93)
17. विएना कांग्रेस के विभिन्न प्रावधानों का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।
(गोरखपुर, 1994; लखनऊ, 1992)
18. 1815 ई. के पश्चात् यूरोप के इतिहास में मैटरनिख की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(गोरखपुर, 1994; पूर्वांचल, 1992)

9

औद्योगिक क्रान्ति एवं समाजवाद का उदय

[INDUSTRIAL REVOLUTION AND THE RISE OF SOCIALISM]

औद्योगिक क्रान्ति[1]
(INDUSTRIAL REVOLUTION)

क्रान्ति का साधारणतया जैसा अर्थ लिया जाता है, उससे औद्योगिक क्रान्ति सर्वथा भिन्न थी। इस क्रान्ति में लड़ाई-झगड़ा या किसी प्रकार का रक्तपात नहीं हुआ। यह औद्योगिक क्षेत्र में हुई क्रान्ति थी। अठारहवीं शताब्दी में विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ-साथ यन्त्रों का भी आविष्कार हुआ। शीघ्र ही अच्छे तथा शीघ्र कार्य करने वाले यन्त्र तैयार हो गए। प्रत्येक व्यवसाय के लिए कारखानों तथा मशीनों का निर्माण हुआ तथा विज्ञान और उद्योग-धन्धों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। कृषि के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मशीनें तथा सिंचाई आदि की व्यवस्था में सुधार हुआ, जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई। यातायात सम्बन्धी आविष्कारों के होने से समय की भी बचत होने लगी। उपर्युक्त आविष्कारों के परिणामस्वरूप छोटे-छोटे गांव भव्य शहरों में, गृह उद्योग कारखानों में तथा पगडण्डियां चौड़ी-चौड़ी सड़कों के रूप में बदल गए। सामाजिक व्यवस्था में भी तेजी से परिवर्तन हुआ व जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। **इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में जो परिवर्तन हुए उसे 'औद्योगिक क्रान्ति' (Industrial Revolution) कहा गया।** एडवर्ड ने औद्योगिक क्रान्ति की परिभाषा निम्न शब्दों में दी

1 राबर्ट इरगैंग ने अपनी पुस्तक 'यूरोप सिंस बाटरलू' में लिखा है, "औद्योगिक क्रान्ति शब्द भ्रम पैदा करने वाला है। क्रान्ति शब्द का प्रयोग सामान्यतया राजनीतिक क्षेत्र में एकाएक हुए परिवर्तनों के लिए किया जाता है।"
उल्लेखनीय है कि 'औद्योगिक क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी नेता ब्लांकी (Blanqui) ने 1833 ई. में किया था। बाद में टायनबी द्वारा इसका प्रयोग किए जाने पर यह शब्द अत्यधिक लोकप्रिय हो गया व इसी शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। टॉयनबी ने इस समय हुए औद्योगिक परिवर्तन के लिए औद्योगिक क्रान्ति शब्द को उचित माना है।

है—**"औद्योगिक प्रणाली तथा श्रमिकों के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।"**[1] हेजन ने भी औद्योगिक क्रान्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है, **"औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ है घरेलू उत्पादन प्रणाली को कारखानों की उत्पादन प्रणाली में बदल देना।"** इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने **'मशीनी युग'** (The Age of Machines) को प्रारम्भ किया।

इंग्लैण्ड में क्रान्ति के कारण
(CAUSES OF THE REVOLUTION IN ENGLAND)

विश्व में सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड में हुई। यद्यपि बाद में जापान व रूस आदि देशों में औद्योगीकरण इंग्लैण्ड से अधिक तेजी से हुआ, किन्तु इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति का विशेष महत्व है क्योंकि इंग्लैण्ड में उपर्युक्त परिवर्तन सरकार के प्रयत्नों के कारण नहीं वरन् स्वतः हुए थे। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड ने आधुनिक युग में आर्थिक विकास की दिशा में समस्त देशों से अग्रणी रहते हुए अन्य देशों का पथ-प्रदर्शन किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैण्ड विश्व की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण रूप से छा चुका था। इस समय इंग्लैण्ड को **'विश्व की उद्योगशाला'** कहा जाता था।

औद्योगिक क्रान्ति के सम्बन्ध में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यह क्रान्ति इंग्लैण्ड में कब व सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में ही क्यों हुई? कुछ समय पूर्व यह स्वीकार किया जाता था कि औद्योगिक क्रान्ति जार्ज तृतीय के सिंहासनारोहण (1760 ई.) के साथ-साथ हुई, किन्तु अब अधिकांश इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि यह क्रान्ति दो चरणों में हुई। **प्रथम चरण 1740 ई. के लगभग प्रारम्भ हुआ तथा दूसरा चरण जिसमें इस क्रान्ति में तीव्रता आयी, 1780 ई. में प्रारम्भ हुआ।** इंग्लैण्ड व अन्य यूरोपीय देशों की स्थिति में यद्यपि विशेष अन्तर नहीं था, किन्तु फिर भी इंग्लैण्ड में ही यह क्रान्ति सर्वप्रथम क्यों हुई, यह अत्यन्त विवादास्पद विषय है। इंग्लैण्ड व फ्रांस की स्थिति के तुलनात्मक अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि जनसंख्या वृद्धि, ऊर्जा के साधन, पूंजी तथा बाजार में सामान की मांग की दृष्टि से फ्रांस व इंग्लैण्ड की स्थिति में विशेष अन्तर न था, परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस के क्रान्तिकारी युद्धों में व्यस्त रहने के कारण इंग्लैण्ड फ्रांस से बहुत आगे निकल गया। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय, उत्पादन तथा कुल व्यापार की दृष्टि से इंग्लैण्ड फ्रांस से निश्चित रूप से आगे था। **इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम क्रान्ति होने के निम्नलिखित कारण थे—**

(1) **जनसंख्या में वृद्धि**—इंग्लैण्ड में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 40% तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में 50% जनसंख्या में वृद्धि हुई। जनसंख्या में वृद्धि होने से वस्तुओं की मांग बढ़ी जिससे उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के प्रयास हुए। यह उत्पादन क्षमता उन स्थानों में बढ़ी जहां ज्यादा श्रमिकों को लगाने से प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ रहा था। अतः मजदूरी में भी वृद्धि हुई। **मजदूरी में वृद्धि होने से जनता ने अधिक सामान खरीदा जिससे पुनः वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई। इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि व आर्थिक विकास एक चक्र के समान एक-दूसरे पर आधारित थे।** इस प्रकार उत्पादन बढ़ना औद्योगिक क्रान्ति का ही अंग बन गया।

1 **"The great change in the technique of the industry and the status of workmen, is really called the industrial revolution."** —*Edward*

(2) **यातायात की सुविधा**—अठारहवीं शताब्दी में यातायात के साधनों में महत्वपूर्ण उन्नति हुई। अतः भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सुविधाजनक हो गया। अतः औद्योगीकरण के लिए साधन एकत्र करना सरल हो गया जिससे औद्योगीकरण में तेजी से विकास हुआ। 1830 ई. के पश्चात् सामान ढोने के लिए रेल (Train) का प्रयोग होने लगा, इससे उद्योगों में एकाएक तेजी आ गयी व आर्थिक विकास की उन्नति हुई। **'रेल व्यवस्था' अपने आप में एक उद्योग था जिससे अनेक व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ व आर्थिक स्थिति दृढ़ हुई।**

(3) **व्यापार में वृद्धि**—अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इसका कारण इंग्लैण्ड के सामान की मांग में अत्यधिक वृद्धि होना था। इंग्लैण्ड के सामान की मांग में वृद्धि होने के तीन कारण थे। **प्रथम, स्वदेशी बाजार में सामान की मांग में वृद्धि होना। इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि होना था। जनसंख्या बढ़ जाने के कारण अधिक उत्पादन की मांग हुई। दूसरा स्रोत** विदेशों में इंग्लैण्ड के सामान की मांग में वृद्धि होना था। यद्यपि स्पेन व पुर्तगाल ने अमरीका तथा भारत के मार्ग की खोज की थी तथा सर्वप्रथम व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किए, किन्तु वे तो अपनी समस्याओं में उलझ गए तथा इंग्लैण्ड ने परिश्रम व साहस से अपने व्यापार को सबसे आगे बढ़ाया। समस्त यूरोप तथा अपने उपनिवेशों को इंग्लैण्ड सामान पहुंचाता था। इस व्यापार में विस्तार होने से उत्पादकों पर उत्पादन बढ़ाने के लिए दबाव पड़ा। अतः उत्पादकों ने उत्पादन बढ़ाने के नवीन तरीके अपनाए। **तीसरा स्रोत** इंग्लैण्ड को सरकार की आवश्यकताओं से उत्पन्न होने वाली मांगें था। अन्य देशों की तुलना में इंग्लैण्ड की सरकार अपनी वैदेशिक नीति को देश के आर्थिक हितों के अनुरूप निर्धारित करती थी, जिससे उद्योग को प्रोत्साहन मिलता था।

इस प्रकार निरन्तर बढ़ती हुई मांग के कारण इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों में उद्योग के प्रति विकास-मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उत्पादन में वृद्धि करने के लिए नए प्रयोग तथा आविष्कार किए गए, अतः औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ।

(4) **इंग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति**—इंग्लैण्ड के चारों ओर सागर है। उसके सामुद्रिक तट कटे-फटे होने के कारण उसमें बन्दरगाह बनाने की सुविधा है। जो माल वे तैयार करते, शीघ्र ही बन्दरगाह तक पहुंच जाता और खुला समुद्र होने से बिना किसी बाधा के दूसरे देश को पहुंच जाता। यह इंग्लैण्ड का सौभाग्य था कि वहां कपड़े के उत्पादन के उपयुक्त जलवायु, कोयला व लोहे की खानें, आवागमन के योग्य नदियां, आदि साधन उपलब्ध थे। इस सुविधा ने भी इंग्लैण्ड में शीघ्र ही औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।

(5) **जल सेना**—इंग्लैण्ड की जल-सेना महारानी एलिजाबेथ के काल से यूरोप में सर्वशक्तिशाली हो गयी थी। इंग्लैण्ड को **'समुद्र की रानी'** की उपाधि मिली थी। इस जल-शक्ति के द्वारा ही युद्ध काल में उसके व्यापार को कोई देश न रोक सका। अन्य देशों के पास यह सुविधा न थी।

(6) **उपनिवेश**—अंग्रेजों के पास अनेक उपनिवेश थे जहां से वे कच्चा माल ला सकते थे तथा अपने यहां निर्मित माल को ले जाकर बेच सकते थे।

(7) **इंग्लैण्ड में स्वतन्त्रता का वातावरण**—इंग्लैण्ड में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समस्त यूरोपीय राष्ट्रों में सबसे पहले आयी। लोग अपने विचारों को जनता तक पहुंचा सकते थे, अतः इस स्वतन्त्र वातावरण में कोई भी कार्य करना अधिक कठिन न था।

(8) **कृषि-क्रान्ति द्वारा उत्पन्न बेरोजगारी**—कृषि-क्रान्ति ने इंग्लैण्ड में भूमिहीन किसानों की संख्या में महान् वृद्धि की थी। इन बेरोजगार व्यक्तियों को कारखानों में लगाना सुगम था। निर्धनता तथा बेंकारी के कारण थोड़ी मजदूरी पर अनेक स्त्री-पुरुष तथा बालक मिल जाते थे। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या का वह भाग जिसका अन्न उपजाने से कोई सम्बन्ध न था तेजी से बढ़ रहा था। कृषि की उपज बढ़ने से इस भाग को भोजन उपलब्ध कराना सरल हो गया। अच्छा भोजन मिलने से जनता का स्वास्थ्य अच्छा हुआ इससे कार्य करने की क्षमता में वृद्धि हुई। इस प्रकार कृषि उत्पादन का औद्योगिक क्रान्ति से गहरा सम्बन्ध है।

(9) **खनिज पदार्थ**—इंग्लैण्ड में कोयला तथा लोहा पास-पास पाया जाता था इस सुविधा ने भी अनेक मशीनों के निर्माण करने में काफी सहायता प्रदान की। कोयले से भाप बनी जो कल-कारखानों में शक्ति का अच्छा साधन सिद्ध हुई।

(10) **प्रतिस्पर्द्धा तथा राष्ट्रीयता**—यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा इंग्लैण्ड में प्रतिस्पर्द्धा की भावना अत्यधिक थी। इस स्पर्द्धा को राष्ट्रीय भावना से काफी बल मिला। अंग्रेज अपने को संसार में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे। इस स्पर्द्धा तथा राष्ट्रीयता की भावना ने भी औद्योगिक क्रान्ति में बड़ी सहायता की।

(11) **धन की प्रचुरता**—कल-कारखानों में बड़े पैमाने पर पूंजी का उपयोग होता है। इंग्लैण्ड में व्यापार तथा कृषि क्रान्ति के कारण धन काफी मात्रा में एकत्र हो गया था, इंग्लैण्ड को मुख्य रूप से दास व्यापार तथा भारत में विस्तृत हो रहे साम्राज्य से धन प्राप्त हुआ। अतएव इन बड़े-बड़े कारखानों को खोलने में पूंजी के लिए किसी देश का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं थी। धन की प्रचुरता ने भी क्रान्ति को लाने में सुगमता उत्पन्न की।

कुछ देशभक्तों ने अनेक आविष्कार कर क्रान्ति की लहर को विश्वव्यापी बना दिया और इंग्लैण्ड को सबका नेता बना दिया। वे आविष्कार तथा आविष्कारक निम्नलिखित थे—

(i) **जोहन के** (John Kay)—1733 ई. में एक अंग्रेज जोहन के ने अपनी मशीन **'फ्लाइंग शटल'** का आविष्कार किया। इसके द्वारा एक व्यक्ति थोड़े-से समय में बहुत-सा कपड़ा बुनने लगा। जुलाहों को इससे अत्यधिक लाभ हुआ।

(ii) **जेम्स हारग्रीब्ज** (James Hargreaves)—जेम्स हारग्रीब्ज ने एक लकड़ी का ढांचा तैयार किया और उसमें आठ तकुए लगाए। इस यन्त्र से एक व्यक्ति आठ व्यक्तियों का कार्य करने में सफल हुआ। इस यन्त्र को **'स्पिनिंग जैनी'** (Spinning Genny) का नाम दिया गया। इसका आविष्कार 1795 ई. में हुआ। आगे चलकर 'स्पिनिंग जैनी' में और सुधार हुए। उसमें 100 तकुए तक कर दिए गए।

(iii) **रिचर्ड आर्क राइट** (Richard Ark Wright)—'स्पिनिंग जैनी' में एक कमी थी, उसका कता सूत कच्चा होता था और बुनते समय बार-बार टूटता था। इस कमी को दूर करने के लिए रिचर्ड आर्क राइट ने 1769 ई. में एक नई मशीन का आविष्कार किया। इसमें बेलन (Roller) लगे रहते थे और उससे पक्का सूत काता जाता था। इस मशीन को

पानी की शक्ति से चलाया जा सकता था। इसलिए इस यन्त्र को **'वाटर फ्रेम'** (Water Frame) का नाम दिया गया।

(iv) **क्राम्पटन** (Crompton)—क्राम्पटन ने 1799 ई. में 'स्पिनिंग जैनी' तथा 'वाटर फ्रेम' को मिलाकर एक नए यन्त्र का आविष्कार किया। इसे **'म्यूल'** या **'मसलिन व्हील'** (Mule or Musline Wheel) कहा गया। यह मशीन बारीक और पक्का धागा कातती थी। अब बढ़िया तथा महीन कपड़ा बनाने में आसानी हो गयी।

(v) **एडमण्ड कार्टराइट** (Edmond Cartwright)—1785 **ई. में कार्टराइट** ने 'पावर लूम' (Power Loom) का आविष्कार किया, जिससे कपड़ा तेजी से बनने लगा।

(vi) **ह्विटने** (Whitney)—1793 ई. में एक अमरीकी ह्विटने ने अनाज को भूसे से अलग करने वाली मशीन का आविष्कार किया।

(vii) **रसायन उद्योग के आविष्कार** (Inventions of Chemicals)—सूत को रंगने के लिए कच्चे तथा खट्टे दूध में भिगोकर 8 मास तक सुखाया जाता था। 1785 ई. में एक रसायनशास्त्री ने क्लोरीन का प्रयोग रंग उड़ाने के लिए किया। इस प्रकार 8 मास का काम 2 दिनों में होने लगा। 1785 ई. में सिलैण्डर का भी आविष्कार हुआ जिससे छपाई में बड़ी आसानी हो गयी।

(viii) **भाप की शक्ति के आविष्कार** (Invention of Steam Power)—न्यूकॉमन ने सर्वप्रथम भाप का आविष्कार किया। जेम्स वाट ने भाप से चलने वाली मशीन बनायी। जल-शक्ति से भाप की शक्ति कम खर्चीली तथा उपयोगी थी।

(ix) **लौह उद्योग में सहायक** (Helpful in Iron Industries)—अब्राहम डर्बी ने लोहे को पिघलाने के लिए पत्थर का बुझा कोयला (Coke) प्रयोग कर आश्चर्यजनक कार्य किया। 1790 ई. में खानों को उड़ाने के लिए भाप-शक्ति का प्रयोग हुआ। ओपन हर्थ (Open Hearth) ने लोहा साफ करने में बड़ी सहायता की। अब लोहा बनाने में सुगमता हो गयी। 1815 ई. में हम्फ्री डेवी ने सेफ्टी लैम्प बनाकर खान खोदने वालों की जान की रक्षा की।

(x) **सड़कों व रेलों के निर्माणकर्ता** (Consturtors of Roads and Routes)—यातायात की सुविधा के लिए जॉन मैकडम ने पत्थर के छोटे टुकड़ों से सड़कें बनाने का कार्य किया। पक्की सड़कें बनाने से सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना सुगम हो गया। ब्रिण्डले ने जहाजी नहरें बनाकर यातायात में आश्चर्यजनक विकास किया। 1830 ई. में जार्ज स्टीफेन्सन ने रेलगाड़ी बनाकर संसार को आश्चर्य में डाल दिया। अब सामान ढोना बहुत सुगम हो गया। बीटस्टोन ने **विद्युत तार** (Electric Telegraph) आविष्कृत कर शीघ्र सन्देश पहुंचाने में सहायता की।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव
(EFFECTS OF INDUSTRIAL REVOLUTION)

अर्नोल्ड टॉयनबी ने औद्योगिक क्रान्ति के विषय में लिखा है, **"औद्योगिक क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी अपितु विकास की निरन्तर प्रक्रिया थी।"** रैम्जे म्योर के अनुसार, यह क्रान्ति एक बड़ी भारी, परन्तु शान्तिपूर्वक बिना किसी शोर के हुई क्रान्ति थी। औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव इंग्लैण्ड के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों पर विशेष रूप से पड़ा। जिसका वर्णन अग्र प्रकार से है :

(क) आर्थिक प्रभाव—इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने इंग्लैण्ड की आर्थिक अवस्था में प्रभावशाली परिवर्तन किए। अब तक इंग्लैण्ड एक कृषि-प्रधान देश था, इस क्रान्ति ने उसे औद्योगिक देश बना दिया। नए-नए आविष्कारों के कारण कारखानों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। कुटीर उद्योग-धन्धे समाप्त हो गए और उद्योगों को केवल धनी व्यक्ति ही चलाने में सफल हुए। धनिक अधिक धनी बनते चले गए। अतः पूंजीवाद का जन्म हुआ। पूंजी की मांग बढ़ने लगी जिससे अनेक बैंकों का जन्म हुआ। 1750 ई. में इंग्लैण्ड में केवल 10-12 बैंक थे, किन्तु 1793 ई. में इनकी संख्या बढ़कर 400 तक पहुंच गयी।

व्यापार में बेहद उन्नति हुई। संसार से धन खिंच-खिंच कर इंग्लैण्ड आने लगा। इस क्रान्ति ने अमरीकी उपनिवेशों के खो जाने की क्षतिपूर्ति कर दी। देश में कल-कारखाने ही नहीं बढ़े बल्कि शहरों में पक्के और सुन्दर मकानों का निर्माण हुआ। **औद्योगिक क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन वर्गों के जीवन में इस क्रान्ति का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था उन्हें ही सर्वाधिक आर्थिक लाभ हुआ।** इंग्लैण्ड में भूमि का मूल्य बढ़ जाने से कुलीन वर्ग को अत्यधिक लाभ हुआ। मध्यम वर्ग भी सन्तुष्ट था, किन्तु श्रमिक वर्ग, जिसका जीवन इस क्रान्ति ने बदल दिया था, सन्तुष्ट न था।

(ख) सामाजिक प्रभाव—औद्योगिक क्रान्ति ने समाज को मुख्यतः दो भागों में बांट दिया—एक, पूंजीवादी और दूसरे, मजदूर। दोनों में असमानता चरम सीमा पर पहुंच गयी। एक वर्ग के पास ऊंचे-ऊंचे शानदार महल थे, जो आनन्द तथा विलासिता से भरपूर थे। दूसरी ओर निर्धनता का नंगा नाच हो रहा था। मकानों के नाम पर सीलदार गन्दी कोठरियां उन्हें रहने को मिलती थीं। खाने को रूखा-सूखा भोजन मिलता था। छोटे-छोटे बच्चों को 16-16 घण्टे काम करना पड़ता था। इस विषय में शैपिरो ने लिखा है, **"प्रत्येक दिन प्रातःकाल गरीब बच्चों को जगाकर मिल में काम पर ले जाया जाता था। वहां दुर्गन्ध से भरे हुए कमरों में और लाखों पहिए घूमने की आवाजों में उनकी छोटी-छोटी अंगुलियां व पांव लगातार काम करते जाते थे। उन्हें अपने ऊपर देखभाल करने वाले निर्दयी अफसरों के भारी मुक्कों का डर काम में लगे रहने के लिए विवश करता था।"**

कारखानों में सीलन, गन्दगी तथा दुर्गन्ध स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक थी। उससे अनेक मजदूर रोगग्रस्त हो जाते थे। अनेक मजदूर पहियों की पकड़ में आकर घायल हो जाते थे। ऐसे रोगी या घायल व्यक्तियों को कार्य से मुक्त कर दिया जाता था, उन्हें किसी प्रकार की क्षति-पूर्ति न दी जाती थी।

नगरों की संख्या बढ़ रही थी। वहां की आबादी भी बढ़ती जा रही थी। मकान जल्दी-जल्दी बन रहे थे जिसमें स्वास्थ्य का ध्यान न रखा जाता था। नगर गन्दगी से परिपूर्ण थे। नगर में अधिकांश व्यापारी तथा मजदूर रहते थे। व्यापारियों की दशा तो फिर भी ठीक थी, किन्तु मजदूरों का जीवन नारकीय था। **सिडनी वेब के शब्दों में, "औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरों को अपने ही देश में एक भूमिहीन परदेशी बना दिया था।"**[1]

(ग) राजनीतिक प्रभाव—प्रजातन्त्र यद्यपि इंग्लैण्ड के शासन की नीति थी, परन्तु इस क्रान्ति ने राज्य में पूंजीपतियों का प्रभाव काफी बढ़ा दिया। उन्होंने धन का लालच देकर वोट

1 "The Industrial Revolution has left the labourer a landless stranger in his own country." —*Sydney Webb*

लेने प्रारम्भ कर दिए। संसद में पूंजीवादियों की संख्या काफी बढ़ गयी। वे अपनी सुविधाओं का ध्यान रखते थे, गरीब जनता का नहीं। कारखानों की दयनीय अवस्था तथा मजदूरों की निर्धनता में देश के कुछ विचारकों ने सुधार करना चाहा, अतः समाजवाद और साम्यवाद का उदय हुआ जिन्होंने पूंजीपतियों के अत्याचारों तथा शोषण के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। सरकार को विवश होकर **'फैक्टरी एक्ट'** बनाने पड़े। बेकारी की समस्या ने सरकार व जनता को परेशान कर दिया। कुछ लोगों ने मशीनों का विरोध किया। अनेक स्थानों पर दंगे हुए, कारखानों में आग लगा दी। सरकार को विद्रोहियों को पकड़ कर फांसी देनी पड़ी। पूंजीपतियों व मजदूरों में भी संघर्ष हुआ। अन्त में मजदूरों की सुविधाओं को मानना पड़ा। कॉमन सभा का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ा तथा पूंजीपति राजनीति से दूर रहने लगे।

उद्योग-धन्धों के विकास से बहुत-सा सामान तैयार होने लगा। उसे खपाने के लिए नए-नए बाजारों की खोज हुई। जनसंख्या बढ़ने के कारण उसको बसाने की समस्या भी सामने आयी। अतः साम्राज्यवाद का विकास हुआ।

यातायात की सुविधा से जनता को भी लाभ हुआ और शासन चलाने में सुविधा हुई। रेल तथा तार के प्रयोग से सरकार का शासन सुदृढ़ तथा स्थायी हुआ। राज्य में अनेक नियम पारित हुए जैसा कि एन्सर का भी कथन है—**"10वीं शताब्दी में होने वाले संसदीय सुधार औद्योगिक क्रान्ति के ही कारण हुए थे।"**[1]

औद्योगिक क्रान्ति का प्रसार
(EXPANSION OF INDUSTRIAL REVOLUTION)

इंग्लैण्ड में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड तक ही सीमित न रही। शीघ्र सी उसका प्रसार यूरोप के अन्य देशों में हुआ। नेपोलियन बोनापार्ट की पराजय के पश्चात् यूरोपीय महाद्वीप में इस क्रान्ति की प्रगति प्रारम्भ हो गयी। अमरीका में भी पूंजीपति वर्ग ने बड़े-बड़े फार्म तथा कारखाने खोल लिए तथा श्रमिकों का कार्य करने के लिए अफ्रीका से गुलाम लाए गए। इंग्लैण्ड की तकनीकी सहायता तथा मशीनों की उपलब्धि से 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वहां औद्योगीकरण बड़े पैमाने पर आरम्भ हो गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् अमरीका में तीव्र औद्योगिक उन्नति हुई। नवीन आविष्कारों, वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नति के कारण अमरीका उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गया। **कृषि के उपकरणों से लेकर उद्योगों के लिए इस्पात, बिजली के उपकरण तथा भारी मशीनों का निर्यात होने लगा।**

फ्रांस में औद्योगिक उन्नति मुख्यतः 1830 **ई. के मध्य हुई।** नेपोलियन के पतन के पश्चात् फ्रांस में पुनः राजतन्त्रात्मक शासन की स्थापना हुई। फ्रांस के राजा लुई फिलिप ने उद्योगपतियों व उद्योगों को प्रोत्साहित किया तथा मजदूरों के आन्दोलन को दबाया। परिणामस्वरूप देश में उद्योग बढ़ा, रेलों का विस्तार हुआ तथा विदेशों से मशीनों का आयात किया गया। **उद्योगों को बढ़ाने के लिए सड़कों एवं अन्य यातायात के साधनों का भी विकास किया गया।**

जर्मनी में औद्योगिक विकास कुछ देर से हुआ। राजनीतिक संगठन (Unification) के अभाव में औद्योगिक उन्नति होना सम्भव न था। बिस्मार्क द्वारा 1870 ई. में जर्मनी का एकीकरण करने के पश्चात् वहां भी औद्योगिक उन्नति तीव्र गति से हुई।

1 **'The Parliamentary Reforms in England during the nineteenth century were the direct outcome of the Industrial revolution.'** —*Ensor*

जर्मनी के समान रूस में भी औद्योगिक उन्नति देर में हुई। यद्यपि रूस के जार एलेक्जेण्डर द्वितीय ने कृषक दासता मुक्ति नियम पारित कर कृषकों की दशा सुधारने का प्रयास किया, तथा एलेक्जेण्डर तृतीय ने देश में उद्योगों को प्रोत्साहन दिया, विदेशों में लोगों को ट्रेनिंग दिलवायी तथा बाहर से मशीनें मंगवायीं, किन्तु इन सब प्रयत्नों के पश्चात् भी रूस में विशेष औद्योगिक उन्नति न हो सकी। रूस में औद्योगिक उन्नति 1917 ई. की क्रान्ति के पश्चात् ही हो सकी। कृषि दासों की मुक्ति से श्रम समस्या भी हल हो गयी। शीघ्र ही रूस औद्योगिक दृष्टि से अत्यधिक उन्नत हो गया।

एशिया में सर्वप्रथम औद्योगिक उन्नति करने वाला देश जापान रहा। कार, रेडियो, ट्रांजिस्टर, कैमरे, घड़ियां व खिलौने बनाने में जापान आज विश्व के अग्रणी देशों में है। जापान ने बड़े उद्योग के स्थान पर छोटे उद्योगों को अधिक प्रोत्साहन दिया, जिससे बेरोजगारी की समस्या न फैल सके।

पूंजीवाद का जन्म
(RISE OF CAPITALISM)

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पूंजीवाद का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रान्ति से पूंजी थोड़े-से व्यक्तियों के हाथों में ही केन्द्रित होने लगी क्योंकि बड़े-बड़े कारखानों के मालिक धनी व्यक्ति थे। कारखानों से मिलने वाले लाभ से धनी और अधिक धनी होते गए व मजदूरों का शोषण बढ़ता गया। इस क्रान्ति के कारण मजदूरों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही जो जीविका के लिए पूर्णरूप से कारखाने के मालिकों पर ही आश्रित थे। अमीर वर्ग अथवा पूंजीपीत वर्ग का ही शासन में भी महत्वपूर्ण स्थान रहा।

साम्राज्यवादिता का उदय
(RISE OF IMPERIALISM)

औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुई थी। अतः विश्व के अनेक देशों में इंग्लैण्ड का बना हुआ माल बिकने लगा। धीरे-धीरे इंग्लैण्ड ने विश्व के अनेक भागों पर आधिपत्य जमाकर वहां के बाजार तथा अन्य स्रोतों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। भारत पर भी इंग्लैण्ड ने व्यापार के माध्यम से आधिपत्य स्थापित किया। अपने माल को बेचने के लिए इंग्लैण्ड ने अनेक अविकसित भागों में अपने उपनिवेश स्थापित करने प्रारम्भ कर दिए। इससे इंग्लैण्ड को दोहरा लाभ होता था। उपनिवेशों से कच्चा माल (Raw material) सस्ते दामों पर मिलता था व तैयार माल महंगे दामों पर वहां बिकता था।

इंग्लैण्ड के समान ही यूरोप के अन्य देशों में भी औद्योगिक क्रान्ति होने पर, उन्हें भी उपनिवेशों की आवश्यकता होने लगी। जहां-जहां इंग्लैण्ड का आधिपत्य पहले से ही था, वहां इंग्लैण्ड से मुकाबला करना सरल न था, अतः सब यूरोपीय देशों में अपने माल को अपने ही देश में बेचने की योजना के अन्तर्गत विदेशों से आने वाले सस्ते माल पर भारी आयात कर लगा दिया गया। इस प्रकार यूरोप के देशों ने अपने-अपने उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया।

औद्योगिक उन्नति विदेशों से कच्चा माल मंगाए बिना सम्भव न थी, अतः यूरोप के प्रत्येक देश को उपनिवेशों की आवश्यकता महसूस होने लगी। अतः यूरोप के उन्नत देश अविकसित देशों में अपने-अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो गए तथा एशिया, अफ्रीका व दक्षिणी अमरीका में उन्होंने उपनिवेश स्थापित किए। **इस प्रकार उपनिवेशों**

के साधनों का प्रयोग पहले से ही विकसित देशों की आर्थिक उन्नति के लिए होने लगा व साम्राज्यवादिता (Imperialism) **की जड़ें मजबूत होने लगीं।** प्रत्येक देश अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो गया। इस प्रकार यूरोपीय देशों में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हुई जिसका अन्त प्रथम व द्वितीय महायुद्धों के रूप में हुआ। फ्रेंच राजनीतिज्ञ तुर्गो ने ठीक ही कहा था, "**साम्राज्याधीन देश वृक्ष पर लगे हुए फलों के समान हैं जो पक जाने पर स्वयं ही गिर जाते हैं।**"

समाजवाद का उदय
(RISE OF SOCIALISM)

यूरोप में समाजवाद के उदय होने के विषय में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में समाजवाद क्या है? **समाजवाद की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है।** समाजवाद की अनेक धाराएं व अनेक अवस्थाएं हैं। जितनी परिभाषाएं हुई हैं वह किसी न किसी विशिष्ट धारा अथवा अवस्था को केन्द्रित करके की गयी हैं, अतः वे अधूरी प्रतीत होती है। **बर्ट्रेण्ड रसल ने समाजवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है,** "हम समाजवाद के स्तर को यह कहकर व्यक्त कर सकते हैं कि यह भूमि और सम्पत्ति के सामुदायिक स्वामित्व का पक्षपाती है", परन्तु यह कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है। इससे कुछ अधिक सार्थक परिभाषा ह्यूगन नामक अमरीकी सामाजिक विचारक ने दी है। उसके अनुसार, "**समाजवाद मजदूर वर्ग के उस राजनीतिक आन्दोलन का नाम है जिसका उद्देश्य उत्पादन के बुनियादी साधनों को सामुदायिक सम्पत्ति बनाकर और उनको लोकतन्त्रीय प्रबन्ध में रखकर शोषण का अन्त करना है।**" इस परिभाषा से समाजवाद की मूल विशेषता पर अवश्य प्रकाश पड़ता है, किन्तु समाजवाद की पूर्ण परिभाषा यह भी प्रतीत नहीं होती।

प्रो. रघुकुल तिलक के विचार इस विषय में उल्लेखनीय हैं।[1] उन्होंने लिखा है कि परिभाषा की अपेक्षा यदि हम कुछ ऐसे लक्षणों की ओर ध्यान दें जो साधारणतया समाजवाद की सभी धाराओं में पाए जाते हैं तो समाजवाद का स्वरूप समझने में सहायता मिलेगी। **ऐसे प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—**

(i) वर्तमान राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को अन्यायपूर्ण मानकर उसकी कड़ी निन्दा।
(ii) एक नवीन न्यायपूर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन।
(iii) इस बात का पक्का विश्वास कि नवीन व्यवस्था को कार्यान्वित किया जा सकता है।
(iv) यह मान्यता कि वर्तमान व्यवस्था का प्रमुख कारण हमारी भ्रष्ट संस्थाएं हैं।
(v) शैक्षिक, नैतिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में नवीन मूल्यों की स्थापना।
(vi) निर्दिष्ट कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संकल्प।

ये ऐसे लक्षण हैं जो समाजवाद के प्रत्येक सम्प्रदाय में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं।

समाजवाद के चार प्रमुख सम्प्रदाय हैं। ये हैं—

(i) काल्पनिक समाजवाद अथवा यूटोपियन समाजवाद।
(ii) वैज्ञानिक समाजवाद अथवा मार्क्सवादी समाजवाद।

1 **लोकतन्त्र : स्वरूप एवं समस्याएं**, पृ. 111।

(iii) लोकतन्त्रीय समाजवाद।

(iv) कुछ अन्य समाजवादी धाराएं : उदाहरणार्थ, फेबियनवाद, श्रम संघवाद (सिंडिकैलिज्म), श्रेणी समाजवाद (गिल्ड सोशलिज्म), आदि।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप **पूंजीवादी समाज** (Capitalistic Society) का जन्म हुआ, **जिससे अमीर और अमीर व गरीब और गरीब होते चले गए।** मजदूर वर्ग का सर्वाधिक शोषण होता रहा। राष्ट्र की सम्पत्ति का तेजी से विकास हो रहा था, किन्तु उसका मूल्य मजदूरों के स्वास्थ्य से चुकाया जा रहा था। मजदूरों को उस पूंजी का बहुत कम भाग मिलता था, जिसका वे उत्पादन करते थे। अधिकांश मुनाफा कारखाने के मालिकों की जेबों में जाता था। इस प्रकार मध्यकालीन सामन्तों और जमींदारों के अतिरिक्त एक नए पूंजीपति वर्ग की स्थापना हुई। मजदूर पूर्णतया पूंजीपति वर्ग की दया पर ही निर्भर थे। स्वतन्त्र होते हुए भी वे गुलाम थे। **धीरे-धीरे एक नवीन वर्ग का भी उदय होने लगा जिसे बुद्धिजीवी वर्ग कहा जाने लगा।** कारखानों व मशीनों को ठीक प्रकार से चलाने के लिए तकनीकी योग्यता वालों की आवश्यकता होने लगी। कारखानों में बनने वाले सामान के वितरण, उचित हिसाब-किताब रखने, पत्र-व्यवहार करने तथा व्यापारिक नीति को निर्धारित करने के लिए पढ़े-लिखे एवं योग्य व्यक्तियों पर पूंजीपतियों को निर्भर रहना पड़ता था। ये शिक्षित व योग्य व्यक्ति कारखानों के मालिक न होते हुए भी उनकी आधारशिला के समान थे। इस कारण समाज में इस वर्ग को विशिष्ट सम्मान प्राप्त होने लगा। **धीरे-धीरे अपनी शिक्षा, ज्ञान और प्रभाव के कारण इनका वही महत्व हो गया जो मध्यकाल में पादरियों का था।** इस प्रकार मध्यकालीन सामन्त, पादरी व कृषकों का रूप अब पूंजीपति, बुद्धिजीवी व श्रमिकों ने ले लिया।

जिस प्रकार मध्ययुग में परिवर्तन मध्य वर्ग (Middle Class) **के सहयोग से हुआ था, उसी प्रकार अब प्रेस, समाचार पत्र व पुस्तकों की सहायता से इस बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने विचारों का प्रचार करना प्रारम्भ किया।** धीरे-धीरे लोग उनके विचारों से प्रभावित होने लगे तथा समाज का नेतृत्व इसी वर्ग के हाथों में आ गया। अतः समाजवादी विचारधाराएं जोर पकड़ने लगीं। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की सरकार की नीति उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए हस्तक्षेप न करने की थी। इस सिद्धान्त के अनुसार उद्योगपति स्वयं अपने तथा मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए उत्तरदायी होता था। इस नीति ने इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति को विकसित होने का अवसर प्रदान किया, किन्तु कालान्तर में इसके दुष्परिणामों को देखते हुए सरकार ने नीति में परिवर्तन किया। मिलों और कारखानों की आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण करके सरकार ने अपने दायित्व का पालन किया तथा मजदूरों की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गए।

मजदूरों व उनके नेताओं का विश्वास था कि उनका जीवन समाजवाद की स्थापना से ही सुधर सकता है। बुद्धिजीवी वर्ग के प्रभाव से समाजवाद की भावना दिन-प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी। यूरोप के कुछ प्रमुख बुद्धिजीवी व नेताओं (जो समाजवाद के समर्थक थे) ने मजदूरों में समाजवादी भावनाओं को सशक्त बनाया। मजदूरों का विचार था कि समस्त मिलों, कारखानों व भूमि पर राज्य अथवा देश की जनता का आधिपत्य होना चाहिए, न कि कुछ व्यक्तियों का। समस्त साधनों का उपभोग जनता द्वारा किया जाना चाहिए क्योंकि उत्पादन जनता के द्वारा ही किया जाता है। अतः मजदूरों का विचार था कि लाभ भी सब को समान ही होना चाहिए। निजी सम्पत्ति रखना श्रमिक सामाजिक अपराध समझते थे। उद्योगपति द्वारा इस विचारधारा का विरोध किया जाना स्वाभाविक ही था। **उद्योगपतियों का विचार था कि**

श्रमिकों को कुछ लाभांश देकर इस विचारधारा का दमन किया जा सकता है। अतः उद्योगपतियों ने कारखानों की दशा सुधारकर तथा मजदूरों की आर्थिक दशा में उन्नति कर इस विचारधारा को समाप्त करने का असफल प्रयास किया, किन्तु समाजवाद की जड़ें अत्यन्त गहरी हो चुकी थीं अतः वे और सशक्त हो गयीं।

19वीं शताब्दी में विकसित हो रही समाजवादी विचारधाराओं को कार्ल मार्क्स ने और भी सुव्यवस्थित किया। कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की नवीन रूपरेखा तैयार की और **'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र'** (Communist Menifesto) में प्रकाशित की। कार्ल मार्क्स ने कहा कि पूंजीवाद मनुष्य को गुलामी में जकड़ने वाली एक जंजीर है, जिसे तोड़ना आवश्यक है। पूंजीवाद का विनाश करने के तरीकों को भी कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट किया। पूंजीवादी व्यवस्था के जीवित रहते हुए, समाजवाद की स्थापना की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। कार्ल मार्क्स का विचार था कि पूंजीवादी व्यवस्था को श्रमिक शक्ति के द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार की विचारधारा ने श्रमिकों को पूंजीवाद का विरोध करने के लिए प्रेरित किया।

इस प्रकार एक ऐसा संघर्ष प्रारम्भ हुआ जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि कोई राज्य किसी अन्य राज्य पर अधिक दिन तक अपना आधिपत्य नहीं रख सकता तथा कोई एक वर्ग सदैव दूसरे वर्ग का शोषण नहीं कर सकता। इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप, विश्व के अनेक देशों में समाजवादी अथवा साम्यवादी संघर्ष की स्थापना हो सकी।

प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति के कारणों व परिणामों का वर्णन कीजिए।
2. इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति के होने के कारणों व अन्य देशों में इसके प्रसार का वर्णन कीजिए।
3. औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड में क्यों प्रारम्भ हुई?
4. औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
5. औद्योगिक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? उसके क्या परिणाम हुए?
6. समाजवाद से आप क्या समझते हैं? यूरोप में समाजवाद के विकास का वर्णन कीजिए।
7. निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए—
   (i) नवीन आविष्कार।
   (ii) पूंजीवाद।
   (iii) साम्राज्यवादिता का विकास।
   (iv) समाजवाद।

10

1830 ई. की क्रान्ति
[THE REVOLUTION OF 1830 A. D.]

भूमिका
(INTRODUCTION)

यूरोप के इतिहास में 1830 ई. को क्रान्ति का वर्ष माना जाता है। यह क्रान्ति फ्रांस से प्रारम्भ होकर लगभग सम्पूर्ण यूरोप में फैल गयी। वास्तव में इस क्रान्ति के मूल में शासकों की रूढ़िवादी नीति के विरोध में जनता का विरोध था। 1815 ई. से 1830 ई. के दौर में यूरोप में उन सरकारों का राज था जो किसी भी प्रकार के परिवर्तनों के विरुद्ध थीं। ये सरकारें समाज में एकमात्र अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहती थीं तथा अपने रूढ़िवादी सिद्धान्त को उस युग में स्थापित करना चाहती थीं जबकि आर्थिक एवं बौद्धिक क्रान्ति के कारण समाज उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं था।

1830 से पूर्व फ्रांस में राजसत्तावादियों का प्राधान्य था। धीरे-धीरे इनकी प्रतिक्रियावादी एवं अत्याचारी नीति का विरोध बढ़ता जा रहा था। 1824 ई. में लुई XVIII की मृत्यु हो गयी, उसके बाद उसका भाई आर्तुला का काउण्ट (Count of Artois) **चार्ल्स दशम्** के नाम से फ्रांस की राजगद्दी पर बैठा। चार्ल्स दशम् के गद्दी पर बैठते ही फ्रांस की राजनीतिक स्थिति ने पुनः एक गम्भीर मोड़ लिया। चार्ल्स दशम् कट्टर राजतन्त्रवादी पार्टी का नेता था और इससे किसी भीं प्रकार के उदारवादी कार्यों की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। प्रो. शैपीरो के अनुसार, **"नया राजा पुराने शासक का बच्चा था, वह तो यह समझता था कि राज्यक्रान्ति के बिना प्रकाश की क्रूरता उत्पन्न कर दी है। वह वनवास के बाद उदासीन तो हो गया था, किन्तु बुद्धिमान नहीं बन पाया था, वह पुराने समय की व्यवस्था एवं कानूनों को लागू करने पर तुला हुआ था।"**[1]

1830 ई. की क्रान्ति के कारण
(CUASES OF THE REVOLUTION OF 1830)

1830 ई. की फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे—

1 "The new king was a child of the old regime to whom the French Revolution brought bitterness without enlightenment. He had returned from exile as a sodden but not a wiser man, hence, he was fully, determined to restore both the spirit and the institutions of former days."

(i) **चार्ल्स X की प्रतिक्रियावादी नीति**—चार्ल्स X घोर प्रतिक्रियावादी थ। इतिहासकार लिप्सन के अनुसार, **"आर्टोइस का चार्ल्स दसवें के नाम पर शासक बनना प्रतिक्रियावाद को प्रेरणा मिलना था। यह नया राजा बहुत आरम्भ से ही स्वयं को राजतन्त्रवादियों का नेता मानता था।"**[1] सिंहासन पर बैठते समय उसने लुई XVIII द्वारा घोषित चार्टर पर चलने की बात कही थी, लेकिन सिंहासन हाथ में आते ही उसकी प्रतिक्रियावादी नीति यथाशीघ्र सामने आने लगी। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थक था। **उसका कहना था कि इंग्लैण्ड के राजा की भांति वैध शासक के रूप में रहने की अपेक्षा मैं जंगल में लकड़ी काटना अधिक पसन्द करूंगा।**[2]

(ii) **चार्ल्स द्वारा चर्च की प्रधानता**—चार्ल्स X चर्च की सत्ता का समर्थक था। वह चर्च के लिए अपना सिंहासन भी छोड़ने के लिए तैयार था। वह चाहता था कि चर्च और राज्य एक हो जाएं। वह चर्च की शक्ति को पुनः सुदृढ़ करना चाहता था। 1789 ई. की क्रान्ति के दौरान चर्च से शिक्षा देने का जो अधिकार छीन लिया गया था वह अधिकार उसे पुनः दे दिया गया। फ्रांस के विश्वविद्यालय का सर्वाध्यक्ष एक पादरी को बनाया गया तथा कैथोलिक धर्म विरोधी अध्यापकों का बहिष्कार किया जाने लगा। चर्च की आलोचना करने वाले व्यक्ति को सात वर्ष के कठोर कारावास के दण्ड देने की व्यवस्था की गयी। इसके अतिरिक्त उसने अपने उत्तराधिकारी ड्यूक वोदो की शिक्षा के लिए थेरे नामक एक कट्टर कैथोलिक को नियुक्त किया जिससे राजकुमार भी कैथोलिक विचारों का बन जाए। धार्मिक उत्सवों को वह राजकीय रूप से प्रोत्साहन एवं सहायता देता था, अतः उसने धार्मिक दल को फ्रांस में शक्तिशाली बना दिया। कभी-कभी वह स्वयं धार्मिक जुलूस का जलती हुई मशाल लेकर नेतृत्व किया करता था, जिससे कि धार्मिक संस्थाओं की महत्ता कायम रहे। वेलिंगटन ने उसके सम्बन्ध में लिखा, **चार्ल्स दशम् के सामने जेम्स द्वितीय के पतन का उदाहरण कोई मूल्य नहीं रखता। वह जो राज्य स्थापित करने जा रहा है जोकि पादरियों द्वारा, पादरियों का और पादरियों के लिए है।**[3]

(iii) **क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा मान्यताओं की अवहेलना**—चार्ल्स X क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा जनता के अधिकारों का घोर विरोधी था। प्रारम्भ में उसने मेरी अन्तायनेत के साथ मिलकर क्रान्ति को दबाने का असफल प्रयास किया था, असफल होने के बाद वह विदेश भाग गया। वहां भी वह निरन्तर क्रान्ति के विरोध का प्रचार करता रहा, कालान्तर में फ्रांस के सिंहासन पर बैठने के पश्चात् उसने फ्रांसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का खुलकर विरोध किया। उसने प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी। पत्रिकाओं पर भी कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। प्रेस के नियन्त्रण के विरोध में काफी प्रदर्शन हुए। इस प्रदर्शन में नेशनल गार्ड्स ने भी भाग लिया अतः नेशनल गार्ड्स को भी भंग कर दिया गया।

(iv) **राष्ट्रीय धन का अपव्यय**—सिंहासन पर बैठते ही सर्वप्रथम चार्ल्स X ने उन कुलीन एवं पादरियों की दयनीय अवस्था पर विशेष ध्यान दिया जिनकी सम्पत्ति फ्रांसीसी क्रान्ति के

1 "The accession of Artois is under the style of Charles naturally gave further impetus of the reactionary movement. The new king had been accepted ever since the first restoration, as the leader of the extreme right." —*Lipson*

2 "I will saw wood rather be a king of the English type."

3 "For him there is no such things as political experience with the worning of James II before him. Charles is setting up a Govt. priests, through priests for priests." —*Welington*

दौरान छीन ली गयी थी। **इस जब्त की हुई सम्पत्ति को लुई XVIII के आज्ञा-पत्र द्वारा वैधानिक रूप से स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए कुलीन या पादरी इसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकते थे। अतः चार्ल्स ने ऐसे कुलीनों एवं पादरियों को मुआवजा देने का निश्चय किया। उसके इस कार्य में राजकीय कोष से दो करोड़ अस्सी लाख फ्रांक खर्च हो गए।** इससे राष्ट्र को बहुत हानि हुई, लेकिन इस क्षतिपूर्ति का एक नया तरीका निकाला गया जो चार्ल्स के लिए घातक सिद्ध हुआ। उसने जनसाधारण से लिए गए ऋण के सूद की दर पांच प्रतिशत से घटाकर तीन प्रतिशत कर दी। सूद की दर घटाने से सरकारी बॉण्ड खरीदने वाले मध्यवर्ग को काफी क्षति उठानी पड़ी। अतः मध्यवर्ग की आय काफी कम होने से वह सरकार से काफी रुष्ट हो गया।

(v) **उदारवादियों का प्रभाव**—चार्ल्स X की अत्यधिक प्रतिक्रियावादी नीति का परिणाम यह हुआ कि उदारवादियों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। इसका स्पष्ट उदाहरण 1827 ई. के आम चुनावों में देखने को मिलता है। इस चुनाव में प्रतिक्रियावादियों ने मतदाताओं पर अनेक प्रकार से दबाव डाला, लेकिन फिर भी राजसत्तावादियों के 125 के जवाब में उदारवादियों को 428 स्थान प्राप्त हुए। इस परिणाम से चार्ल्स X काफी चिन्तित हुआ, अतः उसने चैम्बर को भंग कर दिया। इसके बाद चुनाव पुनः हुआ, लेकिन इस बार भी उदारवादियों को ही बहुमत प्राप्त हुआ।

(vi) **तात्कालिक कारण : चार्ल्स दशम् का सेण्ट क्लाउड का अध्यादेश**—1830 **की फ्रांसीसी क्रान्ति का तात्कालिक कारण चार्ल्स के सेण्ट क्लाउड के अध्यादेश** (Ordinance of St. Cloud) **थे।** चार्ल्स दशम् ने अपने विरोधियों के प्रभाव को नष्ट करने के उद्देश्य से अध्यादेश जारी किया जिसके द्वारा चार दमनकारी कानून लागू किए गए। ये कानून थे—

(अ) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(ब) नव-निर्वाचित प्रतिनिधि-सभा को उसकी अवधि से पूर्व ही भंग कर दिया गया।

(स) सम्पत्ति-योग्यता को ऊंचा करके मताधिकार को अत्यन्त सीमित कर दिया गया। इस कानून द्वारा 75 प्रतिशत नागरिक मताधिकार से वंचित हो गए।

(द) सभा की कार्यावधि 7 से 5 वर्ष कर दी गयी।

चार्ल्स X का यह अध्यादेश वास्तव में प्रतिक्रिया की अन्तिम सीमा थी। जनता और पत्रकारों ने इस अध्यादेश का प्रबल विरोध किया। उदारवादी, गणतन्त्रीय विचार वाले, मजदूर तथा बोनापार्ट पक्ष वाले सब चार्ल्स X के विरोधी हो गए। अतः इन चार अध्यादेशों ने फ्रांस की 1830 ई. की क्रान्ति का विस्फोट कर दिया गया। चारों और क्रान्ति के नारे लगाए जाने लगे। अन्त में 27 जुलाई को क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी।

जुलाई क्रान्ति की घटनाएं
(EVENTS OF THE JULY REVOLUTION)

राजा एवं प्रधानमन्त्री इस क्रान्ति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। 27 जुलाई को यह क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी। नागरिकों एवं सशस्त्र सैनिकों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में सेना न तो तोपों का प्रयोग कर सकी और न ही नागरिकों की मोर्चाबन्दी तोड़ सकी। बहुत-से सैनिक मारे गए। बूर्बां वंश के सफेद झण्डे के स्थान पर क्रान्ति के तिरंगे झण्डे फहराए गए। यह गृह-युद्ध 27 जुलाई से 29 जुलाई तक तीन दिन तक चलता रहा। यह गृह-युद्ध पेरिस तक ही सीमित रहा। 29 जुलाई को दो सैनिक टुकड़ियां क्रान्तिकारियों से

जा मिलीं और क्रान्तिकारियों ने पेरिस पर अधिकार कर लिया। चार्ल्स ने अपने अध्यादेश को वापस लेने की बात कही, परन्तु जनता अब इसके लिए तैयार न थी, फिशर के शब्दों में, **"सम्राट समर्थकों के आघात का पेरिस निवासियों ने तीन दिन के घमासान युद्ध से उत्तर दिया तथा फ्रांस के पुरातन राजवंश का भाग्य समाप्त कर दिया।"**[1] हेजन ने लिखा है—**"यह युद्ध तीन दिन तक चला। यह जुलाई क्रान्ति थी—गौरवपूर्ण तीन दिन।"**[2]

चार्ल्स X का सिंहासन परित्याग तथा फ्रांस से पलायन—जब चार्ल्स की सैन्य शक्ति क्रान्तिकारियों के सामने पराजित हो गयी तो उसने क्रान्तिकारियों से समझौता करना चाहा जैसा कि ऊपर भी कहा चुका है, लेकिन वह अपनी इस कूटनीतिक चाल में असफल रहा। अन्त में 31 जुलाई को चार्ल्स X अपने 10-वर्षीय पौत्र काउण्ट ऑफ चेम्बोर्ड के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर स्वयं इंग्लैण्ड भाग गया। अन्त में 1836 ई. में आस्ट्रिया में उसकी मृत्यु हो गयी।

1830 की जुलाई क्रान्ति का महत्व एवं प्रभाव
(SIGNIFICANCE AND EFFECTS OF JULY REVOLUTION)

1830 ई. की जुलाई क्रान्ति का यूरोप के विभिन्न देशों पर व्यापक प्रभाव हुआ जिसका वर्णन निम्नलिखित है—

(i) फ्रांस पर प्रभाव

इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप फ्रांस की राजनीति में अनेक परिवर्तन आए जिनका विवरण निम्नलिखित है :

(क) सत्ता परिवर्तन—फ्रांस में बूर्बां वंश (Bourbon Dynasty) का अन्त हो गया। क्रान्तिकारियों ने ओर्लियन्स वंश के राजकुमार लुई फिलिप को गद्दी पर बैठाया, जो 1848 ई. तक राजा रहा।

(ख) दैवी अधिकार की समाप्ति तथा जनतन्त्रीय शासन की स्थापना—इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप फ्रांस में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ कि राजा के दैवी अधिकार का सिद्धान्त समाप्त हो गया उसके स्थान पर जनतन्त्रीय सिद्धान्तों की स्थापना हुई। लुई फिलिप का राज्याभिषेक इस सिद्धान्त के आधार पर हुआ कि **'फ्रांस की जनता का राजा भगवान की कृपा व राष्ट्र की इच्छा से हुआ है'** (King of the French by the grace of God and the will of the nation)। इस प्रकार फ्रांस में निरंकुशतन्त्र की जगह जनता की प्रभुसत्ता एक बार पुनः स्थापित हो गयी। हेजन के शब्दों में, **'बूर्बां वंश के श्वेत ध्वज का स्थान तिरंगे ध्वज ने ले लिया। इस प्रकार पूर्वावस्था समाप्त हुई और लुई फिलिप का राज्यकाल अब आरम्भ हुआ।'**[3]

(ग) मध्य वर्ग की विजय—जुलाई क्रान्ति मध्यवर्ग की विजय थी। इस वर्ग ने कड़े संघर्ष के द्वारा संवैधानिक घोषणा-पत्र के क्षेत्रों को दूर किया तथा धर्म गुरुओं एवं कुलीन के शासन को समाप्त किया।

---
1 Fisher, H. A. L., *A History of Europe*, p. 978.
2 Hazen C. D., *Modern Europe upto* 1945, p. 287.
3 Hazen, C. D., *Modern Europe upto* 1945, p. 288.

(ii) यूरोप पर प्रभाव

(क) 1830 ई. की क्रान्ति से मैटरनिख की प्रतिक्रियावादी व्यवस्था को भारी आघात पहुंचा। 1830 ई. में फ्रांस में क्रान्ति के समय प्रतिक्रियावादी दो राष्ट्रों के नेताओं का यह अनुमान था कि लुई फिलिप के विरुद्ध यूरोपीय शक्तियों का एक गुट संगठित हो जाएगा और गुट के हस्तक्षेप से लुई फिलिप सफल नहीं हो पाएगा, लेकिन प्रतिक्रियावादी राष्ट्रों विशेषकर मैटरनिख का यह अनुमान गलत निकला। मित्र-राष्ट्रों से मैटरनिख को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। रूस उस समय पोलैण्ड के विद्रोह को दबाने में लगा था, आस्ट्रिया इटली की क्रान्ति को दबाने के लगा था, प्रशा उत्तरी जर्मनी की क्रान्ति को शान्त करने में फंसा था तथा इंग्लैण्ड में पमर्स्टन प्रधानमन्त्री था जिसकी सहानुभूति लुई फिलिप के साथ थी। दूसरी ओर फिलिप ने भी यूरोप के निरंकुश राजाओं के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के निरंकुश राजाओं ने फिलिप को फ्रांस का वैध शासक स्वीकार किया। अतः मैटरनिख व्यवस्था को इससे भारी आघात पहुंचा। हेज के शब्दों में, **"फ्रांस में जुलाई क्रान्ति की सहसा सफलता का तात्कालिक प्रभाव यूरोप में सर्वत्र अनुभव किया गया। अनुदारवादी भयभीत हो गए तथा उदारवादियों का उत्साहवर्धन हुआ।"**

(ख) **विएना व्यवस्था पर आघात**—जुलाई क्रान्ति के द्वारा 1815 ई. में विएना में स्थापित राजनीतिक व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा। इस क्रान्ति का प्रभाव बेल्जियम पर भी पड़ा। वहां एक भयंकर क्रान्ति छिड़ी और लन्दन सम्मेलन में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा को सामूहिक रूप से बेल्जियम की स्वतन्त्रता को स्वीकार करना पड़ा। इस तरह विएना सम्मेलन की व्यवस्था की प्रथम कड़ी टूट गयी।

1830 ई. की जुलाई क्रान्ति वास्तव में 1789 ई. की राज्य-क्रान्ति की पूरक थी। लिप्सन के अनुसार, **"1789 ई. की क्रान्ति में जो कमी रह गयी थी वह 1830 ई. की क्रान्ति से पूरी हो गयी, सन् 1830 की क्रान्ति के फलस्वरूप स्वतन्त्रता, समानता, वैधानिक शासन, धर्म-निरपेक्ष आदि क्रान्तिकारी भावनाओं की नीति सुदृढ़ हो गयी"** इस क्रान्ति ने विएना के **न्यायोचित राजता** (Legitimacy) के सिद्धान्त तथा राजसत्तावादियों के कार्यक्रम को आघात पहुंचाया तथा सामन्तों तथा उच्च पादरियों के विशेषाधिकारों को बड़ी ठेस पहुंचाई। इस क्रान्ति की सबसे बड़ी कमी यह रही कि इससे शासन में कोई विस्तार नहीं हो पाया, लेकिन यह बात अपने में बहुत महत्वपूर्ण थी कि सत्ता सम्राट के हाथों से निकलकर जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में आ गयी। **यह क्रान्ति नवजीवन के संचार और जनतन्त्रीय आन्दोलन के लिए प्रेरक सिद्ध हुई।**

यूरोप के अन्य देशों में 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव

1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का समाचार बिजली की तरह समस्त यूरोप में फैल गया। यूरोप का राजनीतिक वातावरण पुनः क्रान्तिकारी हो गया, जगह-जगह जन आन्दोलनों की लहर उमड़ पड़ी। **बेल्जियम, जर्मनी, इटली और पोलैण्ड, आदि देशों में क्रान्तियों की आग भड़क उठी।**

(1) **इटली**—1815 ई. में विएना कांग्रेस ने इटली को अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित करके वहां आस्ट्रिया को काफी प्रभावशाली बना दिया था। इस व्यवस्था के विरुद्ध इटली में व्यापक असन्तोष व्याप्त था। अतः इटली में पहले से चल रहे आन्दोलन को 1815 ई. की क्रान्ति से और अधिक प्रोत्साहन मिला, फलतः इटली की अनेक रियासतों में विद्रोह

प्रारम्भ हो गए। विद्रोह के फलस्वरूप मोडेना का शासक अपना राज्य छोड़कर भाग गया। परमा की शासिका मेरिया लुईसा को पराजित होकर अपने मायके आस्ट्रिया जाना पड़ा। इटली में विद्रोह का ऐसा रुख देखकर आस्ट्रिया को अपने लिए खतरा दिखाई देने लगा। मैटरनिख ने विद्रोहों को दबाने के लिए अपनी फौजें इटली में भेजीं। आस्ट्रिया की संगठित सेनाओं ने इन विद्रोहों को सफलतापूर्वक कुचल दिया और पुरातन राजाओं को पुनः सिंहासन प्राप्त हो गए। पोप की लौकिक सत्ता पुनः स्थापित हो गयी। **इस प्रकार 1830 ई. में इटली के विद्रोह को कुचल दिया गया, लेकिन इसके दो महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए—**

(i) **मेजिनी का उदय**—1831 ई. के बाद छुट-पुट घटनाओं को छोड़कर अगले 17 वर्षों तक इटली में शान्ति रही, लेकिन इसी बीच इटली में एक नए देशभक्त मेजिनी का उदय हुआ जिसने इटली के राष्ट्रीय एवं उदारवादी आन्दोलन को नयी गति प्रदान की। 1805 ई. में मेजिनी का जन्म जनोआ विश्वविद्यालय के एक प्राचार्य के घर में हुआ था। बचपन से ही वह अपने देश के उद्धार के स्वप्न देखा करता था। शिक्षा पूरी करने के पश्चात् वह कार्बोनरी नामक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था का सदस्य बन गया, लेकिन वह इस संस्था के उद्देश्यों तथा कार्य-प्रणाली से सहमत नहीं था। अतः इसकी कमी को पूरा करने का उसने निश्चय किया।

(ii) **'युवा इटली' दल की स्थापना**—1830 ई. में मेजिनी को गिरफ्तार कर लिया गया था क्योंकि वह कार्बोनरी संस्था का सदस्य था। 6 माह पश्चात् उसे मुक्त कर दिया गया, लेकिन इसके पश्चात अपने जीवन के शेष 40 वर्ष उसने विदेशों में बिताए। फ्रांस में अपने प्रयास के दौरान उसने मार्सेइय में **युवा इटली** (Young Italy) नामक एक समिति की स्थापना की। इस समिति ने नव इटली के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'युवा इटली' भी एक गुप्त समिति थी इसका कार्य मात्र षड्यन्त्र करना ही नहीं था, वरन् इटली के लोगों को शिक्षा देकर उनमें देश-भक्ति तथा देश के प्रति कर्तव्य भावना उत्पन्न करना था। मेजिनी को युवकों के नव जोश में बड़ा विश्वास था इसी कारण उसने समिति की सदस्यता उन्हीं लोगों के लिए रखी जिनकी आयु 40 वर्ष से कम हो। वास्तव में मेजिनी के सन्देशों ने युवकों में एक नयी आशा का संचार किया, नवयुवक बड़ी तेजी से इस समिति में भर्ती होने लगे, अतः इटली के स्वतन्त्रता आन्दोलन में एक नयी आशा का संचार हुआ।

(2) **बेल्जियम (Belgium) में क्रान्ति**—फ्रांसीसी क्रान्ति का संक्रामक रोग बेल्जियम में भी यथाशीघ्र पहुंचा।

1789 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के समय बेल्जियम आस्ट्रिया के अधिकार में था और हॉलैण्ड एक स्वतन्त्र देश था। नेपोलियन बोनापार्ट ने इन दोनों को जीत लिया था। 1815 ई. में विएना कांग्रेस से फ्रांस की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर एक मजबूत दीवार स्थापित करने के उद्देश्य से बेल्जियम तथा हॉलैण्ड को एक साथ मिला दिया, लेकिन उन लोगों ने इन देशों की पृथक् राष्ट्रीयता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। **वास्तव में यह एक अस्वाभाविक संयोग था क्योंकि डच (हॉलैण्डवासी) तथा बेल्जियमवासियों में काफी अन्तर था। हॉलैण्ड निवासी प्रोटेस्टेण्ट थे, लेकिन बेल्जियमवासी कैथोलिक थे। हॉलैण्डवासी डच तथा बेल्जियम के लोग बेल्जियन थे। हॉलैण्ड एक उन्नतशील व्यापारिक एवं प्रजातन्त्र देश था, लेकिन बेल्जियम कृषि प्रधान तथा राजतन्त्रवादी देश था।**

बेल्जियमवासियों की असन्तुष्टता के कारण—बेल्जियम तथा हॉलैण्ड के संयुक्त शासन हेतु एक संयुक्त पार्लियामेण्ट स्थापित की गयी थी, लेकिन बेल्जियमवासियों की काफी शिकायतें थीं, उनमें असन्तोष उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा। **उसकी असन्तुष्टता के निम्नलिखित कारण थे**—(1) बेल्जियम की जनसंख्या हॉलैण्ड की जनसंख्या से दुगुनी होते हुए भी स्टेट्स जनरल में हॉलैण्ड के 6 मन्त्री तथा बेल्जियम का एक मन्त्री रखा गया था। (2) सरकारी पदों पर आसीन प्रतिनिधि हमेशा डच प्रतिनिधियों का ही साथ देते थे जो बेल्जियन लोगों को अखरता था। (3) सरकारी सेवा में भी ऊंचे पद डचों को ही प्राप्त थे। (4) बेल्जियमवासियों पर डच कानून लागू किए गए। (5) बेल्जियम के लोगों में असन्तोष का सबसे प्रमुख कारण विलियम की आर्थिक नीति था। हॉलैण्ड पर पहले से ही बहुत भारी ऋण था जिसका आधा भाग बेल्जियम के वासियों पर पड़ा और इस ऋण के ब्याज को चुकाने के लिए बेल्जियम के लोगों पर अनुपात से अधिक कर लगाए गए।

क्रान्ति के विस्फोट—उपरोक्त कारणों से बेल्जियम के लोगों पर असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता गया। 1830 ई. की जुलाई क्रान्ति से यह असन्तोष भी क्रान्ति के रूप में फूट पड़ा। बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स (Brussels) में जनता ने हथियार उठा लिए और अपनी सेना का संगठन किया। डच सेना इन विद्रोहियों के दबाने के लिए भेजी गयी, लेकिन वह पराजित हो गयी। बेल्जियमवासियों ने अपने लिए एक पृथक् विधायिका की मांग की, लेकिन विलियम ने उसकी मांगें सुनने के स्थान पर उनका दमन करना चाहा, अतः बेल्जियमवासियों ने एक अस्थायी सरकार का निर्माण करके बेल्जियम की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

बेल्जियम की स्वतन्त्रता तथा मित्र राष्ट्रों द्वारा मान्यता—बेल्जियम ने 1830 ई. के अक्टूबर में एक संविधान सभा बनाकर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। बेल्जियमवासियों ने लुई फिलिप के द्वितीय पुत्र नेमूर के ड्यूक को अपना राजा चुना, परन्तु इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री पामर्स्टन को यह ठीक नहीं लगा क्योंकि वह बेल्जियम को फ्रांस के अधीन नहीं देखना चाहता था। अतः पामर्स्टन के विरोध के फलस्वरूप इंग्लैण्ड में रहने वाले सेक्सकोबर्ग (Sax-Coburg) के जर्मन राजकुमार लियोपोल्ड को राजा चुना गया। जुलाई, 1831 ई. में उसका राज्याभिषेक हुआ और इस प्रकार बेल्जियम हॉलैण्ड की अधीनता से मुक्त होकर यूरोप का एक स्वतन्त्र देश बन गया। **लन्दन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इंग्लैण्ड, प्रशा, आस्ट्रिया, रूस तथा फ्रांस आदि देशों ने एक स्वतन्त्र घोषणा द्वारा बेल्जियम को एक तटस्थ राज्य मान लिया। 1914 ई. तक बेल्जियम एक तटस्थ देश बना रहा।**

(3) **जर्मनी** (Germany) **में क्रान्ति**—1830 ई. की जुलाई क्रान्ति के प्रभाव से जर्मनी भी बच न सका। आस्ट्रिया के साम्राज्य में मैटरनिख का प्रभाव इतना अधिक था कि वहां 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का कोई प्रभाव न पड़ सका, लेकिन उसके बाहर इटली की तरह जर्मनी में काफी खलबली मची।

इससे पहले जर्मनी में 300 **छोटे-छोटे राज्य थे।** सर्वप्रथम नेपोलियन ने वहां पर एक संघ बनाकर राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया था। विएना कांग्रेस ने पुनः जर्मनी को 39 रियासतों में बांट दिया और आस्ट्रिया को उसका सभापति तथा प्रशा को उपसभापति नियुक्त किया गया। विएना के इस कार्य से जर्मन जनता की राष्ट्रीय भावना को ठेस पहुंची, अतः 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का समाचार पाते ही जर्मनी के बहुत से राज्यों—बुंसविक, हैनोवर, सैक्सोनी

तथा हैस्से आदि में विद्रोह हो गए। फलतः यहां के शासकों को जनता को नवीन संविधान देने पड़े। राष्ट्रवादी समस्त देश में सुसंगठित शासन स्थापित करना चाहते थे। जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार करने के लिए जगह-जगह पर नेताओं की सभाएं होने लगीं।

कार्ल्सबाद आदेश एवं क्रान्ति का दमन—जर्मनी में विद्रोह के इस बढ़ते हुए रोग को समूल नष्ट करने के लिए 1832 ई. में जर्मनी परिसंघ की विधायिका सभा का अधिवेशन हुआ। इस सभा ने 1819 ई. में जारी किए कार्ल्सबाद आदेशों की पुष्टि की तथा राजनीतिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। प्रेस पर नियन्त्रण लगा दिया, विश्वविद्यालयों पर भी नियन्त्रण कठोर कर दिया गया। क्रान्तिकारी गीतों एवं चिन्हों पर भी रोक लगा दी गयी, गुप्त समितियों को भंग कर दिया गया। जिन राज्यों में जनता को नए संविधान दिए थे उन्हें भंग कर दिया गया, बहुत-से राष्ट्रवादियों को पकड़कर जेलों में डाल दिया गया तथा बहुतों को देश से निकल जाने की सजा दी गयी। इस प्रकार 1830 ई. की क्रान्ति के परिणामस्वरूप उभरे जर्मनी के इस राष्ट्रवादी आन्दोलन को दबाने में प्रतिक्रियावादी मैटरनिख पूर्णरूपेण सफल रहा। यद्यपि यह आन्दोलन दबा दिया गया, लेकिन इससे एक प्रमुख लाभ हुआ।

अखिल-जर्मन राष्ट्रीयता का उदय—यद्यपि मैटरनिख उदारवादी आन्दोलन का दमन करने में तो सफल हो गया, परन्तु विचार के क्षेत्र में कुछ न कर सका था अतः राष्ट्रीयता की भावना उत्तरोत्तर जोर पकड़ती चली गयी। कवियों, दार्शनिकों तथा इतिहासकारों, आदि की लेखनियां जर्मन राष्ट्रीयता के गौरव को अपने साहित्य द्वारा अभिव्यक्त कर रही थीं। जर्मन के प्रख्यात विद्वान फिख्ते, हीगेल, स्टाइन तथा डालमन आदि इस बौद्धिक आन्दोलन में भाग ले रहे थे। इस समय जर्मनी में इस राष्ट्रीय आन्दोलन ने पुनः जोर पकड़ा।

(4) पोलैण्ड (Polland) में क्रान्ति—1830 ई. की क्रान्ति का पोलैण्ड में व्यापक प्रभाव पड़ा। इस व्यापक प्रभाव को समझने से पूर्व पोलैण्ड की पूर्व स्थिति जान लेना आवश्यक है—

पोलैण्ड की पूर्व स्थिति—मध्यकालीन यूरोप में पोलैण्ड की स्थिति रूस से भी अधिक सुदृढ़ थी तथा वह सबसे विस्तृत राज्य था। **16वीं शताब्दी के बाद इसका ह्रास होता चला गया।** 1772 से 1795 **ई. तक इसका तीन बार अंग-भंग हुआ**—

प्रथम विभाजन—1763 ई. में पोलैण्ड के राजा ऑगस्तस तृतीय की मृत्यु हो जाने पर उत्तराधिकारी के निर्वाचन का प्रश्न उठा। प्रशा के राजा फ्रेडरिक तथा रूस की रानी कैथरीन ने आपस में समझौता करके पोल सरदार स्टेनिस्लास को राजा बनाया, यह एक योग्य व्यक्ति था। उसने सुधार करने का प्रयत्न किया तथा सामन्तों की शक्ति का अन्त करने के लिए उनके वीटो के सिद्धान्त को रद्द करने का प्रयत्न किया, परन्तु रूस तथा प्रशा ने उसके इस कार्य का विरोध किया। आस्ट्रिया भी पौलैण्ड के कुछ हिस्से पर अधिकार करना चाहता था। **अतः इन तीनों ने एक सन्धि करके पोलैण्ड के 1/4 भाग को निम्न प्रकार बांटा :**

(1) रूस ने उत्तर-पूर्व की ओर का भाग तथा ऊपरी नीपर नदी के पूरब का भाग ले लिया।

(2) आस्ट्रिया को गेलेशिया का प्रदेश मिला।

(3) प्रशा को पश्चिमी प्रशा का भाग मिला।

द्वितीय विभाजन—प्रथम विभाजन के बाद पोलैण्ड की शक्ति में काफी कमी आयी। नए शासक स्टेनिस्लास ने शासन में अनेक सुधार किए। इन सुधारों से पोलैण्ड का शक्तिशाली होना स्वाभाविक था। आस्ट्रिया का सम्राट लियोपोल्ड इससे काफी प्रसन्न था क्योंकि उसका विश्वास था कि इससे रूस की आक्रमणकारी शक्ति प्रतिबन्धित हो जाएगी, लेकिन रूस इससे काफी भयभीत हुआ, अतः उसने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया, प्रशा ने भी रूस की सहायता की। पोलैण्ड को आस्ट्रिया से सहायता की आशा थी, लेकिन वह फ्रांस के युद्ध में फंसा था, अतः पौलैण्ड को पुनः पराजित होना पड़ा। इस विभाजन में रूस और प्रशा भागीदार बने, अतः रूस ने पूरब की ओर बहुत बड़े प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया तथा प्रशा ने पोलैण्ड के पशिचम की ओर का बहुत-सा प्रदेश ले लिया।

तृतीय विभाजन—1794 ई. में **कोस्किडस्को** (Kosciuszko) नामक प्रतिभाशाली युवक के नेतृत्व में वहां विद्रोह हो गया। प्रारम्भ में पोल निवासियों को सफलता मिली, लेकिन आपसी फूट से सफलता के सारे प्रयत्न असफल हो गए। पोलैण्ड पर रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा ने मिलकर आक्रमण कर दिया और वहां पर हो रहे विद्रोह को दबा दिया। अतः पोलैण्ड का अन्तिम विभाजन करके उसके अस्तित्व का अन्त कर दिया। इस बंटवारे में लूट का सबसे अधिक भाग गेलिशिया के बीच का समस्त प्रदेश तथा दक्षिणी मेसोविया का प्रदेश रूस को मिला। वार्सा सहित, वर्ग तथा नीमेन नदी के बीच का प्रदेश प्रशा को मिला। वार्सा के दक्षिण का प्रदेश आस्ट्रिया को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार 1795 ई. में यूरोप के नक्शे में स्वतन्त्र पोलैण्ड का अस्तित्व ही न रहा।

पोलैण्ड की पुनर्स्थापना—विएना कांग्रेस ने प्रशा तथा आस्ट्रिया से पोलैण्ड के प्रदेश लेकर रूसी सम्राट एलेक्जेण्डर प्रथम को देकर पोलैण्ड नामक एक छोटे से देश का निर्माण किया तथा उसके लिए एक पृथक् विधान का निर्माण भी किया गया। दो सदन वाली एक विधायिका सभा की स्थापना की गयी। पोलैण्ड की एक सेना का भी निर्माण हुआ जिसके सैनिक तथा असफर पोल थे। 1825 ई. में एलेक्जेण्डर प्रथम की मृत्यु के बाद निकोलस जार बना। यह अत्यन्त निरंकुश मनोवृत्ति का था।

पोलैण्ड में क्रान्ति तथा स्वतन्त्रता का अन्त—निकोलस घोर प्रतिक्रियावादी सम्राट था। उसने पूर्ण रूप से पोलों का रूसीकरण करने का प्रयत्न किया। उसका उदार संविधान भंग कर दिया गया। अतः उसकी प्रतिक्रियावादी नीति से पोलैण्ड में बहुत असन्तोष हुआ। 1830 ई. की क्रान्ति के समाचार से पोलिश क्रान्तिकारियों में उत्साह एवं आशा का संचार हुआ वे भी क्रान्ति के लिए तैयार हो गए। लगातार एक वर्ष तक पोलिश सेनाओं एवं रूसी सेनाओं में संघर्ष होता रहा, लेकिन अन्त में निकोलस ने निर्दयतापूर्वक पोलों का दमन कर दिया। विद्रोहियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया गया। उनमें से अधिकांश को मृत्युदण्ड मिला तथा बहुतों को साइबेरिया भेज दिया गया। पोलिश विश्वविद्यालय बन्द कर दिए गए एवं रूसी भाषा पोलैण्ड की राजभाषा बना दी गयी। पोलिस सेना भी रूसी सेना का अंग बना दी गयी। रूसी अफसरों को पोलैण्ड में नियुक्त किया गया।

इस प्रकार 1830 ई. की क्रान्ति पोलैण्ड में असफल रही। मात्र 16 वर्षों में ही पोलैण्ड का अस्तित्व एक बार पुनः समाप्त हो गया। यद्यपि फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में लोकमत पोलैण्ड को सहायता देने के पक्ष में था, लेकिन लुई फिलिप रूस से शत्रुता मोल लेकर अपना राज्य खोना नहीं चाहता था तथा इंग्लैण्ड की सरकार हस्तक्षेप न करने की नीति पर अड़ी रही।

(5) **स्पेन** (Spain) **पर प्रभाव**—1815 ई. में मित्र-राष्ट्रों ने स्पेन के पदच्युत सम्राट फर्डिनेण्ड को पुनः सिंहासन पर बैठा दिया। फर्डिनेण्ड एक स्वेच्छाचारी सम्राट था। इसने सिंहासन पर बैठते ही पार्लियामेण्ट को भंग कर दिया। 1812 ई. के उदार संविधान को भी भंग कर दिया। प्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया, सभाओं तथा भाषणों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। देशभक्तों को जेल में बन्द कर दिया। फर्डिनेण्ड की प्रतिक्रियावादी नीति के परिणामस्वरूप उसका कड़ा विरोध होने लगा यहां तक कि 1820 ई. में उसे स्पेन की गद्दी छोड़कर भागना पड़ा, लेकिन 1822 ई. की वेरोना कांग्रेस के द्वारा फ्रांस को स्पेन का विद्रोह दबाने का अधिकार सौंपा गया फलतः फर्डिनेण्ड पुनः स्पेन की गद्दी पर बैठा। 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का समाचार स्पेन में भी पहुंचा तथा वहां के राष्ट्रवादियों में नयी आशा का संचार हुआ। उन्होंने फर्डिनेण्ड का एक बार पुनः कड़ा विरोध किया, लेकिन निरंकुश फर्डिनेण्ड ने कठोरता से क्रान्तिकारियों का दमन करके विद्रोहों को असफल कर दिया।

(6) **पुर्तगाल** (Purtugal) **पर प्रभाव**—सन् 1807 में नेपोलियन बोनापार्ट ने पुर्तगाल पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था तथा वहां का शासक जॉन छठा अमरीका स्थित उपनिवेश ब्राजील में चला गया। इसके बाद यहां राष्ट्रवादियों का अधिकार स्थापित हो गया। लेकिन यूरोपीय मित्र राष्ट्रों ने जॉन छठा को ब्राजील से बुलाकर पुनः पुर्तगाल का शासक बना दिया। सिंहासन पर बैठते ही जॉन VI ने स्वेच्छाचारितापूर्ण शासन करना शुरू कर दिया जिससे देश में व्यापक असन्तोष फैल गया फलतः जनता ने विद्रोह कर दिया और जॉन VI भाग गया। जान VI की मृत्यु के बाद उसके पुत्र डोमपेड्रो को पुर्तगाल का शासक बनाया गया जो कि ब्राजील का गवर्नर था, लेकिन वह अपनी पुत्री डोनामारिया को राज्य सौंप कर पुनः ब्राजील चला गया। 1828 ई. में डोना के चाचा डोम मिगुएल ने उससे शासन छीन लिया। वह अत्यन्त निरंकुश शासक था। इससे जनता में भारी असन्तोष व्याप्त था। अतः 1830 ई. की क्रान्ति का समाचार सुनकर राष्ट्रवादियों का उत्साह बढ़ा। डोना मारिया ने भी वैधानिक शासन स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। अन्त में देशभक्तों के संघर्ष के बाद 1833 ई. में पुर्तगाल में संवैधानिक शासन की स्थापना हुई।

(7) **इंग्लैण्ड** (England) **पर प्रभाव**—इंग्लैण्ड भी 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव से अछूता न रहा। जिस समय फ्रांसीसी क्रान्ति की असफलता का समाचार इंग्लैण्ड पहुंचा उस समय वहां पर **टोरी** (Tory) दल की सरकार थी। वैलिंगटन का ड्यूक प्रधानमन्त्री था। वह घोर प्रतिक्रियावादी मैटरनिख के मित्रों में से एक था। उस समय इंग्लैण्ड में मताधिकार धनी, कुलीनों एवं भूपतियों को ही प्राप्त था। जनता इस सीमित मताधिकार से काफी असन्तुष्ट थी। वह मताधिकार में सुधार चाहती थी, लेकिन वैलिंगटन का ड्यूक सुधारों का विरोधी था, लेकिन ऐसी अप्रतिनिधि पार्लियामेण्ट का सुधार अत्यन्त आवश्यक था। अतः जब तक इंग्लैण्ड में टोरी दल सत्ता में रहा तब तक सुधार की मांग का विरोध होता रहा। 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति से सुधारवादियों का उत्साहवर्धन हुआ और सुधार आन्दोलन की वृद्धि तेजी से हुई। 1830 ई. में ही जार्ज् चतुर्थ की मृत्यु होने पर विलियम चतुर्थ गद्दी पर बैठा। वह उदार था। 1830 ई. के आम चुनावों में टोरी दल की पराजय हुई और ह्विग (उदार) दल का बहुमत हो गया। ह्विग सरकार में लार्ड ग्रे प्रधानमन्त्री था। लोकसभा ने तो मताधिकार बिल को पास कर दिया, लेकिन लार्ड सभा ने इसे अस्वीकृत कर दिया। इससे एक बार पुनः दंगे भड़क उठे। अन्त में लार्ड सभा को भी यह बिल पास करना पड़ा इस प्रकार 1832 ई. में इंग्लैण्ड

में मताधिकार पहले से अधिक विस्तृत हो गए तथा जनता के राजनीतिक अधिकार बढ़ गए। मैरियट के अनुसार, **"इस बिल के पास होने से यह स्पष्ट हो गया कि अब सम्राट के हाथ में शक्ति नहीं है, केवल प्रभाव है और आवश्यकतानुसार उसे लार्ड सभा का समर्थन न करके लोकसभा का समर्थन करना होगा।"**

(8) **अमरीका पर प्रभाव**—1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव इतना व्यापक था कि यह यूरोप तक ही सीमित नहीं रहा वरन् संयुक्त राज्य अमरीका पर भी इसका प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसी क्रान्ति से पूर्व अमरीकी समाज पूंजीपति तथा मजदूर दो वर्गों में बंटा हुआ था। पूंजीपति वर्ग दिन-प्रतिदिन धनी होता जा रहा था दूसरी ओर मजदूर वर्ग की स्थिति बड़ी शोचनीय थी व समाज में उनकी स्थिति बहुत गिरी हुई थी। वे दासों जैसा जीवन व्यतीत करते थे।1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का समाचार पहुंचते ही इन मजदूरों में भी नए उत्साह का संचार हुआ अतः दास प्रथा के विरोध में जगह-जगह पर आन्दोलन हुए, दास प्रथा विरोधी अनेक समितियों का गठन हुआ। आन्दोलन की तीव्रता को देखकर शासकों को मजदूर सुधार सम्बन्धी अनेक कानून पास करने पड़े। इस प्रकार 1830 ई. की क्रान्ति का यह सबसे व्यापक प्रभाव था कि संयुक्त राज्य अमरीका में दास प्रथा का अन्त हो गया।

क्रान्ति का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE REVOLUTION)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। सम्पूर्ण यूरोप इस क्रान्ति से प्रभावित हुआ। इंग्लैण्ड में 1832 ई. का सुधार विधेयक पास हुआ। स्वयं फ्रांस में वैध राजसत्ता की स्थापना हुई। बेल्जियम एक तटस्थ राष्ट्र बना तथा यूरोप से बाहर दूसरे महाद्वीप अमरीका में दास प्रथा का अन्त हुआ। **ये सभी सफलताएं प्रतिक्रियावाद पर एक सफल विजय थी।** इस क्रान्ति ने विएना सम्मेलन को भी आघात पहुंचाया। बेल्जियम की स्वतन्त्रता से इस व्यवस्था को प्रथम आघात पहुंचा। इस क्रान्ति के प्रभाव के विषय में डेविस थामसन ने लिखा है, **"इसकी सर्वप्रथम राजनीतिक उपलब्धि मैटरनिख के शासन का अन्त व उसकी 'प्रणाली' का पतन था जो 1815 से प्रभावी थी। इसका सर्वाधिक सामाजिक व आर्थिक परिणाम यह हुआ कि पूर्वी यूरोप के अधिकांश भाग में सामन्तवाद नष्ट कर दिया गया।"**[1]

प्रश्न

1. **1830 ई. की क्रान्ति के कारणों, मुख्य घटनाओं व परिणामों का वर्णन कीजिए।** **(लखनऊ, 1991; पूर्वांचल, 1990)**
2. **1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का यूरोप के अन्य देशों पर हुए प्रभाव का वर्णन कीजिए।**
3. **1830 ई. की जुलाई क्रान्ति के क्या कारण थे।** **(लखनऊ, 1990)**
4. **1830 ई. में यूरोप में जो क्रान्तियां हुईं उनकी प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।** **(गोरखपुर, 1991)**
5. **1830 ई. की क्रान्ति की परिस्थितियों एवं कारणों का वर्णन कीजिए।** **(लखनऊ, 1990)**

1 David Thomson, *Europe Since Nepoleon*, p. 181.

11

1848 ई. की क्रान्ति

[THE REVOLUTION OF 1848 A. D.]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1830 ई. की क्रान्ति के पश्चात् बूर्बां वंश का अन्त हो गया और 1830 ई. में लुई फिलिप जनता की इच्छा से फ्रांस की गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी आयु 57 वर्ष थी। 1789 ई. की क्रान्ति के समय इसकी अवस्था 16 वर्ष की थी। अतः इसने इसमें भाग नहीं लिया था। बाद में यह जैकोबिन दल का सदस्य हो गया। 21 वर्ष तक विदेशों में घूमने के पश्चात् लुई 18वें के समय यह फ्रांस वापस आ गया। अपने उदार विचारों के कारण यह फ्रांसीसी जनता में काफी लोकप्रिय हो गया था। फ्रांस की जनता जो अब तक चार्ल्स की दमनकारी नीति से परेशान हो चुकी थी अब नए राजा से सुधारों की अपेक्षा करती थी। लुई फिलिप भी उदार विचारों का ही परिचय दे रहा था। हेजन के अनुसार, **''लुई फिलिप हस्तक्षेप करने की कला सीख चुका था, स्वयं नियन्त्रण, चुप रहना और परिस्थितियों को अपने अनुसार मोड़ देना अपने ही लाभ के लिए उसने सीख लियां था।''**[1] अपने सभी विरोधियों को चुप करने एवं विरोधियों को सन्तुष्ट करने की इच्छा से फिलिप ने एक **'मध्यम नीति'** का अनुसरण किया। हेजन के शब्दों में, **''जुलाई राजतन्त्र ने प्रारम्भ में स्वर्णिम मध्यम नीति की घोषणा की जो न तो अनुत्तरदायी थी और न सुधारवादी थी, किन्तु नरम (Moderate) थी।''**[2]

इस नीति पर चलते हुए उसने धार्मिक सहिष्णुता का अनुसरण किया और बूर्बां वंश के शासकों की तरह हठधर्मिता का प्रदर्शन नहीं किया, लेकिन इसके बावजूद भी उसको कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। वास्तव में, जिस समय लुई फिलिप गद्दी पर बैठा, उसकी स्थिति बड़ी नाजुक थी। उसका निर्वाचन एक प्रतिनिधि सभा के द्वारा हुआ था, किन्तु जनता का अधिकांश भाग इस निर्वाचन को अवैध समझता था क्योंकि इस सभा ने अभी तक कभी राजा का निर्वाचन नहीं किया था।

1 Louis Phillippe had learned the art of intrigue, of silent incessant exploitation of circumstances for his own advancement." —C. D. Hazen

2 Hazen. *C. D., Modern Europe upto 1945*, p. 194.

1848 ई. की क्रान्ति के कारण
(CAUSES OF THE 1848 FRENCH REVOLUTION)

लुई फिलिप की स्वर्णिम मध्यम नीति, गृहनीति एवं असफल विदेश नीति ने फ्रांस में जो विरोधी राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण बना दिया था उन सभी में 1848 ई. की क्रान्ति के अंकुर छिपे थे। संक्षेप में, **1848 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :**

(1) **देश में समाजवाद का विकास**—व्यावसायिक क्रान्ति के परिणाम फ्रांस के नए कल-कारखाने थे तथा नए कल-कारखानों के आने से समाज में पूंजीपति और मजदूर दो वर्ग बन गए। पूंजीपतियों का आर्थिक साधनों पर एकाधिकार था, अतः वे दिन-प्रतिदिन अमीर होते जा रहे थे, लेकिन मजदूर वर्ग दिन-प्रतिदिन गरीब होता जा रहा था, अतः इस समय देश में अनेक समाजवादियों का उदय हुआ। **सेण्ट साइमन** (Saint Simon) वह पहला व्यक्ति था जिसने समाज के बहुसंख्यक मजदूर वर्ग के लिए एक **समाजवादी योजना** प्रस्तुत की। **उसका मानना था कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व हो तथा प्रत्येक व्यक्ति को क्षमतानुसार कार्य एवं सेवानुसार प्रतिफल मिले, लेकिन सेण्ट साइमन एक कल्पनाशील विचारक था उसका समाजवादी सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं था। दूसरा समाजवादी लुई ब्लांक** (Louis Blank) था। लुई ब्लांक ने सेण्ट साइमन के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। लुई ब्लांक ने अपने विचारों को '**श्रम संगठन**' (*Organization of Labour*) नामक पुस्तक के माध्यम से व्यक्त किया। लुई ब्लांक की यह पुस्तक 1848 ई. की '**क्रान्ति की बाइबिल**' (Bible of the 1848 Revolution) बन गयी। **वास्तव में 1848 ई. की क्रान्ति में इस पुस्तक का वही महत्व था जो** 1789 **की क्रान्ति में रूसो की पुस्तक 'सामाजिक समझौता'** (*Social Contract*) **का था।** श्रम संगठन (*Organization of Labour*) नामक पुस्तक की मूल विचारधारा थी **कि हर व्यक्ति को काम पाने का अधिकार है तथा राज्य का कर्तव्य है कि वह उसको कार्य दे, प्रत्येक व्यक्ति को काम के आधार पर समाज में मान्यता मिलनी चाहिए। उत्पादन के साधनों पर सरकार का आधिपत्य हो, जिससे पूंजीपति वर्ग श्रमिकों की मेहनत के फल को हड़प न कर सके।**

इस प्रकार लुई ब्लांक वह पहला व्यक्ति था जिसने जुलाई राजतन्त्र को उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी अपनी याचनाओं के द्वारा उसने फ्रांस के श्रमिकों के मन में ये बात बिठला दी कि वर्तमान अर्थव्यवस्था दोषपूर्ण है, उसने बड़े कटु शब्दों में मध्यवर्गीय सरकार की आलोचना की। लुई फिलिप की सरकार को उसने '**पूंजीपतियों की सरकार**' (Govt. of Rich) कहा। लुई ब्लांक ने अपने सिद्धान्तों को अत्यन्त ही स्पष्ट एवं सरल शैली में प्रस्तुत किया जिससे बहुसंख्यक मजदूरों ने उन्हें अंगीकार कर लिया।

(2) **लुई फिलिप का आंशिक समर्थन**—गद्दी पर बैठते समय लुई फिलिप की स्थिति अच्छी नहीं थी, देश की तत्कालीन समस्त पार्टियां उसकी विरोधी थीं। **ये पार्टियां निम्नलिखित थीं :**

(i) **बूर्बां दल**—यह दल बूर्बां वंश के किसी भी राजकुमार को गद्दी पर बैठाना चाहता था।

(ii) **रिपब्लिकन दल** (गणतन्त्रवादी)—**यह फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे,** इसका नेता **लामार्तीन** था।

(iii) **बोनापारिस्ट दल**—यह दल नेपोलियन बोनापार्ट के किसी सम्बन्धी को गद्दी पर बैठाना चाहता था।

(iv) **समाजवादी पार्टी**—ये लोग फ्रांस में मजदूरों की सरकार स्थापित करना चाहते थे।

(v) **कट्टर राजतन्त्रवादी**—ये लोग चार्ल्स के पौत्र को गद्दी पर बैठाना चाहते थे।

इस प्रकार फ्रांस में कोई भी दल लुई फिलिप का समर्थक नहीं था। ये समस्त दल इसको गद्दी से उतारने के लिए समय-समय पर विद्रोह कर रहे थे।

(3) **लुई फिलिप का अस्थायी मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री ग्वीजो की अनुदार नीति**—लुई फिलिप के प्रारम्भिक 10 वर्षों का शासन काल अस्थिर एवं अशान्ति का था। 10 वर्षों में उसने 10 मन्त्री बदले। अन्त में 1840 ई. में फिलिप ने स्वेच्छाचारिता के अवतार **ग्वीजो** (Guizot) को अपना प्रधानमन्त्री बनाया। जनता के कड़े विरोध के बावजूद भी 1848 ई. तक वह इस पद पर बना रहा। ग्वीजो का विश्वास था कि जनता को अधिकार देना शासन को खतरे में डालना है। अतः ग्वीजो ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की कि यह शासन में कोई सुधार नहीं करेगा तथा विदेश नीति में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेगा। राजा की स्वेच्छाचारिता के समर्थन में उसने कहा था कि **"राज सिंहासन कोई खाली कुर्सी नहीं है।"**[1] दूसरी ओर फ्रांस की जनता ग्वीजो को इसलिए भी नहीं चाहती थी क्योंकि वह प्रोटेस्टेण्ट था जबकि फ्रांसीसी जनता कैथोलिक थी। व्यक्तिगत जीवन पवित्र होते हुए भी ग्वीजो का राजनीतिक जीवन बहुत भ्रष्ट था। मन्त्रिमण्डल को यद्यपि प्रतिनिधि सदन का समर्थन प्राप्त था और सदन का चुनाव दो लाख मतदाताओं ने किया था, लेकिन जांच करने पर पता लगा कि ग्वीजो ने भ्रष्ट तरीके से बहुमत को अपने पक्ष में किया था। ऐसी स्थिति का वर्णन एक स्पष्टवादी सदस्य ने इस प्रकार किया, **"प्रतिनिधि सभा का एक बाजार है जहां प्रत्येक प्रतिनिधि किसी पद या स्थान के लिए सौदा करता है।"**[2]

अतः जनता ने ग्वीजो का घोर विरोध किया। ऐसे समय में लुई फिलिप ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करके बहुत भारी भूल की। उसने जनता के भाषण तथा लेखन पर तथा गणतन्त्रवादी विचारधारा के समर्थक समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। **हेजन** ने इस नीति के विषय में लिखा है, **"यह नकारात्मक एवं अकर्मण्य नीति अनवरत रूप से अपनायी जाती रही जिसके कारण अधिकाधिक असन्तोष उभरता गया।"**[3]

(4) **मध्यम वर्ग की प्रधानता**—सिंहासन पर बैठने के पश्चात् लुई फिलिप ने जनता को एक उदार संविधान दिया। इसके अन्तर्गत मतदान व्यापक करने का प्रयास किया, लेकिन इससे जन साधारण का भला न हो सका क्योंकि मत का आधार धन होने के कारण प्रतिनिधि सभा में सदैव मध्यमवर्ग के लोगों की ही प्रधानता रही। निम्न वर्ग के लिए प्रतिनिधि सभा में मध्यम वर्ग का बहुमत होने के कारण कानून भी मध्यम वर्ग के हित में बनते थे। लुई फिलिप ने 18 वर्ष तक इसी मध्यम वर्ग की सहायता से शासन किया, इसी से उसकी सरकार को मध्यमवर्गीय सरकार (Middle Class Government) भी कहा जाता है और मताधिकार का अधिकार भी मध्यम एवं उच्च वर्ग को ही प्राप्त था। लुई की इस नीति से अन्य राजनीतिक

1 "The throne is not an empty chair."
2 What is the Chamber? A great market where every deputy barters his conscience in exchange for a place or an office.
3 Hazen, C. D., *Modern Europe upto 1945*, p. 296.

दल उसकी हंसी उड़ाते हुए उसे **'नागरिक राजा'** (Citizen King) की पदवी से विभूषित करने लगे। अतः 1848 ई. की क्रान्ति से निम्न वर्ग लुई फिलिप को गद्दी से हटाने की सोचने लगा।

(5) **लुई फिलिप की असफल विदेश नीति**—लुई फिलिफ असफल रहा। लुई फिलिप में वह योग्यता नहीं थी जिसके बल पर वह फ्रांसीसी जनता को एक गौरवपूर्ण विदेश नीति दे सके। वास्तव में, लुई फिलिप की विदेश नीति से फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को गहरा धक्का लगा। फ्रांस में सर्वत्र उसकी विदेश नीति की आलोचना होने लगी तथा सारे राजनीतिक दल उसके कड़े विरोधी हो गए, यूरोप के लगभग प्रत्येक देश से उसके सम्बन्ध खराब ही रहे।

वास्तव में, यह फिलिप का दुर्भाग्य था कि विवेकशील होते हुए भी वह गृह तथा विदेश दोनों ही क्षेत्रों में असफल रहा। देश के भीतर अशान्ति तथा दमनचक्र आरम्भ हो गया। विदेश नीति में उसकी दुर्बलता फ्रांसीसी जनता को अच्छी न लगी। यद्यपि लुई ने धैर्य, कूटनीति तथा विवेक से काम लेकर कभी ऐसा मौका नहीं आने दिया कि फ्रांस को युद्ध के लिए तैयार होना पड़े। लुई का यह कार्य तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए देश के हित में था, किन्तु फ्रांस की जनता इससे सन्तुष्ट नहीं थी क्योंकि इससे उसकी गौरव भावना की पूर्ति न हो सकी थी। अतः जनता की यही मनोभावना फ्रांस को एक बार पुनः क्रान्ति के कगार पर ले आयी।

क्रान्ति का आरम्भ एवं विभिन्न घटनाएं
(REVOLUTION BEGINS AND THE MAIN EVENTS)

लुई फिलिप का विरोध जब काफी बढ़ चुका था तो क्रान्तिकारियों ने एक योजना बनायी कि सुधार की मांग करने वाले एक प्रार्थनापत्र पर जनता के हस्ताक्षर करवाकर राजा के पास भेजा जाए। अतः जनता से हस्ताक्षर करवाने हेतु जनता को एकत्र करने के लिए स्थान-स्थान पर दावतों की व्यवस्था की गयी जिन्हें **'सुधार भोज'** (Reform Banquest) कहा गया। देश भर में सुधार-दावतों की धूम मच गयी। इन सुधार-दावतों ने यह स्पष्ट कर दिया कि जनता सुधार चाहती है, लेकिन लुई फिलिप ने सुधार की मांग स्वीकार करने से इन्कार कर दिया व दावतों पर रोक लगा दी।

दावतों पर रोक लगाने से जनता उत्तेजित हो गयी। प्रतिबन्ध लगाने के बाद भी पेरिस में एक विशाल भोज-समारोह का आयोजन किया गया। 21 फरवरी, 1848 को एक विशाल जुलूस निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा भोज पर भी रोक लगा दी गयी, लेकिन जनता में काफी आक्रोश था। अतः 22 फरवरी को प्रातः एक विशाल जुलूस निकाला गया। **यह भीड़ 'गीजो का नाश हो, सुधार जिन्दाबाद'** (Down with Guizot, Long live Reform) के नारे लगाने लगी। 23 फरवरी को स्थिति और अधिक गम्भीर हो गयी। जनता ने पुनः एक जुलूस निकाला जिसमें पत्रकार, अध्यापक तथा विद्यार्थी आदि सभी सम्मिलित हुए। जब सिपाहियों ने भी भीड़ पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया तो लुई फिलिप को स्थिति की गम्भीरता का आभास हुआ। अतः गीजो को मन्त्रि पद से पृथक् कर दिया गया तथा सुधारों को लागू करने की घोषणा कर दी गयी। जनता इससे काफी प्रसन्न हो गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि संकट टल गया। 23 फरवरी को जनता ने गीजो के मकान को घेर लिया। राजा ने गीजो की सुरक्षा हेतु पुलिस भेज दी। पुलिस ने जनता पर गोली चला दी जिससे

23 व्यक्ति मारे गए और 30 घायल हो गए। अपने साथियों की लाशें देखकर जनता पागल हो उठी। 24 फरवरी को शवों का जुलूस निकाला गया। जनता **'गणतन्त्र जिन्दाबाद'** के नारे लगाने लगी तथा राजसत्ता का अन्त करने पर उतारू हो गयी, हेजन के अनुसार, **"इस घटना ने राजतन्त्र का सितारा डुबो दिया।"**[1]

24 फरवरी को सम्पूर्ण पेरिस में उपद्रव और संघर्ष शुरू हो गया। जनता की उत्तेजित भीड़ ने राजमहल घेर लिया। सेना ने राजा की रक्षा करने से इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति में बचाव का कोई उपाय न देखकर लुई फिलिप अपने पौत्र **'पेरिस के काउण्ट'** (Count of Paris) के पक्ष में सिंहासन छोड़कर भेष बदलकर **'स्मिथ'** नाम धारण कर इंग्लैण्ड भाग गया। गीजो ने भी ऐसा ही किया। क्रान्तिकारियों ने राजप्रासाद को लूट लिया और राजसिंहासन को जला दिया। फिशर के अनुसार, **"इस प्रशासन की उत्कृष्ट विशेषताओं व फ्रांस के प्रति अच्छी सेवाओं के होते हुए भी इसका पतन भी ऐसा हुआ जिसके लिए बहुत कम खेद प्रकट किया गया।"**[2]

अब लामार्तीन की अध्यक्षता में एक अस्थायी सरकार का निर्माण हुआ। अस्थायी सरकार ने तुरन्त गणराज्य की घोषणा कर दी। **इस प्रकार फ्रांस में एक बार फिर राजतन्त्र का अन्त हो गया और पुनः गणतन्त्र युग आरम्भ हो गया।**

1848 ई. की क्रान्ति के परिणाम
(EFFECTS OF THE REVOLUTION OF 1848)

इस क्रान्ति के काफी महत्वपूर्ण परिणाम हुए। इस क्रान्ति ने विश्व के लिए सुधारों का मार्ग खोल दिया। **इस क्रान्ति के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम निम्नलिखित हैं :**

1. **निरंकुश शासन का अन्त**—इस क्रान्ति के फलस्वरूप समस्त यूरोप में वैधानिक शासन का विकास हुआ। निरंकुश शासन की नींव हिल गयी। राष्ट्रीय एकता एवं संवैधानिक स्वतन्त्रता के विचारों का भी विकास हुआ। डेनमार्क, स्विट्जरलैण्ड, हॉलैण्ड, सार्डीनिया, फ्रांस आदि देशों में वैधानिक शासन की स्थापना हेतु जनआन्दोलन हुए और सफलता भी मिली। इंग्लैण्ड में संसदीय निर्वाचनों का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया।

2. **सैन्यवाद का उदय**—इस क्रान्ति के बाद क्रान्तिकारियों को यह विश्वास हो गया था कि उदार एवं जनतन्त्रीय उपायों के द्वारा उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाएगा। अतः इसके लिए उन्होंने सैनिक उपायों को अपनाया। इटली और जर्मनी में सैनिकवादी उपायों का ही आश्रय लिया गया।

3. **सामूहिक चेतना का विकास**—1848 ई. की क्रान्ति से जन-समूह का महत्व भी प्रकाश में आया। 1848 से पहले के आन्दोलन व्यक्तिगत रूप से होते थे लेकिन इसके बाद आन्दोलन व्यक्तिगत के स्थान पर सामूहिक बन गए, अब राष्ट्रीय चेतना नेताओं तक सीमित न रहकर जनसमूह की चेतना बन गयी।

4. **सामान्य जनता को जनमत अधिकार की प्राप्ति**—इस क्रान्ति के द्वारा जनमत का अधिकार मात्र मध्यम वर्ग तक ही सीमित न रहकर पूरी जनता को मिल गया। आर्थिक लोकतन्त्र की दिशा में भी यह एक महत्वपूर्ण घटना थी।

1 Hazen, C. D., *Modern Europe upto* 1945, p. 298.
2 Fisher, *A History of Europe*, p. 99.

5. राष्ट्रीय आन्दोलनों का विकास—यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन विफल रहा इससे समस्त यूरोप में धीरे-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलनों की जड़ें जम गयीं। इस क्रान्ति ने उस मार्ग को खोज निकाला जिस पर चलकर ही जर्मनी एवं इटली का एकीकरण दृढ़ होता गया।

(क) फ्रांस पर प्रभाव

(1) **लुई फिलिप के शासन का अन्त**—लुई फिलिप फ्रांस का शक्तिशाली राजा था। **'स्वर्णिम मध्यम नीति'** के कारण फ्रांस का मध्यम वर्ग भी उसके साथ था, लेकिन 1848 ई. की क्रान्ति में उसकी एक छोटी-सी भूल ने उसके शासन का अन्त कर दिया।

(2) **दो अस्थायी सरकारों की स्थापना**—लुई फिलिप के भागने के पश्चात् फ्रांस में गणतन्त्रवादी तथा समाज़वादी दो सरकारों की स्थापना हुई। अन्त में दोनों दलों के नेताओं ने आपस में समझौता करके एक अस्थाई सरकार की स्थापना की, लेकिन बाद में बेरोजगारों को रोजगार दिलाने की बात को लेकर दोनों दलों में संघर्ष हो गया। अन्त में समाजवादी पराजित हुए और फ्रांस में द्वितीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी।

(3) **नेपोलियन तृतीय का उत्कर्ष**—यह नेपोलियन महान् का भतीजा था। यह नाम के आधार पर फ्रांस की गद्दी प्राप्त करना चाहता था। इसके लिए दो बार फ्रांस में विद्रोह भी किया गया था जिसके कारण इसे फ्रांस से निर्वासित कर दिया गया था। लुई फिलिप के पतन के पश्चात् यह पुनः फ्रांस में आ गया था और राष्ट्रपति के चुनाव में इसे भारी सफलता मिली। लिप्सन के अनुसार, "1789 **तथा 1848 में क्रान्तिकारियों ने फ्रांस में जनतन्त्र स्थापित करने के लिए क्रान्ति की थी, परन्तु परिस्थितिवश दोनों ही अवसरों पर नेपोलियन का साम्राज्य स्थापित हो गया।**"

(ख) यूरोप के अन्य राज्यों पर प्रभाव

1848 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव केवल फ्रांस तक ही सीमित नहीं रहा वरन् इस क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप पर पड़ा। यूरोप में उस वर्ष छोटी-बड़ी **सत्रह** क्रान्तियां हुईं। फ्रांस की क्रान्ति के बाद सर्वप्रथम 13 मार्च को वियना में विद्रोह हुआ। इसके पश्चात् हंगरी, बोहेमिया, इटली, प्रशा, हॉलैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, आदि में विद्रोह हुए। 1848 ई. की क्रान्ति 1830 की तुलना में अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली थीं। यूरोप के कोने-कोने में क्रान्तियां होने से फ्रांसीसी क्रान्ति का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। वैसे फ्रांस की 1848 ई. की क्रान्ति ही इन क्रान्तियों का कारण नहीं थी। यह तो एक निमित्त मात्र थी। यूरोपीय क्रान्ति के अन्य कारण थे : (1) 1830-40 ई. के मध्य होने वाले आर्थिक परिवर्तन, (2) समाज सम्बन्धी विचारधारा में क्रान्ति होना, (3) उदारवाद की प्रगति, आदि, फिर भी 1848 **ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के जो छुट-पुट प्रभाव यूरोप के अन्य राज्यों पर पड़े उनका संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित है—**

(1) **आस्ट्रिया की क्रान्ति**—1848 ई. की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव आस्ट्रिया साम्राज्य पर पड़ा। आस्ट्रिया में पोल, चैक, जर्मन, इटालियन, हंगेरियन, रूमानियन, स्लाव तथा जर्मन, आदि अनेक जातियां रहती थीं। राष्ट्रवादियों के प्रचार के कारण ये जातियां काफी जागृत हो गयीं तथा ये स्वतन्त्र होने का अवसर ढूंढने लगीं, अतः आस्ट्रिया में 1848 से पूर्व ही उपद्रव आरम्भ हो गए थे। 13 मार्च, 1848 को वियना में विद्रोह हो गया जिसमें छात्रों एवं मजदूरों का प्रमुख हाथ था। क्रान्तिकारियों की प्रमुख मांग थी कि संविधान का निर्माण किया जाए तथा

समाचार-पत्रों से प्रतिबन्ध हटा दिया गया। छात्रों एवं मजदूरों ने जुलूस निकाला और मैटरनिख के विरुद्ध नारे लगाए, भीड़ ने उसका मकान घेर लिया। मैटरनिख भयभीत होकर इंग्लैण्ड भाग गया। **मैटरनिख की पराजय क्रान्ति की बहुत बड़ी सफलता थी।** सेना ने पूर्ण तैयारी की थी, अतः उसने वियना पर आक्रमण कर दिया। सेना तथा क्रान्तिकारियों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में क्रान्तिकारी पराजित हो गए। राजा फर्डिनेण्ड पुनः आस्ट्रिया का सम्राट घोषित किया गया। इस प्रकार वियना की क्रान्ति असफल रही, लेकिन इस क्रान्ति से प्रतिक्रियावादी मैटरनिख का पतन हो गया।

(2) **हंगरी में क्रान्ति**—उस समय हंगरी आस्ट्रिया के सम्राट के अधीन था। यहां पर सामन्तों का बोलबाला था जिनके अत्याचारों से जनता तंग आ गयी थी। अतः फ्रांसीसी क्रान्ति से प्रभावित होकर जनता अपने लोकप्रिय नेता **कोसुथ** (Kosuth) तथा **डीक** (Deak) के नेतृत्व में पूर्ण स्वशासन की मांग करने लगी। विवश होकर आस्ट्रिया के सम्राट ने सुधार की मांगें स्वीकार कर अनेक सुधार लागू किए, जिसमें मुख्य थे—हंगरी के लिए पृथक् मन्त्रिमण्डल, कुलीनों के विशेषाधिकारों का अन्त, प्रेस की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, आदि। इन सुधारों से हंगरी में बसने वाले अन्य गैर-हंगेरियन जातियों को कोई लाभ नहीं हुआ। अतः अर्द्ध-स्वतन्त्र हंगरी में पुनः एक नयी समस्या पैदा हो गयी, इन जातियों ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन शुरू कर दिए।

आस्ट्रिया ने इस आपसी फूट का लाभ उठाने का प्रयास किया। उसने हंगेरियनों के विरुद्ध क्रान्तिकारियों को सहायता दी। फलस्वरूप हंगरी के लोगों ने आस्ट्रिया से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करके गणतन्त्र की घोषणा कर दी। बदले में आस्ट्रिया ने हंगरी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। रूस ने भी आस्ट्रिया का पक्ष लिया। हंगरी में दो संयुक्त शक्तियों का सामना करने की क्षमता न थी, अतः हंगरी पुनः आस्ट्रिया का अधीनस्थ बन गया। इस प्रकार हंगरी की क्रान्ति का भी दमन कर दिया गया।

(3) **बोहेमिया में क्रान्ति**—हंगरी की तरह बोहेमिया भी आस्ट्रिया के अधीन था। यहां जर्मनों की संख्या बहुत अधिक थी। यहां की दूसरी प्रमुख जाति जेक थी। जेक जाति को कुछ सुविधाएं प्राप्त थीं, अतः जर्मनी को आशंका हुई कि बोहेमिया के स्वतन्त्र होते ही उन्हें कुचल दिया जाएगा। अतः उन्होंने सुधारों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया जिससे घरेलू संघर्ष आरम्भ हो गया। अतः इस समस्या का समाधान करने हेतु प्राग में एक सभा (Pan-Slav Congress) बुलायी गयी, परन्तु दुर्भाग्य से इसी बीच जेक-जर्मन संघर्ष आरम्भ हो गया। क्रान्तिकारियों ने आस्ट्रिया के सेनापति के मकान पर आक्रमण कर दिया, सेनापति को मौका मिल गया, उसने कठोरतापूर्वक विद्रोह को दबा दिया।

(4) **इटली**—मैटरनिख के पतन के पश्चात् इटली के देशभक्तों के साहस में पर्याप्त वृद्धि हुई। 1848 ई. की क्रान्ति का समाचार पाकर वह विद्रोहाग्नि और भड़क उठी। सर्वप्रथम मिलान में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। पांच दिन के भयंकर युद्ध के बाद जनता को सफलता मिली, तत्पश्चात् वेनिस, पर्मा तथा मोडेना में विद्रोह हो गया। सार्डीनिया, टस्कनी व नेपल्स ने भी इसी का अनुसरण किया। मिलान, पर्मा, मोडेना तथा वेनिस को जनमत संग्रह द्वारा पीडमाण्ट के साथ मिला दिया गया। इसी समय मेजिनी भी इस युद्ध हेतु इटली

वापस आ गया, अतः अब ऐसा प्रतीत होने लगा था कि इटली अवश्य ही एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाएगा।

लेकिन अन्त में यह क्रान्ति असफल हो गयी। सार्डीनिया के अतिरिक्त शेष सारी इटली की यही हालत हो गयी थी जो पहले थी। सार्डीनिया का राजा एल्बर्ट, बराबर युद्ध करता रहा, परन्तु आस्ट्रिया की सेना ने उसे क्रमशः कुस्तोजा तथा नोवारा के युद्ध में पराजित किया। इसके पश्चात् एल्बर्ट ने गद्दी अपने पुत्र इमानुएल को दे दी। इमानुएल ने आस्ट्रिया से सन्धि करने के लिए वार्ता आरम्भ की। विक्टर इमानुएल पर आस्ट्रिया के सम्राट ने बराबर यह दबाव डाला कि यह संविधान वापस ले ले, लेकिन इमानुएल ने साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—**इस शर्त को स्वीकार करने की अपेक्षा में सौ राजमुकुटों को खो देना अधिक पसन्द करूंगा। यदि आप जीवन-मरण का युद्ध चाहते हैं तो उसे होने दो। मैं एक बार पुनः युद्ध के लिए अपना संगठन कर लूंगा और इसमें यदि मैं असफल रहा तो मेरे लिए यह कोई शर्म की बात नहीं होगी, मेरा परिवार निर्वासन सहन कर सकता है, परन्तु अपमान नहीं,......**[1] अतः आस्ट्रिया ने सन्धि की शर्तों में से इस शर्त को हटा दिया। इमानुएल ने अपने उदार संविधान को बनाए रखा। फलस्वरूप सम्पूर्ण इटली की जनता उसे अपना नेता मानने लगी। इटली की आशाएं इस देश-प्रेमी पर केन्द्रित हो गयीं।

रोम में क्रान्ति—इटली का ही एक राज्य रोम था। यहां पोप का राज्य था। इस समय पोप पायस नवम् गद्दी पर आसीन था। वह उदार विचारों वाला था। 1847 ई. में गद्दी पर बैठते ही इसने अनेक कैदियों को रिहा कर दिया। जनता को उसने एक नया संविधान दिया, लेकिन आस्ट्रिया के विरुद्ध चलने वाले इटली के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने से इसने इन्कार कर दिया क्योंकि वह रक्तपात का विरोधी था। आस्ट्रिया रोमन कैथोलिक चर्च का बड़ा मित्र था। अतः पोप की इस इन्कारी से उसके विषय में जनता के विचार बदल गए। रोम की जनता ने मैजिनी के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और पोप पायस गद्दी छोड़कर भाग गया। रोम में गणतन्त्र की स्थापना कर दी गयी जिसका प्रधान मैजिनी बनाया गया, लेकिन यह गणतन्त्र स्थायी न रह सका क्योंकि मैजिनी के इस कार्य से कैथोलिक जनता उसकी विरोधो हो गयी। फ्रांस के नए राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय की सहायता से पोप को पुनः रोम की गद्दी पर बैठा दिया गया।

(5) **जर्मनी में क्रान्ति**—1848 की क्रान्ति का प्रभाव जर्मनी पर भी पड़ा। सर्वप्रथम तो मैटरनिख के पतन का समाचार सुनकर समस्त बर्लिन में खुशियां मनायी गयीं। जर्मनी में अनेक राज्य थे जिनका शासन निरंकुश था। जर्मनी में अध्यापक एवं विद्यार्थी पर्याप्त समय से जागृति उत्पन्न करते रहे थे। 1848 ई. की क्रान्ति का समाचार सुनकर जर्मन देशभक्तों का उत्साह दुगुना हो गया। शैपीरो के अनुसार, "**फ्रांस की फरवरी क्रान्ति ने समस्त जर्मनी में क्रान्ति के लिए संकेत किया। लगभग सभी राज्यों में दंगे होने लगे एवं घबराए हुए राजकुमार जनता के संविधानों की घोषणा करने लगे थे, क्योंकि इन्हें आशा थी कि ऐसा करने से यदि वह अपने विशेषाधिकार भी सुरक्षित नहीं रख पाए तो कम से कम अपने सिंहासन को अवश्य बचा**

1 "......I would lose hundred Crowns......If you want war to the death, be it so, I will call my people once more to arm......If I fail, it shall be without shame. My house knows the road of exile but not of dishonour."

लेंगे। 'डाइट' एक अजीब समस्या में थी और शीघ्र ही उसने कार्ल्सबाद आज्ञाओं को समाप्त कर दिया। हर ओर से स्वतन्त्र एवं एकीकृत जर्मनी की मांग की जा रही थी।"

सर्वप्रथम 13 मार्च, 1848 ई. को प्रशा की राजधानी बर्लिन में क्रान्ति हो गयी। अन्त में राजा को क्रान्तिकारियों की मांगों को स्वीकार करना पड़ा। राजा ने संविधान सभा बुलाई। सभा ने लोकतान्त्रिक आदर्शों के आधार पर एक संविधान बनाया जो कि कुलीनों के विरोध के कारण देश में लागू नहीं किया गया। इसके पश्चात् जर्मनी के अन्य राज्यों पेडेन, बर्टमबर्ग, बवेरिया, हेलीकाशल, बेमार, आदि में निरंकुश सरकारों के विरुद्ध आन्दोलन छिड़ गया। इस उदार आन्दोलन की तीन प्रमुख मांगें थीं—राजनीतिक अधिकार, प्रेस की स्वतन्त्रता तथा संवैधानिक शासन।

अन्त में, ओल्मुग नामक स्थान पर संसद का अधिवेशन हुआ। जनता को एक उदार संविधान दिया गया। कुलीनों की प्रधानता के बावजूद भी आस्ट्रिया ने इसका विरोध किया। अतः संसद भी भंग हो गयी। फ्रेडरिक विलियम इससे इतना दुःखी हुआ कि वह पागल हो गया। इस प्रकार 1848 ई. की क्रान्ति जर्मनी में भी असफल रही।

(6) स्विट्ज़रलैण्ड पर प्रभाव—स्विट्ज़रलैण्ड के प्रान्तों का शासन मध्यम श्रेणी के धनवान व्यक्तियों के हाथ में था। ये लोग जनसाधारण के हित का कोई ध्यान नहीं रखते थे। धार्मिक मतभेद के कारण इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में कैथोलिकों तथा प्रोटेस्टेण्टों में भारी संघर्ष चल रहा था। वहां के देशभक्त धार्मिक मतभेदों के कारण देश के विभाजन को समृद्धि एवं सुरक्षा के लिए घातक समझते थे। 1848 ई. की क्रान्ति का समाचार सुनकर स्विट्ज़रलैण्ड में भी आन्दोलन हुए जिसके परिणामस्वरूप देश में उदार शासन की स्थापना हुई और नया संविधान बना।

(7) हॉलैण्ड पर प्रभाव—1848 ई. की क्रान्ति का समाचार मिलते ही हॉलैण्ड के उदारवादियों ने भी निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विवश होकर विलियम द्वितीय को वैध सत्ता स्वीकार करनी पड़ी और जनता को एक उदार संविधान देना पड़ा। एक नया मन्त्रिमण्डल बनाया गया जो अपने कार्यों के प्रति व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी था, लेखन, भाषण, प्रेस तथा समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध हटा दिए गए। इस प्रकार हॉलैण्ड में यह क्रान्ति हितकारी सिद्ध हुई।

(8) इंग्लैण्ड पर प्रभाव—1848 ई. की क्रान्ति के प्रभाव से इंग्लैण्ड भी न बच सका। इंग्लैण्ड में सन् 1832 के अनुदार अधिनियम से मजदूर एवं कृषक वर्ग को कोई लाभ नहीं हुआ। 1836 ई. में एक चार्टर लीग की स्थापना की गयी। इन लोगों की प्रमुख मांगें यही थीं कि संसद सदस्यों को वेतन दिया जाए व संसद का निर्वाचन प्रतिवर्ष हो, मतदान गुप्त व निर्वाचन क्षेत्र समान हो तथा संसद की सदस्यता के लिए साम्पत्तिक योग्यता का अन्त करके वयस्क पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया जाए। सर्वप्रथम इन मांगों को लेकर 1839 में 10 हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर एक चार्टर संसद में पेश किया गया जो अस्वीकार कर दिया गया। 1842 में 30 लाख व्यक्तियों को हस्ताक्षर वाला दूसरा चार्टर पेश किया गया, लेकिन यह भी अस्वीकार हो गया। अतः 1848 को 5 लाख व्यक्तियों ने एक सभा की। इसके बाद चार्टर में हस्ताक्षर आन्दोलन शुरू हुआ। लगभग 50-60 लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षरों की तैयारी पूरी हुई। ये लोग चार्टर को लेकर संसद के सामने प्रदर्शन करना चाहते थे उधर

विशेष सैनिक तैयारी देखकर चार्टिस्टों ने विशाल जुलूस का आयोजन स्थगित कर दिया, किन्तु उस विशाल आवेदन-पत्र को 24 घोड़ा गाड़ियों में लाद कर कॉमन्स सभा के सामने प्रस्तुत किया गया। हस्ताक्षरों की जांच करवाने पर अनेक हस्ताक्षर जाली सिद्ध हुए। इससे चार्टिस्ट बहुत बदनाम हुए और उनका आन्दोलन ठण्डा पड़ गया।

(9) **आयरलैण्ड पर प्रभाव**—आयरलैण्ड में इंग्लैण्ड का कठोर शासन था और सरकार आयरिश लोगों की परेशानियों की ओर ध्यान नहीं देती थी। आयरिश लोगों की मुख्य समस्या भूमि सम्बन्धी थी। 1845 ई. तथा 1846 ई. में यहां भयंकर अकाल भी पड़ा जिसमें आलू की फसल नष्ट हो गयी व हजारों लोग भूख से मरने लगे। 1848 ई. में वहां पर भूमि सुधार आन्दोलन चल रहा था। फ्रांसीसी क्रान्ति ने इसे और उत्तेजित किया। अतः आयरिश जनता ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहियों को फ्रांस से सम्भावित सहायता न मिल सकी, अतः यह विद्रोह सरलता से दबा दिया गया।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1848 ई. की क्रान्ति व्यापक होते हुए भी सच्चे रूप से जन क्रान्ति नहीं बन सकी। अपने तात्कालिक उद्देश्य से असफल रहने पर भी इस क्रान्ति ने लोगों में नवीन दृष्टिकोण, विचारधारा और चेतना का संचार अवश्य किया।

क्रान्ति की असफलता के कारण
(CAUSES OF THE FAILURE OF THE REVOLUTION)

1848 ई. की क्रान्ति ने लगभग समस्त यूरोप को हिला दिया था, लेकिन फिर भी यह अपने उद्देश्यों में सफल न हो सकी। **लगभग सभी देशों में अन्त में क्रान्तिकारियों को असफलता का मुंह देखना पड़ा। इसकी असफलता के मुख्यतः निम्नलिखित कारण थे—**

(1) **क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों में एकता का अभाव था।** स्वयं फ्रांस में गणतन्त्रवादियों एवं राष्ट्रवादियों में भयंकर युद्ध हुआ। हंगरी में राष्ट्रवादी तथा उदारवादी परस्पर लड़ते रहते थे। इटली में भी क्रान्तिकारी एकमत नहीं थे। इसी प्रकार अन्य देशों में भी क्रान्तिकारी नेता एकमत नहीं थे। अतः उद्देश्यों की भिन्नता के कारण वे संयुक्त रूप से निरंकुश राजाओं का मुकाबला न कर सके जबकि दूसरी ओर राजाओं ने क्रान्ति को दबाने में आपसी सहयोग से कार्य किया। हंगरी की क्रान्ति को दबाने के लिए आस्ट्रिया के सम्राट को रूस के सम्राट ने सहायता दी, लेकिन क्रान्तिकारियों को विदेशों से कोई सहायता प्राप्त न हो सकी।

(2) **क्रान्तिकारी आदर्शवादी अधिक थे।** वे क्रान्ति के आदर्शों पर व्याख्यान दे सकते थे पर क्रान्ति का संचालन करने की क्षमता उनमें न थी। क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा वे जनता को उत्तेजित तो कर देते थे, परन्तु जनता को सफल क्रान्तिकारी न बना सके।

(3) **क्रान्तिकारी दल भली प्रकार से संगठित न थे** तथा अनेक नेताओं में भी संयुक्त रूप से कार्य करने का अभाव था। अतः क्रान्तिकारियों की असंगठित शक्ति को संगठित निरंकुश शासकों ने कुचल दिया।

(4) **क्रान्तिकारी अधिकांशतः निहत्थे थे।** सेनाओं पर उनका कोई प्रभाव नहीं था।

(5) **ये क्रान्तियां केवल नगरों तक ही सीमित रहीं,** ग्रामीण जीवन पर प्रभाव न डाल सकीं। ग्रामीण जनता क्रान्ति के उद्देश्यों एवं विकास से अनभिज्ञ रही, अतः उन्होंने राजसत्ता का कोई विरोध नहीं किया। वे पूर्ववत् पादरियों, राज्य कर्मचारियों की आज्ञाओं का पालन करते रहे।

(6) क्रान्ति की असफलता का एक कारण यह था कि विद्रोह करने वाली विभिन्न जातियों में आपसी सहयोग नहीं था। एक जाति दूसरी जाति को सन्देह की दृष्टि से देखती थी।

(7) प्रतिक्रियावादी नेता मैटरनिख का पतन हो जाने से निर्बल नहीं हुए। प्रतिक्रियावादी राजाओं का उनकी सेना ने अन्तिम समय तक साथ दिया जिससे क्रान्ति को भली-भांति दबा दिया गया।

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि 1848 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रचण्ड झटके समस्त यूरोप में महसूस किए गए। इस आश्चर्यजनक वर्ष में (1848 ई. में) यूरोप के लगभग आधे राज्यों में राजा या तो पदच्युत कर दिए गए अथवा अपने राज्यों में शासन-सुधारों के लिए इन्हें विवश होना पड़ा। यद्यपि सर्वसाधारण एवं किसान तथा मजदूर वर्ग को इस क्रान्ति से विशेष लाभ नहीं हुआ तथापि उनमें पर्याप्त राजनीतिक जागृति पैदा हो गयी। इतिहासकार लिप्सन के अनुसार, **"साधारणतया यही कहा जा सकता है कि प्रथम क्रान्ति, भयंकर तानाशाही के विरोध में थी। दूसरी सामन्ती विशेषाधिकारों के विरुद्ध तथा तीसरी मध्य वर्ग की सरकार के विरोध में थी। दूसरे शब्दों में, 1789 में कानूनी समानता स्थापित की गयी। 1830 में सामाजिक समानता स्थापित की गयी एवं 1848 में राजनीतिक समानता स्थापित की गयी।"**[1]

1830 व 1848 ई. की क्रान्तियों में अन्तर

1830 ई. की क्रान्ति	1848 ई. की क्रान्ति
1. तात्कालिक कारण चार्ल्स X द्वारा पारित चार अध्यादेश थे।	1. मताधिकार का विस्तार किए जाने की मांग।
2. मुख्य कारण चार्ल्स X की प्रतिक्रियावादी व चर्च समर्थक नीति थी।	2. लुई फिलिप की उच्च मध्य वर्ग समर्थक नीति मुख्य कारण था।
3. मध्यवर्ग का सर्वाधिक योगदान था।	3. समाजवादी विचारकों का भी प्रमुख योगदान था।
4. यह क्रान्ति प्रतिक्रियावादी व्यवस्था को विशेष आघात न दे सकी।	4. प्रतिक्रियावादी व्यवस्था पर गहरा आघात लगा।
5. इस क्रान्ति के पश्चात् फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की ही स्थापना हुई।	5. 1848 ई. की क्रान्ति के पश्चात् फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना की गई।

प्रश्न

1. 1848 ई. की फ्रांस की क्रान्ति के कारणों, परिणामों व प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए। (पूर्वांचल, 1992)
2. 1848 ई. की क्रान्ति के यूरोपीय देशों पर हुए प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. 1848 ई. की क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1990)

1 "Speaking generally, we may say that the revolution was directed against arbitrary monarchy, the second against the aristocratic privilege and the third against middle class government. In other words legal equality was established in 1789, social equality in 1830, and the political equality in 1848." —*Lipson*

4. "1848 ई. का वर्ष क्रान्तियों का वर्ष था।" व्याख्या कीजिए।
5. फ्रांस की 1848 ईं की क्रान्ति के प्रमुख कारण बताइए।
6. शासक के रूप में लुई फिलिप का मूल्यांकन कीजिए।

(गोरखपुर, 1988; लखनऊ, 1993, 95)

7. 1848 ई. में यूरोप में उदारवादी राष्ट्रीय आन्दोलनों पर एक लेख लिखिए।

(गोरखपुर, 1992)

8. 1848 ई. की क्रान्ति के महत्व पर टिप्पणी लिखिए। (लखनऊ, 1994)

12

इटली का एकीकरण

[UNIFICATION OF ITALY]

भूमिका
(INTRODUCTION)

19वीं सदी के प्रारम्भ में इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिनमें पृथक्-पृथक् कानून थे। इटली के एकीकरण में अनेक बाधाएं थी।

इटली के एकीकरण में प्रमुख बाधाएं
(MAIN PROBLEMS IN THE UNIFICATION)

विभाजित इटली के एकीकरण में अनेक बाधाएं थीं। 19वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में इटली के **एकीकरण के मार्ग की प्रमुख बाधाएं निम्नलिखित थीं—**

(1) **इटली में बाहरी शक्तियों का नियन्त्रण**—विदेशी राज्यों का प्रभुत्व इटली के एकीकरण के मार्ग में सबसे अधिक बाधक तत्व था। इटली में आस्ट्रिया का प्राधान्य था। लोम्बोर्डी और वेनीशिया पर उसका अधिकार था। मोडेना व टस्कनी पर आस्ट्रिया से सम्बन्धित राजकुमारों का अधिकार था। पर्मा की रानी आस्ट्रियन राजकुमारी थी। आस्ट्रिया का इतना अधिक प्रभाव इटली के एकीकरण में सबसे अधिक बाधक था। इसलिए कैवूर ने कहा था **"आस्ट्रिया इटली की स्वतन्त्रता का प्रमुख शत्रु है।"**[1]

(2) **पोप का असीमित अधिकार क्षेत्र**—पोप की शक्तिशाली राजसत्ता के कारण इटली के दो भाग हो गए थे। पोप के राज्य को जीतना भी मुश्किल था क्योंकि इससे यूरोप की समस्त कैथोलिक जनता नाराज हो जाती। अतः जब तक पोप के हाथ में सत्ता रही तब तक उसने इटली का एकीकरण नहीं होने दिया।

(3) **प्रान्तीय एवं व्यापक फूट**—इटली विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन सभी राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार के कानून एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यवस्थाएं थीं। इसी प्रान्तीयता के कारण इटली में व्यापक फूट फैली हुई थी। इन प्रान्तों में राष्ट्रीय चेतना का अभाव था।

(4) **राजाओं में ईर्ष्या**—राजाओं में इटली की एकता के लिए त्याग करने की भावना न थी। इटली की राष्ट्रीय एकता के लिए अपने स्वार्थों को बलिदान करने को कोई राजा तैयार न था। सब अपनी निरंकुश सत्ता को बनाए रखने को चिन्तित थे।

1 **"Austria is the arch enemy of Italian independece."** —*Cavour*

(5) इटली के एकीकरण में मत वैभिन्य—इटली के एकीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न मत थे। कुछ लोग इटली के पूर्णतः गणतन्त्रात्मक स्वरूप के समर्थक थे। कुछ लोग रोम के पोप की अध्यक्षता में संघीय राज्य की स्थापना के पक्ष में थे। कुछ सार्डीनिया-पीडमाण्ट की अध्यक्षता में इटली के एकीकरण के इच्छुक थे। अतः यह आपसी मत वैभिन्य भी इटली के एकीकरण के मार्ग में बाधक था।

1815 में इटली की स्थिति
(ITLAY IN 1815)

केटलबी के अनुसार, "**सन् 1815 ई. से 1850 तक इटली का इतिहास फूट, विदेशी आधिपत्य तथा विफल संघर्ष का इतिहास था।**"[1] नेपोलियन बोनापार्ट के आक्रमण से इटली में नवीन युग का आरम्भ होता है। नेपोलियन ने समस्त इटली में एक रूप शासन स्थापित किया जिससे इटली निवासी राष्ट्रीय एकता की कल्पना करने लगे। **जिस प्रकार जर्मनी के एकीकरण का श्रेय बिस्मार्क एवं नेपोलियन को है, उसी प्रकार इटली के एकीकरण का श्रेय नेपोलियन तथा कैवूर को जाता है।** मेरियट के अनुसार, **नेपोलियन ही वह पहला व्यक्ति था जिसने सर्वप्रथम इटली को एकता प्रदान की।**[2] नेपोलियन की पराजय के पश्चात् 1815 में विएना कांग्रेस हुई। इसमें नेपोलियन की सारी व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया गया। इटली को छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित करके उसका राजनीतिक अस्तित्व समाप्त कर दिया गया। **उसको निम्न राज्यों में बांट दिया गया**—(1) **पर्मा**—यह आस्ट्रियन राजकुमारी मेरी लूसीं को दे दिया गया। (2) **टस्कनी**—यह हैप्सबर्ग वंश के राजकुमार फर्डीनेण्ड तृतीय को दिया गया। (3) **लोम्बार्डी**—यह राज्य भी आस्ट्रिया को दे दिया गया। (4) **रोम**—यहां पोप पायस सप्तम को गद्दी पर बैठाया गया। (5) **नेपिल्स और सिसली**—यहां बूर्बां वंश के राजकुमार फर्डीनेण्ड प्रथम को गद्दी पर बैठाया गया। (7) **सार्डीनिया-पीडमाण्ट**—यही एकमात्र इटली का राष्ट्रीय राज्य रहा। यह राज्य पुनः यहां के राजा विक्टर इमानुएल को दे दिया गया।

इस प्रकार इटली में आस्ट्रिया की स्थिति बहुत अधिक दृढ़ थी। वह पूरी तरह इटली का भाग्यविधाता था। 1815 ई. में इटली की शोचनीय स्थिति को मैजिनी ने इस प्रकार स्पष्ट किया—"**हमारा न कोई झण्डा है, न कोई राजनीतिक नाम है और न यूरोप के राष्ट्रों के मध्य हमारा कोई स्थान है। हमारे पास न कोई सम्मिलित बाजार है, न कोई सम्मिलित तत्व है।**" अतः मैजिनी ने इटली की स्थिति को भली प्रकार से अनुभव किया।

एकीकरण के प्रारम्भिक प्रयास (1815 ई.- 1850 ई.)
(EARLY ATTEMPTS OF UNIFICATION)

विभिन्न बाधाओं के बावजूद भी इटलीवासियों ने राष्ट्रीयता की भावना से मुंह नहीं मोड़ा। 1815 से 1850 ई. के बीच इटली के एकीकरण के लिए बराबर प्रयास होते रहे। यद्यपि ये प्रयास सफल नहीं हुए, लेकिन इनसे अवश्य ही इटली के एकीकरण का आधार बन गया।

---

1 कैटलबी, आधुनिक काल का इतिहास, पृ. 190।

2 ".....He was the first to holdout to the subjects of the kingdoms and Duchies and Republic, he overthrew the splendid hope of a united Italy, and his policy was uniformly directed towards its achievements." —*Marriot*

आन्दोलनों का आरम्भ—इटली में सर्वत्र स्वेच्छाचारी राजाओं के शासन स्थापित हो गए थे जिससे इटलीवासी काफी दुःखी थे। अतः अपने देश से विदेशी प्रभाव को समाप्त करने के लिए 1815 ई. के बाद इटली में बराबर आन्दोलन होते रहे—

कार्बोनरी संगठन (Carbonari Organization)—इटली के निवासियों में नेपोलियन के सुधारों से बहुत अधिक जागृति आ गयी थी। इटली में प्रतिक्रियावादी राजसत्ता स्थापित हो जाने से यह जागृति और अधिक बढ़ गयी। इटली के राष्ट्रवादियों द्वारा स्थान-स्थान पर गुप्त समितियां स्थापित की गयीं, इन समितियों में **कार्बोनरी समितियां** (Carbonary) सबसे प्रमुख थीं। इस गुप्त राजनीतिक संस्था के दो प्रमुख उद्देश्य थे—(1) विदेशियों को इटली से बाहर निकालना, (2) वैधानिक स्वतन्त्रता की स्थापना करना। कार्बोनरी दल में लगभग सभी वर्गों के लोग थे। 1831 ई. तक इस समिति के नेतृत्व में इटली का स्वतन्त्रता संग्राम चलता रहा। सेण्ट हेलेना द्वीप में बन्दी जीवन व्यतीत करते हुए नेपोलियन ने कहा था—**"इटली एक राष्ट्र है और भविष्य में वह एक राष्ट्र रहेगा तथा उसकी राजधानी रोम होगी।"** अन्त में नेपोलियन की यह भविष्यवाणी सत्य साबित हुई।

1820-21 **ई. का विद्रोह** (Revolt of 1820-21 A. D.)—1820 ई. में स्पेन में क्रान्ति हुई। इसका प्रभाव इटली पर भी पड़ा। सर्वप्रथम 1820 ई. में नेपल्स में विद्रोह हुआ, लेकिन आस्ट्रिया ने इस विद्रोह को दबा दिया। नेपल्स का अनुसरण करके ही लोम्बार्डी पीडमाण्ट में भी विद्रोह हो गए। पीडमाण्ट के विद्रोह में भी कार्बोनरी संस्था का हाथ था, उसका उद्देश्य था, **"आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध तथा पीडमाण्ट में संविधान की स्थापना।"**[1] पीडमाण्ट के राजा विक्टर इमानुएल ने अपने प्रतिक्रियावादी भाई चार्ल्स फेलिक्स के लिए गद्दी को छोड़ दिया। जनता इसे नहीं चाहती थी वह इसके छोटे भाई एल्बर्ट को चाहती थी। इस पारस्परिक संघर्ष का आस्ट्रिया ने फायदा उठाया। नेपल्स के विद्रोह को दबाने के पश्चात् लौटती हुई आस्ट्रिया की सेना ने पीडमाण्ट के विद्रोह को भी दबा दिया। इस प्रकार 1820 ई. का विद्रोह असफल रहा। जनता में इससे निराशा हो गयी।

मैजिनी का उदय
(RISE OF MAZZINI)

मैजिनी एक विख्यात लेखक था। 1850 ई. में जेनेवा के एक प्रसिद्ध डॉक्टर के घर में इसका जन्म हुआ था। फ्रांसीसी क्रान्ति की अनेक बातें उसने अपने पिता से रोचक शब्दों में सुनी थीं, अतः परिवार ने ही बालक मैजिनी के संस्कारों में देश की दयनीय दशा का चित्रण तथा देश-सेवा के भावों को अंकुरित कर दिया। विद्यार्थी जीवन से ही वह देश की समस्याओं पर विचार करता रहता था। अपनी मनोरंजक, किन्तु अपूर्व आत्मकथा में एक स्थान पर उसने लिखा है—**"मेरे चारों ओर विद्यार्थियों के जीवन का कोलाहल एवं शोरगुल था, किन्तु उनके मध्य भी मैं सदैव गम्भीर और आत्मलीन दिखाई देता और ऐसा लगता कि मैं सहसा बूढ़ा हो गया हूं। बालकों की भांति मैंने संकल्प किया था कि मैं सदैव काले वस्त्र पहनूंगा क्योंकि मुझे ऐसा लगता था कि मैं अपने देश की दुर्दशा पर विलाप कर रहा हूं।"**

जोजेफ मैजिनी का उद्देश्य—मैजिनी का उद्देश्य आल्पस पर्वत श्रेणी से लेकर दक्षिण के समुद्र-पर्यन्त एक विशाल तथा सुसंगठित इटालियन राष्ट्र का निर्माण करना था। मैजिनी ने

1 "War against Austria, at home a constitution."

1830 ई. की क्रान्ति में कार्बोनरी संस्था के सदस्य के रूप में भाग लिया तथा क्रान्ति का दमन हो जाने पर उसे बन्दी बनाकर सेवोना (Savona) के दुर्ग में भेज दिया गया और बाद में इटली से निष्कासित कर दिया गया, लेकिन वह सेवोना दुर्ग में रहते हुए भी गुप्त रूप से पत्रों द्वारा अपने क्रान्तिकारी विचारों को व्यक्त करता रहा।

'तरुण इटली' (Young Italy)—यद्यपि मैजिनी कार्बोनरी का सदस्य था, लेकिन वह उससे सन्तुष्ट नहीं था। वह कार्बोनरी की कार्यप्रणाली को अपर्याप्त एवं असन्तोषजनक समझने लगा था। कार्बोनरी के विषय में वह यह कहा करता था—**"उनके पास कोई कार्यक्रम, धर्म तथा ऊंचे आदर्श नहीं हैं।"**[1] 1831 ई. में जेल से छूटने के बाद मैजिनी को इटली से निष्कासित कर दिया गया। अतः 1831 ई. में मार्साई में निर्वासित जीवन व्यतीत करते हुए उसने 'यंग इटली' नामक संस्था का निर्माण किया। इस संस्था ने नव इटली के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लिया। वैसे तो यह गुप्त संस्था थी, परन्तु उसके सिद्धान्त में षड्यन्त्रकारिता को प्रमुखता नहीं दी गयी थी।

उद्देश्य—इस संस्था का उद्देश्य स्पष्ट एवं निश्चित था कि आस्ट्रिया के प्रभाव को देश से समाप्त किया जाए। इस शर्त की पूर्णता पर ही सारी सफलता निर्भर थी। मैजिनी एवं उसके अनुयायियों का विश्वास था कि युद्ध अनिवार्य है, मैजिनी का यह भी कहना था कि **"इटलीवासियों को विदेशी सरकारों की सहायता और राजनय का भरोसा नहीं करना चाहिए बल्कि मात्र अपनी शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। जब दो करोड़ जनसंख्या वाला राष्ट्र अपने अधिकारों के लिए लड़ने को खड़ा हो जाएगा तो आस्ट्रिया उसके सामने टिक न सकेगा।"**[2]

मैजिनी का कथन था कि इटली का उद्धार नवयुवकों द्वारा होगा। 40 वर्ष से कम उम्र के लोग ही इस संस्था के सदस्य हो सकते थे क्योंकि उसका ध्यान मात्र नवयुवकों पर था। उसका कहना था कि, **'विद्रोही जनता का नेतृत्व जनता के हाथ में होना चाहिए। तुम इन तरुण हृदयों में छिपी हुई शक्ति का रहस्य नहीं जानते और न तुम्हें यही मालूम है कि युवकों की आवाज का जनता पर जादू का सा असर होता है, इन युवकों में तुम्हें इस धर्म के अनेक सन्देश वाहक मिल जाएंगे।"**

मैजिनी ने नवयुवकों को शिक्षा दी कि मजदूरों की भांति साधारण भोजन करो, पर्वतों पर चढ़ो तथा कारखानों में जाकर उपेक्षित मजदूरों से मिलो। देशभक्तों की असफलता से वह कभी निराश नहीं होता था। उसका मानना था कि **"शहीदों के रक्त से सिंचित होकर ही विचार रूपी पौधे बढ़ते और पनपते हैं।"** समस्त इटली में उसने एकता की भावना उत्पन्न की, उसका नारा भी यही था।[3]

इससे पहले कभी कोई ऐसा दल नहीं हुआ जिसका नेता मैजिनी से अधिक निर्भीक, चरित्रवान, कल्पनाशील एवं प्रतिभावान रहा हो और जिसकी वाणी में इतना आश्चर्यजनक प्रभाव और जिसके हृदय में ऐसा ज्वलन्त उत्साह रहा हो। अगणित लोगों ने उत्साह से मैजिनी का साथ दिया। 1833 ई. तक यंग इटली के सदस्यों की संख्या 60,000 तक पहुंच गयी।

1 "They had no programme, no faith, no lofty ideals."
2 "Set not Italian rely on the aid of foreign government, upon diplomacy, but upon their own unaided strength. The only thing wanting to twenty millions of Italians, desirous of emancipating themselves, not power, but faith." —*Mazzini*
3 "Never rise in any other name then that of Italy and of all Italy."

मैजिनी गणतन्त्र का पक्षपाती था। वह राजाओं की सत्ता का घोर विरोधी था। छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर वह एक शक्तिशाली विशाल इटालियन संघ की स्थापना करना चाहता था। यद्यपि इटली का निर्माण मैजिनी की इच्छानुसार नहीं हुआ, लेकिन सच्चे अर्थों में वह इटली का निर्माता था। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण उसे विदेशों में निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा था। उसके पास साधन बहुत न्यून थे और सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि अपनी जनता से उसका निकट का सम्पर्क नहीं था, लेकिन बाहर रहकर भी अपने क्रान्तिकारी एवं ओजस्वी साहित्य द्वारा अपने देश को बराबर जागृत करता रहा। उसके विचारों के प्रभावस्वरूप ही इटलीवासियों में देशभक्ति का उदय एवं उत्थान हुआ, इससे पहले का अस्तित्व केवल लोगों की कल्पना में ही था। हेजन ने उसका मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि **"मैजिनी की समता का अन्य कोई निर्भीक नैतिक आचरण वाला विचारशील, मृदुभाषी और उत्साही नेता नहीं देखा गया।"**[1]

1830 ई. की क्रान्ति और इटली (French Revolution of 1830 and Italy)—1830 ई. में फ्रांस में क्रान्ति हो गयी। इसकी आग एकदम इटली में फैल गयी। इसके प्रभाव के अन्तर्गत पर्मा, मोडेना एवं पोप के राज्यों में भी विद्रोह हो गए। इटली के अनेक राज्यों से शासकों को अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा, लेकिन मैटरनिख ने इन विद्रोहों का क्रूरतापूर्वक दमन किया। आस्ट्रिया की फौजों के हस्तक्षेप द्वारा सभी राज्यों में पुनः पुराने राजाओं को उनके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस क्रान्ति में मैजिनी ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया था जिसके कारण उसको 6 माह की कैद तथा विदेशों में निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ईसाई नगर में निर्वासित जीवन व्यतीत करते समय उसने 'Association of Young Italy' का निर्माण किया था जिसका प्रमुख नारा था **'इटली इटली वालों के लिए है।'** (Italy for Italians')।

1830 ई. से पीडमाण्ट में **'लिबरल पार्टी' द अजेग्लिओ** (D. Azeglio) के नेतृत्व में काम कर ही थी। यह देश में एकतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र स्थापित करना चाहती थी तथा संघ शासन की स्थापना करना चाहती थी। इसी समय पीडमाण्ट के प्रतिक्रियावादी राजा चार्ल्स फेलिक्स की मृत्यु हो गयी तथा उसका छोटा भाई एल्बर्ट राजा बना जो उदार था। वह पहले कार्बोनरी संस्था का सदस्य रह चुका था, लेकिन उसने मैजिनी के मार्साई नगर से बाहर निकलते ही गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया। इससे एल्बर्ट का विरोध बहुत बढ़ गया। उसकी हत्या के प्रयत्न किए जाने लगे। इससे मैजिनी बहुत बदनाम हो गया और इंग्लैण्ड भाग गया।

एक दल राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण कैप्पिलिकों का था जो **निओग्वेल्फ** (Neoguelph) कहलाता था। इसका नेता विन्सेन्जो गिओवर्ट था। इसने अपने विचार **'प्राइमेटो'** नामक अपनी पुस्तक में प्रकट किए थे। गिओवर्ट राष्ट्रीयता, उदारवाद तथा परम्परागत धर्म को शामिल करके समस्त इटली को पोप की अध्यक्षता में एक संघ बनाना चाहता था। 1846 ई. में ग्रेगरी सोलहवें की मृत्यु हो जाने पर पोप पायस नवम् पोप बना, यह उदार था। इसने अनेक

1 "Never did a cause have a more dauntless leader, a man of purity of life, a man of imagination, of poetry, of audacity, gifted morever, with marvelous command of persuasive language and with burning enthusiasm in his heart." —*Hazen*

राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया तथा जनता की सुधार की मांगों को स्वीकार कर लिया, परन्तु पोप पायस का उदारवाद अधिक दिनों तक नहीं चला, 1849 ई. में यह लुप्त हो गया।

1848 ई. की क्रान्ति और इटली में विद्रोह (French Revolution of 1848 and Revolt in Italy)—1831 से 1848 ई. के पूर्व तक इटली में सामान्यतः शक्ति रही, लेकिन इस काल में इटली के देशभक्त अपनी क्रान्तिकारी तैयारियां करते रहे और अवसर की तलाश में रहे। 1848 की फ्रांसीसी क्रान्ति का समाचार पहुंचते ही इटली में भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का युद्ध आरम्भ हो गया। सर्वप्रथम आस्ट्रिया साम्राज्य की राजधानी वियना में विद्रोह हो गया और प्रतिक्रियावादी मैटरनिख का पतन हो गया। वास्तव में मैटरनिख का पतन एक युगान्तरकारी घटना थी। इसके पश्चात् अन्य राज्यों में भी विद्रोह की आग भड़क उठी। सर्वप्रथम लोम्बार्डी की राजधानी मिलान में विद्रोह हुआ। पांच दिन के घमासान युद्ध के पश्चात् भी विद्रोह दबाया न जा सका। सिसली, नेपल्स तथा टस्कनी आदि राज्यों में भी विद्रोह भड़क उठे। आस्ट्रिया की सेना को हर स्थान पर पराजय का मुहं देखना पड़ा, इसी समय पीडमाण्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने भी घोषणा की **"सभी का केवल एक ही कर्तव्य है कि आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दें।"** 23 मार्च, 1848 ई. को चार्ल्स एल्बर्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। लगभग सारा इटली उसके झण्डे के नीचे आ गया। इटली के समस्त राज्यों की जनता में जोश उमड़ पड़ा। राष्ट्रीय स्तर पर इटली के इतिहास का यह पहला युद्ध था। आस्ट्रिया की सेनाएं स्थान-स्थान पर पराजित हो रही थीं, लेकिन इटली की जनता प्रारम्भिक विजयों का फायदा न उठा सकी क्योंकि धीरे-धीरे इटली के राज्यों की आपसी अस्थायी एकता समाप्त हो गयी। सर्वप्रथम पोप ने युद्ध से हाथ खींच लिया इसके बाद नेपल्स के राजा ने भी पोप का अनुसरण किया। टस्कनी भी सहायता देने से मुकर गया। अब पीडमाण्ट का राजा एल्बर्ट अकेला रह गया। अन्त में विवश होकर एल्बर्ट ने विगेवैंनो की सन्धि कर ली तथा लोम्बार्डी और वेनेशिया को खाली कर दिया। इस प्रकार 1848 ई. का आन्दोलन सफल न हो सका। आस्ट्रिया की प्रधानता पुनः स्थापित हो गयी। केवल पीडमाण्ड को छोड़कर बाकी सब स्थानों पर निरंकुश शासन फिर से स्थापित हो गया। हेज ने इस सन्दर्भ में कहा—**"मध्य यूरोप के सभी देशों में इटली ही एक ऐसा देश था जहां उदारवाद अत्यधिक उग्र व प्रभावी था, और इटली ही सर्वप्रथम 1848 ई. की अपनी पराजय का प्रतिशोध लेकर अपना राष्ट्रीय एकीकरण कर सका।"**[1]

रोम में क्रान्ति और गणतन्त्र की स्थापना—इटली का स्वतन्त्रता संग्राम समाप्त हो जाने पर निरंकुश शासकों ने इटली के देशभक्तों का दमन करना प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों मैजिनी इटली वापस लौट आया था। उसी के नेतृत्व में पोप की राजधानी रोम में विद्रोह हो गया। पोप रोम छोड़कर भाग गया तथा उसने नेपल्स के राजा फर्डीनेण्ड के पास शरण ली। **अतः 1849 ई. में रोम में गणतन्त्र की स्थापना कर दी गयी।** गणतन्त्र की इस केन्द्रीय कार्यकारिणी में तीन व्यक्ति थे। मैजिनी भी इनमें से एक था। फ्लोरेन्स और टस्कनी में भी इसी तरह के गणराज्य स्थापित हो गए। एल्बर्ट इस गणतन्त्रात्मक प्रवृत्ति के प्रसार से भयभीत हो गया उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। आस्ट्रिया ने नोवारा के युद्ध में इसे बुरी तरह

1 Hayes, C. J. H., *Modern Europe to 1870*, p. 734.

पराजित कर दिया। अतः निरन्तर असफलता से दुःखी होकर वह अपने पुत्र इमेनुएल के पक्ष में सिंहासन छोड़कर स्वयं देश से निकल गया।

इस समय तक क्रान्ति समाप्तप्राय हो चुकी थी, लेकिन इसी समय फ्रांस के राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय से पोप का पक्ष लेते हुए कैथोलिक दल के आग्रह पर पोप की सहायता हेतु अपनी सेनाएं रोम भेज दीं। सेना ने रोम में प्रवेश करके पोप को पुनः सिंहासन पर बैठा दिया। मैजिनी इंग्लैण्ड भाग गया।

अतः एक बार पुनः आस्ट्रिया ने टस्कनी, मोडेना, परमा, आदि शासकों को पुनः उसके सिंहासनों पर बैठा दिया। रोम तथा पीडमाण्ट को छोड़कर समस्त इटली पर पुनः आस्ट्रिया का प्रभाव स्थापित हो गया। वह इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का पहला चरण था जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के सारे प्रयत्न विफल रहे। आस्ट्रिया द्वारा इटली में किए गए अत्याचारों से सारा यूरोप आस्ट्रिया का विरोधी हो गया।

1815 से 1850 ई. तक एकीकरण की असफलता के कारण (CUASES OF FAILURE)

1850 ई. तक इटली का एकीकरण न हो पाने के अनेक कारण थे, जिनमें से प्रमुख निम्नांकित थे—

(1) निश्चित योजना का अभाव—इस काल में इटली के देशभक्त भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को लेकर अलग-अलग ढंग से कार्य कर रहे थे। यथा सार्डीनिया, पीडमाण्ट राजतन्त्र के पक्ष में थे। गिओबर्टी पोप के नेतृत्व में संघीय शासन चाहता था जबकि मैजिनी गणतन्त्र चाहता था। अतः क्रान्तिकारियों के सम्मुख एक निश्चित उद्देश्य न था।

(2) कूटनीतिज्ञ नेता का अभाव—असफलता का एक कारण यह भी था कि इस दौर में इटली में योग्य कूटनीतिज्ञ नेता का उदय न हो सका जो कि इटली की वास्तविक समस्याओं को समझ कर एक सफल हल ढूंढता। मैजिनी एकमात्र दार्शनिक नेता था।

(3) सशक्त दल का अभाव—इटली में कोई ऐसा दल न था जो सम्पूर्ण देश को अपनी ओर आकृष्ट करके सम्पूर्ण जनता को एक झण्डे के नीचे एकत्र कर सकता। कार्बोनरी संस्था छोटे-छोटे विद्रोहों के अतिरिक्त कुछ न कर सकी। मैजिनी का 'यंग इटली' भी जनता को अपनी ओर आकृष्ट न कर सका।

(4) इटली की समस्या स्थानीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय थी—1850 ई. तक इटली के देशभक्तों का यह विश्वास था कि वे मात्र अपने ही साधनों के बल पर इटली को स्वतन्त्र कर सकते हैं जबकि यह विचार गलत था क्योंकि इटली की समस्या स्थानीय नहीं थी वरन् वह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या थी। 1815 ई. में इटली का विभाजन भी एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (वियना सम्मेलन) ने किया था, अतः इटली के एकीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की धाराओं को भंग करना था।

(5) इटली में आस्ट्रिया का प्रभुत्व—इस काल में इटली के स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता का एक कारण आस्ट्रिया की इटली में प्रधानता थी। लोम्बार्डी और वेनेशिया में उसका राज्य था। पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी के राज्य भी आस्ट्रिया के राजवंश से सम्बन्धित थे। रोम का पोप आस्ट्रिया का समर्थक था। नेपल्स तथा सिसली ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली। अतः इस समय बिना आस्ट्रिया को शक्तिहीन बनाए इटली का स्वतन्त्रता संग्राम सफल नहीं हो सकता था।

लेकिन इस विफलता में भी सफलता की किरणें छिपी हुई थीं। **यह बात अब स्पष्ट हो गयी थी कि सार्डीनिया-पीडमाण्ट ही आगामी इटली का नेतृत्व कर सकते हैं।** इसके अतिरिक्त, इस समय तक सारा इटली जाग चुका था। इस समय तक यह बात भी स्पष्ट हो चुकी थी कि इटली अकेले अपनी स्वतन्त्रता और एकता प्राप्त नहीं कर सकता, इटली का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है जिसे कुछ बड़े देशों के सहयोग से ही हल किया जा सकता है। अतः अब इटली मजबूत और सुसंगठित राष्ट्र होने जा रहा था, इसके लिए एक नवीन संकल्प की आवश्यकता थी। विक्टर एमानुएल ने इसलिए कहा था—**"सामन्तवादी प्रतिष्ठा के दिन समाप्त हो गए हैं, व्यावहारिक युग का आरम्भ हो गया है। अब काव्य का स्थान गद्य को लेना है।"**

इटली के एकीकरण का दूसरा चरण (1850-70 ई.)
(II PHASE OF THE UNIFICATION OF ITALY)

इटली के एकीकरण का दूसरा चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस दौरान इटली में अनेक ऐसे नेताओं का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अन्ततः इटली को एक राष्ट्र के रूप में परिणत करने में सफलता प्राप्त की।

गैरीबाल्डी का योगदान
(CONTRIBUTION OF GARIBALDI)

इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसका जन्म 1807 ई. में इटली के नीस नामक नगर में हुआ था। बचपन से ही उसमें स्वदेश के प्रति लगाव था। प्रारम्भ में वह **'तरुण इटली'** (Young Italy) का सदस्य बन गया। 1833 ई. में मैजिनी के साथ मिलकर उसने इटली में गणतन्त्र स्थापित करने का असफल प्रयत्न किया जिसके कारण उसे मृत्युदण्ड दिया गया, लेकिन वह किसी तरह दक्षिणी अमरीका भाग निकला। 14 वर्ष तक वह प्रवासी जीवन व्यतीत करता रहा तथा गुप्त रूप से दक्षिणी अमरीका के स्वतन्त्रता संग्रामों में भाग लेता रहा। मैटरनिख के पतन के बाद 1848 ई. में सार्डीनिया तथा आस्ट्रिया के बीच युद्ध चल रहा था। गैरीबाल्डी तीन हजार स्वयंसेवकों को साथ लेकर सार्डीनिया की ओर से लड़ा, लेकिन जुलाई 1848 ई. में सार्डीनिया के शासक एल्बर्ट को आस्ट्रिया से सन्धि करनी पड़ी, मगर गैरीबाल्डी ने युद्ध जारी रखा। 1849 ई. में रोम की क्रान्ति में भी गैरीबाल्डी ने भाग लिया तत्पश्चात् यहां मैजिनी के नेतृत्व में रोमन गणराज्य की स्थापना हुई। गैरीबाल्डी भी रोम चला गया। जब नेपोलियन तृतीय की सेना ने पोप की सहायता के लिए फ्रांसीसी सेनाएं भेजीं तो गणराज्य की रक्षा हेतु गैरीबाल्डी ने डटकर फ्रांसीसी सेना का मुकाबला किया, लेकिन उसको हार का मुंह देखना पड़ा और उसे विवश होकर अमरीका भागना पड़ा। इस बार वह 6 वर्ष तक अमरीका में रहा। 1854 ई. में वह पुनः इटली आकर कैपोरा (सार्डीनिया) टापू में रहने लगा। 1856 ई. में कैवूर से उसकी मुलाकात हुई। इसने कैवूर से समझौता कर अपने गणतन्त्रवादी विचार बदल दिए, अतः इटली में गणतन्त्रवादी और वैधानिक राजसत्ता में समझौता हो गया। कैटलबी के अनुसार, **"यदि यह समझौता नहीं होता और उनके बीच मतभेद बना रहता तो सम्भवतः इटली की एकता कायम नहीं होती तथा उसकी नाव मंझधार में डूब गयी होती।"**[1]

1 कैटलबी, आधुनिक काल का इतिहास, पृ. 273.

गैरीबाल्डी का वास्तविक काल 1860 ई. से प्रारम्भ होता है। 1860 ई. में उसने सिसली को स्वतन्त्र कराया। सितम्बर 1860 ई. में उसने नेपल्स पर अधिकार कर लिया। 1860 ई. में कैवूर की नीतियों से असन्तुष्ट होकर उसे सहयोग देने से इन्कार कर दिया। इसके बाद गैरीबाल्डी विक्टर इमानुएल से मिला। उसने अपनी जीती हुई भूमि इमानुएल को दे दी, जो कि उसका महान् आत्म-त्याग था।

गैरीबाल्डी का उद्देश्य भी इटली का एकीकरण करना था मगर उसका उद्देश्य प्राप्ति का मार्ग विभिन्न था। उसे इस बात का दुःख था कि इटली के नेता उस पर विश्वास नहीं करते हैं। उसने कैवूर की मृत्यु के बाद पुनः रोम पर आक्रमण किया, लेकिन असफल रहा। इसके बाद उसने अपना शेष जीवन केपरेरा टापू में व्यतीत किया जहां 1882 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। गैरीबाल्डी का नाम इटली को संगठित करने वाले देशभक्तों में सर्वोपरि है। एकीकरण के इस महान् कार्य में उसने अपने अदम्य साहस, बल और शक्ति का अपूर्व परिचय दिया।

कैवूर का उदय
(RISE OF CAVOUR 1810-61)

कैवूर वह व्यक्ति था जिसने इटली के सदियों पुराने स्पप्न को पूरा किया था। मैजिनी और गैरीबाल्डी से कम लोकप्रिय, किन्तु इटली के एकीकरण में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति कैवूर ही था। **यह व्यक्ति कूटनीतिक मामलों में बिस्मार्क से कम न था, वैदेशिक मामलों में इसकी तुलना डिजरैली** (Disraeli) **से की जाती है।** काउण्ट कैवूर का जन्म 1810 ई. में सार्डीनिया के एक कुलीन घराने में हुआ था। 10 वर्ष की आयु में उसे ट्यूरिन की मिलिटरी एकेडमी में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वह सेना में इन्जीनियर हो गया, किन्तु इसकी लालसा राजनीतिज्ञ बनने की थी। अतः 1831 ई. में उसने सैनिक सेवा से त्यागपत्र दे दिया और देश के लिए कुछ करने का निश्चय किया। 15 वर्ष देहात में रहकर उसने जमींदार का जीवन बिताया और अपनी जायदाद की उन्नति में लगा रहा। चूंकि राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं में रुचि होने के कारण उसने इन वर्षों में फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, आदि देशों की यात्राओं द्वारा राजनीति का ज्ञान प्राप्त किया। उसे इंग्लैण्ड का द्वैध शासन बहुत पसन्द आया। एक बार उसने कहा भी था, **"अगर मैं अंग्रेज होता तो अभी तक कुछ बन गया होता और अभी तक मेरा नाम अज्ञात न रहता।"**[1] वह इंग्लैण्ड की संसदीय प्रणाली अपने देश में स्थापित करना चाहता था। रात-रात भर वह लोकसभा (हाउस ऑफ कॉमन्स) के दर्शक कक्ष में बैठा रहता था जिससे वह उसकी कार्यप्रणाली को पूरी तरह जान सके। 1842 ई. में कैवूर ने कृषि की उन्नति के लिए एक समिति बनायी जिसका कार्यालय कालान्तर में वाद-विवादों का केन्द्र बन गया। 1847 ई. में कैवूर ने एक पत्र प्रकाशित किया। इस समाचार-पत्र का उद्देश्य इटली में सुधारों और एकीकरण की जड़ों को मजबूत करना था। इससे पूर्व 1842 ई. में उसने एक संगठन **'एसोसिएजोन अग्रेरिया'** (Associazone Agraria) की स्थापना की। यह संगठन थोड़े ही समय में काफी प्रभावशील हो गया था। धीरे-धीरे कैवूर का प्रभाव बढ़ता गया। 1848 ई. में पहली बार पीडमाण्ट की विधान परिषद का सदस्य बन गया। देश का मन्त्रिमण्डल बार-बार बदलता रहा, किन्तु कैवूर

1 "Oh? If I were an Englishman, by this time I should be something, and my name would not be wholly unknown." —*Cavour*

हर बार सफलतापूर्वक निर्वाचित होता रहा। 1850 ई. में वह कृषि एवं वाणिज्य मन्त्री नियुक्त हुआ। 1852 ई. में उसे अर्थ और नौसेना के विभाग भी दिए गए। उसकी योग्यता से प्रसन्न होकर 1852 ई. में विक्टर इमानुएल ने उसे अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। केवल बीच में कुछ सप्ताहों को छोड़कर वह जीवन भर इस पद पर बना रहा तथा अपने कार्यों द्वारा उसने एक महान् राजनीतिक एवं एक अद्वितीय राजनयिक होने का परिचय दिया।

कैवूर के उद्देश्य (Objectives of Cavour)—कैवूर का उद्देश्य भी यही था जो मैजिनी का था अर्थात् वह भी इटली का एकीकरण करना चाहता था, लेकिन इन उद्देश्यों की प्राप्ति के ढंग अलग-अलग थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसमें जोश एवं तलवारबाजी के पैंतरों के स्थान पर राजनीतिक दांव-पेंचों की मर्मज्ञता एवं कूटनीति की निपुणता थी। 1815 ई. में इटली का मामला जो कि लगातार आस्ट्रिया का घरेलू मामला समझा जा रहा था उसे कैवूर ने अपनी कूटनीति से अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बना दिया। **संक्षेप में, कैवूर के स्पष्ट उद्देश्यों का विवरण निम्नलिखित है :**

(1) सर्वप्रथम कैवूर ने ही इस बात का अनुभव किया कि एकमात्र सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य ही इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व कर सकता है।

(2) कैवूर ने इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बनाया, अतः प्रधानमन्त्री का पद संभालते ही उसने निरन्तर यूरोपीय देशों की मित्रता एवं सद्भावना प्राप्त करने का प्रयास किया।

(3) कैवूर ने ही पहली बार राजनीतिक प्रश्नों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक समस्याओं पर भी जोर दिया। उसने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक सभी दृष्टिकोणों से एक आदर्श राज्य बनाने का प्रयास किया। उसका मानना था कि ऐसा करने पर ही इटली के अन्य राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट की ओर आकृष्ट होंगे।[1]

(4) कैवूर यह जानता था कि इटली से विदेशियों को निकालने के लिए सशस्त्र युद्ध होगा, अतः इसके लिए उसने सार्डीनिया-पीडमाण्ड के संगठन को अपना एक प्रमुख उद्देश्य बनाया।

(5) कैवूर शस्त्रों के बल पर अपने निर्णयों को आरोपित नहीं करना चाहता था। वह लोकमत एवं संसद को लेकर आगे चलना चाहता था। सैनिक तैयारी के साथ-साथ वह लोकमत को अपने पक्ष में करना चाहता था। उसने स्पष्ट घोषणा की कि **"इटली का निर्माण स्वतन्त्रता के आधार पर किया जाए या हमें इटली के निर्माण का विचार त्याग देना चाहिए।"**[2]

अतः अपने इन उद्देश्यों से भरपूर कार्यप्रणाली की सभी बातें कैवूर ने बड़ी होशियारी से पूरी कीं। उसने चारों ओर एक ऐसा जाल बिछा दिया कि आस्ट्रिया उसमें फंसे बिना न रह सका तथा इटली को एक राष्ट्र बनने से न रोक सका।

---

1 "Piedmont must begin by raising herself by re-establishing in Europe as well as in Italy a position and credit equal to her ambition." —*Cavour*

2 "Italy must make herself by means of Liberty or we must give up trying to make her." —*Cavour*

कैवूर की गृह नीति
(HOME POLICY OF CAVOUR)

कैवूर इटली की आवश्यकताओं को भली प्रकार अनुभव करता था। अपनी योजनानुसार उसने अपनी **गृह नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए :**

(1) **आर्थिक क्षेत्र में कार्य**—पीडमाण्ट की उन्नति के लिए व्यापार एवं वाणिज्य की ओर विशेष ध्यान दिया। व्यापार के क्षेत्र में वह स्वतन्त्र व्यापार का समर्थक था। उसने पड़ोसी राज्यों के साथ व्यापारिक सन्धियां कीं। कृषि की उन्नति के लिए भी उसने अनेक कार्य किए। कृषकों को आर्थिक सहायता प्रदान की तथा उनके लिए वैज्ञानिक परामर्श की व्यवस्था की। अनेक कारखाने खोले तथा यातायात की सुविधाओं के लिए रेलवे लाइन बना दी गयी। सड़कों तथा नहरों का भी विस्तार किया गया। देश के बजट में भी सुधार किए गए, कर बढ़ा दिए गए ताकि अधिक आमदनी से सेना का संगठन अच्छा हो सके। बैंकों की स्थापना की गयी, सहकारी समितियां खोली गयीं तथा कृषि की उन्नति हेतु ऋण देने का भी प्रबन्ध किया गया, दलदलों एवं उजड़े प्रदेशों को भी खेती योग्य बनाया गया। चर्च की बहुत-सी भूमि छीनकर उसका सार्वजनिक उपयोग किया गया।

(2) **सेना में सुधार**—कैवूर ने सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सैनिक संगठन को ऊंची प्राथमिकता दी, क्योंकि उसका मानना था कि बिना युद्ध हुए इटली का एकीकरण नहीं हो सकता है। अतः उसने जनरल लामारमोरा के नेतृत्व में सेना का पुनर्गठन किया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि बजट में से एक भारी धनराशि सेना के संगठन के लिए निर्धारित की गयी थी, जिसके फलस्वरूप राज्य की 90 हजार की एक सुसंगठित एवं सुसज्जित सेना तैयार की गयी जबकि राज्य की कुल आबादी 50 लाख के लगभग ही थी। इन सबके अतिरिक्त उसने एक जहाजी बेड़े का भी निर्माण कराया तथा राज्य में भिन्न-भिन्न स्थानों में अनेक दुर्गों का भी निर्माण कराया।

(3) **धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन**—कैवूर राजनीतिक क्षेत्र में चर्च के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करता था। कैथोलिक पादरी इटली के एकीकरण के विरोधी थे क्योंकि उन्हें भय था कि इटली के एकीकरण से पोप का राज्य भी समाप्त हो जाएगा। अतः कैवूर स्वयं भी इन्हें इटली की एकता का शत्रु मानता था। उसने चर्च के अनेक विशेषाधिकार छीन लिए तथा कई अवांछित मठ तोड़ दिए गए। कैवूर ने धर्म को राज्याधारित बनाया इसके लिए उसने सार्डीनिया से अनेक जैसूइट (Jesuit) पादरियों को निष्कासित कर अनेक पदों पर अधिकार कर लिया।

(4) **राजनीतिक सुधार**—कैवूर ने सार्डीनिया-पीडमाण्ट को पूर्णतया संवैधानिक राज्य बनाने का प्रयत्न किया। उसने प्रत्येक काम संसद के माध्यम से करा कर उसकी शक्ति बढ़ाई। उसने मताधिकार को व्यापक बनाया। भाषण तथा लेख को भी स्वतन्त्रता प्रदान की। प्रेस को प्रोत्साहित किया गया जिससे वह स्वतन्त्रतापूर्वक विभिन्न विचारों को व्यक्त कर सके।

उदारवादी आदर्श से प्रभावित होकर उसने अपने राज्य की समृद्धि के लिए प्रयास किया। हेज ने लिखा है—**"प्रधानमन्त्री के रूप में कैवूर ने अंग्रेजी उदारवादी आदर्श के अनुरूप अपने राज्य की भौतिक समृद्धि में वृद्धि की।"**[1]

1 Hayes, C. J. H. *Modern Europe to 1870*, p. 757.

इस प्रकार की गृह नीति के फलस्वरूप ही सार्डीनिया-पीडमाण्ट का छोटा राज्य इटली का भाग्य निर्माता बन गया। हर दृष्टि से उसने एक आदर्श राज्य बनाने की कोशिश की जिससे सम्पूर्ण इटली सार्डीनिया-पीडमाण्ट की ओर आकृष्ट होने लगा।

कैवूर की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF CAVOUR)

कैवूर ने अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत निम्नलिखितं कार्य किए—

विदेशी सैनिक सहायता व कूटनीतिज्ञता का इटली के एकीकरण में योगदान

कैवूर ने इटली को एकीकृत करने के लिए प्रभावशाली विदेश नीति अपनायी। वह अब तक इस तथ्य को भली-भांति समझ चुका था कि इटली से आस्ट्रिया को किसी विदेशी सत्ता की सहायता के बिना नहीं निकाला जा सकता है। अतः कैवूर को एक मित्र की तलाश थी। उसने देखा कि क्षेत्र बहुत सीमित है। इंग्लैण्ड अथवा फ्रांस में से ही कोई एक इटली का मित्र बन सकता था। इंग्लैण्ड स्वयं को यूरोपीय उलझनों से दूर रखना चाहता था तथा उसके पास सेना भी नहीं थी। जबकि फ्रांस की सेना यूरोप की सर्वश्रेष्ठ सेनाओं में से एक थी और उसका शासक नेपोलियन भी साहसिक तथा महत्वाकांक्षी था, इसीलिए कैवूर कहा भी करता था—**''हम चाहें या न चाहें हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है।'' अतः अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कैवूर ने विदेश नीति के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किए :**

क्रीमिया युद्ध में हस्तक्षेप—यूरोपीय राज्यों की सहानुभूति एवं सहयोग प्राप्त करने का पहला अवसर उसे 1854-56 के क्रीमिया युद्ध (Crimean War) में मिला। वह युद्ध लैटिन पादरियों और यूनानी पादरियों के बीच झगड़े के कारण उत्पन्न हुआ था। इस युद्ध में फ्रांस और इंग्लैण्ड ने रूस के विरुद्ध टर्की का साथ दिया। कैवूर यूरोप के राजनीतिक रंगमंच पर इंग्लैण्ड और फ्रांस के मित्र के रूप में आना चाहता था जिससे आस्ट्रिया के विरुद्ध व इन दोनों राष्ट्रों की नहीं तो कम से कम एक राष्ट्र की सहायता प्राप्त कर सके। अतः अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कैवूर ने बिना किसी शर्त के क्रीमिया के युद्ध में इंग्लैण्ड और फ्रांस का साथ दिया। इस अवसर पर उसने 17,000 सैनिकों को क्रीमिया भेजा। **इस अवसर पर उसने अपने सेनापति ला मारमोरा को लिखा कि देश का भविष्य आपके थैलों में है।**[1] वास्तव में उसका यह कथन सत्य था। क्रीमिया युद्ध ने इटली का भाग्य निर्माण किया। कैवूर की सेना ने इस युद्ध में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। यह युद्ध लगभग दो वर्ष तक चला अन्त में रूस की पराजय हुई। कैवूर के सैनिकों की वीरता से फ्रांस और इंग्लैण्ड बड़े प्रभावित हुए। अतः दोनों कैवूर के मित्र बन गए। डेविड थामसन के शब्दों में, **''कैवूर ने क्रीमिया युद्ध में ब्रिटेन व फ्रांस के मित्र के रूप में भाग लेकर 1856 ई. में पेरिस की सन्धि के निर्णय में भाग लेने का विश्वास प्राप्त कर लिया।''**[2] कैटलबी ने भी कैवूर द्वारा इस युद्ध में भाग दिए जाने के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, **''क्रीमिया की मिट्टी से इटली और जर्मनी दोनों का निरूपण हुआ।''**[3]

1 "You have the future of Country in your haversacks."
2 David Thomson, *Europe Since Napoloeon*, p. 275.
3 "Out of the mude of Crimea a new Italy was created and less obiviously a new Germany." —*Ketelbey*

पेरिस सम्मेलन में आमन्त्रित—रूस ने जब आत्मसमर्पण कर दिया तो दोनों पक्षों में 1856 ई. में **पेरिस की सन्धि** हुई। आस्ट्रिया के लाख विरोध करने पर भी सार्डीनिया को सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया। अतः सार्डीनिया की ओर से कैवूर ने भाग लिया। उसने वहां इटली के प्रश्न को उठाया। सम्मेलन में ब्रिटिश विदेश मन्त्री ने कैवूर के भाषण का जोरदार शब्दों में समर्थन किया तथा इटली में पोप राज्य की आलोचना की। **इस सम्मेलन से कैवूर को अनेक लाभ हुए**—

(क) कैवूर की गणना यूरोप के प्रमुख कूटनीतिज्ञों में की जाने लगी।

(ख) सार्डीनिया-पीडमाण्ट के हाथ में इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व आ गया।

(ग) कैवूर के नेतृत्व वाली राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था अब इटली में अधिक लोकप्रिय हो गयी।

(घ) आस्ट्रिया इससे काफी बदनाम हो गया तथा इटली के राष्ट्रीय हितों के लिए उसका इटली में आधिपत्य हानिकारक समझा जाने लगा।

(ङ) इटली का प्रश्न अब स्थानीय न रह कर अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया। अपनी सफलता पर कैवूर ने घोषित किया कि इटली का प्रश्न भविष्य में एक यूरोपीय प्रश्न होने वाला है।[1]

(च) इस सम्मेलन से कैवूर को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि उसे यूरोप के दो बड़े देशों—फ्रांस तथा इंग्लैण्ड की सहानुभूति प्राप्त हो गयी, जो भविष्य में इटली के स्वतन्त्रता संग्राम में लाभकारी प्रमाणित हुई।

नेपोलियन तृतीय से सन्धि (प्लेम्बियर्स समझौता, 1858 ई.)

यद्यपि इंग्लैण्ड की सहानुभूति इटली की ओर अवश्य थी, परन्तु वह इटली को सक्रिय सहायता देने को तैयार नहीं था। वह वियना कांग्रेस के विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहता था। अतः कैवूर ने फ्रांस के राजा नेपोलियन तृतीय को अपनी ओर मिलाने का प्रयास शुरू कर दिया। नेपोलियन की इटली के प्रति सहानुभूति के अनेक कारण थे जिनके कारण फ्रांस इटली की मदद करना चाहता था। **नेपोलियन स्वभावतः राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति रखता था। वह कार्बोनरी संस्था के सदस्य के रूप में 1831 ई. में इटली के स्वतन्त्रता संग्राम में भी भाग ले चुका था। उसके चाचा नेपोलियन बोनापार्ट ने भी इटली में नयी व्यवस्था स्थापित की थी।** अतः नेपोलियन तृतीय विएना कांग्रेस के निर्णयों को फांस के लिए अपमानजनक समझता था तथा इन निर्णयों को वह इटली में नवीन व्यवस्था स्थापित करके तोड़ सकता था। इसके अतिरिक्त, नेपोलियन तृतीय को यह भी आशा थी की सम्भवतः इटली को सहायता देने के बदले में फ्रांस को कुछ प्रदेश मिल जाएंगे।

इन सब कारणों से 21 जुलाई, 1858 ई. को नेपोलियन के आक्रमण पर कैवूर के साथ फ्रांस के **प्लाम्बियर्स** नामक स्थान पर एक गुप्त मन्त्रणा हुई। यह वार्ता इतनी गुप्त हुई की नेपोलियन के मन्त्रियों को भी पता न चला। **इस गुप्त वार्ता में निम्नलिखित बातें तय हुईं :**

(1) यदि आस्ट्रिया और सार्डीनिया-पीडमाण्ट के बीच युद्ध छिड़ा तो फ्रांस सार्डीनिया-पीडमाण्ट को सैनिक सहायता देगा।

(2) लोम्बार्डी-वेनेशिया से आस्ट्रिया को निकालकर ये प्रदेश सार्डीनिया-पीडमाण्ट को दिए जाएंगे।

---

1 "The Italian has become for the future a European question."

(3) पर्मा, मोडेना और टस्कनी से भी विदेशी शासन समाप्त करके इन राज्यों को सार्डीनिया-पीडमाण्ट को दे दिया जाएगा तथा पोप राज्य के रोमैग्ना तथा लीगेशन्स क्षेत्र भी सार्डीनिया-पीडमाण्ट के दे दिए जाएंगे।

(4) सैनिक सहायता के बदले में फ्रांस को सवीय प्रदेश और यदि सम्भव हुआ तो नाइस प्रदेश दिए जाएंगे।

(5) विक्टर इमानुएल की पुत्री का विवाह नेपोलियन तृतीय के चचेरे भाई जैरोम (Jerome) के साथ होगा।

(6) वृहत्तर सार्डीनिया तथा पीडमाण्ट एवं इटली के अन्य राज्यों का एक संघ बनाया जाएगा और पोप इस संघ का अध्यक्ष होगा।

यद्यपि विक्टर एमानुएल को अपनी 16-वर्षीय पुत्री का विवाह 43-वर्षीय जेरोम के साथ करने में बड़ा कष्ट हुआ, लेकिन कैवूर के समझाने पर देश-हित हेतु उसने अपनी भावनाओं का दमन कर दिया।

पीडमाण्ट-आस्ट्रिया युद्ध 1859 ई.—अब कैवूर ने पुनः कूटनीतिक कदम उठाने प्रारम्भ किए। प्लाम्बियर्स के समझौते के अनुसार फ्रांस कैवूर की मदद तभी करता जबकि युद्ध का आरम्भ आस्ट्रिया करता। अतः अब कैवूर एक ऐसे अवसर की खोज करने लगा कि आस्ट्रिया युद्ध करने के लिए विवश हो जाए। इसके लिए कैवूर ने एक नया तरीका अपनाया उसने अखबारों एवं भाषणों के माध्यम से आस्ट्रिया को काफी भड़काया। उसने आस्ट्रिया के माल पर चुंगी बढ़ा दी तथा आस्ट्रिया अधिकृत लोम्बार्डी और वेनेशिया के प्रान्तों में उपद्रव करवाने का भरसक प्रयास किया।

ब्रिटेन इस स्थिति से प्रसन्न नहीं था। वह फ्रांस के प्रभाव में वृद्धि नहीं चाहता था उसने आस्ट्रिया और सार्डीनिया-पीडमाण्ट के बीच एक समझौता कराने का प्रयास किया। नेपोलियन ने भी इंग्लैण्ड के सुझाव का समर्थन किया, लेकिन कैवूर तो युद्ध चाहता था, अतः 23 अप्रैल, 1859 ई. को आस्ट्रिया ने पीडमाण्ट को यह चेतावनी दी कि वह तीन दिन के अन्दर अपना निःशस्त्रीकरण कर दे वरना आस्ट्रिया उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। कैवूर इस चेतावनी से बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा **"पासा पलट गया है और हम नया इतिहास बनाने जा रहे हैं।"**[1] डेविड थामसन के अनुसार, **"कैवूर की कूटनीति का एकमात्र उद्देश्य यह था कि आस्ट्रिया को ठीक समय पर युद्ध की घोषणा करने के लिए प्रेरित किया जाए ताकि अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ स्वयं को युद्ध की चुनौती स्वीकार करनी पड़े।"**[2]

अतः कैवूर को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई। उसने आस्ट्रिया की चुनौती को ठुकरा दिया और अप्रैल, 1859 ई. में आस्ट्रिया ने पीडमाण्ट पर आक्रमण कर दिया। युद्ध आस्ट्रिया की ओर से आरम्भ हुआ था, अतः प्लाम्बियर्स समझौते के अनुसार नेपोलियन तृतीय भी अपनी सेना के साथ पीडमाण्ट की सहायता करने हेतु आ गया। युद्ध की सूचना पाते ही गैरीबाल्डी भी अपने स्वयंसेवकों के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए आ गया। इसके अतिरिक्त, इटली के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक पीडमाण्ट की सहायता हेतु आ गए। इन सेनाओं के बीच तीन प्रमुख युद्ध हुए।

1 "The die is cast and we have made new history." —*Cavour*

2 David Thomson, *Europe Since Nepoleon*, pp. 276-277.

(1) **मौगेण्टा का युद्ध** (Battle of Mogenta)—4 जून, 1859 ई. को इटली एवं फ्रांसीसियों ने आस्ट्रिया को पराजित किया और मिलान पर अधिकार कर लिया।

(2) **साल्फेरिनो का युद्ध** (Battle of Solfarino)—24 जून, 1859 ई. को साल्फेरिनो के युद्ध में आस्ट्रिया को पराजय का मुंह देखना पड़ा। साल्फेरिनो की लड़ाई 19वीं शताब्दी की भीषणतम लड़ाइयों में गिनी जाती है। इस युद्ध में दोनों ओर से लगभग 40 हजार सैनिक हताहत हुए।

(3) **सैनमर्टिनो का युद्ध** (Battle of Sanmartino)—इस युद्ध में पुनः आस्ट्रिया की पराजय हुई।

इन विजयों के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण लोम्बार्डी पर सार्डीनिया-पीडमाण्ट का राज्य स्थापित हो गया।

नेपोलियन का युद्ध से अलग होना—इन विजयों के फलस्वरूप लगभग समस्त इटली में सार्डीनिया-पीडमाण्ट का प्रभाव स्थापित हो गया। इटली के समस्त राज्यों की जनता सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ हो जाना चाहती थी। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि सार्डीनिया-पीडमाण्ट के नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली एकीकृत हो जाएगा, मगर नेपोलियन इससे भयभीत हो गया उसने इस बात को महसूस किया कि फ्रांस की दक्षिणी-पूर्वी सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना हो रही है जो फ्रांस के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। इसके अतिरिक्त, अन्य अनेक कारण थे जिससे वह आस्ट्रिया की ओर आकृष्ट हुआ। सर्वप्रथम तो नेपोलियन को इन युद्धों के दौरान काफी हानि उठानी पड़ी, उसके काफी सैनिक मारे गए तथा धन भी काफी व्यय हुआ। युद्ध का भीषण रक्तपात देखकर भी नेपोलियन का हृदय द्रवित हो गया। रक्तपात देखकर उसने कहा भी था—"**गरीब जनता, गरीब जनता, युद्ध कितनी भयंकर चीज है।**"[1]

इसके अतिरिक्त, फ्रांस का कैथोलिक वर्ग भी इटली-नीति का काफी विरोध कर रहा था क्योंकि सार्डीनिया-पीडमाण्ट की विजय से उत्साहित होकर पोप के विरुद्ध विद्रोह होने लगे थे। फ्रांस के कैथोलिकों को भय था कि इससे पोप के राज्य को खतरा हो जाएगा। नेपोलियन को यह भी सूचना मिली कि प्रशा भी इटली में हस्तक्षेप करने के लिए सैनिक तैयारी कर रहा है। अतः नेपोलियन आस्ट्रिया और प्रशा दोनों शक्तियों से एक साथ लड़ने को तैयार न था। **अतः इन कारणों से नेपोलियन ने कैवूर का साथ छोड़ दिया।**

दूसरी ओर आस्ट्रिया भी युद्ध समाप्त करना चाहता था क्योंकि पिछले दो माह के युद्ध से आस्ट्रिया को इस बात का यकीन हो गया, था कि उसकी सेना में कुशल संगठन एवं अनुभव की कमी है जिससे वह सार्डीनिया-पीडमाण्ट व फ्रांस की संयुक्त शक्ति का सामना नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त, आस्ट्रिया के विरुद्ध हंगरी भी आन्दोलन कर रहा था, अतः आस्ट्रिया अपने घरेलू झगड़ों को निपटाने के लिए भी इस समय शान्ति चाहता था।

आस्ट्रिया और फ्रांस में विलाफ्रैंका की सन्धि—उपरोक्त सभी कारणों से 11 जुलाई, 1860 ई. को आस्ट्रिया और फ्रांस के बीच विलाफ्रैंका की सन्धि हुई। इस सन्धि की प्रमुख धाराएं अग्रलिखित थीं—

1 **"The poor people, the poor people, what a horrible thing is war."**

(1) लोम्बार्डी सार्डीनिया-पीडमाण्ट को दे दिया जाए लेकिन वेनेशिया पर आस्ट्रिया का ही अधिकार रहेगा।

(2) आस्ट्रिया तथा सार्डीनिया-पीडमाण्ट के बीच हुए युद्धों के समय पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी की जनता ने विद्रोह के द्वारा अपने शासकों को भगा दिया था, अतः विलफ्रैंका की सन्धि के द्वारा यह तय हुआ कि टस्कनी, पर्मा और मोडेना के ड्यूकों को उनकी गद्दियां वापस दिला दी जाएं।

(3) पोप की अध्यक्षता में इटली के राज्यों का एक ढीला-ढाला संघ बना दिया जाए।

लिप्सन ने इस सन्धि के विषय में लिखा है—**"इटली के लोगों ने अपनी विजय की खुशी का प्याला होंठों से लगाया ही था कि वह गिरकर चूर-चूर हो गया।"**[1]

कैवूर का त्यागपत्र—विलफ्रैंका की सन्धि से कैवूर काफी क्रोधित हुआ। उसने नेपोलियन पर विश्वासघात और वचन-भंग का आरोप लगाया। कैवूर का क्रोध इसलिए अधिक बढ़ा क्योंकि नेपोलियन ने आस्ट्रिया से सन्धि करने से पूर्व उसे किसी प्रकार की सूचना नहीं दी। **अतः कैवूर इस सन्धि को मानने के लिए तैयार नहीं था।**[2] यह सन्धि वास्तव में जले पर नमक छिड़कने के समान थी। कैवूर ने इमानुएल पर जोर डाला कि वह विलफ्रैंका की सन्धि को न मानकर आस्ट्रिया के विरुद्ध पुनः युद्ध छेड़ दे, लेकिन इमानुएल ने ऐसा न करके दूरदर्शिता का परिचय दिया। कैवूर सम्राट से सहमत नहीं हुआ और उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

मध्य इटली पर अधिकार (मध्य इटली के राज्यों द्वारा विलय का निर्णय)—आस्ट्रिया तथा सार्डीनिया-पीडमाण्ट युद्ध के दिनों में पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी के लोगों ने अपने दो राजाओं को निकाल दिया था। रोमान्या (रोमन) की जनता ने भी पोप से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। इन राज्यों ने सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की। सार्डीनिया भी गुप्त रूप से विद्रोही नेताओं को मदद देता रहा, लेकिन स्पष्ट रूप से उसने इन राज्यों को अपने में मिलाने से इन्कार कर दिया क्योंकि सार्डीनिया-पीडमाण्ट को यह भय था कि इतने बड़े परिवर्तनों को देखकर विशेषकर पोप के खण्डित राज्य को देखकर नेपोलियन कहीं गलत कदम न उठा ले। **अतः कई दिनों तक मध्य इटली की स्थिति बड़ी डावांडोल रही, लेकिन इसी बीच परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन आया जिसका वर्णन निम्नवत् है—**

(i) **जून, 1859 ई. में इंग्लैण्ड में पामर्स्टन सरकार का आगमन**—जून, 1859 ई. में इंग्लैण्ड में पामर्स्टन की सरकार आयी। वह सरकार इटली के स्वतन्त्रता संग्राम के पक्ष में थी। पामर्स्टन ने घोषित किया, **"इन रियासतों की जनता को भी अपने शासकों को बदलने का उतना ही अधिकार है जितना कि इंग्लैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम अथवा स्वीडन की जनता को है। इन ठिकानों के पीडमाण्ट में शामिल हो जाने से इटली को अपार लाभ होगा।"**[3]

1 "But misfortune still continued to more the destiny of Italy, for the moment she was about to drain her cup of triumph, it was again dashed from her lips."
—*Lipson*

2 "I will turn conspirator and revolutionary but this treaty shall no be carried out."
—*Cavour*

3 "The people of the Duchies have as much right to change their sovereigns as the English people or the French, or the Belgian, of the Swedish. The annexation of the Duchies to Piedmont will be an unfathomable good to Italy." —*Palmerston*

(ii) कैवूर को पुनः प्रधानमन्त्री बनाना तथा नेपोलियन से समझौता—6 महीने अलग रहने के बाद जनवरी, 1860 ई. में कैवूर पुनः प्रधानमन्त्री पद पर आसीन हो गया। प्रधानमन्त्री पद संभालते ही उसने परिस्थिति अपने पक्ष में करनी प्रारम्भ कर दी तथा कूटनीतिक चाल चलते हुए नेपोलियन से सौदा किया। दोनों के बीच यह तय हुआ कि यदि मध्य इटली के राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट को मिल जाएंगे तो फ्रांस को सैवाय तथा नाइस के प्रदेश दिए जाएंगे।

(iii) विद्रोही राज्यों में जनमत गणना तथा सैवाय एवं नाइस प्रदेशों पर फ्रांस का अधिकार—11-12 मार्च, 1860 ई. को परमा, मोडेना, टस्कनी तथा रोमैग्ना, आदि राज्यों में जनमत-गणना हुई। इस जनमत गणना में जनता ने भारी बहुमत से सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिलने की राय दी। परिणामस्वरूप ये सभी राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिला दिए गए। लोम्बार्डी पहले ही सार्डीनिया के कब्जे में आ चुका था। इस प्रकार सार्डीनिया-पीडमाण्ट का छोटा-सा राज्य एक विशाल राज्य में बदल गया। अब उत्तरी और मध्य इटली एक हो गया और 2 अप्रैल, 1860 ई. को उन सब की संसद का ऐतिहासिक अधिवेशन ट्यूरिन में हुआ। जनमत गणना के प्रस्ताव का समर्थन करने के बदले फ्रांस को वायदे के अनुसार सैवाय तथा नाइस के प्रदेश दे दिए गए। सैवाय सम्राट विक्टर इमानुएल का पैतृक प्रदेश था। फ्रांस को देते हुए उसे बड़ा दुःख हुआ। **गैरीबाल्डी नाइस का निवासी था, अतः अपने जन्म-स्थान के बलिदान से गैरीबाल्डी बड़ा रुष्ट हुआ।**[1]

(iv) दक्षिण इटली में विद्रोह—उत्तरी एवं मध्य इटली तो एकीकृत होकर सार्डीनिया-पीडमाण्ट के अधीन आ गया था, लेकिन अभी दक्षिण के प्रदेश रोम, सिसली, नेपल्स तथा वेनेशिया इससे बाहर थे। कैवूर इन प्रदेशों को भी कूटनीतिक चाल द्वारा इटली के अधीन लाना चाहता था, लेकिन दक्षिणी भाग को एकीकृत करने का श्रेय कैवूर को नहीं वरन् गैरीबाल्डी को जाता है।

सिसली का विद्रोह—सिसली की जनता ने अपने बूर्बां नरेश के विरुद्ध 1860 ई. से ही विद्रोह प्रारम्भ कर दिए थे। यह शासक अत्यन्त निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी था। यहां विद्रोहियों का नेता क्रिस्पी था उसने सहायता हेतु गैरीबाल्डी को आमन्त्रित किया। गैरीबाल्डी तो ऐसे साहसिक कार्यों के लिए सदैव ही तत्पर रहता था। अतः गैरीबाल्डी ने जेनोआ में स्वयंसेवकों की भर्ती करना आरम्भ कर दिया। इस समय कैवूर एक विकट परिस्थिति में फंस गया था। इस समय सिसली एवं सार्डीनिया के बीच युद्ध की स्थिति न थी ऐसे में यदि कैवूर गैरीबाल्डी को सिसली राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी करने देता तो उसका यह कार्य अमैत्रीपूर्ण समझा जाता और यदि गैरीबाल्डी को आक्रमण करने से रोकता तो स्वदेश प्रेमियों की भावनाओं को ठेस पहुंचती ऐसे समय में उसने एक कूटनीतिक चाल चली। उसने यह घोषणा तो कर दी कि वह गैरीबाल्डी को सहायता नहीं देगा, लेकिन गुप्त रूप से वह उसे सैन्य संगठन हेतु काफी मदद देता रहा। स्वयं विक्टर इमानुएल ने अपने निजी कोष से 30 लाख फ्रैंक की सहायता दी। गैरीबाल्डी के **लाल कुर्ती** (Red Shirts) वाले 10,000 स्वयंसेवक थे। 11 मई, 1860 ई. को गैरीबाल्डी अपने लाल कुर्ती (Red Shirts) दल के सैनिकों के साथ सिसली द्वीप के पश्चिमी किनारे पर उतर गया। इस समय नेपल्स के राजा के 24 हजार सैनिक सिसली में ही मौजूद थे तथा नेपल्स में एक लाख से अधिक सैनिक थे। अनेक दिनों

1 **"You have made me a foreigner in the land of my birth."** —*Garibaldi*

के घमासान युद्ध के बाद गैरीबाल्डी ने पूरे सिसली द्वीप पर अधिकार कर लिया और 5 अगस्त, 1860 ई. को विक्टर इमानुएल द्वितीय की अधीनता में अपने को सिसली का शासक घोषित किया।

नेपल्स पर अधिकार—सिसली द्वीप पर अधिकार करने के बाद गैरीबाल्डी ने नेपल्स पर अधिकार करने का निश्चय किया। समुद्र पार कर 19 अगस्त, 1860 ई. को गैरीबाल्डी ने नेपल्स पर अधिकार कर लिया। वहां का सम्राट फ्रांसिस द्वितीय नेपल्स छोड़कर भाग गया। **हेजन ने इसे आधुनिक इतिहास की रोमांचकारी घटना कहा है।**[1]

गैरीबाल्डी की विजय से उत्पन्न कठिनाई एवं कैवूर की कूटनीति

गैरीबाल्डी की विजय ठीक थी, परन्तु इससे कुछ खतरे उत्पन्न हो गए थे। पहला खतरा तो यह था कि गैरीबाल्डी रोम पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। गैरीबाल्डी के इस कार्य से इटली के सम्मुख एक अन्तर्राष्ट्रीय खतरा उत्पन्न हो जाता क्योंकि रोम पर आक्रमण करने से फ्रांस से शत्रुता हो जाती। सम्भवतः यूरोप के कुछ अन्य राजा भी पोप की रक्षा हेतु इटली में हस्तक्षेप करते। दूसरा, गैरीबाल्डी वेनेशिया पर भी आक्रमण कर सकता था जिससे आस्ट्रिया से भी लड़ना पड़ता। इसके अतिरिक्त, कैवूर को यह भी सन्देह था कि कहीं गैरीबाल्डी विजित राज्यों में गणतन्त्र की घोषणा न कर दे क्योंकि वह मैजिनी का अनुयायी था। अतः ऐसे समय में कैवूर ने मौन रहना ही उचित समझा। उसने कहा—**"मुझे इटली की विदेशियों के हस्तक्षेप, अनिष्टकारी सिद्धान्तों (गणतन्त्रवाद) तथा पागल व्यक्तियों (गैरीबाल्डी व उसके साथी) से रक्षा करनी है।"**[2]

रोम अभियान—अन्त में कैवूर को एक उपाय सूझा उसने गैरीबाल्डी से पहले ही रोम पर अपना कब्जा करना चाहा। उसने सम्राट विक्टर एमानुएल को स्वयं एक सेना लेकर रोम पर आक्रमण करने के लिए कहा। इमानुएल ने आक्रमण कर दिया। पोप की सेना केसिल फिडेरो में परास्त हुई। इमानुएल ने उम्ब्रिआ (Umbria) तथा मार्चेज (Marches) नामक राज्यों पर अधिकर कर लिया, लेकिन रोम पर आक्रमण नहीं किया।

विजित प्रदेशों में जनमत गणना—21 अक्टूबर, 1860 ई. को नेपल्स एवं सिसली में जनमत गणना करायी गयी। इन राज्यों ने भारी बहुमत से सार्डीनिया-पीडमाण्ट में मिलने की इच्छा व्यक्त की, अतः नेपल्स एवं सिसली पीडमाण्ट राज्य में मिला लिए गए। कुछ दिन पश्चात् उम्ब्रिआ तथा मार्चेज के प्रदेश भी जनमत गणना द्वारा सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिला लिए गए। 7 नवम्बर, 1860 ई. को सम्राट इमानुएल ने नेपल्स में प्रवेश किया। गैरीबाल्डी ने इमानुएल का विरोध नहीं किया। उसने अपने सब अधिकारों को त्याग कर विक्टर इमानुएल को राजा घोषित किया।

कैवूर की मृत्यु—17 मार्च, 1861 ई. को सार्डीनिया-पीडमाण्ट की नयी संसद ने विक्टर इमानुएल को अपना सम्राट घोषित किया। इस समय तक वेनेशिया तथा रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली एक हो चुका था। ट्यूरिन को संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया। इसके कुछ ही माह पश्चात् 6 जून, 1861 ई. को कैवूर की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय उसकी उम्र 51 वर्ष की थी। इटली का यह महान् देशभक्त अपने देश के एकीकरण को न देख

1 "In less than five months he had conquered a kingdom of 1,10,000 people an achievement unique in modern History." —Hazen

2 "Italy must be saved from foreigners, evel principles and mad men." —Cavour

सका। डेविड थामसन ने लिखा है—**"कैवूर की मृत्यु एक ऐसे समय में हुई जबकि उसके कार्य को पूर्ण करने व वास्तविक राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी।"**[1]

वास्तविक रूप में कैवूर ने इटली के लिए महान् कार्य किया। एक राष्ट्र के रूप में इटली कैवूर की ही देन थी। यद्यपि इटली के एकीकरण के लिए मैजिनी तथा गैरीबाल्डी ने भी महत्वपूर्ण कार्य किए, लेकिन कैवूर की देन इन सबसे बढ़कर थी। मैजिनी भावनाओं को उत्तेजित करने में सक्षम था। गैरीबाल्डी एक वीर और निःस्वार्थ देश-प्रेमी था, लेकिन कैवूर एक महान् कूटनीतिज्ञ था, वह व्यावहारिक था, यह जीवन भर इस आधारभूत राजनीतिक सिद्धान्त पर अटल रहा कि सरकार संसद के द्वारा और वैधानिक रीति से चलायी जाए। वह संसद एवं जनता के सहयोग से कार्य किया करता था। वह कहा करता था **'मुझे सबसे अधिक शक्ति का अनुभव तब होता है जबकि संसद की बैठक चल रही होती है।"**[2]

कैवूर ही वह पहला व्यक्ति था, जिसने सर्वप्रथम इटली के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय बनाया। क्रीमिया युद्ध में भाग लेना उसकी महान् दूरदर्शिता थी। एक चतुर कूटनीतिज्ञ के रूप में उसने आस्ट्रिया का सम्मान किया तथा आन्तरिक सुधारों के कारण सार्डीनिया-पीडमाण्ट को शक्तिशाली राज्य बनाया। इटली के एकीकरण के लिए उसने क्रान्ति एवं प्रतिक्रिया के बीच का मार्ग अपनाया। इंग्लैण्ड की लोकसभा में लार्ड पामर्स्टन ने उसकी चर्चा करते हुए कहा—**"कैवूर एक ऐसा महत्वपूर्ण नाम छोड़ गया है जिससे हमें महत्वपूर्ण सबक मिलता है और जो इतिहास की एक कहानी की शोभा बढ़ाता है। सबक यह है कि यदि किसी व्यक्ति में अलौकिक प्रतिभा, कार्यक्षमता और कभी शान्त न होने वाली देशभक्ति की ज्वाला हो तो वह अजेय प्रतीत होने वाली कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है और अपने देश को बड़े से बड़ा और अधिक से अधिक मूल्यवान लाभ पहुंचा सकता है और जिस कहानी के साथ उसकी स्मृति का सम्बन्ध है वह विश्व इतिहास की सबसे असाधारण एवं रोमांटिक कहानी है। जो जनता मरी हुई प्रतीत होती थी वह एक नयी शक्ति और स्फूर्ति लेकर जीवित हो उठी, उसने उन बन्धनों को तोड़ फेंका जो उसे जकड़े हुए थे और अपने को एक नए एवं गौरवशाली भाग्य का पात्र सिद्ध कर दिया।"**

आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध और वेनिशिया पर अधिकार

इस समय तक केवल रोम और वेनिशिया ही इटली से बाहर रह गए थे। इमानुएल ने इन राज्यों को इटली में मिलाने के लिए अवसर की प्रतीक्षा की। 1866 ई. में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में विक्टर इमानुएल ने 1866 ई. की बिस्मार्क के साथ की गयी सन्धि के अनुसार प्रशा का साथ दिया। आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर युद्ध करना पड़ा। एक ओर प्रशा तथा दूसरी ओर इटली। सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया को भयंकर पराजय का मुंह देखना पड़ा। विवश होकर आस्ट्रिया को प्रशा के साथ सन्धि करनी पड़ी जिसमें उसे वेनिशिया को खाली करना पड़ा और वेनिशिया सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिला दिया गया।

फ्रेंको-प्रशियन युद्ध और रोम पर अधिकार

1867 ई. में एक बार पुनः गैरीबाल्डी एवं उसके पुत्र ने मिलकर रोम पर आक्रमण किया था, लेकिन उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। 1870 ई. में फ्रांस एवं प्रशा के मध्य

1 David Thomson, *Europe Since Nepoleon*, p. 280.
2 "I always feel strongest when parliament is sitting." —*Cavour*

संघर्ष हुआ। इस समय फ्रांसीसी सम्राट नेपोलियन को हार का मुंह देखना पड़ा। अतः फ्रांस को युद्ध में उलझा देखकर इमानुएल ने अवसर का फायदा उठाया। उसने तुरन्त रोम पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया।
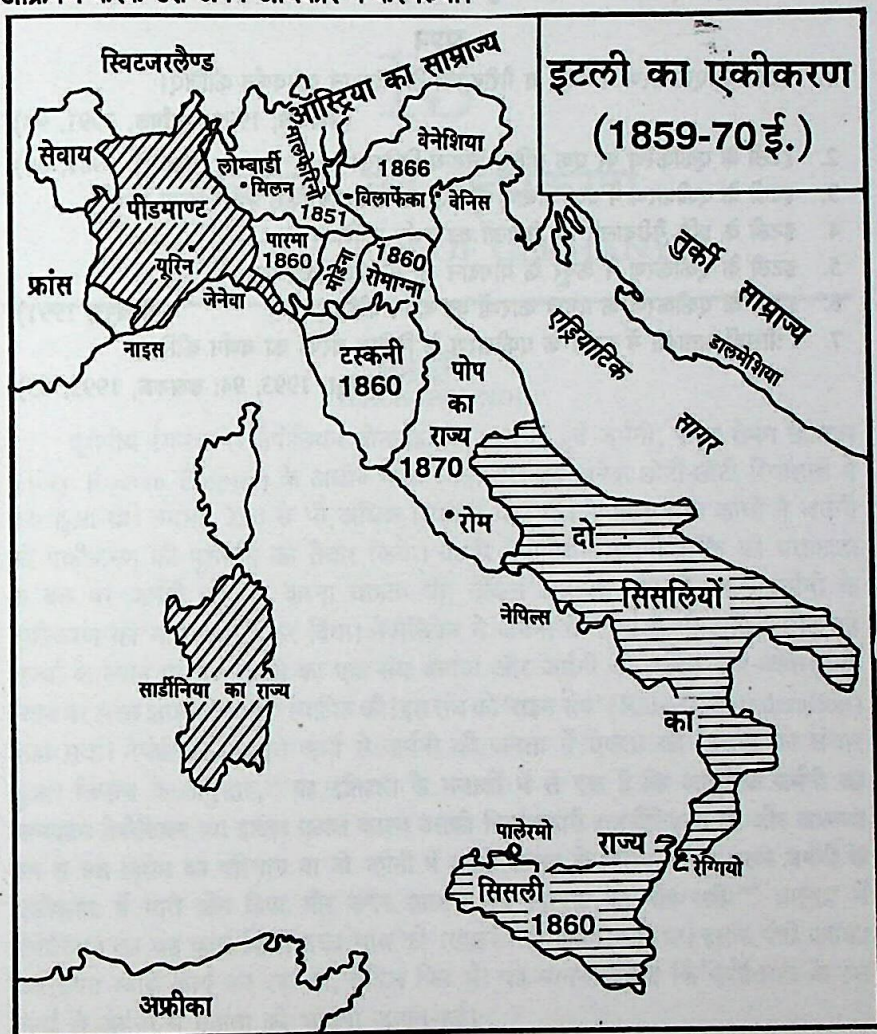
इसके बाद रोम में भी जनमत कराया गया। विक्टर इमानुएल को 40 हजार से भी अधिक मत मिले जबकि पोप को केवल 46 मत मिले। अतः रोम को भी सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिलाकर संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया, लेकिन एकीकरण के बाद पोप भी रोम में ही रहने लगा।

एकीकरण पूर्ण

इस प्रकार एक लम्बे संघर्ष के बाद इटली का एकीकरण पूरा हो गया। 1856 ई. में कैवूर ने एक बार कहा कि— मुझे पूरा यकीन है कि इटली एक दिन एक राष्ट्र ही बनेगा और

रोम उसकी राजधानी होगी।"[1] वास्तव मे उसके ये शब्द सही साबित हुए। मैजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी के पराक्रम तथा कैवूर की कूटनीति एवं इमानुएल की व्यावहारिक समझदारी से इटली का एकीकरण 1870 ई. में पूर्ण हो गया।

प्रश्न

1. इटली के एकीकरण में कैवूर व गैरीबाल्डी के योगदान का वर्णन कीजिए। (लखनऊ, 1991; पूर्वांचल, 1991, 93)
2. इटली के एकीकरण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (गोरखपुर, 1987, 89)
3. इटली के एकीकरण में क्या बाधाएं थीं? उनका समाधान किस प्रकार किया गया?
4. इटली के प्रति गैरीबाल्डी की सेवाओं का वर्णन कीजिए।
5. इटली के एकीकरण में कैवूर के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
6. इटली के एकीकरण के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1991)
7. उन्नीसवीं शताब्दी में इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1993, 94; लखनऊ, 1993, 95)

1 **"I am confident that Italy will become a single state and that Rome will be her Capital."**

13

जर्मनी का एकीकरण
[UNIFICATION OF GERMANY]

पृष्ठभूमि
(BACKGROUND)

यूरोपीय रंगमंच पर नेपोलियन बोनापार्ट के उदय से पूर्व जर्मनी, **पवित्र रोमन साम्राज्य** (Holy Roman Empire) के अधीन माना जाता था। यह अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था। लगभग 250 से भी अधिक रियासतें वहां थीं। नेपोलियन के कार्यों ने जर्मनी को एकीकरण की पृष्ठभूमि को तैयार किया। यद्यपि नेपोलियन अपनी शक्ति की पराकाष्ठा के बल पर जर्मनी को नष्ट करना चाहता था, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उसने जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। नेपोलियन ने जर्मनी के 200 से भी अधिक छोटे-बड़े राज्यों के स्थान पर 39 राज्यों का एक संघ बनाया और जर्मनी की जटिल राज-व्यवस्था के स्थान पर सरल शासन व्यवस्था स्थापित की। इस संघ को **'राइन संघ'** (Rhine Confederation) कहा गया। नेपोलियन के इस कार्य से जर्मनी की जनता में एकता की भावना का संचार हुआ। लिप्सन के अनुसार, **"यह इतिहास के मजाकों में से एक है कि आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन था। इसका प्रत्यक्ष कारण उसकी निर्माणकारी राजनीतिकता थी और अप्रत्यक्ष रूप से उस विरोध का परिणाम था जो जर्मनी में उसके शासन के विरोध में था। उसने जर्मनी के एकीकरण में भारी योग दिया और जर्मन साम्राज्य की स्थापना की नींव रखी।"**[1] वास्तव में नेपोलियन का यह कार्य किसी उच्च भाव को रखकर नहीं किया गया था। इसके पीछे उसका व्यक्तिगत स्वार्थ कार्य कर रहा था, लेकिन फिर भी यह मानना पड़ेगा कि नेपोलियन के इस कार्य से जर्मनी में एकता की भावना जागृत हुई।

इन 39 राज्यों का शासन चलाने के लिए एक **'संघीय संसद'** (Federal Diet) की स्थापना की गयी। इसका अधिवेशन फ्रैंकफर्ट में होता था। इसके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होते थे वे विभिन्न राज्यों के द्वारा निर्वाचित होते थे। **सम्पूर्ण जर्मनी का न तो कोई सम्राट था न कोई झण्डा और न कोई नागरिक। प्रत्येक राज्य के पृथक्-पृथक् राजा, झण्डे और नागरिक थे।** बाहरी देशों से अपने-अपने कूटनीतिक सम्बन्ध भी स्थापित करते थे। बस इन राज्यों पर

1 "It is one of the ironies of history that the Napoleon was the creator of modern Germany directly by his constructive statemanship, and indirectely by the results which opposition to his rule aroused, he contributed to the formation of a united Germany and laid the foundation of the German Empire".

इतना बन्धन था कि ये राज्य आपस में युद्ध नहीं कर सकते थे। ये इकाई राज्य अपने आपसी झगड़ों को संसद के सम्मुख रखते थे और इन्हें संसद के निर्णय को स्वीकार करना पड़ता था।

1815 ई. की वियना कांग्रेस के द्वारा जर्मनी की स्थिति

नेपोलियन की पराजय के पश्चात् 1815 ई. में विएना कांग्रेस की स्थापना हुई। इस कांग्रेस के द्वारा जर्मनी के सम्बन्ध में लिए गए निर्णयों से जर्मनी को कुछ लाभ भी हुए। **पहला लाभ** तो यह हुआ कि इसके द्वारा 200 राज्यों को 39 रियासतों में बांट देने से एकीकरण का प्रारम्भिक रूप सामने आया। **दूसरा** इससे भविष्य में नेतृत्व की समस्या का समाधान हो गया क्योंकि विएना सन्धि के द्वारा प्रशा को सबसे अधिक शक्तिशाली बना दिया था। **अन्त में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ** कि इस सन्धि के निर्णयों के अनुसार उसे रूर (Rubr) तथा एमिश्चर घाटी (Emesher Valley) प्राप्त हुई। इन घाटियों में दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण कोयले की खानें थीं, अतः इन कोयले की खानों द्वारा प्रशा में तेजी से औद्योगीकरण हुआ। प्रशा की जनसंख्या दुगुनी हो गयी जिससे प्रशा यूरोप में एक नयी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया।

इसके साथ-साथ कुछ हानियां भी हुई थीं कि जर्मन-संघ का अध्यक्ष गैर-जर्मन राज्य (आस्ट्रिया) बना दिया गया था जो कि राष्ट्रीयता की भावना के विरुद्ध था। दूसरा यह कि संघीय संसद की स्थापना जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध थी।

1815 ई. से 1848 ई. के मध्य जर्मनी में राष्ट्रीयता का विकास तथा आन्दोलन

शीघ्र ही जर्मनी में विएना कांग्रेस द्वारा निर्मित व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन होने आरम्भ हो गए। ये घटनाएं एवं आन्दोलन निम्नलिखित प्रकार से हुए :

बौद्धिक आन्दोलन : बर्शेनशैफ्ट (Burshenscheft) संस्था का गठन

सर्वप्रथम इन आन्दोलनों के केन्द्र जर्मनी के विश्वविद्यालय बने। विद्यार्थियों ने अपना संगठन बनाया। वह संगठन बर्शेनशैफ्ट के नाम से प्रख्यात है। बर्शेनशैफ्ट संस्था की स्थापना जर्मनी में जेना विश्वविद्यालय में की गयी। धीरे-धीरे इसकी शाखाएं 16 अन्य विश्वविद्यालयों में भी फैल गयीं। इस संस्था के सदस्यों का उद्देश्य था कि विभिन्न आन्दोलनों द्वारा जर्मनी का एकीकरण किया जाए। इस संस्था का नारा था—**"नैतिक चरित्र के उत्थान से ही जर्मनी एकीकृत हो सकता है।" सिबेल** ने विद्यार्थी संगठन का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया : "युद्ध से लौटने वाले वीरों ने विश्वविद्यालयों की एक संस्था (बर्शेनशेफ्ट) बनाकर उन्होंने जर्मनी के शिक्षित युवकों में एकता, न्याय और स्वतन्त्रता की भावनाएं भर दीं। इस संस्था का उद्देश्य मुख्यतः सैद्धान्तिक था, इसका उद्देश्य तत्कालीन व्यवस्था को उलट देना नहीं अपितु नयी पीढ़ी को देश-भक्ति की भावना के द्वारा इसके सदस्य भविष्य का निर्माण करके राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते थे।"[1]

बर्शेनशैफ्ट संस्था के विद्यार्थियों ने सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की शक्तियों को सफल बनाने के लिए 18 अक्टूबर, 1817 ई. को बाटबर्ग में मार्टिन लूथर द्वारा घोषित धर्म सुधार की त्रिशताब्दी मनाने तथा लिप्जिग के राष्ट्रीय युद्ध की चौथी वर्षी मनाते हुए एक राष्ट्रीय उत्सव

1 Sybel, *Foundation of the German Empire*, Vol. I, p. 67.

का आयोजन किया। प्रतिक्रियावादी मैटरनिख इससे घबरा गया। अतः 1818 ई. में एक्स-ला-शापेल कांग्रेस में उसने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि अभी संसार में क्रान्तिकारी विचारों के दमन की आवश्यकता है।

कार्ल्सबाद घोषणा (Carlsbad Decrees)—मार्च, 1819 ई. में एक जर्मन विद्यार्थी ने कोटेसव्यू नामक एक पत्रकार की हत्या कर दी, जिसे रूसी गुप्तचर कहा जाता था तथा जो जर्मन राष्ट्रीय एकता का विरोधी समझा जाता था। इस हत्या के बाद मैटरनिख ने राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करने का निश्चय किया। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम के साथ मैटरनिख ने 1819 ई. में कार्ल्सबाद में एक सभा बुलाई। मैटरनिख ने इस सभा में कुछ नियम पारित कराए जिन्हें इतिहास में '**कार्ल्सबाद नियम**' कहा जाता है। **कार्ल्सबाद की मुख्य घोषणाएं निम्नलिखित थीं**—

(1) प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया जाएगा।

(2) विश्वविद्यालयों में बर्शेनशैफ्ट जैसे संगठन गैर-कानूनी समझे जाएंगे।

(3) जो व्यक्ति बर्शेनशैफ्ट संगठन का सदस्य होगा उसे विश्वविद्यालय से निकाल दिया जाएगा चाहे वह विद्यार्थी हो या अध्यापक। अतः एक विश्वविद्यालय से निकाला गया व्यक्ति दूसरे विश्वविद्यालय में नहीं लिया जाएगा।

(4) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक-एक सरकारी प्रतिनिधि नियुक्त होगा जो कि बर्शेनशैफ्ट संस्था के ऊपर नजर रखेगा तथा प्रत्येक अध्यापक का यह कर्तव्य होगा कि वे सरकार विरोधी और अहितकर सिद्धान्तों का प्रचार न करें।

(5) एक ऐसा आयोग नियुक्त किया गया जोकि किसी भी व्यक्ति पर सन्देह होने पर उसे गिरफ्तार कर सकता था।

इन नियमों द्वारा जर्मनी में घोर प्रतिक्रियावाद का उदय हुआ। 1819 ई. से 1830 ई. तक जर्मनी में कोई आन्दोलन नहीं हुआ क्योंकि जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों में इतना साहस नहीं था कि वे प्रतिक्रियावादी मैटरनिख का विरोध कर सकते।

1830 **ई. की क्रान्ति एवं जर्मनी** (French Revolution of 1830 and Gemany)—1830 ई. में पुनः फ्रांस में क्रान्ति हो गयी। इस क्रान्ति का प्रभाव प्रशा के छोटे-छोटे राज्यों पर पड़ा। ब्रुजविक, कासिल, ड्रेस्डन तथा गोर्टिजन आदि प्रदेशों की जनता ने विद्रोह करके नवीन संविधान लागू किए। दक्षिणी जर्मन राज्यों पर भी इन विद्रोहों का प्रभाव पड़ा क्योंकि ये राज्य आस्ट्रिया के नेतृत्व को समाप्त करना चाहते थे, लेकिन मैटरनिख के नेतृत्व में सामूहिक रूप से जर्मनी में 1830 ई. के प्रभावों को कुचल दिया गया। 1830 ई. की क्रान्ति के प्रभावों को नष्ट करने के लिए 1832 ई. में कार्ल्सबाद निर्देशों की पुनरावृत्ति की गयी।

1830 ई. से 1848 ई. तक का काल जर्मनी में प्रतिक्रियावाद का काल रहा। इस काल में **हेनरिच हौफमैन** (Heinrich Hoffman) नामक व्यक्ति का नाम महत्वपूर्ण है। इसने अपनी कविताओं के माध्यम से जर्मनी के एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 26 अगस्त, 1848 ई. को इसकी एक कविता प्रकाश में आयी जिसको **सौंग ऑफ जर्मनी** (The Song of the Germany) कहा गया।[1] इस कविता से जर्मन जनता में जोश एवं उत्तेजना उत्पन्न हुई।

1 'Deutschland-deutschland uber alles.
Germany-Germany above everything.'

1848 ई. की क्रान्ति एवं जर्मनी (French Revolution of 1848 and Germany)—फ्रांस की 1830 ई. की क्रान्ति की अपेक्षा 1848 ई. की क्रान्ति अधिक व्यापक थी। इस क्रान्ति से जर्मनी में भी राष्ट्रीयता का विस्फोट हुआ। इस क्रान्ति के प्रभावस्वरूप प्रतिक्रियावादी मैटरनिख का पतन हो गया जो कि जर्मन राज्यों के लिए एक उत्साहवर्धक घटना थी। इन राज्यों में भी विद्रोह होने लगे। सर्वप्रथम क्रान्ति का प्रभाव बर्लिन में हुआ जहां 200 क्रान्तिकारी मारे गए। अतः इससे क्रान्ति और तेज हो गयी। प्रत्येक स्थान पर क्रान्तिकारियों को सफलता मिली। फलतः प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को यह आश्वासन देना पड़ा कि वह क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करेगा तथा उनकी सभी मांगों को स्वीकार करेगा। अतः फ्रेंकफर्ट संसद को आमन्त्रित किया गया। इस संसद के माध्यम से अखिल जर्मन साम्राज्य एवं उदारवादी शासन स्थापित करने की चेष्टा की गयी। इस संसद में ये निर्णय लिए गए कि नवीन संघ से विदेशी राज्य आस्ट्रिया को निकाल दिया जाएगा उसके स्थान पर प्रशा अध्यक्ष होगा तथा केन्द्र में दो भवनों वाली संसद का निर्माण किया जाएगा, लेकिन 1849 ई. में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने सम्राट पद ग्रहण करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह जनता के प्रतिनिधियों द्वारा प्रदत्त ताज को ग्रहण करना अपना अपमान समझता था। अतः फ्रैंकफर्ट संसद को सफलता नहीं मिली।

इस प्रकार संसद के असफल हो जाने पर इरफर्ट में 1850 ई. में दूसरी संसद बुलायी गयी, उस समय क्रान्ति की लहर समाप्त हो चुकी थी। आस्ट्रिया के नए प्रधानमन्त्री स्वार्जिनवर्ग ने इसका विरोध किया। अन्त में नवम्बर, 1850 ई. में ओल्मुज नामक स्थान पर पुरानी संसद का अधिवेशन हुआ। इसमें जनता को उदार संविधान दिया गया, लेकिन आस्ट्रिया ने इसका विरोध किया। अतः इरफर्ट संसद भी भंग हो गयी।

जर्मनी का आर्थिक रूप में एकीकरण 1815 से 1848 तक (आर्थिक क्रान्ति) (ECONOMIC UNIFICATION OF GERMANY)

राजनीतिक रूप से तो जर्मनी 1870 ई. में एकीकृत हो पाया था, लेकिन 1815 ई. से 1848 ई. के बीच औद्योगिक क्रान्ति का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जर्मनी की आर्थिक कायापलट हो गयी तथा वह आर्थिक रूप से एकीकृत हो गया था। सैकड़ों नए उद्योग खुले। इस औद्योगिक विकास के फलस्वरूप जर्मनी में एक नया पूंजीपति वर्ग सामने आया। जर्मन राजनीति में इस वर्ग का बहुत प्रभाव बढ़ा। वह वर्ग चाहता था कि जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों को हटाकर एक संयुक्त जर्मनी का निर्माण किया जाए तथा इस संयुक्त जर्मनी में उद्योग-धन्धों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। **जर्मनी के आर्थिक रूप से एकीकरण के निम्नलिखित कारण थे—**

(1) प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने मासेन (Massen) नामक व्यक्ति को अपना अर्थ सचिव बनाया। मासेन बहुत योग्य अर्थशास्त्री था। जर्मनी के आर्थिक एकीकरण में इसका भी काफी योगदान रहा।

(2) **28 मई, 1818 ई. को एक चुंगी कानून** (Tarif Reform Law) पारित किया गया उसके द्वारा निम्नलिखित व्यापारिक व्यवस्था स्थापित की गयी—

(क) प्रशा से आने वाले मार्ग पर चुंगी नहीं लगेगी।

(ख) औपनिवेशिक माल पर 20% चुंगी लगाई जाएगी।

(ग) तैयार माल पर 10% चुंगी लगाई जाएगी तथा प्रशा से आन्तरिक व्यापार पर कोई सीमा चुंगी नहीं लगेगी।

जौल्वेरिन संघ (Zollverien) की स्थापना

प्रतिक्रियावादी मैटरनिख जर्मनी में भी प्रतिक्रियावादी नीति को संचालित कर रहा था, लेकिन प्रशा की जनता राष्ट्रीय विचारों की समर्थक थी। अतः जर्मन जनता प्रशा को अपना नेता बनाना चाहती थी। प्रशा दो भागों में विभाजित था—पूर्वी प्रशा एवं पश्चिमी प्रशा। इन दोनों के बीच भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न आर्थिक व्यवस्था थी। इससे वाणिज्य व्यापार में बड़ी असुविधा होती थी, व्यापारियों को जगह-जगह पर चुंगी देनी पड़ती थी। कहा जाता है कि प्रशा में ही 67 भिन्न-भिन्न चुंगी व्यवस्थाएं थीं। सीमाओं के आरक्षित होने के कारण स्थान-स्थान पर चोरी से माल लाया जाता था। अतः इस असुविधा को दूर करने के लिए 1834 ई. में 18 **जर्मन राज्यों को मिलाकर जौल्वरिन नामक एक आर्थिक संघ स्थापित किया गया।** यह संघ प्रशा के नेतृत्व में स्थापित हुआ। यह एक चुंगी संघ था। इसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि संघ के सदस्य राज्य के माल का स्वतन्त्र व्यापार करेंगे और एक-दूसरे के माल पर चुंगी नहीं लेंगे। धीरे-धीरे स्वाजवर्ग-सोण्डरशौसेन वीमर, गोआ, मेक्लेनवर्ग-स्वेरिन, सौम्वर्गलिप, वैम्वर्ग तथा रूडोल्स्टाइड आदि राज्यों ने इस संघ की सदस्यता स्वीकार कर ली। यह चुंगी व्यवस्था प्रशा में खूब लोकप्रिय हुई। प्रशा की भांति दो-तीन अन्य स्वतन्त्र चुंगी संघ बनाए गए, लेकिन धीरे-धीरे पृथक् चुंगी समाप्त होकर प्रशा के ही चुंगी संघ में ही सम्मिलित हो गए। प्रशा की इस चुंगी व्यवस्था के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि आस्ट्रिया को इस चुंगी व्यवस्था से बाहर ही रखा गया। जब यह चुंगी व्यवस्था प्रशा एवं उसके राज्यों में काफी लोकप्रिय हो गयी तो उसने इसका कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया। उसने विदेशों से अनेक व्यापारिक सन्धियां कीं। 1831 में हॉलैण्ड, 1841 में इंग्लैण्ड और 1844 में बेल्जियम से व्यापारिक सन्धियां की गयीं। इन व्यापारिक सन्धियों के अनुसार इन देशों ने चुंगी संघ के राज्यों में माल पर कम से कम चुंगी लगाने का वचन दिया। इस चुंगी संघ की संसद भी थी जिसे चुंगी संसद कहा गया। इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता था।

प्रारम्भ में मैटरनिख ने इस संघ के महत्व और परिणाम को नहीं समझा। धीरे-धीरे जौल्वेरिन के महत्वपूर्ण प्रभाव सामने आए। इस आर्थिक संघ से जर्मनी की आर्थिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। जब आस्ट्रिया को इस संकट का आभास हुआ तो उसने इसका विरोध किया, परन्तु उसको कोई सफलता नहीं मिली। 1850 ई. तक जर्मनी के लगभग सम्पूर्ण राज्य इसके सदस्य हो गए थे। आस्ट्रिया ने कई बार इसमें प्रवेश करने का प्रयत्न किया, लेकिन उसे हार का मुंह देखना पड़ा। इस प्रकार जर्मन राष्ट्रीयता के मार्ग में जौल्वेरिन संघ की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम था इसी के कारण 1850 ई. से सम्पूर्ण जर्मनी आर्थिक रूप से एक हो गया था। एक राज्य के लोग दूसरे राज्य में आने लगे जिससे राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला और इसी आर्थिक संघ के कारण प्रशा जर्मन राज्यों का नेता बन गया। कैटलबी के अनुसार, **"जौल्वेरिन के निर्माण ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार कर दिया।"**[1] प्रो. फाईक के अनुसार, **"इस संगठन को यद्यपि किसी भी प्रकार**

1 कैटलबी, आधुनिक काल का इतिहास, पृ. 203।

का राजनीतिक रूप नहीं दिया गया, तथापि आर्थिक हितों की रक्षा के लिए इसमें राजनीतिक एकता का बीजारोपण हो चुका था।"[1]

वास्तव में, जौल्वेरिन के द्वारा जर्मनी पहली बार एक व्यापारिक एवं आर्थिक इकाई बना। इस संघ में जर्मन राज्यों को पारस्परिक आर्थिक बन्धनों में बांध दिया था और ये राज्य प्रशा के नेतृत्व में संगठित हो गए थे, अतः इस आर्थिक एकीकरण से राजनीतिक एकीकरण भी सम्भव प्रतीत होने लगा। जौल्वेरिन के प्रति जर्मन जनता की यह धारणा थी कि **'जर्मनीकरण'** (Germanization) के प्रति वह पहला कदम था। इसने शत्रुता और विरोध के सभी महत्वपूर्ण गढ़ों को तोड़ दिया था तथा व्यापारिक और औद्योगिक हितों के आधार पर राजनीतिक राष्ट्रीयता के लिए मार्ग का निर्माण कर दिया।

इसके अतिरिक्त आर्थिक एकीकरण में लिस्ट नामक एक अर्थशास्त्री का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा वह व्यापारिक क्षेत्र में संरक्षण का प्रतिपादक था।

1815 से 1850 ई. तक जर्मनी के एकीकरण में बाधाएं
(OBSTACLES IN THE UNIFICATION OF GERMANY FROM 1815 TO 1850)

इस अवधि में जर्मनी के एकीकरण की गति बहुत मन्द रही। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(1) **आस्ट्रिया का प्रतिक्रियावादी शासन**—विएना कांग्रेस ने आस्ट्रिया का जर्मनी पर पूरा प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। अतः ऐसी स्थिति में न तो जर्मन राज्य आस्ट्रिया के प्रभुत्व में एकत्र होना चाहते थे और न ही आस्ट्रिया का प्रतिक्रियावादी चांसलर मैटरनिख जर्मनी के एकीकरण के लिए उत्सुक था। प्रशा के राजा ने समस्त जर्मन राजाओं को एकत्र करके एकीकरण के प्रयास किए थे, किन्तु आस्ट्रियन सम्राट ने इसका घोर विरोध किया। उसने जर्मनी को दबाने के लिए घोर प्रतिक्रियावादी नीति अपनायी। 1815 ई. में उसने कार्ल्सबाद नियम पारित करवा कर जर्मनी के राष्ट्रीय आन्दोलनों का कठोरता से दमन किया। राष्ट्रीय विचारों को प्रोत्साहित करने वाले शिक्षकों को निकाल देने की व्यवस्था की, गुप्त एवं अनियमित संस्थाओं पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिए गए। प्रतिक्रियावादी मैटरनिख ही सर्वशक्तिमान पुलिस व्यवस्था का स्वामी था। 1848 ई. में मैटरनिख के पतन के बाद ही जर्मनी में पुनः नयी चेतना के अंकुर तेजी से फूटने लगे।

(2) **पिछड़ी राजनीतिक व्यवस्था**—जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण में बाधक वहां की पिछड़ी हुई राजनीतिक व्यवस्था थी। जर्मन राज नेताओं को राजनीतिक योजनाओं को कार्यान्वित करने का कोई अनुभव नहीं था। वे अनावश्यक बातों में धन एवं समय का अपव्यय करते थे।

(3) **राजनीतिक दलों में एकता का अभाव**—जर्मनी के विभिन्न राजनीतिक दल सुधार सम्बन्धी विषयों को लेकर एकमत नहीं थे। भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाएं बनायीं, लेकिन किसी भी एक योजना पर वे एकमत नहीं हो सके, सभी राज्य अपने-अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते थे। एकीकरण के सम्बन्ध में भी उनके भिन्न-भिन्न विचार थे। कुछ राज्य प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण चाहते थे और कुछ राज्य सामन्तवादी विचारों के समर्थक थे। कुछ राज्य स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में जर्मनी का एकीकरण

1 **Fyffe, C. H., *History of Modern Europe.***

चाहते थे और कुछ हैप्सवर्ग वंश के नेतृत्व में जर्मन साम्राज्य के संगठन के पक्ष में थे। इन दलों में प्रायः संघर्ष हुआ करते थे। अतः राजनीतिक दलों के इन आपसी मतभेदों के कारण जर्मनी में राष्ट्रीय एकीकरण की विचारधारा का विकास बहुत मन्द गति से हुआ।

(4) **जर्मन राज्यों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा**—जर्मनी के समस्त छोटे-छोटे राज्य पृथकता के कारण केवल अपनी-अपनी स्वतन्त्रता से प्रेम करते थे। ये राज्य सम्पूर्ण जर्मनी के लिए अपनी स्वतन्त्रता का त्याग नहीं करना चाहते थे। उनके लिए राष्ट्रीय एकता से बढ़कर अपने-अपने राज्यों का अस्तित्व था।

(5) **आस्ट्रिया तथा प्रशा की आपसी शत्रुता**—जर्मनी के सभी राज्यों में आस्ट्रिया तथा प्रशा सबसे अधिक शक्तिशाली थे। जर्मनी के नेतृत्व को लेकर इन दोनों में पारस्परिक द्वेष था। आस्ट्रिया तो जर्मनी की राष्ट्रीय भावना को दबाने के लिए उसका नेतृत्व करना चाहता था, लेकिन प्रशा जर्मनी को राष्ट्रीयता के आधार पर संगठित करना चाहता था। अतः इन दोनों के पारस्परिक विद्वेष के कारण जर्मनी के एकीकरण की गति मन्द हो गयी।

उपरोक्त कारणों से जर्मनी का एकीकरण 1815 से 1850 ई. तक काफी मन्द गति से हुआ। 1862 ई. में बिस्मार्क के आगमन से ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव हुआ।

1850 ई. के पश्चात् जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण के प्रयास
(EFFORTS OF GERMAN UNIFICATION AFTER 1850)

1850 ई. में इरफर्ट संसद भंग हो गयी थी। इरफर्ट संसद के भंग हो जाने से फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को काफी दुःख हुआ, 1857 में उसका दिमाग खराब हो गया और इसी पागलपन की अवस्था में 1861 में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गयी।

अतः 1860 ई. के आते-आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जर्मन राज्य एकीकरण के नजदीक पहुंचता जा रहा है। अभी तक एकीकरण का यह आन्दोलन इसलिए असफल रहा था क्योंकि प्रशा के राजा तथा उसके मन्त्री साहसी नहीं थे तथा आस्ट्रिया से डरते थे, लेकिन 1861 ई. में स्थिति एकदम बदल गयी। 1861 ई. में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गयी तथा कैसर विलियम प्रथम (Kaiser William) प्रशा की गद्दी पर बैठा। कैसर विलियम प्रथम योग्य, स्थिर बुद्धि और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसे विश्वास था कि प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मनी एकीकृत हो सकता है। 1862 ई. में उसने महान् कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क को अपना प्रधानमत्री बनाया। जर्मनी के एकीकरण के लिए ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी।

विलियम प्रथम (1857-88)—1857 ई. में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाने से कैसर विलियम प्रथम उसका संरक्षक (Regent) बना और 1861 ई. में फ्रेडरिक चतुर्थ की मृत्यु तक उसने प्रतिशास्ता (Regent) के रूप में कार्य किया और 1861 ई. में फ्रेडरिक की मृत्यु हो जाने पर वह प्रशा का सम्राट बन गया। राज्याभिषेक के समय उसकी आयु 64 वर्ष की थी, लेकिन उसमें युवकों के सदृश जोश था, उसका सारा जीवन सेना में व्यतीत हुआ था जिसके साथ उसे बड़ा प्रेम था। सैनिक मामलों में उसके पूर्ण ज्ञान एवं योग्यता को सभी स्वीकार करते थे। 1814 ई. में वह नेपोलियन के विरुद्ध भी लड़ चुका था। उसका विश्वास था कि प्रशा का भाग्य उसकी सेना पर निर्भर है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह सेना को आवश्यक समझता था। उसने एक बार कहा भी था, **"जो भी जर्मनी**

पर राज करने की इच्छा रखता हो, उसे जर्मनी को जीतना होगा और यह कार्य केवल वार्ता से सम्पन्न नहीं हो सकता।"[1]

विलियम प्रथम की सैन्य योजना तथा प्रतिनिधि सभा से संघर्ष—सिंहासन पर बैठते ही विलियम ने पुनः एक सेना का संगठन करने का विचार किया। वह सेना को दुगुनी करना चाहता था। अतः उसने शान्तिकाल में प्रशा की सेना दो लाख तथा युद्ध काल में साढ़े चार लाख रखने की योजना बनाई। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने रून (Roon) को अपना युद्ध मन्त्री तथा मोल्टके (Moltake) को प्रधान सेनापति बनाया। अभी तक प्रशा का सैनिक संगठन 1814 ई. के कानून पर निर्भर था जबकि प्रशा की 50 प्रतिशत जनसंख्या बढ़ गयी थी और सेना की संख्या पहले जैसी थी, अतः उसने एक योजना बनायी कि प्रशा में 49 नयी रेजीमेण्टों का संगठन किया जाए तथा 20 वर्ष के प्रत्येक युवक से 3 वर्ष की सैनिक सेवा ली जाए। इसका अर्थ था कि प्रतिवर्ष 40 हजार की जगह 63 हजार रंगरूट भर्ती होंगे।

अपनी नयी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसे धन की आवश्यकता थी। यह धन बिना संसद की स्वीकृति के प्राप्त नहीं किया जा सकता था, लेकिन **चेम्बर ऑफ डिप्युटीज** (प्रतिनिधि सभा) इस योजना के विरुद्ध थी। 1861 ई. में तो अस्थाई तौर पर धन की स्वीकृति दे दी, लेकिन 1862 ई. के चेम्बर ऑफ डिप्युटीज ने धन देने से इन्कार कर दिया। प्रो. जे. एस. शैपीरे के अनुसार, **"शान्ति के समय में इतनी बड़ी सेना रखने का सरकार का क्या उद्देश्य हो सकता था? प्रजातन्त्र को अस्त-व्यस्त करना, उदारवादियों का उत्तर था और उन्होंने तन-मन से राजा की इस योजना का विरोध करने का निश्चय किया।"**[2] इस पर राजा एवं संसद का संघर्ष आरम्भ हो गया। दोनों अपनी-अपनी बातों पर अड़े थे। राजा के साथियों ने उससे संसद को पूर्ण रूप से भंग कर देने के लिए कहा। इसके लिए वह राजी नहीं हुआ क्योंकि उसने संविधान को, जिसके द्वारा संसद की स्थापना हुई थी कायम रखने की शपथ ली थी। अतः उसने सिंहासन छोड़ देने का निश्चय किया। उसने अपना त्यागपत्र लिख दिया था, किन्तु इसी समय उसे एक ऐसे व्यक्ति का स्मरण हो आया जो संकटकाल में सम्भवतः उसकी मदद कर सकता था। वह व्यक्ति बिस्मार्क था जो इस समय तक अपनी राजभक्ति—सैनिकवाद और एकतन्त्रवाद के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। 23 सितम्बर, 1862 ई. को विलियम प्रथम ने बिस्मार्क को प्रशा का प्रधानमन्त्री बना दिया। उसने सम्राट को आश्वासन दिया, **"मैं श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊंगा पर संसद के साथ संघर्ष में अपना साथ नहीं छोड़ूंगा।"** बिस्मार्क ने पद ग्रहण करते ही घोषणा की **"भाषणों तथा बहुमत के प्रस्तावों से आज की महान् समस्याएं हल नहीं होंगी, अपितु उनका समाधान 'रक्त एवं लौह' की नीति से होगा।"**[3]

1 "Now whoever wishes to rule Germany must conquer it and the cannot be done with phrases." —Hazen, C. D., *Modern Europe upto* 1945, p. 337.

2 "What could be the object of the Government in desiring so large army in time of peace? 'To stifle democracy', side the liberals, and they determined to oppose', the plan of the king with might and main." —J. S. Schapiro, *Modern & Contemporary European History*.

3 "Not by speeches and resolutions of the majorities are the great questions of the day to be decided but by Blood and Iron." —*Bismarck*

बिस्मार्क
(BISMARCK)

यूरोपीय राजनीति के रंगमंच पर प्रवेश करने वाला वह व्यक्ति सर्वाधिक अद्भुत व्यक्ति था। इसका जन्म 1815 ई. में ब्रैण्डेनबर्ग के एक जागीरदार के घर में हुआ था। उसकी माता एक उच्च अधिकारी की पुत्री थी। उसको पिता की शारीरिक शक्ति एवं मां की बौद्धिक प्रखरता प्राप्त थी। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा बर्लिन की व्यायामशाला में हुई। तत्पश्चात् उसने गोर्तिजन एवं बर्लिन विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण कर प्रशा की सिविल सेवा में सर्विस कर ली, लेकिन दो वर्ष पश्चात् उसने नौकरी छोड़ दी और वह पौमेरैनिया में अपने जागीर की देखरेख करने लगा। इससे उसके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी हो गयी। इस बीच उसने विभिन्न भाषाओं, राजनीति, इतिहास और दर्शन, आदि का स्वाध्याय किया।

राजनीति में प्रवेश—बिस्मार्क का राजनीतिक जीवन 1845 ई. से आरम्भ हुआ, वह इस वर्ष पौमेरैनिया की प्रान्तीय संसद (Deit) का सदस्य हो गया। इस संसद ने 1857 ई. में उसे अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रशा की '**संयुक्त संसद**' (United Prussian Deit) में भेजा। **इस सभा में बिस्मार्क क्रान्ति तथा उदारवाद का कट्टर विरोधी रहा।**[1] वह '**विधान**' को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा करता था। वह उसे '**कागज का टुकड़ा**' कहा करता था। यद्यपि वह जर्मन एकता का प्रबल समर्थक था, लेकिन 1848 ई. में जर्मनी के एकीकरण का उसने घोर विरोध किया क्योंकि उसका मानना था कि जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न जनता द्वारा नहीं वरन् राजाओं द्वारा हल किया जाना चाहिए। वह जर्मनी का एकीकरण प्रशा के नेतृत्व में करना चाहता था। 1851 ई. में वह फ्रैंकफर्ट की संसद में प्रशा का सदस्य बनाकर भेजा गया। यह उसके जीवन की दशा परिवर्तित करने वाली घटना थी। इस महासभा में वह 8 वर्ष तक प्रशा का प्रतिनिधित्व करता रहा। इस काल में उसने कूटनीति की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। जर्मनी के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों तथा शासकों से उसे परिचय प्राप्त हुआ तथा जर्मन राजनीति के दांवपेंचों की बड़ी अच्छी जानकारी प्राप्त हुई। इन आठ वर्षों में वह लगातार आस्ट्रिया को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता रहा। अब वह इस अनुभव पर पहुंच चुका था कि जर्मन संघ में आस्ट्रिया के रहते हुए जर्मनी कभी एकीकृत नहीं हो सकता। आस्ट्रिया प्रशा का सहज शत्रु है अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए प्रशा को कार्यान्वित करने के लिए प्रशा को आस्ट्रिया से युद्ध करना ही होगा। आस्ट्रिया को गैर-जर्मन राज्य समझते हुए वह कहा करता था कि **जर्मनी इतना संकीर्ण है कि उसमें प्रशा और आस्ट्रिया दोनों नहीं रह सकते।**[2]

राजा विलियम आस्ट्रिया को नाराज नहीं करना चाहता था, अतः 1859 ई. में उसने बिस्मार्क के फ्रैंकफर्ट संसद से वापस बुलाकर रूस में अपना राजदूत नियुक्त किया। यह नियुक्ति भी बिस्मार्क के भावी राजनीतिक जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। अपनी निपुणता से बिस्मार्क ने रूस के जार से व्यक्तिगत मैत्री स्थापित कर ली। क्रीमिया युद्ध के समय प्रशा में रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित करने की मांग की गयी, लेकिन बिस्मार्क के विरोध के कारण प्रशा तटस्थ रहा। इससे जार अलेक्जैण्डर बिस्मार्क का प्रबल समर्थक बन गया।

1 **"I look for Prussian honour in Prussia's abstinence before all thing, from every shameful union with democracy."** —*Bismarck*

2 **'Germany is too narrow for Austria and Prussia.'** —*Bismarck*

1859 से 1862 ई. तक वह रूस में राजदूत रहा। तत्पश्चात् 1862 ई. में उसे फ्रांस में राजदूत बनाकर भेजा गया। वहां उसने फ्रांसीसी नरेश नेपोलियन तृतीय के चरित्र का अध्ययन किया।

फ्रांस में वह कुछ ही माह रहा था कि प्रशा में एक संवैधानिक संकट उत्पन्न हो गया। अतः अपनी समस्या का समाधान करने के लिए सम्राट विलियम प्रथम ने तत्काल उसे फ्रांस से बुलाकर अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया।

लक्ष्य प्राप्त करने हेतु बिस्मार्क का कार्यक्रम एवं तैयारी—बिस्मार्क प्रशा की सैन्य शक्ति के बल पर प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी को एकीकृत करना चाहता था। प्रधानमन्त्री पद संभालने के बाद उसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि आस्ट्रिया से लोहा लिया जाए। अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसने प्रशा के सैन्य संगठन को पुनर्गठित करने का कार्य जारी रखा। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि वह संसद के सामने कभी नहीं झुकेगा।

संसद से संघर्ष—1862 से 1866 ई. तक 4 वर्ष उसका संसद से संघर्ष चलता रहा वह प्रतिवर्स सैन्य संगठन हेतु संसद में बजट रखता था। किसी वर्ष निम्न सदन उसे अस्वीकार कर देता था तो उच्चतर सदन पारित कर देता। इस विरोध में बिस्मार्क संसद की उपेक्षा करते हुए आवश्यक धन हेतु जनता पर कर लगाता रहा और वसूल करता रहा। संसद मात्र मौखिक विरोध के और कुछ न कर सकी। हेजन के अनुसार, "**प्रशा के इतिहास का यह काल तानाशाही का काल था। इसमें संसदीय शासन समाप्त हो गया था।**"[1] उसने संसद के विरोध को देखते हुए बजट सम्बन्धी समिति में साफ-साफ कहा, "**जर्मनी प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं देख रहा है बल्कि शक्ति की ओर देख रहा है। आज की समस्याएं भाषणों एवं संसदीय मतों के द्वारा नहीं वरन् रक्त एवं लौह से हल होंगी।**"[2]

अतः बिस्मार्क ने यह स्पष्ट कर दिया कि जर्मन के भविष्य का निर्णय संसद नहीं बल्कि सेना करेगी। संसद एवं बिस्मार्क के बीच संघर्ष छिड़ गया। अगले 4 वर्षों तक यह संसद से लड़ता रहा। इस कार्य में सम्राट विलियम से उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ और अन्त में प्रशा की सैन्य शक्ति बढ़ाने में उसे पूर्ण सफलता मिली। प्रशा की सेना यूरोप भर में सर्वश्रेष्ठ हो गयी। संसद देखती ही रह गयी। बिस्मार्क को इस बात का पूरा यकीन था कि यदि विदेश नीति में उसे सफलता मिलेगी तो लोग इसकी निरंकुशता को भूल जाएंगे। बिस्मार्क का अनुमान बिल्कुल सही निकला क्योंकि जब कूटनीति एवं युद्ध रुचि में वह निरन्तर सफलताएं अर्जित करने लगा तो सारा देश उसका अनुयायी बन गया।

बिस्मार्क की विदेश नीति एवं जर्मनी के एकीकरण में उसका योगदान
(THE CONTRIBUTION OF BISMARCK IN THE UNIFICATION OF GERMANY)

वास्तव में बिस्मार्क ने '**रक्त एवं लौह की नीति**' (Policy of Blood and Iron) का अनुसरण करते हुए मात्र 8 वर्षों में (1862-70) जर्मनी का एकीकरण कर दिया जबकि 1815 से 1850 ई. के काल में समस्त संसदीय एवं संवैधानिक प्रयत्न असफल रहे। **अपनी इस नयी नीति के अन्तर्गत बिस्मार्क ने अग्र कार्य किए :**

1 The period was on of virtual dictatorship and real suspension of Parlimentary life. —*Hazen*

2 "......The great question of the time are not to be solved by speeches and Parliamentary votes, but by blood and iron." —*Bismarck*

1. **श्लेसविग होलेस्टाइन समस्या (डेनमार्क युद्ध)** (Problem of Schleswig-Holestein)—डेनमार्क से युद्ध का प्रमुख कारण श्लेसविग-होलेस्टाइन (Schleswig-Holestein) का प्रश्न था। इसी बहानें बिस्मार्क को आस्ट्रिया के साथ युद्ध करने का सुअवसर मिल गया जिसके लिए बिस्मार्क बहुत इच्छुक था।

श्लेसविग एवं होलेस्टाइटन के प्रदेश जर्मनी एवं डेनमार्क के मध्य स्थित थे। होलेस्टाइन में जर्मन रहते थे तथा वह जर्मन संघ का सदस्य था, परन्तु श्लेसविग में जर्मन तथा डेन दोनों साथ रहते थे। ये दोनों ही प्रदेश 10वीं शताब्दी से डेनमार्क से सम्बद्ध थे। इन दोनों प्रदेशों का डेनमार्क से पृथक् सम्बन्ध था, लेकिन 15वीं शताब्दी से इन दोनों डचियों (प्रदेशों) को एक समझा जाने लगा जिससे इनके पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ हो गए। 1760 ई. से डेनमार्क का राजा इनका ड्यूक उसी प्रकार बन गया जिस प्रकार हैनोवर का राजा जार्ज इंग्लैण्ड का राजा हो गया था और तभी से इन डचियों का इंग्लैण्ड के राजा से व्यक्तिगत सम्बन्ध था। डेनमार्क का राजा इनका शासक था, परन्तु ये डेनमार्क के भाग नहीं थे इनका अलग विधान था।19वीं शताब्दी के आरम्भ से इन दोनों डचियों एवं डेनमार्क के सम्बन्धों में कटुता आने लगी क्योंकि श्लेसविग एवं होलेस्टाइन की जनता में भी राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ रही थी। 1845 ई. से 1852 ई. के बीच यहां डेनमार्क के विरुद्ध काफी विद्रोह होते रहे। प्रशा इन विद्रोहों को समर्थन देता रहा। प्रशा इन दोनों डचियों की सहायता के लिए आगे भी आया, किन्तु अन्य यूरोपीय राष्ट्रों के विरोध के कारण वह पीछे हट गया। **अन्त में** 1852 **ई. में लन्दन की सन्धि हो गयी।** इस सन्धि के द्वारा इन दोनों डचियों के डेनमार्क के साथ सम्बन्धों की पुष्टि कर दी गई। ग्लकबर्ग के प्रिंस क्रिश्चियन को आगामी राजा घोषित किया गया। वह डेनमार्क तथा दोनों डचीज का अधिकारी होगा तथा आगस्टनबर्ग के ड्यूक को धन देकर उसके अधिकार को समाप्त कर दिया जाएगा। ये निर्णय लन्दन सन्धि के थे।

1863 ई. में डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम की मृत्यु हो गयी जिससे एक पेचीदा स्थिति पैदा हो गयी। फ्रेडरिक डेनमार्क का राजा होने के साथ श्लेसविग एवं होलेस्टाइन की जर्मन डचियों का शासक भी था। अतः लन्दन सन्धि के अनुसार प्रिंस क्रिश्चियन नवां गद्दी पर बैठा। उसने एक नए संविधान द्वारा श्लेसविग को अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग घोषित किया। उसके इस कार्य से पुनः झगड़ा उठ खड़ा हुआ। जर्मनी की संघीय डायट ने डेनमार्क से मांग की कि वह अपने इस नए संविधान को रद्द कर दे, परन्तु बिस्मार्क ने संघीय संसद का साथ नहीं दिया। वह इस अवसर का लाभ उठाकर श्लेसविग तथा होलेस्टाइन पर स्वयं अधिकार करना चाहता था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी उसी के पक्ष में थी।

2. **बिस्मार्क की कूटनीति (आस्ट्रिया से सहयोग)**—इस अवसर पर बिस्मार्क ने कूटनीतिज्ञता से काम लिया, उसने घोषणा भी की कि, "**आस्ट्रिया से अच्छे या बुरे सम्बन्ध होने चाहिए हम अच्छे की इच्छा रखते हैं, किन्तु हमें खराब सम्बन्धों के लिए तैयार रहना चाहिए।**"[1] इस समय जर्मन डायट (संसद) आगस्टनबर्ग का समर्थन कर ही थी। अब बिस्मार्क को अपने मार्ग से डायट को हटाना था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को समझाया कि श्लेसविग एवं होलेस्टाइन के प्रश्न को संघीय संसद के सम्मुख न रखा जाए क्योंकि इससे भविष्य में संघीय संसद

1 "Our relations with Austria must be better or worse. We desire the first but we must prepare for the second." —*Bismarck*

बहुत शक्तिशाली हो जाएगी और जर्मनी में जनतन्त्रवादी तथा क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहन मिलेगा। आस्ट्रिया बिस्मार्क की बातों में आ गया उसने डायट को इस विवाद से बाहर निकाल दिया।

तत्पश्चात् बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से कहा कि इस प्रश्न पर आस्ट्रिया तथा प्रशा को सम्मिलित कार्यवाही करनी चाहिए। आस्ट्रिया ने प्रशा की मांग को स्वीकार कर लिया। अतः प्रशा एवं आस्ट्रिया ने संयुक्त रूप से डेनमार्क को यह धमकी दी कि वह 48 घण्टे के भीतर उस संविधान को वापस ले ले जिसके द्वारा श्लेसविग को डेनमार्क का अभिन्न अंग बनाया गया था, पर डेनमार्क के लिए ऐसा करना सम्भव न था क्योंकि डेनमार्क की संसद भंग की जा चुकी थी और 48 घण्टे के भीतर नयी संसद चुनना मुश्किल था। वास्तव में, बिस्मार्क यह सब जानता था, लेकिन यह उसकी एक चाल थी उसका उद्देश्य तो लड़ाई मोल लेना था और वह इस उद्देश्य में सफल हुआ। डेनमार्क के राजा द्वारा संविधान न हटाए जाने पर फरवरी, 1864 ई. में आस्ट्रिया तथा प्रशा ने डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। डेनमार्क को पराजय का मुंह देखना पड़ा और 30 अक्टूबर, 1864 ई. को उसे विएना सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। इस सन्धि के अनुसार श्लेशविग तथा होलेस्टाइन के प्रदेश प्रशा एवं आस्ट्रिया को दे दिए गए। डेनमार्क ने यह भी मंजूर किया कि इन दोनों डचियों का प्रशा एवं आस्ट्रिया जो कुछ चाहें करें।

3. **गेस्टाइन का समझौता**—इस प्रकार बिस्मार्क की कूटनीति का एक अंग पूरा हुआ, लेकिन अभी उसे बहुत कुछ करना था। अब लूट के इस बंटवारे का प्रश्न पैदा हुआ। आस्ट्रिया तो श्लेसविग, होलेस्टाइन के प्रदेशों में कोई विशेष रुचि नहीं रखता था, लेकिन बिस्मार्क इन्हें प्रशा में मिलाना चाहता था। अतः उन डचियों के भविष्य को लेकर एक बार पुनः संघर्ष की नौबत आ गयी थी, लेकिन बिस्मार्क ने अपने मन्तव्य को गुप्त रखते हुए आस्ट्रिया को पुनः अपने जाल में फंसा लिया। 14 अगस्त को आस्ट्रिया एवं प्रशा के बीच गेस्टाइन का समझौता हो गया, **इस समझौते के अनुसार इस दोनों प्रदेशों को इस प्रकार बांटा गया**—

(i) लाएनवर्ग का प्रदेश प्रशा ने खरीद लिया एवं आस्ट्रिया को उसका मूल्य दे दिया।

(ii) श्लेसविग प्रशा को मिला।

(ii) होलेस्टाइन आस्ट्रिया को मिला, परन्तु होलेस्टाइन दोनों ओर से प्रशा से घिरा था अतः आस्ट्रिया के लिए उस पर अपना अधिकार बनाए रखना बड़ा कठिन था।

इस प्रकार गेस्टाइन का समझौता बिस्मार्क की कूटनीति की महान् सफलता थी। इस विभाजन से प्रशा को अधिक लाभ हुआ। श्लेसविग तथा लाएनवर्ग पर अधिकार हो जाने से प्रशा का '**कील**' (Kiel) बन्दरगाह पर अधिकार हो गया तथा प्रशा की सैनिक शक्ति बढ़ गयी। फिशर के अनुसार, "**अब तक बिस्मार्क असाधारण रूप से सफल रहा।**"[1] गेस्टाइन समझौता होने पर बिस्मार्क ने कहा था, "**गेस्टाइन के समझौते से उसने दरारों के ऊपर कागज मढ़ दिया।**"[2]

1 Fisher, H.A.L., *A History of Europe*, p. 1062.
2 "Papered over the Cracks."

वास्तव में, आस्ट्रिया उन दरारों को उस वक्त नहीं देख पाया। थोड़े समय पश्चात् ही आस्ट्रिया को अपनी भूल का आभास हुआ। वह समझ गया कि होलेस्टीन पर अधिकार बनाए रखना सरल नहीं है। अंतः उसने आगस्टनबर्ग के ड्यूक के प्रश्न को फिर से उठाया तथा होलेस्टीन एवं श्लेसविग के प्रश्न को पुनः संघीय संसद के समक्ष रखने के लिए कहा, लेकिन बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के इस कार्य को गेस्टाइन समझौते के विरुद्ध बताया, अतः यही से 1866 ई. में आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध की शुरूआत हो जाती है।

आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध (1866 ई.)
(AUSTRO-PRUSSIAN WAR)

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि गेस्टाइन समझौते को लेकर दोनों राष्ट्रों में तनाव बढ़ गया और युद्ध की स्थिति पैदा हो गयी।

युद्ध से पूर्व बिस्मार्क की आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाने की नीति

युद्ध से पूर्व बिस्मार्क ने ऐसी कूटनीतिक चाल चली कि जिससे युद्ध छिड़ जाने पर कोई भी विदेशी शक्ति आस्ट्रिया के पक्ष में हस्तक्षेप न करे। अतः उसने यूरोप के अनेक देशों के साथ मैत्री करके आस्ट्रिया को पूर्ण रूप से मित्रहीन एवं असहाय बना दिया। **युद्ध होने से पूर्व उसने यूरोप के प्रमुख देशों की मित्रता तथा सद्भावना निम्न प्रकार से प्राप्त की :**

(क) रूस से मित्रता—बिस्मार्क को सबसे अधिक चिन्ता रूस को मित्र बनाने की थी। 1859 से 1862 ई. तक वह रूस में राजदूत रह चुका था जिससे वह जार को भली-भांति समझ चुका था। अतः उसने यह अनुभव किया कि, **"रूस के हित पूर्वी समस्या में हैं और प्रशा इस-समस्या में तनिक भी रुचि नहीं रखता, अतः रूस एवं प्रशा के बीच झगड़े का कोई कारण नहीं है और प्रशा बड़ी सुगमता के साथ उसकी मित्रता प्राप्त कर सकता है।"**[1] अतः पूर्वी समस्या में उसने अपना कोई रुझान नहीं दिखाया। रूस से मित्रता प्राप्त करने का सुअवसर उसे 1863 ई. में मिला जबकि पोलैण्ड में रूस के एकतन्त्रवाद के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया। बिस्मार्क ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रतिक्रियावादी रूस का साथ दिया और स्पष्ट रूप से जार के पास एक सन्देश भेजा कि **'उभयनिष्ठ शत्रु (पोलैण्ड) के विरुद्ध प्रशा आपके साथ कन्धा मिलाकर खड़ा होगा।"**[2] अतः बिस्मार्क की सहायता से रूस के जार एलेक्जेण्डर द्वितीय ने पोलैण्ड के विद्रोह को दबा दिया। बिस्मार्क ने इसके साथ-साथ जार को आश्वासन भी दिया कि वह प्रशा में शरण लेने वाले पोलैण्डवासियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करेगा। अतः इस समय एकमात्र बिस्मार्क ने ही रूस का साथ दिया था जिससे रूस एवं प्रशा में घनिष्ठता उत्पन्न हो गयी।

(ख) फ्रांसीसी मित्रता की प्राप्ति—जैसा कि पहले कहा जा चुका है 1862 ई. में बिस्मार्क को फ्रांस में राजदूत के पद पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था उस समय उसने अस्थिर व वृद्ध नेपोलियन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया। अक्टूबर, 1865 ई. में वह बिआरिज में नेपोलियन तृतीय से मिला। इस मुलाकात में दोनों ने एक-दूसरे को ये आश्वासन दिए

1 "Prussia must never let Russia's friendship becuase her alliance is the cheapest among all confidential alliance, for the eyes of Russia are turned only towards the East."
—*Bismarck*

2 "Prussia would stand shoulder to shoulder with him against the common enemy."
—*Bismarck*

कि यदि प्रशियन-आस्ट्रो युद्ध आरम्भ हुआ तो फ्रांस श्लेसविग एवं होलेस्टाइन पर प्रशा का अधिकार स्वीकार कर लेगा। इसके अतिरिक्त, यदि प्रशा जर्मन संघ में सुधार का प्रस्ताव रखेगा या अपने नेतृत्व में उत्तरी जर्मनी का नया संघ बनाएगा तो फ्रांस प्रशा का विरोध नहीं करेगा। अतः बिआरिज के वार्ता समझौते से नेपोलियन पूर्ण रूप से आश्वस्त हो गया।

(ग) इटली से मित्रता—इटली में तो पहले से ही आस्ट्रिया के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन चल रहा था। 8 अप्रैल, 1866 ई. को एक समझौते के द्वारा निम्न बातें तय की गयीं। पहला यह यदि तीन माह के भीतर आस्ट्रिया एवं प्रशा का युद्ध हुआ तो आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली भी युद्ध घोषित कर देगा तथा बिस्मार्क इसके बदले में इटली को वेनेशिया दिलाएगा। वास्तव में यह सन्धि **'पारस्परिक आश्वासन एवं स्नेह'** (Mutual assurance and suspicion) की सन्धि थी क्योंकि आस्ट्रिया दोनों का शत्रु होने के पर भी प्रशा एवं इटली को एक-दूसरे पर विश्वास नहीं था।

अतः बिस्मार्क इटली की ओर से भी निश्चिन्त हो गया।

युद्ध का आरम्भ

युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बिस्मार्क ने पूरी सैनिक तैयारी के साथ-साथ आस्ट्रिया को अपनी कूटनीति से पूर्णरूपेण अकेला कर दिया था। अब बिस्मार्क युद्ध का बहाना ढूंढने लगा। 1 जून, 1860 ई. को उसने श्वेसविग एवं होलेस्टीन के प्रश्न पर निर्णय हेतु संघीय संसद को आमन्त्रित किया। संसद ने आस्ट्रिया के इशारे पर यह निर्णय लिया कि डेनमार्क से लिए गए इन प्रदेशों को आगस्टनबर्ग के ड्यूक को दे दिया जाएगा। बिस्मार्क ने इस निर्णय का विरोध किया। उसने प्रशा को गेस्टाइन समझौते से मुक्त कहा और होलेस्टाइन में जहां आस्ट्रिया का शासन था अपनी सेनाएं भेज दीं। उनकी सेनाओं ने आस्ट्रियन सेनाओं को वहां से बाहर खदेड़ दिया। आस्ट्रिया ने जर्मन संसद के सामने प्रशा की इस ज्यादती की शिकायत की और यह प्रस्ताव रखा कि जर्मन संघ अपनी सेना प्रशा के विरुद्ध भेजे। बिस्मार्क के विरोध के बावजूद भी आस्ट्रिया का यह प्रस्ताव पास हो गया। बिस्मार्क ने जर्मन-संघ के इस कार्य को अवैध ठहराते हुए संघ को भंग घोषित कर दिया और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

यह युद्ध 16 जून, 1866 ई. को समाप्त हो गया। इस युद्ध का फैसला सात सप्ताहों में हो गया इसलिए इसको **'सात सप्ताह का युद्ध'** (Seven weeks' war) भी कहते हैं। **इसमें तीन प्रमुख युद्ध लड़े गए—**

(1) **कस्टोजा का युद्ध**—इस युद्ध में आस्ट्रिया की सेनाओं ने इटली की सेनाओं को परास्त कर दिया।

(2) **लीसा का युद्ध**—यह सामुद्रिक युद्ध था इसमें भी आस्ट्रिया के जहाजी बेड़े ने इटली के जहाजी बेड़े को छिन्न-भिन्न कर दिया।

(3) **सेडोवा का निर्णायक युद्ध**—3 जुलाई को सेडोवा नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। पहले तो इसमें आस्ट्रिया की विजय निश्चित लग रही थी, लेकिन इसी बीच प्रशा का राजकुमार अपनी सेना लेकर आ पहुंचा और आस्ट्रिया पर टूट पड़ा, आस्ट्रिया की पराजय हुई। प्रशा की इस शानदार विजय का श्रेय उसके सेनापति जनरल माल्टके को था।

आस्ट्रो प्रशियन-युद्ध में जर्मनी के बवेरिया, वेटम्बर्ग, सेक्सनी, हैनोवर, हेस-कासेल, नास तथा बेडन, आदि राज्यों ने आस्ट्रिया का साथ दिया, लेकिन प्रशा की फौजों ने युद्ध आरम्भ होने के तीन दिन के अन्दर ही इन राज्यों को अपने अधीन कर लिया। हेजन के अनुसार, **"यह युद्ध इतिहास में सबसे कम अवधि के युद्धों में से एक है, जो अत्यधिक निर्णायक था तथा जिसका परिणाम सबसे चमत्कारपूर्ण था।"**[1]

बिस्मार्क की कूटनीतिज्ञता—पराजित आस्ट्रिया की हालत इतनी बुरी हो गयी कि प्रशा के राजा विलियम प्रथम ने आस्ट्रिया की राजधानी वियना पर भी आक्रमण करना चाहा, लेकिन बिस्मार्क ने इसे स्वीकार नहीं किया। **यह उसकी कूटनीति थी, उसका लक्ष्य आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकालना था आस्ट्रिया को जीतना नहीं।** बिस्मार्क इस बात को भली-भांति जानता था कि यदि विएना पर आक्रमण किया गया तो सम्भव है यूरोप के अन्य देश आस्ट्रिया की सहायता हेतु हस्तक्षेप करेंगे जिससे जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न हो जाएंगी। इसके अतिरिक्त, बिस्मार्क ने पहले से ही यह योजना बना ली थी कि आस्ट्रिया को पराजित करने के बाद भी अपना मित्र बनाए रखना है। **अतः आस्ट्रिया के साथ ऐसा व्यवहार करना आवश्यक था जिससे वह अपनी पराजयजनित घृणा को भूलकर आगे चलकर उसका मित्र बन सके।**[2] बिस्मार्क इस बात को अच्छी तरह समझता था कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे अन्तिम युद्ध फ्रांस से करना होगा जिसमें आस्ट्रिया की मदद या कम से कम उसकी तटस्थता की अत्यन्त आवश्यकता होगी। अतः उसने युद्ध स्थगित करके 26 जुलाई को आस्ट्रिया से निकल्सबर्ग के स्थान पर सन्धि की शर्तों की बातचीत शुरू कर दी और उन शर्तों के आधार पर 13 अगस्त को प्राग में सन्धि हुई।

प्राग की सन्धि (The Treaty of Prague)—23 अगस्त, 1866 ई. को हुई इस सन्धि में आस्ट्रिया के प्रति बिस्मार्क ने नरमी से काम लिया जो उसकी दूरदर्शिता का परिचय था। **इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय लिए गए :**

(i) विएना सन्धि द्वारा निर्मित जर्मन संघ तोड़कर उसके स्थान पर मेन (Main) नदी के उत्तर के समस्त राज्य प्रशा के नेतृत्व में **नार्थ जर्मन कनफैडरेशन** (North German Confenderation) में शामिल कर दिए गए। आस्ट्रिया को इस संघ से हटा दिया गया।

(ii) श्लेसविग तथा होलेस्टाइन पर प्रशा का अधिकार मान लिया गया।

(iii) वेनेशिया का प्रदेश इटली को प्राप्त हुआ।

(iv) आस्ट्रिया ने प्रशा को युद्ध का हर्जाना देना स्वीकार कर लिया।

(v) दक्षिण के राज्यों को छूट दे दी गयी कि वे जो मार्ग चाहें अपना सकते हैं।

आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध के परिणाम—इस युद्ध के निम्नलिखित प्रमुख परिणाम हुए—

(i) **प्रशा का विस्तार**—इस सन्धि के बाद जर्मनी पर आस्ट्रिया का प्रभाव समाप्त हो गया तथा प्रशा एक शक्तिशाली शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। प्रशा का राज्य राइन नदी से बाल्टिक सागर तक पहुंच गया। नए प्रदेशों के शामिल होनें से उसका क्षेत्रफल 25,000 वर्गमील और बढ़ गया तथा कील जैसा महत्वपूर्ण बन्दरगाह प्राप्त हुआ।

1 **"It proved to be one of the shortest wars in history one of the most decisive and on whose consequences were most momentous." —Hazen, C. D., *op. cit.*, p. 342.**

2 **"Bismarck did not wish to make Austria a mortal enemy."** —*Hayes*

(ii) **जर्मनी में उदारवादी विचारों का दमन**—इस विजय के द्वारा बिस्मार्क ने अपने भीतरी शत्रुओं को भी परास्त कर दिया। जिस सेना के विस्तार का उदारवादी लोग विरोध कर रहे थे, उससे शत्रुओं को परास्त करके बिस्मार्क ने सैनिकवाद का औचित्य प्रमाणित कर दिया था। विजयोल्लास में तथा राष्ट्रीय उत्कर्ष से प्रभावित होकर अधिकतर उदारवादी लोग अपना उदारवाद भूलकर बिस्मार्क के भक्त बन गए। उदारवाद का पक्ष निर्बल पड़ गया और उसका स्थान जर्मन राष्ट्रीयता ने ले लिया। अब उदारवादी लोग स्वशासन की मांग को छोड़कर समस्त जर्मनी के एकीकरण तथा जर्मनी में प्रशा के नेतृत्व के समर्थक बन गए।

(iii) **उत्तरी जर्मनी में प्रशा की प्रधानता तथा आस्ट्रिया का बहिष्कार**—इस युद्ध के फलस्वरूप ही जर्मनी संघ से आस्ट्रिया को निकाल दिया गया। मेन नदी के सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र में प्रशा की प्रधानता स्थापित हो गयी और सम्पूर्ण मध्य यूरोप में प्रशा सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया। फरवरी, 1867 ई. में बिस्मार्क ने बर्लिन में 22 राज्यों का एक संघ बनाया। समस्त परिसंघ के लिए दो सदन वाली विधायिका स्थापित की गयी। पहला सदन विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों का था जिसे **बुण्डसर्ट** (Bundesrath) कहा गया तथा दूसरा सदन जो कि समस्त वयस्क पुरुषों द्वारा निर्वाचित था 'Reichstay' कहा गया। प्रशा को बुण्डिसर्ट में 43 में से 17 मत प्राप्त थे। प्रशा के अप्रत्यक्ष अल्पमत में होने से उसका वास्तविक प्राधान्य ढक गया और छोटे-छोटे राज्यों को अपनी हीन दशा पर असन्तोष नहीं रहा, लेकिन समस्त मामलों में वास्तविक शक्ति प्रशा के राजा के हाथ में ही थी।

यद्यपि दक्षिणी जर्मनी के राज्य अभी तक बिस्मार्क के नवीन जर्मन संघ में सम्मिलित नहीं हुए थे तथापि बिस्मार्क ने उन्हें जबरदस्ती अपने संघ में शामिल करने का प्रयास नहीं किया। उसके उनके साथ बड़ी सावधानी एवं सतर्कता बरती तथा उनके प्रति उदार दृष्टिकोण दिखाया, उन्हें व्यापारिक सुविधाएं दीं, आर्थिक सुधार हेतु ऋण दिया, आदि जिससे कि वे प्रशा को अपना हितैषी समझें न कि शत्रु।

(iv) **इटली के एकीकरण में प्रगति**—जिस प्रकार इस युद्ध ने जर्मनी के एकीकरण में सहायता दी उसी प्रकार इटली के एकीकरण में भी सहायता दी। वेनिशिया से आस्ट्रिया को हटना पड़ा और वह सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में शामिल हो गया।

(v) **आस्ट्रिया-हंगरी के द्वैध साम्राज्य का उदय**—जर्मनी एवं इटली से बाहर निकल जाने के बाद आस्ट्रिया ने अपने शेष साम्राज्य की ओर अधिक ध्यान दिया। इस समय आस्ट्रिया साम्राज्य में स्थित हंगरी की मग्यार (Magyar) जाति संवैधानिक शासन तथा सुधारों के लिए आन्दोलन चला रही थी। 1866 ई. के बाद इस समस्या का समाधान करना आवश्यक हो गया। अतः 1867 ई. में हंगरी के देशभक्त नेता फ्रांसिस डीक तथा आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री काउण्ट ब्यूस्ट के प्रयत्नों के फलस्वरूप एक समझौता हुआ जिसके द्वारा हंगरी को स्वतन्त्रता प्रदान की गयी और आस्ट्रियन साम्राज्य आस्ट्रिया-हंगरी का द्वैध साम्राज्य (Dual Empire) बन गया। दोनों देशों ने युद्ध और विदेश नीति पर आपस में सहयोग करना स्वीकार किया। हंगरी ने आस्ट्रिया के सम्राट को अपना राजा स्वीकार किया। यद्यपि इन दोनों का राजा तो एक था, परन्तु दोनों के अपने पृथक् संविधान तथा अपनी पृथक् विधायिकाएं एवं शासन व्यवस्थाएं थीं, आगे चलकर इस द्वैध शासन से काफी उलझनें उत्पन्न होती रहीं।

इस प्रकार 1866 ई. यूरोप के लिए एक महत्वपूर्ण वर्ष था। इसी कारण हेजन ने लिखा है, "**1866 ई. आधुनिक यूरोप के इतिहास का निर्णायक वर्ष था।**"[1]

फ्रेंको-प्रशियन युद्ध (1870 ई.)
(FRANCO-PRUSSIAN WAR, 1870)

जर्मनी के एकीकरण का अन्तिम चरण फ्रेंको-प्रशियन युद्ध था। बिस्मार्क अब ऐसे अवसर की तलाश में था जबकि दक्षिणी जर्मनी के राज्य स्वयं ही उत्तरी जर्मनी के राज्य में मिलाने की कोशिश करें। बिस्मार्क का मानना था कि यदि सम्पूर्ण जर्मनी के सामने कोई राष्ट्रीय संकट आ जाए तो सारे राज्य पारस्परिक मतभेदों को बुलाकर प्रशा की पताका के नीचे आ सकते हैं। यह राष्ट्रीय संकट केवल फ्रांस की ओर से उपस्थित हो सकता था। दूसरे शब्दों में बिस्मार्क जर्मनी के एकीकरण को पूरा करने के लिए फ्रांस से युद्ध करना चाहता था इसी कारण वह कहा करता था कि—"**आस्ट्रिया के युद्ध के बाद फ्रांस से युद्ध इतिहास के तर्क में ही निहित है।**"[2]

फ्रेंको-प्रशियन युद्ध के कारण

यह युद्ध फ्रांस तथा प्रशा दोनों चाहते थे। **मुख्य रूप से इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—**

(1) **आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध में फ्रांस द्वारा भाग न लेने के कारण अपनी भूल का अहसास**—1866 ई. के आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध में फ्रांस ने भाग न लेकर बहुत भारी भूल की। अतः उसे इस बात का अनुभव होने लगा कि जर्मनी का उत्कर्ष एक शक्तिशाली राज्य के रूप में होने लगा है। फ्रांस यह कभी नहीं चाहता था कि उसके पड़ोस में किसी शक्तिशाली राज्य का उत्कर्ष हो, लेकिन नेपोलियन की मूर्खता के कारण फ्रांस 1866 के आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध में तटस्थ रहा। यदि उस समय नेपोलियन आस्ट्रिया की सहायता करने की धमकी देता जैसा कि आस्ट्रिया चाहता था तो वह सन्धि की शर्तों को निश्चित करने में प्रमुख भूमिका अदा कर सकता था। अतः 1866 ई. के सेडोवा युद्ध में आस्ट्रिया की नहीं वरन् फ्रांस की पराजय हुई। इस कारण फ्रांस भी उस युद्ध का बदला लेना चाहता था।

(2) **नेपोलियन तृतीय की असफल गृहनीति**—नेपोलियन तृतीय की गृहनीति की असफलता 1866 ई. में अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी। अतः गृहनीति में असफल रहने के कारण उसके विरोधियों का विरोध और अधिक बढ़ गया। ऐसी स्थिति में नेपोलियन ने अपनी जनता का ध्यान बाहर की ओर आकर्षित करना चाहा। अतः 1870 ई. में नेपोलियन प्रशा से युद्ध करने का काफी इच्छुक था क्योंकि इससे जनता का ध्यान नेपोलियन का विरोध करने के बजाय शत्रु की ओर चला जाए। इस प्रकार उसका सिंहासन सुरक्षित हो जाएगा।

(3) **नेपोलियन द्वारा मैक्सिको में हस्तक्षेप**—इसी समय नेपोलियन ने एक अन्य भारी भूल की। मैक्सिको के प्रति उसने जो नीति अपनायी वह नितान्त गलत तथा फ्रांस के लिए घातक सिद्ध हुई। उन दिनों अमरीका में गृहयुद्ध चल रहा था। नेपोलियन तृतीय को यह आशा थी कि अमरीका अपने गृहयुद्ध में ही उलझा रहेगा। अतः उसने मैक्सिको में हस्तक्षेप

1 "The year 1866 was a turning point in the history of Prussia, of France, of Austria, and of Modern Europe. It profound altered the historic balance of power." —*Hazen*

2 "A war with France lay in the logic of history." —*Bismarck*

किया, किन्तु वह मैक्सिको के गणतन्त्र को समाप्त कर वहां अपना राज्य स्थापित करने में असफल हो गया। साथ ही मैक्सिको के राष्ट्रपति मैक्समिलियन की हत्या का दोष भी फ्रांस पर लगा। **कहा जाता है कि मैक्सिको की लड़ाई नेपोलिपन तृतीय के लिए उसी प्रकार विनाशकारी सिद्ध हुई है जैसे कि स्पेन की लड़ाई नेपोलियन बोनापार्ट के लिए हुए थी।** अतः इससे फ्रांस की प्रतिष्ठा गिर गयी। अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रशा के साथ युद्ध करने के अतिरिक्त उसके पास कोई मार्ग नहीं था।

(4) बिस्मार्क की राय में फ्रांस के विरुद्ध युद्ध अनिवार्य—जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि जर्मनी पूर्ण रूप से एकीकृत हो गया था सिर्फ दक्षिण के राजा शेष थे, अतः बिस्मार्क एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता था जिससे ये दक्षिणी राज्य स्वयं ही उत्तरी संघ में सम्मिलित हो जाएं और यह स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती थी जबकि फ्रांस से युद्ध किया जाए।

(5) युद्ध का तात्कालिक कारण—इस युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। अतः कोई भी सामान्य कारण इन दोनों देशों के बीच युद्ध आरम्भ कर सकता था और ऐसा ही हुआ। 1868 ई. में स्पेन की जनता ने रानी ईसाबेला को देश से निष्कासित कर दिया, अतः स्पेन का सिंहासन खाली हो गया था। स्पेन की जनता ने प्रशा के राजा के रिश्तेदार लियोपोल्ड को वहां का शासक नियुक्त कर दिया, अतः प्रशा और स्पेन का यह मिलन फ्रांस सहन न कर सका। फ्रांस को इस बात का भय था कि लियोपोल्ड के राजा होते ही स्पेन पर प्रशा का प्रभाव स्थापित हो जाएगा। उसने लियोपोल्ड को गद्दी पर बैठाने का घोर विरोध किया। सम्राट विलियम प्रथम इस विरोध को देखकर दब गया और लियोपोल्ड ने स्वतः ही स्पेन की राजगद्दी की उम्मीदवारी छोड़ दी, लेकिन नेपोलियन तृतीय इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ वह तो प्रशा से अपनी कूटनीतिक पराजयों के अपमान का बदला लेना चाहता था। अतः नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के शासन से इस बात के लिए स्पष्ट रूप से लिखित आश्वासन मांगा कि प्रशा भविष्य में लियोपोल्ड को स्पेन के सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न नहीं करेगा। सम्राट विलियम इन दिनों **एम्स** नामक नगर में छुट्टियां व्यतीत करने गया था। अतः नेपोलियन तृतीय ने वेनेविटी नामक अपने राजदूत को कैसर विलियम प्रथम के पास भेजा। सम्राट विलियम प्रथम ने फ्रांसीसी राजदूत को यह आश्वासन दिया कि राजकुमार लियोपोल्ड कभी भी स्पेन के राजसिंहासन के लिए उम्मीदवार नहीं होगा, अतः इसके बाद एम्स से दूसरे स्थान चला गया तथा फ्रांसीसी राजदूत के साथ हुई अपने वार्ता का सारांश उसने तार द्वारा बिस्मार्क को दिया। 13 जुलाई, 1870 ई. की रात को बिस्मार्क को यह तार मिला। तार पढ़कर उसे घोर निराशा हुई।

अतः बिस्मार्क ने पुनः एक कूटनीतिक चाल चली। उसने तार की भाषा में हेर-फेर करके समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिया। इस हेर-फेर के पश्चात् तार को पढ़ने पर ऐसा महसूस हो रहा था कि एम्स में कैसर विलियम प्रथम ने फ्रांसीसी राजदूत का अपमान किया है। दूसरी ओर फ्रांसीसी जनता भी यह समझती थी कि सम्राट ने फ्रांसीसी राजदूत का घोर अपमान किया है। यह तार **'एम्स तार'** के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रांसीसी जनता इससे बड़ी क्रुद्ध हुई तथा अपने अपमान का बदला लेने के लिए नेपोलियन से मांग करने लगी। बिस्मार्क भी यही चाहता था, बिस्मार्क की चाल से दोनों देशों की जनता पूरी तरह भड़क गयी। दोनों

देशों में युद्ध छिड़ने की मांग होने लगी और तब 15 जुलाई, 1870 ई. को फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बिस्मार्क की फ्रांस को मित्रहीन बनाने की नीति—बिस्मार्क ने युद्ध होने से पूर्व फ्रांस को सम्पूर्ण यूरोप से निम्न प्रकार से मित्रहीन कर दियां—

(1) **रूस की मित्रता**—पहले ही क्रीमिया युद्ध से रूस तथा फ्रांस की शत्रुता चल रही थी। बिस्मार्क ने इस शत्रुता को और बढ़ाया। उसने रूस को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वह 1856 ई. की पेरिस सन्धि की काला सागर सम्बन्धी धारा को तोड़कर पुनः काला सागर में वर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दे तथा बिस्मार्क ने जार को यह भी आश्वासन दिया कि इस कार्य में वह रूस की मदद करेगा।

(2) **इटली से समझौता**—इटली में भी इस समय एकीकरण का अन्तिम चरण रह गया था।1859 में फ्रांस ने इटली के साथ प्लाम्बिये का समझौता करके उसे मदद दी, लेकिन कुछ समय पश्चात् नेपोलियन तृतीय ने प्लाम्बिये समझौते को भंग करके इटली को सहायता देना बन्द कर दिया तथा आस्ट्रिया के साथ बिलाफ्रेंका की सन्धि कर ली। नेपोलियन तृतीय के इस विश्वासघात से इटैलियन सम्राट एवं जनता बहुत असन्तुष्ट थी। इसके अतिरिक्त, इस समय रोम ही एकमात्र इटली से बाहर रह गया था, लेकिन 1849 ई. से फ्रांसीसी सेनाएं पोप की रक्षा कर रही थीं। अतः बिस्मार्क ने इस मौके का पूरा फायदा उठाया। उसने इटली को पूरी तरह आश्वस्त कर दिया कि यदि फ्रेंको-प्रशियन युद्ध आरम्भ हो जाए तो इटली रोम पर अपना अधिकार कर ले।

(3) **आस्ट्रिया से उदारता का बर्ताव एवं मित्रता**—सेडोवा में यद्यपि आस्ट्रिया बहुत बुरी तरह पराजित हुआ था, लेकिन बिस्मार्क ने उसके साथ बड़ी उदारता दिखायी तथा प्राग सन्धि की धाराएं भी काफी उदार एवं नरम थीं। यह बिस्मार्क की महान् राजनीतिज्ञता थी कि विजयी होने के बाद भी उसने आस्ट्रिया की राजधानी विएना में प्रवेश नहीं किया तथा युद्ध क्षतिपूर्ति की राशि भी काफी नगण्य थी, बिस्मार्क के इस उदारतापूर्ण व्यवहार से आस्ट्रिया अपनी पराजय का अपमान भूल गया अतः उसने फ्रेंको-प्रशियन युद्ध में तटस्थ रहने का निश्चय कर लिया।

(4) **इंग्लैण्ड**—इंग्लैण्ड तथा फ्रांस के सम्बन्ध बेल्जियम को लेकर काफी कटु हो गए थे क्योंकि नेपोलियन तृतीय बेल्जियम पर अधिकार करना चाहता था जबकि इंग्लैण्ड बेल्जियम की अखण्डता एवं तटस्थता को बनाए रखना चाहता था।

इसके अतिरिक्त, दक्षिणी जर्मनी के राज्य अभी जर्मन संघ से बाहर थे, अतः इन राज्यो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बिस्मार्क ने पुनः एक नयी चाल चली। 1866 ई. के आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध में फ्रांस तटस्थ रहा, अतः अपनी इस तटस्थता के बदले उसने बिस्मार्क से मेज, बवेरिया, पैलिटिनेट तथा लम्बेबर्ग के प्रदेश मांगना शुरू कर दिया। बिस्मार्क ने फ्रांस की इस मांग को समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिया। दक्षिण के जर्मन राज्यों ने जब यह बात पढ़ी तो वे नेपोलियन तृतीय के घोर विरोधी हो गए और बिस्मार्क के करीब आने लगे।

इस प्रकार बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति एवं चातुर्य से 1870 ई. के फ्रेंको-प्रशियन युद्ध से पूर्व ऐसी स्थितियां उत्पन्न कर दीं कि फ्रांस यूरोप में अकेला एवं मित्रहीन हो गया।

युद्ध का प्रारम्भ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस युद्ध का तात्कालिक कारण स्पेन के उत्तराधिकार की समस्या थी। जैसा कि प्रो. लिप्सन के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि—**"जब कोई सरकार युद्ध पर उतारू हो जाती है तो बहाना खोजने में कोई परेशानी नहीं होती है। स्पेन के सिंहासन पर उत्तराधिकार के झगड़े को लेकर जो सन्तोषजनक समझौते के करीब था, फ्रेंको-प्रशियन युद्ध तात्कालिक कारण बना।"**[1]

अतः 15 जुलाई, 1870 ई. को फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध प्रारम्भ होते ही दक्षिणी जर्मन राज्यों ने प्रशा का साथ देने का निर्णय लिया, इससे प्रशा
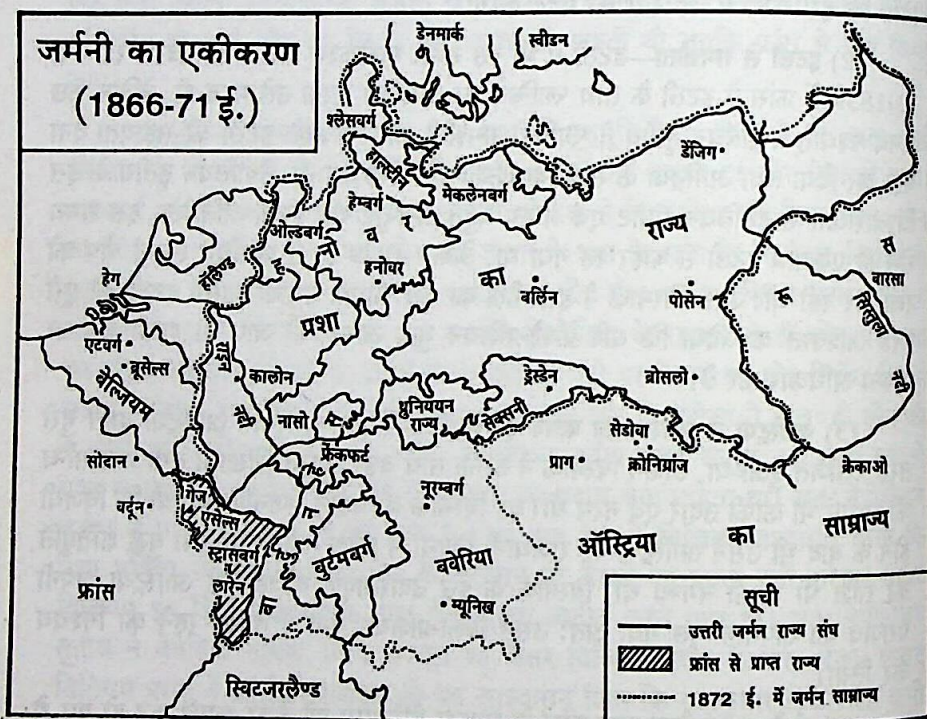
और शक्तिशाली हो गया। दूसरी ओर बिस्मार्क ने फ्रांस को पहले ही मित्रहीन बना दिया था, अतः किसी भी यूरोपीय राज्य ने उसकी मदद नहीं की। इसके अतिरिक्त, नेपोलियन तृतीय ने युद्ध की कोई खास तैयारी नहीं थी। उसे इस बात की आशा न थी कि फ्रांस को कभी पराजय का मुंह देखना पड़ेगा, किन्तु परिणाम ठीक इसके विपरीत हुआ। **यह युद्ध दस मास चला जिसमें प्रमुख युद्ध निम्न थे :**

(1) **वर्थ** (Worth) **का युद्ध**—इसमें फ्रांसीसी सेनाएं पराजित हुईं।

(2) **ग्रेवलाथ** (Graveloth) **का युद्ध**—इस युद्ध में भी फ्रांसीसी सेना को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

1 "When a government is resolved on war, it is never at a loss for a pretex and a despute over the succession to the Spanish throne, which war almost on the point of satisfactory settlement, was the immediate occassion of Franco-Prussion war."
—*Lipson*

(3) सेडन (Sedan) का युद्ध—यह सबसे महत्वपूर्ण एवं निर्णायक युद्ध था। इस युद्ध में प्रशा के सेनापति वॉन मोल्टके ने फ्रांसीसी सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया तथा नेपोलियन तृतीय अपने 99 हजार सैनिकों के साथ बन्दी बना लिया गया।

इस प्रकार फ्रांस को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा। वास्तविकता तो यह है कि नेपोलियन प्रशा की सैनिक शक्ति से अवगत नहीं था और न ही उसमें बिस्मार्क जैसी कूटनीतिज्ञता थी। प्रो. शैपीरो के अनुसार, "1870 **में फ्रांसवासियों ने अपने पड़ोसियों को एक राष्ट्र बनने से रोकने का प्रयत्न किया, उन्होंने उसी सिद्धान्त की अवहेलना की थी जिसके लिए वे बहादुरी से लड़े थे तथा जो उन्होंने फ्रांस की क्रान्ति के मध्य दिया था, यह राष्ट्रीयता का सिद्धान्त था।**"[1]

फ्रैंकफर्ट की सन्धि

बिस्मार्क ने सुलह के लिए असाधारण रूप से कठोर शर्तें रखीं जिनके आधार पर 10 मई, 1871 ई. को **अन्तिम रूप से हस्ताक्षर करके सन्धि की निम्नलिखित शर्तें स्वीकार की गयीं :**

1. फ्रांस ने वचन दिया कि वह जर्मनी को 20 करोड़ पौण्ड क्षतिपूर्ति के रूप में देगा, इस राशि का भुगतान 3 वर्ष की अवधि में कर दिया जाएगा तथा क्षतिपूर्ति होने तक जर्मन सेना का फ्रांस में रहना निश्चित हुआ। आधुनिक यूरोप के इतिहास में इतना भारी हर्जाना किसी भी देश पर नहीं लादा गया।

2. बेलफोर्ट को छोड़कर फ्रांस के अल्सेस एवं लारेन के प्रदेश जर्मनी को दे दिए गए। मेज तथा स्ट्रासबर्ग कें महत्वपूर्ण किले भी प्रशा को मिल गए।

फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के परिणाम
(RESULTS OF FRANCO-PRUSSIAN WAR)

इस युद्ध के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित थे :

(1) **जर्मनी का एकीकरण पूर्ण एवं जर्मन साम्राज्य की स्थापना—प्रो.** हेज के अनुसार, "**फ्रांस-प्रशा युद्ध ने इस प्रकार प्रशा के नेतृत्व में जर्मन साम्राज्य के निर्माण को गति प्रदान की। इस युद्ध ने जर्मन सैनिक तन्त्र की सर्वोत्कृष्टता की भी पुष्टि की।**"[2] अतः इस युद्ध के फलस्वरूप प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का राजनीतिक एकीकरण पूर्ण हो गया। 18 जनवरी, 1871 ई. को वार्साय के राजभवन में बड़ी धूमधाम से उत्सव हुआ। प्रशा का राजा विलियम प्रथम एक सुसज्जित मंच पर बैठा और राजा के पास ही एक आसन पर बिस्मार्क बैठा। सभी राज्यों की ओर से विलियम प्रथम को राजमुकुट दिया गया जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया तथा बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य की स्थापना की घोषणा पढ़ी। इस प्रकार जर्मनी के एकीकरण का यह यज्ञ सम्पन्न हो गया।

1 "When, in 1870 the French tried to prevent their neighbours from becoming a nation, they were untrue to the very principle which they themselves had so passionately proclaimed during the French Revolution, and for which they had so often bravely fought, namely nationalism."
—J. S. Schapiro, *Modern and Contemporary European History.*

2 Hayes C. J. H., *Modern Europe*, p. 760.

(2) **इटली का एकीकरण पूर्ण हुआ**—इस प्रकार युद्ध के परिणामस्वरूप इटली का एकीकरण भी पूर्ण हो गया। 1866 ई. तक मात्र रोम को छोड़कर इटली के समस्त राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट के नेतृत्व में एक हो चुके थे। रोम में पोप के राज्य की रक्षा फ्रांसीसी सेनाएं कर रही थीं। अतः 1870 ई. में इटली ने फ्रांस को प्रशा के साथ संघर्ष में उलझा देखकर रोम पर अधिकार करके एकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण कर दी। इस प्रकार पोप की लौकिक शक्ति समाप्त हो गयी तथा रोम एकीकृत इटली की राजधानी बन गया। हेजन के अनुसार, "**सन् 1866 ई. की लड़ाई के फलस्वरूप आस्ट्रिया को जर्मनी एवं इटली से निकाल दिया गया था। सन् 1870 ई. की लड़ाई से दोनों देशों का एकीकरण पूर्ण हो गया। बर्लिन जर्मन-संघ साम्राज्य की राजधानी बना और रोम संयुक्त इटली की राजधानी बना।**"

(3) **फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना**—इधर सेडान के युद्ध में पराजय के बाद नेपोलियन तृतीय को बन्दी बना लिया गया और उधर फ्रांस में क्रान्ति हो गयी और 4 सितम्बर, 1871 ई. को फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई।

(4) **रूस के कदम काले सागर की ओर**—रूस पर भी इस युद्ध का प्रभाव पड़ा। बिस्मार्क के प्रोत्साहन से उसने पूरा लाभ उठाया, अतः उसने फ्रांस को युद्ध में फंसा देखकर पेरिस सन्धि का उल्लंघन करते हुए काले सागर में पुनः अपना जहाजी बेड़ा रखकर वहां वर्गीकरण करना आरम्भ कर दिया जिससे पूर्वी समस्या में एक बार पुनः वह खतरा बन गया।

(5) **विएना सन्धि को आघात**—इस युद्ध के फलस्वरूप विएना सन्धि के निर्णयों पर भारी आघात लगा क्योंकि इस युद्ध ने इटली एवं जर्मनी को पूर्ण रूप से एकीकृत कर दिया जो कि विएना सन्धि की शर्तों के विरुद्ध था।

(6) **जर्मनी (प्रशा) यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बन गया**—इस युद्ध के पश्चात् यूरोप की राजनीति का केन्द्र फ्रांस (पेरिस) के स्थान पर जर्मनी (प्रशा) बन गया। **अब जर्मनी सारे यूरोप का एक प्रतिष्ठित एवं सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया और बिस्मार्क सारे जर्मन का अधिपति बन गया।**[1]

इस प्रकार बिस्मार्क के प्रयत्नों से सदियों से बंटे हुए जर्मनी का एकीकरण हो गया। वास्तव में बिस्मार्क ऐसा व्यक्तित्व था जिसने इस महान् कार्य में सफलता प्राप्त कर अपने नाम को जर्मनी के महान् देशभक्तों के रूप में अमर बनाया। हर्नशा के अनुसार, "**जो कार्य वाद-विवाद द्वारा नहीं हो सकता था उसे बिस्मार्क ने अपने 'रक्त एवं लौह की नीति' से सम्पादित किया।**"[2] निःसन्देह जर्मनी का एकीकरण बिस्मार्क की कुशल कूटनीति का ही परिणाम था।

प्रश्न

1. जर्मनी के एकीकरण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

1 "The Franco-German war made Germany mistress of Europe and Bismarck master of Germany." —Ketelby, *History of Modern Europe, op. cit.*

2 "What philosophical discussion and parliamentary votes had not been able to achieve, that Bismrack's policy of blood and iron had accomplished." —*Hearnshaw*

2. जर्मनी के एकीकरण में कौन-कौनसी प्रमुख समस्याएं थीं? उनका समाधान किस प्रकार से किया गया?
3. जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क के योगदान का उल्लेख कीजिए।
(लखनऊ, 1990, 92, 94; पूर्वांचल, 1992)
4. बिस्मार्क ने किस प्रकार जर्मनी का एकीकरण किया? वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1990)
5. फ्रैंको-प्रशियन युद्ध तथा उसके परिणामों का वर्णन कीजिए।
6. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न सोपानों का वर्णन कीजिए।
7. "तात्कालीन महान् समस्याओं का निराकरण भाषणों और बहुमत द्वारा नहीं किया जा सकता। उसका समाधान तो केवल लौह और रक्त की नीति के द्वारा ही किया जा सकता है।" उपर्युक्त कथन की व्याख्या कीजिए तथा बिस्मार्क द्वारा किए गए कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
8. 19वीं शताब्दी में जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
(गोरखपुर, 1988, 92, 95; पूर्वांचल, 1990, 95)

14

पूर्वी समस्या (1856 ई. तक)
[THE EASTERN QUESTION]

भूमिका
(INTRODUCTION)

मध्य काल में टर्की का साम्राज्य जिसे **'ओटोमन एम्पायर'**[1] भी कहा जाता है, यूरोप में एक शक्तिशाली एवं सम्पन्न साम्राज्य समझा जाता था। यूरोप के राष्ट्र उसकी शक्ति एवं वैभव देखकर उससे ईर्ष्या करते थे, किन्तु समय सदैव परिवर्तनशील होता है। 18वीं शताब्दी से उसकी शक्ति, उसकी सम्पन्नता, उसके वैभव में ह्रास प्रारम्भ हुआ और 19वीं शताब्दी तक उसकी शक्ति इतनी कम हो चुकी थी कि उसके अधीन ईसाई जातियों ने स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। टर्की का शक्तिशाली पड़ोसी राज्य रूस भी उसके साम्राज्य को हड़पने का प्रयास करने लगा। टर्की के यूरोपीय क्षेत्र में रूस की कुछ जातियां निवास करती थीं, उनको भी रूस ने उत्तेजित करने का प्रयास किया, किन्तु रूस के ओटोमन साम्राज्य में हस्तक्षेप को यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने पसन्द नहीं किया क्योंकि इससे उनके हितों पर आंच आती थी। उदाहरणार्थ, रूस का **ओटोमन साम्राज्य** (Ottoman Empire) पर प्रभाव बढ़ने से इंग्लैण्ड के भारतीय उपनिवेश को खतरा था, अतएव टर्की की समस्या, सम्पूर्ण यूरोप की समस्या बन गई और इसने सैकड़ों वर्षों तक यूरोप के राष्ट्रों के लिए परेशानियां उत्पन्न कीं।

टर्की साम्राज्य के निर्बल होते ही उसके अधीन छोटे-छोटे राज्यों—यूनान, सर्बिया, रूमानिया, बल्गारिया तथा स्लोवाकिया, आदि ने स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। 1789 ई. की फ्रांस की क्रान्ति ने समस्त यूरोपीय राष्ट्रों को राष्ट्रीय भावना से प्रेरित किया था। इस क्रान्ति का प्रभाव इन छोटे-छोटे राज्यों पर भी पड़ा और उनमें स्वतन्त्र होने की भावना और अधिक उग्र हो गई। **इन राज्यों के स्वतन्त्र होने के लिए हुए संघर्ष ने सम्पूर्ण 'यूरोप' को दो भागों में विभक्त कर दिया।** एक दल इन राज्यों के स्वतन्त्रता संग्राम का समर्थक था तथा दूसरा टर्की साम्राज्य को विघटन से बचाने का प्रयत्न कर रहा था। इस प्रकार इन दोनों दलों में जो संघर्ष हुआ उसे यूरोप के इतिहास में पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाता है। रूस के स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षा ने इसे एक गम्भीर समस्या का रूप दे दिया।

1 'तुर्की साम्राज्य की स्थापना 1299 ई. के लगभग उस्मान ने की थी, अतः इसको **उस्मानी साम्राज्य** (Ottoman Empire) भी कहते हैं।

पूरब की समस्या को लोगों ने विभिन्न पहलुओं से देखा और आलोचना की, अतः विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से उसकी परिभाषा की है। मैरियट का विचार है—**"पूरब की समस्या एक ऐसी समस्या भी जिसने यूरोपीय देशों में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न कर दिया।"**[1] हेज ने लिखा है कि उस समय यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष प्रमुख समस्या यह थी कि टर्की का नाम ही समाप्त कर दिया जाए अथवा उसके अस्तित्व को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा जाए और यदि नाम समाप्त करें तो उसका स्थान कौन ले।[2] रूस के राजनीतिज्ञों की दृष्टि में **'यह घृणित पूर्वी प्रश्न एक भयंकर गठिया रोग की भांति है, जो कभी तो पैरों को और कभी हाथ को पीड़ा देने लगता है।'**[3] लॉर्ड मार्ले के अनुसार, **"वह बदलती हुई न सुलझने वाली, पेचीदगी और जो उलझी हुई है, उसे सीधे-सादे शब्दों में पूर्वी समस्या कहते हैं, 19वीं शताब्दी में अनेक बार प्रमुखता में आई और इन्हें ही पूर्वी समस्या के पहलू कह सकते हैं।"** एक अन्य विद्वान के अनुसार, "पूर्वी समस्या का अर्थ टर्की के विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्धों के वर्णन तक ही सीमित है जिसके परिणामस्वरूप उसके अधीनस्थ राज्य स्वतन्त्र हो गए।"[4] एक अन्य इतिहासकार के शब्दों में, **"टर्की साम्राज्य के पतन से उत्पन्न वह पेचीदा परिस्थितियां जो बाल्कान की रियासतों के अतिरिक्त यूरोप की सभी शक्तियों में होने वाले उनके व्यक्तिगत उद्देश्यों के मतभेदों के कारण उत्पन्न हुईं।"**

टर्की साम्राज्य के अन्तर्गत बोस्निया, हर्जेगोविना, सर्बिया, बल्गारिया, अल्बानिया, रूमानिया तथा मिस्र के राज्य थे। बाल्कान प्रायद्वीप के केवल दो राज्यों को छोड़कर शेष सभी प्रान्तों पर टर्की का अधिकार था। इस प्रकार टर्की साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। टर्की से इंग्लैण्ड तथा रूस का बहुत समय पूर्व से व्यापार चल रहा था। टर्की की ईसाई रियासतों से भी यूरोपीय देशों का व्यापारिक सम्बन्ध पुराना था। यूरोप की बाल्कन रियासतों में बड़ी संख्या में ईसाई रहते थे, जो ग्रीक चर्च को मानते थे। रूस भी ग्रीक चर्च का अनुयायी था। अतएव वह अपने को ईसाई धर्म का संरक्षक समझता था। **ईसाइयों में भी दो सम्प्रदाय थे—एक, ग्रीक को मानने वाला तथा दूसरा, रोमन चर्च में विश्वास रखने वाला।** रोमन चर्च के अनुयायी रूस को छोड़कर सभी यूरोपीय राष्ट्र थे। इन दोनों चर्चों में भी झगड़ा होता रहता था। इसके अतिरिक्त टर्की के मुसलमान इन्हें परेशान करते रहते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्वी समस्या राजनीतिक होने के साथ-साथ धार्मिक स्वरूप भी लिए हुए थी।

टर्की साम्राज्य में रहने वाली स्लाव (Slav) जाति का रक्त सम्बन्ध रूस में निवास कर रही स्लाव जाति से था अतएव रूस इन रियासतों पर अपना अधिकार समझता था। रूस का जार (Czar) बड़ा कूटनीतिज्ञ था। वह जातीय पक्ष के साथ-साथ अपने राजनीतिक स्वार्थ को भी पूर्ण करना चाहता था। वह टर्की साम्राज्य के काला सागर के समीपवर्ती क्षेत्र पर अधिकार

---

1 "The Eastern Question was a problem which created mutual jealousy among European countries." —*J. A. R. Marriot*

2 "The basic importance of the Turkey before the continental states even between 1815 to 1870 was whether Turkey was to be wiped out of Europe or not and if it was to be wiped out what was to take her place.' —*Hayes*

3 "This damned Eastern Question is like the dangerous gout which sometimes take you in the leg and some times nips your hand."

4 "The Eastern Question means an account of the vaiours wars which were fought against Turkey as a result of which the different countries under its control became independent."

करना चाहता था ताकि वह भूमध्य सागर तक पहुंच सके। इंग्लैण्ड रूस का भूमध्य सागर में प्रवेश रोकना चाहता था ताकि उसके भारतीय उपनिवेश को खतरा उत्पन्न न हो।

टर्की को **यूरोप का बीमार आदमी** (A sick man of Europe) के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार बीमार व्यक्ति पूरी गृहस्थी को परेशान करता है उसी प्रकार यूरोप के इस बीमार आदमी टर्की ने सम्पूर्ण यूरोप में अशान्ति उत्पन्न कर दी थी। टर्की साम्राज्य से सर्वप्रथम स्वतन्त्र होने वाला राज्य सर्बिया था।

सर्बिया का विद्रोह
(REVOET OF SERBIA)

रूस द्वारा उत्साहित किए जाने पर युगोस्लाव एवं सर्व जाति के लोगों ने 1804 ई. में टर्की साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तुर्की की सेना विद्रोह दबाने में सफल न हो सकी। सर्बिया की सहायता रूस कर रहा था। अवसर का लाभ उठाते हुए विद्रोही नेता **कारा जार्ज** (Kara George) ने अपनी अलग सरकार की स्थापना कर ली। 1812 ई. में रूस तथा टर्की के मध्य सन्धि हुई जिसके अनुसार सर्बिया को स्वतन्त्र करने का वचन दिया गया। 1813 ई. में टर्की ने विद्रोहियों को परास्त किया, किन्तु 1815 ई. में पुनः आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और 1817 ई. में विद्रोहियों को अपने उद्देश्य में सफलता मिली। सुल्तान ने उन्हें स्थानीय स्वशासन की आज्ञा दे दी, आन्दोलन फिर भी चलता था। विवश होकर 1826 ई. में रूस ने हस्तक्षेप करते हुए टर्की के सुल्तान को बाध्य किया कि वह सर्बिया के साथ समझौता कर ले। अन्त में, 1829 ई. में सर्बिया को एक स्वतन्त्र राज्य स्वीकार करने की घोषणा की गई।

यूनान का विद्रोह[1]
(REVOET OF GREECE)

सर्बिया तो स्वतन्त्र हो गया, किन्तु उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए अन्य राज्यों ने भी स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया और इस प्रकार पूर्वी समस्या और अधिक जटिल हो गयी। सर्बिया के पश्चात् सर्वप्रथम विद्रोह करने वाला राज्य यूनान था। **उसने 1821 ई. में सिलैण्टी** (Ypsilanti) **नामक एक जोशीले युवक के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया।** इस विद्रोह का अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जागृत राष्ट्रीय भावना के अतिरिक्त उन पर अत्यधिक कर एवं अत्याचार का होना भी था। पूर्वजों के प्राचीन यश एवं पराक्रम ने उन्हें प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान की। यूनान में अनेक गुप्त संस्थाएं बनाई गईं जिनका प्रमुख उद्देश्य यूनान से तुर्कों को निकालकर अपने देश की स्वतन्त्रता स्थापित करना था।

सिलैण्टी (Ypsilanti) के नेतृत्व में यूनानियों ने मोरिया में विद्रोह कर तुर्की किसानों पर आक्रमण किया और अनेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया। तुर्कों ने तुरन्त उसका बदला कुस्तुन्तुनियां (Constantinople) के देशभक्त यूनानियों को फांसी पर लटका कर लिया। **'होली एलायन्स'** के अनुसार यूरोप के राष्ट्रों को क्रान्तिकारियों को कठोरता से दबाना चाहिए था, परन्तु यहां धार्मिक तथा जातीय प्रश्न भी था, अतः यूरोप के राष्ट्रों की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी। रूस दुविधा में पड़ा हुआ था, यूनानी चर्च का संरक्षक होने के नाते उसे यूनान का समर्थन करना चाहिए था, परन्तु आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री मैटरनिख रूस के

1 यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम के लिए देखिए अध्याय, 7।

हस्तक्षेप का विरोधी होने के कारण इंग्लैण्ड अथवा रूस यूनानियों की सहायता न कर सके। यूनानियों एवं तुर्कों में कई वर्षों तक युद्ध होते रहे। दोनों ने एक-दूसरे पर अत्याचार किए तथा हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। सत्य तो यह प्रतीत होता है कि मोरिया युद्ध का उद्देश्य एक-दूसरे को समाप्त करना था। यूनानियों का नारा था कि तुर्की न तो मोरिया में रहेगा और न संसार में। तुर्की ने सब ईसाइयों की हत्या करने की धमकी दी तो रूस का जार चुप न रह सका और उसने टर्की को चेतावनी दी।

तीन वर्षों (1821-1824) **तक यूनानी लोग टर्की का सफलतापूर्वक सामना करते रहे, किन्तु** 1824 **ई. में सुल्तान ने अपने अधीनस्थ राज्य मिस्र के शासक मेहमत अली** (Mehmet Ali) **के पुत्र इब्राहीम पाशा को अपनी सहायता के लिए बुलाया।** 1824 ई. में इब्राहीम ने क्रीट पर अधिकार कर लिया और अगले वर्ष मोरिया पहुंच गया। वहां उसने चारों ओर लूटमार, कत्लेआम और बरबादी मचा दी। यह अफवाह फैल गयी कि वह उन सब ग्रीसवासियों को जो उसके निर्दयी सैनिकों से बच गए हैं, दास बनाकर मिस्र ले जाना चाहता है। इंग्लैण्ड की जनता ने यूनानी विद्रोह का बड़े उत्साह के साथ समर्थन किया था, क्योंकि किसी सीमा तक प्राचीन यूनान की कला और साहित्य के प्रति अंग्रेजों की भावना इस समर्थन के लिए उत्तरदायी थी। कुछ धर्म का प्रभाव था तथा टर्की के प्रति घृणा का भी थोड़ा योग था। बायरन की वक्तृत्व शक्ति ने भी कुछ कम योगदान नहीं किया। न केवल इंग्लैण्ड वरन् दूसरे पश्चिमी राष्ट्रों और संयुक्त राज्य से हजारों की संख्या में स्वयं-सेवक यूनान गए। इब्राहीम के दुष्कृत्यों तथा इरादों के समाचारों ने यूनान के प्रति इंग्लैण्ड की जनता के प्रेम को और बढ़ा दिया। इसी मध्य यूनान में ही विद्रोहियों की स्थिति निराशाजनक हो गयी। 1826 ई. में एक वर्ष तक पराक्रम के साथ सामना करने के पश्चात् मिसोलोंधी का पतन हो गया। मिसोलोंधी के युद्ध में इंग्लैण्ड के स्वयं-सेवकों ने बहुत सहायता की थी।

आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री मैटरनिख यूनानियों को अव्यवस्था फैलाने वाले विद्रोही मानता था अर्थात् मैटरनिख, को यूनानियों से कोई सहानुभूति न थी। प्रशा ने सदैव के समान आस्ट्रिया का अनुसरण किया, किन्तु फ्रांस में यूनान के प्रति बहुत सहानुभूति थी और इंग्लैण्ड और रूस में तो यह सहानुभूति की भावनाएं किसी भी समय वहां की सरकार के नियन्त्रण के बाहर जा सकती थीं। कैनिंग ने 1823 ई. के मार्च में, यूनान को कानूनी मान्यता प्रदान की थी और उसके युद्ध करने के अधिकार को स्वीकार कर लिया था। पश्चिम की भांति पूर्व में भी विद्रोहियों ने समुद्र पर लूटमार प्रारम्भ कर दी थी, जिससे इंग्लैण्ड के व्यापार को बहुत हानि हो रही थी। वह विद्रोहियों के नाममात्र के शासक से कुछ हर्जाना भी वसूल नहीं कर सकता था। उन विद्रोहियों से जिनको इंग्लैण्ड नें कानूनी मान्यता नहीं दी थी कोई हर्जाना नहीं मांगा जा सकता था, अतएव कैनिंग को उनकी मान्यता प्रदान करने के लिए बाध्य होना पड़ा जैसा कि उसने अपनी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए कहा था, **'दस लाख की जनसंख्या को डाकू मानना असम्भव था और इस कारण यूनानियों के युद्ध करने के अधिकार को स्वीकार करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, एक ऐसे संघर्ष को जिसमें प्रारम्भ से ही दोनों ने घृणित क्रूरता से लड़ाई की थी सभ्यतापूर्ण युद्ध के नियमों के अधीन लाना आवश्यक था।'**

रूस ने कैनिंग की इस कार्यवाही के विरुद्ध रोष प्रकट किया क्योंकि उसने यह कार्य अकेले किया था। रूस ने प्रस्ताव रखा कि यूनान और सब द्वीपों को मोल्डेविया और वैलेशिया

की भांति तीन स्वायत्तशासी प्रान्तों में विभाजित कर देना चाहिए, जो नाममात्र के लिए टर्की के अधीन हों, परन्तु व्यावहारिक रूप से रूस के संरक्षण में रहें। इसके विस्तृत अंशों को निश्चित करने के लिए सेण्टपीटर्सबर्ग में एक सम्मेलन बुलाया गया। टर्की के शासक को जब इस प्रस्ताव के विषय में ज्ञात हुआ तो वह अत्यन्त नाराज हुआ। 1825 ई. में स्वयं यूनान के निवासियों ने इस प्रस्ताव के विरोध में कैनिंग को पत्र भेजा। उन्होंने शिकायत की थी कि उनको हाथ-पांव बांधकर टर्की के हाथों में सौंप देने की योजना थी। उन्होंने घोषणा की कि **'वे इन सिद्धान्तों पर आधारित किसी समझौते के बदले अपने अन्तिम सैनिक के दम तक लड़ना पसन्द करेंगे।'** अतः कैनिंग ने सर चार्ल्स बेगोट को सेण्टपीटर्सबर्ग के सम्मेलन से वापस बुला लिया, परन्तु फिर भी कैनिंग ने मध्यस्थता के एक प्रस्ताव को, जो साधारण रूप में लिखा गया था, अपनी स्वीकृति दे दी। मार्च 1825 ई. में यह प्रस्ताव दोनों पक्षों को भेजा गया। टर्की ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। यूनानियों ने निराश होकर एक बार फिर कैनिंग का सहारा लेना चाहा तथा इंग्लैण्ड से प्रार्थना की कि वह उनके लिए एक राजा भेजे। स्पष्ट था कि इंग्लैण्ड इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता था। क्योंकि इंग्लैण्ड उस समय हस्तक्षेप की नीति का विरोधी था।

1 दिसम्बर, 1825 को जार अलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गयी। उसका उत्तराधिकारी निकोलस बिल्कुल भिन्न स्वभाव का व्यक्ति था। निकोलस को ग्रीक लोगों के हितों की चिन्ता उतनी नहीं थी जितनी उसके पूर्वाधिकारी को थी। कैनिंग को रूस के साथ एक स्पष्ट समझौते की आवश्यकता महसूस हो रही थी क्योंकि रूसी राजदूत प्रिंस लीवन ने यह इच्छा प्रकट की थी कि कैनिंग इस प्रश्न को अपने हाथ में ले ले क्योंकि केवल ग्रेट ब्रिटेन ही एक ऐसा राज्य है जो ग्रीस के मामले में सन्तोषजनक समझौता कर सकता है।

इस हेतु कैनिंग ने ड्यूक ऑफ वैलिंगटन को एक विशेष मण्डल के साथ जार निकोलस को उसके राज्याभिषेक के लिए बधाई देने को सेण्टपीटर्सबर्ग भेजा। ड्यूक से कहा गया कि सम्भव हो तो वह रूस और तुर्की के झगड़ों का निपटारा करा दे और यूनान के प्रश्न पर रूस के साथ समझौता कर ले। इस मण्डल के प्रयत्नों से 4 अप्रैल, 1826 ई. को सेण्टपीटर्सबर्ग में एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार दोनों राज्यों ने यह फैसला किया कि वे अपने क्षेत्र को अथवा अपने प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करेंगे। उन्होंने टर्की के समक्ष मध्यस्थता करने का भी प्रस्ताव रखा। इस समझौते के अनुसार यूनान नाममात्र के लिए ही टर्की के अधीन रहता और स्वतन्त्र राज्य बन जाता। उसको अपना शासक चुनने का भी अधिकार तथा **'व्यापार और अन्तःकरण की पूर्ण स्वतन्त्रता'** होती।

यह सन्धि कैनिंग की राजनीतिक एवं वैलिंगटन की व्यक्तिगत विजय थी, किन्तु इससे टर्की की समस्या का समाधान न हो सका। जार निकोलस का टर्की के विषय में निश्चय था कि वह न तो टर्की की ओर से टालमटोल सहन करेगा और न ही यूरोपीय राज्यों का हस्तक्षेप सहेगा। उसने 17 मार्च, 1826 को अपनी शर्तें अन्तिम बार टर्की को भेज दी थीं, टर्की का सुल्तान उन दिनों **जेनीसेरी** (सुल्तान के अंगरक्षकों का एक दल) गदर के कारण संकट में था, अतः 7 अक्टूबर, 1826 को उसने एक एकरमेन की सन्धि द्वारा जार की शर्तें स्वीकार कर ली थीं, किन्तु सुल्तान ने मध्यस्थता के प्रस्ताव को स्वीकार करने का कोई विचार प्रकट नहीं किया, अतएव कैनिंग ने जार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि वे संयुक्त कार्यवाही के द्वारा सुल्तान को यह प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए बाध्य करें। दोनों राज्यों ने यह निश्चय

किया कि यदि सुल्तान जिद पर अड़ा रहा तो दोनों उसको यह सूचित कर देंगे कि वे **'यूनान का पक्ष लेंगे और पहले अवसर पर ही तुर्की के उन प्रदेशों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लेंगे जो उसके अधिकार को समाप्त करने में सफल होंगे।'**

आस्ट्रिया एवं प्रशा ने इंग्लैण्ड और रूस की इस कार्यवाही का विरोध किया, किन्तु फ्रांस ने समर्थन करते हुए जुलाई 1827 ई. में लन्दन की सन्धि कर ली। इसके अनुसार दोनों पक्षों के समक्ष **'तत्काल युद्ध विराम'** का प्रस्ताव रखा जाना था, किन्तु एक गुप्त धारा के अनुसार सुल्तान को यह स्पष्ट सूचना दी गई कि तीनों राज्य यूनानी लोगों की सहायता के लिए तत्काल कार्यवाही का विचार रखते हैं और यदि एक माह के अन्दर सुल्तान युद्ध-विराम स्वीकार नहीं करता अथवा यूनानी उसको कार्यान्वित करने से इन्कार करते हैं तो समझौता करने वाला शक्तिशाली राज्य दोनों अथवा एक पक्ष को यह स्पष्ट कर देंगे कि वे युद्ध-विराम के लिए वह सब उपाय काम में लाएंगे जो परिस्थितियों के देखते हुए बुद्धिमत्तापूर्ण होंगे, युद्ध में स्वयं भाग लिए बिना वे दोनों पक्षों के संघर्ष को रोकेंगे।

टर्की ने इस मध्यस्थता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसी मध्य एक महत्वपूर्ण घटना हुई। इंग्लैण्ड और फ्रांस के नौ-सैनिक बेड़े के एडमिरलों को सन्धि की शर्तों को ढंग से समझने में कठिनाई हुई कि उनको बल का प्रयोग करना है अथवा नहीं। एडमिरल एडवर्ड कोड्रिंग्टन ने कुस्तुन्तुनियां स्थित इंग्लैण्ड के राजदूत से परामर्श किया और उसके उत्तर से सन्तुष्ट होकर वह अपना बेड़ा मोरिया ले गया। इसी बीच एक विशाल मिस्री बेड़ा मोरिया पहुंच गया और नेवेरिनो की खाड़ी में टर्की के जहाजों में सम्मिलित हो गया। इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस के बेड़े उसके पीछे-पीछे पहुंच गए थे। इब्राहीम को सूचित कर दिया था कि उसके किसी भी जहाज को बन्दरगाह नहीं छोड़ने दिया जाएगा। इब्राहीम को शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि मित्र राज्यों के एडमिरल अपनी आज्ञा का पालन कराने के लिए कटिबद्ध हैं। टर्की के गोलाबारी प्रारम्भ करने पर मित्र-राष्ट्रों के जहाजी बेड़े ने उसका उत्तर दिया। 20 **अक्टूबर को सूर्यास्त से पूर्व ही टर्की और मिस्र के बेड़े का कही पता नहीं था और नेवेरिनो की खाड़ी उनके ध्वंसावशेषों से भरी पड़ी थी।**[1]

इस समय तक कैनिंग की मृत्यु हो चुकी थी और इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री वैलिंगटन बना था, उसे कैनिंग की नीति पसन्द न थी। टर्की ने नेवेरिनो के युद्ध को अत्यन्त घृणित समाचार बताया और इसके लिए क्षमा मांगने तथा क्षतिपूर्ति करने की मांग की। क्षमा मांगने के लिए कोई भी तैयार नहीं था, परन्तु 29 जनवरी, 1828 को इंग्लैण्ड के राजा ने इस युद्ध के लिए **'अत्यन्त खेद'** प्रकट किया। इस प्रकार पूर्वी समस्या के विषय में हस्तक्षेप करने के लिए रूस अकेला रह गया। मैरियट के शब्दों में, **'इस प्रकार कैनिंग ने वर्षों की कूटनीति के पश्चात् जो फल प्राप्त किए थे उनको उसके उत्तराधिकारियों ने कुछ महीनों में ही असावधानी से गंवा दिया।'**[2]

टर्की ने एकरमेन की सन्धि को भंग कर दिया और रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मई 1828 ई. में एक लाख पचास हजार सैनिकों ने सीमा को पार किया। तुर्की ने रूस का दृढ़ और सफल मुकाबला करके यूरोप को आश्चर्यचकित कर दिया, किन्तु जुलाई

1 'The Turko-Egyptian fleet had disappeared, the Bay of Navarino was covered wit their wrecks.' —*Marriot*

2 'Thus all the fruits of years of diplomacy on Canning's part were carelessly dissipated in a few months by his successors.' —*Marriot*

1829 ई. में डीविट्श्य (Diebitsch) ने कुशलतापूर्वक बाल्कन पहाड़ी को पार किया और एड्रियानोपिल के पास पहुंच गया। अब रूस कुस्तुन्तुनियां पर आक्रमण कर सकता था। अतः सुल्तान के सम्मुख **एड्रियानोपिल की सन्धि** (Treaty of Adrianople) की शर्तों को मानने के अतिरिक्त कोई रास्ता न था। सन्धि के अनुसार यूनान को स्वतन्त्र कर दिया गया। वैलिंगटन की जरा-सी भूल के कारण इस सन्धि का यश इंग्लैण्ड को न मिल सका और रूस का प्रभाव निकट-पूर्व पर छा गया।

मिस्र का विद्रोह
(REVOLT OF EGYPT)

अगले दशक में टर्की साम्राज्य की अखण्डता पर एक दूसरे राज्य की ओर से संकट आया। यूनान के विद्रोह को दबाने के लिए टर्की के सुल्तान ने शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी अपने अधीन मिस्र के शासक मेहमत अली को अपनी सहायता के लिए बुलाया था। यदि महाशक्तियों ने ऐसे समय हस्तक्षेप न किया होता तो मेहमत अली ने यूनानियों को नष्ट कर दिया होता। मेहमत अली अल्बानिया का निवासी था और सुल्तान की ओर से मिस्र पर शासन करता था। यूनान के विद्रोह के समय सुल्तान की सहायता करने के उपलक्ष्य में उसे क्रीट दिया गया। इससे मेहमत अली सन्तुष्ट न हुआ और 1831 ई. में अपने पुत्र इब्राहीम को उसने दमिश्क का पाशा (Pashalik of Damascus) बनाने की मांग की, किन्तु सुल्तान ने मेहमत अली की इस मांग को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर इब्राहीम ने सीरिया पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। मेहमत अली की शक्ति से घबराकर टर्की के सुल्तान ने महाशक्तियों से प्रार्थना की। इस समय इंग्लैण्ड 1832 ई. के सुधार अधिनियम के लिए होने वाले आन्दोलन में व्यस्त था। फ्रांस ने मिस्र के सम्बन्ध में नेपोलियन के दृष्टिकोण को ही अपनाया अर्थात् उसका विरोध करने से इन्कार कर दिया, परन्तु रूस चुप न रह सका और वह टर्की की सहायता करने को तैयार हो गया। रूस की मित्रता पर कुस्तुन्तुनियां में सन्देह किया जाता था, अतः सुल्तान उससे सहायता लेने में झिझक रहा था, किन्तु 1851 ई. में कोनीह में इब्राहीम ने टर्की को बुरी तरह परास्त किया और एशिया माइनर पर अधिकार कर कुस्तुन्तुनियां के लिए संकट उत्पन्न कर दिया। अतः सुल्तान को रूस से सहायता मांगने पर विवश होना पड़ा और तत्काल रूस की सेनाएं बास्फोरस के उत्तरी तट पर आ गईं, तब पश्चिमी शक्तियों ने हस्तक्षेप किया और 5 मई, 1833 ई. को क्यूतायेह (Kiutayeh) के सम्मेलन में सुल्तान को विवश किया कि वह सीरिया तथा अदाना को मेहमत अली को देकर उसकी शत्रुता समाप्त कर दे। इस प्रकार रूस की टर्की साम्राज्य में प्रवेश करने की अभिलाषा पूर्ण न हो सकी, परन्तु रूस ने टर्की के साथ अलग से उनकियर स्कैलैसी की सन्धि (Treaty of Unkier Skellessi) की, जिसके अनुसार टर्की के सुल्तान को व्यवहारतः रूस के सैनिक संरक्षण में रख दिया गया और काला सागर को रूसी झील में परिवर्तित कर दिया। भविष्य में रूस अथवा टर्की के युद्धपोतों के अतिरिक्त कोई भी युद्धपोत डार्डेनलीज (Dardanelles) की खाड़ी में प्रवेश नहीं कर सकता था। पामर्स्टन को इस सन्धि से बहुत आघात पहुंचा और उसने दृढ़ विचार किया कि इसकी पुनरावृत्ति न होने पाए। यद्यपि वह असफल रहा तथापि उसने सेण्ट पीटर्सबर्ग तथा कुस्तुन्तुनियां में सन्धि की शर्तों का विरोध किया।

इंग्लैण्ड और फ्रांस का विचार था कि उनकियार स्कैलैसी (Unkier Skelessi) की सन्धि में रूस को बहुत अधिक सुविधाएं दी गयी हैं। पामर्स्टन, टर्की तथा रूस के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहता था, किन्तु फ्रांस के रुख के विषय में वह निश्चित नहीं था क्योंकि स्पेन के सम्बन्ध में फ्रांस और इंग्लैण्ड में मतभेद चल रहा था अतः उसने बेहद सावधानीपूर्वक कार्य किया। 1834 ई. में पामर्स्टन ने स्पेन व पुर्तगाल से सन्धि की, फ्रांस भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गया, इस प्रकार 22 अप्रैल, 1834 ई. को इन **चार राष्ट्रों**—इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन व पुर्तगाल में हुई मैत्री सन्धि (Quadruple Alliance) पामर्स्टन की एक उपलब्धि थी। उसने स्वयं कहा था, **"मेरे सभी कार्यों में यही कार्य मुख्य था।"** इंग्लैण्ड द्वारा अकेले टर्की अथवा रूस के विरुद्ध कार्यवाही न करने का कारण रूस के जार द्वारा उनकियार स्कैलैसी सन्धि का समर्थन आस्ट्रिया एवं प्रशा से प्राप्त कर लेना था। पामर्स्टन के दुर्भाग्य से 1834 ई. में ही मोलबोर्न की सरकार का पतन हो गया जिसके कारण पामर्स्टन को भी अपना पद त्यागना पड़ा, परन्तु ड्यूक ऑफ वैलिंगटन ने भी उसी नीति का पालन किया। 1835 **ई. में पामर्स्टन पुनः शक्ति में गया। पामर्स्टन युद्ध करना चाहता था, किन्तु रूस ने कुस्तुन्तुनियां में अपनी प्रभुता दिखाने का प्रयत्न न किया था, अतः वह कोई युद्ध करना नहीं चाहता था, फलस्वरूप चार वर्षों तक युद्ध स्थगित रहा।**

मिस्र का दूसरा विद्रोह
(SECOND REVOLT OF EGYPT)

शीघ्र ही पूर्वी समस्या पुनः उत्पन्न हुई क्योंकि एक ओर तो मेहमत अली की व्यग्रतापूर्ण महत्वाकांक्षा झुलस गयी थी और दूसरी ओर सुल्तान ने अपनी प्रादेशिक एवं सम्मान सम्बन्धी हानि को पूरा करने का दृढ़ संकल्प कर रखा था। मॉल्टक की अधीनता में उसने अपनी सेना का पुनर्गठन कराया। 1838 ई. में मेहमत अली ने सुल्तान को कर देना बन्द कर दिया तथा अपने को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया। सुल्तान ने अपनी सेनाओं को फरात नदी के किनारे एकत्रित किया और इब्राहीम ने अलेप्पो (Aleppo) में उसका सामना किया। 24 जून, 1839 ई. को इब्राहीम ने निसीब (Nissib) में तुर्कों को पराजित किया और शीघ्र ही तुर्की नाविक बेड़ा मिस्री वाइसराय के पक्ष में हो गया। अपने साम्राज्य के भाग्य की इस संकट की घड़ी में वृद्ध सुल्तान महमूद की मृत्यु हो गई और उसका सोलह वर्षीय तरुण पुत्र अब्दुल मजीद उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। सम्पूर्ण तुर्की साम्राज्य मेहमत अली की दया पर निर्भर प्रतीत हो रहा था। फ्रांस की सरकार से मेहमत अली को आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही थी और उसको अत्यन्त महत्वाकांक्षापूर्ण योजनाओं के लिए प्रेरित कर रही थी, लेकिन महाशक्तियां टर्की साम्राज्य का पूर्ण विघटन करने के पक्ष में नहीं थी और न ही उनकी यह इच्छा थी कि टर्की साम्राज्य पर अब्दुल मजीद के स्थान पर मेहमत अली सुल्तान बने।

पामर्स्टन को फ्रांस के शासक लुई फिलिप पर विश्वास न था। पामर्स्टन उसे बिल्कुल पसन्द भी नहीं करता था। पामर्स्टन को यह पसन्द नहीं था कि मिस्र पर फ्रांस का प्रभुत्व जम जाए, अतः उसने इस विषय में दृढ़ नीति अपनाने का निश्चय किया, यद्यपि उसके मन्त्रिमण्डल के साथी फ्रांस के साथ पूर्वी समस्या के प्रश्न पर सम्बन्ध खराब करने के पक्ष में न थे। पामर्स्टन भी सम्बन्ध कटु बनाना नहीं चाहता था, परन्तु वह फ्रांस से भयभीत भी नहीं था। बुलवर

(Bulwer) को उसने 1 सितम्बर, 1839 ई. को लिखा, "**यह स्पष्ट है कि फ्रांसीसी सरकार अपनी इच्छा से मेहमत अली को दबाने के लिए कोई भी पग नहीं उठाएगी......हम उनके साथ**
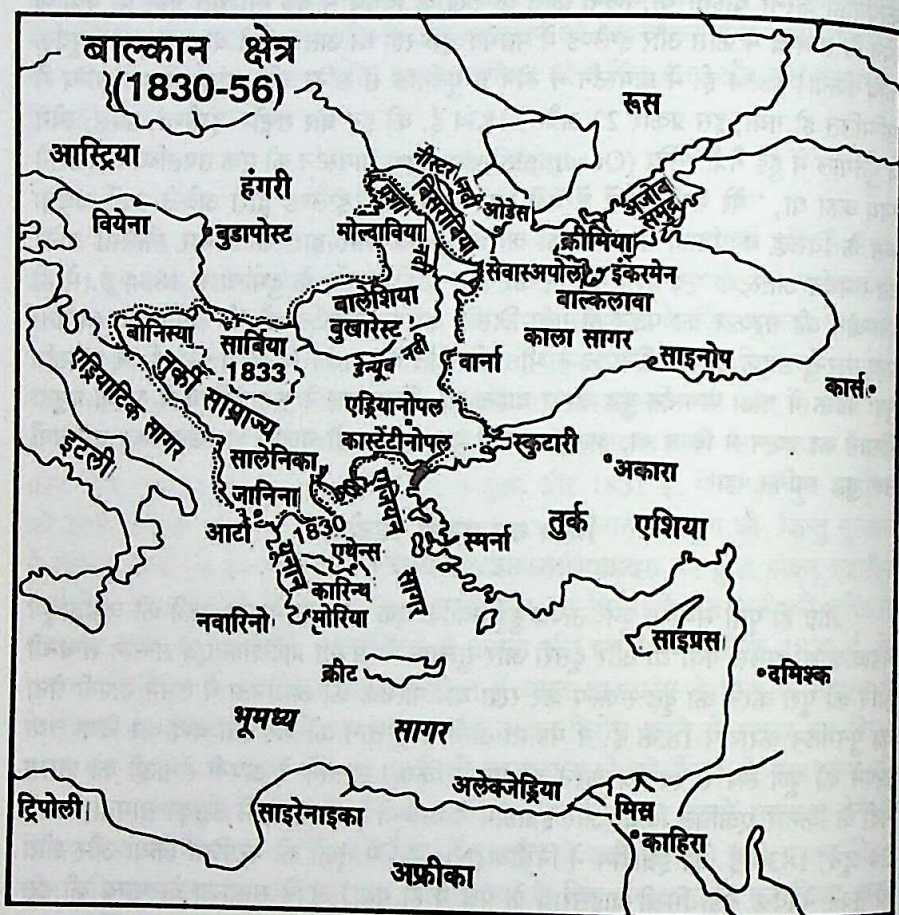
मधुर सम्बन्ध बनाए रखने के तो इच्छुक हैं, किन्तु उनको बर्दाश्त करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं। इसलिए उनको तीन मार्गों में से किसी एक को चुनना होगा—वे हमारे साथ आगे बढ़ें और उन वचनों की सच्चाई के साथ पूरा करें जो उन्होंने हमको तथा यूरोप को दिए थे अथवा अलग खड़े रहें और अपनी तात्कालिक उद्घोषणाओं की पूर्ति न करें अथवा वे सीधे मेहमत अली का साथ दें और हमको तथा अन्य शक्तियों को, जो हमारा साथ दें, उस कार्य को करने से रोकने के लिए शक्ति का प्रयोग करें जिसको करना स्वयं फ्रांस के अपने वास्तविक हितों में है। फ्रांस को हमारी सहायता करना आवश्यक है न कि वह उसको किए जाने से रोके।'

तुर्की के भविष्य के विषय में पामर्स्टन निराश नहीं था। उसका मानना था, '**तुर्की साम्राज्य के पतन के विषय में और उसके मृत होने के विषय में या नीरस होने के विषय में हम जो कुछ सुनते हैं वह सब कोरी मूर्खता है।'** यदि यूरोपीय संरक्षण में उसको शान्ति के दस वर्ष प्राप्त हो जाएं और उसमें आन्तरिक सुधार हो जाएं तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह पुनः एक

सम्मानित शक्ति न बन सके। उस समय दो बातें आवश्यक थीं—मेहमत अली को उसके मूल देश को लौटने के लिए विवश किया जाए और टर्की को मिलने वाला संरक्षण यूरोप का हो न कि केवल रूस का।

जब पामर्स्टन को ज्ञात हो गया कि फ्रांस मेहमत अली का ही पक्ष लेगा तो उसने फ्रांस के साथ सम्बन्ध तोड़ने और महान् शक्तियों के सम्मुख यह मामला प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। उसका उद्देश्य था कि इस सम्मेलन में शक्तियों को तब तक सीरिया की नाकाबन्दी के लिए तैयार किया जाए जब तक मेहमत अली टर्की के जहाजी बेड़े को न सौंप दे। पामर्स्टन इस प्रश्न को सम्मेलन द्वारा तय कराने के पक्ष में इसलिए था कि ऐसी स्थिति में रूस और टर्की को 1833 ई. में की गयी सन्धि के अनुसार संगठित होने का अवसर न मिल सके। रूस भी झगड़े में पड़ना नहीं चाहता था। फ्रांस के उदासीनतापूर्ण व्यवहार के पश्चात् भी जार ने इब्राहीम को रोकने के लिए इंग्लैण्ड को सहयोग देने की इच्छा प्रकट की। रूस से इस सहयोगपूर्ण सूचना के प्राप्त होने पर पामर्स्टन ने फ्रांस को लिखा कि फ्रांस उनका साथ दे अथवा नहीं, ब्रिटिश सरकार रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के साथ मिलकर कार्यवाही करेगी, परन्तु इस बात पर विशेष बल दिया जाएगा कि फ्रांस किसी भी पक्ष की ओर से लड़ने वाला राज्य नहीं है।

इसी समय पामर्स्टन को समाचार मिला कि फ्रांस के राजा ने कुछ विदेशी राजाओं से यह कहा है कि फ्रांस मेहमत अली की रक्षा करेगा क्योंकि कुछ ही समय में उसकी इंग्लैण्ड से लड़ाई होगी और उस समय उसे भूमध्य सागर में मेहमत अली के जहाजी बेड़े के सहयोग की आवश्यकता होगी। इसी समय मार्च, 1840 ई. में थीयर्स (Thiers) फ्रांस में शक्ति में आया। यह इंग्लैण्ड से मधुर सम्बन्ध बनाए रखना चाहता था और शक्तियों के सम्मेलन में सदस्यता को बनाए रखना उसकी इच्छा थी, लेकिन साथ-साथ मेहमत अली के लिए सीरिया सुरक्षित रखने का आग्रह करना चाहता था। यह एक असम्भव कार्य था क्योंकि पामर्स्टन हर हालत में मेहमत अली की शक्ति क्षीण करना चाहता था और थीयर्स का इसके लिए सहमत होना सम्भव न था, इस प्रकार गतिरोध उत्पन्न हो गया।

15 जुलाई, 1840 ई. को लन्दन में शक्तियों के प्रतिनिधियों ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसके परिणामस्वरूप मेहमत अली को आनुवंशिक गवर्नर बना दिया गया तथा एक्रे (Acre) व दक्षिणी सीरिया उसे जन्म भर के लिए दे दिए गए, किन्तु यह शर्त थी कि यदि मेहमत अली दस दिन के अन्दर इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे तो इसका अन्तिम भाग वापस ले लिया जाए और बीस दिन के अन्दर स्वीकार न करे तो इस प्रस्ताव को वापस ले लिया जाए। मेहमत अली ने इसे अस्वीकार कर दिया तो चारों राष्ट्रों ने मेहमत अली पर दबाव डालने के लिए नाकाबन्दी (Blockade) का निश्चय किया। **उन्होंने अपने सामूहिक प्रयत्नों से मेहमत अली को कुस्तुन्तुनियां की ओर बढ़ने से रोकने का भी निर्णय किया और पोर्ट को चारों शक्तियों के संरक्षण में ले लिया गया। इस प्रकार रूस और टर्की के मध्य हुई सन्धि का उल्लंघन हो गया।**

इस सन्धि ने पेरिस में क्रोध की लहर दौड़ा दी। यूरोपीय राष्ट्रों की इच्छा प्रत्यक्षतः मेहमत पर, परन्तु अप्रत्यक्षतः लुई फिलिप पर थोपी जानी थी। थीयर्स, इस बात को मानने के लिए तैयार न था। युद्ध की तैयारियां होने लगीं। थल सेना को सुदृढ़ किया गया तथा पेरिस की

मोर्चाबन्दी की गयी। इस समय ऐसा लग रहा था कि एक यूरोपीय संघर्ष अवश्य होगा, किन्तु पामर्स्टन अपने निर्णय से विचलित न हुआ क्योंकि वह लुई फिलिप को अच्छी प्रकार से जानता था और विश्वास था कि लुई फिलिप ऐसा व्यक्ति नहीं है जो बिना किसी पर्याप्त कारण के पागल हो जाए[1] इसलिए उसने बुलवर को आदेश दिया कि वह थीयर्स को अत्यन्त मैत्रीपूर्ण एवं अप्रसन्न न करने वाले तरीके से यह बता दे कि **'यदि फ्रांस चुनौती देता है तो हम उसे स्वीकार करेंगे।'**[2] पामर्स्टन का अनुमान बिल्कुल सही था। लुई फिलिप इस बात को भली प्रकार से जानता था कि यूरोपीय युद्ध से फ्रांस की स्थिति अत्यन्त जटिल हो जाएगी, अतः जोशीले थीयर्स को त्याग-पत्र देने के लिए विवश किया गया और उसके स्थान पर शान्तिप्रिय गीजो (Guizot) नियुक्त हुआ।

मेहमत अली द्वारा प्रस्ताव को ठुकरा दिए जाने के परिणामस्वरूप शक्तियों ने अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी। एक ब्रिटिश जहाजी बेड़े ने आस्ट्रिया के लघु युद्धपोतों की सहायता से बेरुत (Beyrout) तथा सिडन (Sidon) पर बम वर्षा की और इब्राहीम को सीरिया त्यागने पर विवश किया। सर चार्ल्स नेपियर ने अक्रे का दुर्ग जीत लिया जो कि अब तक दुर्लभ समझा जाता था। नेपियर का जहाजी बेड़ा अलैग्जेण्ड्रिया तक पहुंच गया और मेहमत अली को टर्की का जहाजी बेड़ा लौटाने तथा चतुर्मुखी संघ की शर्तें स्वीकार करने के लिए विवश किया। इस सामान्य व्यवस्था में भाग लेने के लिए फ्रांस को भी बुलाया गया और 13 जुलाई, 1841 ई. को इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया एवं फ्रांस के मध्य लन्दन की सन्धि सम्पन्न हुई जिसके अनुसार सीरिया तथा अरब सुल्तान को दे दिया गया तथा सुल्तान की अधीनता में मेहमत अली को वंशानुगत पाशा के पद पर स्थायी कर दिया गया। टर्की में जब तक शान्ति रहे तब तक बास्फोरस (Bosphorus) तथा डार्डेनेलीज (Dardancelles) के समुद्र में सभी विदेशी लड़ाकू पोतों का जाना निषिद्ध कर दिया गया। मैरियट ने लिखा है कि **लन्दन की सन्धियां पामर्स्टन की विशिष्ट सफलता थी। इसके द्वारा उनकियार स्कैलैसी की सन्धि टूट गयी, टर्की को मेहमत अली की शत्रुता एवं रूस की शत्रुता से मुक्त कराया, फ्रांस को मौन स्वीकृति देनी पड़ी और इंग्लैण्ड की इच्छा को यूरोप पर थोपा गया।**

क्रीमिया का युद्ध, 1854-56
(THE CRIMEAN WAR)

अठारहवीं शताब्दी से पूर्वी समस्या विकट एवं गम्भीर रूप धारण करने लगी थी। इस समस्या के उत्पन्न होने के तीन प्रमुख कारण थे। पहला कारण, टर्की में घटती हुई शक्ति का होना था, दूसरा कारण बाल्कन प्रदेश में छोटे-छोटे अनेक ईसाई राज्यों की स्थापना हो चुकी थी और तीसरा कारण प्रथम दोनों कारणों का यूरोप की शक्तियों पर प्रभाव पड़ना तथा उनका इस समस्या में भाग लेना था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही रूस की आंखें कुस्तुन्तुनियां पर थीं और वह काला सागर (Black Sea) के दक्षिणी तट की ओर बढ़ता जा रहा था। उसके इस कार्य की यूरोप के अन्य राष्ट्रों पर हुई प्रतिक्रिया के विषय में ग्रांट एण्ड टेम्परले ने लिखा है, **''रूस के इस कार्य को आस्ट्रिया सन्देह की दृष्टि से देखता था। एक बार जब रूस**

1 'Palmerston did not believe that Louis Phillippe was the man to run amuck, especially without any adequate motive.'

2 'If France throws down the guantlet was shall not refuse not refuse to pick it up.' —*Palmerston*

टर्की के साथ युद्ध करने में लगा हुआ था तो आस्ट्रिया ने शिकारी कुत्ते की तरह उछलकर आक्रमण करने की धमकी दी। इंग्लैण्ड दूर से ही देख रहा था तथा उसने निश्चय कर लिया था कि वह पूर्वी भूमध्य सागर के व्यापार एवं कुस्तुन्तुनियां की रक्षा करेगा। यहां सदैव झगड़ा उस समय आरम्भ होता था जब बाल्कन प्रदेश के छोटे-छोटे राज्य टर्की के विरुद्ध अपने को स्वतन्त्र घोषित करने का प्रयत्न करते और उस समय महान् शक्तियां अपने प्रभुत्व को ठीक करने अथवा बढ़ाने के विचार से उनके मामलों में हस्तक्षेप करतीं।''

यद्यपि अनेक समय पूर्वी समस्या को लेकर एक यूरोपीय युद्ध होता दिखायी दिया, किन्तु 1854 ई. से पूर्व ऐसा होना सम्भव न हुआ, परन्तु 1854 ई. में काफी प्रयत्नों के उपरान्त भी युद्ध को टाला न जा सका और युद्ध प्रारम्भ हो ही गया, इस युद्ध को **क्रीमिया युद्ध** (Crimean War) के नाम से जाना जाता है। ग्रांट एण्ड टेम्परले के अनुसार यूरोप के उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में क्रीमिया का युद्ध एक विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि उसने पूर्वी समस्या को पुनः प्रारम्भ कर दिया। इस युद्ध में लाखों व्यक्ति मारे गए और अपार धनराशि खर्च हुई, किन्तु यूरोप के राष्ट्रों को इससे कोई लाभ न हुआ।

युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE WAR)

इस युद्ध के निम्न कारण थे—

(क) टर्की के सुल्तान की अयोग्यता—टर्की का सुल्तान एक अयोग्य व्यक्ति था, अतः टर्की जो कि पहले से कमजोर था और उसकी दुर्बलता ही क्रीमिया के युद्ध का एक कारण बनी। सुल्तान का शासन-प्रबन्ध सुदृढ़ न था तथा उसकी धार्मिक नीति अपने साम्राज्य के अन्दर रहने वाले विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए अनुदार तथा अत्याचारपूर्ण थी। जनता उसके शासन से दुखी थी। सुल्तान की निरन्तर घटती शक्ति के कारण उस समय यह खुलेआम वाद-विवाद होने लगा था कि उसके विस्तृत साम्राज्य जिसमें बाल्कन के अतिरिक्त मिस्र, सीरिया तथा पेलेस्टाइन भी थे, पर कौन अधिकार करे।[1]

(ख) जार निकोलस प्रथम का स्वार्थ—रूस का जार निकोलस प्रथम एक महान् महत्वाकांक्षी सम्राट था, वह टर्की की दुर्बलता से लाभ उठाकर उस पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। रूस का जार यह भी जानता था कि यूरोप के राष्ट्र अकेले उसे टर्की पर अधिकार न करने देंगे। जार को यूरोप में इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी राज्य की चिन्ता न थी अतएव उसने इंग्लैण्ड को भी टर्की साम्राज्य का कुछ भाग देकर शेष अपने अधीन करना चाहा। 1844 ई. में वह स्वयं इंग्लैण्ड पहुंचा और इंग्लैण्ड को टर्की के विभाजन की सलाह दी। उसने कहा कि टर्की साम्राज्य अधिक दिनों तक चल नहीं सकता। यदि उसे सहारा भी दिया जाए तो भी उसकी हालत नहीं सुधरेगी।[2] उसने कहा, **'एक बीमार आदमी हमारे हाथों में है, मैं स्पष्ट शब्दों में आपसे कहना चाहता हूं कि यदि सभी प्रबन्ध पूर्ण होने से पूर्व वह हमारे हाथों**

1 "It was due to the obvious weakness of the Turkish Empire. The Sultan's power had for long been declining, and the question which has being more or less openly discussed was as to who should divide up his territories which included, besides the Balkans, Egypt, Syria and Palestine." —*Warner-Marten-Muir*

2 "The bear is dying. You may give him musk but even musk will not long keep him alive. —*Czar Nicholas*

से निकल गया तो यह एक दुर्भाग्य होगा। जार ने इंग्लैण्ड को टर्की साम्राज्य के क्रीट, साइप्रस तथा मिस्र देकर शेष भाग अपने अधिकार में रखना चाहा, किन्तु इंग्लैण्ड टर्की के अस्तित्व को मिटाने के पक्ष में न था, अतः निकोलस को निराश होकर लौटना पड़ा। महारानी विक्टोरिया ने इस युद्ध का कारण एक व्यक्ति (जार निकोलस) और उसके सेवकों की स्वार्थपरता और महत्वाकांक्षा'[1] को बताया था।

(ग) नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा—नेपोलियन तृतीय जो कि नेपोलियन महान् का भतीजा था, फ्रांस का शासक था। अपने चाचा के समान स्वयं प्रसिद्ध होना चाहता था अतएव उसने टर्की के मामले में रुचि लेना प्रारम्भ किया। 1774 ई. की एक सन्धि के अनुसार टर्की ने फ्रांस को रोमन भिक्षुओं की संरक्षणता सौंप दी। उधर टर्की ने दूसरी सन्धि द्वारा रूस को ग्रीक चर्च का संरक्षक बना दिया। इस प्रकार फ्रांस और रूस दोनों टर्की पर अधिकार करने के प्रतिद्वन्द्वी थे। इसके अतिरिक्त भी नेपोलियन तृतीय व रूस के सम्बन्ध कटु होने का एक कारण था। जार निकोलस नेपोलियन तृतीय को फ्रांस का असली शासक नहीं समझता था तथा उसके लिए **प्रिय भाई'** (My dear brother) के सम्बोधन के स्थान पर **मेरे प्रिय मित्र** (My dear friend) कहता था जिसको नेपोलियन ने अपना अपमान समझा और वह जार निकोलस को नीचा दिखाने का अवसर ढूंढने लगा। अतएव किंगस्लेक (Kingslake) ने उसे क्रीमिया के युद्ध का उत्तरदायी बताया है।

(घ) फ्रांस और इंग्लैण्ड की मित्रता—अंग्रेज नेपोलियन तृतीय एवं जार निकोलस दोनों को ही इंग्लैण्ड के लिए खतरा समझते थे क्योंकि दोनों ही टर्की साम्राज्य पर अधिकार करना चाहते थे जो कि इंग्लैण्ड के लिए बहुत हानिकारक होता, विशेषकर रूस का टर्की पर अधिकार इंग्लैण्ड के भारतीय उपनिवेश के लिए बेहद संकट उत्पन्न कर देता जिससे अंग्रेजों ने फ्रांस से मित्रता कर ली, अतः रूस अब युद्ध की तैयारी करने लगा।

(ङ) धार्मिक कारण—फिफे (Fyffe) ने इस युद्ध का कारण पवित्र स्थानों के संरक्षण के प्रश्न को बताया है। उसने लिखा है—**'दो धार्मिक मतावलम्बियों के दरवाजे, चाबियां, लैम्पों आदि के जो झगड़े एक अनुभवी स्टेट मैनेजर के द्वारा थोड़े-से समय में इस प्रकार सुलझाए जा सकते थे कि दोनों दल सन्तुष्ट हो जाएं वे एक-दूसरे पर विजय पाने के इच्छुक कूटनीतिज्ञों के हाथ पड़कर इतने लम्बे-चौड़े हो गए कि यूरोप की शान्ति खतरे में पड़ गई।'** थीयर्स ने भी इस युद्ध का कारण इसी प्रकार का बताया है।

रूस द्वारा धार्मिक कारणों के बहाने टर्की को हथियाने की योजना, इंग्लैण्ड तथा फ्रांस समझ गए।[2] अतः टर्की के सुल्तान पर दबाव डालकर नेपोलियन तृतीय ने यरूशलम की ताला-कुंजी रोमन पादरियों को दिलवा दी। रूस इस बात पर क्रुद्ध हो उठा क्योंकि वह यूनानी चर्च का संरक्षक था और वे भी यरूशलम पर अधिकार करना चाहते तें। अतः निकोलस ने टर्की के सुल्तान को एक पत्र भेजा कि वह पवित्र स्थान यूनानियों को लौटा दे तथा रूस को यूनानी ईसाइयों का संरक्षक माने ले। टर्की के सुल्तान ने इसे अस्वीकार कर दिया। रूस ने प्रिंस मैंश्चीकोफ (Prince Menschicoff) को अपना राजदूत बनाकर टर्की भेजा, परन्तु

1 "Queen Victoria ascribed it to the 'selfishness and ambition of one man (the Czar Nicholas) and his servants."

2 "France and Great Britain saw in this the true motive of Russian policy, they believed that Russia aimed at political Balkans." —*Warner-Marten-Muir*

ब्रिटिश राजदूत **स्टेटफोर्ड-डि-रेडक्लिफ** (Startford-De-Redcliff) के समक्ष सफल न हो सका और निराश होकर रूस लौट गया। अतः रूस युद्ध की तैयारी करने लगा।

रूस द्वारा मोल्डाविया व वेलेशिया पर अधिकार—क्रान्ति द्वारा जब रूस टर्की से अपनी बात स्वीकार न करा सका तो उसने शक्ति का सहारा लिया। जार निकोलस ने बिना युद्ध की घोषणा किए डेन्यूब नदी के किनारे के दो प्रान्तों मोल्डाविया (Moldavia) तथा वेलेशिया (Wallachia) पर अधिकार कर लिया। रूस ने यह कदम इस गलतफहमी में उठाया था कि इंग्लैण्ड इस विषय में हस्तक्षेप नहीं करेगा। ऐसा सोचना जार निकोलस की भारी भूल थी। रूस की इस कार्यवाही पर इंग्लैण्ड और फ्रांस हतप्रभ रह गए और आस्ट्रिया तो युद्ध करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठा। आस्ट्रिया की सेनाएं सर्बिया की सीमा पर जमा हो गयीं, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी अपनी सेनाएं काला सागर की ओर रवाना कर दीं।

युद्ध टालने का प्रयास

इसी मध्य, मध्य शक्तियों ने अवश्यम्भावी युद्ध टालने का प्रयास किया। जुलाई में इंग्लैण्ड, फ्रांस, आस्ट्रिया और प्रंशा के प्रतिनिधियों की सभा विएना में हुई तथा परस्पर सहमत होकर एक 'पत्र' तैयार किया, उनको आशा थी कि यह 'पत्र' रूस और टर्की दोनों को सन्तुष्ट कर देगा। इस पत्र में यह बात पुनः स्वीकार की गयी थी कि **'ईसाई धर्म के संरक्षण के सम्बन्ध में कैनार्डजी** (Kainardji) **और एड्रिआनोपिल की सन्धियों का पालन सुल्तान के द्वारा पूर्ण रूप से किया जाएगा।'** इस पत्र को रूस ने तो स्वीकार कर लिया, परन्तु टर्की ने इस पत्र की अस्पष्टता को देखकर उसमें संशोधन की मांग की। ऊपर उद्धृत शब्दों के स्थान पर सुल्तान ने निम्न शब्दों को प्रस्तावित किया, 'कैनार्डजी की सन्धि की शर्तों का जोकि एड्रियानोपिल की सन्धि से स्थायी हो गयी थीं और जहां तक उनका सम्बन्ध महान् सुल्तान के द्वारा ईसाई धर्म के संरक्षण से है, सुल्तान के द्वारा पालन किया जाएगा।' इस संशोधन ने रूस को इस पत्र को अस्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

यद्यपि टर्की ने 'वियना-पत्र' को अस्वीकार किया था, अतः इंग्लैण्ड तथा फ्रांस को रूस का पक्ष लेना चाहिए था, किन्तु इंग्लैण्ड अपने हितों को किसी प्रकार की हानि पहुंचाना नहीं चाहता था। इंग्लैण्ड की जनता रूस के विरुद्ध युद्ध की मांग कर रही थी। जॉन रसल ने भी घोषणा की, **'यदि हम डेन्यूब के किनारे रूस को न रोकेंगे तो हमें उसे सिन्धु नदी के किनारे रोकना होगा।'**[1] रूस नहीं चाहता कि इंग्लैण्ड युद्ध में भाग ले, अतः उसने एक बार पुनः युद्ध से दूर करने के उद्देश्य से ब्रिटिश राजदूत से निम्न शब्द कहे—**'रूस तथा इंग्लैण्ड के हित टर्की के समान हैं। मैं कुस्तुन्तुनियां चाहता हूं और आपको मिस्र तथा क्रीट मिलेगा। टर्की की दशा शोचनीय है, उसका पतन निश्चित है और यदि वह गिरा तो उठ न सकेगा। इसलिए मैं आपके सामने प्रस्ताव रखता हूं कि क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि बजाय भयानक उलझन तथा यूरोपियन युद्ध में फंसने के लिए जो अवश्यम्भावी है, हम इस मामले को पहले ही तय कर लें।'** इंग्लैण्ड ने एक बार फिर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

1 "If we do not stop Russia on the Danube, we shall have to stop her on the Indus."
—*Russell*

युद्ध प्रारम्भ

टर्की के सुल्तान ने रूस से मांग की कि वह उसके प्रान्तों को जिन पर उसने अधिकार कर लिया है, खाली कर दे, परन्तु रूस ने जब तक बोसेका खाड़ी में संयुक्त जहाजी बेड़ा उपस्थित था अपनी सेनाओं को वहां से हटाने से इन्कार कर दिया। पामर्स्टन ने रूस की इस धृष्टता पर कहा, **'यह एक डाकू है जो कहता है कि जब तक पुलिस वाला नहीं चला जाएगा वह तब तक घर के बाहर नहीं जाएगा।'**[1] रूस द्वारा इन्कार करने पर टर्की ने युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में एक ओर रूस अकेला और दूसरी ओर इंग्लैण्ड, फ्रांस, प्रशा, टर्की तथा आस्ट्रिया थे।

युद्ध की प्रमुख घटनाएं

इस युद्ध में निम्नलिखित प्रमुख घटनाएं हुईं—

(i) **सिनप हत्याकाण्ड** (Sinope Massacre)—टर्की की सेना ने अनेक स्थानों पर रूस को पराजय दी, परन्तु सिनप के स्थान पर रूस ने टर्की की सेनाओं को बुरी तरह परास्त किया।

(ii) **रूस द्वारा मोल्डाविया तथा वेलेशिया खाली करना** (Moldavia and Wallachia Vacated)—सिनप की घटना से आस्ट्रिया युद्ध की घोषणा करने के लिए विवश हो गया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की सेनाएं भी युद्ध-क्षेत्र में पहुंच गयीं। युद्ध की भयंकरता देखकर रूस ने मोल्डाविया तथा वेलेशिया खाली कर दिए।

(iii) **सिबास्टपोल का घेरा** (Sebastopol)—यद्यपि रूस ने मोल्डाविया एवं वेलेशिया खाली कर दिए तथापि मित्र-राष्ट्र रूस की शक्ति कुचलना चाहते थे, अतएव उन्होंने युद्ध बन्द न किया और रूस के सैनिक अड्डे सिबास्टपोल को अपने अधिकार में लेना चाहा। रूस की सेना ने आल्मा में मित्र-राष्ट्रों की सेना का सामना किया, भयानक युद्ध के पश्चात् रूसी सेना पीछे हट गई। मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं ने सिबास्टपोल को 11 महीनों तक घेरे रखा।

(iv) **बलकलावा एवं इन्करमान का युद्ध** (Balaclava and Inkerman War)—बलकलावा, ब्रिटिश सेना का अड्डा था, रूस ने उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु उसे सफलता न मिली। अंग्रेजी टुकड़ी लाइट ब्रिगेड के कारनामे इस युद्ध के इतिहास में प्रसिद्ध हो गए। इसके बाद हुए इन्करमान के युद्ध में भी रूस को हारना पड़ा।

सिबास्टपोल के घेरे में अंग्रेजी सेनाओं को बहुत कष्ट सहना पड़ा। रूस के मित्र बर्फ ने अंग्रेजी सेनाओं को संकट में डाल दिया। हजारों सैनिक ठण्ड से ठिठुर कर मृत्यु के ग्रास बन गए। यातायात, खाद्यान्न व अस्त्र-शस्त्र पूर्ति की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। एबर्डीन मन्त्रिमण्डल की अत्यधिक कटु आलोचना हुई, अतः उसे त्यागपत्र देना पड़ा। पामर्स्टन प्रधानमन्त्री बना उसने सेना का प्रबन्ध ठीक किया। फ्लोरेंस नाइटिंगेल, जिसे **'लेडी ऑफ दी लैम्प'** (Lady of the Lamp) भी कहा जाता है, की सेवाओं ने मित्र-राष्ट्रों में नयी जीवनधारा प्रवाहित की। उसके अस्पताल में कार्य करने से पूर्व एक हजार भर्ती सैनिकों में से लगभग तीन चार सौ सैनिकों की मृत्यु होती थी, किन्तु उसके कार्यकाल में मरने वालों की संख्या घटकर सिर्फ 22 रह गयी।

1 **"It is the robber who declares that he will not leave the house unitl the policeman shall have retired from the courtyard."** —*Palmerston*

(v) **युद्ध समाप्त**—पामर्स्टन की योग्यता तथा जार निकोलस की मृत्यु ने रूस की शक्ति पर भारी आघात किया। नया जार इतना योग्य न था कि वह पामर्स्टन के साहस तथा उत्साह के समक्ष ठहर सके, अतएव मित्र-राष्ट्रों ने 1855 ई. में दुर्गम सिबास्टपोल को जीत लिया, फलस्वरूप विवश होकर रूस को सन्धि करनी पड़ी और इस प्रकार क्रीमिया का युद्ध समाप्त हुआ।

(ख) पेरिस की सन्धि—पेरिस में नेपोलियन तृतीय की अध्यक्षता में मित्र-राष्ट्रों का सम्मेलन आयोजित किया गया जहां रूस के साथ सन्धि (Treaty of Paris) में निम्न शर्तें निश्चित हुईं :

(i) रूस तथा टर्की एक-दूसरे द्वारा जीते हुए क्षेत्र लौटा देंगे।

(ii) डेन्यूब नदी सब यूरोपीय राष्ट्रों के प्रयोग के लिए छोड़ दी गई।

(iii) व्यापार के लिए काला सागर (black sea) भी सभी यूरोपीय राष्ट्रों के लिए छोड़ दिया गया। रूस काला सागर में जहाजों पर अपना झण्डा नहीं लगा सकता था।

(iv) काला सागर को सैनिक दृष्टिकोण से पूर्णतया तथा अलग रखना था, कोई भी राष्ट्र वहां फौजी अड्डा नहीं बना सकता था और न जहाजी बेड़ा रखने की अनुमति थी।

(v) टर्की को भी यूरोपीय संगठन (Concert of Europe) का सदस्य बना लिया गया तथा उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी सभी यूरोपीय राष्ट्रों पर डाली गई।

(vi) टर्की के सुल्तान ने अपने अधीन ईसाई प्रजा की भलाई का ध्यान रखने का वचन दिया।

(vii) रूस को टर्की के ईसाइयों का संरक्षक नहीं माना गया।

(viii) रूस ने मोल्डाविया, वेलेशिया तथा सर्बिया से अपना प्रभुत्व हटाना स्वीकार किया तथा इन राज्यों को टर्की के नेतृत्व में स्वतन्त्रता दे दी गयी।

(ix) टर्की के आन्तरिक मामलों में एक या दो राष्ट्रों का हस्तक्षेप करना निषिद्ध कर दिया गया। कोई भी कार्यवाही समस्त देशों की राय से होनी थी।

क्रीमिया के युद्ध का प्रभाव
(EFFECTS OF THE CRIMEAN WAR)

क्रीमिया के युद्ध ने तत्कालीन राजनीति पर व्यापक प्रभाव डाला। इस युद्ध द्वारा रूस के टर्की साम्राज्य तथा काला सागर में बढ़ते प्रभाव को समाप्त किया गया। मोल्डाविया को बेसारेबिया का प्रदेश दे दिया गया ताकि रूस डेन्यूब से दूर ही रहे। काला सागर में भी रूस का विस्तार न हो सके, ऐसे प्रयत्न किए गए। इस युद्ध से सर्वाधिक लाभान्वित होने वाला देश टर्की था। टर्की और रूस के मध्य दो स्वतन्त्र राष्ट्र मोल्डाविया तथा वेलेशिया बनाकर उसे रूस की साम्राज्यवादी नीति के संकट से परे रखा गया। **इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रों का संरक्षण देकर टर्की की प्रादेशिक एकता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया गया।** यूरोप के बीमार आदमी को पुनः यूरोपीय शक्तियों ने उसके पांवों पर खड़ा करने का प्रयत्न किया, परन्तु वास्तविकता में यूरोपीय शक्तियों द्वारा युद्ध में किए गए बलिदानों का कोई विशेष लाभ न हुआ क्योंकि 1870 ई. में रूस ने पेरिस सन्धि करके 1856 ई. में की गई पेरिस की सन्धि की धाराओं को तोड़ दिया। 1878 ई. में **सैन स्टीफेनो (San Stefano)** की सन्धि के द्वारा

रूस ने बैसारेबिया को पुनः प्राप्त करके क्रीमिया के युद्ध में हुए अपमान का बदला लिया। टर्की साम्राज्य का अस्तित्व एक बार पुनः संकट में पड़ गया।

क्रीमिया के युद्ध के अनेक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष प्रभाव भी हुए जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप की घटनाओं को प्रभावित किया। **क्रीमिया की मिट्टी से एक नए इटली का जन्म हुआ और नए जर्मनी का प्रादुर्भाव हुआ।**[1] मित्र-राष्ट्रों की ओर से क्रीमिया के युद्ध में सार्डीनिया के प्रधानमन्त्री कैवूर (Cavour) ने अपनी सेना भेजी थी जिन्होंने वहां असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया। कैवूर ने 1856 ई. के पेरिस के सम्मेलन में भी भाग लिया और बड़े-बड़े राष्ट्रों को अपनी समस्या से अवगत कराके उनकी सहानुभूति प्राप्त की और इटली को संगठित करने में सफल हुआ। इसी प्रकार रूस व आस्ट्रिया की मित्रता जो कि काफी समय पूर्व से चल रही थी, इस युद्ध के कारण समाप्त हो गई। बिस्मार्क ने रूस और आस्ट्रिया के तनावपूर्ण सम्बन्ध का लाभ उठाते हुए रूस से मित्रता की और 1863 ई. के पोलैण्ड के विद्रोह के समय रूस की सहायता कर उसने अपनी मित्रता को एक प्रकार से प्रमाणित कर दिया। **परिणामस्वरूप** 1866 **ई. के आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध** (Austria-Prussian War) **में रूस उदासीन रहा और बिस्मार्क को जर्मनी के एकीकरण करने में सफलता प्राप्त होने लगी।**

जार अलेक्जेण्डर द्वितीय को अनेक सुधार करने पड़े ताकि लोगों को अपने पक्ष में लेकर वह अपनी स्थिति का सुधार कर सके। उसके द्वारा किए गए सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण दासों का उद्धार करना था। रूस का यूरोप की ओर विस्तार चूंकि सम्भव न था, अतः रूस ने अपना कार्य-क्षेत्र मध्य एशिया बनाया।

फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा एवं कूटनीति सफल हुई। वह रूस को पराजित कर उसे नीचा दिखाने में सफल हो गया। फ्रांस में उसका सम्मान एकाएक बहुत बढ़ गया और फ्रांस की जनता उसमें उसके चाचा नेपोलियन महान् की छवि देखने लगी। उसे राष्ट्रीय नेता (National Hero) माना जाने लगा। इस युद्ध के कारण पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ और नेपोलियन तृतीय का प्रभाव यूरोप में बढ़ गया।

कुछ लोगों का मत है कि इस युद्ध का महत्व केवल इसलिए है कि इसने फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Florence Nightingale) **जैसा व्यक्तित्व तथा उससे सम्बद्ध आधुनिक नर्सिंग होम को प्रारम्भ किया।**[2] क्रीमिया के युद्ध में जिस समय इंग्लैण्ड के सैनिकों की स्थिति बहुत खराब हो गयी तो एक महिला फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने कुछ अन्य नर्सों को साथ लेकर क्रीमिया के युद्ध क्षेत्र में स्कुटारी के अस्पताल में रोगियों व घायलों की बहुत सेवा की। ट्रैवेलियन के शब्दों में, **"शान्ति और युद्ध में वर्तमान काल की अस्पताल व्यवस्था का प्रयोग क्रीमिया से ही शुरू हुआ है।"**[3]

---

1 "Out of the mud of Crimea a new Italy was made and less obviously a new Germany.

2 "Some people have said the Crimean war is important only because it was instrumental in producing Florence Nightingale and her creation of modern nursing."
—*Warner-Merten-Muir*

3 "Modern hospital work in peace and war owes to his Crimean episode."
—*Trevelyan*

क्रीमिया के युद्ध के प्रभाव स्थिर न रह सके। पेरिस की सन्धि से मित्र-राष्ट्रों ने यह समझा कि रूस की शक्ति को कुचल दिया गया है और अब वह और धृष्टता न कर सकेगा, किन्तु यह मित्र-राष्ट्रों की कल्पना मात्र थी। रूस अपने अपमान को भूला नहीं था। उसने फारस और अफगानिस्तान की ओर ध्यान दिया जो अंग्रेजों के लिए घोर संकट बन गया। टर्की के सुल्तान ने मित्र-राष्ट्रों को वचन दिया था कि वह अपने राज्य में रह रहे ईसाइयों की दशा सुधारने के प्रयत्न करेगा, किन्तु उसने कुछ किया नहीं। सुल्तान ने काला सागर को भी निष्पक्ष रखने को कहा था, किन्तु 1870 ई. में बिस्मार्क से सन्धि करके उसने इस वचन को भंग कर दिया।

इस युद्ध ने अनेक अन्य युद्धों को जन्म दिया। रूस ने अपने अपमान का बदला लेने के उद्देश्य से बिस्मार्क से मित्रता की और इससे प्रोत्साहित होकर बिस्मार्क ने 1866 ई. में आस्ट्रिया को पराजित किया। 1870 ई. में नेपोलियन तृतीय की भी पराजय हुई। रूस, आस्ट्रिया, टर्की आदि के भी युद्ध हुए।

इस युद्ध से सबसे अधिक हानि इंग्लैण्ड को हुई। उसके हजारों सैनिक इस युद्ध में मारे गए तथा लाखों रुपया इस युद्ध में व्यय हुआ। इसी कारण सैलिसबरी ने कहा, **'क्रीमिया युद्ध में इंग्लैण्ड ने अपना धन गलत घोड़े पर लगाया गया।'**[1]

क्या क्रीमिया का युद्ध आवश्यक था
(WAS CRIMEAN WAR INEVITABLE)

क्रीमिया के युद्ध की आवश्यकता एवं अनावश्यकता में भी विद्वानों में मतभेद है। कहा जाता है कि **'क्रीमिया के युद्ध का इतिहास, गलतियों का इतिहास है।'**[2] आलोचकों ने इस युद्ध को अनुचित बताते हुए माना है कि इस युद्ध की आवश्यकता ही नहीं थी तथा यह युद्ध व्यर्थ में ही लड़ा गया था। मैरियट के अनुसार, **'यदि युद्ध एक भयानक गलती न थी तो एक पाप अवश्य था। इसको टाला जा सकता था और टाला जाना चाहिए था। इंग्लैण्ड ने अपना रुपया गलत घोड़े पर लगाया क्योंकि निकट भविष्य में टर्की ने अंग्रेजों का बहिष्कार किया और जर्मन कैसल विलियम द्वितीय के संरक्षण को स्वीकार किया।'**[3] सेटन वाटसन ने भी लिखा है कि यदि कभी अच्छे निर्णय के विरुद्ध विश्व में, जनता के अज्ञानतापूर्ण आग्रह से कोई युद्ध हुआ तो वह क्रीमिया का युद्ध था। दूसरी ओर ड्यूक ऑफ अर्गिल (Duke of Argyle) ने इस युद्ध को उचित प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। अन्य आलोचकों का मत है कि वास्तव में इंग्लैण्ड ने तो इस युद्ध में बिना किसी कारण के भाग लिया और वह नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा की पूर्ति का साधन बन गया था, परन्तु मैरियट के अनुसार यह कहना गलत है कि स्टैफोर्ड और ऐवर्डीन नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के साधन थे। वास्तविकता यह है कि इंग्लैण्ड यह समझ गया कि अब रूस की बढ़ती हुई शक्ति व महत्वाकांक्षा पर अंकुश लगाना आवश्यक है।

1 "In the Crimean war England had put her money on the wrong horse."
—Salisbury

2 "This history of the Crimean war is a hostory of blunders."

3 "If the Crimean war was not a blunder it was a crime and ought to have and might have been evoided. In this war England put her money on the worng horse back because in the near future Turkey boycotted the English sympathies and accepted the German protection under Kaiser William II." —*Marriot*

यद्यपि इंग्लैण्ड द्वारा इस युद्ध में भाग लिए जाने की आलोचना की गई है तथापि यदि इंग्लैण्ड ऐसा न करता तो टर्की का अस्तित्व समाप्त हो जाता और उसका भयानक परिणाम इंग्लैण्ड को ही भुगतना पड़ता। इसके अतिरिक्त, बाल्कन प्रदेश के छोटे-छोटे राज्य जो आज स्वतन्त्र हैं रूस के अत्याचारी शासन के अधीन हो जाते।

प्रश्न

1. पूर्वी समस्या से आप क्या समझते हैं? 1856 ई. तक पूर्वी समस्या वर्णन कीजिए।
2. क्रीमिया के युद्ध के कारणों, घटनाओं व महत्व का वर्णन कीजिए।

(गोरखपुर, 1993, 95)

3. क्रीमिया के युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालिए। (पूर्वांचल, 1990, 92)

15

पूर्वी समस्या (1856-1913 ई.)

[THE EASTERN QUESTION]

क्रीमिया युद्ध के पश्चात् पूर्वी समस्या
(EASTERN QUESTION AFTER THE CRIMEAN WAR)

एक बार फिर 1857 ई. में पूर्वी समस्या उभर कर सामने आयी। टर्की के कारण बल्गारिया में भयंकर रक्तपात हुआ। तुर्की द्वारा किए जा रहे अत्याचारों की रिपोर्ट इंग्लैण्ड पहुंची तो जनता तुर्की के विरुद्ध भड़क उठी। ग्लैडस्टन के भाषणों द्वारा जनता की भावनाएं और अधिक उग्र हो उठीं।[1] ग्लैडस्टन ने सरकार से अपील की कि वह टर्की के मामले में हस्तक्षेप करे, परन्तु डिजरैली ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। क्रुटवैल (Crutwell) ने लिखा है, **'किसी भी विदेश-नीति सम्बन्धी प्रश्न ने जहां तक याद आता है ब्रिटिश जनता को इतना अधिक नहीं उभारा और अधिक कटुतापूर्ण मतभेद उत्पन्न नहीं किया।'**

इंग्लैण्ड द्वारा हस्तक्षेप न किए जाने पर रूस शान्ति से टर्की द्वारा ईसाइयों पर अत्याचार होते न देख सका और एक बार फिर 1865 ई. में उसने टर्की साम्राज्य में अपना प्रभुत्व जमाना चाहा। 1870 ई. में उसने 1856 ई. में की गई पेरिस की सन्धि को तोड़ दिया। ईसाइयों पर होते अत्याचार को देखकर उसने 1877 ई. में टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में रूस के साथ बल्गारिया, रूमानिया, सर्बिया एवं मोंटेनीग्रो भी थे। इनकी सम्मिलित सेनाओं ने सुल्तान को परास्त किया और विवश होकर 1878 ई. में सुल्तान को सेन स्टीफेनो की सन्धि[2] करनी पड़ी। इस सन्धि को यूरोप के अन्य राष्ट्र स्वीकार नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे सम्पूर्ण बाल्कन प्रदेश पर रूस का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। आस्ट्रिया इजियन सागर तक अपना साम्राज्य विस्तृत करना चाहता था। डिजरैली भी बाल्कन प्रदेश में रूस के बढ़ते प्रभाव को स्वीकार करने को तैयार न था। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ने आपसी विचार-विमर्श के पश्चात् रूस के इस व्यवहार पर आपत्ति प्रकट की और सम्पूर्ण स्थिति को यूरोपीय राजनीतिज्ञों के सम्मुख एक सम्मेलन को आयोजित कर उसमें रखने को कहा। प्रारम्भ में रूस इसके लिए तैयार न था, किन्तु डिजरैली द्वारा युद्ध की धमकी तथा उसी प्रकार की कार्यवाही प्रारम्भ कर देने से रूस को स्पष्ट हो गया कि युद्ध अवश्य होगा, अतः उसने

1 "Turnout the Turks bay and baggage from the provinces they have desolated and profared." —*Gladstone*

2 सेन स्टीफेनो की सन्धि के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए अध्याय 33 इंग्लैण्ड की विदेश नीति (1870-1945)

आस्ट्रिया-इंग्लैण्ड के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, अतः बर्लिन में सेन स्टीफेनो की सन्धि पर पुनः विचार के लिए 1877 ई. में एक कांग्रेस हुई। इसमें बिस्मार्क ने एक **ईमानदार दलाल** (Honest Broker) की भूमिका निभाई। डिजरैली ने इस कांग्रेस के होने से पूर्व ही यूरोप के अन्य राष्ट्रों के साथ मिलकर सब मामले तय कर लिए थे। इस कांग्रेस ने सेन स्टीफेनो की सन्धि से हुए समस्त लाभों को रूस से छीन लिया। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया का उद्देश्य पूर्ण हो गया, साथ ही इंग्लैण्ड को साइप्रस का टापू और आस्ट्रिया को बोस्निया, हर्जेगोविना तथा नोवीबाजार का संजक (Sanjuk of Novibazar) प्राप्त हुआ। 1878 ई. में डिजरैली ने इस कांग्रेस के पश्चात् घोषणा की कि उसने सम्मानपूर्ण ढंग से शान्ति स्थापित कर ली है।

बर्लिन कांग्रेस (1878 ई.)
(THE BERLIN CONGRESS)

बिस्मार्क की अध्यक्षता में जो कि उस समय एक **'ईमानदार दलाल'** (Honest Broker) का कार्य कर रहा था। 13 जून, 1878 ई. को बर्लिन में सम्मेलन हुआ। बिस्मार्क एक राजनीतिज्ञ था। इस समय वह शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर था। यूरोप की घटनाओं का बर्लिन केन्द्र था। अतः बिस्मार्क को ही सम्मेलन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस सम्मेलन में ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, आस्ट्रिया तथा इटली के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जर्मनी सम्मेलन का निर्णायक था। डिजरायली तथा सालेसबरी ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। रूस का प्रतिनिधित्व मोर्टजाकोप कर रहा था। वाडिंगटन फ्रांस की ओर से गया था। **आस्ट्रिया की ओर से एण्ड्रास्से तथा इटली की ओर से कोर्टो अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।**

बर्लिन सम्मेलन की मुख्य धाराएं
(MAIN PROVISIONS OF THE BERLIN CONGRESS)

बर्लिन सन्धि के अनुसार **निम्नलिखित निर्णय किए गए** :

(1) **बल्गारिया का विभाजन**—बर्लिन सम्मेलन का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय सेन स्टीफेनो की सन्धि द्वारा निर्मित 'वृहत बलगेरिया' के सम्बन्ध में था। **बर्लिन सम्मेलन के अनुसार 'वृहत्तर बलगेरिया' को दो भागों में विभाजित कर दिया गया।** (1) पहला भाग बलगेरिया का राज्य था जिसे तुर्की की अधीनता के अन्तर्गत स्वतन्त्र मान लिया गया, परन्तु उसका तीस हजार वर्गमील क्षेत्र, टर्की को दे दिया गया। उसने एजियन सागर में जाने का मार्ग भी खो दिया। (2) पूर्वी रुमेलिया के प्रशासन हेतु टर्की के प्रभाव के अन्तर्गत एक ईसाई गवर्नर नियुक्त किया गया, परन्तु सन्धि के प्रावधानों में ये स्पष्ट कर दिया गया कि टर्की के सम्बन्ध पूर्वी रुमेलिया से औपचारिक मात्र होंगे और नाममात्र के लिए इन दोनों ही राज्यों को तुर्की के अधीन कर दिया गया।

(2) **रूस के प्रसार पर प्रतिबन्ध**—रूस को यूरोप में बेसेरेबिया का प्रदेश तथा एशिया में बाटुम (Batoum), अर्धहान(Ardahan) तथा कार्स के प्रदेश प्राप्त हुए, किन्तु उसे आस्ट्रिया को स्पिजा (Spizza) तथा तुर्की को डलसिग्नो (Dulcgno) देना पड़ा।

(3) **आस्ट्रिया को सर्वाधिक अधिकार मिले**—इस सम्मेलन में आस्ट्रिया को सर्वाधिक अधिकार मिले। बोस्निया तथा हर्जेगोविना पर आस्ट्रिया को प्रशासन का अधिकार मिल गया। केवल नाममात्र के लिए ये दोनों प्रदेश टर्की के अधीन रखे गए। टर्की शक्तिहीन था, उसका अधिकार होना या न होना एकसमान था, परन्तु आस्ट्रिया इन प्रदेशों पर प्रशासन कर सकता

था। उन्हें हस्तगत नहीं कर सकता था। नौवीबाजार के 'संजक' में सैनिक शक्ति रखने का भी आदेश मिल गया। 1908 **ई. में इन दोनों प्राप्त राज्यों को उसने अपने साम्राज्य में मिला लिया।**

(4) **सर्बिया की साम्राज्य वृद्धि**—सर्बिया को भी इस सन्धि से किसी सीमा तक लाभ हुआ। उसे निश तथा बल्गारिया का थोड़ा हिस्सा दे दिया गया। इस भाग को लेने से उसके साम्राज्य में वृद्धि हो गयी, लेकिन सर्बिया को आस्ट्रिया की नौवीबाजार का 'संजक' मिलने से उसको काफी अफसोस हुआ, लेकिन सम्मेलन ने उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी।

(5) **माण्टीनीग्रो की स्वतन्त्रता**—मान्टीनीग्रो यद्यपि पहले से स्वतन्त्र हो चुका था एवं सफलतापूर्वक स्वतन्त्रता से कार्य कर रहा था, लेकिन अभी उसकी स्वतन्त्रता को औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त नहीं थी। इस सम्मेलन में उसने औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त की, उसे एड्रियाटिक सागर के तट पर एक बन्दरगाह भी दे दिया गया।

(6) **रूमानिया की स्वतन्त्रता**—रूमानिया को भी अभी पूर्णरूप से स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकी थी, वह इस सम्मेलन में प्रदान की गयी। रूमानिया को डिब्रूजा के बदले में दक्षिणी बेसेरेबिया का प्रदेश रूस को देना पड़ा। डिब्रूजा के पास का बल्गारिया का प्रदेश भी उसे प्राप्त हो गया। रूमानिया से सम्मेलन में एक प्रतिज्ञा भी ले ली गयी थी कि वह अपनी यहूदी प्रजा पर समान रूप से शासन करेगा। उनको अन्य जातियों के समान राजनीतिक अधिकार देने को भी प्रेरित किया गया।

(7) **तुर्की को धार्मिक स्वतन्त्रता**—तुर्की का सुल्तान ईसाई जनता पर अत्यधिक अत्याचार करता था। बर्लिन सम्मेलन ने उसको तुर्की साम्राज्य को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करने को बाध्य किया उसने सको स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त सुल्तान सुधारों में भी विश्वास नहीं रखता था। उसको क्रीट, इदिरस, थिस्साले, मेसीडोनिया व अल्बानिया में सुधार करने को प्रेरित किया, उन्होंने सुधार करने का वचन भी दिया।

(8) **ग्रीस की मांगों की अस्वीकृति**—इस सम्मेलन में ग्रीस के क्रीट, इपिरस एवं थिस्साले की मांग सम्मेलन के सम्मुख रखी थी, किन्तु उसे कुछ भी न मिल सका। सम्मेलन ने यद्यपि उसको समझाने के लिए टर्की के सुल्तान से उसे ग्रीस की उत्तर सीमा में विकास करने का सुझाव दिया था, लेकिन टर्की के सुल्तान ने इसे अस्वीकृत कर दिया था।

(9) **इंग्लैण्ड को लाभ**—इंग्लैण्ड को साइप्रस दे दिया गया तथा यह कहा गया कि जब तक रूस के पास कार्य और बाटूम के प्रदेश रहेंगे तब तक इंग्लैण्ड साइप्रस को अपने अधिकार में रखेगा और इंग्लैण्ड ने यह आश्वासन दिया कि साइप्रस की अतिरिक्त आय तुर्की को मिलेगी जिसके द्वारा तुर्की में सुधार योजनाएं प्रारम्भ की जा सकें।

(10) **फ्रांस**—फ्रांस ट्यूनिक के ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था, बर्लिन के राजनीतिज्ञों ने उसे आश्वासन दिया कि वे उसकी साम्राज्यवादी नीति का विरोध नहीं करेंगे।

(11) **इटली**—इटली ने भी अलबानिया और ट्रिपोली पर अपने दावे का संकेत किया, परन्तु उसे कुछ भी नहीं मिल सका।

इस प्रकार बर्लिन सम्मेलन द्वारा अनेक निर्णय लिए गए जिससे रूस को अधिक लाभ नहीं हुआ। अनेक विद्वानों ने बर्लिन कांग्रेस की तीव्र आलोचना की है।
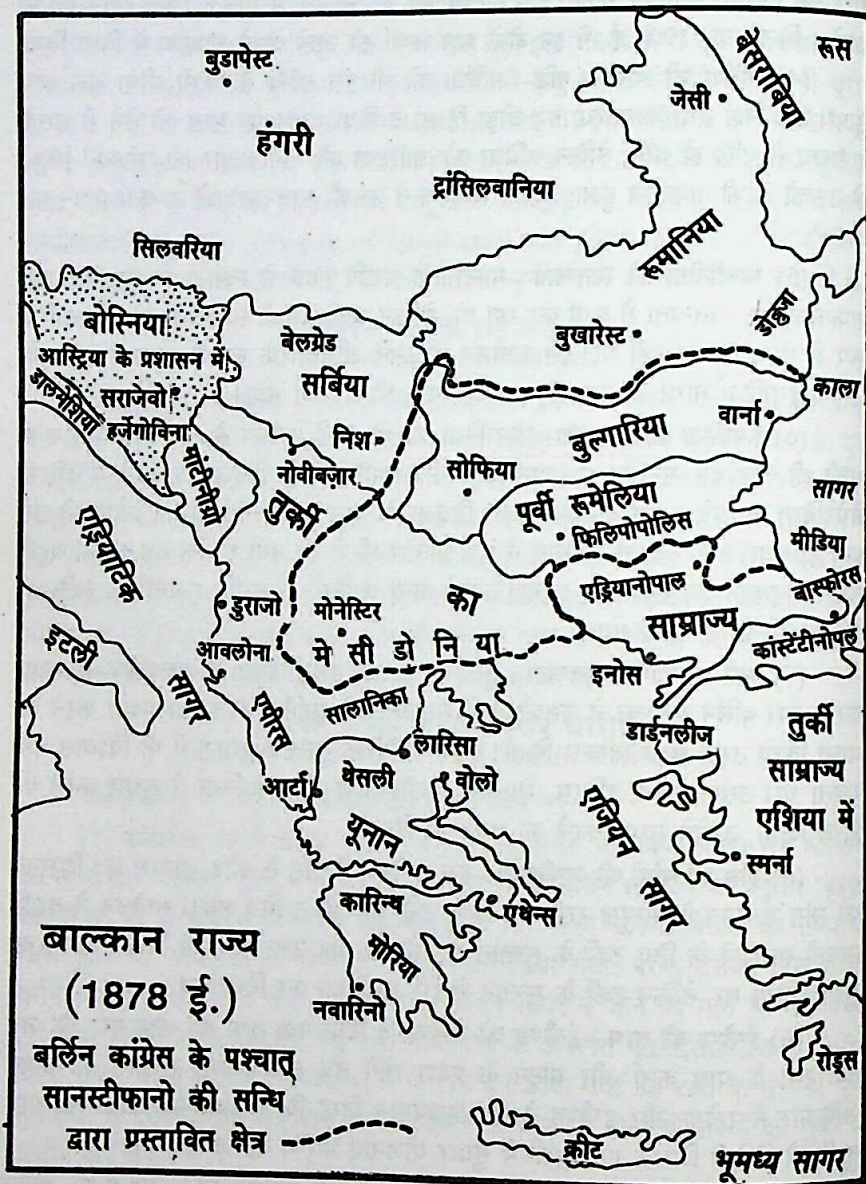
बर्लिन कांग्रेस का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE BERLIN CONGRESS)

बर्लिन कांग्रेस के निर्णायकों ने पूर्वी समस्या का सन्तोषजनक समाधान करने तथा यूरोपीय राज्यों के बीच एक बड़े युद्ध को रोकने का दावा दिया था। ए. जे. पी. टेलर के अनुसार उनके दोनों दावे तथ्यहीन थे। **"युद्ध की सम्भावना तो कांग्रेस के पहले उस समय समाप्त हो गयी जब रूसी सेनाएं कांस्टैण्टीनोपल पर अधिकार करने में हिचकिचा गयी थीं। दूसरी**

और कांग्रेस आटोमन (तुर्क) साम्राज्य को एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली सत्ता के रूप में पुनः स्थापित करने में असफल रही। वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से सम्मेलन के निर्णयों का बहुत कम प्रभाव पड़ा।"[1] वास्तविक रूप में बर्लिन सन्धि समकालीन लेखकों एवं राजनीतिज्ञों से लेकर आधुनिक काल के इतिहासकारों तक की आलोचना का विषय बनी रही।[2]

(अ) बर्लिन सन्धि और बाल्कन राज्य—बर्लिन सन्धि का सबसे बड़ा दोष राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की अवहेलना करना था।

(1) सर्वप्रथम बोसनिया तथा हर्जेगोविना को सजातीय राजा सर्बिया के साथ न मिलाकर विजातीय राष्ट्र आस्ट्रिया के अधीन कर दिया गया।

(2) बर्लिन सम्मेलन में यूनान की उपेक्षा कर दी गयी, यूनान को क्रीट (Crete), इपिरस (Epirus), थिस्साले (Thesslay) तथा मेसीडोनिया (Macedonia) आदि प्रदेश मिलने थे, लेकिन यूनान को ये प्रदेश नहीं दिए गए।

(3) रूमानिया को बसेरेविया, बुकाविना तथा ट्रांसलेवानिया के प्रदेश मिलने थे, लेकिन रूमानिया को इनसे वंचित रखा गया।

(4) बल्गारिया से पूर्वी रुमेलिया पृथक् कर दिया गया जबकि ये दोनों सजातीय राज्य थे, लेकिन आगे चलकर बर्लिन कांग्रेस की अवहेलना कर 1885 ई. में इन दोनों ही राज्यों ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि हम दोनों संयुक्त राज्य हैं। **अतः 5 अक्टूबर, 1905 में संयुक्त बल्गारिया के रूप में इन दोनों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया।**

(5) आस्ट्रिया को बोसनिया तथा हर्जीगोबिना के प्रदेश दिए जाने का इटली ने घोर विरोध किया और **यह घोषणा की कि 'परतन्त्र इटली' को स्वतन्त्र किया जाए,** क्योंकि एजियन सागर का कुछ भाग अभी परतन्त्र ही था और वह आस्ट्रिया के अधीन था। इटली ने ट्रेनटीनो (Trentino) प्रदेश की विशेष मांग की, लेकिन इटली को यह प्रदेश नहीं दिया गया।

(ब) रूस—इस सम्मेलन की आवश्यकता रूस की शक्ति को कम करने के उद्देश्य से ही उत्पन्न हुई थी, लेकिन उसके प्रभाव विस्तार में इस सम्मेलन के बाद भी अन्तर नहीं आ सका था। बर्लिन सम्मेलन में रूस के उद्देश्य की सफलता एवं असफलता को लेकर विद्वानों में दो मत हैं। **सी. जे. एच. हेज का मानना है कि 1878 में बर्लिन सन्धि में रूस काफी लाभान्वित हुआ था।**[3]

दूसरी ओर बेन्ज, हेज के विचार से सहमत नहीं है। बेन्स के अनुसार—**"सेन स्टीफेनो की सन्धि से जो प्रतिष्ठा रूस को प्राप्त हुई थी, वह बर्लिन सन्धि ने समाप्त कर दी।"**[4] बेन्स ने रूस के राजनीतिक सन्दर्भ में बर्लिन के दो परिणाम बताए हैं (क) बर्लिन सन्धि के परिणामस्वरूप 1879 में आतंकवादी लोगों का प्रभुत्व बढ़ा और इन लोगों ने रूस के शासक अलेक्जेण्डर द्वितीय का 'Death Sentence' छपवा दिया, अर्थात् उन्होंने घोषणा कर दी कि हम

1 **न्यू केम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री,** जिल्द पृ. 548।

2 "At the Congress of Berlin in June 1878 the whole question of near east was settled upon lines which safeguarded British interests, extended Austrian influence and administred a severe cheque to the Pan Slav ambitions of the Tzar."
—*A History of Europe*, Vol. II.

3 "Russia had avenged its defeat in the Crimean war and Enhanced its military prestige." —C. J. H. Hayes, *Contemporay Europe Since* 1870, Vol. II.

4 F. Lee, Benns, *European History Since* 1870

अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर देंगे और आगे चलकर 1881 में अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर दी गयी। (ख) दूसरा परिणाम यह हुआ कि अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या के बाद राजतन्त्र से जुड़े लोग और अधिक कट्टर हो गए, जिससे 1881 से 1871 ई. तक के युग में सरकार और अधिक कट्टर हो गयी। अतः यह युग कट्टरवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

उपरोक्त दोनों मतों में हेज का मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि इस सन्धि से रूस की साम्राज्यवादी प्रतिष्ठा में अधिक वृद्धि हुई जो कि निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट है—

(1) इस सन्धि से रूस को बसरेबिया तथा आर्मिनिया का थोड़ा-सा भाग मिला।

(2) रूस को काले सागर के ऊपरी जहाजी बेड़ा रखने का अधिकार हो गया था यह अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी, क्योंकि 1856 की पेरिस सन्धि में रूस से स्पष्ट कह गया था कि वह काले सागर में अपना जहाजी बेड़ा नहीं रख सकता है।

(3) बर्लिन सन्धि के बाद रूस ने मध्य एशिया की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया तथा यूरोप में एक नए खतरे के रूप में उभर कर सामने आया।[1]

इसके अतिरिक्त बर्लिन सन्धि का रूस के सन्दर्भ में एक परिणाम यह हुआ कि सेन स्टीफेनो की सन्धि से रूस तथा आस्ट्रिया एक-दूसरे के विरोधी हो गए थे, जब बर्लिन सन्धि द्वारा रूस और जर्मनी एक-दूसरे के विरोधी हो गए। **अतः बर्लिन सन्धि के पश्चात् रूस ने अपने आप को यूरोपीय राजनीति में एकाकी महसूस किया, दूसरी ओर फ्रांस भी बिस्मार्क के कारण अपने आपको यूरोपीय राजनीति में एकाकी महसूस कर रहा था।** अतः इस कारण रूस तथा फ्रांस में मित्रता हो गयी और इसी मित्रता के परिणामस्वरूप 1893 ई. में इन दोनों में सन्धि हो गयी। रूस एवं जर्मनी की कटुता से सम्पूर्ण यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया। अतः यूरोप के दो युद्ध शिविरों में विभाजित करने का श्रेय भी इसी सन्धि को जाता है। **इसी कारण इस सन्धि के विरुद्ध यह अभियोग भी लगाया जाता है कि यह सन्धि महायुद्ध की जन्मदाता थी।**

(स) बर्लिन कांग्रेस एवं इंग्लैण्ड—डिजरैली ने बर्लिन से लौटकर बड़े गर्व से कहा था मैं सम्मान सहित शान्ति[2] लाया हूं। उसने यह भी कहा कि मैंने तुर्की के साम्राज्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। इसमें सन्देह नहीं कि डिजरैली और सैलिसबरी की नीति के कारण इंग्लैण्ड को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई और रूस की कूटनीतिक पराजय हुई, इसी कारण इंग्लैण्ड की जनता ने उसकी प्रशंसा की, किन्तु कुछ लोगों ने उसकी नीति की कटु आलोचना भी की। डिजरैली ने बास्फोरस की और रूस की प्रगति को रोक दिया, किन्तु वह मध्य एशिया और अफगानिस्तान में उसकी गतिविधियों पर अंकुश नहीं लगा सका, इतना ही नहीं बर्लिन कांग्रेस में रूस को इतना बड़ा भू-भाग प्राप्त हो गया था, जिसकी उसने 1877 ई. में आशा नहीं की थी, **वास्तव में बर्लिन कांग्रेस में डिजरैली की नीति का मुख्य उद्देश्य यह था कि बाल्कन समस्या को हल करने के रूस के एकपक्षीय दावे को मान्यता न प्राप्त हो सके।**[3] ब्रिटेन ने रूस की प्रगति रोक दी थी, किन्तु आस्ट्रिया को बोस्निया और हार्जीगोविना के क्षेत्र जिन पर

1 "......In the Congress of Berlin Great Britain backed the wrong horse."

—*Lord Salisbury*.

2 "Peace with honour."

3 जे. आर. मैरियट, **दि ईस्टर्न क्वेश्चन**, पृ. 303.

सर्बिया अपना अधिकार समझता था, पर अधिकार कर लेने दिया जिससे एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी।

(द) बर्लिन कांग्रेस और जर्मनी—जर्मनी के सन्दर्भ में बर्लिन सन्धि का परिणाम यह होता है कि जर्मनी का चांसलर बर्लिन सन्धि के बाद यूरोपीय राजनीति में एक नए युग का सूत्रपात करता है, जिसे 'गुप्त राजनीति' के नाम से जाना जाता है, अर्थात् 1879 ई. में आस्ट्रिया तथा जर्मनी में एक गुप्त सन्धि होती है और तब से गुप्त सन्धि का युग आरम्भ हो जाता है और यही गुप्त सन्धि 1919 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध का सबसे प्रमुख कारण बनती है।

(य) बर्लिन कांग्रेस और रूमानिया—बर्लिन सन्धि में बसरेबिया का प्रदेश रूस को दे दिया गया था, जबकि बसरेविया की जनता रूमानि . थी। अतः इस सन्धि के उपरान्त रूमानिया रूस का विरोधी हो गया। इसी विरोध के कारण रूमानिया ने 1833 ई. में आस्ट्रिया तथा जर्मनी के साथ एक सन्धि की और वह जर्मनी तथा आस्ट्रिया के गुट में शामिल हो गया।

(र) साइप्रस की सन्धि—सम्मेलन में साइप्रस इंग्लैण्ड को प्रदान किया गया। उसको वहां रूस का शस्त्रागार भी प्राप्त हो गया, साइप्रस में फिर भी इंग्लैण्ड अत्यधिक सैनिक सहायता की वृद्धि न कर सका, इंग्लैण्ड के लिए यह इतना लाभप्रद सिद्ध न हो सका जिनकी कि इससे आशा की जाती थी। अतः साइप्रस जो कि उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था उसमें बाधा पड़ी।

(ल) यहूदियों की पूर्व-स्थिति—सम्मेलन के सम्मुख रूमानिया ने यहूदियों की दशा सुधारने का वचन दिया था। बर्लिन सम्मेलन के पश्चात् वह अपने कर्तव्यों एवं वचनों को भूल गया। उसने पूर्व व्यवस्था को ही निरन्तर जारी रखा, जिसमें कि यहूदियों को समान अधिकार नहीं प्राप्त होते थे। उन पर अत्याचार किए जाते थे।

बर्लिन सन्धि बाल्कन प्रायद्वीप में शान्ति स्थापित करने के लिए की गयी थी, वह विश्व में युद्धों का अन्त करना चाहती थी, लेकिन अपने इस उद्देश्य में सन्धि पूर्ण रूप से असफल रही। इस सन्धि के पश्चात् पूर्वी प्रश्न अपनी तीव्रता पर पहुंच चुका था, जिसके कारण महायुद्ध का जन्म हुआ। अतः यह पूर्णरूपेण सत्य है कि यह सम्मेलन अपने प्रमुख उद्देश्य में असफल रहा। बर्लिन की सन्धि द्वारा बाल्कन क्षेत्र में किए गए परिवर्तनों को कार्यान्वित करने में भी बड़ी कठिनाई हुई। इस सम्बन्ध में तुर्की में स्थित ब्रिटिश लेयर्ड (Layard) ने लिखा था—**"टेबिल के आस-पास बैठकर नक्शे पर किसी साम्राज्य का विभाजन करना सरल है, किन्तु उसे कार्यान्वित करना कठिन है। मुझे इस अभागे देश में, आगामी वर्षों में, अनेक उपद्रवों और रक्तपात होने का पूर्वाभास है।"**[1]

किन्तु बर्लिन सन्धि की आलोचना करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह सन्धि वेस्टफेलिया की सन्धि या विएना की सन्धि एवं अन्य महान् सन्धियों के समान एक प्रकार का समझौता थी। टेलर ने इस कांग्रेस के विषय में लिखा है, **बर्लिन सम्मेलन ने यूरोप के इतिहास में एक विभाजन रेखी खींची है। सम्मेलन से पूर्व तीस वर्ष तक संघर्ष और विद्रोह हुए, परन्तु उसके बाद चालीस वर्ष तक शान्ति रही।"**

1 मेडलीकाट, दि कांग्रेस ऑफ बर्लिन एण्ड आफ्टर, पृ. 138 से उद्धृत।

युवा-तुर्क आन्दोलन
(YOUNG-TURK MOVEMENT)

19वीं शताब्दी में तुर्की को यूरोप की महत्वपूर्ण शक्तियों ने 'बीमर राज्य' की संज्ञा दी थी और प्रत्येक शक्तिशाली देश अपने हितों में इस बीमार राज्य का शोषण करने के प्रयत्न में संलग्न था। 19वीं शताब्दी के अन्त तक आते-जाते तुर्की की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी थी कि वहां पर महत्वपूर्ण सुधारों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। **'तंजीमात सुधार काल'** में टर्की की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। 'मुराद पंचम' भी स्थिति को संभालने में असमर्थ रहा। सितम्बर 1876 ई. में **'अब्दुल हमीद द्वितीय'** तुर्की का सुल्तान बना। उसके निरंकुश शासन के कारण तुर्की की स्थिति दिन-प्रतिदिन और अधिक अधोगति को जाने लगी। अतः विदेशी हस्तक्षेप भी अत्यधिक बढ़ गया। अतः उसके शासन काल में तत्कालीन व्यवस्था के विरोध में प्रतिक्रिया के रूप में एक आन्दोलन का प्रकटीकरण हुआ, जिसे **'युवा-तुर्क आन्दोलन'** के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन ने पूर्वी समस्या के रुख को ही परिवर्तित कर दिया। हेजन के अनुसार, "1908 ई. **की ग्रीष्म में पूर्वी समस्या ने एक नया और विस्मयकारी रूप धारण किया।**"[1] तुर्की में युवा-तर्क आन्दोलन के परिणामस्वरूप **'अब्दुल हमीद द्वितीय'** के निरंकुश शासन का अन्त हुआ। **इस आन्दोलन को चलाने वाला वर्ग युवा-तुर्क वर्ग था। अतः इसे 'युवा-तुर्क आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है।**[2]

युवा-तर्क आन्दोलन के कारण
(CAUSES OF YOUNG TURK MOVEMENT)

(अ) **अब्दुल हमीद का निरंकुश शासन**—सुल्तान अब्दुल हमीद का शासन (1887 ई. से 1908 ई. तक) अत्यन्त निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी था। बर्लिन की सन्धि के पश्चात् सुल्तान के निरंकुश शासन का प्रारम्भ हो गया था। अब्दुल हमीद ने संसद को भंग कर मन्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया था। **उदारवादियों को तुर्की से बाहर निकाल दिया गया। उदारवादी दल के नेता मिधत पाशा को सुल्तान अजीज की हत्या के जुर्म में फंसाकर फांसी की सजा दे दी गई, परन्तु इंग्लैण्ड व फ्रांस के दबाव के कारण यह दण्ड सुल्तान को वापस लेना पड़ा, परन्तु मिधता पाशा की हत्या करवा दी गई।** तुर्की में यूरोप से आने वाली उन पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया जिनसे कि राष्ट्रीयता की भावना पनपने की सम्भावना थी। तुर्की के लेखक एवं कवियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए गए। लेखों एवं प्रकाशनों पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। प्रेस की स्वतन्त्रता का हनन करते हुए यह आज्ञा निकाल दी गई कि तुर्की के लोग स्वतन्त्रता एवं संविधान जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे। अब्दुल हमीद द्वारा गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई, जो कि सभी सूचनाएं समय पर सुल्तान तक पहुंचाता था। तुर्की की गलियों एवं बाजारों में उस समय लगभग 40 हजार गुप्तचर तुर्की घूमा करते थे। ऐसा माना जाता है कि उसके शासनकाल में कांस्टेण्टिनोपुल की आबादी का

1 "The Eastern question entered upon a new and starting phase in the summer of 1908."
—*Hazen*

2 "The official name of the revolutionary society was the committee of union and progress (Ittihad-ae-Terekki). The member called themselves the Young Turks. Like the new Ottomans, the Young Turks were organised also the cellularlines of the Italian Casbonasi."

—Wayne, *Ottoman Empire—Its Record and Legacy*, p. 105.

आधा भाग गुप्तचरी का पेशा करता था। **सुल्तान के 'पानइस्लामिज्म प्रचारक' प्रभावशाली व्यक्तियों की हत्या में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। 'अब्दुल हमीद की पान इस्लामिक नीति का मुख्य उद्देश्य निरंकुश शासन की जड़ें मजबूत करना था।'**

अब्दुल हमीद के इस निरंकुश शासन ने उदारवादी वर्ग एवं जनसाधारण को हिलाकर रख दिया। अत्याचार, निरंकुशता एवं भ्रष्टाचार के वातावरण से खिन्न होकर उदारवादी वर्ग सुधार कार्यों पर विशेष बल देने लगा। तुर्की की वैधानिक प्रगति का स्वप्न देखने वाले उदार राष्ट्रवादी पार्लियामेण्ट के भंग होते ही निरंकुश शासन की समाप्ति के लिए पूर्ण कटिबद्ध हो गए। **तुर्की से निर्वासित उदारवादियों ने जेनेवा जाकर तुर्की के निरंकुश शासन की समाप्ति के लिए जेनेवा में 'एकता और प्रगति समिति'** (Committee of Union and Progress) का गठन किया।

(ब) यूरोप की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव—इसी समय लगभग सम्पूर्ण यूरोप में राष्ट्रवादी भावनाएं जोर मार रही थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही यूरोप के अधिकांश देशों की जनता अपने-अपने देशों में निरंकुश शासन को समाप्त कर लोकसत्तावादी शासन की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थी। 1830 एवं 1848 में यूरोप में हुई क्रान्तियां, 1871 ई. में जर्मनी एवं इटली का एकीकरण तुर्की में राष्ट्रीयता की भावनाओं को भड़काने के लिए पर्याप्त थे।

(स) अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर तुर्की की स्थिति—राष्ट्रवादिता की लहरें जब सम्पूर्ण यूरोप में चल रही थीं और उनका प्रभाव तुर्की में भी पड़ रहा था, ठीक ऐसे समय में 1877 ई. में रूस और टर्की के मध्य हुए युद्ध में तुर्की को पराजय का सामना करना पड़ा। रूस द्वारा तुर्की पर सेनस्टिफान की सन्धि (मार्च 1878) लादी गई जिससे तुर्की की स्थिति रूस के संरक्षित राज्य की तरह हो गई, क्योंकि उसे अपने विशाल साम्राज्य के बहुत बड़े भाग को खोना पड़ा। **यह ठीक है कि बर्लिन की सन्धि (1878 ई.) ने रूस के लाभों को कम कर दिया, परन्तु तुर्की का विघटन कम नहीं हुआ। इससे तुर्की में असन्तोष फैलना स्वाभाविक ही था।** तुर्की के राष्ट्रवादी नेता तुर्की के इस प्रकार से होने वाले लगातार पतन से उसे बचाने के लिए चिन्तित हुए। तुर्की के जनमानस में राष्ट्रवादिता की भावना उत्पन्न करने के लिए राष्ट्रवादी नेताओं ने अब्दुल हमीद के निरंकुश शासन की समाप्ति पर विशेष बल दिया। **राष्ट्रवादी नेता अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर तुर्की की दयनीय स्थिति के लिए अब्दुल हमीद शासन को उत्तरदायी मानते थे।**

(द) तुर्की पर विदेशी प्रभाव—यूरोप के लगभग सभी शक्तिशाली देशों ने तुर्की को बीमार राज्य मानकर अपने हितों में उसका शोषण करने का प्रयत्न किया था। स्वाभाविक रूप से तुर्की पर यूरोप के देशों का प्रभाव बढ़ा। आस्ट्रिया, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं रूस जैसे शक्तिशाली देशों ने तुर्की की राजनीति में हस्तक्षेप कर उसे अपने प्रभाव में लेने का प्रयत्न किया। यह प्रभाव इतना अधिक बढ़ चुका था कि बर्लिन की सन्धि में तुर्की के भाग्य का निर्णय यूरोपीय देशों ने किया और तुर्की ने उस निर्णय को स्वीकार भी कर लिया। उदारवादी नेता तुर्की में विदेशी प्रभाव की समाप्ति के पक्षधर थे।

(य) राष्ट्रवादी नेताओं एवं संस्थाओं का योगदान—युवा-तुर्क आन्दोलन की पृष्ठभूमि में राष्ट्रवादी नेताओं एवं विभिन्न राष्ट्रवादी संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान था। **'वस्तुतः यदि यह माना जाए कि आन्दोलन के वास्तविक प्रणेता राष्ट्रवादी नेता ही थे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति**

नहीं होगी।' राष्ट्रवादी नेताओं में अहमद रिजा मुरादबे, आगस्त कॉम्ट, कमाल, इब्राहिम तेमो, इमिल दुर्खाइम, हेनरी वर्गसन, सबाहअलद्दीन विशेष उल्लेखनीय हैं। संस्थाओं में एकता एवं प्रगति समिति, वतन-वतन एवं स्वतन्त्रता, आटोमन सोसाइटी ऑफ लिबर्टी विशेष महत्वपूर्ण संस्थाएं थीं।

(र) **प्रकाशन का योगदान**—युवा-तुर्क आन्दोलन की पृष्ठभूमि में प्रकाशन के योगदान से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। मेशवर्त, मीजान एवं तरक्की जैसे समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने युवा तर्क आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।[1]

इस प्रकार युवा तर्क आन्दोलन की पृष्ठभूमि में जो कारक सामने आए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि आन्दोलन के मूल में अब्दुल हमीद द्वितीय के शासन की निरंकुशता एवं विदेशों में तुर्की की स्थिति विशेष रूप से उत्तरदायी थी जिससे राष्ट्रवादी नेताओं की प्रेरणा का स्रोत बनी यूरोप में विकसित हो रही राष्ट्रवाद की भावनाएं तथा अस्त्र बना प्रकाशन।

संस्थाएं एवं संगठन

उदारवादी राष्ट्रवादी नेता इस तथ्य से भली-भांति अवगत थे कि यदि तुर्की से अब्दुल हमीद के निरंकुश शासन का अन्त करना है तो बिना संगठित हुए कार्य नहीं चल सकेगा। तुर्की से निर्वासित तुर्की देशभक्तों ने तुर्की साम्राज्य से बाहर ही स्वतः को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। 1889 ई. **में इस्तम्बूल नामक स्थान पर इम्पीरियल मिलिटरी कॉलेज में इब्राहिम तेमो के नेतृत्व में कतिपय छात्रों ने एक गुप्त समिति का गठन किया जिसे एकता एवं प्रगति समिति के नाम से जाना जाता है।** इस समिति के गठन की सूचना मिलते ही 1882 ई. में सुल्तान अब्दुल हमीद ने इस संस्था को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु इस समिति के सदस्यों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गयी। समिति के कई निर्वाचित नेताओं को तुर्की से निर्वासित कर दिया गया। इन निर्वासित नेताओं ने जेनेवा या पेरिस जाकर समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से '**टर्की को पतन से बचाने**' का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। **अहमद रिजा मुरादबे** के सभापतित्व में जेनेवा में समिति का मुख्य कार्यालय बनाया गया। 1898 ई. में समिति में अब्दुल हमीद के शासन की समाप्ति हेतु एक प्रस्ताव पास किया, परन्तु सुल्तान से सुधार योजना का आश्वासन देकर मुरादबे को इस्ताम्बूल बुलाकर कैद कर लिया। इससे समिति के नेतृत्व को धक्का लगा, परन्तु तुर्की के राष्ट्रवादी नेताओं ने स्वतः को कमजोर नहीं होने दिया।

मई 1897 में जेनेवा में एक नई समिति 'ओस्मानली' का गठन हुआ। 1902 ई. में ओटोमन साम्राज्य के उदारवादियों का एक सम्मेलन पेरिस में आयोजित किया गया। सम्मेलन में अरब, यहूदी, यूनानी, आरमीनियन एवं तुर्की, आदि को मिलाकर एक सम्मिलित संघ बनाने पर विचार हुआ जिसका मूल उद्देश्य तुर्की में 1876 ई. के संविधान को पुनः लागू करवाना था।

1 "From the safety of London, Paris, Naples and Cairo there flowed a stream of revolutionary publications, in which at Turkey's misfortunes were laid at the Sultan's door." —Geoffery Lewis, *Turkey*, p. 43.

इस प्रकार उदारवादियों ने अपने संगठन को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया, परन्तु आवश्यकता इस बात की थी कि तुर्की साम्राज्य के भीतर क्रान्ति का वातावरण उत्पन्न किया जाए। क्रान्तिकारी संस्थाओं ने इस कार्य में विशेष योगदान दिया। दमिश्क में मुस्तफा कमाल ने 'वतन' (The Fatherland) नामक क्रान्तिकारी संस्था का गठन किया और सैलोनिका में इस संस्था की विभिन्न शाखाएं खोलीं। सैलोनिका में सेना की तैयारी कोर ने मुस्तफा के कार्यों से प्रभावित होकर 'ओसमाली हूर्रियत जामियत' (Osmali Hurriyet Jemiyet) नामक दल की स्थापना की। **कुछ समय के पश्चात् इन सभी संगठनों को मिला दिया गया तथा एकता और प्रगति समिति को संगठित किया गया और पेरिस में क्रान्ति की तैयारियां की जाने लगीं।**

युवा तुर्क क्रान्ति 1908 ई.
(YOUNG TURK REVOLUTION)

क्रान्ति के लिए कटिबद्ध युवा तुर्कों में विद्रोह की भावना उस समय अत्यधिक भड़क गई, जबकि 1908 ई. में इंग्लैण्ड एवं रूस ने तुर्की के सुल्तान पर सुधारों हेतु अपना दबाव डालना प्रारम्भ किया। युवा तुर्क विदेशी हस्तक्षेप को समाप्त करना चाहते थे। **अनवर बे** (Enver Bey) एवं **अहमद नियाजी** (Ahmed Niyaji) नामक सैनिक अधिकारियों ने अपने पदों से त्यागपत्र देकर सैनिक संगठनों के निर्माण पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। सुल्तान ने इस प्रकार की कार्यवाही के दमन हेतु शम्सी पाशा (Shemsi Pasha) को भेजा, परन्तु विद्रोहियों ने उसकी हत्या कर दी और सेना भी विद्रोहियों से मिल गई। 1908 ई. में **मैसीडोनिया, एर्जेरम, बिटलिस, इज्मीर तथा इस्तम्बूल** में भयंकर प्रदर्शन हुए और 1908 ई. के जुलाई माह में सेना की तीसरी कोर ने संविधान की पुनः स्थापना की मांग को लेकर इस्तम्बूल पर आक्रमण करने का निर्णय लिया। **23 जुलाई की क्रान्ति आरम्भ हो गई।** सैलोनिका में तुर्की के लिए एक नवीन संविधान एवं सरकार का संगठन की घोषणा क्रान्तिकारियों द्वारा कर दी गई। 23 **जुलाई**, 1908 **ई. को सुल्तान अब्दुल हमीद ने संविधान की कटिबद्धता हेतु संसद को बुलाने एवं प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान करने का वचन दिया।**[1] 17 दिसम्बर, 1908 ई. को सुल्तान ने नई संसद का स्वागत किया, परन्तु युवा तुर्कों द्वारा मन्त्रियों पर शासन भार को छोड़ने का पूर्ण लाभ उठाते हुए सुल्तान हमीद ने आन्दोलन को पूर्णतः कुचलने का प्रयत्न किया। युवा तुर्कों ने मेसिडोनिया की सेना की सहायता से 27 अप्रैल, 1909 ई. को हमीद को पदच्युत कर दिया और उसके स्थान पर मुहम्मद पंचम को सुल्तान बनाया गया जो कि युवा तुर्कों के हाथ की कठपुतली मात्र था। इस प्रकार तुर्की साम्राज्य के शासन की बागडोर युवा तुर्कों के हाथ में आ गई। तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाली प्रायः सभी जातियों ने जिनमें मुसलमान, यूनानी, सर्व, बल्गेरिया, आर्मेनियन, अल्बानिया, ईसाई, आदि महत्वपूर्ण थीं, इस उपलब्धि का स्वागत किया। यही कारण है कि हेजन महोदय ने इस क्रान्ति को **'आधुनिक इतिहास का सबसे अधिक बन्धुत्वपूर्ण आन्दोलन' की संज्ञा दी है।**[2]

1 "With no choice left, on 23 July, 1908, the Sultan granted the constitution, which was a modified version of the 1876 document. With this Hamidian despotism ended, and a parliamentary government on the European model was instituted."
—Wayne, *Ottoman Empire—Its Record and Legacy*, p. 108.

2 "The revolution proved to be the most fraternal movement in modern history."
—*Hazen*

युवा तुर्कों के उद्देश्य
(AIMS OF YOUNG TURKS)

युवा तुर्कों ने शासन सूत्र को अपने हाथों में ले तो लिया था, परन्तु अब उन्हें शासन संचालन की निश्चित रूपरेखा तैयार करनी अति आवश्यक थी, क्योंकि नए सुल्तान को वे शासनाधिकार प्रदान कर पुनः निरंकुश शासन स्थापित नहीं होने देना चाहते थे। 17 दिसम्बर, 1908 से अप्रैल 1909 ई. तक मन्त्रियों के हाथों में शासन को छोड़कर वे उसका प्रतिफल भी देख चुके थे। **अतः युवा तुर्कों ने तुर्कों के शासन संचालन हेतु अपने कतिपय उद्देश्यों को निर्धारित किया। प्रमुख उद्देश्यों का विवरण निम्नवत् है :**

(अ) तुर्की की एकता एवं अखण्डता की रक्षा करना—तुर्की साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। इसमें विभिन्न जातियां निवास करती थीं। सभी के धर्म एवं सांस्कृतिक विशेषताएं अलग-अलग थीं। अतः तुर्की की एकता की रक्षा करना युवा तुर्कों का प्रमुख उद्देश्य था, क्योंकि सांस्कृतिक एकता को स्थापित करके ही वे तुर्की की क्षेत्रीय अखण्डता की रक्षा भी कर सकते थे। इतिहासकार लिप्सन के शब्दों में, ''**युवा तुर्क पतनोन्मुख तुर्की साम्राज्य को संगठित कर उसे नवजीवन प्रदान करने के इच्छुक थे और ओटोमन साम्राज्य में एकता स्थापित करना चाहते थे।**''[1]

(ब) संसदीय शासन व्यवस्था की स्थापना—युवा तुर्कों ने निरंकुश शासन की समाप्ति को लेकर आन्दोलन किया था। अतः उनका मूल उद्देश्य निरंकुश शासन की समाप्ति पर संसदीय शासन व्यवस्था की स्थापना करना था। लिप्सन के शब्दों में ''**युवा तुर्क संवैधानिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं से प्रभावित थे।**''[2] युवा तुर्क खलीफा की निरंकुशता पर अंकुश लगाना चाहते थे, परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे साम्राज्य की प्रतिष्ठा एवं अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते थे।

(स) स्वतन्त्रता, न्याय एवं भ्रातृत्व की स्थापना—युवा तुर्क तुर्की साम्राज्य में स्वतन्त्रता, न्याय एवं भ्रातृत्व की भावना को विकसित करने के पक्षपाती थे। ऐसा करके वे तुर्की की एकता एवं अखण्डता की रक्षा कर सकते थे।

इतिहासकार ल्यूक के अनुसार, ''**तुर्की साम्राज्य का यह नवीन शासक दल तुर्की में स्वतन्त्रता, न्याय एवं बन्धुत्व की स्थापना करना चाहता था।**''[3]

(द) तुर्की का आधुनिकीकरण—तुर्की में एकता के पक्षपाती युवा तुर्क साम्राज्य के आधुनिकीकरण के हिमायती भी थे। वे तुर्की का विकास एवं उन्नति चाहते थे। साम्राज्य में स्थापित विभिन्न विविधताओं को नष्ट करना चाहते थें। अतः साम्राज्य के जीवन की प्रत्येक दिशा में वे परिवर्तन चाहते थे। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित युवा तुर्क उन प्राचीन संस्थाओं एवं नियमों को समाप्त कर देना चाहते थे, जिनकी अंब साम्राज्य को कोई आवश्यकता नहीं थी। ऐसा करके वे तुर्की निवासियों में आत्मसम्मान की भावना विकसित करना चाहते थे।

---

1 "The aim of Young Turks was to breathe new vitality into the worn-out Turkish state, and maintain unimpaired the integrity of the Ottoman Empire."
—Lipson, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 205.

2 "Young Turks were both Constitutional and National." —Lipson, *op. cit.*, p. 205.

3 "The new Rules of Turkey were justified in adopting the watchwords—Liberty, Justice and Fraternity." —H. Luke, *Making of Modern Turkey*

इतिहासविद ल्यूक के शब्दों में, "**तुर्की का यह नया शासक दल प्रगति एवं एकता का इच्छुक था।**"[1]

(य) विश्व में तुर्की को प्रतिष्ठित स्थान प्रदान करना—तुर्की में विदेशी हस्तक्षेप की निरन्तर वृद्धि ने तुर्की को यूरोप के देशों के लिए एक बीमार राज्य बना दिया। तुर्की की प्रतिष्ठा में दिन-प्रतिदिन गिरावट होती जा रही थी। युवा तुर्क तुर्की साम्राज्य में विदेशी हस्तक्षेप को समाप्त कर विश्व शक्ति के रूप में तुर्की को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। **कैटलबी** के शब्दों में, "**युवा तुर्क तुर्की का स्थान विश्व के विकासशील देशों के मध्य में एक महान् साम्राज्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे और यह सब तुर्की के विदेशी हस्तक्षेप से पूर्णतः मुक्ति पर ही निर्भर था।**"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि युवा तुर्क तुर्की की एकता एवं अखण्डता की रक्षा करते हुए वहां पर संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना करना चाहते थे और तुर्की में विदेशी हस्तक्षेप को समाप्त करते हुए तुर्की का स्थान विश्व के प्रतिष्ठित देशों की श्रेणी में लाना चाहते थे। **यह सब वे तुर्की का आधुनिकीकरण एवं वहां पर स्वतन्त्रता, न्याय एवं भ्रातृत्व की भावना का विकास कर आसानी से प्राप्त करने का दावा करते थे।** युवा तुर्कों के शासन के प्रमुख उक्त उद्देश्य यद्यपि महत्वपूर्ण थे, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में तुर्कों में इन उद्देश्यों के आधार पर शासन सूत्र को चलाना अत्यन्त कठिन था। अतः इन उद्देश्यों को मानदण्ड मानकर चलते समय युवा तुर्कों को अनेक कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा।

युवा तुर्कों की कठिनाइयां
(DIFFICULTIES OF YOUNG TURKS)

युवा तुर्कों के उद्देश्य मरीज तुर्की को चंगा कर देने की भावना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थे, परन्तु अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कठिनाई यह थी कि उन्हें शासन-संचालन का अनुभव नहीं था। यह ठीक है कि उनके विचार क्रान्तिकारी थे और वे कुछ कर गुजरना चाहते थे, परन्तु शासन संचालन के लिए शासन का अनुभव अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उनकी अनुभवहीनता इस बात से स्पष्ट जाहिर है कि प्रथम क्रान्ति के पश्चात् जब तुर्की में संसद के लिए चुनाव हुआ तो युवा तुर्क सदस्य तीन राजनीतिक दलों में विभक्त थे और उनकी विचारधाराओं में अन्तर था, परन्तु उन्होंने यह समझ लिया था कि सम्पूर्ण स्थिति पर उनका नियन्त्रण है।

विश्व के देशों में तुर्की की गिनती उनकी दूसरी महत्वपूर्ण समस्या थी। तुर्की की क्रान्ति से यूरोपीय देश अत्यन्त चौकन्ने हो गए। युवा तुर्क आन्दोलनकारी तुर्की में उनके (यूरोपियन देशों) हितों की दृष्टि से खतरा बन सकते थे। युवा तुर्क विदेशी प्रभाव से तुर्की को मुक्ति भी दिलना चाहते थे। अतः यूरोपीय देशों ने तुर्की विरोधी कार्यों में संलग्न होना प्रारम्भ कर दिया। बल्गेरिया ने स्वतः को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इटली ने 1911 ई. में ट्रिपोली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। आस्ट्रिया ने बोस्निया एवं हर्जेगोबिना को अपने अधिकार क्षेत्र में कर लिया और यूनान के क्रीट पर अधिकार स्थापित कर लिया।

1 "The new Rulers of Turkey wanted progress and they wanted union." —*op. cit.*
2 "Young Turkes were bent upon Turkey's taking her place as a great empire among the progressive nations of the world, and above all upon her freeing herself from the tutelage of foriegn powers." —Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 324.

अतः स्पष्ट था कि एक ओर तो युवा तुर्क प्रशासनिक अनुभवहीन थे और दूसरे, यूरोपीय देशों का हस्तक्षेप अब और अधिक सक्रिय हो गया था। यूरोपीय देशों की सक्रियता उनके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी। ऐसी परिस्थिति में उन्हें अपनी गृह एवं विदेश नीति का संचालन अपने उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर करना था।

युवा तुर्कों की गृह नीति
(HOME POLICY OF YOUNG TURKS)

युवा तुर्कों ने अपने उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए अपनी गृह नीति निर्धारित की। **उनकी गृह नीति का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है :**

(अ) विघटनकारी तत्वों का अन्त करने का प्रयास—युवा तुर्कों की धारणा थी कि तुर्की की एकता एवं अखण्डता के लिए विघटनकारी तत्व एक भयंकर खतरा है। युवा तुर्कों ने जातीय एवं राष्ट्रीय नामों के राजनीतिक संगठन को विघटनकारी तत्वों की संज्ञा दी। अत: **16 अगस्त, 1909 ई. को समिति की सरकार ने 'संगठन का कानून' पास कर इस प्रकार के संगठनों को अवैध घोषित कर दिया।** 27 अगस्त, 1909 ई. को डकैती निरोधक कानून पास किया गया। इस कानून के तहत राजनीतिक एवं जातीय संगठनों को कुचलने के लिए सैनिक दस्ते बनाए गए। युवा तुर्कों का यह कार्य पूर्ण सफल नहीं हो पाया।

(ब) पान ओटोमैनिज्म (Pan Ottomanism)—पान ओटोमैनिज्म का तात्पर्य वृहद् ओटोमनवाद से है। इस नीति का तात्पर्य यह था कि सम्पूर्ण ओटोमन साम्राज्य के लोग एकता के सूत्र में बंधे। इस एकता को लाने की जो नीति युवा तुर्कों ने अपनाई वह इतिहास में पान ओटोमैनिज्म के नाम से जानी जाती है।

युवा तुर्क इस बात में विश्वास रखते थे कि विभिन्न जातियों में एकता स्थापित करने के लिए समानता स्थापित करने के सिद्धान्त पर बल देना होगा। अतः सरकार ने ओटोमन साम्राज्य की सम्पूर्ण जनता को कानून की दृष्टि से समान घोषित करते हुए मानव अधिकारों की घोषणा की। वैयक्तिक स्वतन्त्रता भी प्रदान की गई। वैयक्तिक स्वतन्त्रता के आधार पर अब भेदभाव की नीति का अन्त कर दिया गया। तुर्की को लोकतन्त्रात्मक राज्य का ढांचा प्रदान करने के लिए प्रजातान्त्रिक संस्थाओं का विकास किया गया। **संसद की स्थापना कर उसे दो सदनों में विभक्त किया गया। प्रथम, प्रतिनिधि सभा और द्वितीय सीनेट।** संसद देश के लिए कानूनों का निर्माण करती थी। देश की शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन किया गया। एकता लाने के प्रयास हेतु सम्पूर्ण देश में समान शिक्षा पद्धति लागू की गई।

युवा तुर्कों की वृहद् ओटोमनवाद की नीति अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाई। इस नीति के सैद्धान्तिक पक्ष की महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। व्यावहारिक रूप में भी यह नीति कारगर हो जाती तो युवा तुर्कों का यह प्रयोग तुर्की के लिए वरदान सिद्ध होता, परन्तु तुर्की की तत्कालीन स्थिति में वृहद् ओटोमनवाद की नीति पूर्णत: असफल रही। इसका सबसे बड़ा कारण तुर्की साम्राज्य का विचित्र संगठन था। लम्बे समय से विभिन्न जातियां इस साम्राज्य में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ निवास करती चली आई थीं। अब्दुल हमीद के शासन काल में इस पार्थक्य में अत्यधिक वृद्धि हो चुकी थी। उसके शासन काल में अपनाई गई **'पान इस्लामिज्म' की नीति ने मुसलमानों को जो विशेषाधिकार प्रदान कर दिए थे उन्हें मुस्लिम जनता आसानी से कैसे छोड़ सकती थी? अतः उन्होंने अरेबिया में पान ओटोमनवाद के विरुद्ध 'मोहाबी**

आन्दोलन' छेड़ दिया। जब युवा तुर्क पान ओटोमनवाद का दावा कर रहे थे तब बल्गेरिया, यूनान एवं रूमानिया जैसे छोटे-छोटे क्षेत्रों की जनता राष्ट्रवादिता की भावना से आन्दोलित होकर पृथक् राज्य की कल्पना कर रही थी, ईसाई भी युवा तुर्कों की नीति से अप्रसन्न थे।

(स) वृहद् इस्लामवाद (Pan Islamism)—पान ओटोमनवाद की असफलता में मुस्लिम वर्ग का विशेष हाथ था। अतः युवा तुर्कों ने साम्राज्य के मुस्लिम वर्ग को अपने समर्थन में लेकर अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न करने के मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया। **उनकी धारणा अब इस ओर मुड़ गई कि तुर्की में केवल मुसलमानों को विशेष सुविधाएं देकर साम्राज्य को संगठित किया जा सकता है।** उनकी यह नीति वृहद् इस्लामवाद की नीति कहलाती थी। वस्तुतः इस नीति का जनक अब्दुल हमीद द्वितीय था। शिक्षा, कानून एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में मुस्लिम वर्ग को विशेषाधिकार प्रदान किए गए।

इस नीति के अवलम्बन से एकता की कल्पना करना अत्यन्त मूर्खता थी। साम्राज्य में निवास करने वाली गैर-मुस्लिम जातियों ने युवा तुर्कों को अपना शत्रु समझना प्रारम्भ कर दिया। साम्राज्य में फूट का वातावरण उत्पन्न हो गया, स्वयं मुस्लिम वर्ग भी विभक्त था, इराक, मक्का एवं सीरिया के मुसलमान अपने को अन्य मुसलमानों से अलग मानते थे। **अतः सभी मुसलमानों का सहयोग भी युवा तुर्कों को न मिल सका और वृहद् इस्लामवाद की नीति का अवलम्बन कर एकता स्थापित करने की नीति में वे पूर्णतः असफल रहे।**

(द) यामी तुरानिज्म (Yami Turanism)—अपनी दोनों नीतियों में असफल हो जाने के पश्चात् युवा तुर्कों ने वृहत्तुर्कवाद अर्थात् यामी तुरानिज्म की नीति का अवलम्बन किया। युवा तुर्कों को विदेशी आक्रमण के समय तुर्क मुसलमानों का सहयोग प्राप्त हुआ था। अतः अब युवा तुर्कों ने इस बात को कहना प्रारम्भ कर दिया कि केवल तुर्कों के सहयोग से ही एकता स्थापित की जा सकती है। **अतः उन्होंने साम्राज्य की तुर्क जाति को संगठित करने का प्रयत्न किया। उन्हें विशेषाधिकार प्रदान किए गए। उनकी यह नीति इतिहास में यामी तुरानिज्म के नाम से जानी जाती है।** उनकी यह नीति भी असफल सिद्ध हुई। इस नीति के द्वारा तो केवल मुसलमानों की एक शाखा से ही समर्थन की आशा की जा सकती थी।

(य) युवा तुर्कों के महत्वपूर्ण कार्य—युवा तुर्कों का शासन उनकी गृह नीति के सन्दर्भ में कतिपय क्षेत्रों में उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। **युवा तुर्कों ने प्रशासनिक क्षेत्रों नें नई नीतियों का अवलम्बन किया।** प्रान्तीय प्रशासनिक पद्धति को अपनाया। पुलिस एवं नगर पालिका की व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए। अग्निशमन दल, नालियों की व्यवस्था एवं सफाई कर्मचारियों की व्यवस्था ओटोमन साम्राज्य को उनकी महत्वपूर्ण देन है।

आर्थिक दृष्टि से उन्होंने भूमि सुधार पर विशेष ध्यान दिया। जमींदारी प्रथा को अन्तिम रूप से समाप्त करने के लिए युवा तुर्क स्मरणीय हैं। 1917 ई. में जिस उदार राष्ट्रीय बैंक का अस्तित्व सामने आया उसे खोलने का निश्चय 1716 ई. में युवा तुर्क कर चुके थे। उनके द्वारा दो बीमा कम्पनियों की भी स्थापना की गई।

यही नहीं शिक्षा का प्रसार भी द्रुतगति से हुआ। प्राथमिक, माध्यमिक एवं तकनीकी शिक्षा के स्त्रियों द्वारा भी अर्जित कर सकने की व्यवस्था की गई।

शिक्षा के विकास ने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से तत्कालीन समाज को प्रभावित किया। समाजशास्त्रियों को विशेष सम्मान दिया जाने लगा। अहमद रिजा एवं सहीबुद्दीन

तत्कालीन महत्वपूर्ण विचारक थे। **अब्दुल्लाह जौदत ने 'इजतिहाद' नामक पत्रिका में 'जागरित निद्रा' नामक शीर्षक के अन्तर्गत तुर्की की जिस सामाजिक स्थिति का चित्रण खींचा था वह अत्यन्त महत्वपूर्ण था।** वास्तव में, यदि यह कहा जाए कि युवा तुर्क शासन काल (एकता एवं प्रगति समिति के शासन काल) में तुर्की में सामाजिक चिन्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

विदेश नीति
(FOREIGN POLICY)

तुर्की में जिन महत्वपूर्ण उद्देश्यों एवं जोश के साथ युवा तुर्क आन्दोलन के तहत् महत्वपूर्ण क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था उसने यूरोपीय देशों को चौकन्ना कर दिया था। अब प्रत्येक यूरोपीय देश की दृष्टि तुर्की के सन्दर्भ में अत्यन्त सजग हो गई। यूरोपीय राज्यों ने जब **युवा तुर्की** सरकार को अपनी गृह नीति के संचालन में असफल होते देखा तो अपनी गतिविधि तीव्र कर दी। आस्ट्रिया ने बोस्निया एवं हर्जेगोबिना पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर ली।

इससे ओटोमन साम्राज्य में उथल-पुथल प्रारम्भ हो गयी। यत्र-तत्र विद्रोह होने लगे। अक्टूबर, 1911 ई. में बाल्कान के चारों राज्यों—सर्बिया, बल्गेरिया, मोंटेनेग्रो एवं यूनान ने तुर्की का मिलकर सामना किया। युवा तुर्क पराजित हुए। 1913 ई. में मेसिडोनिया का प्रश्न द्वितीय बाल्कान युद्ध का कारण बना। बाल्कान राज्यों की महत्वाकांक्षाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई। तुर्की का साम्राज्य अब मात्र दार्देनल्स, बास्फोरस एवं कुस्तुन्तुनियां तक सीमित रह गया।

एकता एवं प्रगति समिति के ही शासन काल में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। तुर्की ने जर्मनी का साथ देते हुए मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। युवा तुर्क सरकार को युद्ध में लगभग प्रत्येक मोर्चे पर असफलता का मुंह देखना पड़ा। **अन्ततः 10 अगस्त, 1920 ई. को तुर्की को अपमानित होकर सेव्रे की सन्धि करनी पड़ी।** सीरिया, फिलिस्तीन एवं मैसोपाटामिया को तुर्की से स्वतन्त्रता मिल गई और इनके भविष्य का निर्धारण मित्र राष्ट्रों पर छोड़ दिया। आर्मेनिया को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। कुर्दिस्तान को स्थानीय शासन प्रदान किया गया। जलडमरुमध्यों में (डार्डेनेलीज तथा बास्फोरस) अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। ग्रीस को थ्रेस, एड्रियाटिक सागर के कुछ टापू तथा गेलीपोली के द्वीप दे दिए गए। इस प्रकार तुर्की से चार लाख चालीस हजार वर्गमील भूमि चली गई। **तुर्की एक छोटा-सा देश रह गया।** तुर्की पर आर्थिक नियन्त्रण लगा दिए गए।[1] इस प्रकार युवा तुर्कों का शासनकाल उनकी गृह एवं विदेश नीति से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने में पूर्णतः असफल रहा। इससे जनता संत्रस्त हो गई।[2]

1 "Treaty of Sevres thoroughly humiliated Turkey and reduced her to status of a minor state whose territory was small and whose sovereignty was subject to limitations amounting to a virtual protectorate."
—Geroge Lenczowski, *The Middle East in the World Affair*, p. 102.

2 "The Young Turkes merely continued the despotism of Abdual Hamid. They were far worse than abdual Hamid."
—H. A. Gibbons, *The New Map of Europe*, pp. 174-75.

असफलता के कारण
(CAUSES OF FAILURE)

युवा तुर्कों की असफलता के कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है :

(अ) अपनी नीतियों में दृढ़ न रहना—युवा तुर्कों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समयानुसार प्रमुख रूप में पान ओटोनिज्म, पान इस्लामिज्म एवं वृहद् तुर्कवाद की नीतियों का सहारा लिया। वे किसी एक नीति पर नहीं चले। **उन्होंने कभी गैर-मुस्लिमों को प्रसन्न करने की नीति अपनाई तो कभी मुस्लिमों को प्रसन्न करने की नीति अपनाई।** कभी तो उन्होंने मुसलमानों में केवल तुर्क वर्ग के सन्तुष्टीकरण की नीति का पालन किया। यह सब उनकी अदूरदर्शिता एवं संकल्प शक्ति के अभाव के कारण ही युवा तुर्कों ने कभी भी अपनी नीति पर विश्वास नहीं किया और तुरन्त अन्य नीतियों के प्रयोग में जुट गए, इससे समाज का प्रत्येक वर्ग उनसे असन्तुष्ट हो गया।

(ब) प्रशासनिक अनुभवहीनता—युवा तुर्कों को प्रशासनिक अनुभव भी नहीं था। तुर्की सांम्राज्य में विभिन्न जातियां, धर्म, रीति-रिवाज एवं परम्पराएं थीं। इन परिस्थितियों में आवश्यक यह था कि विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर शिथिल संघ शासन की स्थापना की जाती। युवा तुर्कों ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने केन्द्रीकरण की नीति अपनाई। साथ ही संसदीय शासन व्यवस्था के लिए परम्परा की आवश्यकता थी, जिसका तुर्की में अभाव था। योग्य नेता का अभाव उनकी प्रशासनिक अनुभवहीनता का महत्वपूर्ण कारण था।

(स) तुर्कीकरण की नीति—युवा तुर्कों ने सम्पूर्ण तुर्की का तुर्कीकरण करने की जिस नीति का अवलम्बन किया वह तुर्की जैसे सांस्कृतिक विविधता वाले देश में असफल होना ही था। उन्होंने दूसरी जातियों के धर्म, भाषा एवं संस्कृति का अन्त कर तुर्की भाषा, धर्म एवं संस्कृति को लादने का प्रयत्न किया। उन्होंने मैसीडोनिया को तुर्कप्रधान बनाया। आर्मीनियों की हत्याएं कीं। यूनानियों के चर्च को नष्ट कर इस्लाम लादने का प्रयत्न किया। यह सब किसी भी जाति के लिए असह्य था। अतः युवा तुर्कों की दमन नीति से दुःखी होकर बहुसंख्यक यूनानी, बल्गेरियन एवं सर्व आदि, विदेश भाग गए और वहां से तुर्की के विरुद्ध प्रचार अभियान में संलग्न हो गए।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति—अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी युवा तुर्कों की असफलता के लिए उत्तरदायी थी। साम्राज्य की आन्तरिक उथल-पुथल का लाभ उठाकर आस्ट्रिया ने बोस्निया एवं हर्जेगोबिना पर अधिकार किया तो बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। आन्तरिक विद्रोहों में फंसे युवा तुर्क असहाय होकर सब कुछ देख भर सके, कर कुछ नहीं पाए। 1912 एवं 1913 के बाल्कान युद्धों में उनकी असफलता ने तुर्की को अत्यन्त क्षति पहुंचाई, प्रथम युद्ध में पराजय के पश्चात् सेव्रे की सन्धि तो उनके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई।

युवा तुर्क आन्दोलन का प्रभाव
(IMPACT OF YOUNG TURK MOVEMENT)

युवा तुर्कों के आन्दोलन का परीक्षण स्पष्ट करता है कि युवा तुर्क यद्यपि अपनी गृह एवं विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः असफल रहे, परन्तु इस आन्दोलन ने तुर्की ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। संक्षेप में, **इसके प्रभाव को अग्रवत् इंगित किया जा सकता है :**

(अ) तुर्की में जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति का श्रीगणेश—तुर्की में शताब्दियों से चले आ रहे प्राचीन एकतन्त्रात्मक निरंकुश शासन की परम्परा को तोड़ने का कार्य युवा तुर्क आन्दोलन ने किया। **इस अन्दोलन ने ही तुर्की में सर्वप्रथम संसदीय शासन की स्थापना** 1908 **ई. में की।** इस प्रकार इस आन्दोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि सुल्तान की परम्परा के आधार पर ही शासन की नीति का निर्धारण नहीं होता है। सुल्तान के पैतृक अधिकार को जनमत चुनौती दे सकता है, यह इसी आन्दोलन ने स्पष्ट किया था।

(ब) सेना में सुधारवादी प्रवृत्ति को जन्म—युवा तुर्क आन्दोलन ने सेना का प्रयोग जिस प्रकार सुल्तान के विरुद्ध करने में सफलता अर्जित की थी, उसने उससे स्पष्ट कर दिया कि सेना सुल्तान के प्रति अन्धभक्ति नहीं रख सकती। यदि जनवादी सुधार आन्दोलन होंगे तो सेना सुधारकों का साथ भी दे सकती है। इस प्रकार इस आन्दोलन ने सेना को जनसाधारण से भी जोड़ दिया।

(स) अन्तर्जातीय वैमनस्य का विकास—प्रारम्भ में युवा तुर्कों ने न्याय, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व की बात कही तो थी, परन्तु कालान्तर में अपनी नीतियों में असफल हो जाने से उन्होंने विभिन्न प्रयोगों का जो सिलसिला प्रारम्भ किया उसने उत्पन्न जन असन्तोष को दबाने के लिए युवा तुर्क गैर तुर्कों के प्रति अत्यधिक अनुदार एवं असहिष्णु बन गए। उनकी इस नीति ने अन्तर्जातीय वैमनस्य का विकास कर दिया।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव—अन्तर्जातीय असहिष्णुता की नीति के कारण बहुत बड़ी संख्या में गैर तुर्क विदेशों में चले गए और उन्होंने वहां से तुर्की के विरुद्ध प्रचार अभियान प्रारम्भ कर दिया। तुर्कीकरण की युवा तुर्कों की नीति ने आन्तरिक विद्रोहों को जन्म दे दिया। 5 अक्टूबर, 1908 ई. को बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। 7 अक्टूबर, 1908 को क्रीट ने यूनान से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 7 अक्टूबर, 1908 को ही आस्ट्रिया ने बोस्निया व हर्जेगोबिना पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। **ये कार्य बर्लिन की सन्धि** 1878 **का उल्लंघन था।** कालान्तर में बर्लिन की सन्धि के उल्लंघन के प्रश्नों ने ही बाल्कान युद्धों एवं विश्वयुद्ध को जन्म दिया। यदि युवा तुर्कों ने अन्तर्जातीय सहयोग एवं सद्भावना पर बल दिया होता और तुर्कीकरण की नीति न अपनाई होती तो गैर तुर्क संगठित न होते। इस प्रकार युवा तुर्कों की नीति के कारण ही माण्टेनीग्रो, बल्गेरिया, यूनान एवं सर्बिया ने मिलकर तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जिसने सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया।

इस प्रकार माना जा सकता है कि युवा तुर्क आन्दोलन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ओटोमन साम्राज्य एवं विश्व राजनीति को प्रभावित किया। यही कारण है कि हेजन महोदय ने युवा तुर्क आन्दोलन को तुर्की एवं यूरोप के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना माना है।

बाल्कान युद्ध (1912-13 ई.)
(BALKAN WARS)

विश्व इतिहास को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं में दोनों बाल्कान युद्धों (1912-13) का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्कान प्रदेश में आने वाले क्षेत्र ओटोमन साम्राज्य के अंग थे। यह ठीक है कि बाल्कान क्षेत्र में निवास करने वाली यूनानी, सर्व, बल्गेरियन, आदि जातियों में सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, परन्तु युवा तुर्कों

की नृशंस नीतियों ने उन्हें एक गुट के रूप में संगठित होने की ओर प्रेरित किया। वे जिस गुट के रूप में संगठित हुए उसे इतिहास में बाल्कान लीग (Balkan League, 1912) के नाम से जाना जाता है। प्रथम बाल्कान युद्ध अवश्य ही बाल्कान लीग एवं तुर्की के मध्य में हुआ था, परन्तु द्वितीय बाल्कान युद्ध बाल्कान राज्यों के आपसी मतभेदों के कारण आपस में ही हुआ था, जिसमें लाभ की दृष्टि से तुर्की ने भी भाग लिया। संक्षेप में, दोनों बाल्कान युद्धों के कारण, घटनाओं एवं परिणामों का विवरण निम्नवत् है :

प्रथम बाल्कान युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE FIRST BALKAN WAR)

प्रथम बाल्कान के युद्ध के कारण निम्नलिखित थे—

(अ) युवा तुर्कों की तुर्कीकरण की नीति—युवा तुर्क आन्दोलन सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय के निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकने में सफल तो हो गया था, परन्तु उनकी तुर्कीकरण की नीति ने ओटोमन साम्राज्य में निवास करने वाली गैर तुर्की जातियों को असन्तुष्ट कर दिया। **युवा तुर्कों की यह सबसे बड़ी भूल थी कि उन्होंने साम्राज्य में एकता स्थापित करने के लिए साम्राज्य में निवास करने वाली अन्य जातियों की सांस्कृतिक भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था।** युवा तुर्कों ने हजारों आर्मीनियमों की हत्या कर दी। अल्बानिया के मुसलमानों का दमन किया गया तथा क्रीट एवं मैसीडोनिया में यूनानियों पर नृशंस अत्याचार कर उनका दमन किया गया। गैर तुर्क जातियां युवा तुर्कों की नीति के विषय में अब यह मानने लगीं कि यदि उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित न की तो उनकी जाति व संस्कृति विलुप्त हो जाएगी।

(ब) गैर तुर्कियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास—अपनी संस्कृति एवं जाति के अस्तित्व के विलय के प्रश्न ने गैर तुर्कियों में राष्ट्रीयता की भावना को प्रज्ज्वलित कर दिया। वे तुर्की के अधीन न रहकर अब अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहते थे। गैर तुर्कियों की राष्ट्रीयता की भावना तुर्क विरोधी थी, जिसने बाल्कान युद्ध के मार्ग को प्रशस्त किया।

(स) तुर्की साम्राज्य में सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं का प्रभाव—ओटोमन साम्राज्य में सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं के प्रभाव ने प्रथम बाल्कान युद्ध की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अलग-अलग प्रदेशों में निवास करने वाले लोग अब समान धर्म, जाति एवं संस्कृति को आधार मानकर एक राज्य के रूप में संगठित होने पर विचार करने लगे। अतः ओटोमन साम्राज्य में भयंकर विद्रोह होने लगे। बोस्निया, हर्जेगोविना, माण्टेनीग्रो एवं सर्बिया की जनता एक मूल की होने के कारण आपस में संगठित होना चाहती थी। उधर यूनान भी इसी सहजाति व सहधर्म की समानता को आधार मानकर क्रीट, मैसीडोनिया तथा अन्य क्षेत्रों पर अपने आधिपत्य का दावा करने लगा।

(द) तुर्की साम्राज्य की निर्बलता—युवा तुर्कों की गृह नीति की असफलता से उत्साहित होकर आस्ट्रिया ने बोस्नियां एवं हर्जेगोविना पर अपना अधिकार कर दिया था। इसी प्रकार 1908 में बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। आन्तरिक कलहों में फंसी हुई तुर्की की एकता एवं प्रगति समिति सरकार इस तमाशे को देखती भर रह गई, कर कुछ भी नहीं पाई। इससे तुर्की साम्राज्य की निर्बलता और अधिक स्पष्ट हो गई तथा अब गैर तुर्क जातियां उत्साहित होकर तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह में संलग्न हो गईं।

(अ) तुर्की में जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति का श्रीगणेश—तुर्की में शताब्दियों से चले आ रहे प्राचीन एकतन्त्रात्मक निरंकुश शासन की परम्परा को तोड़ने का कार्य युवा तुर्क आन्दोलन ने किया। **इस अन्दोलन ने ही तुर्की में सर्वप्रथम संसदीय शासन की स्थापना 1908 ई. में की।** इस प्रकार इस आन्दोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि सुल्तान की परम्परा के आधार पर ही शासन की नीति का निर्धारण नहीं होता है। सुल्तान के पैतृक अधिकार को जनमत चुनौती दे सकता है, यह इसी आन्दोलन ने स्पष्ट किया था।

(ब) सेना में सुधारवादी प्रवृत्ति को जन्म—युवा तुर्क आन्दोलन ने सेना का प्रयोग जिस प्रकार सुल्तान के विरुद्ध करने में सफलता अर्जित की थी, उसने उससे स्पष्ट कर दिया कि सेना सुल्तान के प्रति अन्धभक्ति नहीं रख सकती। यदि जनवादी सुधार आन्दोलन होंगे तो सेना सुधारकों का साथ भी दे सकती है। इस प्रकार इस आन्दोलन ने सेना को जनसाधारण से भी जोड़ दिया।

(स) अन्तर्जातीय वैमनस्य का विकास—प्रारम्भ में युवा तुर्कों ने न्याय, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व की बात कही तो थी, परन्तु कालान्तर में अपनी नीतियों में असफल हो जाने से उन्होंने विभिन्न प्रयोगों का जो सिलसिला प्रारम्भ किया उसने उत्पन्न जन असन्तोष को दबाने के लिए युवा तुर्क गैर तुर्कों के प्रति अत्यधिक अनुदार एवं असहिष्णु बन गए। उनकी इस नीति ने अन्तर्जातीय वैमनस्य का विकास कर दिया।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव—अन्तर्जातीय असहिष्णुता की नीति के कारण बहुत बड़ी संख्या में गैर तुर्क विदेशों में चले गए और उन्होंने वहां से तुर्की के विरुद्ध प्रचार अभियान प्रारम्भ कर दिया। तुर्कीकरण की युवा तुर्कों की नीति ने आन्तरिक विद्रोहों को जन्म दे दिया। 5 अक्टूबर, 1908 ई. को बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। 7 अक्टूबर, 1908 को क्रीट ने यूनान से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 7 अक्टूबर, 1908 को ही आस्ट्रिया ने बोस्निया व हर्जेगोबिना पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। **ये कार्य बर्लिन की सन्धि 1878 का उल्लंघन था।** कालान्तर में बर्लिन की सन्धि के उल्लंघन के प्रश्नों ने ही बाल्कान युद्धों एवं विश्वयुद्ध को जन्म दिया। यदि युवा तुर्कों ने अन्तर्जातीय सहयोग एवं सद्भावना पर बल दिया होता और तुर्कीकरण की नीति न अपनाई होती तो गैर तुर्क संगठित न होते। इस प्रकार युवा तुर्कों की नीति के कारण ही माण्टेनीग्रो, बल्गेरिया, यूनान एवं सर्बिया ने मिलकर तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जिसने सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया।

इस प्रकार माना जा सकता है कि युवा तुर्क आन्दोलन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ओटोमन साम्राज्य एवं विश्व राजनीति को प्रभावित किया। यही कारण है कि हेजन महोदय ने युवा तुर्क आन्दोलन को तुर्की एवं यूरोप के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना माना है।

बाल्कान युद्ध (1912-13 ई.)
(BALKAN WARS)

विश्व इतिहास को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं में दोनों बाल्कान युद्धों (1912-13) का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्कान प्रदेश में आने वाले क्षेत्र ओटोमन साम्राज्य के अंग थे। यह ठीक है कि बाल्कान क्षेत्र में निवास करने वाली यूनानी, सर्व, बल्गेरियन, आदि जातियों में सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, परन्तु युवा तुर्कों

की नृशंस नीतियों ने उन्हें एक गुट के रूप में संगठित होने की ओर प्रेरित किया। वे जिस गुट के रूप में संगठित हुए उसे इतिहास में बाल्कान लीग (Balkan League, 1912) के नाम से जाना जाता है। प्रथम बाल्कान युद्ध अवश्य ही बाल्कान लीग एवं तुर्की के मध्य में हुआ था, परन्तु द्वितीय बाल्कान युद्ध बाल्कान राज्यों के आपसी मतभेदों के कारण आपस में ही हुआ था, जिसमें लाभ की दृष्टि से तुर्की ने भी भाग लिया। संक्षेप में, दोनों बाल्कान युद्धों के कारण, घटनाओं एवं परिणामों का विवरण निम्नवत् है :

प्रथम बाल्कान युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE FIRST BALKAN WAR)

प्रथम बाल्कान के युद्ध के कारण निम्नलिखित थे—

(अ) युवा तुर्कों की तुर्कीकरण की नीति—युवा तुर्क आन्दोलन सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय के निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकने में सफल तो हो गया था, परन्तु उनकी तुर्कीकरण की नीति ने ओटोमन साम्राज्य में निवास करने वाली गैर तुर्की जातियों को असन्तुष्ट कर दिया। **युवा तुर्कों की यह सबसे बड़ी भूल थी कि उन्होंने साम्राज्य में एकता स्थापित करने के लिए साम्राज्य में निवास करने वाली अन्य जातियों की सांस्कृतिक भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था।** युवा तुर्कों ने हजारों आर्मीनियमों की हत्या कर दी। अल्बानिया के मुसलमानों का दमन किया गया तथा क्रीट एवं मैसीडोनिया में यूनानियों पर नृशंस अत्याचार कर उनका दमन किया गया। गैर तुर्क जातियां युवा तुर्कों की नीति के विषय में अब यह मानने लगीं कि यदि उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित न की तो उनकी जाति व संस्कृति विलुप्त हो जाएगी।

(ब) गैर तुर्कियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास—अपनी संस्कृति एवं जाति के अस्तित्व के विलय के प्रश्न ने गैर तुर्कियों में राष्ट्रीयता की भावना को प्रज्ज्वलित कर दिया। वे तुर्की के अधीन न रहकर अब अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहते थे। गैर तुर्कियों की राष्ट्रीयता की भावना तुर्क विरोधी थी, जिसने बाल्कान युद्ध के मार्ग को प्रशस्त किया।

(स) तुर्की साम्राज्य में सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं का प्रभाव—ओटोमन साम्राज्य में सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं के प्रभाव ने प्रथम बाल्कान युद्ध की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अलग-अलग प्रदेशों में निवास करने वाले लोग अब समान धर्म, जाति एवं संस्कृति को आधार मानकर एक राज्य के रूप में संगठित होने पर विचार करने लगे। अतः ओटोमन साम्राज्य में भयंकर विद्रोह होने लगे। बोस्निया, हर्जेगोविना, माण्टेनीग्रो एवं सर्बिया की जनता एक मूल की होने के कारण आपस में संगठित होना चाहती थी। उधर यूनान भी इसी सहजाति व सहधर्म की समानता को आधार मानकर क्रीट, मैसीडोनिया तथा अन्य क्षेत्रों पर अपने आधिपत्य का दावा करने लगा।

(द) तुर्की साम्राज्य की निर्बलता—युवा तुर्कों की गृह नीति की असफलता से उत्साहित होकर आस्ट्रिया ने बोस्नियां एवं हर्जेगोविना पर अपना अधिकार कर दिया था। इसी प्रकार 1908 में बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। आन्तरिक कलहों में फंसी हुई तुर्की की एकता एवं प्रगति समिति सरकार इस तमाशे को देखती भर रह गई, कर कुछ भी नहीं पाई। इससे तुर्की साम्राज्य की निर्बलता और अधिक स्पष्ट हो गई तथा अब गैर तुर्क जातियां उत्साहित होकर तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह में संलग्न हो गईं।

(य) विदेशी हस्तक्षेप—तुर्की को बीमार राज्य की संज्ञा देने वाले यूरोपीय देशों के अपने-अपने स्वार्थों एवं हितों ने पूर्वी समस्या को अत्यधिक जटिल बना दिया था। इंग्लैण्ड तुर्की साम्राज्य में रूसी प्रभाव का कट्टर विरोधी था। जर्मनी एवं आस्ट्रिया ओटोमन साम्राज्य के प्रश्नों पर एक-दूसरे के पक्षपाती थे। आस्ट्रिया तुर्की के दक्षिण में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। आस्ट्रिया की इस नीति का इटली कट्टर विरोधी था। रूस और सर्बिया सहजाति एवं सहधर्म को आधार मानकर भिन्नता का दावा करते थे। इस प्रकार यूरोपीय शक्तियां अपने-अपने हितों की दृष्टि में पर्याप्त रुचि ले रही थीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि युवा तुर्कों की तुर्कीकरण की नीति ने ओटोमन साम्राज्य में निवास करने वाली गैर तुर्की जातियों में तुर्की के विरुद्ध राष्ट्रीयता की भावना को प्रज्ज्वलित कर दिया जिसे सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं ने और अधिक स्पष्ट कर दिया। तुर्की साम्राज्य की निर्बलता एवं विदेशी शक्तियों के तुर्की में हस्तक्षेप ने गैर तुर्की जातियों की राष्ट्रीयता की भावना को प्रज्ज्वलित करने में आग में घी का कार्य किया। अतः पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर अक्टूबर 1912 ई. में बाल्कान लीग के सदस्यों—सर्बिया, यूनान, माण्टेनीग्रो एवं बल्गेरिया ने तुर्की के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए युद्ध की घोषणा कर दी।

प्रथम बाल्कान युद्ध की घटनाएं
(EVENTS OF THE FIRST BALKAN WAR)

यूनान, बल्गेरिया, सर्बिया एवं मेण्टेनीग्रो द्वारा तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (15 अक्टूबर, 1912 ई.) के जवाब में तुर्की ने भी 18 अक्टूबर को युद्ध की घोषणा कर दी। नवम्बर 1912 के प्रथम सप्ताह तक यूनान ने मेसीडोनिया पर अधिकार कर लिया। सालोनिका का बन्दरगाह भी उसके अधीन हो गया। बल्गेरिया ने तुर्कों को किर्क, किलिसी एवं लूसी बर्गस के युद्धों में करारी पराजय दी। सर्बिया ने मोनास्टीर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस आश्चर्यजनक सफलता का उल्लेख करते हुए ग्यूशाफ ने लिखा है, **"बाल्कान संघ के चार छोटे देशों जिनकी जनसंख्या केवल 10,000,000 के लगभग थी, महान् शक्ति ओटोमन साम्राज्य को एक माह के भीतर ही तहस-नहस कर दिया।"**[1]

तुर्की की इस असफलता ने उसे भयभीत कर दिया। तुर्की के पास अब यूरोप में केवल जैनिना, स्कुटारी, एड्रिआनोपुल एवं कुस्तुन्तुनिया ही शेष थे। अतः तुर्की ने सन्धि की बात कहनी प्रारम्भ कर दी। दिसम्बर 1912 ई. में लन्दन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया, परन्तु बल्गेरिया द्वारा एड्रियानोपुल की मांग के प्रश्न पर तुर्की की सहमति न होने से मार्च 1813 ई. में पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। पुनः युद्ध का आरम्भ तुर्की के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। अब मई तक उसके हाथ से जैनिना, एड्रियानोपुल एवं स्कुटारी भी निकल गए। अतः विवश होकर तुर्की ने पुनः सन्धि हेतु प्रार्थना की और 30 मई, 1913 ई. को लन्दन की सन्धि ने प्रथम बाल्कान युद्ध का अन्त किया।

लन्दन की सन्धि 30 मई, 1913 ई.—लन्दन की सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने निम्नलिखित अनुबन्ध स्वीकार कर लिए :

1 ......Within the brief space of one month the Balkan Alliance demolished the Ottoman Empire, four tiny Countries with a population of some 10,000,000 souls defeating a great power inhabitants numbered 25,000,000. —*Gueshaff*

(अ) क्रीट पर यूनान का अधिकार मान लिया गया।
(ब) यूनान द्वारा इजियन सागर के जिन टापुओं पर अधिकार कर लिया गया था, उनके सम्बन्ध में यूरोप की महान् शक्तियां फैसला करेंगी।
(स) अल्बानिया की सीमाओं का निर्धारण यूरोप की महान् शक्तियों के निर्णय पर छोड़ दिया गया।
(द) ईजियन सागर पर अवस्थित एनोज से लेकर काले सागर पर स्थित मीडिआ तक एक विभाजक रेखा खींचकर रेखा के पश्चिम के लगभग सम्पूर्ण तुर्की प्रदेश को मित्र राष्ट्रों को सौंप दिया गया।

इस प्रकार लन्दन की सन्धि ने यूरोप स्थित तुर्की साम्राज्य का लगभग अन्त कर दिया। हेजन के अनुसार, '**यूरोप में सुल्तान की सल्तनत प्रायः शून्य बिन्दु तक पहुंच गई। पांच शताब्दियों के गौरवपूर्ण अधिकार के पश्चात् उसने अपने को यूरोप से प्रायः बहिष्कृत पाया।**''[1]

द्वितीय बाल्कान युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE SECOND BALKAN WAR)

लन्दन की सन्धि 1913 ई. प्रथम बाल्कान युद्ध की समाप्ति थी, परन्तु सन्धि की अस्पष्टता ने बाल्कान संघ के सदस्य देशों में बीच बंटवारे को लेकर विभेद उत्पन्न कर दिया। **युद्ध के विजेता राष्ट्रों ने निम्नलिखित बातों को लेकर आपस में उलझना प्रारम्भ कर दिया :**

(अ) मैसीडोनिया के सीमा निर्धारण के प्रश्न को लेकर बल्गेरिया एवं यूनान में आपसी मतभेद था। दोनों देशों ने 7 अप्रैल, 1913 ई. को सीमा विवाद निपटाने हेतु एक आयोग गठित किया, परन्तु सालोनिका के प्रश्न पर यूनान एवं बल्गेरिया की समान सहमति न होने से आयोग असफल हो गया। वास्तव में, यूनान और बल्गेरिया दोनों ही सालोनिया को अपने अधिकार में रखना चाहते थे।

(ब) अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए बल्गेरिया ने रूमानिया को अपने पक्ष में लेने का प्रयत्न करते हुए 7 मई, 1913 ई. को रूमानिया को वचन दिया कि वह उसे सिलिस्ट्रिआ एवं डोबूजा का कुछ भाग देगा। रूमानिया इससे सन्तुष्ट था। उसने यूनान एवं सर्बिया की स्थिति स्पष्ट कर दी

(स) तीसरी उलझन सर्बिया एवं बल्गेरिया में अल्बानिया राज्य के निर्माण के प्रश्न को लेकर थी। सर्बिया का दावा था कि उसका सामुद्रिक विस्तार अल्बानिया राज्य के निर्माण होने पर सम्भव नहीं हो पाएगा। अतः बल्गेरिया को एक बन्दरगाह देकर हर्जाना चुकाना चाहिए। सर्बिया के मित्र रूस ने बल्गेरिया द्वारा उक्त दावे पर अस्वीकृति देने पर एक मध्यस्थता प्रस्ताव पेश किया। बल्गेरिया ने रूसी प्रस्ताव को यथावत् मानने से इन्कार कर दिया।

उक्त प्रश्नों से स्पष्ट है कि यूनान एवं सर्बिया दोनों का झगड़ा बल्गेरिया के साथ था। बल्गेरिया विजित प्रदेशों के अधिकांश भूभाग का दावा इस आधार पर पेश कर रहा था कि प्रथम बाल्कान युद्ध में सर्वाधिक विजय उसने प्राप्त की है। यूनान, सर्बिया एवं रूमानिया का दावा था कि सम्मिलित रूप से तुर्की को परास्त किया गया है, अतः प्रदेश विभाजन सभी के हितों को दृष्टि में रखकर समान रूप से होना चाहिए। बल्गेरिया ने जो कि प्रथम बाल्कान

1 "The Sultan's dominions in Europe had shrunk nearly to the vanishing point. After five centuries of proud possession, he found himself almost expelled from Europe."

युद्ध में अपनी अभूतपूर्व उपलब्धि से मदान्ध था, 29 जून, 1913 ई. को सर्बिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस घटना से द्वितीय बाल्कान युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध की घोषणा होते ही यूनान एवं रूमानिया ने भी सर्बिया का पक्ष लेते हुए बल्गेरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। तुर्की ने जो कि पारस्परिक झगड़ों से लाभ का इच्छुक था, सर्बिया पक्ष लिया। इस प्रकार एक पक्ष में अकेला बल्गेरिया था और दूसरे पक्ष में सर्बिया, यूनान, रूमानिया एवं तुर्की थे।

युद्ध की घटनाएं (Events of the War)

29 जून, 1913 ई. से प्रारम्भ होने वाले द्वितीय बाल्कान युद्ध में पूर्णतः सम्मिलित सेना ही छाई रही। सर्बिया एवं यूनान से मैसीडोनिया ने बल्गेरियनों को भागने पर मजबूर
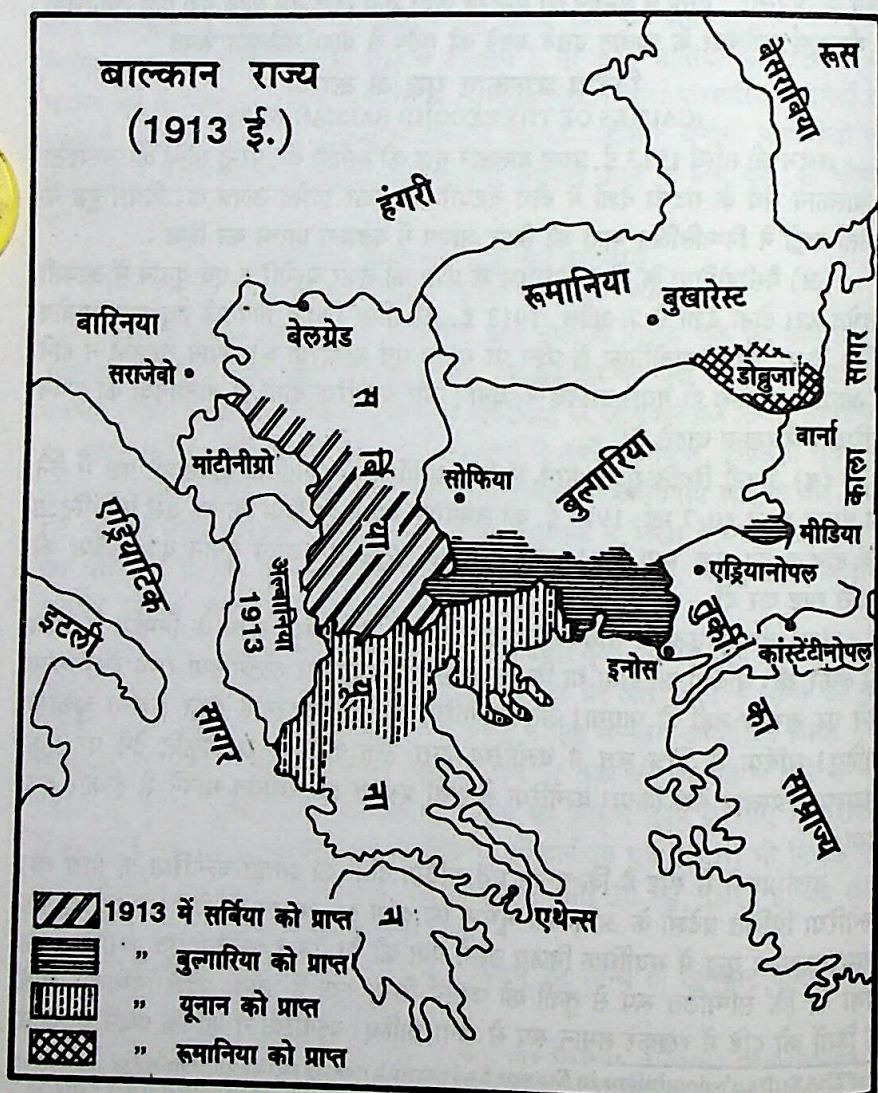
किया। दोनों पक्षों ने एक-दूसरी शत्रुपक्षीय जातियों की नृशंस हत्याएं कीं। 9 जुलाई, 1913 ई. को सिलिस्ट्रिआ पर रूमनिया का अधिकार हो गया। 20 जुलाई को एड्रियानोपुल पर तुर्की का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस प्रकार लगातार पराजय से भयभीत होकर बल्गेरिया ने आत्मसमर्पण कर दिया और 10 अगस्त, 1913 ई. को दोनों पक्षों के बीच **'बुखारेस्ट की सन्धि'** हुई।

बुखारेस्ट की सन्धि—10 अगस्त 1913 ई. को बुखारेस्ट की सन्धि के अनुबन्ध अग्रवत् थे :

(अ) मैसीडोनिया का बंटवारा कर दिया गया। सर्बिया को मध्य मैसीडोनिया मिला। पश्चिमी मैसीडोनिया के प्रदेश माण्टेनीग्रो को दे दिए गए। यूनान को दक्षिण मैसोडोनिया दे दिया गया।

(ब) सिलिस्ट्रिआ का दुर्ग एवं डोबुआ की एक पट्टी रूमानिया को दे दी गई।

(स) सालोनिका एवं एपिरस पर यूनान का अधिकार मान लिया गया। पूर्व में मेस्टा का समुद्र तट भी यूनान को दे दिया गया।

(द) एड्रियानोपुल, डेमोटिका एवं किर्क किलिसी पर तुर्की का अधिकार मान लिया गया।

(य) बल्गेरिया के ईजियन सागर तक पहुंचने के लिए डेडीगैच के बन्दरगाह के पास की एक संकरी पट्टी मिली।

इस प्रकार द्वितीय बाल्कान युद्ध का अन्त हुआ। **सन्धि ने बल्गेरिया का पूर्ण मानमर्दन कर दिया।** वास्तव में, यदि परीक्षण किया जाए तो यह सन्धि किसी को भी सन्तुष्ट न कर सकी। फलस्वरूप इसके दूरगामी परिणाम हुए जिन्होंने विश्वयुद्ध को जन्म देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बाल्कान युद्धों ने तुर्की का पतन कर शक्ति सन्तुलन को प्रभावित किया।

बाल्कान युद्धों का प्रभाव
(IMPACT OF BALKAN WARS)

युवा तुर्कों की आन्तरिक नीति के परिणामस्वरूप बाल्कान क्षेत्र में जो उथल-पुथल प्रारम्भ हुई थी, उसने प्रथम बाल्कान युद्ध को जन्म दिया था, परन्तु बाल्कान राष्ट्रों के आपसी मतभेदों में उलझने के कारण द्वितीय बाल्कान युद्ध हुआ। इन युद्धों ने बाल्कान क्षेत्र के प्रत्येक राष्ट्र की प्रादेशिक स्थिति में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, उससे बाल्कान राष्ट्रों की ही नहीं यूरोप की महाशक्तियों की राजनीतिक विचारधारा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, जिसने प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संक्षेप में, **बाल्कान राष्ट्रों की प्रादेशिक परिवर्तनों एवं उनके तथा महाशक्तियों की राजनीतिक विचारधारा के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में बाल्कान युद्ध के प्रभाव का विवरण निम्नांकित है :**

(अ) यूनान—दोनों बाल्कान युद्धों का अन्त वास्तव में बुखारेस्ट की सन्धि ने ही किया था। दोनों युद्धों के पश्चात् अन्ततः यूनान को सालोनिका, एपिरस, क्रीट, आदि महत्वपूर्ण क्षेत्र प्राप्त हो गए, परन्तु यूनान अल्बानिया के दक्षिणी भाग, इम्बोज एवं टेनीडोज द्वीपों, थ्रेस एवं पूर्वी मैसीडोनिया में अपने आधिपत्य का दावा करता था। उसकी ये मांगें पूर्ण न हो

सकीं। **इधर आस्ट्रिया सालोनिका पर अधिकार करना चाहता था, परन्तु यूनान के आधिपत्य ने उसे यूनान का कट्टर शत्रु बना दिया।**

(ब) बल्गेरिया—युद्ध के पश्चात् अन्ततः सबसे अधिक हानि बल्गेरिया को हुई। उसे ईजियन सागर तक पहुंचने के लिए डैडीगैच के बन्दरगाह के पास की एक संकरी पट्टी दी गई। उसे मैसीडोनिया, औचीडा एवं मोनास्टीर को छोड़ना पड़ा। वह कवाला के बन्दरगाह पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था, परन्तु यह यूनान को दे दिया गया। निःसन्देह बुखारेस्ट की सन्धि उसका घोर अपमान थी। अतः वह इस सन्धि को तोड़ने के लिए समय की प्रतीक्षा में था।

(स) सर्बिया—सर्बिया को युद्ध के पश्चात् मध्य मैसीडोनिया, नोवीबाजार एवं प्राचीन सर्बिया प्राप्त हो गया था, परन्तु सर्बिया समुद्र तट पर अधिकार करना चाहता था। अल्बानिया का निर्माण होने से उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। **सर्बिया ने आस्ट्रिया एवं जर्मनी को इस बात के लिए दोषी ठहराया।** वास्तव में सर्बिया बोस्निया एवं हर्जेगोविना पर अधिकार करना चाहता था। इसका प्रधान कारण यह था कि आस्ट्रिया में स्लाव जाति निवास करती थी। अतः दोनों के मध्य पारस्परिक मतभेद और अधिक स्पष्ट एवं मुखरित हो गए।

(द) रूमानिया—रूमानिया को सिलिस्ट्रिआ एवं डोबुजा की पट्टी से सन्तोष नहीं हुआ। वह तो वृहत्तर रूमानिया का निर्माण करना चाहता था। ट्रांसिलवेनिया, बुकोविना एवं बसेराविया पर उसकी दृष्टि प्रारम्भ से ही लगी थी, परन्तु उसे ये क्षेत्र प्राप्त न हो सके। रूमानिया ने इन क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए जातीय प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। रूमानिया जाति के बहुसंख्यक लोग आस्ट्रिया एवं रूस में निवास करते थे। अतः रूमानिया के इस प्रचार ने आस्ट्रिया व रूस के कान खड़े कर दिए।

(य) तुर्की—बाल्कान युद्धों के पश्चात् की अन्तिम स्थिति से तुर्की सन्तुष्ट नहीं था, क्योंकि इन दोनों युद्धों ने उसका विघटन कर दिया था।

(र) माण्टेनीग्रो—माण्टेनीग्रो स्कुटारी एवं समुद्र तट पर अपना आधिपत्य स्थापित न होने से सन्तुष्ट नहीं था।

(ल) अल्बानिया—अल्बानिया का निर्माण एक स्वायत्तपूर्ण राज्य के रूप में हुआ था, परन्तु इसके निर्माण से इटली, यूनान, सर्बिया एवं आस्ट्रिया प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि वे इस पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन युद्धों ने शक्ति सन्तुलन को प्रभावित किया। **सर्बिया के राष्ट्रीय आन्दोलन ने समयान्तराल में यूगोस्लाविया को जन्म दिया।** यूनान, रूमानिया एवं सर्बिया क्रमशः वृहत्तर यूनान, वृहत्तर रूमानिया एवं वृहत्तर सर्बिया की आशा करने लगे। यही नहीं, आस्ट्रिया एवं तुर्की में निवास करने वाली अन्ध जातियां इन युद्धों से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता हेतु राष्ट्रीय आन्दोलन करने लगीं। यूरोप में राष्ट्रवादिता की लहर ने यत्र-तत्र विद्रोहों को जन्म देना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप यूरोपीय राजनीतिक क्षितिज में पारस्परिक वैमनस्य एवं कटुता को जन्म मिला। इस वैमनस्य एवं कटुता ने विश्वयुद्ध का रूप धारण किया। हेजन के शब्दों में, 1912 **एवं 1913 के बाल्कानीय युद्ध 1914 के यूरोपीय युद्ध के उपक्रम थे।**[1]

1 'For the Balkan wars of 1912 and 1913 were a prelude to the European war of 1914' —*Hazen*

अतः ग्रांट एण्ड टेम्परले के शब्दों को नकारा नहीं जा सकता कि **"1914 ई. के महायुद्ध के लिए कोई भी घटना इतनी उत्तरदायी नहीं है जितनी कि 1912 एवं 1913 के बाल्कान युद्ध।"**[1]

प्रश्न

1. बर्लिन कांग्रेस का वर्णन कीजिए। यूरोप पर इसका क्या प्रभाव हुआ। (पूर्वांचल, 1990, 95)
2. युवा तुर्क आन्दोलन से क्या अभिप्राय है? इसको कारणों पर प्रकाश डालिए।
3. युवा तुर्क आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
4. युवा तुर्कों के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि अपनी गृह एवं विदेश नीति के क्षेत्र में वे उन उद्देश्यों की पूर्ति में कहां तक सफल हो सके?
5. युवा तुर्कों की गृह एवं विदेश नीति पर प्रकाश डालिए।
6. युवा तुर्क आन्दोलन की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
7. युवा तुर्क आन्दोलन के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
8. युवा तुर्क आन्दोलन पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।
9. प्रथम बाल्कान युद्ध के कारणों का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि लन्दन की सन्धि, 1913 कहां तक शान्ति स्थापित करने में सफल रही?
10. द्वितीय बाल्कान युद्ध के कारणों का उल्लेख कीजिए। यह भी बताइए कि बुखारेस्ट की सन्धि, 1915 ई. कहां तक शान्ति स्थापित करने में सफल रही?
11. बाल्कान युद्धों के कारणों, घटनाओं एवं परिणामों का उल्लेख कीजिए।
12. बाल्कान युद्धों ने प्रथम विश्वयुद्ध के मार्ग को प्रशस्त किया—इस कथन की समीक्षा कीजिए।
13. बाल्कान युद्धों का यूरोपीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा?

1 "No single event influenced the outbreak of war in 1914 more than the Balkan war of 1912-13." —*Grant and Temperley*

16

इंगलैण्ड की वैदेशिक नीति (1815-1870 ई.)

[FOREIGN POLICY OF ENGLAND]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1815 ई. से 1870 ई. तक इंग्लैण्ड में अनेक विदेशमन्त्री हुए जिन्होंने अलग-अलग नीतियों का पालन किया। इंग्लैण्ड के इन विदेशमन्त्रियों की नीतियों का वर्णन निम्नलिखित है—

कैसलरे की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF CASTLEREAGH)

कैसलरे को 1812 ई. में लिवरपूल के मन्त्रिमण्डल में विदेशमन्त्री बनाया गया। उस समय यूरोप में नेपोलियन का आतंक छाया हुआ था तथा नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के राष्ट्रों की शक्ति विशेष संगठित नहीं थी। प्रत्येक देश अपने हित की सोचता था। परिणामस्वरूप, नेपोलियन के विरुद्ध कोई सामूहिक पग उठाया नहीं जा सका था। इन परिस्थितियों में कैसलरे यूरोप गया और वहां जाकर उसने मित्र राष्ट्रों को संगठित किया। कैसलरे द्वारा बनाए गए इस संघ के द्वारा नेपोलियन को कुछ समय बाद पराजित किया गया। वार्नर-मार्टिन के शब्दों में, **'कैसलरे ने ही प्रमुखतया इस संघ की स्थापना की जिसने फ्रांस के हराया और वह (कैसलरे) विएना कांग्रेस का प्रमुख व्यक्ति था, जिसके द्वारा युद्ध की समाप्ति हुई।'**[1] **वैदेशिक नीति के अन्तर्गत कैसलरे ने निम्नलिखित प्रमुख कार्य किए :**

1. कैसलरे विएना कांग्रेस में (Castlereagh and the Vienna Congress)

विएना कांग्रेस में कैसलरे ने इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था। फ्रांस से सन्धि की शर्तें निर्धारित करने में कैसलरे को बहुत काम करना पड़ा। रूस तथा आस्ट्रिया फ्रांस से कठोर व्यवहार के पक्ष में थे, परन्तु कैसलरे ने इसका विरोध किया। उसका विचार था कि समझौता स्थायी होना चाहिए, ऐसा न हो कि फ्रांस के साथ कठोरता का व्यवहार करके वह असन्तुष्ट रह जाए और अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए पुनः युद्ध करे। कैसलरे ने

1 **"He had largely brought about fourth coalition which finally defeated France and he had been one of the most prominent figures at the great Congress of Vienna, which ended the war."** —*Warner-Martin-Muir*

अपने देश के प्रधानमन्त्री को पत्र में लिखा था, **''जितना मैं और विचार करता हूं, उतना ही मुझे फ्रांस की शक्ति कुरेदने का ढंग पसन्द नहीं आता। हमें उसे नीचा दिखाकर उसके नाखूनों को काट देना चाहिए, जिससे कई वर्षों तक हमें घायल न कर सके, परन्तु मुझे विश्वास है कि जिन चीजों को वापस प्राप्त करने के लिए फ्रांस अवश्य ही प्रयत्न करेगा, उन चीजों की रक्षा के लिए यूरोप में होने वाले युद्ध में यूरोप के राष्ट्रों को सहायता करने के लिए वचनबद्ध होने की नीति अवश्य ही इंग्लैण्ड के लिए हानिकारक है।''**

यूरोप के अन्य राजनीतिज्ञों ने कैसलरे की इस नीति का अनुसरण किया और फ्रांस के साथ अत्यधिक नरमी का व्यवहार किया, फलस्वरूप फ्रांस ने विएना समझौते को स्वीकार किया। फ्रांस के साथ किए गए इस नरमी के व्यवहार से स्पष्ट है कि कैसलरे लायड जार्ज (Lloyd George) से अधिक योग्य था, क्योंकि लायड जार्ज ने 1919 ई. में जर्मनी के साथ कठोर धाराओं वाली सन्धि की थी, जिसके फलस्वरूप 20 वर्षों में ही दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

पेरिस और विएना में चल रही लम्बी और उलझी हुई समझौते की बातचीत चलाते हुए लार्ड कैसलरे ने हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आदर्श को अपने ध्यान में रखा। नवम्बर 1815 ई. में उसे अपनी योजना को क्रियान्वित करने का अवसर मिला। विएना कांग्रेस में एक छोटी धारा में लिखा था कि फ्रांस के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए यूरोप के राजनीतिक विद्वानों को समय-समय पर एकत्रित होना चाहिए। कैसलरे ने इस धारा को इस प्रकार बदल दिया—**''इस सन्धि को क्रियात्मक रूप देने के कार्य को सरल करने और इसकी रक्षा करने के लिए तथा संसार के लिए हितकर इन चारों राष्ट्रों के मेल-मिलाप को बढ़ाने वाले सम्बन्धों को और भी दृढ़ करने के लिए इस सन्धि में भाग लेने वाले मुख्य देशों के द्वारा इस बात को स्वीकार किया जाता है कि वह निश्चित समय के पश्चात् सम्मेलन बुलाते रहेंगे। अपने सामान्य स्वार्थों के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए और समय को देखकर आवश्यक और लाभदायक पग उठाने के लिए देशों को फिर से समृद्ध बनाने और यूरोप में शान्ति बनाए रखने के लिए या तो इन राष्ट्रों के राजा या उनके प्रतिनिधि भाग लेंगे।''**

निश्चित रूप से कैसलरे द्वारा संशोधित यह धारा कैसलरे की एक महत्वपूर्ण देन थी। इसमें राष्ट्र संघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की स्पष्ट झलक है। कैसलरे चाहता था कि यूरोप की शान्ति भंग करने वाली समस्याओं को इस सन्धि की छठी धारा के अनुसार बुलाए जाने वाले सम्मेलनों में सुलझाया जाए, परन्तु उसके समकालीन राजनीतिज्ञ '**कांफ्रेन्स बुलाकर झगड़े निपटाने**' के महत्व को न समझ सके।

2. कैसलरे और पवित्र संघ (Castlereagh and the Holy Alliance)

नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप के सभी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए उत्सुक थे। रूस के जार एलेक्जेण्डर प्रथम ने 26 सितम्बर, 1815 ई. को घोषित किया—**''भविष्य में सब राजा अपने को एक-दूसरे का भाई समझें। वे सत्य एवं भ्रातृत्व के बन्धन में बंध जाएं। प्रजा को वे अपना बच्चा समझें तथा उन पर वे ऐसे ही शासन करें जैसे पिता अपने कुटुम्ब पर करता है।''**

यह कोई सन्धि नहीं थी, अतः कैसलरे ने इसका घोर विरोध किया। इंग्लैण्ड सदैव से ही यह मानता रहा कि सब समस्याएं पुरानी सन्धियों के आधार पर ही हल होनी चाहिए,

परन्तु जार की इस अस्पष्ट एवं धुंधली योजना को मान लेने पर उसकी पुरानी सन्धियों पर आघात होता। कैसलरे ने गुप्त रूप से अपने प्रधानमन्त्री को लिखा—**"सम्राट का मस्तिष्क पूर्णतः ठीक नहीं है।"**[1] कैसलरे इसे व्यर्थ की बकवास और रहस्यवाद मानता था।[2] उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—**"इस सन्धि के सिद्धान्त बहुत अच्छे एवं उदार हैं, जिससे एक उद्देश्य की पूर्ति भी हो जाती है अर्थात् इससे राजनीतिक क्षेत्र में आध्यात्मिकता का बोलबाला हो गया है, परन्तु यह हम सबके लिए अपमान की बात होगी अतः ब्रिटेन इसे अस्वीकार करता है।"**

3. कैसलरे और चतुर्मुख संघ (Castlereagh and the Quadruple Alliance)

कैसलरे कांग्रेस प्रणाली में विश्वास करता था यह यूरोप में शान्ति रखना चाहता था और यूरोप में उठने वाली समस्याओं का समाधान वह सम्मेलनों के द्वारा चाहता था न कि युद्धों के द्वारा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया से मिलकर **'चतुर्मुख संघ'** (Quadruple Alliance) की स्थापना की। 1818 ई. में अपना हर्जाना चुकाने के बाद फ्रांस भी उसमें सम्मिलित हो गया और इस प्रकार **पंचमुख संघ** (Quintuple Alliance) या **नैतिक पंचराज्य** (Moral Pentarchy) की स्थापना हुई।

कुछ समय तक तो यह संघ भली-भांति कार्य करता रहा और आपसी मित्रता में भी कोई अन्तर नहीं आया, परन्तु धीरे-धीरे प्रतिक्रियावादी व्यक्तियों की शक्ति इसमें बढ़ने लगी, जहां कहीं जनता निरंकुश राजाओं व उनके अत्याचारों से तंग होकर कुछ मांग करे, आस्ट्रिया व रूस जनता के दमन के लिए तैयार रहते थे। कैसलरे को यह स्वीकार न था। उसका मानना था कि 'हमें' किसी देश के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। जब सचमुच ही यूरोप की शान्ति भंग हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जाएगा तो हमारा यह देश अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए उचित स्थान पर पहुंच जाएगा, परन्तु हमारा यह देश खतरे से बचने के लिए परहेज के तौर पर थोथे और काल्पनिक सिद्धान्तों पर नहीं चलेगा। जहां एक ओर वास्तविक खतरा उपस्थित होते ही इंग्लैण्ड उसका सामना करने के लिए सामने आ जाएगा, वहीं दूसरी ओर वह अपने मित्र-राष्ट्रों के द्वारा काल्पनिक खतरे से लड़ने में और अत्याचार करने वाले पक्ष, की ओर से लड़ने में उनकी सहायता नहीं करेगा।

पीडमाण्ट, नेपल्स तथा पुर्तगाल में विद्रोह होने पर जार ने इस संघ के एक सम्मेलन की मांग की और 1820 ई. में ट्रोपाय (Troppau) में एक सम्मेलन हुआ जिसमें रूस, प्रशा व आस्ट्रिया ने घोषित किया कि **"वे जनता के ऐसे सिद्धान्त को मान्यता नहीं देंगे जो उनके शासकों की शक्ति को कम करता हो।"**[3] कैसलरे ने इसे मानना अस्वीकार कर दिया और इसे बुद्धिहीनता का द्योतक बताया, किन्तु जब कैसलरे के विरोध का कोई प्रभाव न पड़ा तो कैसलरे ने इस प्रकार के सम्मेलनों में भाग लेना छोड़ दिया।

4. कैसलरे और अमरीका (Castlereagh and America)

अमरीका और इंग्लैण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। कैसलरे ने इस मतभेद को दूर करने के लिए अमरीका से सन्धि की, जिससे दोनों देशों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित

1 'The Emperor's mind is not completely sound.' —Castlereagh
2 'A piece of sublime mysticism and nonsense.' —Castlereagh
3 'Would never recognize the right of a people to circumscribe the power of their king.'

हुए। कनाडा और अमरीका के मध्य कुछ सीमा तक मतभेद था, अब मतभेद को दूर करके एक सीमा निर्धारित कर दी गयी।

5. यूनान की समीक्षा (Problem of Greece)

रूस अपना अधिकार भूमध्यसागर पर करना चाहता था जो कि इंग्लैण्ड के लिए एक खतरा था। तुर्क राज्य में बड़ी गड़बड़ी चल रही थी। रूस तुर्की शक्ति को नष्ट करना चाहता था, किन्तु कैसलरे तुर्की को बचाना चाहता था। यूनान में तुर्की के अत्याचार बढ़ रहे थे जो ईसाई जगत में खलबली पैदा कर रहे थे। रूस यूनान के ईसाइयों को सैनिक सहायता देना चाहता था। कैसलरे भी ईसाइयों की सहायता करना चाहता था, परन्तु कांग्रेस रूस को ही यह अधिकार देना चाहती थी जो कैसलरे के विरोध का प्रमुख कारण था। 1821 ई. में यूनानियों ने तुर्कों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कैसलरे यूरोप में अशान्ति नहीं चाहता था वह बातचीत कर झगड़ा समाप्त करवाना चाहता था, परन्तु 1822 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी उसकी इस नीति को आगे चलकर कैनिंग ने पूर्ण किया।

कैनिंग की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF LORD CANNING)

कहावत है कि इंग्लैण्ड की नीति में 1822 ई. में बहुत अतिक्रमण हुआ, जो अब प्रमुख विद्वानों द्वारा स्वीकारी नहीं जाती, परन्तु यह भी सत्य है कि कैनिंग का विदेश सचिव बनना इंग्लैण्ड और यूरोप, दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। इंग्लैण्ड के इतने अच्छे सम्बन्ध अपने समीपवर्ती राज्यों से उसके इतिहास में भी कभी नहीं रहे थे जितना इस समय में रहे।

कैनिंग की विदेश नीति के सिद्धान्त (Principles of Foreign Policy)

(i) **राष्ट्रीयता की प्रबल भावना**—कैनिंग एक सच्चा देशभक्त था और उसका उद्देश्य इंग्लैण्ड का अधिक से अधिक हित करना व आन्तरिक शान्ति स्थापित करना था। वह इंग्लैण्ड को यूरोप में सबसे गौरवान्वित राष्ट्र के रूप में देखना चाहता था। उसकी यह हार्दिक मनोकामना थी कि इंग्लैण्ड यूरोप के राजनीतिक भंवर से पृथक् रहे। साथ ही समस्त यूरोप इंग्लैण्ड का नेतृत्व स्वीकार करे।[1] इसी कारण उसके विषय में कहा गया है—**"वह यूरोपीय कम प्रायद्वीपीय अधिक था।"**[2]

(ii) **कांग्रेस प्रथा का विरोधी**—कैसलरे के समान ही कैनिंग भी हस्तक्षेप की नीति का विरोधी था। मैरियट के शब्दों में, **"उसकी विदेश नीति का आधार अन्तर्राष्ट्रीय न होकर राष्ट्रीय था और उसकी नीति हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त पर बनी थी।"**[3] वुडवर्ड के अनुसार, **"कैनिंग और कैसलरे का उद्देश्य तो एक ही था केवल उस उद्देश्य को प्राप्त करने के ढंग अलग-अलग थे।"**[4] कैनिंग यूरोप पर कांग्रेस द्वारा शासन (Government by Congresses) के विरोध में था वह पवित्र संघ (Holy Alliance) से बहुत चिढ़ता था क्योंकि उसका विचार था कि

1 "He wanted England to avoid continental complications and wished 'for Europe to read England'."
2 "He was thus more insular than European."
3 "His foreign policy was national rather than international and was based upon the principle of non-intervention." —*Marriot*
4 "The object of the Castlereagh and Canning was the same but the ways they pursued to get that were different." —*Woodward*

पवित्र संघ द्वारा यूरोप में सांविधानिक शासन का अन्त हो जाएगा। चतुर्मुखी संघ (Concert of Europe) को वह **'यूरोप को जंजीरों से बांधने वाला निरंकुश शासकों का संघ'**[1] कहता था।

कैनिंग का विचार था कि प्रत्येक देश को अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अन्य राज्यों द्वारा किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने को वह अनुचित मानता था।

(iii) **शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त**—कैनिंग यूरोप में शक्ति सन्तुलन (Balance of Power) बनाए रखने के पक्ष में था। इस विषय में उसका विचार था कि यह सिद्धान्त सर्वथा एक ही स्तर पर स्थिर नहीं रह सकता, अपितु परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन आना स्वाभाविक है। यूरोप में उसे जो हानि उठानी पड़ी, उसकी पूर्ति के लिए उसने नई दुनिया अर्थात् अमरीका का सहयोग प्राप्त कर सन्तुलन बनाए रखा। जैसा कि उसने स्वयं कहा है—**"मैंने एक नयी दुनिया को जन्म देकर पुरानी दुनिया के सन्तुलन को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया है।"**[2]

(iv) **जनता का विश्वास प्राप्त करना**—कैनिंग लोकसभा का नेता था। यद्यपि आजकल के समान उस समय नीति का निर्धारण लोकसभा नहीं करती थी तथापि कैनिंग को अपनी नीति के लिए लोकसभा का समर्थन प्राप्त था। वह अपनी नीति को गुप्त नहीं रखता था, बल्कि सबके समक्ष प्रकट कर देता था जिससे जनता उसकी नीति को भलीभांति जान सके।

(v) **अन्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का समर्थक**—कैनिंग अनुदार (Conservative) था। अतएव वह प्रजा के आन्दोलनों एवं विद्रोहों का घोर विरोधी था। इतना होते हुए भी उसने सभी राष्ट्रों को अपने-अपने ढंग से स्वतन्त्रतापूर्वक शासन करने की अनुमति दे रखी थी। अनेक विद्वानों ने उसे **'अत्यन्त बुद्धिमान् अनुदार'** (Enlightened Conservative) कहा है, परन्तु फिर भी वह राष्ट्रीयता एवं स्वतन्त्रता का समर्थक था उसे कैसलरे के समान स्वतन्त्र विचारों वाला भी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में उसकी नीति इन दोनों के मध्य की थी। इसी कारण उसने यूनान, पुर्तगाल तथा स्पेन के उपनिवेशों एवं ब्राजील में होने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलनों में भाग लिया।

कैनिंग के समक्ष समस्याएं (Problems before Canning)

1822 ई. में पुनः विदेश सचिव बनने पर कैनिंग को प्रमुखतया तीन बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा। स्पेन की समस्या, स्पेन के उपनिवेशों की समस्या तथा यूनान का स्वतन्त्रता युद्ध और रूस व तुर्की का झगड़ा। इसके साथ ही एक चौथी समस्या भी उत्पन्न हो गयी—पुर्तग़ाल की समस्या।

(i) **स्पेन की समस्या** (Spanish Problem)—कैनिंग का सामना सर्वप्रथम स्पेन की आन्तरिक समस्याओं से हुआ। 1823 ई. में स्पेन की प्रजा ने निर्बल एवं अत्याचारी शासक फर्डीनेण्ड सप्तम् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फर्डीनेण्ड ने यूरोपीय देशों से सहायता की याचना की। **शान्ति संस्था** (Concert of Europe) **की बैठक वेरोना** (Verona) **में हुई।** रूस की इच्छा स्पेन के इस मामले में शीघ्र हस्तक्षेप करने की थी। फ्रांस भी स्पेन के शासक की सहायता करना चाहता था। आस्ट्रिया भी फ़र्डीनेण्ड की सहायता करना चाहता था, किन्तु वह

1 "A League of despots to bind Europe in Chains."
2 "I have called a new world into existence to redress the balance of the old."
—*Lord Canning*

सिसली और नेपल्स के झंझटों में फंसा था, जिसके कारण वह सहायता देने में असमर्थ था। इस समय तक कैसलरे की मृत्यु हो चुकी थी, अतः इस बैठक में भाग लेने के लिए विलिंगटन कैनिंग का प्रतिनिधि बनकर आया और उसने कहा—**"यद्यपि इंग्लैण्ड को स्पेन की विद्रोही जनता के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं है फिर भी इंग्लैण्ड इस बात के लिए दृढ़ है कि सभी यूरोपीय देशों की प्रजा को अपने लिए किसी भी प्रकार की सरकार चुन लेने का अधिकार होना चाहिए। इसलिए किसी भी दशा में यूरोप के देशों को स्पेन के निरंकुश सम्राट को सशस्त्र सहायता देने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।"**[1]

विलिंगटन के इस प्रतिरोध के कारण अन्य यूरोपीय राष्ट्र अपनी इच्छानुसार सम्मिलित रूप से फर्डीनेण्ड की सहायता तो न कर सके, परन्तु अकेले फ्रांस ने फर्डीनेण्ड को पुनः सिंहासनासीन कर दिया। कैनिंग को यह बात पसन्द नहीं आयी, परन्तु वह फ्रांस का विरोध न कर सका क्योंकि वह यूरोप में पुनः अशान्ति नहीं चाहता था। अतएव उसे शान्त होना पड़ा। यद्यपि उसने स्वयं अपने एक मित्र से कहा था कि वह फ्रांस से युद्ध करना चाहता था (He had an itch for war with France) ट्रेवेलियन ने कैनिंग के युद्ध न छेड़ने की प्रशंसा करते हुए लिखा है—**"वास्तव में इस युद्ध के सम्भवतः बहुत ही भयंकर परिणाम हुए होते।"**[2]

(ii) **स्पेन की बस्तियों की समस्या** (Problem of Spanish Colonies)—जार्ज कैनिंग की स्पेन में भारी राजनीतिक पराजय हुई थी क्योंकि वह स्पेन में हस्तक्षेप रोकने में असफल रहा था। इस पराजय का बदला लेने के लिए अब उसने दक्षिण अमरीका में स्पेन के उपनिवेशों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया।[3] इंग्लैण्ड के व्यापारिक दृष्टिकोण से स्पेन के उपनिवेशों का अन्य देशों की अपेक्षा अधिक महत्व था। इससे पूर्व इंग्लैण्ड का मुख्य व्यापार यूरोप और एशिया के अन्य देशों में केन्द्रित था, किन्तु जब से दक्षिणी अमरीका में स्पेन का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त हुआ तब से ब्रिटेन के व्यापार का स्पेन के उपनिवेशों में चौदह गुना अधिक विस्तार हो चुका था। स्पेन के पुनः शक्तिशाली हो जाने पर वह अवश्य अपनी बस्तियों को पुनः अपने अधिकार में लेंना चाहेगा और उसका परिणाम अंग्रेजी व्यापार की हानि होगी इस बात को ध्यान में रखकर 1817 ई. में कैसलरे ने घोषणा की थी कि यदि कोई देश स्पेन को अपनी अमरीका की बस्तियों पर पुनः अधिकार प्राप्त करने के लिए सहायता करेगा तो इंग्लैण्ड यह सहन नहीं करेगा।

जार्ज कैनिंग ने फ्रांस को नीचा दिखाने के लिए बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य किया। उसने फ्रांस के एक मन्त्री पोलिगनेक (Polignac) को इंग्लैण्ड बुलवाया और इस बात की घोषणा करने पर मजबूर किया कि वह भविष्य में फ्रांस को दक्षिणी अमरीका की आबादियों में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं लेने देगा। इस घोषणा से यूरोप की पूर्वी शक्तियों को बहुत निराशा हुई क्योंकि उनकी आशाओं पर पानी फिर गया था। इसके अतिरिक्त उसने अमरीका

1 "While there was no sympathy and would be none between England and revolutionists and Jacobins, England must insert on the right of nations to set up over themselves whatever form of government they thought best." —*Wellington*

2 "Indeed such a war would probabley have had the disastrous results." —*Trevelian*

3 "Foiled in old Spain, Canning turned to the new and sought materials of compensation in another hemiphere." —*Marriot*

के राष्ट्रपति मुनरो को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि यह घोषणा करे कि **"अमरीका अमरीकनों के लिए है, हम किसी यूरोपीय शक्ति का हस्तक्षेप दक्षिणी अथवा उत्तरी अमरीका में सहन नहीं कर सकते।"**[1]

यूरोपीय कन्सर्ट अब शक्तिहीन हो चुका था क्योंकि जब स्पेन के उपनिवेश स्वतन्त्र होने प्रारम्भ हुए तो स्पेन और उसके मित्र हाथ पर हाथ रखकर बैठने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके। अमरीका के विभिन्न उपनिवेश मैक्सिको, कोलम्बिया और वोयनसएटीज—जब स्वतन्त्र हुए तो इंग्लैण्ड ने सर्वप्रथम 1824 ई. में उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता दी। 1825 ई. में पेरू, चिली तथा बोलेविया को भी इंगलैण्ड ने स्वतन्त्र मान लिया। कैनिंग ने बड़े गर्व से कहा—**"स्पेन को एक ऐसे देश के रूप में देखकर जैसा कि हमारे पूर्वजों ने देखा था, मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि यदि फ्रांस स्पेन को अपने अधिकार में करने में सफल हो गया तो मैं स्पेन को अमरीकी बस्तियों पर कब्जा जमाए नहीं रखने दूंगा। मैं पुरानी दुनिया की असफलता के कलंक को धोने के लिए नई दुनिया को (अमरीका) स्वतन्त्र कर दूंगा।"**

इस प्रकार कैनिंग ने अपनी स्पेन की हार का प्रतिशोध ले लिया और स्पेन को अमरीकी उपनिवेशों से वंचित कर दिया। युद्ध के भय से फ्रांस व स्पेन चाहते हुए भी इंग्लैण्ड के विरुद्ध कुछ न कर सके।

(iii) **पुर्तगाल एवं ब्राजील की समस्या** (Problems of Portugal & Brazil 1823-25)—जार्ज कैनिंग के सम्मुख तीसरी जटिल समस्या ब्राजील की थी, किन्तु कैनिंग ने अपनी बुद्धिमता तथा तत्परता से उसे भी सुलझाया। ब्राजील की राजनीतिक स्थिति बड़ी ही जटिल थी। नेपोलियन के भय के कारण पुर्तगाल के बर्गेजा वंश का युवराज 1807 ई. में भागकर ब्राजील चला गया था और इस वर्ष इस वंश द्वारा शासन का अन्त हो गया। ब्राजील उस समय पुर्तगाल के अधिकार में था। 1816 ई. में यही युवराज जो इतिहास में जॉन षष्टम के नाम से प्रसिद्ध है ब्राजील का शासक बना। जब नेपोलियन का पतन हुआ तो जॉन षष्टम को पुर्तगाल वापस आ जाना चाहिए था, किन्तु वह ब्राजील में रहकर ही पुर्तगाल पर शासन करना चाहता था, इस प्रकार पुर्तगाल, ब्राजील का उपनिवेश मात्र रह जाता, किन्तु 1821 ई. में जब पुर्तगाल में विद्रोह हुआ तो जॉन षष्टम को पुर्तगाल आना पड़ा। उसने पुर्तगाल आते समय ब्राजील का शासन अपने पुत्र डान पीड्रो (Don Pedro) की देखभाल में छोड़ दिया था। 1822 **ई. के समाप्त होने पर डान पीड्रो ने ब्राजील की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और स्वयं को वहां का वैधानिक शासक घोषित कर दिया।** डान पीड्रो का छोटा भाई डान माइगल (Don Mignel) यह सहन न कर सका और उसने फ्रांस की सहायता लेकर अपने भाई के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा तो ब्राजील की वैधानिक सरकार ने इंग्लैण्ड से सहायता की याचना की। कैनिंग ने स्पेनिश उपनिवेशों के साथ अपनायी गयी नीति पुर्तगाल के उपनिवेश के साथ भी अपनायी और 1825 ई. में ब्राजील को स्वतन्त्र राज्य मान लिया।

ब्राजील की स्वतन्त्रता का प्रभाव पुर्तगाल पर भी पड़ा। 1825 ई. में जॉन षष्टम की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र डान पीड्रो ने ब्राजील के साथ-साथ पुर्तगाल का शासन भी अपने हाथों में ले लिया, किन्तु उसके छोटे भाई डान माइगल ने पुर्तगाल के शासन पर अपना अधिकार

1 **"America is for the Americans. We can tolerate no European intervention in the south or north America."**

बताया और डान पीड्रो का विरोध किया तब डान पीड्रो ने पुर्तगाल की गद्दी को अपनी पुत्री डोना मारिया (Dona Maria) के पक्ष में त्याग दिया। डान माइगल ने इसका भी विरोध किया और फ्रांस तथा स्पेन से पुर्तगाल में होने वाले जन आन्दोलनों को समाप्त करने की याचना की। पुर्तगाल की जनता डोना मारिया के साथ थी। जब स्पेन ने डान माइगल को सहायता दी तो कैनिंग ने एक शक्तिशाली समुद्री बेड़ा स्पेन के विरुद्ध लिस्बन की ओर भेज दिया इस पर स्पेन ने पराजय स्वीकार कर ली और रानी मारिया सिंहासन प्राप्त करने में सफल रही। मैरियट ने कैनिंग के इस हस्तक्षेप के विषय में लिखा है कि **"कैनिंग के लिए हस्तक्षेप करना अलग बात थी, किन्तु हस्तक्षेप को रोकने के लिए हस्तक्षेप करना दूसरी बात थी।"**[1] कैनिंग ने इस अवसर पर कहा था कि इंग्लैण्ड की इच्छा किसी की ओर से हस्तक्षेप करने की नहीं है, लेकिन वह किसी और को भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दे सकता।

इस प्रकार कैनिंग ने पुर्तगाल में एक वैधानिक शासन का समर्थन किया और साथ ही ब्राजील के साथ, जिसने पुर्तगाल के विरुद्ध विद्रोह किया था, एक व्यापारिक समझौता करके इंग्लैण्ड के व्यापार की उन्नति भी की। मैरियट के शब्दों में, **"कैनिंग की शीघ्र तथा निर्णायक कार्यवाही ने न केवल पुर्तगाल के उदार संविधान की रक्षा की बल्कि सम्भवतः उसने एक यूरोपीय युद्ध को भी टाल दिया।"**[2]

(iv) **कैनिंग और यूनान की समस्या** (Canning and the Greece Problem)—इन सब समस्याओं से अधिक महत्वपूर्ण समस्या जो कैनिंग के समक्ष आयी, वह यूनान के स्वतन्त्रता आन्दोलन की थी। 1821 ई. में यूनानियों ने तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, किन्तु तुर्क लोगों के अत्याचार से यूनान की जनता व्याकुल थी। **कैसलरे की भांति कैनिंग को भी यूनान से सहानुभूति थी, किन्तु अपनी अहस्तक्षेप की नीति के कारण वह टर्की पर यूनान को स्वतन्त्र करने के लिए दबाव न डाल सका।** आस्ट्रिया एवं प्रशा भी यूनान के पक्ष में न थे। फ्रांस और रूस अपने हितों के कारण किसी सीमा तक यूनान के पक्ष में थे। 1824 ई. में सेण्ट पीटर्सबर्ग में जार एलेक्जेण्डर ने एक सभा का आयोजन किया। उसने प्रस्ताव रखा कि यूनान को तीन प्रदेशों में बांट दिया जाए जो कि नाममात्र के लिए तुर्क राज्य के अधीन होंगे लेकिन वास्तव में वह रूस के संरक्षण में हों जब यूनानियों को इस तरह के प्रस्ताव का पता चला तो उन्होंने कैनिंग को शिकायत के तौर पर लिखा—**"यह तो उनके हाथ-पैर बांधकर उन्हें तुर्कों के हाथों में सौंपने के समान है।"**[3] यूनानियों ने घोषणा की कि इस तरह के प्रस्ताव को स्वीकार करने से वे अन्तिम आदमी तक संघर्ष कर मर जाना पसन्द करेंगे। कैनिंग ने अपने प्रतिनिधि को सेण्ट पीटर्सबर्ग से वापस बुला लिया। यूनानी लोगों ने अपने को इंग्लैण्ड के संरक्षण में छोड़ दिया और कैनिंग से उनके लिए शासक भेज देने को कहा। कैनिंग ने ऐसा करने से स्पष्ट मना कर दिया क्योंकि वह अपनी नीति (हस्तक्षेप न करने की) से हटना नहीं चाहता था।

इसी मध्य अचानक जार एलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गयी और निकोलस नया जार बना। कैनिंग ने वैलिंगटन को, नए जार को बधाई देने के लिए सेण्ट पीटर्सबर्ग भेजा। फलस्वरूप

1 "To Canning', remarks Marriot, 'Intervention was one thing intervention to repel intervention was another."

2 "Canning's prompt and decisive action not only saved the liberal constitution in Portugal but probably averted a European war." —*Marriot.*

3 'The plan was one for giving them over bound hand and foot to the Turks.'

दोनों देशों के मध्य एक समझौता हुआ जिसे **प्रोटोकोल ऑफ सेण्ट पीटर्सबर्ग** (Protocol of St. Petersburg) कहते हैं। इसके अनुसार यूनान को एक स्वतन्त्र राज्य माना गया तथा उसे अपने द्वारा चुने हुए व्यक्तियों द्वारा शासन करने की अनुमति प्रदान की गयी। यूनान और तुर्की को भविष्य में झगड़ों से बचाने के लिए तुर्की से यूनान को खाली करने को कहा गया तथा यूनानियों को तुर्कों से सम्पत्ति खरीदने के लिए कहा। मैरियट के अनुसार, **"यह प्रोटोकोल कैनिंग की राजनीतिक तथा वैलिंगटन की व्यक्तिगत विजय का प्रतीक था।"**[1]

तुर्की पर इस प्रोटोकोल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब इंग्लैण्ड व रूस ने तुर्की के सुल्तान को धमकी दी कि यदि सुल्तान हठ नहीं छोड़ेगा तो दोनों की शक्तियां यूनान का पक्ष लेंगी।[2] यद्यपि मैटरनिख हर प्रकार से कैनिंग की नीति का विरोध कर रहा था और प्रशा भी आस्ट्रिया का साथ दे रहा था, तथापि इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस में लन्दन की सन्धि (Treaty of London) जुलाई 1827 ई. में हुई, जिसके अनुसार निर्णय लिया गया कि यदि एक माह के अन्दर तुर्क युद्ध विराम नहीं करते तो उपर्युक्त तीनों राष्ट्र शान्ति स्थापित करने के लिए कोई भी कदम उठाने से नहीं चूकेंगे। **इस सन्धि से कैनिंग ने दोहरा लाभ उठाया, एक तो उसने आस्ट्रिया को अकेला कर दिया और पवित्र संघ** (Holy Alliance) **को समाप्त कर दिया। दूसरी ओर रूस के विस्तार को भूमध्यसागर में रोक दिया।** कैनिंग ने इस प्रकार यूनान से व्यापार को भी सुरक्षित करके इंग्लैण्ड का हित किया। 1827 ई. में कैनिंग की मृत्यु हो गयी और वैलिंगटन उसके पश्चात् प्रधानमन्त्री बना। उसने तुर्की से सन्धि करके कैनिंग के किए कराए पर पानी फेरना चाहा, किन्तु इसी बीच एक घटना घट गयी जिसने कैनिंग के सिद्धान्तों की विजय घोषित कर दी। 1827 ई. के अक्टूबर माह में रूस, फ्रांस व इंग्लैण्ड के संयुक्त जहाजी बेड़े पर तुर्की के जहाजी बेड़े ने गोलियां चला दीं प्रत्युत्तर में संयुक्त बेड़े ने तुर्की के जहाजी बेड़े को पूर्णतया नष्ट कर दिया।[2] यह लड़ाई नैवारिनो की खाड़ी (Bay of Navarino) में हुई थी।

वैलिंगटन ने इसे एक 'कष्टकारक घटना' (An untowardevent) बताया और यूनानियों को उनके भाग्य पर छोड़ दिया तथा अपने हाथ यूनान व तुर्की के इस झगड़े से खींच लिए। फ्रांस ने भी इंग्लैण्ड के समान अपने को इस झगड़े से अलग कर दिया। इस प्रकार रूस अकेला यूनान के विषय में हस्तक्षेप करने के लिए रह गया, जिसे कि कैनिंग ने कभी नहीं होने दिया था। इसी कारण कहा जाता है कि **"जो कुछ कैनिंग ने वर्षों की कूटनीति से प्राप्त किया था, वैलिंगटन ने उसे कुछ माह में ही खो दिया।"**

किन्तु, नैवारिनो में तुर्की की हार ने यूनानियों का उत्साह बढ़ा दिया और तुर्की को अन्त में 1829 ई. में एड्रियानोपिल की सन्धि (Treaty of Adrianople) करनी पड़ी और यूनान को स्वतन्त्र घोषित करना पड़ा। इस प्रकार कैनिंग की नीति सफल हुई।

1 "This protocol must be regarded as a political triumph for canning and a personal triumph for wellington." —*Marriot*

2 "They would look Greece with an eye of favour."

3 "The Turko-Egyptian fleet had disappeared, the bay of Navarino was covered with their wrecks."

ड्यूक ऑफ वैलिंगटन की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF DUKE WELLINGTON)

विदेश नीति के मामले में वैलिंगटन प्रायः असफल रहा। वैलिंगटन टोरी था तथा अत्यधिक कट्टरता से हस्तक्षेप की नीति में विश्वास रखता था। इस नीति के फलस्वरूप यूरोप में प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव बढ़ता गया जिससे इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को आघात लगा।

(क) पूर्वी समस्या—वैलिंगटन के अनुसार तुर्की साम्राज्य की प्रादेशिक अखण्डता तथा इंग्लैण्ड का तुर्की के विरुद्ध युद्ध में भाग लेना अवांछनीय था। इंग्लैण्ड द्वारा युद्ध में हाथ खींच लेने पर रूस ने अकेले ही टर्की के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। 1829 ई. में टर्की के सुल्तान को एड्रियानोपल की सन्धि करनी पड़ी। सुल्तान ने मोल्डाविया और वेलेशिया को स्वतन्त्र राज्य मानकर लन्दन के समझौते को स्वीकार कर लिया। इस सन्धि से वैलिंगटन सन्तुष्ट नहीं था। उसका विचार था कि मोल्डाविया, वेलेशिया तथा यूनान रूस की सहायता पर निर्भर रहेंगे तथा एशिया माइनर में अपनी प्राप्तियों के आधार पर दजला और फरात की घाटी में रूस अपने प्रभाव की वृद्धि करने का प्रयत्न करेगा। नवम्बर 1829 ई. में यूनान की समस्या को सुलझाने के लिए लन्दन में सभा हुई। 3 फरवरी, 1830 ई. में लन्दन प्रोटोकोल के द्वारा यूनान में स्वतन्त्रता की घोषणा की गयी। रूस, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने यूनान की स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया। वैलिंगटन के प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रारम्भ में यूनान का राज्य बहुत छोटा बनाया गया क्योंकि उन्हें आशंका थी कि शक्तिशाली राज्य बनने पर वह अंग्रेजी राज्य द्वारा संरक्षित आयोनियन द्वीप-समूह को अपनी ओर आकर्षित करेगा। पामर्स्टन के समय में यूनान के प्रदेशों में वृद्धि की गयी।

(ख) पुर्तगाल—फरवरी 1828 ई. में डाम मीगल को उसके भाई ने रीजेण्ट नियुक्त किया। विधान के प्रति शपथ लेने के पश्चात् भी डाम मीगल डोना मारिया को पदच्युत कर स्वयं पुर्तगाल का शासक बन जाना चाहता था। प्रधानमन्त्री के पद का कार्यभार संभालते ही वैलिंगटन ने पुर्तगाल से ब्रिटिश सेना वापस बुला ली। **इस अवसर का लाभ उठाते हुए डाम मीगल ने सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में ले ली।** इसी समय डोना मारिया इंग्लैण्ड आयी जहां पुर्तगाल की रानी के रूप में उसका भव्य स्वागत हुआ। उदारवादी उसकी सहायता के लिए तत्पर थे, किन्तु वैलिंगटन ने उन्हें ऐसा न करने दिया। वैलिंगटन के इस कार्य से उदारवादियों की सहानुभूति उसने खो दी।

(ग) फ्रांस—वैलिंगटन के प्रधानमन्त्रित्व काल में फ्रांस में चार्ल्स दशम् शासन कर रहा था। चार्ल्स दशम् एक निरंकुश शासक था। इंग्लैण्ड की जनता को प्रतीत हुआ कि वैलिंगटन की सहानुभूति उसके साथ है, अतः विलियम चतुर्थ के समय हुए निर्वाचन में ह्विग दल की विजय हुई और वैलिंगटन को अपने पद से हाथ धोना पड़ा।

रॉबर्ट पील की वैदेशिक नीति
(FOREIGN POLICY OF ROBERT PEEL)

जिस समय रॉबर्ट पील ने प्रधानमन्त्री पद ग्रहण किया, इंग्लैण्ड के विदेशों से सम्बन्ध अच्छे न थे और उसके सम्मुख अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी थीं। इंग्लैण्ड चीन के साथ युद्ध में व्यस्त था। दूसरी ओर अफगानिस्तान में रूस का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था और इस प्रकार इंग्लैण्ड के भारतीय साम्राज्य के लिए संकट में वृद्धि हो रही थी। फ्रांस के साथ भी

इंग्लैण्ड के सम्बन्ध अच्छे न थे। इसके अतिरिक्त इसी समय अमरीका में भी सीमा विवाद चल रहा था और दोनों देश युद्ध के कगार पर खड़े थे, किन्तु रॉबर्ट पील ने बुद्धिमत्तापूर्वक शान्तिपूर्ण ढंग से इन सभी समस्याओं का समाधान किया।[1]

पील ने आक्रामक नीति का परित्याग कर मित्रता स्थापित करने की नीति को अपनाया और देश पर छाए संकट के बादलों को तितर-बितर करने में सफल हुआ। चीन के साथ उसने 1842 ई. में नानकिन (Nankin) की सन्धि द्वारा झगड़े को समाप्त किया। अफगानिस्तान से प्रथम युद्ध के पश्चात् दोस्त मुहम्मद को अमीर स्वीकार करके शान्ति की स्थापना की, भारत में सिन्ध की विजय हुई और प्रथम सिख युद्ध हुआ और अफ्रीका में नेटाल पर इंग्लैण्ड ने अधिकार कर लिया। फ्रांस के साथ भी उसने मधुर सम्बन्ध स्थापित किए। अमरीका के साथ काफी समय से चल रहे सीमा सम्बन्धी समस्याओं का भी उसने समाधान किया। मेन (Maine) की सीमा के सम्बन्ध की समस्या तो 1783 ई. से चल रही थी। 1831 ई. में अमरीका ने इस झगड़े को किसी तीसरे दल (Third party decision) के निर्णय (Arbitration) से निबटाना स्वीकार किया, किन्तु बाद में उसके निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया जिससे समस्या का समाधान न हो सका। 1842 से **अशबर्टन की सन्धि** (Treaty of Ashburten) के द्वारा इस समस्या का समाधान हुआ। पश्चिम में अमरीका और कनाडा में एक अन्य झगड़ा चल रहा था। 1818 ई. में यह निर्धारित किया गया था कि 49वीं समानान्तर रेखा (49th Parallet) को सीमा माना जाए, किन्तु अमरीका प्रशान्त महासागर के तट पर भी अपना अधिकार मानता था जब कि इंग्लैण्ड-कोलम्बिया नदी की सीमा निर्धारित करना चाहता था। 1840 ई. में अमरीका ने धमकी दी कि यदि उसकी मांग स्वीकार नहीं की गयी तो वह इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। 1846 ई. में ओरेगन की सन्धि (Treaty of Oregon) की गयी जिसके द्वारा 49वीं समानान्तर रेखा को सीमा रेखा मान लिया। इस प्रकार तीस हजार मील एक लम्बी सीमा रेखा निर्धारित कर दी गयी।

इस प्रकार पील ने वैदेशिक मामलों में शान्तिपूर्ण नीति अपनाते हुए सफलतापूर्वक कार्य किया। उसके द्वारा इस शान्तिपूर्ण वैदेशिक नीति के अनुसरण में उसका विदेशमन्त्री एबर्डीन अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ जो शान्तिप्रिय नीति में ही विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। फ्रांस के प्रधानमन्त्री गीजो (Guizot) से भी उसे इस प्रकार की नीति अपनाने में सहायता मिली। मैरियट ने पील के विषय में लिखा है—**"वालपोल के समान ही रॉबर्ट पील इंग्लैण्ड के महानतम् शान्तिप्रिय मन्त्रियों में से एक था।"**[2]

लॉर्ड जॉन रसल की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF LORD JOHN RUSSELL)

रसल तटस्थता (Neutrality) की नीति को मानने वाला था। उसकी इस नीति ने इटली को एक राष्ट्र बनने में सहायता की। इटली ने फलस्वरूप, सिसली, नेपिल्स पर अधिकार कर लिया। रसल ने इटली का कोई विरोध नहीं किया। डेनमार्क तथा पोलैण्ड के साथ भी रसल

1 "Peel's administration which had found England at war, was leaving her at peace with all Nations." —*Halevy*

2 'Like Walpole, Sir Robert Peel was one of the greatest peace Minister of England.' —*J. A. R. Marriot*

की सहानुभूति थी, परन्तु वह उसकी सहायता न कर सका क्योंकि वह तटस्थता की नीति का घोर समर्थक था और इस कारण डेनमार्क तथा पोलैण्ड को बहुत हानि उठानी पड़ी।

सन् 1855 ई. में वह इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में विएना सम्मेलन में भाग लेने गया और रूस को उसने इस बात की सहमति प्रदान कर दी कि वह काला सागर (Black Sea) में अपनी सेना रख सके, परन्तु इसके साथ ही शर्त यह थी कि यदि रूस अपनी सेना में वृद्धि करेगा तो फ्रांस, आस्ट्रिया तथा इंग्लैण्ड की संयुक्त सेना रूस की सेना के विरुद्ध कार्यवाही करेगी। उसने एक गम्भीर गलती की कि सेवस्टोपोल के घेरे को उठाने की भी उसने आज्ञा दे दी। उसके इस कार्य की कॉमन सभा एवं मन्त्रिमण्डल ने बहुत निन्दा की, अतएव उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

हेनरी जॉन टेम्पल विस्काउन्ट पामर्स्टन की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF LORD PALMERSTON)

गृह नीति में अनुदार विचारों वाला पामर्स्टन विदेशी राजनीति में एकाएक उग्रवादी था।[1] पामस्टन एक सच्चा देशभक्त राजनीतिज्ञ था। वह अपने देश के हितों को अन्य सभी बातों से ऊपर समझता था। उसका मुख्य उद्देश्य इस संसार में शान्ति बनाए रखना था इसी कारण यूरोप में हुई 1848 ई. की क्रान्तियों को उसनें बढ़ने से रोका। पामर्स्टन की शक्ति का मुख्य उद्देश्य यूरोप में शक्ति सन्तुलन बनाए रखना था। पामर्स्टन के सिद्धान्तों को शीघ्र यूरोप के राजनीतिज्ञ समझ गए थे। उन्हें ज्ञात हो चुका था कि पामर्स्टन कैनिंग के सिद्धान्तों का अनुयायी है। कैसलरे तथा कैनिंग के समय में पामर्स्टन आगे न बढ़ सका, किन्तु इन दोनों के बाद उसने विदेश विभाग में महत्वपूर्ण कार्य किया। पामर्स्टन पवित्र गठबन्धन (Holy Alliance) का विरोधी था, किन्तु वह नए उदित हो रहे राष्ट्रों के लिए एक सहयोगी था जो कि संवैधानिक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते थे। पामर्स्टन अन्य शक्तियों द्वारा दूसरे राष्ट्रों के मामले में हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था क्योंकि वह उदारवादिता एवं स्वतन्त्रता का विदेशों में दबाया जाना स्वीकार नहीं करता था इस प्रकार से वह शक्ति सन्तुलन बनाए रखने वाला आधार था। उसके इस प्रकार के विचारों के कारण मैटरनिख उसे नापसन्द करता था।

पामर्स्टन ने अपनी विदेश नीति व उसके सिद्धान्तों को समय-समय पर जनता के समक्ष रखा। वह विदेश नीति को लोकप्रिय आधार पर निर्धारित करना चाहता था, परन्तु जंनता के समक्ष वह उतने ही तथ्य प्रस्तुत करता था जितने कि उसे अपनी नीति के लिए आवश्यक होते थे। **इस प्रकार की नीति अपनाने के विशेष दो लाभ थे, एक ओर तो उसकी वैदेशिक नीति में इंग्लैण्डवासियों को विश्वास उत्पन्न होता था दूसरी ओर पामर्स्टन को उस नीति को कार्यान्वित करने की शक्ति प्राप्त होती थी।** इस प्रकार की नीति कैनिंग ने प्रारम्भ की थी, किन्तु पामर्स्टन उससे भी आगे निकला। इससे उसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई। पामर्स्टन की अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में कूदने तथा उनको अपने हित के अनुरूप ढालने की आदत थी। यूरोप में हो रही प्रत्येक घटना को वह इंग्लैण्ड से सम्बन्धित बताकर उसमें हस्तक्षेप करता था। यूरोप को जार तथा मैटरनिख के प्रभाव से निकालकर इंग्लैण्ड के प्रभाव में लाने की उसकी आकांक्षा थी। अत्याचार तथा निरंकुशता के विरुद्ध आन्दोलन का उसने पूर्ण साथ दिया। वह वैधानिक

1 'On the other hand', remarks Trevelyan, 'in foreign politics he was at once a Radical and a jingo.'

शासन को पसन्द करता था। अपनी योजनाओं तथा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वह आक्रामक रुख अपनाने से भी डरता नहीं था। अपने साथियों के परामर्श को उसने कभी आवश्यक नहीं समझा। विदेशों में वह स्वेच्छाचारी शासकों के अत्याचार को सहन नहीं कर पाता था तथा आवश्यकता पड़ने पर बड़े-बड़े विदेशी सम्राटों का भी अपमान कर देता था। इसी कारण विदेशी उसे नापसन्द करते थे तथा उसके विषय में कहा जाता था, **'यदि शैतान के कोई पुत्र है, तो निश्चय ही पामर्स्टन है।'**[1]

यद्यपि पामर्स्टन अत्यन्त झगड़ालू स्वभाव का व्यक्ति था, किन्तु फिर भी वह इंग्लैण्ड में अलोकप्रिय नहीं था क्योंकि इंग्लैण्ड के किसी भी व्यक्ति के अपमान को अपना अपमान समझता था और उसका बदला अवश्य लेता था। उसके शासनकाल के प्रथम चरण (1830-41) का समय अत्यन्त दुरूह था।[2] किन्तु उसने सफलतापूर्वक इंग्लैण्ड को संकट से उबारा। विक्टोरिया ने उसके व्यक्तित्व के विषय में एक बार कहा था, **''उसमें बहुत से दुर्लभ गुण हैं, साथ-साथ बहुत-सी बुराइयां भी हैं परमात्मा ही जानता है कि विदेशी विषयों के सम्बन्ध में हमें उसके साथ कितना झगड़ा करना पड़ता है।''** रानी विक्टोरिया भी उसके मनमानी ढंग से कार्य करने के कारण बहुत परेशान होती थी। वह किसी भी नीति के निर्धारण में अन्य मन्त्रियों या रानी से परामर्श नहीं लेता था। रैम्जे म्योर ने लिखा है, **''उसकी बुद्धि की स्वतन्त्रता सर्वश्रेष्ठ महत्व रखती थी वह बहुधा बिना ताज या अपने साथियों के परामर्श के अपनी इच्छानुसार कार्य करता था।''**[3] पामर्स्टन की वैदेशिक नीति को अध्ययन की सुविधा के लिए इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

1830 ई. से 1847 ई. तक पामर्स्टन की वैदेशिक नीति

पामर्स्टन यूरोप की राजनीति में फ्रांस को महत्वपूर्ण समझता था। सन् 1830 ई. में फ्रांस की राज्य क्रान्ति के पश्चात् फ्रांस की राजगद्दी पर औरेंज वंश का राजकुमार लुई फिलिप बैठा। पामर्स्टन फ्रांस के साथ मिलकर अपनी वैदेशिक नीति को कार्यान्वित करना चाहता था। उसका मानना था, **'यूरोप में शान्ति और सम्पन्नता लाने के लिए यह आवश्यक है कि फ्रांस और इंग्लैण्ड सौहार्द्रपूर्ण और सहयोग के रास्ते पर चलें फ्रांस मेरी विदेशी नीति का केन्द्र-बिन्दु है।'**[4] इस प्रकार फ्रांस से मित्रता कर पामर्स्टन ने 'होली एलायन्स' को भंग कर दिया। पामर्स्टन ने 1830 के पश्चात् जर्मनी व आस्ट्रिया में हुई क्रान्तियों का भी फ्रांस की क्रान्ति के समान स्वागत किया। इस अवधि में पामर्स्टन ने निम्नलिखित देशों की समस्याओं का सामना किया।

(i) **बेल्जियम की समस्या**—वाटरलू के युद्ध के पश्चात् विएना कांग्रेस में बेल्जियम को हालैण्ड के साथ मिला दिया गया था। उस समय **इंग्लैण्ड का विदेशमन्त्री कैसलरे** (Castlereagh) **था।** उसका विचार था कि यदि फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना कर दी जाए तो सम्भवतः यूरोप को पुनः शक्तिशाली फ्रांस से आतंकित न होना पड़ेगा, किन्तु

1 "If the devil has a son surely he is Palmerston."
2 "Ten years of great and extra-ordinary difficulties."
3 "His independence of mind was of a paramount significance. He often acted on his initiatives without consulting the sovereign or his colleagues." —*Ramsay Muir*
4 'A cordial and good under standing between England and France is essential to the peace and welfare of Europe. France is pivot of my foreign policy.'

सम्मेलन में भाग ले रहे महाशक्तियों के प्रतिनिधियों ने एक भारी भूल की, जबकि उन्होंने दो ऐसे राज्यों को परस्पर मिलाने का प्रयास किया, जिनकी भाषा, साहित्य, धर्म और परम्पराएं भिन्न थीं। इन राज्यों में सांस्कृतिक दृष्टि से ही अन्तर नहीं था वरन् उनकी राजनीतिक विचारधाराओं में भी भिन्नता थी। **डच जनतन्त्रवादी था तथा बेल्जियम कुलीन-वर्गीय।** 1815 ई. **में डचों के अधीन हो जाने पर बेल्जियम में डच भाषा का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया।** इसके अतिरिक्त शासक विलियम द्वारा भी बेल्जियम के निवासियों की सांविधानिक स्वतन्त्रता को सीमित करने के प्रयत्न किए गए। प्रोटस्टेण्ट धर्म में विश्वास रखने वाले डचों ने कैथोलिक बेल्जियम पर अपना धर्म थोपने का प्रयत्न किया। बेल्जियम की जनता डचों के अत्याचारों से तंग आ चुकी थी और उनमें विद्रोह की भावना ने अंकुरित होना प्रारम्भ कर दिया था। इसी समय अगस्त 1830 ई. में फ्रांस में क्रान्ति हुई जिसका प्रभाव बेल्जियम पर भी पड़ा। ब्रूसेल्स की जनता ने डच सेनाओं को निष्कासित कर दिया और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बेल्जियम के अन्य नगरों से भी डचों को निकाल दिया गया और एक स्वतन्त्र राष्ट्र की मांग की गयी।

इंग्लैण्ड में इस समय ह्विग मन्त्रिमण्डल बना, जिसकी बेल्जियम के साथ अत्यन्त सहानुभूति थी। पामर्स्टन ने कूटनीति का परिचय देते हुए स्थिति को संभाला। पामर्स्टन का विचार था कि यदि बेल्जियम अकेले ही युद्ध करता रहा तो शीघ्र ही वह फ्रांस से सहायता लेगा। इससे एक गम्भीर युद्ध एवं बेल्जियम में फ्रांस के प्रभाव की वृद्धि होगी, जिससे इंग्लैण्ड के हितों को आघात पहुंच सकता था। अतः उसने शान्तिपूर्ण ढंग से बेल्जियम की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। बेल्जियम की समस्या पर विचार करने के उद्देश्य से पामर्स्टन ने लन्दन में महाशक्तियों की एक सभा आयोजित की इसमें बेल्जियम को हालैण्ड से पृथक् कर दिया और दोनों देशों के मध्य सीमा रेखा निश्चित कर दी गयी। लक्जेमबर्ग का शहर हॉलैण्ड के राजा को दे दिया गया तथा राष्ट्रीय ऋण का आधा भाग बेल्जियम को चुकाना था, बेल्जियम के निवासियों को यह शर्तें स्वीकार न थीं। अतः हॉलैण्ड ने बेल्जियम पर आक्रमण कर दिया, किन्तु फ्रांस ने हस्तक्षेप किया। बेल्जियम के अस्तित्व की रक्षा की। पामर्स्टन ने फ्रांस के इस हस्तक्षेप का विरोध किया। इंग्लैण्ड के विरोध करने पर फ्रांस ने अपनी सेनाएं वापस बुला लीं। **अन्त में, 4 मई, 1832 ई. को यह निश्चित किया गया कि बेल्जियम का राजा सेक्सकोबर्ग का लियोपोल्ड होगा तथा हॉलैण्ड को लक्जेमबर्ग का केवल आंशिक भाग ही दिया गया, बेल्जियम ने भी राष्ट्रीय ऋण का कुछ भाग देना स्वीकार किया।** यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्रों ने बेल्जियम की तटस्थता एवं स्वतन्त्रता की गारण्टी दी। हॉलैण्ड के राजा ने पामर्स्टन के दबाव के कारण विवश होकर सभी शर्तें स्वीकार कीं। इस प्रकार पामर्स्टन ने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की। कहा जाता है, **''पामर्स्टन ने एक नए बेल्जियम को जन्म दिया जिसमें फ्रांस अथवा किसी अन्य यूरोपीय शक्ति का कोई प्रभाव न था।''**[1]

(ii) **स्पेन और पुर्तगाल की समस्या**—स्पेन एवं पुर्तगाल में उस समय लगभग एक जैसी समस्याएं उठ खड़ी हुईं। दोनों ही राज्यों में दो युवा रानियां थीं जो सांविधानिक शासन की

1. **"It has been said that 'Palmerston created a new Belgium in which there was no influence of France and other European powers.'"**

समर्थक थीं तथा दोनों को ही अपनी जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। दोनों ही राज्यों में उनके चाचा गद्दी पर अधिकार करना चाहते थे। दोनों रानियों के चाचा निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में विश्वास करते थे तथा इन्हें यूरोप के निरंकुश शासकों से सहायता मिलती थी। पामर्स्टन इन दोनों ही राज्यों में युवा रानियों का समर्थक था। इस प्रकार उसने प्रमाणित किया कि वह कैनिंग की उदार एवं सांविधानिक शासनों के समर्थन करने की नीति को पूर्ण रूप से मानता था। जितना निरंकुश शासक अन्य निरंकुश राजाओं को सहायता करते थे उतना वह सांविधानिक राजाओं की सहायता करने को तत्पर था।

अपने ब्राजील राज्य को छोड़कर जुलाई 1831 ई. में डोम पेड्रो (Dom Pedro) पुर्तगाल पहुंचा और अपनी पुत्री डोना मारिया (Dona Maria) की ओर पुर्तगाल के राज्य को प्राप्त करने की कोशिश की। उस समय डोना मारिया के चाचा डोम मीगल (Dome Mignel) ने गद्दी पर अधिकार कर रखा था। इंग्लैण्ड और फ्रांस के प्रयत्नों से डोम पेड्रो ने पुर्तगाल में प्रवेश किया और वहां पर डोम मीगल को हराने का प्रयत्न किया। दोनों में संघर्ष होता रहा, अन्त में 1834 ई. में डोम पेड्रो अपने अभियान में सफल हुआ और डोम मीगल ने पुर्तगाल और उसकी राजगद्दी पर से अपना अधिकार छोड़ना स्वीकार किया। इस प्रकार 1835 ई. में पुनः पुर्तगाल में सांविधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई और डोना मारिया पुर्तगाल की राजगद्दी पर आरूढ़ हुई।

स्पेन की स्थिति भी पुर्तगाल के समान थी। 1833 में राजा फर्डिनेण्ड सप्तम् की मृत्यु हो जाने पर उसकी पुत्री ईसाबेला (Isaballa) को उसकी मां क्रिश्तिना (Christina) के संरक्षण में स्पेन की रानी बना दिया गया, किन्तु उसके चाचा डोन कार्लोस (Don Carlos) ने उसका विरोध किया और निरंकुश राज्यों की सहायता की आशा पर 4 अक्टूबर, 1833 ई. को अपने को स्पेन का राजा घोषित कर दिया जिससे स्पेन में युद्ध प्रारम्भ हो गया। रानी ईसाबेला की मां ने अपने नागरिकों को एक संविधान प्रदान किया तथा इंग्लैण्ड और फ्रांस से सहायता की अपेक्षा की। पामर्स्टन ने फ्रांस, स्पेन तथा पुर्तगाल को मिलाकर 22 अप्रैल, 1834 ई. को एक चर्तुमुख सन्धि की। इसके द्वारा उन्होंने पुर्तगाल से डोम मीगल तथा स्पेन से डोन कार्लोस को बाहर निकालने में एक दूसरे को सहयोग देने का वचन दिया। निश्चित रूप से यह सन्धि पामर्स्टन की कूटनीतिक सफलता थी। उसने स्वयं भी कहा था, **"यह बड़ी सफलता और सभी कुछ मेरे प्रयत्नों के कारण हुआ।"**[1] यह सन्धि पवित्र सन्धि के मुकाबले में अधिक शक्तिशाली तथा निरंकुशता को रोकने की एक बड़ी शक्ति थी।

अन्त में डोन कार्लोस को स्पेन छोड़ना पड़ा और ईसाबेला स्पेन की रानी बन गयी। इस प्रकार उस अवसर पर स्पेन और पुर्तगाल दोनों ही स्थानों पर पामर्स्टन ने पूर्ण सफलता प्राप्त की। उसने स्वयं कहा था, चर्तुमुखी सन्धि ने वह कार्य पूरा किया है जो अभी तक किसी ने नहीं किया था। उसने एक ऐसे युद्ध को समाप्त कर दिया जो महीनों तक चल सकता था। सैनिक परिस्थिति पूर्णतया निरंकुश राजाओं के पक्ष में थी, परन्तु इस सन्धि के नैतिक प्रभाव

1 'A capital hit and all my doing.' —Palmerston

ने उन सभी को झुका दिया[1] डब्लू. टेम्पल ने लिखा है, "**मारिया की विजय तथा ईसाबेला का सिंहासनारोहण इतिहास में महत्वपूर्ण घटनाएं रहेंगी तथा उदार दल को महान् शक्ति प्रदान करेंगी।**"[2]

(iii) **पोलैण्ड की समस्या**—1830 ई. की जुलाई क्रान्ति का प्रभाव पोलैण्ड पर भी हुआ। पोलैण्ड, रूस के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था तथा वारसा, जो कि विएना की सन्धि के द्वारा रूस के अधीन हो गया था, को मुक्त कराना चाहता था। विएना कांग्रेस ने शेष पोलैण्ड को एक संविधान दिया था जिसको जार निकोलस समाप्त करना चाहता था और उसने सम्पूर्ण पोलैण्ड को ही अपने राज्य में मिला लिया। पामर्स्टन ने रूस के इस कार्य की कटु आलोचना की तथा इस कार्यवाही का विरोध भी किया। पामर्स्टन ने विरोध अवश्य किया, किन्तु हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। क्योंकि विएना सन्धि के अन्तर्गत वारसा रूस को दिया गया था। इस प्रकार पामर्स्टन की नीति के कारण इंग्लैण्ड एवं रूस के सम्बन्ध खराब हो गए।

(iv) **पूर्वी समस्या**—पूर्वी समस्या से सम्बन्धित ड्यूक ऑफ वैलिंगटन की उदासीन नीति के कारण कैनिंग द्वारा किए गए कार्यों पर पानी फिर गया। एड्रियानोपिल की सन्धि के द्वारा यूनान स्वतन्त्र हो गया तथा रूस का टर्की पर प्रभाव बढ़ गया। पामर्स्टन इस सन्धि को समाप्त करना चाहता था क्योंकि इससे एक तो अंग्रेजी व्यापार की हानि हो रही थी, दूसरा कारण यह था कि रूस का टर्की में प्रभाव बढ़ने से इंग्लैण्ड के पूर्वी उपनिवेशों को संकट उत्पन्न हो सकता था। इसी मध्य मेहमत अली ने जो कि मिस्र का शासक था, टर्की की दुर्बलता से लाभ उठाए हुए उस पर आक्रमण किया और सीरिया पर अधिकार करने के पश्चात् कुस्तुन्तुनियां पर आक्रमण किया। पामर्स्टन ने टर्की की सहायतार्थ कदम उठाया और रूस को भी अपने साथ मिला लिया। **सम्मिलित प्रयासों से मेहमत अली परास्त हुआ। परिणामस्वरूप** 1841 ई. **में लन्दन की सन्धि हुई जिसके द्वारा उनकियार स्कैलसी की सन्धि की धाराओं को समाप्त कर दिया गया और ओटोमन साम्राज्य पर रूस के स्थान पर इंग्लैण्ड का प्रभुत्व छा गया।** इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां एक ओर पामर्स्टन रूस के प्रभाव को टर्की से समाप्त करने में सफल हो गया वहीं दूसरी ओर रूस से उसके सम्बन्ध मित्रतापूर्ण ही बने रहे।

(v) **सुदूर पूर्व**—पामर्स्टन के समय में इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का केन्द्र केवल यूरोप ही नहीं रह गया था वरन् उसको निर्धारित करते समय इंग्लैण्ड के एशिया में फैले हुए विस्तृत क्षेत्रों को भी ध्यान में रखा जाता था। इस दृष्टि से पामर्स्टन का विशेष महत्व है। जिस समय पामर्स्टन यूरोप में (टर्की में) रूस के प्रभाव को समाप्त कर इंग्लैण्ड का प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न कर रहा था उस समय लार्ड ऑकलैण्ड अफगानिस्तान में दोस्त मुहम्मद को गद्दी से उतार रहे थे।

(vi) **चीन के साथ युद्ध**—पामर्स्टन ने कुछ व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए चीन से युद्ध किए और अफीम को खरीदने के लिए विवश किया। ग्लैडस्टन ने भी इन युद्धों को

1 'Nothing ever did as well as the Quadruple treaty. It has ended a war which might otherwise have lasted months. The military situation was all in favour of the despots but the moral effect of the treaty bowed them all.' —*Palmerston.*

2 'The triumph of Maria and the accession of Isabella, will be important events in Europe and will give great strength to the Liberal party.' —*W. Temple*

अन्यायपूर्ण बताया। उसके अनुसार **"इन युद्धों में देश का जितना अपमान हुआ उतना पहले कभी नहीं सुना गया।"**[1] किन्तु मैरियट के अनुसार अफीम इस युद्ध का वास्तविक कारण नहीं था। मैरियट का मत है कि चीनी लोग केवल अफीम के आयात के विरुद्ध नहीं थे वरन् वे सम्पूर्ण विदेशी व्यापार के और वस्तुतः विदेशियों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने के विरोधी थे। 1837 ई. में चीन की सरकार द्वारा अफीम के आयात को रोकने का निश्चय किया गया। चीन में लिन (Lin) नामक विशेष आयुक्त को इस व्यापार को समाप्त करने के लिए कैण्टन (Canton) भेजा। लिन ने समस्त चीनी व्यापारियों से अफीम की समस्त राशि को नष्ट करने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् उसने मांग की कि भविष्य में अफीम के व्यापार को करने वाले जलपोतों को अपने अधिकार में ले लेगा तथा सम्बन्धित व्यापारियों को मृत्यु-दण्ड दिया जाएगा। कैण्टन में अंग्रेजी अधीक्षक कप्तान इलियट ने अफीम का भण्डार लिन को समर्पित कर दिया, परन्तु उसने अन्य आज्ञाओं का विरोध किया। **आंग्ल राजनीतिज्ञों का मत है कि ब्रिटेन केवल शान्तिपूर्ण ढंग से व्यापार करना चाहता था और इसी कारण युद्ध के अनिच्छुक इंग्लैण्ड ने चीनी सरकार से अन्य देशों के साथ मिलकर युद्ध किया और अन्त में 1842 ई. में नानकिन (Nankin) की सन्धि की।** इस सन्धि से इंग्लैण्ड को हांगकांग मिला तथा छह लाख पौण्ड की धनराशि क्षतिपूर्ति के रूप में चीनी सरकार ने देना स्वीकार किया। व्यापार के लिए कैण्टन, एमोय (Amoy), शंघाई (Shanghae), निंगपो (Ningpo) तथा फू-चाऊ-फू (Foo-Chow-foo) मिले। दुर्भाग्यवश अफीम का व्यापार इस सन्धि के पश्चात् तस्करों के हाथों में चला गया। क्योंकि चीन की सरकार ने अफीम के व्यापार को वैध घोषित न किया।

इसके पश्चात् भी नानकिन की सन्धि पर इंग्लैण्ड में सन्तोष व्यक्त किया गया, किन्तु इस सन्धि के सम्पन्न होने से पूर्व ही ह्विग मन्त्रिमण्डल अपदस्थ हो गया अतः इसका श्रेय उनके उत्तराधिकारियों को मिला।

1847 ई. से 1865 ई. तक पामर्स्टन की विदेश नीति

पील के प्रधानमन्त्रित्व काल में वैदेशिक नीति में स्थिरता आने लगी थी क्योंकि पील स्वयं, उसका विदेशमन्त्री एडवर्डीन तथा फ्रांस का प्रधानमन्त्री गुइजो सभी शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। एबर्डीन तथा गुइजो (Guizot) की परस्पर मित्रता ने फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के मध्य सम्बन्ध मधुर बनाए रखे। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की मित्रता के कारण शान्ति भंग करने वाला कोई संकट न उत्पन्न हुआ, परन्तु एबर्डीन के पश्चात् पामर्स्टन के पुनः प्रधानमन्त्री बनने पर शीघ्र ही स्थिति में परिवर्तन होने लगा फिर भी पामर्स्टन ने स्वयं युद्ध के मन्तव्यों का खण्डन किया और यूरोप में शान्तिपूर्ण स्थिति के पश्चात् भी शान्ति को भंग न होने दिया। एशले ने लिखा है, **"यद्यपि वे घटनाएं घटित हो चुकी हैं जिन्होंने इंग्लैण्ड के हितों में तथा अन्य महान् राष्ट्रों के हितों में विरोध उत्पन्न कर दिया है तथापि कम से कम यह तथ्य है कि........शान्ति को भंग नहीं होने दिया गया है।"**[2]

---

1 "A war more unjust in its origin, a war more calculated in its progress to cover this country with disgrace, I do not know and have not read of." —*Gladstone.*

2 'Although events have happened which have brought the interests of England .....into opposition to the interests of other great and powerful nations, yet at least the fact is that.....peace has been preserved.'

(i) **स्पेन**—पामर्स्टन अपने प्रथम मन्त्रित्वकाल में फ्रांस और इंग्लैण्ड के मध्य मधुर सम्बन्ध बनाने में सफल हुआ था, किन्तु शनैः-शनैः ये सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गए। इस तरह सम्बन्ध खराब होने में दोनों ही देश समान रूप से उत्तरदायी थे। फ्रांस एक तो प्रतिक्रियावादियों का साथ देने लगा था तथा पूर्वी समस्या में उसने मेहमत अली का साथ दिया था। दूसरी ओर पामर्स्टन ने भी अनेक ऐसे कार्य किए जिनमें हर्नशा (Hernshaw) के शब्दों में पामर्स्टन पर पूर्ण विश्वास की बात तो अलग अपितु उसके वक्तव्यों पर भी सन्देह होता था उसने जिस नीति का अनुसरण किया वह किसी भी प्रकार से उभारने और जमाने के लिए नहीं थी।[1]

स्पेन की समस्या के कारण उनके सम्बन्ध खराब हो गए। ईसाबेला के विवाह को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। परम्परा के अनुसार स्पेन की राजकुमारियों का विवाह फ्रांस के राजकुमारों के साथ होता था। इस परम्परा का इंग्लैण्ड विरोध करता था। 1843 ई. में यह निश्चित किया गया कि ईसाबेला की बहन मेरिया लूसा का विवाह लुई फिलिप के पुत्र ड्यूक डी मोन्टपेन्सियर (Duke De Montpensier) से किया जाए, लेकिन यह विवाह तभी सम्पन्न होना था जबकि ईसाबेला विवाह करने के पश्चात् अपने उत्तराधिकारी को जन्म दे सके। इसी मध्य 1846 ई. में स्पेन में संरक्षिका महारानी (ईसाबेला की मां) ने राजकुमारी का विवाह पुर्तगाल नरेश के भाई और बेल्जियम नरेश के भांजे सेक्सकोबर्ग के राजकुमार लियोपोल्ड (Leopold) के साथ करने का प्रस्ताव रखा। फ्रांस कोबर्ग वंश के किसी भी राजकुमार से ईसाबेला का विवाह नहीं होने देना चाहता था। **अतः उसने 1843 ई. के समझौते को तोड़ दिया और इसका उत्तरदायित्व की इंग्लैण्ड के ऊपर डाला गया। क्योंकि तब इंग्लैण्ड ने वचन दिया था कि वह ईसाबेला का विवाह किसी कोबर्ग राजकुमार से नहीं होने देगा, किन्तु इस समय उसने अपनी सहमति दे दी थी।** इस प्रकार इंग्लैण्ड को दोषी ठहराते हुए लुई फिलिप ने ईसाबेला का विवाह 10 अक्टूबर, 1846 को डोन फ्रांसिस्को (Don Francisco) के साथ सम्पन्न करा दिया। डोन फ्रांसिस्को लुई फिलिप का भतीजा था। उसी दिन ईसाबेला की छोटी बहिन का विवाह भी मेड्रीड में फ्रांसीसी राजकुमार मोन्टपेन्सियर से सम्पन्न हुआ।

इन विवाहों की तीव्र प्रतिक्रिया इंग्लैण्ड में हुई क्योंकि यह समझा जाता था कि डोन फ्रॉसिस विवाह के योग्य नहीं था। पामर्स्टन ने इन विवाहों को रोकने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु अपने प्रयत्नों में वह सफल न हो सका। यद्यपि इन विवाहों से इंग्लैण्ड को कोई हानि नहीं हुई और यह अफवाह कि डोन फ्रांसिस की सन्तान नहीं हो सकती, गलत साबित हो गयी तो भी इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्ध बहुत खराब हो गए। महारानी विक्टोरिया ने फ्रांस के व्यवहार पर रोष प्रकट करते हुए कहा, "गुइजो का विवाह सम्बन्धों को तय किया जाना इतना लज्जात्मक एवं अशोभनीय रूप से बेईमानी से भरा हुआ है कि उसने मेरी भावनाओं को जो आघात पहुंचाया वह आज भी कसकता है।"[2]

1 'He showed himself exclusively suspicious, harshly unconciliatry culpably regardless of the enormous-difficulties with which the orleanist dynasty had no contend. He showed himself contemptuously indifferent that only some appearance of some success abroad would make the orleans to take root at home.' —*Hernshaw*

2 'Guizot's conduct is beyond all belief shameful and so shabbily dishonest...... My feelings were and are deeply wounded.' —*Queen Victoria*

(ii) **पुर्तगाल**—1846 ई. में पुर्तगाल में मीगल के समर्थकों ने पुनः विद्रोह किया, परन्तु पामर्स्टन ने जहाजी बेड़े की सहायता से मारिया के सांविधानिक दल का पुर्तगाल में पुनः प्रभुत्व स्थापित कराया। पामर्स्टन ने इस प्रकार पुर्तगाल को स्पेन तथा फ्रांस के प्रभाव से बचाया और अपना प्रभाव वहां जमाए रखा।

(iii) **पोलैण्ड**—पूर्वी समस्या की पश्चिमी यूरोप की राजनीति पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता समाप्त होते ही आस्ट्रिया ने स्वतन्त्र पोलैण्ड के अन्तिम अवशेष क्रैको (Cracow) की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। पामर्स्टन ने आस्ट्रिया के इस कार्य की निन्दा की और विरोध प्रकट किया, किन्तु आस्ट्रिया को ऐसा करने से रोकने में सर्वथा असमर्थ रहा।

(iv) **स्विट्जरलैण्ड का सौंडरबन्ड**—1830 ई. से 1848 ई. तक स्विट्जरलैण्ड में निरन्तर अशान्तिपूर्ण परिस्थितियां रहीं और ऐसा प्रतीत होता था कि यह संघ अब अधिक समय तक चल नहीं सकेगा। इस संघ के अस्तित्व को 1832 ई. में प्रगतिशील लघु राज्यों (Cantons) ने संकट में डाल दिया, **जिन्होंने सीबीनर कानकरडट** (Siebener Konkordat) **स्थापित किया जिसका उद्देश्य अपने संविधान के संशोधन को अनुमोदन दिलाना था।** 1847 ई. में सात रोमन कैथोलिक तथा अधिक रूढ़िवादी केण्टनों ने इसका प्रतिरोध सौंडरबन्ड (Sonderbund) की स्थापना से किया। इस सौंडरबन्ड नामक संगठन का उद्देश्य धार्मिक शिक्षा, जैसुइटों को पदासीन किए रखना, मठों को अक्षुण्ण रखना और 1815 ई. के फैडरल एक्ट को बनाए रखना था। रूढ़िवादी कैण्टनों को विश्वास था कि मैटरनिख उनकी सहायता करेगा। रूस, प्रशा और सार्डीनिया भी मैटरनिख की नीति को इस विषय में मानते थे। गुइजो एवं लुई फिलिप का भी यही मत था। दूसरी ओर पामर्स्टन, लुई फिलिप एवं मैटरनिख से बदला लेने का अवसर ढूंढ रहा था। इस समस्या में वह प्रतिक्रियावादियों के हस्तक्षेप को रोकना चाहता था जिससे उदारवादी ही विजय प्राप्त कर सकें। स्विट्जरलैण्ड में उदारवादियों के प्रोटेस्टेण्ट धर्म का अनुयायी होने के कारण भी इंग्लैण्ड की सहानुभूति उदारवादियों के साथ थी। पामर्स्टन ने अत्यन्त कूटनीतिक तरीके से स्विट्जरलैण्ड में विदेशियों के हस्तक्षेप को रोका। पामर्स्टन का मत था कि यदि इस समस्या में कोई भी देश हस्तक्षेप न करे तो स्विस संघ, सौंडरबन्ड का अकेले ही सामना कर लेगा और यही हुआ। पामर्स्टन ने अन्य यूरोपीय देशों को सभाओं द्वारा इस समस्या को सुलझाने को कहा। ऐसी ही एक सभा होने वाली थी कि इसी मध्य स्विस संघ की सेना ने सौंडरबन्ड की सेनाओं को परास्त किया। सौंडरबन्ड भंग कर दिया। संघ की सत्ता को सुदृढ़ कर दिया गया और अन्त में पामर्स्टन अपनी योजना को यूरोप के अन्य देशों के विरोध के पश्चात् भी कार्यान्वित करने में सफल हो गया।

(v) **फ्रांस की 1848 की क्रान्ति और पामर्स्टन**—1848 ई. के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति प्रमुख रूप से फ्रांस विरोधी प्रतीत होती है, किन्तु इस प्रकार की नीति यूरोप में शान्ति तथा सांविधानिकता के लिए हानिकारक प्रमाणित हुई। इस प्रकार की नीति से चतुर्मुखी सन्धि समाप्त हो गयी और फ्रांस के गुइजो को साथियों के रूप में तानाशाह मिले और इंग्लैण्ड सबसे पृथक् अकेला रह गया था। पामर्स्टन विश्व में सांविधानिक सरकारों की स्थापना की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहता था ताकि सुधारवादियों की तर्कसंगत मांगें स्वीकार हो सकें तथा क्रान्तियों को रोका जा सके।

1848 **में फ्रांस में पुनः क्रान्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होने पर पामर्स्टन इटली के विषय में अत्यन्त चिन्तित हो उठा इसका प्रमुख कारण यह था कि उसका बचपन वहीं व्यतीत हुआ था** और इटली से उसे विशेष स्नेह था, उसे डर था कि कहीं इटली में भी क्रान्ति होने पर एक यूरोपीय युद्ध जन्म न ले ले। यूरोप में पामर्स्टन शान्ति बनाए रखना चाहता था और इसी कारण उसने इटली में राज्यों के निरंकुश शासकों को सांविधानिक रास्ता अपनाने का परामर्श दिया था। उसने एक मिशन भी इटली इसी उद्देश्य से भेजा था, परन्तु यह मिशन अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। पामर्स्टन ने अपने राजदूत (विएना स्थित) को लिखा कि यदि मैटरनिख ने शक्ति के बल पर इटली के राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया तो उससे युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा।

1848 **ई. में फ्रांस में हुई क्रान्ति के समय पामर्स्टन यह नहीं चाहता था कि यूरोप का कोई भी राष्ट्र फ्रांस के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करे,** साथ ही वह यह भी नहीं चाहता था कि फ्रांस यूरोप के किसी अन्य राष्ट्र पर आक्रमण कर दे। वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अत्यन्त सफलता से अन्य राष्ट्रों को हस्तक्षेप करने से रोके रह सकता था। दूसरी ओर उसने फ्रांस की नवीन सामयिक (Provisional) सरकार को यह भली-भांति दर्शा दिया कि उसे कार्यकलापों में नम्रतापूर्वक कार्य करना चाहिए। पामर्स्टन की इस विचारधारा का प्रभाव यह हुआ कि फ्रांस की क्रान्ति इसी उग्र रूप को धारण न कर पायी और इटली में बहुत से राज्यों को संविधान प्राप्त हो गए तथा सिसले, टस्कनी, पीडमाण्ट तथा रोम में तत्काल संविधान कार्यान्वित हो गया।

शीघ्र ही 1848 ई. की क्रान्ति का प्रभाव आस्ट्रिया पर भी पड़ा और निरंकुश प्रतिक्रियावादी मैटरनिख को आस्ट्रिया छोड़कर भागना पड़ा। इसकी इटली के उन राज्यों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई जो कि आस्ट्रिया के अधीन थे। नेविल्स के फर्डीनेण्ड ने भी विवश होकर इस आन्दोलन में सहयोग करने का आडम्बर किया। लोम्बा़र्डी, वैनिस, परमा और मोर्डिना ने जनमत संग्रह के द्वारा सार्डीनिया के साथ सहयोग न करने की घोषणा की। इस समय से पीडमाण्ट के नेतृत्व का समय प्रारम्भ हुआ। इटली की इन क्रान्तियों से पामर्स्टन को अत्यन्त चिन्ता हुई। उसने बेल्जियम नरेश को लिखा कि **'इटली उसके (आस्ट्रिया) लिए सिरदर्द ही है।'**[1] बहुत शीघ्र ही इटल की जनता ने उस नवहस्तगत संविधान को खो दिया अतः एक बार फिर पामर्स्टन की व्यग्रता में वृद्धि हुई। इस कारण पामर्स्टन यह सोच रहा था कि फ्रांस के साथ मिलकर इटली का समझौता करा दिया जाए, परन्तु शीघ्र ही उसे इसे विचारधारा को त्यागने के लिए भी विवश होना पड़ा क्योंकि नेपोलियन तेजी से फ्रांस में शक्तिशाली होता जा रहा था और उसने स्वयं ही रोम के पोप को बनाए रखने के लिए अथक परिश्रम किया।

हंगरी को पामर्स्टन एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में देखना नहीं चाहता था तथा वहां पर गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना तो किसी भी मूल्य पर नहीं चाहता था। इसका प्रमुख कारण मध्य यूरोप में आस्ट्रिया के साम्राज्य को सुदृढ़ बनाना था। ताकि रूस की प्रगतिवादी नीति के विरुद्ध एक शक्तिशाली हैप्सबर्ग साम्राज्य हो। यद्यपि वह जानता था कि हंगरी की जनता अत्यन्त दुःखी थी, किन्तु इंग्लैण्ड के हितों को ध्यान में रखकर उसने हंगरी को किसी प्रकार

1 **"Itlay was the heel of Achilles and not the Sheild of Ajax of Austria."** ***Palmerston***

की सहायता नहीं कि, किन्तु जब उसने देखा कि क्रान्ति का समय समाप्त हो गया है तो वह धीरे-धीरे अपनी नीतियों में परिवर्तन करने लगा। इसका प्रमुख कारण पूर्वी राज्य ही थे।[1]

(vi) **श्लैस्विग तथा होलस्टिन की समस्या**—पामर्स्टन को श्लैस्विग (Schlesiwing) तथा होलस्टिन (Holstein) समस्या का सामना भी करना पड़ा। श्लैस्विग की जनता यह नहीं चाहती थी कि डेनमार्क उनके राज्य को अपने राज्य में मिला ले। पामर्स्टन ने इस सम्बन्ध में मध्यस्थता करना चाही, परन्तु इस समय तक यूरोप में आस्ट्रिया तथा प्रशा के महत्व में इतनी वृद्धि हो चुकी थी कि पामर्स्टन इस विषय में कुछ भी न कर सका। इस स्थिति में पामर्स्टन की विदेश नीति की कटु आलोचना इंग्लैण्ड में हुई। इसके अतिरिक्त उसके प्रजा सम्बन्धी व्यवहार की भी निन्दा हुई। इस प्रकार सर्वाधिक शिकायतें स्वयं रानी विक्टोरिया के पत्रों तथा प्रिंस कन्सर्ट की जीवन कथा में मिलती हैं। प्रजा के साथ उसका व्यवहार वास्तव में अशिष्टतापूर्ण था। वह बड़े से बड़े लोगों को लम्बे समय तक प्रतीक्षा कक्ष में बैठा रहने देता था और प्रश्नों के उत्तर भी ढंग से नहीं देता था।

वैदेशिक विषयों से सम्बन्धित कुछ ऐसी घटनाएं 1850-51 ई. में हुईं जिनके कारण पामर्स्टन को मन्त्रिमण्डल से निष्कासित कर दिया गया।

सर्वप्रथम पुर्तगाल में जन्मा जिब्राल्टर का निवासी डोन पैसिफिको (Don Pacifico) के कारण समस्या उत्पन्न हुई। डोन, एथेन्स में कौंसिल जनरल के पद पर कार्यरत था। 1847 ई. में विद्रोह के समय भीड़ ने उसके घर को जला दिया जिसकी क्षतिपूर्ति के रूप में उसने ग्रीक सरकार से 81 हजार पौण्ड की मांग की और इस मामले में इंग्लैण्ड की सरकार से सहायता मांगी। पामर्स्टन ने उसे जिब्राल्टरवासी होने के कारण इंग्लैण्ड का व्यक्ति मानकर सहायता का वचन दिया। पामर्स्टन के आदेश से एडमिरल वारकर ने पीनियस (Pinaeus) बन्दरगाह की नाकाबन्दी कर दी। ग्रीक सरकार को विवश होकर डोन से समझौता करना पड़ा। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में पामर्स्टन के इस कार्य की निन्दा की गयी, किन्तु हाउस ऑफ कॉमन्स में उसने अपने साथियों को समझाया कि प्रश्न धन का नहीं इंग्लैण्ड के सम्मान का था। इस प्रकार पामर्स्टन ने इस उदाहरण से यह प्रमाणित किया कि इंग्लैण्ड के नागरिक संसार में कहीं भी हों अंग्रेजी सेनाएं उनकी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हैं। **इस घटना का दुष्परिणाम यह हुआ कि इंग्लैण्ड और रूस के सम्बन्ध खराब हो गए तथा फ्रांस ने तो अपना राजदूत ही इंग्लैण्ड से बुला लिया।**

1851 ई. के अक्टूबर माह में कासूथ (Kassuth) इंग्लैण्ड आया जो कि रूस और आस्ट्रिया के विरुद्ध आंग्ल नागरिकों को उत्तेजित करना चाहता था। पामर्स्टन ने उससे मिलना स्वीकार किया, किन्तु बाद में उसे इन्कार करना पड़ा, परन्तु अगले ही माह में उसने फिशबरी के उग्रवादियों के संघ से भेंट कर रूस तथा आस्ट्रिया के लिए अपशब्द कहे। महारानी विक्टोरिया उपर्युक्त सभी कार्यवाहियों से रुष्ट थी जबकि एक अन्य मामले ने स्थिति को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। 3 दिसम्बर, 1851 ई. को फ्रांस में लुई-नेपोलियन के द्वारा द्वितीय गणतन्त्र की समाप्ति का समाचार इंग्लैण्ड पहुंचा। रानी विक्टोरिया इसके पक्ष में न थी और उन्होंने प्रधानमन्त्री को तटस्थ रहने का आदेश दिया, किन्तु इसके पश्चात् भी पामर्स्टन ने इस

1 "He regarded the Austrian Empire as a European necessity and the natural ally of England in the east." —*Cambridge Modern History*.

स्थिति का अनुमोदन किया। पामर्स्टन के लिए यह स्थिति अत्यन्त जटिल बन गयी जिसके फलस्वरूप 19 दिसम्बर, 1851 ई. को रसल ने पामर्स्टन को विवश होकर मन्त्रिमण्डल से निकाल दिया।

पामर्स्टन को रसल द्वारा मन्त्रिमण्डल से निकाले जाने पर बहुत कष्ट हुआ और वह रसल से बदला लेने के अवसर की खोज में रहने लगा। रसल ने 1852 ई. में जब मिलीशिया बिल (Militia bill) प्रस्तुत किया तो पामर्स्टन ने उसका घोर विरोध किया और इस प्रकार मन्त्रिमण्डल को भंग कराकर अपने अपमान का बदला लिया।

रसल के पश्चात् एवर्डीन प्रधानमन्त्री बना। उसके मन्त्रिमण्डल में पामर्स्टन ने गृहमन्त्री का पद ग्रहण किया। क्रीमिया के युद्ध में अस्वस्थता के कारण एवर्डीन की अत्यन्त आलोचना हुई और उसे 1855 ई. में त्यागपत्र देना पड़ा। 1855 ई. में ही विवश होकर विक्टोरिया को पामर्स्टन को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करना पड़ा। इस प्रकार वह संन् 1855 ई. से 1858 ई. तक प्रधानमन्त्री रहा। इसके कुछ समय पश्चात् 1859 ई. में वह पुनः प्रधानमन्त्री बना। 1865 ई. में अपनी मृत्यु तक इसी पद पर कार्य करता रहा।

(vii) **क्रीमिया का युद्ध** (Crimean War)—धार्मिक स्थानों पर ग्रीक तथा रोमन चर्च अपना-अपना अधिकार करना चाहते थे। फ्रांस तथा रूस क्रमशः रोमन तथा ग्रीक चर्च के अनुयायी थे और एक-दूसरे से शत्रुता रखते थे। टर्की, फ्रांस की ओर झुका। रूस ने इंग्लैण्ड से टर्की के बंटवारे पर सन्धि करनी चाही, परन्तु वह असफल रहा अतएव उसने टर्की पर आक्रमण कर दिया। फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने टर्की को सहयोग दिया। आस्ट्रिया भी मित्र राष्ट्रों का समर्थक बन गया। प्रारम्भ में अंग्रेजों को संकट का सामना करना पड़ा, किन्तु सन् 1855 ई. में पामर्स्टन के प्रधानमन्त्री बनने पर मित्र राष्ट्रों ने रूस को परास्त किया तथा उसे विवश होकर पेरिस की सन्धि करनी पड़ी। पामर्स्टन तथा इंग्लैण्ड की यूरोप में इस युद्ध से प्रतिष्ठा बढ़ गयी तथा नेपोलियन तृतीय फ्रांस में राष्ट्रीय नेता (National Hero) माना जाने लगा।

जिस समय पामर्स्टन ने दूसरी बार मन्त्रिमण्डल बनाया, उसमें लार्ड जॉन रसल वैदेशिक मामलों के मन्त्री थे, किन्तु वैदेशिक नीति पर पामर्स्टन का अधिक प्रभाव था। इस काल में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और अधिक जटिल हो गयी थी जिसके कारण इंग्लैण्ड की स्थिति डांवाडोल हो गयी थी। सुदूरपूर्व में चीन से युद्ध चल रहा था तथा यूरोप में इटली के एकीकरण के प्रयत्न हो रहे थे। इसी समय श्लैस्विग तथा होलस्टिन का प्रश्न पुनः उभर रहा था। इसके अतिरिक्त सुदूर पश्चिम में अमरीकी गृहयुद्ध के कारण इंग्लैण्ड की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इस समय इंग्लैण्ड के हितों को ध्यान में रखते हुए अत्यन्त सावधानीपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता थी।

(viii) **जर्मनी की क्रान्ति**—इटली और जर्मनी की क्रान्तियों के स्वरूपों में भिन्नता थी। जर्मनी में उस समय बिस्मार्क का प्रभुत्व था। वह सम्पूर्ण जर्मनी को प्रशा के नेतृत्व में एक सशक्त राज्य बनाना चाहता था। जर्मन रियासतों पर आस्ट्रिया का प्रभाव था। कुछ राज्य फ्रांस के अधीन थे तथा कुछ डेनमार्क के। आस्ट्रिया, फ्रांस तथा डेनमार्क के विरुद्ध बिस्मार्क को इंग्लैण्ड से सहायता की आशा न थी, उसने रूस को इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा। 1863 ई. में पोलैण्ड में विद्रोह हो गया। पामर्स्टन तो धमकी ही देता रहा, किन्तु बिस्मार्क ने आगे बढ़कर रूस को सशक्त मदद दी और रूस ने पोलैण्ड के विद्रोह को कुचल दिया।

तत्पश्चात् बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से आस्ट्रिया को डेनमार्क के विरुद्ध लड़ने के लिए राजी कर लिया। **इस समय भी पामर्स्टन ने धमकी ही दी जबकि प्रशा और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं ने डेनमार्क को पराजित किया।** श्लैस्विग एवं होलस्टिन के क्षेत्रों के अतिरिक्त डेनमार्क को भारी युद्ध हर्जाना (War Indemnity) देना पड़ा। पामर्स्टन को बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से परास्त कर दिया।

(ix) **पोलैण्ड**—रूस की क्रूरताओं के कारण पोलैण्ड की जनता अत्यन्त दुःखी थी। सन् 1863 ई. में उन्होंने इसके विरुद्ध एक आंदोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य रूस द्वारा अनिवार्य सेवा नियम लगाया जाना था। वास्तविकता यह है कि रूस को 1815 ई. की सन्धि के अन्तर्गत पोलैण्ड निवासियों को संवैधानिक अधिकार देने थे। पामर्स्टन ने पोलैण्ड निवासियों के साथ सहानुभूति प्रकट की, किन्तु इसी मध्य बिस्मार्क ने रूस को सैनिक सहायता प्रदान की और पोलैण्ड के विद्रोह को दबा दिया गया।

(x) **चीन**—चीन सामुद्रिक डाकुओं से परेशान हो चुका था। 1856 ई. में चीनी अफसरों ने अंग्रेजी जहाज **'लोर्चा ऐरो'** (Lorcha Arrow) को पकड़ लिया क्योंकि उसमें कुछ अंग्रेज सामुद्रिक डाकू थे। पामर्स्टन ने इस बात को लेकर चीन से युद्ध प्रारम्भ किया तथा चीन को परास्त किया। चीन ने चालीस लाख पौण्ड हर्जाने के तौर पर तथा भारत से अफीम खरीदने का वचन दिया।

द्वितीय चीन युद्ध के पश्चात् भी शान्ति स्थापित न हुई, क्योंकि चीन ने इस सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया। अतः इंग्लैण्ड और फ्रांस के एडमिरल ने 25 जून, 1859 ई. को टाकू किलों पर आक्रमण कर दिया और 21 अगस्त, 1860 ई. को उन पर अधिकार कर लिया। परिणामस्वरूप चीन को पुनः वार्ता करने के लिए विवश होना पड़ा, परन्तु चार ब्रिटिश नागरिक जो बातचीत के लिए भेजे गए थे उनको धोखे से चीनियों ने मार डाला। अतः एक बार फिर युद्ध भड़क उठा और ब्रिटिश सेना ने चीनी शासक के ग्रीष्मकालीन महल को जला दिया। इस पर चीनी सम्राट ने पीकिंग की सन्धि (Treaty of Peking) स्वीकार की। इसके द्वारा पहली सन्धि को प्रमाणित किया गया।

(xi) **जापान**—चीन के समान जापान में भी व्यापार में वृद्धि और उसके संरक्षण हेतु इंग्लैण्ड की सरकार तत्पर थी। 1862 ई. में उन्हें एक बहाना मिल गया जबकि एक आंग्ल नागरिक की हत्या जापान में हो गयी। उस हत्या का हर्जाना और जापानी बन्दरगाहों को खोलने के लिए विवश करने को ब्रिटिश जहाज भेजे गए और जापान की सरकार को विवश होकर इंग्लैण्ड की बात माननी पड़ी।

(xii) **अमरीका का गृह-युद्ध**—उत्तरी अमरीका की अधिकांश रियासतें उद्योगों की केन्द्र बनी हुई थीं। वे अपने राज्य को ब्रिटिश प्रतियोगिता से बचाने में प्रयत्नशील थीं, दूसरी ओर दक्षिणी रियासतें थीं, जो मुख्यतः कृषि पर निर्भर करती थीं और इस कारण सुरक्षात्मक नीति के कारण वे इंग्लैण्ड में तैयार सस्ती मशीनों को प्राप्त नहीं कर सकती थीं। इस कारण वे सुरक्षात्मक नीति की विरोधी थीं।

अमरीका के उत्तरी राज्यों में स्वतन्त्र श्रमिक प्रणाली थी और वे दास प्रथा के घोर विरोधी थे, किन्तु दक्षिणी राज्य तम्बाकू, कपास, गन्ने की कृषि के लिए सस्ती दास श्रमिक व्यवस्था पर निर्भर करते थे। परिणामस्वरूप दक्षिणी राज्यों का औद्योगिक विकास भी दास श्रमिक व्यवस्था

पर निर्भर करता था। अतः वह स्वाभाविक ही था। दक्षिणी राज्य दास व्यापार प्रणाली के पोषक थे। अमरीकी संघ के नवीन सम्मिलित राज्यों में भी प्रमुख प्रश्न यह था, कि वहां पर दास प्रथा समाप्त की जाए अथवा यथावत् बनी रहे। 1860 ई. तक संयुक्त कांग्रेस में दास प्रथा विरोधी राज्यों का बहुमत हो जाने के कारण ऐसा प्रतीत होने लगा था कि सभी राज्यों से दास प्रथा समाप्त हो जाएगी।

इन परिस्थितियों में दक्षिणी राज्यों ने संयुक्त राज्य व्यवस्था से पृथक् होने के अपने अधिकार को प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। उसका कहना था कि प्रत्येक राज्य जिसे कांग्रेस में रहते हुए अपने हितों की हानि प्रतीत हो उसे संघ से पृथक् होने का अधिकार है, परन्तु उत्तरी राज्यों का कथन था कि जिस संघ की स्थापना संयुक्त राज्य के रूप में की गयी है उसमें किसी भी राज्य को पृथक् होने का अधिकार नहीं है। इस प्रश्न को लेकर संयुक्त राज्य के भविष्य को संकट उत्पन्न हो गया और वास्तव में यही युद्ध का मुख्य कारण भी था। अब्राहम लिंकन ने कहा, **"मेरा मुख्य उद्देश्य इस युद्ध से संघ को बचाना है न कि दासता को बनाए रखना अथवा समाप्त करना। यदि मैं बिना किसी दास को मुक्त कराए संघ को बचा सकता हूं तब मैं वैसा ही करूंगा और यदि मैं सम्पूर्ण दासों को मुक्ति दिलाकर (संघ को) बचा सकता हूं तब मैं वही करूंगा।"**[1]

अब्राहम लिंकन के राष्ट्रपति बन जाने के कारण यह निश्चित हो गया था कि युद्ध अनिवार्य है। 20 दिसम्बर, 1860 ई. को दक्षिणी बौरीलीना की रियासत ने संयुक्त राज्य अमरीका से स्वयं को पृथक् कर लिया और फरवरी 1861 ई. में एक पृथक् कोन्फिड्रेट अमरीकी राज्य (Confederate State of America) की स्थापना की गयी तथा इसका राष्ट्रपति जैफरसन डेविस (Jefferson Davis) चुना गया।

अप्रैल 1861 ई. में उत्तरी तथा दक्षिणी रियासतों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय संयुक्त राज्य अमरीका से चिढ़ता था वह अमरीका के गृहयुद्ध से प्रसन्न हुआ। इंग्लैण्ड के कुछ लोग भी अपने व्यापारिक हितों के कारण अमरीका को नीचा दिखाने के पक्ष में थे, परन्तु उस समय अमरीका तथा इंग्लैण्ड की मित्रता चल रही थी, अतः जल्दी में सरकार ने कोई कदम उठाना उचित नहीं समझा। इसी मध्य दक्षिणी रियासतों के दो प्रतिनिधि मैसन एवं स्लिडेल (Mason and Slidell) फ्रांस तथा इंग्लैण्ड से दक्षिणी राज्यों के संघ को मान्यता दिलाने के उद्देश्य से यूरोप की ओर चले, परन्तु रास्ते में उत्तरी राज्यों के कप्तान विल्कस ने इंग्लैण्ड के जहाज ट्रेन्ट (Trent) को रोककर उसमें से शक्ति के बल पर उन दोनों व्यक्तियों को कैद कर लिया। इंग्लैण्ड के सामन्त, व्यापारी तथा शासक वर्ग इस काण्ड से क्रोधित होकर अमरीका के विरुद्ध कार्यवाही की मांग करने लगे। फ्रांस तथा रूस ने भी उत्तरी अमरीका के इस कार्य की निन्दा की और बन्दी बनाए गए राजदूतों को छोड़ने की मांग की। विक्टोरिया के पति प्रिन्स कन्सर्ट ने भी जनता से धैर्य से काम लेने की अपील की, उधर लिंकन ने भी राजदूतों को मुक्त कर दिया, इस प्रकार युद्ध होते-होते बच गया।

दक्षिण अमरीकी राज्य अपनी नौ-सेना (Navy) में वृद्धि करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने बरकनहैड की प्रसिद्ध फर्म लेयर्ड से एक सशस्त्र जलपोत अलबामा

1 'My paramount object in this struggle is to save the Union and not either to Save or to destroy slavery. If I could save the union without freeing a slave, I would do it, and if I could save it by freeing all the slaves I would do it.' —*Lincon*

(Alabama) का निर्माण कराया। इस जलपोत के बन्दरगाह में आने से पूर्व लन्दन में स्थित अमरीकी राजदूत ऐडमस ने अनेक बार रसल का इस पोत के वास्तविक गन्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया। इस जलपोत का निर्माण उत्तरी राज्य के व्यापारिक जलपोतों को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से कराया गया था। इसने दो वर्ष में 76 उत्तरी जलपोतों को पकड़ा, किन्तु अन्त में उत्तरी राज्य के कियरसेज (Kearsage) ने इसे 19 जून, 1864 ई. को नष्ट करने में सफलता प्राप्त की। उत्तरी अमरीका ने अलबामा द्वारा हुई हानि का हर्जाना इंग्लैण्ड से मांगा। पामर्स्टन के परामर्श से यह मामला पंच निर्णय पर छोड़ दिया गया तथापि पंच निर्णय इंग्लैण्ड के विरुद्ध हुआ और उसे तीस लाख पौण्ड हर्जाना देना पड़ा, किन्तु एक भयानक युद्ध से इंग्लैण्ड बच गया। 18 अक्टूबर, 1865 ई. को पामर्स्टन का निधन हुआ।

प्रश्न

1. 1815 ई. से 1870 ई. तक इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. कैसलरे की विदेश नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
3. कैनिंग की विदेश नीति का वर्णन कीजिए।
4. "लार्ड पामर्स्टन वैदेशिक मामलों में उदार था" उक्त कथन की व्याख्या कीजिए।
5. लार्ड पामर्स्टन की विदेश नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

17

इंग्लैण्ड में उदारवाद[1] का विकास
[GROWTH OF LIBERALISM IN ENGLAND]

1832 ई. से पूर्व सांविधानिक स्थिति
(CONSTITUTIONAL CONDITION BEFORE 1832)

इंग्लैण्ड का संविधान प्रारम्भ से ही संसार के लिए अनुकरणीय रहा है। इसमें प्रजा की भावनाओं को अन्य देशों की अपेक्षा सदैव अधिक महत्व दिया गया। इंग्लैण्ड में प्रतिनिधित्व प्रणाली (Representative System) बहुत पहले से प्रचलित थी। **बर्क के शब्दों में, 'यह (संविधान) उन सभी उद्देश्यों के लिए पूर्णतः उपयुक्त है जिनके लिए जनप्रतिनिधित्व की इच्छा या व्यवस्था की जा सकती है।'** ब्लैकस्टोन ने भी इंग्लैण्ड के संविधान की बहुत प्रशंसा की है। समय के साथ-साथ जनता के विचार बदलते रहने के कारण, इंग्लैण्ड की जनता संविधान में परिवर्तन चाहती थी जिसके लिए अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही प्रयत्न प्रारम्भ हो गए थे। **इन प्रयत्नों का विवरण देने से पूर्व यह आवश्यक है कि प्राचीन प्रतिनिधि प्रणाली पर संक्षेप में प्रकाश डालें—**

(क) प्रतिनिधित्व में अनियमितताएं—इंग्लैण्ड में लोक सभा (House of Commons) की रचना इस प्रकार की गयी थी कि प्रत्येक **काउण्टी**[2] (County) से दो प्रतिनिधि निर्वाचित किए जाते थे तथा प्रत्येक बरो में काउण्टी सदस्य चुनने का अधिकार उन्हीं निवासियों को प्राप्त था जिनकी 40 शिलिंग आय वाली कर-मुक्त सम्पत्ति होती थी। काउण्टी से चुनाव में भाग लेने के लिए इतनी ही कर-मुक्त सम्पत्ति होना आवश्यक था। काउण्टी से चुने हुए सदस्यों के लिए 600 पौण्ड वार्षिक आय वाली भू-सम्पत्ति होना भी आवश्यक था।

बरो (Borough) से चुने जाने वाले व्यक्तियों की संख्या जनसंख्या के आधार पर निर्धारित नहीं थी। प्राचीनकाल से जिस स्थान से जितने प्रतिनिधि चुने जाते थे उसे अब भी उसी प्रकार से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। कुछ बरो से जहां कि कोई व्यक्ति नहीं रहता था, भी प्रतिनिधि आते थे। **ओल्ड सेरम** (Old Serum) नामक बरो इसका प्रत्यक्ष उदाहरण था। 1832 ई. के सुधार अधिनियम के पारित होने से पूर्व तक इस बरो से दो सदस्य चुने जाते थे यद्यपि यहां केवल एक पहाड़ी टीला ही था। दूसरी ओर नए विकसित औद्योगिक

1 सामान्यतया परम्परागत व्यवस्था में समय के साथ सुधार करने की नीति को उदारवादी नीति कहा जाता है।

2 निर्वाचन क्षेत्र (Constituency)

नगर, मानचेस्टर, लीड्स और बर्मिंघम से एक भी प्रतिनिधि लोक सभा के लिए नहीं भेजा जाता था।

बरो तीन प्रकार के थे—पाकेट बरो (Pocket Borough) जिसमें एक ही जमींदार का सम्पूर्ण भूमि पर स्वतन्त्र आधिपत्य होता था, परिणामतः वह इस प्रदेश से किसी भी व्यक्ति को प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी था। इसी कारण इस बरो का नाम **मनोनीत बरो** (Nominated Borough) भी था। **राटन बरो** (Rotten Borough), उन्हें कहते थे जिनमें जनसंख्या अल्प होती थी फिर भी इन्हें प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। ऐसे स्थानों के भूमिपति रिश्वत का सहारा लेकर या किसी अन्य प्रकार से वहां के निवासियों को प्रभावित कर स्वयं या स्वयं के द्वारा मनोनीत व्यक्ति को प्रतिनिधि चुनवा लेते थे। **तीसरे प्रकार के बरो** में मतदाताओं की संख्या काफी होती थी, किन्तु मतदान का अधिकार सीमित होने के कारण बड़े-बड़े प्रतिनिधि ही उससे चुने जा सकते थे।

भिन्न-भिन्न चुनाव क्षेत्रों में मताधिकार भी भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित था। कुछ काउण्टी के निवासियों को मताधिकार से वंचित रखा गया था। ऐसी स्थिति स्कॉटलैण्ड में भी थी। 1811 ई. में स्कॉटलैण्ड में 8 काउण्टियों में प्रत्येक में 80 से अधिक मतदाता नहीं थे। कभी-कभी एक-एक भूमिपति के पास एक से अधिक भी चुनाव क्षेत्र होते थे जहां से ये अपनी इच्छानुसार व्यक्ति को चुनवाकर भेज सकते थे। **नौरफोक के ड्यूक** (Duke of Norfolk) **ने 1739 ई. में 11 सदस्य कॉमन सभा में भेजे थे तथा कहा ज़ाता था कि उसके प्रभाव में 154 कॉमन सभा के सदस्य थे।**

बरो में भी स्थान-स्थान पर अलग-अलग मताधिकार थे। कुछ ऐसे बरो थे जिनमें कुछ किराएदारों को ही मताधिकार प्राप्त था। इस प्रकार का उदाहरण रिकमोंड (Richmond) की बरो है। अन्य बरो में वे सभी व्यक्ति मतदान के अधिकारी थे जो कि राष्ट्रीय और शाही कर (Scot & Lot) देते थे। कुछ ऐसी भी बरो थीं जिनमें परम्परागत रूप से सभी गृहस्थियों को मतदान का अधिकार प्राप्त था। ऐसी बरो में यदि किसी व्यक्ति के पास रहने को कमरा या एक रसोई होती थी तो उसे मतदान का अधिकार होता था। **इस पद्धति को पोट बोइलिंग** (Pot Boiling) **कहते थे।** इस प्रकार की पद्धति टॉण्टन (Tounton) बरो में प्रचलित थी।

(ख) अनियमितताओं के दुष्परिणाम—उपर्युक्त अनियमितताओं के अतिरिक्त अनेक चुनाव क्षेत्रों में घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार था। अधिकांश बरो ऐसी थीं जो कि उनके संरक्षकों द्वारा अथवा उस बरो के मतदाताओं द्वारा बेच दी जाती थीं। इनमें से बहुत से बरो भारत में व्यापार करने वाले व्यक्ति खरीदते थे। इनको **'इण्डियन नवाब'** (Indian Nababs) कहा जाता था। मतदान प्रारम्भ में चालीस दिनों तक चलता था जिसे बाद में पन्द्रह दिन कर दिया गया। चुनाव अत्यन्त खर्चीले होते थे। **लोक सभा का सदस्य बनने पर भी भ्रष्टाचार में कमी नहीं आती थी अपितु उसमें वृद्धि हो जाती थी क्योंकि जो व्यक्ति इतना धन व्यय करके सदस्य बनते थे वे उस धन की पूर्ति अपने मत को बेचकर पूरी करते थे।**[1] कभी-कभी राजा भी उन मतों को खरीदकर अपने पक्ष का समर्थन कराते थे। जार्ज तृतीय ने इसी प्रकार से सदस्यों के मतों को

1 **'A seat was as much a marketable commodity in the eighteenth centurey as an advowson in the nineteenth century and the legitimacy of the transaction was recognized alike in Pitt's Reform Bill of 1785 and the Act of Union of 1800.'** *—Marriot*

खरीदकर **'राजा के मित्रों'** (King's Friends) नामक एक दल बनाया था जिससे वह संसद में अपनी इच्छा की पूर्ति करा सके। यही कारण था कि पिट ने कहा था, **'सदन इंग्लैण्ड की जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता।'**

अनियमितता दूर करने के प्रारम्भिक प्रयास—1766 ई. में रौटन बरो (Rotten Borough) का प्रभाव क्षीण होने के उद्देश्य से चैथम ने काउण्टी के सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का प्रयास किया, किन्तु वह अपने प्रयत्नों में असफल रहा। इसी समय जॉन विल्किज ने विस्तृत सुधारों हेतु एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु संसद किसी भी प्रकार के सुधारों के पक्ष में नहीं थी। इंग्लैण्ड की जनता की भावनाएं फ्रांस की राज-क्रान्ति (1789) के विरुद्ध बनती जा रही थीं। तत्पश्चात् नेपोलियन के युद्ध प्रारम्भ हो गए जिन्होंने सम्पूर्ण यूरोप को त्रस्त कर दिया। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा सुधारं एक कठिन कार्य था। 1820-30 ई. के मध्य पुनः सुधारों की मांग ने जोर पकड़ा। इस काल में बरडेट नामक व्यक्ति ने सुधार करने प्रारम्भ कर दिए थे जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए रोबर्ट ओवन तथा कौबेट (Cobbett) ने भी इस क्षेत्र में पदार्पण किया। कौबेट ने **'साप्ताहिक राजनीतिक रजिस्टर'** (Weekly Political Register) के द्वारा जनता में राजनीतिक विचारधारा जागृत की। कौबेट इंग्लैण्ड में क्रान्ति के स्थान पर सांविधानिक आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते थे। आर्थिक क्षेत्र में हस्किसन ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए आयात-करों में सुधार करके देश में स्वतन्त्र व्यापारिक प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन दिया।

1832 ई. का अधिनियम
(REFORM ACT OF 1832)

1830-31 ई. में इंग्लैण्ड में निरन्तर सुधारों के लिए आन्दोलन प्रारम्भ होने लगे। पिछले पचास वर्षों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में सुधारों हेतु किए गए प्रयत्नों का फलीकरण होने लगा। दार्शनिक मौलिकतावादी बेन्थम, जेम्स मिल, स्टुअर्ट मिल, ह्यूम और अन्य व्यक्तियों के कार्य, फ्रांसिस प्लेस का जनतन्त्रात्मक उदारवाद, रॉबर्ट ओवन का रहस्यवाद, इन सबके प्रयत्नों के फल 1832 के सुधार विधेयक के पूर्व होने वाले राजनीतिक संगठन और जनमत के उफान के रूप में सामने आने लगे।

1832 ई. के संसदीय विधेयक को पारित कराने में संघों ने विशेष कार्य किया। इंग्लैण्ड के नगरों में स्थान-स्थान पर सुधार सम्बन्धी समितियां (Reform Leagues) गठित की गयी थीं। इन समितियों ने यह प्रस्ताव किया कि राजनीतिक सुधार ही जनसाधारण की समस्याओं को दूर करने का एकमात्र साधन है। इस प्रकार की समितियों में बर्मिंघम की समिति का नाम उल्लेखनीय है जिसने संसदीय सुधारों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। रैम्जे म्योर का कथन है, **''लन्दन में स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी सभाएं हुईं जिसमें हजारों व्यक्तियों ने भाग लिया। बर्मिंघम में हजारों व्यक्तियों ने राजनीतिक सभाएं आयोजित कीं और उत्तरी इंग्लैण्ड में हड़तालें एक छूत की बीमारी की तरह फैल गयीं।''** इस विषय में ट्रैवेलियन का कथन भी उल्लेखनीय है, **''कैण्ट से लेकर विल्डशायर तक विद्रोह प्रारम्भ हो चुका था। जमींदारों का जीवन भय से खाली न था। ऐसा प्रतीत होता था कि इंग्लैण्ड में भी क्रान्ति होने वाली है।''**

1830 ई. में फ्रांस में चार्ल्स दशम् के विरुद्ध क्रान्ति हुई और चार्ल्स दशम् के स्थान पर औरेन्ज वंश के लुई फिलिप को फ्रांस का नवीन शासक बनाया गया। इस क्रान्ति के

परिणामस्वरूप सांविधानिकता की विजय हुई जिसने इंग्लैण्ड को यथेष्ठ प्रभावित किया। इंग्लैण्ड के जो लोग 1789 ई. की फ्रांस की क्रान्ति के विरोधी थे, वे 1830 ई. की क्रान्ति के समर्थक बन गए। फलतः सुधारवादी लोगों को यह अवसर मिला कि वे अपने आन्दोलन को और अच्छी तरह संचालित कर सकें।

जून, 1830 ई. में विलियम चतुर्थ इंग्लैण्ड के सिंहासन पर पदासीन हुआ। विलियम युवावस्था से ही उदारवादी विचारों के कारण लोकप्रिय था। अतः उसके सिंहासनासीन होने से ही उदारवादियों की आकांक्षा को अधिक बल मिला, किन्तु प्रधानमन्त्री वैलिंगटन (जो अनुदार था) ने घोषणा कर दी कि वह किसी भी प्रकार के सुधार के पक्ष में नहीं है। 1830 ई. में नवीन निर्वाचन हुए जिसमें टोरी दल की पराजय हुई और कॉमन सभा (लोक सभा) में ह्विग दल का बहुमत हो गया। लार्ड ग्रे को लोक सभा में ह्विग दल का नेता बनाया गया। वह मध्यम वर्ग की विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित था।

1830 ई. में प्रधानमन्त्री का पद संभालते ही लॉर्ड ग्रे ने अपना ध्यान इंग्लैण्ड में संसदीय सुधारों की ओर केन्द्रित किया। ग्रे ने तत्काल एक समिति संसदीय सुधारों के लिए विधेयक तैयार करने के लिए नियुक्त की। इस समिति में लार्ड डरहम, लॉर्ड जॉन रसल तथा जेम्स ब्राहेम, स्टेनले व लार्ड केनन थे।

प्रथम सुधार विधेयक—1 मार्च, 1831 ई. को डरहम तथा रसल ने संसद में प्रथम सुधार विधेयक प्रस्तुत किया जिसका मुख्य उद्देश्य मध्यम वर्ग को मताधिकार देना था। **इसमें इतने अधिक सुधारों का प्रस्ताव था कि टोरी सदस्य इसे देखकर आश्चर्यचकित रह गए।**[1] यह विधेयक द्वितीय वाचन पर केवल एक मत के आधिक्य से पारित हो गया, किन्तु विशिष्ट समिति ने इसे रद्द कर दिया। ऐसी स्थिति में लार्ड ग्रे ने हार न मानकर राजा को संसद भंग करने की सलाह दी। विलियम चतुर्थ ने उसके परामर्श को स्वीकार करते हुए संसद भंग कर दी। परिणामस्वरूप, सम्पूर्ण इंग्लैण्ड में टोरी दल के विरुद्ध स्थान-स्थान पर सभाएं हुईं, जिनमें यह आवाज सुनाई देती थी—'**बिल, सम्पूर्ण बिल और बिल के अतिरिक्त कुछ नहीं।**''[2] नवीन निर्वाचन में सुधारवादी भारी बहुमत से विजयी हुए। इस प्रकार सदन में उनकी संख्या विरोधी दल से 136 अधिक हो गयी।

द्वितीय सुधार विधेयक—24 जून, 1831 को लॉर्ड जॉन रसल ने पुनः द्वितीय सुधार विधेयक संसद के समक्ष प्रस्तुत किया और कॉमन सभा में 21 सितम्बर को 109 मतों के आधिक्य से यह विधेयक पारित हो गया, किन्तु 8 अक्टूबर, 1831 ई. को द्वितीय वाचन में लॉर्ड सभा ने इसे पुनः अस्वीकृत कर दिया। इस बार मन्त्रिमण्डल ने अपने पद से त्यागपत्र नहीं दिया। स्थान-स्थान पर लॉर्ड्स के विरुद्ध सभाएं होने लगीं। **लन्दन में एक भीड़ ने ड्यूक ऑफ वैलिंगटन के निवास स्थान पर आक्रमण किया, ब्रिस्टल** (Bristol) **में विद्रोह हो गया।** बर्मिंघम से 20 हजार व्यक्तियों को लन्दन भेजने का निश्चय किया गया और स्कॉटलैण्ड के विद्रोह को शान्त करने के लिए सैनिकों की मदद लेनी पड़ी। विधेयक के समर्थक दल ने विधेयक के विरोधी लॉर्ड्स और बिशपों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। सेना किसी भी रूप से इन विद्रोहों को शान्त करने के लिए पर्याप्त न थी। श्रमिक वर्ग भी भड़क

1 'Tories were dumb-founded.' —*Trevelyon*
2 'The Bill, the whole Bill and nothing but the Bill.'

उठा। बेरोजगारी और भुखमरी से पीड़ित जनता में अचानक 1830-31 ई. की शीत ऋतु में हैजे का प्रकोप भी फैल गया। नगर-नगर से यह आवाज उठने लगी थी कि सामाजिक अराजकता को समाप्त करने के लिए विधेयक पारित किया जाना चाहिए चाहे उसके लिए नए लॉर्ड्स ही क्यों न बनाने पड़ें।

तृतीय सुधार विधेयक—12 दिसम्बर, 1831 को लॉर्ड जॉन रसल ने एक नया बिल हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रस्तुत किया जहां वह 1832 ई. में पारित हो गया। तत्पश्चात् इसे लॉर्ड सभा में भेजा गया जहां पर प्रथम दो वाचन में तो बिल पारित हो गया, परन्तु विशिष्ट समिति इस सुधार विधेयक में लॉर्ड ग्रे और इसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ परिवर्तन करना चाहती थी। लॉर्ड्स चाहते थे कि विधेयक में संशोधन वे अपने हाथों से करें। इसके विरोध में मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। इंग्लैण्ड के इतिहास में इस संकट को **'मई माह का संकट'** (Days of May) के नाम से जाना जाता है। ग्रे के त्यागपत्र दिए जाने पर राजा विलियम चतुर्थ ने ड्यूक ऑफ वैलिंगटन से मन्त्रिमण्डल बनाने को कहा, किन्तु वह ऐसा करने में असमर्थ रहा। अतः राजा ने ग्रे को ही पुनः मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। ग्रे ने मन्त्रिमण्डल बनाने के पूर्व राजा से यह आश्वासन ले लिया कि वह लॉर्ड सभा में सुधार विधेयक पारित करवाने के लिए जितने चाहे उतने पीयर्स (Peers) बना सकेगा। लिखित आश्वासन मिल जाने पर ग्रे ने पुनः मन्त्रिमण्डल की रचना की और सुधार विधेयक पूर्ववत् रूप में लॉर्ड सभा में प्रस्तुत किया। वहां पुनः उसमें परिवर्तन के सुझाव रखे गए। इस पर लॉर्ड ग्रे ने लॉर्ड सभा को नवीन उदारवादी पीयर्स मनोनीत करा लेने की धमकी दी। इस चेतावनी के परिणामस्वरूप टोरियों ने इस विधेयक का विरोध नहीं किया। फलस्वरूप 4 जून, 1832 ई. को तृतीय सुधार विधेयक कानून के रूप में पारित हो गया।

1832 **ई. के सुधार अधिनियम की धाराएं**—1832 ई. के सुधार अधिनियम के मुख्यतः दो उद्देश्य थे—**प्रथम, संसदीय प्रतिनिधित्व का इस प्रकार विभाजन जिससे जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके; द्वितीय, मतदाताओं की योग्यताओं को कम करके अधिक से अधिक व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान करना।**

प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रोटन बरो को समाप्त कर दिया गया। उस समय लगभग 56 ऐसी रोटन बरो थीं, जिनकी जनसंख्या दो हजार से कम थी, परन्तु वे 111 सदस्य निर्वाचित करके लोक सभा में भेजती थीं। इन सभी रोटन बरो को समाप्त कर दिया गया। 36 बरो जिनकी जनसंख्या 4,000 से कम थी, परन्तु प्रत्येक दो-दो सदस्य निर्वाचित करते थे, को नए अधिनियमानुसार केवल एक-एक ही सदस्य चुनने का अधिकार रह गया। उपर्युक्त प्रथम श्रेणी में ओल्ड सैरम, गाल्टन, माइनहैंड और टैसंल राइजिंग आदि बरो थीं तथा दूसरी श्रेणी में वेमाउथ तथा मैलकोम रैग्सि आदि थीं। इस प्रकार पुनः बांटने के लिए 143 स्थान रिक्त हुए। यह स्थान उन नवीन नगरों को प्रदान किए गए जिन्हें पहले प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं था या फिर जनसंख्या की तुलना में वे कम प्रतिनिधि भेज रहे थे। तीसरी श्रेणी में वे नगर थे जिन्हें पहले संसद में एक भी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न था। इन नगरों में बर्मिंघम, मानचेस्टर, लीड्स आदि के नाम प्रमुख हैं। इन्हें दो प्रतिनिधि प्रत्येक नगर से भेजने का अधिकार दिया गया। इन नगरों को कुल 44 स्थान दिए गए। चौथी श्रेणी में चैथम, बैकफील्ड आदि नगर थे जिनमें से प्रत्येक को एक सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया इनकी कुल

संख्या 21 थी। 65 बचे हुए स्थान काउण्टियों को दिए गए। शेष 13 स्थानों में से 8 स्थान स्कॉटलैण्ड और 5 आयरलैण्ड को प्रदान किए गए।

बरो में मतदाताओं की पुरानी योग्यताओं को समाप्त कर नवीन योग्यता नियम लागू किए गए जिसके अनुसार सभी वयस्क पुरुषों को जिनके पास 10 पौण्ड वार्षिक आय वाला मकान था, मताधिकार प्राप्त हो गया। इस प्रकार मताधिकार के लिए योग्यता के विभिन्न स्तरों के स्थान पर समान नियम लागू किए गए। इस प्रकार मताधिकार पहले से तिगुना हो गया।

काउण्टियों में जिन लोगों के पास जन्मभर के लिए अथवा 60 वर्ष के लिए पट्टे पर भूमि होती थी, उन्हें मताधिकार मिल गया। इसके साथ ही 40 शिलिंग आय वाली भूमि के स्वामी तथा 10 पौण्ड वार्षिक किराया देने वाले रजिस्टर में दर्ज लोगों को मताधिकार मिल गया। इसके अतिरिक्त 20 वर्ष के लिए पट्टे पर भूमि वाले लोग जो 50 पौण्ड किराया देते तथा वे लोग जो 50 पौण्ड किराए के रूप में किसी सराय इत्यादि को देते थे, मतदान के अधिकारी बन गए।

परिणाम—1832 ई. के सुधार अधिनियम का इंग्लैण्ड के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। यह अधिनियम इंग्लैण्ड में प्रजातन्त्र के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम था, इसने इंग्लैण्ड में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। रैम्जे म्योर के शब्दों में 1832 ई. का सुधार अधिनियम अन्य सुधारों से भिन्न था। इस अधिनियम के अनुसार लॉर्ड सभा की तुलना में सारे समाज की, चाहे उसे मताधिकार प्राप्त हो अथवा नहीं, अधिक उच्चता थी। **इस अधिनियम से स्पष्ट था कि सर्वोच्च सत्ता अन्ततोगत्वा जनता के सच्चे प्रतिनिधि कॉमन सभा में निहित होती है, न कि लॉर्ड सभा में।**[1]

1832 ई. का सुधार अधिनियम सुधारवादियों के लिए इंग्लैण्ड में समस्त बुराइयों का इलाज था, यहां तक कि बच्चे भी उसके महत्व के बारे में उत्साहित थे और सड़कों तथा खेल के मैदानों में **'सुधार प्रस्ताव स्वीकार हो गया'** (Reform Act Passed) का नारा लगाते फिरते थे। टोरी दल के लिए इस सुधार कानून का बनना इंग्लैण्ड के पतन का प्रारम्भ होना था। इस सम्बन्ध में ड्यूक ऑफ वैलिंगटन ने कहा था, **'लॉर्ड ग्रे छह माह के अन्दर ही अपना पद त्याग देगा और उसके पश्चात् कोई भी सज्जन पुरुष राजनीति में भाग नहीं ले सकेगा।'** किन्तु उसका यह कथन असत्य प्रमाणित हुआ।

1832 ई. के सुधार अधिनियम के द्वारा मताधिकार विस्तृत कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक शक्ति जमींदारों के हाथ से निकल कर मध्यम वर्ग के हाथ में आ गयी। ट्रैवेलियन ने 1832 ई. के अधिनियम को आधुनिक **'मैग्नाकार्टा'** (Modern Magna Carta) कहा है। **इसके कारण इंग्लैण्ड में सांविधानिक क्रान्ति हो गयी और राजनीतिक शक्ति कुलीन वर्ग के हाथ से निकल कर मध्यम वर्ग के हाथ में आ गयी जिसने इंग्लैण्ड के लिए प्रजातन्त्र का मार्ग प्रशस्त किया।** वार्कर, आयविन तथा ओल्डे ने 1832 के सुधार अधिनियम के विषय में लिखा है, '1832 ई. के सुधार कानून की महत्ता पर्याप्त रूप से स्पष्ट थी। इसके प्रसारित हो जाने से इंग्लैण्ड में उन राजनीतिक और शासन सम्बन्धी सुधारों की शृंखला का पारित होना सम्भव कर दिया जिन्होंने भविष्य में आधुनिक इंग्लैण्ड की नींव डाली।' हाल

1 "The House of Commons become true representative of the Nation, the Crown lost the power of influencing the ministry and the Lords also received terrible blow."

तथा एलविन ने 1832 ई. के सुधार अधिनियम और फ्रांस की 1830 **ई. की क्रान्ति में अन्तर स्पष्ट करते हुए इस अधिनियम को उसने अधिक प्रभावशाली बताते हुए लिखा है,** 'इंग्लैण्ड के लोगों ने इस तरह एक प्रकार की क्रान्ति ही की। यह क्रान्ति फ्रांस की 1830 ई. की क्रान्ति से अधिक सच्चे अर्थों में क्रान्ति थी। इस क्रान्ति ने किसी राजवंश को सिंहासन से न उतारा, परन्तु इसने इंग्लैण्ड में जमींदार वर्ग का सरकार पर एकाधिकार अवश्य ही समाप्त कर दिया। फ्रांस की समकालीन क्रान्ति ने प्रत्येक 200 नागरिकों को एक मत दिया जबकि इंग्लैण्ड में इस कानून ने प्रत्येक 30 व्यक्तियों में से लगभग एक को मताधिकार दिया।'

इस अधिनियम के पारित होने से इंग्लैण्ड में राजा और पीयर्स (Peers) की शक्ति घट गयी। **मैरियट के शब्दों में, 'इस अधिनियम के द्वारा लॉर्ड्स को अपने मृत्यु-वारण्ट पर हस्ताक्षर करने पड़े तथा राजा ने भी अपनी सीमित शक्ति का अनुभव किया।'**[1]

इस अधिनियम के गुणों के साथ दोषों पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। इस अधिनियम को पारित करने के लिए ह्विग दल के कुलीन परिवारों ने मध्यवर्गीय उदारवादियों के साथ समझौता कर लिया था जिससे इंग्लैण्ड में क्रान्ति का वातावरण उत्पन्न न हो सके और देश क्रान्तिकारी परिवर्तनों की लहर का शिकार होने से बच जाए। ह्विग दल स्वयं दस्तकार वर्ग को मतदान देने के पक्ष में नहीं था।

चार्ल्सवुड ने इसे एक अच्छा सुदृढ़, अप्रजातन्त्रीय तथा भूमिपतियों के हित का होने की संज्ञा दी है। काउण्टियों और छोटे बड़ों में भूमिपतियों का प्रभाव पूर्ववत् ही बना रहा। **इसके निर्माता जॉन रसल ने स्वयं यह घोषणा की थी कि 1832 ई. का बिल एक अन्तिम सुधार विधेयक के रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिए।** इस अधिनियम के पारित हो जाने पर भी संसद में अधिक संख्या धनवानों की ही रही। अतः इसे उच्च तथा मध्यम वर्ग के मध्य एक समझौता कह जा सकता है। इस अधिनियम में श्रमिक वर्ग सन्तुष्ट न हो सका। ह्विग-सुधारवादियों का उद्देश्य जनतन्त्रात्मक भावना की सन्तुष्टि करना न था, यह इस बात से स्पष्ट होता है कि जब ब्राइट और कौब्डन ने 'अनाज कानून' के विरुद्ध संघर्ष किया तो ह्विग दल की कोई सहानुभूति उन्हें प्राप्त न हुई। इस सुधार अधिनियम से उदार दार्शनिक तक सन्तुष्ट न रह सके। मैरियट ने लिखा है, **'यह सिद्धान्त पर नहीं वरन् उपयोगिता पर आधारित था। इसने रफू किया और टुकड़ों को जोड़ा। इसने बहुत-सी गम्भीर बुराइयों को दूर किया, लेकिन अनेक दुविधाओं को यथावत् छोड़ दिया। इसने जनतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकार किए बिना कुलीनता के सिद्धान्त को तोड़ दिया। इसमें प्रतिनिधित्व न संख्या पर आधारित था, न धन पर और न ही शिक्षा पर। दार्शनिकों के अनुसार सबसे बुरी बात यह थी कि अल्पमतवादियों के प्रतिनिधित्व की इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी।'**

इस अधिनियम से लॉर्ड्स के अधिकार छीन लिए गए थे। अनेक लॉर्ड्स बिना मुआवजे के अधिकार छिनने से नाराज हो गए। ट्रैवेलियन के अनुसार, **'यह कहना गलत है कि बिल ने मध्यम वर्ग को सभी अधिकार दे दिए। शक्ति जो पहले जमींदारों के हाथ में थी अब जमींदारों के साथ-साथ मध्यम वर्ग के कुछ व्यक्तियों में भी बंट गयी।'** नेता पीयर्स ही रहे। मध्यम वर्ग का अधिकांश भाग फिर भी असन्तुष्ट रहा। इस अधिनियम से निम्न वर्ग को लाभ नहीं हुआ

1. With the passage of this Bill, the death warrant of the Lords was signed and the Crown itself realised its own limits. —*Marriot*

अतः मजदूर और छोटे किसान नाराज हो गए। मजदूरों में निराशा छा गयी और उन्होंने असन्तुष्ट मध्यम वर्ग से मिलकर चार्टिस्ट आन्दोलन को शक्ति प्रदान की। 1832 ई. का अधिनियम अन्तिम निर्णय न था, इसके बाद भी जनता की मांगें पूर्ण न हुईं।

ग्रैग का कथन है कि क्रियात्मक रूप में 1832 ई. का अधिनियम टोरी दल के लिए उतना नाशक सिद्ध नहीं हुआ जितना कि उन्हें भय था। यद्यपि टोरी दल के सदस्यों की संख्या संसद में कम हो गयी तब भी 1832 ई. के अधिनियम के बाद जो संसद सदस्य बने उसमें टोरी दल के सभी प्रमुख नेता भी थे। मजदूर वर्ग अत्यन्त निराश था क्योंकि उन्हें मताधिकार नहीं मिला था और न ही उसे अगला सुधार अधिनियम पारित किए जाने की आशा दिलायी गयी। मध्यम वर्ग के लोग भी प्रसन्न न हो सके क्योंकि नवीन संसद और मन्त्रिमण्डल में कुलीन वर्ग का ही प्रभाव था। वास्तविक लाभ ह्विग दल को हुआ जिसे कॉमन सभा में 658 सीटों में से 500 स्थान प्राप्त हो गए।

आलोचना (Criticism)—इंग्लैण्ड की सांविधानिक प्रगति में 1832 ई. का अधिनियम एक सुदृढ़ कदम था। यद्यपि इंग्लैण्ड की अधिकांश जनता को मताधिकार प्राप्त न हो सका। तथापि उत्तरी तथा मध्य इंग्लैण्ड के औद्योगिक केन्द्रों में रहने वालों को राजनीतिक महत्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार कॉमन सभा कुछ सीमा तक जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था बन गयी। अब भविष्य में उच्च वर्ग जनता से समझौता करके ही राजनीतिक शक्ति बनाए रख सकता था। यद्यपि काउण्टियों में अब भी भूमिपतियों का प्रभाव था तथापि 1832 ई. का अधिनियम राजनीतिक एवं संसदीय क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम का फ्रांस की राज्यक्रान्ति (1830 ई.) से अधिक महत्व है। इसके द्वारा किसी राजवंश को पदच्युत किए बिना ही भूमिपति वर्ग के एकाधिकार को समाप्त किया गया। ट्रैवेलियन का कथन है कि 1832 ई. के सुधार अधिनियम से यद्यपि मतदान की स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुई थी, किन्तु जिस रूप से यह अन्तिम रूप में प्राप्त हुआ उसमें मध्यम वर्ग के आधे लोगों को मताधिकार प्राप्त हो गया। **इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी यद्यपि सम्पूर्ण राष्ट्र मतदान का अधिकारी नहीं था, परन्तु शक्ति और बहुमत का प्रभुत्व सभी ने भली-भांति प्रदर्शित कर दिया था।** निःसन्देह यह सीधा और सच्चा संघर्ष जनता तथा लॉर्ड्स के मध्य था, जिसमें अन्तिम विजय जनता की ही हुई। **मैरियट के अनुसार 1832 ई. के अधिनियम ने निश्चय ही एक महान् राजनीतिक एवं संसदीय उपलब्धि को इंग्लैण्ड में प्रतिस्थापित किया।**[1]

इस सुधार अधिनियम के परिणामस्वरूप दोनों सदनों में मतभेद बढ़ते गए और भविष्य में लोक सदन में उदारवादियों की संख्या अधिक हो गयी। इस अधिनियम ने इंग्लैण्ड में भविष्य के लिए सुधाओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया। शनैः-शनैः लॉर्ड्स सदन की शक्ति क्षीण होती गयी और दूसरी ओर संगठित बहुमत पर आश्रित मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि होने लगी। **वुडवर्ड के शब्दों में, ''परिवर्तन वास्तविक था और 1832 ई. का अधिनियम वर्तमान इंग्लैण्ड इतिहास में परिवर्तन का बिन्दु था।''**[2]

1 'The Reform Act of 1832 constituted a great political and parliamentary achievement, denied by none.' —J. A. R. Marriot

2 'Yet the change, was real and the Act of 1832 was a turning point in Modern English history.' —Woodword

1832 ई. के सुधार अधिनियम से मध्यम वर्ग व मजदूर वर्ग में असन्तोष व्याप्त था। मजदूर वर्ग ने असन्तुष्ट मध्यम वर्ग के साथ मिलकर चार्टिस्ट आन्दोलन का संचालन किया, किन्तु यह आन्दोलन असफल रहा, फिर भी यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि भविष्य में वार्षिक संसद को छोड़कर चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की सभी मांगें स्वीकार कर ली गयीं।

1850 ई. में मजदूर वर्ग को मताधिकार देने के लिए लॉर्ड रसल ने अनेक बिल संसद में प्रस्तुत किए, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। 1858 ई. में 'रसल ओथ बिल' पारित हुआ जिससे यहूदियों को संसद में प्रवेश मिला। **जब तक पामर्स्टन जीवित था, संसदीय सुधारों की सम्भावना नहीं थी।** 1865 **ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् इंग्लैण्ड में राजनीतिक सुधारों के पट खुल गए।**

चार्टिस्ट आन्दोलन
(CHARTIST MOVEMENT)

भूमिका (Introduction)

1815 ई. के पश्चात् इंग्लैण्ड में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों से उग्रवादी सन्तुष्ट न हो सके। ये उग्रवादी मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। परिणामस्वरूप समय-समय पर सुधार करवाने के लिए इन उग्रवादियों ने बार-बार आन्दोलन किए जिससे इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों को प्रत्येक बार संकट का सामना करना पड़ा। यह आन्दोलन राष्ट्रीय विचारधारा को प्रभावित करने में सफल हुआ। 1820 **ई. और उसके पश्चात् इंग्लैण्ड में कतिपय लेखकों और वक्ताओं ने समाजवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, इनमें राबर्ट ऑवेन** (Robert Owen) **का नाम प्रमुख है।** ऑवेन ने तात्कालिक राजनीतिक दशा को सामाजिक जीवन के लिए उत्तरदायी ठहराया था और उसने मांग की कि शीघ्र ही मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए सरकार को पग उठाना चाहिए, परन्तु उस समय संसदीय सुधारों की मांग के प्राबल्य के कारण उसकी आवाज पिछड़ गयी, किन्तु उसने पुनः एक बार 1843 ई. में अपने कार्य लक्ष्य को समुचित रूप देना प्रारम्भ किया। उसने राजनीतिज्ञों का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्यों से राष्ट्रीय स्तर पर हड़ताल करने के प्रयत्न किए। उसने **महान् राष्ट्रीय संयुक्त मजदूर संघ** (Grand National Consolidated Trade Union) नामक संस्था बनायी जिसमें लाखों श्रमिकों ने भाग लिया। सरकार ने मजदूर संघ के विरुद्ध कार्यवाही करने के स्थान पर डोमोसेकायर के छः मजदूरों को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें सात वर्षों के लिए देश से निष्कासित कर दिया। परिणामस्वरूप, मजदूर वर्ग राजनीतिक अधिकारों को ही सामाजिक मुक्ति प्राप्त करने के साधन समझने लगा।

1836 ई. से 1848 ई. तक इंग्लैण्ड को आर्थिक परेशानियों एवं राजनीतिक उथल-पुथल का सामना करना पड़ा। मजदूरों की स्थिति उस समय विशेष रूप से शोचनीय थी।[1] इस काल में दो प्रमुख आन्दोलन हुए[2]—**अन्न कानून विरोधी** (Anti Corn Law Movement) **तथा चार्टिस्ट आन्दोलन** (Chartist Movement)। **इन दोनों आन्दोलनों में चार्टिस्ट आन्दोलन अधिक**

1 'The hungry forties were just making themselves felt and reminding vast multitude of the grim fate that was awaiting them.' —*Trevelyan*

2 'The forties of the last century in the history of England were marked with two important movements for the benefit of the labourers. These were the Chartist agitation and the anti corn law movement.' —*Ramsay Muir*

महत्वपूर्ण था क्योंकि यह मजदूरों द्वारा किया गया आन्दोलन था जिसने दस वर्षों तक इंग्लैण्ड को आन्दोलनों से घेरे रखा।

इंग्लैण्ड में मजदूर या निम्न वर्ग सामाजिक तथा राजनीतिक समानता का इच्छुक था अतएव कुछ नेताओं द्वारा मांगों का एक चार्टर बनाया गया। चार्टर को सरकार से स्वीकृत कराने के लिए एक आन्दोलन किया। **अपनी मांगों को इन आन्दोलनकारियों ने क्योंकि एक चार्टर के रूप में प्रस्तुत किया था इस कारण इस आन्दोलन को 'चार्टिस्ट आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है। मिस वैटरिज** (Wateries) के शब्दों, **'चार्टिस्ट आन्दोलन एक ऐसा प्रयत्न था जिसके द्वारा देश में सामाजिक क्रान्ति लाने का उद्देश्य राजनीतिक सुधारों के रूप में छिपा हुआ था।'** कार्लाइल ने चार्टिस्ट आन्दोलन की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—**चार्टिस्ट की समस्या एक वजनदार समस्या थी इसकी जड़ें दूर-दूर तक फैली हुई थीं, यह एक अभी-अभी प्रारम्भ हुआ मामला न था और न ही यह आज या कल में समाप्त हो जाने वाला मामला था।**[1]

मैरियट ने चार्टिस्ट आन्दोलन के विषय में लिखा है कि **चार्टिस्ट आन्दोलन की जड़ें पुराने प्रगतिवादी आन्दोलन, ऑवेन, टॉमसन, हॉजस्किन और दूसरे समाजवादियों के प्रचार और ट्रेड यूनियन आन्दोलन** (Trade Union Movement) **में निहित थीं।**[2] यह ऐसे सब आन्दोलनों का केन्द्र-बिन्दु बन गया जो कि मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए किए जा रहे थे, उदाहरणार्थ, निर्धन विधि विरोधी, दस घण्टे कार्य के लिए आन्दोलन आदि। **वास्तव में चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की शक्ति के स्रोत ये आन्दोलन ही थे।**

चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण
(CAUSES OF CHARTIST MOVEMENT)

इंग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन होने के अनेक कारण थे :

(क) कृषि तथा औद्योगिक क्रान्ति—इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप छोटे-छोटे किसान व कुटीर उद्योगों में रत गरीब मजदूर बेकार हो गए थे। धनी वर्ग सुविधाओं से युक्त तथा करों से मुक्त होकर आनन्द कर रहा था और दूसरी ओर निर्धन वर्ग के लिए भोजन मिलना कठिन हो रहा था। उद्योगों में कार्य करने वालों की मांग कम् थी जबकि उनकी समस्या कहीं अधिक थी। फलस्वरूप, उनमें पारस्परिक स्पर्धा चलती थी। उद्योगपति इस स्थिति से लाभ उठाकर मजदूरों को बहुत कम वेतन देते थे। स्वाभाविक था कि ऐसी स्थिति में गरीबों की स्थिति शोचनीय थी तथा सरकार की उनके प्रति उपेक्षा की नीति से भी असन्तुष्ट थे।

(ख) कार्न-लॉ—इंग्लैण्ड में भूमिपति अन्न कानून के पारित हो ज़ाने से खूब लाभान्वित हो रहे थे। अनाज के दामों में वृद्धि करके वे और अधिक धन अर्जित कर रहे थे। गरीब और गरीब हो रहे थे और गरीब और अमीरों में पारस्परिक वैमनस्य में निरन्तर वृद्धि हो रही थी।

(ग) गरीब कानून में सुधार—सरकार ने स्वस्थ व्यक्तियों से कार्य लेने के उद्देश्य से गरीब कानून सुधार नियम पारित किया, जिसके द्वारा सरकार ने गरीब लोगों को सहायता देना

1 'The matter of Chartism, is weighty, deep rooted, far extending, did not begin yesterday, will by no means end this day or tomorrow.' —Carlole

2 "The roots of Chartism lay in the old radical movement, in this socialist propaganda of Owen, Thmpson, Hodgsking and rest in the trade union movement, it gathered all these into a focus." —J. A. R. Marriot

बन्द कर दिया, परन्तु इसके साथ ही इन्हें काम भी नहीं दिया गया। गरीबों को कार्य-गृहों (Working houses) में थोड़े दिन के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था। इस कारण निर्धन वर्ग ने अपनी कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से आन्दोलन प्रारम्भ किया।

(घ) 1832 ई. **का सुधार अधिनियम**—उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही निर्धन वर्ग तथा मध्यम वर्ग संसद की निर्वाचन प्रणाली में सुधारों के लिए प्रयत्नशील था, इसके लिए उन्होंने अनेक कष्ट सहे, किन्तु 1832 ई. के सुधार अधिनियम से मध्य वर्ग को तो कुछ अधिकार प्राप्त हुए, परन्तु निर्धन वर्ग की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गयी। 1832 ई. के इस सुधार अधिनियम (Reform Act) के निर्माता लॉर्ड जॉन रसल ने घोषणा की कि वह भविष्य में किसी प्रकार के सुधार के पक्ष में नहीं है तथा 1832 **ई. के नियम को उसने अन्तिम सुधार अधिनियम घोषित किया।** राजनीतिक अधिकारों से पूर्णतया वंचित श्रमिक वर्ग इस समय पूर्ण रूप से असन्तुष्ट था और वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए इस समय इच्छुक था।

चार्टिस्ट आन्दोलन का कार्यक्रम
(PROGRAMME OF CHARTIST MOVEMENT)

चार्टिस्ट आन्दोलन के **प्रमुख नेता ओकोनर** (O'Conner), **थामस आटवुड** (Attwood) तथा **लोवेट** (Lovett) थे। **ओकोनर** (O'Conner) का कार्य-क्षेत्र उत्तरी इंग्लैण्ड था, जहां मशीनों के प्रयोग के कारण अनेक कारीगर बेकार हो गए थे। यह उत्तरी दल मशीनों के विरुद्ध था और पुरानी व्यवस्था इंग्लैण्ड में लाना चाहता था। **दूसरा नेता** आटवुड (Tomas Attwood) था जिसका कार्य-क्षेत्र बर्मिंघम था। यहां मध्यवर्ग तथा मजदूर वर्ग बेरोजगारी को दूर करने के लिए मुद्रा प्रणाली में सुधार करना चाहते थे। **तीसरा कार्य-क्षेत्र** लन्दन में उसके समीपवर्ती क्षेत्रों का था जिसका नेता लोवेट (Lovett) था। इसका मत था कि सामाजिक व्यवस्था को बदले बिना निर्धनता तथा बेकारी की समस्या दूर न होगी। सामाजिक व्यवस्था को वह शिक्षा तथा सांविधानिक परिवर्तनों द्वारा सुधारना चाहते थे।

दूसरे शब्दों में इस आन्दोलन में मजदूरों की प्रत्येक समस्या और सुधार की योजना को राष्ट्रीय समस्या के रूप में प्रस्तुत करने की योजना बनायी। 8 मई, 1838 ई. को लन्दन मजदूर संघ ने अपनी मांग को चार्टर के रूप में प्रकाशित किया। इस रूपरेखा को तैयार करने का मुख्य कार्य विलियम लोवेट ने किया था। लीड्स के एक क्रान्तिकारी लेखक और वक्ता फीयर्गस ओकोनर ने **'दि नॉर्दर्न स्टार'** (Northern Star) नामक पत्रिका द्वारा इस आन्दोलन को तीव्रता से आगे बढ़ाया। चार्टर में जिन मांगों को प्रस्तुत किया गया था वे मुख्य रूप से 1780 ई. में **सांविधानिक सूचना समिति** (Society for Constitutional Information) की प्रकाशित मांगों की अनुवृत्ति मात्र था।

चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की मांगें
(DEMANDS OF CHARTIST MOVEMENT)

चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की निम्नलिखित मांगे थीं—

(i) संसद के वार्षिक चुनाव हुआ करें (Annual Parliaments)।

(ii) चुनाव का ढंग खुला न होकर गुप्त हो (Vote by Ballot)।

(iii) सभी वयस्क स्त्री-पुरुषों को वोट देने का अधिकार हो (Manhood Suffrage)।

(iv) सम्पत्ति की योग्यता को संसद के सदस्यों को चुनने में प्रयोग न किया जाए (The abolition of the property qualification for members of Parliament)।

(v) संसद के सदस्यों को भत्ता या वेतन दिया जाए (Payment of Members of Parliament)।

(vi) चुनाव क्षेत्रों को समान बनाया जाए (Equal electoral district)।

आन्दोलन
(MOVEMENT)

उपर्युक्त मांगों से स्पष्ट है कि यह पूर्णतया राजनीतिक कार्यक्रम था। चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों का विचार था कि उन्हें जिन अधिकारों से वंचित रखा गया है वे ही उनकी आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी हैं। चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों ने स्थान-स्थान पर सभाएं कीं। रसल ने इन सभाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और यह कहकर टाल दिया कि **व्यक्तियों को सभा करने का अधिकार है**।[1] रसल का विश्वास था, '**यदि आन्दोलनकारियों को कोई दुःख नहीं होंगे तो स्वतः ही सभाएं समाप्त हो जाएंगी।**'[2] किन्तु ऐसी ही एक सभा 1839 ई. में लन्दन में हुई जिसमें चार्टिस्ट दल दो भागों में विभक्त हो गया—(क) **नैतिक शक्ति** (moral force) में विश्वास रखने वाले, जो कि आन्दोलन को सांविधानिक रूप से चलाने में विश्वास रखते थे, और (ख) **शारीरिक शक्ति** (physical force) के समर्थक, जो कि आन्दोलन की सफलता के लिए सशस्त्र विद्रोह आवश्यक समझते थे।

14 जून, 1839 ई. के दिन थॉमस आटवुड ने एक वृहत् प्रार्थना-पत्र में चार्टर की मांगें सदन के समक्ष प्रस्तुत कीं, जिन्हें सदन ने 12 जुलाई, 1839 ई. को अस्वीकृत कर दिया। इस पत्र पर साढ़े बारह लाख लोगों के हस्ताक्षर भी कराए गए थे। इस चार्टर के अस्वीकृत हो जाने पर शारीरिक शक्ति में विश्वास रखने वाले चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों ने बर्मिंघम एवं न्यूकोर्थ आदि नगरों में सशस्त्र विद्रोह किए। रसल ने चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की मांग को साम्यवादियों की मांग कहते हुए उसे दोषयुक्त बताया तथा पुनः घोषणा की कि उसका दल अब किसी प्रकार के सुधार के पक्ष में नहीं है। रसल की इस घोषणा के कारण पुनः बर्मिंघम में 15 जुलाई को गम्भीर विद्रोह हुआ। इसके पश्चात् नवम्बर में मनमथशायर के खनिकों ने उपद्रव किया। इस विद्रोह का कारण हेनरी बिनसेंट का कैद किया जाना था। इन खनिकों ने बलपूर्वक उसे स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया, परन्तु प्रशासन के कठोर रुख ने उन्हें तितर-बितर कर दिया। इसमें तीस चार्टिस्ट मारे गए तथा अनेक घायल हुए। न्यूपोर्ट में हुए उपद्रव का दमन होने के परिणामस्वरूप शारीरिक शक्ति के समर्थक चार्टिस्टों का ही पूर्ण अन्त हो गया।

1840 ई. में चार्टिस्टों ने एक राष्ट्रीय चार्टिस्ट संघ की स्थापना की और एक प्रार्थना-पत्र तैयार किया गया। इस पर तीस लाख लोगों के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् 1842 ई. में इसे संसद के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया, परन्तु संसद ने इस पर विचार करने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप, चार्टिस्टों ने देश में हड़ताल की घोषणा कर दी। सरकार ने कठोर

1 'The people have a right to meet.' —*Russell*

2 'If that had no grievances commonsense would put an end to their meetings.' —*Russell*

कदम उठाए, बहुत से चार्टिस्टों को जेल में बन्द किया गया, अनेक को देश-निकाला दे दिया गया और इसी प्रकार सरकार एक बार फिर आनदेलन को दबाने में सफल हो गयी। मैरियट ने इंग्लैण्ड की तत्कालीन स्थिति के विषय में लिखा है, '**महान् औद्योगिक क्रान्ति तक इंग्लैण्ड एक समाज (सम्प्रदाय) रहा था, खेद है कि उस सम्प्रदाय को गत अर्द्ध-शताब्दी की घटनाओं ने विघटित कर दिया था और उन मानव बन्धनों को तोड़ दिया था जिन्होंने मनुष्य से और (एक) वर्ग को (दूसरे) वर्ग से बांध रखा था। परिणामतः इंग्लैण्ड परमाणुओं का पुंज मात्र रह गया था जो अव्यवस्थित, असन्तुष्ट एवं वैमनस्यपूर्ण था।**' डिजरैली ने 1845 ई. में उच्च एवं श्रमिक वर्ग को '**दो राष्ट्र**' मानते हुए लिखा था, उनके मध्य कोई सम्बन्ध नहीं था और न सहानुभूति थी। वे एक दूसरे की आदतों, विचारों और भावनाओं के विषय में ऐसे अनभिज्ञ थे मानो कि वे भिन्न क्षेत्रों के निवासी हों अथवा दो भिन्न नक्षत्रों के ही अधिशासी हों।'[1]

1842 ई. **की दमनकारी नीति के पश्चात् चार्टिस्ट आन्दोलन समाप्त न हो सका, देश के आन्तरिक भागों में इसका प्रभाव समाप्त नहीं हुआ।** 1848 ई. में यूरोप के राष्ट्रों में पुनः क्रान्तियां प्रारम्भ हुईं। इसी वर्ष आयरलैण्ड में भी वहां की जनता को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। ओकोनर ने पुनः चार्टिस्ट आन्दोलन को गति दी और एक बार फिर चार्टिस्ट आन्दोलन उभर कर सामने आया। ओकोनर 'नॉर्दर्न स्टार' पत्रिका का सम्पादक तथा संसद का सदस्य था। ओकोनर ने एक वृहत् प्रार्थना-पत्र तैयार किया जिसमें चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की मांगें सन्निहित थीं। इस आवेदन-पत्र पर पचास लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर किए जाने की सम्भावना थी। इस उद्देश्य को लेकर 10 अप्रैल, 1848 को लन्दन में कैनिंग्टन कॉमन नामक स्थान पर भारी प्रदर्शन और सभा करने की व्यवस्था की गयी।

संसद को इस प्रकार शारीरिक शक्ति द्वारा डराने का जो प्रयास किया गया था उसे देखते हुए गृह-मन्त्री सर जार्ज ग्रे ने प्रदर्शन को अवैध घोषित कर दिया, इसके साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से एक लाख दस हजार सैनिक तथा सिपाहियों की व्यवस्था लन्दन में ही की गयी थी। सभा में लगभग तीस हजार व्यक्ति उपस्थित हुए। सभा की समाप्ति होने पर जुलूस को वैस्टमिन्स्टर पुल को पार नहीं करने दिया गया और इस प्रकार बुद्धिमत्ता से स्थिति को वश में कर लिया गया। चार्टिस्टों ने भी किसी प्रकार से बल-प्रयोग करना उचित नहीं समझा और उन्होंने विशाल आवेदन-पत्र एक गाड़ी में रखकर वैस्टमिन्स्टर हाल में भेज दिया। संसद ने एक समिति जांच के लिए नियुक्त की जिसने बताया कि उस आवेदन-पत्र में बीस लाख से कम हस्ताक्षर थे जिसमें बहुत से कृत्रिम थे। इसका परिणाम यह हुआ कि न केवल आवेदन-पत्र नष्ट कर दिया अपितु भविष्य में भी इस प्रकार के सुधारवादी आन्दोलनों ने देश को तंग न किया। इसका मुख्य कारण यह था कि इंग्लैण्ड में राजनीतिक सुदृढ़ता इस समय तक स्थापित हो गयी थी। **मैरियट ने लिखा है कि चार्टिस्ट आन्दोलन जो** 1842 **ई. से ही समाप्त होता जा रहा था,** 1848 **ई. में पूर्ण रूप से समाप्त हो गया।**[2]

1 'Two nations between whom there is no intercourse and no sympahty who are as ignorant of each others habits, thought and feelings as if they were dwellers in different zones or inhabitats of different planetes.' —*Disraeli*

2 'Chartism had been dying since 1842, the final episode sniffed out its glittering flame. In the later-years the moral force party were the victims of a fiasco not less signal than that which eight years before had arrested the physical force movement.' —*Marriot*

चार्टिस्ट आन्दोलन की असफलता के कारण
(CAUSES OF ITS FAILURE)

चार्टिस्ट आन्दोलन 1838 ई. से 1848 ई. तक लगभग दस वर्षों तक निरन्तर चलता रहा और इसके पश्चात् भी असफल हुआ। **इस आन्दोलन की असफलता के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे—**

(क) योग्य नेताओं का अभाव (Lack of Worthy Leaders)—इस आन्दोलन के असफल होने का एक महत्वपूर्ण कारण योग्य एवं अनुभवी नेताओं का अभाव था। नेताओं में परस्पर विचारों में भिन्नता थी। इनमें कोई भी इतना अच्छा वक्ता न था कि जनता को प्रभावित कर सकता। वे जनता को अपने आन्दोलन का उद्देश्य समझाने में सर्वथा असफल रहे।

(ख) भिन्न-भिन्न उद्देश्य (Different Aims)—आन्दोलनकारियों की एक विषय पर सहमति न थी। वे दो गुटों में विभक्त थे और उनके साधन भी भिन्न-भिन्न थे।

(ग) रोग का गलत निदान (Wrong Diagnosis)—चार्टिस्ट आन्दोलन की असफलता का प्रमुख कारण कि उन्होंने जनता में फैले असन्तोष को राजनीतिक समझा और उसके लिए गलत उपायों का प्रयोग किया, किन्तु पील ने इस समस्या को समझ लिया और आर्थिक एवं सामाजिक सुधार करके व्याप्त असन्तोष को समाप्त कर दिया।[1]

(घ) हिंसात्मक तरीके (Violent Methods)—इसमें संशय नहीं है कि चार्टिस्ट आन्दोलनकर्ताओं की मांगें उचित ही थीं, परन्तु उन्होंने जिन तरीकों को अपनाया वे गलत थे। हिंसात्मक उपायों का अनुसरण करने के कारण सरकार ने कड़ा रुख अपनाया और ये आन्दोलन दबा दिया गया।

(ङ) आन्दोलन की मांगों का समय के पूर्व होना (Demands were not Suited to the Time)—इस समय इंग्लैण्ड के समाज में रूढ़िवदिता का अत्यधिक प्रभाव था और जनता में राजनीतिक ज्ञान का अभाव था। उनमें अभी जागृति उत्पन्न नहीं हुई थी इस कारण चार्टिस्टों की मांग उन्हें आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। वे तत्कालीन समाज के लिए समय से अत्यधिक आगे थीं।

(च) जाली हस्ताक्षरों का जनता पर कुप्रभाव (Bad Effect of Fake Signatures)—चार्टिस्टों ने हस्ताक्षर अभियान चलाया था, परन्तु उसमें उन्होंने गम्भीर गलतियां कीं इसमें बहुत से हस्ताक्षर झूठे और हास्यास्पद थे। कहीं उसमें **'ड्यूक ऑफ वैलिंगटन'** का नाम था कहीं पर **रानी विक्टोरिया** का, कुछ नाम तो बिल्कुल ही झूठे थे जैसे **'पग नोज'** (Pug Nose), **'नो चीज'** (No Cheese) आदि। इस प्रकार की अनैतिकता के कारण चार्टिस्ट आन्दोलनकारियों की बहुत बदनामी हुई।

1 **"What actually killed the chartist movement was improvement in employment and working condition of the labourers that followed in the wake of English prosperity between 1850-70."** —*Woodward*

प्रभाव
(EFFECTS)

यद्यपि आन्दोलन की असफलता के कारण चार्टिस्टवाद असफल हुआ पर तत्कालीन समाज पर इसने गम्भीर प्रभाव डाला।[1] भविष्य में सार्वजनिक मताधिकार की मांग का आन्दोलन निरन्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता रहा। चार्टिस्टों की बहुत-सी अन्य मांगें भी धीरे-धीरे समय पर पूरी की जाती रहीं। अतः **चार्टिस्ट आन्दोलन असफल नहीं कहा जा सकता** क्योंकि 1858 ई. में मतदान के लिए सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता समाप्त कर दी गयी, 1872 ई. में गुप्त मतदान, 1884 ई. में पुरुष मताधिकार और 1910 ई. में संसद सदस्यों को वेतन देने की मांग मान ली गयी। इस प्रकार वार्षिक संसद के अतिरिक्त, समय के साथ-साथ सभी मांगें स्वीकार कर ली गयीं। अप्रत्यक्ष परिणामों के रूप में, अन्न विधियों (Corn Laws) को समाप्त किया जाना महत्वपूर्ण था। 1839 ई. और 1882 ई. में चार्टिस्टों द्वारा प्रस्तुत आवेदन-पत्र का केवल राजनीतिक पक्ष ही नहीं था वरन् यह श्रमिकों के संगठन एवं उनके द्वारा आन्दोलन करने की प्रवृत्ति का पूर्वसूचक था। इसी आन्दोलन के परिणामस्वरूप अन्य वर्गों का ध्यान मजदूर वर्ग की असन्तोषजनक स्थिति की ओर आकृष्ट हुआ और रूढ़िवादी कुलीनतन्त्री भी इस बात की आवश्यकता महसूस करने लगे कि जनसाधारण के जीवन को सुखमय बनाने के लिए सुधार आवश्यक है। चार्टिस्ट आन्दोलन के अन्य अप्रत्यक्ष प्रभाव के उदाहरण के रूप में हम कह सकते हैं कि इसने श्रमिक वर्ग को जागृत करने का प्रयास किया। इस आन्दोलन ने पूंजीपति वर्ग तथा दार्शनिक विचारधारा को भी प्रभावित किया जिसका उदाहरण अंग्रेजी साहित्य से मिलता है। हुड की '*Song of the Shirt*' तथा श्रीमती ब्राउनिंग की '*Cry of the Children*' इस आन्दोलन द्वारा औद्योगिक मशीनों के शिकारों की कठिनाइयों से उत्पन्न असन्तोष को अभिव्यक्त करती हैं।

चार्टिस्ट आन्दोलन ने धर्म को भी प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप ऑक्सफोर्ड आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन ने समाजवादी ईसाइयों के एक छोटे से गुट को प्रभावित किया जिसमें मोरिस, चार्ल्स किंग्सले और टामस ह्यूम्स का नाम लिया जा सकता है। अप्रत्यक्ष रूप से इस छोटे से गुट ने इंग्लैण्ड के चर्च में नवीन चेतना ला दी।

टोरी दल की विचारधारा भी इस आन्दोलन से प्रभावित हुई। डिजरैली ने चार्टिस्टों के विषय में निम्न शब्द कहे थे, **"चार्टिस्ट मध्य वर्ग के विरोधी और श्रमिक वर्ग के हितैषी थे। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के आधुनिकीकरण में विशेष योग दिया।"**[2] इसी कारण से भविष्य में डिजरैली ने टोरी उदारवाद की नींव रखी और **'यंग इंग्लैण्ड पार्टी'** का निर्माण किया।

1 "Chartism passed away but not without producing its deep effect upon the generation which saw its rise and fall. It had done much to educate the working people, it did yet more to educate the more prosperous classes and leaders of thought." —*Ramsay Muir*

2 "The Chartists were the enemies of middle class and well wishers of the labourers. They contributed a lot of the modernisation of England in 19th century." —*Disraeli*

भविष्य में डिजरैली ने टोरी उदारवाद की नींव रखी और **'यंग इंग्लैण्ड पार्टी'** का निर्माण किया।

अत: स्पष्ट है कि यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन अपने उद्देश्यों को तत्काल प्राप्त करने में सर्वथा असफल रहा क्योंकि उससे सम्भवत: प्रजातन्त्र को खतरा था, परन्तु फिर भी इसने इंग्लैण्ड की जनता की विचारधारा को गम्भीर रूप से प्रभावित किया।

1868 ई. का सुधार विधेयक
(REFORM ACT OF 1868)

1867 ई. में जॉन रसल ने प्रधानमन्त्री के पद से त्याग-पत्र दे दिया, अत: 1867 में डिजरैली ने प्रधानमन्त्री का पद संभाला। डिजरैली ने सुधारों के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किए—मतदान की सीमाओं को घटाते हुए बरो में कर देने वाले प्रत्येक गृहस्थ को मतदान का अधिकार दिया जाए और काउण्टियों में 12 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले गृहस्थ को मतदान का अधिकार दिया जाना था। इस प्रस्ताव के अनुसार इंग्लैण्ड में मतदाताओं में 7 लाख 50 हजार मतदाताओं की वृद्धि होने की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त धर्माधिकारियों, विश्वविद्यालयों के स्नातकों, 50 पौण्ड बचत खाते में रखने वाले व्यक्तियों व एक पौण्ड प्रत्यक्ष कर देने वाले व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान किए जाने थे। **इस सुधार विधेयक की धाराओं का संसद में काफी विरोध किया गया तथा विधेयक में संशोधन कर उसे निम्न रूप में प्रस्तुत किया गया—**

(i) काउण्टियों में दो पौण्ड लगान वाले स्वतन्त्र भू-स्वामियों का मत का अधिकार पूर्ववत् रखा गया। पट्टेदारों की मताधिकार की योग्यता को आधा कर दिया गया।

(ii) बारह पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले ऐसे किसानों को जो भूमिपति नहीं थे उन्हें भी मताधिकार दिया गया।

(iii) बरो में सभी मकान मालिकों एवं दस पौण्ड वार्षिक किराया देने वाले सभी व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया।

(iv) प्रतिनिधित्व प्रणाली में पुन: सुधार किया गया। जिन बरो की जनसंख्या 10 हजार से कम थी वे अब केवल एक ही प्रतिनिधि संसद में भेज सकते थे। इस प्रकार जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रणाली स्वीकार की गई।

निर्वाचन-क्षेत्रों में भी परिवर्तन किया गया। ग्यारह छोटे-छोटे बरो से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार छीन लिया गया। 35 ऐसी बरो जिनकी जनसंख्या दस हजार से कम थी, को केवल एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दियां गया। इस परिवर्तन से 52 स्थान रिक्त हुए, उन्हें नए बरो तथा बड़ी काउण्टियों में वितरित कर दिया गया। बर्मिंघम, मानचेस्टर, ग्लैस्गो, लीड्स व लिवरपूल शहरों को तीन-तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दि गया। लन्दन तथा स्कॉटलैण्ड के विश्वविद्यालयों को भी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

महत्व—1867 ई. का सुधार विधेयक नि:सन्देह एक प्रजातन्त्रीय विधेयक था। इस अधिनियम के द्वारा राजनीति में मजदूरों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया क्योंकि डिजरैली स्वयं श्रमिकों के हितों का समर्थक था। उसने कहा था, **'यह देश का प्रश्न नहीं है, यह औद्योगिक मजदूर वर्ग का प्रश्न है।'**[1] बरो में मतदान का अधिकार बरो वासियों की गृहस्थ योग्यता पर

1 'The country did not matter, it was an affair of the industrial working class.' —*Disraeli.*

आधारित होने से महत्वपूर्ण प्रगति को एक पग और आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे भविष्य में काउण्टी में मतदान के अधिकार को उदार बनाने के लिए प्रोत्साहन मिला। इस सुधार विधेयक से राजनीतिक शक्ति कुलीन वर्ग के हाथों से निकलकर जनता के हाथों में पहुंच गई, फलतः जनता के प्रिय मन्त्रियों और उनके मन्त्रिमण्डल की शक्ति में प्रगति हुई और राजा की शक्ति का ह्रास हुआ। राजनीति में कामन सभा के प्रभाव के स्थान पर सीधे जनता के प्रभाव का सूत्रपात हुआ।

1867 ई. के सुधार अधिनियम की अनेक आलोचनाएं हुईं। लॉर्ड डर्बी ने कहा कि यह **'अन्धेरे में छलांग'** (Leap in the Dark) लगाने के समान है। कार्लाइल (Carlyle) ने इसे **'तेजी से गिरता हुआ निआग्रा'** कहा। सैलिसबरी ने इस अधिनियम का विरोध करते हुए कहा, **"यह एक ऐसा राजनीतिक विश्वासघात था जिसका दूसरा उदाहरण हमारे इतिहास में नहीं पाया जा सकता।'**[1] लो ने इसके सम्भावित दुष्परिणामों के विषय में कहा, **'वह थैला जिसमें हवा भरी हुई है, अब खोल दिया जाएगा और हम निरन्तर होने वाले परिवर्तनों, बदलती हुई परिस्थितियों, अंन्वेषणों और क्रान्तियों से घिर जाएंगे।'**[2] लो ने सुधार अधिनियम के निर्माता डिज़रैली से कहा, **'तुम्हारा पश्चाताप, जो मैं जानता हूं बहुत गम्भीर होगा, काफी देर से होगा।'**[3]

इस सुधार अधिनियम से उग्रवादी असन्तुष्ट थे। इसके द्वारा कृषक मजदूरों को मताधिकार नहीं दिया गया।

यद्यपि इस अधिनियम में कुछ कमियां थीं तथापि डर्बी और सैलिसबरी जैसे व्यक्तियों की आशंकाएं निर्मूल सिद्ध हुईं। **डिजरैली की 'अन्धेरे में छलांग' सफल हुई। यह डिजरैली की व्यक्तिगत सफलता थी।** जहां लॉर्ड जॉन रसल, पामर्स्टन और ग्लैडस्टन असफल रहे थे, वहां वह सफल रहा। यह अधिनियम आशा से अधिक प्रभावशाली प्रमाणित हुआ। इस अधिनियम ने सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। हाल और एल्बियन ने 1867 ई. के कानून की 1832 ई. के सुधार कानून से तुलना की है और लिखा है कि **1867 ई. का सुधार कानून (द्वितीय) 1832 के सुधार कानून से अधिक क्रान्तिकारी था।** इसने काउण्टियों में मताधिकार का क्षेत्र विस्तृत किया, बरो में पुरुषों का सार्वजनिक मताधिकार स्थापित किया और इस प्रकार क्रियात्मक रूप में इंग्लैण्ड में राजनीतिक जनतन्त्र की स्थापना की। 1832 ई. के अधिनियम ने राजनीतिक शक्ति का पलड़ा उस मध्यम वर्ग की ओर झुका दिया था जिसका ऊपर का भाग धनिक वर्ग के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ था कि उस कानून के पारित हो जाने के पश्चात् भी इंग्लैण्ड में कुलीनतन्त्री परम्परा चलती रही और उसमें कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। 1867 ई. के अधिनियम ने मजदूर वर्ग के पक्ष में कदम उठाया।

नया सुधार विधेयक (1884 ई.)
(NEW REFORM ACT)

ग्लैडस्टन ने अपने द्वितीय मन्त्रिमण्डल की अवधि में संसदीय सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया। 1882 ई. में ग्लैडस्टन के मन्त्रिमण्डल में ट्रैवेलियन मुख्य आयरी सचिव बना

1 'It was a piece of political dishonesty unexampled in history.' —*Salisbury.*
2 'The bag which holds the winds will be untied and we shall be surrounded by a perpetual whirl of change, alteration, innovation and revolution.' —*Mr. Lowe.*
3 'Your repentence, bitter as I know it will be, will come too late.' —*Mr. Lowe.*

और उस समय से संसद में सुधार विधेयक प्रस्तुत होने लगे। **फरवरी, 1884 में लोकसभा में एक नया सुधार विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसकी धाराएं निम्न थीं—**

(i) ग्रामीण क्षेत्रों में कस्बों के समान मताधिकार होना चाहिए। 10 पौण्ड किराया देने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

(ii) कस्बों से बाहर रहने वालों तथा खानों में कार्य करने वाले औद्योगिक श्रमिकों को मतदान का अधिकार दिया जाए।

(iii) इस विधेयक की धाराएं स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड में भी लागू की जाएं।

इंग्लैण्ड में प्रजातन्त्र के विकास में इस अधिनियम को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ट्रैवेलियन ने इस अधिनियम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 1884 ई. के सुधार विधेयक से देश के जीवन में भारी परिवर्तन आया। यह एक ऐसा परिवर्तन था जिसके लिए ट्यूडर राजाओं के समय में भी आन्दोलन हुआ था। ग्रामीण श्रमिकों को मताधिकार मिल जाने से श्रमिक संघ आन्दोलन को बल मिला, भूमिपति भी अपनी विचारधारा को बदलने के लिए विवश हुए और वे कृषकों की समस्याओं के प्रति अधिक विचारपूर्वक ध्यान देने लगे। सरकार और जनता ने ग्रामीणों के रहने के लिए योग्य व्यवस्था करने का बीड़ा उठाया, जिससे कि ग्रामीण श्रमिक गांवों को छोड़कर शहरों की ओर आकृष्ट न हों।

इस अधिनियम की भी काफी आलोचना हुई। विरोधियों का मत था कि ग्रामीण श्रमिक अपने मताधिकार का समुचित रूप से प्रयोग नहीं कर पाएंगे। रूढ़िवादियों का विचार था कि यदि इस विधेयक के साथ पुनर्वितरण-विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जाता तब वे अगले निर्वाचन में पूर्ण रूप से पराजित हो जाएंगे। कुछ संसद सदस्यों ने इस अधिनियम का विरोध इसलिए किया क्योंकि उनका मत था कि आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड में निर्धनता एवं निरक्षरता अधिक मात्रा में थी, अतः यहां मताधिकार का प्रयोग समुचित रूप से होना कठिन था।

पुनर्वितरण अधिनियम (1885 ई.)
(REDISTRIBUTION ACT)

1885 ई. में ग्लैडस्टन ने पुनर्वितरण अधिनियम पारित करवाया जिसकी धाराएं निम्नलिखित थीं—

(क) 15 हजार से कम जनसंख्या वाले बरो (कस्बों) को सदस्य निर्वाचित करने के अधिकार से वंचित कर ग्रामीण जिलों में सम्मिलित कर दिया गया और 50 हजार से कम जनसंख्या वाले बरो को दो के स्थान पर केवल एक ही सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया।

(ख) 1,50,000 से 1,65,000 के मध्य की जनसंख्या वाले बरो को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। निर्वाचन-क्षेत्रों के निर्माण में जनसंख्या का ध्यान रखा गया और साधारणतया एक निर्वाचन-क्षेत्र में एक सदस्य के आधार पर उसका विभाजन किया गया। इस तरह 160 स्थान रिक्त हुए।

(ग) कॉमन सभा के कुल सदस्यों की संख्या में 12 सदस्यों की वृद्धि की गई। इन सभी सीटों का पुनर्विभाजन किया गया। इससे बड़े नगरों के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई। अब कॉमन सभा के सदस्यों की कुल संख्या 670 हो गई।

संसदीय सुधार अधिनियम
(PARLIAMENTARY REFORM ACT OF 1911)

1909 ई. में सरकार ने सेना के व्यय में वृद्धि करने के उद्देश्य से एक बजट कॉमन सभा में प्रस्तुत किया तथा वहां से स्वीकृत होने के पश्चात् उसे लॉर्ड सभा में प्रस्तुत किया गया। लॉर्ड सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया क्योंकि इस बजट का मुख्य प्रभाव धनवान व्यक्तियों पर ही पड़ता था और उसमें भी भूमिपति विशेष रूप से प्रभावित होते थे जिनका कि लॉर्ड सभा में बहुमत था। लॉर्ड सभा के द्वारा 1909 ई. के बजट को अस्वीकार किए जाने पर एक सांविधानिक समस्या उत्पन्न हो गई। उदार दल का मत था कि कॉमन सभा जनता का प्रतिनिधित्व करती है तथा लॉर्ड सभा को उसकी इच्छा को ठुकराने का कोई अधिकार नहीं है। **उन्होंने स्पष्ट रूप से लॉर्ड सभा की शक्ति को कम करने का निश्चय किया और इस कार्य की पूर्ति हेतु एक 'पार्लियामेण्ट बिल' तैयार किया गया।** इसी समय एडवर्ड सप्तम् की मृत्यु के पश्चात् जार्ज पंचम गद्दी पर बैठा। उसें दो विरोधी दलों में समझौता करने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। संसद पुनः भंग कर दी गई और दिसम्बर 1910 में पुनः निर्वाचन हुआ। मजदूर दल और आयरलैण्ड के प्रतिनिधियों की सहायता से 'संसद विधेयक'(Parliament Bill) लोक सभा द्वारा पारित किया गया। लॉर्ड सभा उसे स्वीकृत करने के तैयार न थी, परन्तु प्रधानमन्त्री की सलाह पर जब राजा ने यह परामर्श दिया कि वह पर्याप्त संख्या में लॉर्ड सभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर देगा तो लॉर्ड सभा को झुकना पड़ा और 10 अगस्त, 1911 को लॉर्ड सभा ने विधेयक को पारित कर दिया और वह अधिनियम बन गया।

1911 ई. के अधिनियम से लॉर्ड सभा की शक्ति तो कम हो ही गई, परन्तु उसके साथ-साथ यह भी जोड़ दिया गया कि ऊपरी सभा (chamber) परम्परागत उत्तराधिकार के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए पर इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। **इस अधिनियम की मुख्य धाराएं इस प्रकार हैं—**

(1) कोई प्रस्ताव आर्थिक प्रस्ताव है अथवा नहीं, इसका निर्णय कॉमन सभा का अध्यक्ष करेगा।

(2) कॉमन सभा द्वारा पारित प्रस्ताव लॉर्ड सभा में भेजा जाएगा, परन्तु लॉर्ड सभा यदि एक माह के अन्दर उसे स्वीकार नहीं करती तो इस अवधि के समाप्त होने पर प्रस्ताव सीधा राजा के पास भेजा जाएगा और उसकी स्वीकृति के पश्चात् कानून बन जाएगा।

(3) अन्य प्रस्तावों को लॉर्ड सभा पारित होने से अधिक से अधिक दो वर्षों तक रोक सकती है क्योंकि यदि कोई विधेयक तीन बार कॉमन सभा द्वारा तीन बैठकों में पारित कर दिया जाए तब लॉर्ड सभा के पारित किए बिना ही राजा की स्वीकृति के लिए भेजा जा सकता है।

(4) कॉमन सभा का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया।

(5) कॉमन सभा के सदस्यों का वेतन 400 पौण्ड प्रतिवर्ष निश्चित कर दिया गया।

महत्व—यद्यपि इस अधिनियम का भी विरोध हुआ तथापि यह विधेयक सांविधानिक क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी कदम था जिससे कॉमन सभा को राज्य में सार्वभौम शक्ति प्राप्त हो गई। निःसन्देह यह विधेयक लोकतन्त्र की महान् विजय थी क्योंकि इस विधेयक के पारित हो जाने

पर लॉर्ड सभा आर्थिक प्रस्ताव को एक माह व अन्य साधारण विधेयकों को दो वर्ष तक ही अधिनियम बनाने से रोक सकती थी, परन्तु वह कॉमन सभा के कार्य में स्थायी बाधा नहीं डाल सकती थी। इस प्रकार इस अधिनियम से लॉर्ड सभा की शक्ति बहु क्षीण हो गयी। इस अधिनियम में एक कमी रह गयी थी कि इसके द्वारा स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, अतः सुधारों की मांग निरन्तर जारी रही। फिर भी इंग्लैण्ड के इतिहास में इस अधिनियम का अत्यधिक महत्व है। रैम्जे म्योर ने लिखा है कि 1911 ई. का संसदीय अधिनियम, इंग्लैण्ड के संविधान के लिए एक, अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी।[1] ट्रैवेलियन ने भी 1911 ई. के अधिनियम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'अब **(इस अधिनियम के पारित हो जाने के पश्चात् इंग्लैण्ड वास्तविक अर्थों में लोकतन्त्र बन गया था।**'[2]

1918 ई. का मताधिकार नियम

इंग्लैण्ड में काफी समय से महिलाएं भी मताधिकार के लिए आन्दोलन कर रही थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के समय भी उन्होंने राष्ट्र की यथेष्ठ सेवा की थी। उन्हें इन सेवाओं के लिए पुरस्कृत करने के उद्देश्य से 1918 ई. में एक अधिनियम बनाकर 30 वर्ष से अधिक की आयु वाली सभी स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया। इस अधिनियम के अनुसार विश्वविद्यालय चुनाव क्षेत्रों में वृद्धि हुई। प्रत्येक 21 वर्ष से अधिक की आयु का व्यक्ति संसद के मतदाता के रूप में मतदान कर सकता था। कॉमन सभा की सदस्य संख्या 670 से बढ़ाकर 707 कर दी गई।

1928 ई. का सुधार अधिनियम
(REFORM ACT OF 1928)

1928 **ई. के सुधार अधिनियम के द्वारा इंग्लैण्ड में स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार दिया गया।** अब 21 वर्ष की आयु वाली स्त्रियां भी मतदान कर सकती थीं। इस अधिनियम के अनुसार सार्वजनिक मताधिकार की प्रथा प्रारम्भ की गई जिसने इंग्लैण्ड में पूर्ण रूप से प्रजातन्त्र की स्थापना की।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इंग्लैण्ड में 18वीं शताब्दी से ही सुधारों के लिए आन्दोलन होने लगे थे। जनता ने समय-समय पर सुधारों के लिए आवाज उठाई। **जब उनके आन्दोलन तीव्र होने लगे तो सरकार को जनता के सम्मुख झुकना पड़ा और उनकी मांगों की पूर्ति हेतु सुधार अधिनियमों को पारित करना पड़ा।** सर्वप्रथम 1832 ई. में सुधार विधेयक पारित हुआ जिसमें जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व को महत्व दिया गया तथा 4 लाख 55 हजार लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ। मताधिकार के विस्तार से राजनीतिक शक्ति कुलीन वर्ग के हाथों से निकलकर मध्य वर्ग के हाथों में आ गई, फलतः कुलीन वर्ग के एकाधिकार का अन्त हुआ। 1832 ई. के सुधार अधिनियम से जनता पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न हो सकी, अतः 1867 ई. में पुनः एक बार सुधार विधेयक पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा दस लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हो गया और राजनीति में श्रमिकों के महत्व को स्थान दिया गया। अब राजनीतिक विषय जनसाधारण की चर्चा के विषय बन गए। निःसन्देह यह एक प्रजातन्त्रीय

1 'The Parliament Act of 1911 must be accounted as one of the most significant contributions ever made to the British constitution.' —*Ramsay Muir.*

2 'Britain could now very well claim to be a full-fledged democracy in the real sense of the term.' —*Trevelyan.*

विधेयक था क्योंकि इससे राजनीतिक शक्ति किसी सीमा तक जनता के हाथों में आ गई। 1884 ई. में तृतीय सुधार विधेयक पारित हुआ जिसके द्वारा मताधिकार के क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाया गया जिससे 20 लाख जनता को मताधिकार प्राप्त हुआ। 1911 में संसदीय अधिनियम पारित हुआ। यह जनतन्त्र की महान् विजय थी क्योंकि इस अधिनियम के द्वारा लॉर्ड सभा का विधेयकों को अस्वीकार करने का अधिकार समाप्त हो गया। 1918 ई. में 30 वर्ष से अधिक की आयु वाली स्त्रियों को मतदान का अधिकार दिया गया और 1928 **में एक अन्य अधिनियम के द्वारा स्त्रियों को पुरुषों के समान (21 वर्ष से अधिक आयु वाली सभी स्त्रियों को) मताधिकार मिल गया।**

उपर्युक्त सभी सुधार अधिनियमों के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में सत्ता कुलीन वर्ग के हाथों से निकलकर जनता के हाथों में आ गई और वहां प्रजातान्त्रिक भावनाओं का विकास हुआ।

प्रश्न

1. इंग्लैण्ड में उदारवाद के विकास पर एक निबन्ध लिखिए। **(गोरखपुर, 1988)**
2. 1832 ई. के अधिनियम की धाराओं व उसके महत्व का वर्णन कीजिए।
3. 1832 ई. के सुधार अधिनियम के पारित होने के कारणों, धाराओं व परिणामों पर प्रकाश डालिए।
4. चार्टिस्ट आन्दोलन को चार्टिस्ट आन्दोलन क्यों कहते हैं? इस आन्दोलन के कारणों व प्रभावों का वर्णन कीजिए।
5. चार्टिस्ट आन्दोलन की प्रमुख मांगों व इस आन्दोलन के महत्व का वर्णन कीजिए।
6. 1867 ई. के सुधार अधिनियम पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
7. 1911 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराओं व महत्व का वर्णन कीजिए।

18

नेपोलियन तृतीय
[NAPOLEON THIRD]

भूमिका
(INTRODUCTION)

सन् 1848 ई. की फ्रांस की तृतीय क्रान्ति लुई फिलिप के सिंहासन-मुक्त होने का कारण बनी। लुई फिलिप् के पतन के पश्चात् क्रान्ति के प्रमुख नेताओं ने फ्रांस में एक अस्थायी सरकार (Provisional Government) की स्थापना की। इस अस्थायी सरकार में प्रजातन्त्रवादी, समाजवादी एवं श्रमजीवी नेता शामिल थे, किन्तु प्रमुखता गणतन्त्रवादियों की थी। अतः **गणतन्त्रवादियों के प्रमुख नेता लामार्तिन** (Lamartine) **ने घोषित किया, "अब फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना एवं राजशाही की समाप्ति हुई है।"** लामार्तिन देश की आर्थिक समस्या के समाधान करने हेतु व्यक्तिगत सम्पत्ति का पूर्ण विनाश आवश्यक समझता था।[1] **इसके विपरीत समाजवादियों का नेता लुई ब्लाक, द्वितीय गणतन्त्र को मात्र साधन मानता था। उसकी दृष्टि में लक्ष्य की पूर्ति तो समाजवादी सरकार की स्थापना से ही हो सकती थी।** अतः शीघ्र ही अस्थायी सरकार में दो दल बन गए। प्रथम गणतन्त्रवादियों का समर्थक था और द्वितीय समाजवादियों का।

अतः इन परिस्थितियों में स्वतः के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अस्थायी सरकार ने देश के लिए नवीन संविधान बनाने हेतु **नवीन असेम्बली** (Constituent Assembly) के निर्वाचन कराए। 4 मई, 1848 ई. के असेम्बली-अधिवेशन में फ्रांस में पुनः गणतन्त्र की घोषणा होने पर समाजवादियों ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह की स्थिति उत्पन्न कर दी। समाजवादियों के द्वारा भड़काई गई भीड़ ने 15 मई, 1848 ई. को असेम्बली भवन को घेरकर तथा असेम्बली को भंग करके पुनः अस्थायी सरकार की घोषणा की, परन्तु कुशल लामार्तिन ने नेशनल गार्ड के सहयोग से उपद्रवकारियों का दमन किया। 23 जून, 1848 ई. को पुनः मजदूरों की भयंकर भीड़ द्वारा असफल सशस्त्र विद्रोह किया गया, जिसका दमन असेम्बली द्वारा नियुक्त कैवेग्नेक ने सेना एवं स्वयंसेवकों के सहयोग से कर दिया।

1 "Charity among the different classes of citizens, to be realised by all such institutions of assistance, association, bonevolance as are campatible with the liberty of capital and security of property." —*Lamartine.*

द्वितीय गणतन्त्र और नेपोलियन तृतीय राष्ट्रपति के रूप में
(SECOND REPUBLIC AND NAPOLEON III AS A PRESIDENT)

उपर्युक्त अव्यवस्थाओं के निवारण के पश्चात् असेम्बली द्वारा निर्मित नवीन संविधान में एक संसदीय व्यवस्थापिका सभा तथा एक राष्ट्रपति की वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होने की व्यवस्था की गई। व्यवस्था के अनुरूप 10 दिसंबर, 1848 ई. को सम्पन्न हुए राष्ट्रपति के निर्वाचन में कुल 5 उम्मीदवारों में कैवेग्नेक और लुई नेपोलियन दो प्रमुख उम्मीदवार थे। जनतन्त्रवादी कैवेग्नेक की अपेक्षा **'नेपोलियन महान' का महान् भतीजा लुई नेपोलियन** 54,34,227 **मत प्राप्त कर निर्वाचित घोषित हुआ।**

नेपोलियन तृतीय का कार्यक्रम एवं उद्देश्य
(PROGRAMME AND AIMS OF NAPOLEON III)

नेपोलियन तृतीय का जन्म 1808 ई. में पेरिस में हुआ था। उसका पिता लुई बोनापार्ट हॉलैण्ड का शासक रह चुका था। लुई नेपोलियन ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् स्विट्ज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड आदि देशों का भ्रमण कर वहां की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। नेपोलियन महान् के पतन के पश्चात् **'बोनापार्ट दल'** के प्रतिनिधि और नेता के रूप में वह फ्रांस में अपने चाचा की भांति साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। विभिन्न राजनीतिक दल अपनी अक्षमता के कारण राजनीतिक दृष्टि से अस्त-व्यस्त फ्रांस को वह व्यवस्था (Order) नहीं प्रदान कर सके थे, जिसकी उसे आवश्यकता थी। अतः नेपोलियन महान् की भांति उसने फ्रांस की राजनीतिक स्थिति सुव्यवस्थित करने हेतु अपने सम्मुख चार उद्देश्य रखे—(1) **क्रान्ति के सिद्धान्तों की रक्षा,** (2) **राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की रक्षा,** (3) **शान्ति की स्थापना,** (4) **धर्म की स्थापना।**

अपने इन्हीं उद्देश्यों के क्रम में उसने राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण के अवसर पर शपथ का अक्षरशः पालन करने के लिए जनता को आश्वस्त किया तथा यह स्पष्ट घोषित किया कि वह पुनः स्थापित फ्रांस की व्यवस्था को अवैध रूप से भंग करने वाले व्यक्ति को देश का शत्रु समझेगा।[1] उसने जनता को आश्वस्त किया कि वह उनकी प्रभुसत्ता का आदर करता था और करेगा।[2]

नेपोलियन द्वारा नेशनल असेम्बली भंग करना तथा सम्राट के रूप में शासन की बागडोर
(NATIONAL ASSEMBLY DISSOLVED AND NAPOLEON III BECOMES EMPEROR)

राष्ट्रपति पद ग्रहण करते समय जनता के प्रति इस प्रकार की घोषणाओं ने फ्रांस की जनता में आशा की एक नई किरण उत्पन्न कर दी। वस्तुतः फ्रांस की जनता फ्रांस में व्याप्त अशान्ति, अस्थिरता एवं असन्तोष के वातावरण के स्थान पर शान्त, सुव्यवस्थित एवं स्थिर प्रशासन की इच्छुक थी। राजतन्त्रवादियों के अनुपयुक्त होने के कारण ऐसी परिस्थितियों में

1 "The votes of the nation and the oath which I have just taken control my future, conduct, my duty is clear. I will fulfil is as a man of honour. I shall regard as enemies of the country all those who endeavour to change by illegal means that which France has established........."

2 "I have respected and shall respect the sovereignty of the people, even in what may be false and hostile to mysey in its expression."

नेपोलियन को अपनी शक्ति में वृद्धि करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सन् 1849 ई. को रोम के स्वतन्त्रता संग्राम में पोप का पक्ष लेकर उसे पुनः रोम के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। फ्रांस में राजनीतिक क्लबों तथा प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। मतदान की योग्यता में वृद्धि करके 30 लाख नागरिकों को मताधिकार का प्रयोग करने से वंचित कर दिया। जनता की भावनाओं के अनुरूप सेना को अपने पक्ष में करने के पश्चात् 2 दिसम्बर, 1852 ई. को नेशनल असेम्बली भंग कर प्रशासन को स्वहस्तगत कर लिया। अतएव फ्रांस में 1789 की भांति एक बार पुनः द्वितीय गणतन्त्र अल्प समय में ही समाप्त हो गया तथा द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई। अब लुई नेपोलियन 'सम्राट नेपोलियन तृतीय' बन गया।

द्वितीय साम्राज्य का शासन विधान
(CONSTITUTION OF THE SECOND MONARY)

सम्राट का पद ग्रहण करते ही नेपोलियन ने फ्रांस को एक नया संविधान दिया। देश के नवनिर्मित संविधान के अन्तर्गत सम्राट सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र था। मन्त्रियों की नियुक्ति एवं पदच्युति सम्राट के अधिकार क्षेत्र में थी। **शासन संविधान में मुख्यतया निम्नलिखित सभाएं थीं :**

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly)—इस सभा में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की शक्ति अत्यन्त ही सीमित होती थी। सर्वाधिकार सम्राट में निहित थे। सम्राट ही सभा को भंग अथवा स्थापित कर सकता था। राजमन्त्रियों द्वारा रखे हुए बिलों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना व्यवस्थापिका के अधिकार क्षेत्र में था। वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होने वाली इस सभा का कार्यकाल 6 वर्ष का होता था।

सीनेट (Senate)—संविधान की व्याख्या तथा संविधान में संशोधन के अधिकार क्षेत्र वाली सीनेट में मुख्यतया सम्राट द्वारा मनोनीत सेना एवं चर्च के पदाधिकारी होते थे।

इस प्रकार नेपोलियन के एकतन्त्रवादी शासन में निर्वाचन की व्यवस्था थी, परन्तु पदाधिकारियों के हस्तक्षेप के कारण निर्वाचन निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र रूप से सम्पन्न नहीं हो पाते थे। वांछित उम्मीदवारों की विजय के लिए समाचार-पत्र प्रयत्नशील रहते थे। सरकार विरोधी प्रेस का कठोरता से दमन करने के साथ ही विपक्षी उम्मीदवारों की सभा एवं प्रचार कार्य के लिए कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। सरकारी उम्मीदवारों को मत देने की सरकारी कर्मचारियों की परिस्थितिजन्य विवशता थी।

नेपोलियन तृतीय की गृह नीति
(HOME POLICY OF NAPOLEON III)

नेपोलियन तृतीय द्वारा जिस एकतन्त्रीय नवीन संविधान का गठन किया गया था, उससे स्पष्ट था कि वह फ्रांस की जनता की राजनीतिक स्वतन्त्रता का दमन करना चाहता था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि उसकी दृष्टि में फ्रांस की जनता सुख, समृद्धि, स्वच्छ प्रशासन एवं सुव्यवस्था की पक्षधर थी, न कि राजनीतिक स्वतन्त्रता की। अतः उसकी गृह नीति इसी दृष्टिकोण के आधार पर आधारित थी। **संक्षेप में उसकी गृह नीति को अग्रवत् उल्लेखित किया जा सकता है :**

1. **कठोर प्रशासन एवं सुव्यवस्था** (Efficient Administration)

निरंकुश प्रशासन की स्थापना कर नेपोलियन ने राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। साम्यवादियों का दमन, प्रेस एवं समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध तथा विरोधियों को जेल की सजा अथवा देश से निर्वासन करने जैसे कठोर प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ उसने उग्रपन्थियों तथा प्रतिक्रियावादियों के प्रति उदार दृष्टिकोण का परिचय देते हुए सार्वलौकिक मताधिकार प्रदान कर दरबार की शान-शौकत की ओर आकर्षित किया। सन् 1860 ई. में उसने यह कदम इसलिए उठाया क्योंकि उसके विरोधियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। 1860 ई. में ही विरोधियों को सन्तुष्ट करने के लिए उसने संविधान में परिवर्तन किए। संविधान में हुएं परिवर्तन से व्यवस्थापिका सभा एवं सीनेट को सरकारी नीति की आलेचना का अधिकार प्राप्त हो गया। सभा की कार्यवाही का प्रकाशन होने लगा। इतना होने पर भी निरन्तर विरोध की प्रबलता के फलस्वरूप 1863 ई. के चुनावों में विरोधी प्रबल बहुमत से विजयी घोषित हुए।

2. **आर्थिक सुधार** (Financial Reforms)

मध्यम वर्ग के हित को ध्यान में रखते हुए नेपोलियन तृतीय ने आर्थिक क्षेत्र में अधिक उदार नीति का प्रयोग किया। व्यवसाय को प्रोत्साहन देने के लिए उसने सरकारी नियन्त्रण समाप्त कर दिया। सेण्ट साइमन के आर्थिक उदारवाद से प्रभावित नेपोलियन तृतीय ने कारखानों को सहायता प्रदान की एवं बचत बैंकों की स्थापना की। सेण्ट साइमन के अनुसार, **"जनसाधारण की भौतिक समृद्धि के लिए आर्थिक साधनों, यातायात एवं परिवहन तथा शिक्षा का विकास करना सम्राट का कर्तव्य था।"** आर्थिक विकास हेतु नेपोलियन ने उन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण किया। उसका प्रधान उद्देश्य इंग्लैण्ड के सदृश फ्रांस का औद्योगिक विकास करना था। **अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने निम्नलिखित कार्य किए :**

(अ) बैंकों की स्थापना—औद्योगिक विकास हेतु साख (Credit) की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 1852 ई. में उद्योगों को पूंजी सुलभ कराने के उद्देश्य से **पेरियर बन्धुओं ने क्रेडिट मोबिलियर** नामक बड़े बैंक की स्थापना की। **क्रेडिट फ्रांसियर** नामक दूसरे बैंक की स्थापना तथा **'बैंक ऑफ फ्रांस'** के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि करके उसे भी ऋण देने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार बैंकों की स्थापना से औद्योगिक विकास के मार्ग प्रशस्त हुए।

(ब) मजदूरों की सुविधाओं की व्यवस्था—औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई। गणतन्त्रवादियों एवं समाजवादियों पर अपने प्रभुत्व की स्थापना करने हेतु नेपोलियन तृतीय ने श्रमिक वर्ग को प्रसन्न रखने के लिए अच्छे एवं सस्ते आवास एवं बीमा योजना लागू की। **सन् 1863 ई. एवं 1864 ई. के कानूनों के प्रावधानों** के अनुसार मजदूरों को क्रमशः अपने संघ का निर्माण एवं हड़ताल करने का अधिकार भी प्राप्त था। श्रमिकों की कार्यावधि में कमी तथा अवकाश में वृद्धि करके उन्हें अधिक सुविधाएं प्रदान की गईं।

(स) कृषि की उन्नति हेतु कार्य—नेपोलियन तृतीय ने कृषि विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। रेलों के विस्तार से कृषक अपने उत्पादों को स्थानान्तरित करके अधिक मूल्य अर्जित करते थे। उत्पादन में वृद्धि हेतु कृषि समितियों का गठन, कृषि शिक्षण हेतु कृषि विद्यालय, अच्छे उत्पादन हेतु पारितोषिक की व्यवस्था की गई। इस प्रकार के कार्यों से कृषि उत्पादन एवं कृषकों की स्थिति में पर्याप्त सुधार आया।

(द) लोक-निर्माण के कार्य—नेपोलियन तृतीय ने सड़कों, नहरों एवं पुलों के निर्माण के अतिरिक्त पेरिस, आल्सेस तथा लारेन, आदि नगरों में सुन्दर एवं विशाल इमारतों का निर्माण करवाया। **बैरन हासमैन** के निर्देशन में पेरिस की सड़कें चौड़ी करवाई गईं। नगर में अनेक बाग लगवाए। पेरिस की सुन्दरता एवं आकर्षण के कारण द्वितीय साम्राज्य की राजधानी यूरोपीय देशों के लिए प्रतीक बन गई।

3. **धार्मिक नीति** (Religions Policy)

नेपोलियन ने कैथोलिक धर्म को, कट्टर धर्मानुयायी होने के कारण नहीं अपितु राजनीतिक कारणों से प्रमुखता दी एवं चर्च का संरक्षक बना। फ्रांस में कैथोलिक दल के अधिक शक्तिशाली होने के कारण अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु इस दल को सन्तुष्ट करना परमावश्यक था। फ्रांस की अधिकांश शिक्षा के केन्द्र कैथोलिक स्कूल ही थे। विश्वविद्यालयों एवं सार्वजनिक विद्यालयों में पादरियों के प्रभाव में वृद्धि के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। यही नहीं, कैथोलिक पादरियों के प्रश्न को लेकर उसने क्रीमिया के युद्ध में भी भाग लिया।

नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF NAPOLEON III)

फ्रांस को एक प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्र के रूप में देखने की नेपोलियन तृतीय की बलवती इच्छा किसी सुनिश्चित योजना के अभाव में मात्र कल्पना तक ही सीमित रह गयी। इसलिए बिस्मार्क ने उसके विषय में कहा था, "**नेपोलियन तृतीय युद्ध करना चाहता है, परन्तु उसके मस्तिष्क में युद्ध का ठीक-ठीक नक्शा नहीं है।**" फ्रांस की स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु युद्ध अपरिहार्य था, परन्तु युद्ध से उत्पन्न संकट से भी वह अनभिज्ञ नहीं था। स्थिति की जटिलता ने उसे अधिक कल्पनाशील तथा अस्थायी निर्णय वाला बना दिया। **पामर्स्टन** के शब्दों में, "**उसका मस्तिष्क योजनाओं से इस प्रकार भरा हुआ था, जिस प्रकार कि बिल खरगोशों से भरे हुए हैं।**"[1] **अस्थिर विचारों पर आधारित उसकी विदेश नीति का विवरण निम्नलिखित है :**

(1) **पोप को सहायता**—कैथोलिकों की सन्तुष्टि हेतु नेपोलियन तृतीय ने राष्ट्रपति के रूप में सर्वप्रथम मेजिनी के रोमन गणराज्य को पलटकर पोप को पुनः सिंहासनासीन कर दिया।

(2) **क्रीमिया युद्ध एवं नेपोलियन तृतीय**—अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ करने के पश्चात् नेपोलियन तृतीय ने कैथोलिकों को प्रसन्न करने एवं फ्रांस की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने के उद्देश्य से तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत पेलेन्टाइन में स्थित ईसाइयों के पवित्र स्थानों का प्रश्न उठाया। रूस इन प्रदेशों पर अपने संरक्षण को मानता था। संरक्षण के प्रश्न को लेकर क्रीमिया का युद्ध हुआ।[2] दो वर्ष तक चले इस युद्ध में 5 लाख से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु तथा अपार धन नष्ट हुआ। इंग्लैण्ड के सहयोग से फ्रांस ने इस युद्ध में रूस को पराजित किया और अन्त में नेपोलियन तृतीय की अध्यक्षता में 1856 ई. में पेरिस की सन्धि हुई। नेपोलियन तृतीय की इस सफलता से फ्रांस का चर्च सन्तुष्ट हो गया। **यह विजय नेपोलियन महान् की मास्को पराजय का प्रतिकार था। निकोलस प्रथम, नेपोलियन प्रथम को राजवंशी नहीं मानता था। अतः वह उसे** 'My brother' **न कहकर** 'My Good Friend' **कहकर सम्बोधित करता था।** नेपोलियन तृतीय ने इस अपमानजनक सम्बोधन का प्रतिकार भी प्राप्त कर लिया।

1 'His head was full of schemes as warren is full of rabbits.'

—Ketelbey, *op. cit.*, p. 295

2 'It was a war to give a few wretched monks the keys of a grotto.'

—Thiers.

(3) **इटली में नेपोलियन का पुनः हस्तक्षेप और प्लॉम्बियर्स की सन्धि**—इटली में हो रहे आन्दोलनों में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप वहां के राष्ट्रवादी नेताओं ने कुशल राजनीति का परिचय देते हुए क्रीमिया युद्ध में फ्रांस को सहायता देकर पेरिस सम्मेलन का आमन्त्रण हस्तगत कर लिया। पेरिस सम्मेलन में इटली के नेता कैवूर ने इटली की कठिनाइयों से सभी सहभागी देशों को अवगत कराया। इसी क्रम में इटली के राजा विक्टर एमानुएल प्रथम की लड़की का विवाह नेपोलियन तृतीय के भाई जेरोम के साथ सम्पन्न हुआ। जुलाई 1858 ई. में नेपोलियन तृतीय ने **प्लाम्बियर्स** नामक स्थान पर कैवूर से एक समझौता किया। समझौते के अनुसार, **"नेपोलियन ने सेवाय तथा नाइस के बदले में लोम्बार्डी तथा वेनेशिया से आस्ट्रिया को निकालने में तथा उत्तरी इटली में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सार्डीनिया की सहायता करने का वचन दिया।"**

(4) **आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में इटली की सहायता**—नेपोलियन तृतीय की सहायता के प्रति आश्वस्त होकर सार्डीनिया ने 1859 ई. में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। समझौते के अनुसार नेपोलियन तृतीय ने फ्रांस की सेना को सार्डीनिया की सेना के साथ लोम्बार्डी में प्रवेश की आज्ञा दी और मिलन पर सार्डीनिया का अधिकार हो गया। सॉलफैरिनो के युद्ध में आस्ट्रिया की सेना को पुनः पराजित होना पड़ा।

(5) **नेपोलियन द्वारा विश्वासघात और आस्ट्रिया के साथ विलाफ्रैंका की सन्धि**—इस सफलता से इटली में राष्ट्रीयता की भावना को जहां एक और सम्बल मिला, वहीं दूसरी ओर नेपोलियन तृतीय ने प्लाम्बियर्स के समझौते की उपेक्षा करते हुए आस्ट्रिया के साथ विलाफ्रैंका की सन्धि कर ली और युद्ध के प्रति तटस्थ हो गया। इस सन्धि की पुष्टि ज्युरिच की सन्धि से हुई। फलतः वेनेशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार मान लिया गया। यह निश्चित किया गया कि इटली के समस्त राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाया जाएगा जिसका अध्यक्ष पोप होगा। आस्ट्रिया की सेना को लोम्बार्डी खाली करना पड़ा। परिणामस्वरूप परमा, मोडेना व टस्कनी की जनता ने विद्रोह कर अपने-अपने राजाओं को देशों से निकाल दिया। इन प्रदेशों ने सार्डीनिया पीडमाण्ट के साथ संगठित होने की योजना स्वीकार की। **ट्यूरिन की सन्धि के अनुसार नेपोलियन ने नाइस व सेवाय पर अधिकार कर लिया तथा पीडमाण्ट द्वारा टस्कनी, परमा मोडिया एवं लोम्बार्डी को मिला लेने को मान्यता प्रदान की।**

विलाफ्रैंका की सन्धि की पुष्टि में की गई सन्धियों के सन्दर्भ में तथा इटली के साथ विश्वासघात को लेकर नेपोलियन तृतीय की कटु आलोचना की गई। कैवूर के शब्दों में, **'मौसम गर्म होने के कारणवश थक गया था।'**[1] परन्तु नेपोलियन के स्वयं के विचार में, **'इटली की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए यूरोप के राष्ट्रों की इच्छा के विरुद्ध भी मैंने युद्ध किया, लेकिन जब मैंने अपने देश की सुरक्षा खतरे में देखी तो शान्ति स्थापित कर दी।'**[2] इतिहासकार फिशर ने नेपोलियन के इस कार्य की बहुत प्रशंसा की है,[3] परन्तु इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि नेपोलियन के इस कार्य से उसकी प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा तथा इटली से फ्रांस के सम्बन्ध भी खराब हो गए।

1 "He was tired, the weather was hot."
2 "To secure Italian independence, I made war against the wish of Europe, as soon as the future of my country seemed to be in danger, I made peace."—*Napoleon* III
3 Yet of all the actions of his career there have been few more judicious than Napoleon's sudden dicision to close the Italian campaign after Solferino."

(6) **पोल के लोगों का विद्रोह**—रूस द्वारा पोलैण्ड की स्वतन्त्रता का विरोध तथा 1803 ई. की इटली की घटनाएं रूस के विरुद्ध पोलैण्ड की जनता के विद्रोह का कारण बनी। रूस द्वारा दो हजार पोल्स की गिरफ्तारी से विद्रोह में और वृद्धि हुई। नेपोलियन ने सहायता का आश्वासन देकर भी इस संकट के अवसर पर पोलैण्ड की कोई सहायता नहीं की। अत: पोलिश जनता नेपोलियन के विरुद्ध हो गई। रूसी सम्राट एलेक्जेण्डर द्वितीय ने बिस्मार्क के सहयोग से पोलिश विद्रोह कर दमन कर दिया। **टामसन के अनुसार, "नेपोलियन तृतीय ने इस अवसर पर सब देशों को अपने पक्ष में क़रने का स्वर्णिम अवसर नष्ट कर दिया।"**[1]

(7) **मैक्सिको की दुर्घटना**—मैक्सिको गणराज्य में उभरे हुए अन्तर्कलह से उत्पन्न संघर्ष में गणतन्त्रवादियों को सफलता मिली और उनका नेता वेनिटो ज्वारेज राष्ट्रपति बनाया गया। उसने इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा स्पेन को देय ऋणों की पूर्ति अस्वीकार कर दी। अमरीका में आरम्भ गृह युद्ध का लाभ उठाकर नेपोलियन तृतीय ने मैक्सिको की गणतन्त्रवादी सरकार को मान्यता न देकर अपने उम्मीदवार मैक्सी मिलयन को राजा बनाना चाहा। वह आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ का भाई तथा बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड का दामाद था। **नेपोलियन के अनुरोध पर फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा स्पेन की संयुक्त सेनाओं ने जनवरी** 1862 **ई. में मैक्सिको पर आक्रमण किया।** मैक्सिको के राष्ट्रपति ज्वारेज ने ऋण की अदायगी करना स्वीकार कर लिया। इंग्लैण्ड तथा स्पेन की सेनाओं के वापस आ जाने के पश्चात् भी नेपोलियन वही डटा रहा। अन्त में मैक्सी मिलयन को सिंहासनासीन कर दिया, परन्तु यह स्थायी न सिद्ध हुआ। 1865 ई. में ज्वारेज ने अवसर पाकर पुनः विद्रोह किया। **इसी समय अमरीका में चल रहा गृह युद्ध भी समाप्त था।** अत: वहां की सरकार ने मुनरो सिद्धान्त (Manroe doctrine, 1823) का सन्दर्भ देते हुए फ्रैंच सेना का विरोध किया। तदनुसार नेपोलियन को अप्रतिष्ठित होकर सेना वापस हटानी पड़ी और आस्ट्रिया तथा बेल्जियम के सम्राटों का कोपभाजन बनना पड़ा। **लिप्सन** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, **"मैक्सिको की दुर्घटना ने नेपोलियन की वास्तविक सूझबूझ को नष्ट कर दिया।"**[2]

(8) **स्लेजविग-होल्सटीन का प्रश्न और नेपोलियन**—बिस्मार्क प्रशा के एकीकरण के लिए स्लेजविग तथा होल्सटीन के प्रदेशों पर आधिपत्य करना चाहता था। डेनमार्क की दृष्टि भी इन प्रदेशों पर स्थिर थी। इंग्लैण्ड का प्रशा से विरोध होने के कारण उसने फ्रांस तथा रूस से इस सम्बन्ध में सहायता की अभिलाषा प्रकट की। **इंग्लैण्ड की अभिलाषा थी कि उक्त तीनों देशों के मतों की उपेक्षा करने पर समन्वित होकर प्रशा पर आक्रमण करना चाहिए।** रूस इस सन्दर्भ पोलैण्ड के प्रश्न को लेकर तटस्थ रहा। मैक्सिको की दुर्घटना से शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण नेपोलियन तृतीय ने भी युद्ध के प्रति तटस्थ रहने में ही अपनी रुचि दिखाई। अवसर का लाभ उठाकर बिस्मार्क ने नेपोलियन तृतीय की सम्मति की उपेक्षा करते हुए इन प्रदेशों का विलय अपने राज्य में कर लिया।

1 The Polish question gave Napoleon a unique opportunity of rallying all parties. The Chatholics considered that nation a martyr to its faith, for democrats its independence was a dogma, while even conservatives remembered that historic role of Poland as the ally of France against Austria." —Thompson.

2 "The maxican incident more than anything else in Nepoleon's reign served to illustrate the unstable imagination of the emperor." —Lipson.

(9) **सैडोवा का युद्ध** (1866 ई.)—जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रशा का आस्ट्रिया से युद्ध अत्यन्त आवश्यक था। अतः 1865 ई. में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध के लिए कूटनीतिक तैयारी यह सोचकर आरम्भ कर दी कि इस युद्ध में आस्ट्रिया को किसी भी देश से कोई सहायता न मिले। रूस के आस्ट्रिया से पूर्व के ही विरोध होने तथा इंग्लैण्ड के आन्तरिक समस्याओं में उलझने के कारण मात्र फ्रांस ही ऐसा देश था जिससे आस्ट्रिया की सहायता की आशा की जा सकती थी। **अतः बिस्मार्क ने फ्रांस से मैत्री स्थापित करने हेतु वियारिजय नामक स्थल पर नेपोलियन तृतीय से सम्पर्क किया।** दोनों के मध्य गुप्त वार्ता हुई। इन वार्ता के अनुसार नेपोलियन ने आस्ट्रिया व प्रशा के मध्य युद्ध होने पर तटस्थ रहने का वायदा किया। फ्रांस की तटस्थता के मूल्य के रूप में बिस्मार्क ने थोड़ा-सा सीमान्त प्रदेश देने का वायदा किया, बशर्ते कि उससे प्रशा को कोई नुकसान न हो। प्रशा ने वेनेशिया को इटली को देने का भी वायदा किया।

इस प्रकार फ्रांस की तटस्थता का वायदा प्राप्त कर **बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।** सात सप्ताह तक चले सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की बुरी हार से फ्रांसीसी जनता एवं नेपोलियन तृतीय को काफी आश्चर्य हुआ। **यह युद्ध इतिहास में सात सप्ताह का युद्ध** (Seven Weeks War) **के नाम से जाना जाता है।** नेपोलियन की योजना थी कि दोनों शक्तियों में दीर्घकालिक युद्ध होगा और सहायतार्थ कोई एक देश फ्रांस से याचना करेगा, परन्तु यह सब नहीं हुआ। इसके विपरीत यदि फ्रांस खुलकर आस्ट्रिया की सहायता करता तो न आस्ट्रिया पराजित होता और न ही फ्रांस की सीमा पर प्रशा जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का उदय होता। **इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस युद्ध में आस्ट्रिया की नहीं अपितु फ्रांस की पराजय हुई।**[1] थीयर्स के अनुसार, **"सैडोवा का युद्ध एक भयानक पराजय थी। यह फ्रांस के लिए उतनी ही घातक थी जितनी तीन शताब्दी पूर्व पाविया का युद्ध।"**[2]

(10) **तटस्थता का पुरस्कार पाने का प्रयत्न एवं नेपोलियन तृतीय की असफलता**—युद्ध की समाप्ति के पश्चात् नेपोलियन तृतीय द्वारा बिस्मार्क से पेज तथा पेल्टीनेट के प्रदेशों को मांगने पर बिस्मार्क ने इस तथ्य को समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दिया, जिससे नेपोलियन की साम्राज्यवादिता सिद्ध होने के साथ-साथ विभिन्न राष्ट्रों द्वारा उसका निरन्तर विरोध बढ़ना आरम्भ हो गया। विएना कांग्रेस के निर्णयों के विरुद्ध होने तथा इंग्लैण्ड के विरोध करने के कारण नेपोलियन तृतीय को अपना प्रस्ताव वापस लेना पड़ा।

(11) **बिस्मार्क की कूटनीति (एम्सतार) और फ्रैंको-प्रशियन युद्ध** 1870—आस्ट्रिया की पराजय से प्रशा की शक्ति में वृद्धि हो गई। इससे फ्रांस में नेपोलियन के प्रति असन्तोष बहुत बढ़ गया। **नेपोलियन के प्रति फ्रांस की जनता के बढ़ते हुए असन्तोष को समाप्त करने का मात्र एक ही उपाय था—प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा।** नेपोलियन का विश्वास था कि यदि युद्ध में उसकी विजय हुई और प्रशा को जर्मनी का एकीकरण न करने दिया गया तो एक बार पुनः फ्रांस का भविष्य और उसका राज्य सुनिश्चित हो जाएगा। बिस्मार्क युद्ध के सन्दर्भ में फ्रांस की पहल का इच्छुक था। अतः युद्ध के लिए स्पेन के प्रश्न को लेकर फ्रांस को युद्ध के लिए प्रेरित किया। स्पेन की रानी आइजाबेला के विरोध में स्पेन में विद्रोह हो जाने से वह

1. It was France who was defeated at Sadowa.
2. "Thiers decleared that Sadowa was a great defeat, as serious for France as the battle of pavia had been nearly three and half countries before." —*A. J. Grant*

भागकर फ्रांस आ गई। ऐसी स्थिति में स्पेन के नेताओं ने प्रशा के राजा के एक सम्बन्धी लियोपोल्ड को स्पेन का शासक बनाना चाहा। नेपोलियन के विरोध करने पर प्रशा ने अपने प्रतिनिधि को हटा दिया, परन्तु नेपोलियन ने प्रशा में स्थित अपने राजदूत वेनडेटी को पत्र लिखकर यह आश्वासन लेने को कहा कि प्रशा कभी भी स्पेन के सिंहासन पर अपने प्रतिनिधि को आसीन करने का प्रयास नहीं करेगा। अतः फ्रांस के राजदूत ने एम्स नामक स्थान पर प्रशा के सम्राट से मुलाकात कर इस सम्बन्ध में आश्वासन लेने का प्रयत्न किया। **सम्राट ने लियोपोल्ड को स्पेन के सिंहासन पर न बैठानें का आश्वासन तो दिया, किन्तु भविष्य के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार के आश्वासन देने से इन्कार कर दिया।** प्रशा के सम्राट ने इस घटना का पूर्ण ब्यौरा तार द्वारा बिस्मार्क को सूचित कर दिया। अत्यन्त पटुता का परिचय देते हुए बिस्मार्क ने तार की भाषा में कुछ संशोधन करके उसे प्रकाशित करा दिया। प्रशा की जनता ने इस तार को पढ़कर प्रशा के राजा का अपमान समझा तथा फ्रांस ने फ्रांस के राजदूत का अपमान समझा। अतः आस्ट्रिया तथा फ्रांस दोनों युद्ध की तैयारी करने लगे। जुलाई 1870 ई. को फ्रांस ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में नेपोलियन को 85 हजार सैनिकों सहित जनरल मोल्ट के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा। नेपोलियन की पराजय का समाचार पेरिस पहुंचते ही फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई। युद्ध के अन्त तक नेपोलियन तृतीय कैद रहा और युद्ध की समाप्ति पर वह मुक्त होकर इंग्लैण्ड चला गया जहां 1873 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति असफल कही जा सकती है। उसे अपमानित होकर फ्रांस का सिंहासन त्यागना पड़ा था। वास्तव में नेपोलियन तृतीय का पतन तो सैडोवा के युद्ध (1870) से दस वर्ष पूर्व 1860 ई. से ही आरम्भ हो गया था।

नेपोलियन तृतीय के पतन के कारण
(CAUSES OF THE DOWNFALL OF NAPOLEON III)

इस तथ्य को स्वीकार करने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि नेपोलियन तृतीय एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। शासन में सुधार करने के साथ-साथ व्यापारिक प्रगति तथा साम्राज्य विस्तार के प्रति भी वह जागरूक एवं प्रयत्नशील रहा, परन्तु फिर भी जिसका उदय होता है, उसका अन्त भी निश्चित है। इस सिद्धान्त के अनुसार उसका भी पतन हुआ। **उसके साम्राज्य के अल्पावधि में हुए पतन के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी थे—**

(1) **नेपोलियन की गृह नीति के दोष**—सम्राट होने से पूर्व ही (राष्ट्रपति पद पर रहते हुए) नेपोलियन तृतीय ने अपनी जनता के सम्मुख सुधारों का कार्यक्रम रखा तथा उसके वायदे के अनुसार फ्रांस की सुख-समृद्धि में वृद्धि, फ्रांस की जनता के लिए चिकित्सालय, अच्छे मकान आदि की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त सड़कों, बन्दरगाहों, नहरों तथा रेलों की भी व्यवस्था की, परन्तु इतना सब कुछ होने के बावजूद भी वह किसी एक राजनीतिक दल को अपने पक्ष में नहीं कर सका। कैथोलिक दल आरम्भिक समय में पक्षधर होने के बावजूद बाद में विरोधी हो गया। **प्रो. पाल फारमर** के अनुसार, **"राष्ट्रपति बनने के बाद भी वह एक ऐसा नेता था, जिसका कोई राजनीतिक दल नहीं था।"** उसकी प्रबुद्धता एवं निरंकुशता को जनता ने उपेक्षित किया। उसकी सफलताओं एवं सुधारों से चमत्कृत जनता ने उसकी असफलता एवं राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का ह्रास होने पर उसकी स्वेच्छाचारी नीतियों का विरोध करना

आरम्भ कर दिया। बढ़ते हुए विरोध से शासन प्रणाली को अत्यधिक उदार बनाने पर भी जनता सन्तुष्ट न हो सकी तथा निरन्तर विरोध होता चला गया।

(2) **असफल विदेश नीति**—अधिकांश इतिहासकारों ने नेपोलियन तृतीय की दोषपूर्ण एवं असफल विदेश नीति को ही उसके पतन का प्रमुख कारण माना है। विदेश नीति की दुर्बलताओं के फलस्वरूप यूरोप के अनेक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र उसके विरोधी हो गए। **इटली को स्वतन्त्र कराने के लिए उसने जिन अपर्याप्त साधनों का आश्रय लिया, उससे कोई सन्तुष्ट नहीं था।** इटली के एकीकरण के प्रश्न को लेकर पोप के राज्य के लिए उत्पन्न संकट से पादरियों का विरोध भी नेपोलियन को स्वीकार करना पड़ा। नाइस एवं सेवाय पर अधिकार होने से इंग्लैण्ड से सम्बन्ध अच्छे न रहे। आस्ट्रिया एवं प्रशा उसके कार्यों से असन्तुष्ट थे। सार्डीनिया व पीडमाण्ट से मित्रता को लेकर आस्ट्रिया नेपोलियन III से असन्तुष्ट था। पोलों को सहायता का वचन देकर भी सहायता न देने से राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ। मैक्सिको अभियान में भी वह असफल रहा। इस प्रकार उसकी विदेश नीति से न केवल फ्रांस की प्रतिष्ठा को धक्का लगा अपितु यूरोप के सभी राष्ट्र उसके विरोधी हो गए तथा अन्त में प्रशा की शक्ति का सामना 1870 ई. में उसे अकेले ही करना पड़ा।

(3) **नेपोलियन तृतीय की व्यक्तिगत दुर्बलताएं**—नेपोलियन महान् जैसी प्रतिभा एवं गुणों से रहित होते हुए भी नेपोलियन तृतीय राज्य का संचालन करने के लिए नेपोलियन महान् के विचारों को आधार मानकर कल्पित योजनाएं बनाता था, जो कि अन्त तक अपूर्ण रहीं। इसी के कारण उसकी प्रतिष्ठा का ह्रास तथा फ्रांस में उसके विरुद्ध प्रचार आरम्भ हो गया। राष्ट्रपति बनने से पूर्व उसका अधिकांश जीवन फ्रांस से बाहर व्यतीत हुआ था। अतएव जनता की आकांक्षाओं एवं समस्याओं से वह पूर्णतया परिचित नहीं था। **प्रो. कैटलबी** ने उसकी अक्षमता के विषय में लिखा है, **''उसकी गृह नीति एवं विदेश नीति दोनों असम्बद्ध एवं अविश्वसनीय थीं और वह तत्कालीन समस्याओं को अप्रभावी उपायों द्वारा टालने का प्रयत्न करता था। उसकी महत्वाकांक्षाएं उसके हित एवं सिद्धान्त परस्पर विरोधी थे।''**[1] राजनीतिज्ञ के गुण, व्यक्तिगत साहस एवं दृढ़ निश्चय रहते हुए भी उसके प्रति लोगों में अनिश्चय की स्थिति बनी रहती थी। भाग्यवाद का समर्थक नेपोलियन आत्मविश्वास से रहित था। **थामसन** के शब्दों में, **''नेपोलियन नामधारी होते हुए और उसका अनुसरण करने का दावा करते हुए भी उसमें नेपोलियन महान् जैसे गुण नहीं थे।''**[2] नेपोलियन तृतीय धोखे व चालबाजी से काम लेता था, किन्तु अधिक समय तक यह नीति नहीं चल सकती थी। महत्वाकांक्षी होने के साथ ही मेहनती होना भी आवश्यक है। नेपोलियन III में इसका अभाव था। थियर्स ने नेपोलियन III के विषय में लिखा है, **''फ्रांस की जनता ने नेपोलियन III के सम्बन्ध में दो गलतियां कीं। पहली बार उन्होंने उसे मूर्ख समझा तथा दूसरी तब जब उन्होंने उसे अति योग्य समझा।''**[3]

1 "His policy both at home and abroad was inconsistent and unreliable, tending to peicemeal devices to stave off the immediate problem. His ambitions, his intrests and his principles conflicted and.......to Harmonize them within a dominating personality."

2 "He had undoubted talents, but he certainly, lacked the genius of Napoleon First." —*Thompson.*

3 "French made two mistake about Napoleon III, the first when they took him for a fool, the second when they took him for a man of genius." —*Thiers*

नेपोलियन तृतीय का चरित्र एवं इतिहास में उसका स्थान
(CHARACTER AND ESTIMATE OF NAPOLEON III)

नेपोलियन महान् युद्ध के प्रति आनन्द का अनुभव करने वाला तथा महत्वाकांक्षी था जबकि नेपोलियन तृतीय शान्तिप्रिय तथा प्रजा का शुभचिन्तक था। उसके विषय में कहा जाता है कि, **''वह घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ सैण्ट साइमन था।''** प्रजा की उन्नति तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास उसके प्रमुख उद्देश्य थे। फ्रांस में आन्तरिक शान्ति एवं सुव्यवस्था की स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसके गौरव में वृद्धि ये दोनों उद्देश्य उसकी परीक्षा की कसौटी थे। अतएव उसने दोहरी नीति का आश्रय लिया, परन्तु वह असफल रहा। वास्तव में नेपोलियन तृतीय में गुण-दोषों का सम्मिश्रण था। शासनकाल की आरम्भिक सफलता के साथ ही उसका पतन भी आरम्भ हो चुका था। अवसरवादी होने के कारण उसकी सहायता किसी ने नहीं की। संकट काल में उचित निर्णय की क्षमता का अभाव होने के कारण ही उसने बिना उचित सैन्य संगठन किए ही प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। नेपोलियन III विभिन्न योजनाएं बनाता था, किन्तु उन्हें पूरा करने का प्रयत्न नहीं करता था। इसी कारण उसके विषय में कहा ज़ाता है कि **''उसका व्यक्तित्व आकर्षित तो करता है, परन्तु प्रभावित नहीं करता।''**[1]

नेपोलियन तृतीय का यूरोप के इतिहास में विशेष स्थान है। नेपोलियन के नाम के लिए यूरोप की जनता में पर्याप्त आकर्षण था। यूरोप की राजनीति में सक्रिय भाग लेने के बाद भी उसे असफलता मिली, जिसके फलस्वरूप उसके साम्राज्य का पतन हो गया। नेपोलियन तृतीय के चरित्र व कार्यों के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद हैं। कुछ विद्वान उसे उदार एवं सुयोग्य सम्राट मानते हैं जबकि कतिपय विद्वान उसे पागल सम्राट मानते हैं। वास्तव में नेपोलियन तृतीय के स्थान का निर्धारण करना एक पहेली की भांति दुष्कर कार्य है। इसी कारण एडवर्ड्स ने उसके विषय में लिखा है, **''वह एक ऐसा अजीब व अन्धा प्राणी था जिसके शरीर का आधा भाग शेर का व आधा स्त्री का था।''**[2] हेज ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, **''तत्कालीन यूरोपीय राजनीतिज्ञों में नेपोलियन तृतीय सबसे महान् था। उसके चरित्र तथा साम्राज्य की कथा 19वीं शताब्दी के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।''**

प्रश्न

1. नेपोलियन III की गृह नीति का वर्णन कीजिए। **(गोरखपुर, 1987; पूर्वांचल, 1990)**
2. नेपोलियन III की गृह एवं वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
3. नेपोलियन तृतीय के कार्यों एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। **(गोरखपुर, 1991, 94)**
4. नेपोलियन तृतीय की वैदेशिक नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
5. नेपोलियन III के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए। **(पूर्वांचल, 1992)**
6. नेपोलियन III की विदेश नीति का परीक्षण कीजिए।
(गोरखपुर, 1989, 93, 95; लखनऊ, 1990, 93; पूर्वांचल, 1995)

---

1 "His personality attracts but never dominates."
2 "An eyeless sphinx—an enigmatic person—half lion and half woman."
—Edwards, *Notes on European History*, p. 243.

19

जार अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधार (1855 ई. से 1881 ई.)

[REFORMS OF TSAR ALEXANDER SECOND]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1855 ई. में रूस के जार निकोलस प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जार अलेक्जेण्डर द्वितीय रूस का सम्राट बना। निकोलस प्रथम उदारवाद विरोधी था, परन्तु अलेक्जेण्डर द्वितीय अनुदार एवं प्रतिक्रियावादी नीति के स्थान पर उदारवादी शासन की स्थापना का इच्छुक था।[1] एच. जी. वेल्स के अनुसार उसके चरित्र में दृढ़ता की कमी थी।[2]

अलेक्जेण्डर द्वितीय की उदारवादी प्रवृत्ति के कारण ही रूस के उदारवादियों को उसके राज्य सिंहासन पर बैठने से हर्ष की अनुभूति हुई थी। **जिस समय अलेक्जेण्डर द्वितीय गद्दी पर बैठा उस समय रूस की आन्तरिक स्थिति का वर्णन निम्नवत् है :**

अलेक्जेण्डर II के राज्यारोहण के समय रूस की आन्तरिक स्थिति
(CONDITION OF RUSSIA AT THE TIME OF ACCESSION OF ALEXANDER II)

नितान्त स्वेच्छाचारी निकोलस प्रथम के 30 वर्षों के शासन-काल में उसकी दमनकारी नीतियों के परिणामस्वरूप कुलीन वर्ग तक ही सीमित उदारवाद एवं सुधार के विचार अब मध्यमवर्गीय समुदाय में भी फैलने लगे। रूस में राष्ट्रीयता की भावना का प्रवेश हुआ। उस समय रूस का बुद्धिजीवी वर्ग द्विधा विभक्त था। **पहला वर्ग** पश्चिमी यूरोप के विचारों एवं संस्थाओं से जुड़ा होने के कारण पाश्चात्य-प्रेमी कहलाता था। यह वर्ग पश्चिमी यूरोप पर आधारित राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सुधार रूस में भी चाहता था। **दूसरा वर्ग** स्लाव सभ्यता के भक्तों का था, जो पश्चिमी यूरोप की व्यक्तिवादी एवं तर्क बुद्धिपरक सभ्यता को हानिकर समझते हुए प्राचीन संस्थाओं एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखने में ही रूस का कल्याण समझता था, परन्तु प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति का विरोधी यह दल जार निकोलस की निरंकुशता का विरोध करते हुए कृषि-दासों (Serfs) की मुक्ति का पक्षपाती था।

1 इसी कारण उसे 'जार द लिबरेटर' (Tsar the Liberater) कहा जाता था।

2 "His character was rather representative than Commanding."

क्रीमिया युद्ध को समाप्त करना—इस बीच क्रीमिया के युद्ध में रूस की पराजय ने सुधारवादियों को प्रोत्साहित किया। वस्तुतः 1856 ई. की पेरिस की सन्धि रूस के लिए अपमानजनक थी। अलेक्जेण्डर इस सन्धि पर हस्ताक्षर करते समय बहुत दुःखी था। **निःसन्देह क्रीमिया युद्ध में रूस की पराजय ने रूस की शासन-प्रणाली का खोखलापन सिद्ध कर दिया और सुधार आन्दोलनों को प्रोत्साहित किया।**[1] क्रीमिया युद्ध के पश्चात् रूसी जनता का अन्तर्निहित आक्रोश खुलकर सामने आया। समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध के कारण उदारवादियों ने हस्तलिखित पर्चों द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया। शासन के विरुद्ध व्यंग्य, भर्त्सना एवं निन्दा प्रकाशित होने से यह स्पष्ट हो गया कि जार अलेक्जेण्डर द्वितीय के राज्यारोहण के समय जनता का असन्तोष पर्याप्त मात्रा में बढ़ चुका था।

अलेक्जेण्डर II के आन्तरिक सुधार
(REFORMS OF ALEXANDER II)

उदारवादी विचारों के समर्थक अलेक्जेण्डर द्वितीय ने रूस की आन्तरिक परिस्थितियों तथा जन-असन्तोष को देखते हुए **देश के विकास हेतु निम्नलिखित सुधार किए :**

(1) निकोलस प्रथम के शासन काल में निकोलस प्रथम के विरुद्ध विद्रोह के कारण साइबेरिया डिकोब्रिस्टो (Deka-vrist exiles) को जार अलेक्जेण्डर ने मुक्त कर दिया।

(2) राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया।

(3) प्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा दिए गए।

(4) विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता तथा उनमें प्रत्येक वर्ग के छात्रों के प्रवेश की सुविधा दे दी गयी।

(5) विदेश यात्रा पर लगे प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए गए।

(6) **दास प्रथा का अन्त** (Emancipation of the serf, 1861)—1860 ई. में रूस की कुल जनसंख्या का $\frac{1}{2}$ भाग अर्थात् 4 करोड़ कृषि-दास थे। इनमें 2 करोड़ राजकीय परिवार के अधीन थे और शेष पर कुलीनों अथवा चर्च का अधिकार था। राजकीय भूमि पर कार्य करने वाले दासों की स्थिति जमींदारों के अधीन दासों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी।[2] रूस के सुधारकों का दावा था कि रूस की आधुनिक राष्ट्र के रूप में प्रगति तभी सम्भव है जबकि कृषि-दासों की मुक्ति होगी। कृषि-दासों में भी मुक्ति की अभिलाषा प्रबल होती जा रही थी। अतः जार अलेक्जेण्डर ने ऐसी परिस्थिति में दासों की मुक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया था।[3] उसने 1856 ई. में एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें सबके लिए समान, न्यायपूर्ण तथा

1 "For Russia the Crimean War marked the end of an epoch. It was evident the her vaunted greatness was a myth. The boasted splendour of regime orthodoxy, autocracy and Pan-slavism under Nicholas. I stood revealed as merely thirty years of grinding servitude in a national disaster."

2 "There were nearly forty five million serfs in Russia, twenty three millioin belonged to the crown, the rest of private lords, the church and other instituions. Those on the royal domain were far better of than those in private hands. The former suffered from heavy taxation, from forced labour from extortion and oppressive fiscal dues.......as was their right to acquire or dispose as property."
—Ketelbey : *A History of Modern Times*, p. 300.

3 "It was better to abolish serfdom from above than to wait until it begins to abolish itself from below."

अपने परिश्रम के फल का उपभोग करने वाले कानूनों की आवश्यकता पर बल दिया गया।[1] इस घोषणा से कृषि-दासता की समाप्ति की दिशा में होने वाले परिवर्तन का आभास मिलता है। 1857 ई. के अन्त में लिथुअनिया के तीन प्रान्तों के कुलीनों द्वारा कृषि-दासों की मुक्ति के सम्बन्ध में भेजे गए प्रस्तावों के आधार पर सम्राट ने 20 **नवम्बर, 1857 ई. के एक आदेश** (Rescript) **द्वारा लिथुआनिया** के कुलीनों के उदार दृष्टिकोण की सराहना की। 19 **फरवरी,** 1961 **ई. की राजाज्ञा** (Imperial Decree) द्वारा कृषि-दासता को समाप्त कर दिए जाने के बाद से **जार अलेक्जेण्डर द्वितीय को मुक्तिदाता जार** (Tsar the Liberator) के नाम से जाना जाने लगा। 4 **करोड़ कृषि-दासों को स्वतन्त्रता प्रदान करने वाली इस राजाज्ञा के सुधार निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित थे :**

(i) इस राजाज्ञा के अनुसार कृषि-दासों को एक स्वतन्त्र कृषक मानते हुए उन्हें उनके स्वामियों के बन्धनों से मुक्त कर नागरिक अधिकार प्रदान किए गए।

(ii) भूमिपतियों से भूमि लेकर नए कृषकों को देने की व्यवस्था हेतु विभिन्न क्षेत्रों में **शान्ति संस्थापक मंच** (Peace Mediators) स्थापित किए गए। इन शान्ति संस्थापक मंचों द्वारा यह निश्चित किया जाना था कि किस अनुपात में भूमि का बंटवारा भूमिपतियों व कृषकों से बीच में होगा।

(iii) कृषकों को दी जाने वाली भूमि उनके व्यक्तिगत स्वामित्व में नहीं बल्कि ग्राम समुदाय के अधिकार के अन्तर्गत थी।

(iv) कृषकों और ग्राम पंचायतों के पास भूमि की कीमत देने के साधन न होने के कारण शासन ने अपनी ओर से भूस्वामियों को उसकी हस्तान्तरित की जाने वाली भूमि का मूल्य दिया। इस मूल्य को 49 वर्षों में 6% ब्याज सहित ग्राम समुदाय द्वारा चुकाने की व्यवस्था की गई।

राजकीय जागीरों में नियुक्त कृषि-दासों को 1858 ई. में ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के कारण राजकीय भूमि का निश्चित भूभाग भी उन्हें 1866 ई. में प्राप्त हो गया। इस सुधार के पश्चात् रूस की समस्त कृषि योग्य भूमि का आधा भाग कृषकों के अधिकार क्षेत्र में हो जाने से उन्हें स्वतन्त्र आजीविका का साधन प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त भूमि का महत्व तथा कृषि के उत्पादन से दोनों क्षेत्रों में वृद्धि हो गयी। कृषकों की दशा अच्छी होने से समाज में उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया। बहुत-से कृषक मिलों व फैक्ट्रियों में काम करने लगे। अतएव अब रूस का बहुमुखी औद्योगिक विकास सम्भव हो गया।

दास प्रथा के दोष (Deffects)

जहां इस अधिनियम ने कृषि-दासों को मुक्ति प्रदान की, वहीं दूसरी ओर इसके दोषों से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इस अधिनियम के सन्दर्भ में एक रूसी किसान का कथन महत्वपूर्ण है कि **''मेरी दशा सुधर भी गई है और बिगड़ भी गई है।''** एक सामन्त के विचार में, **''पहले वे कोई हिसाब नहीं रखते थे और शराब भी उत्तम स्तर की नहीं पीते थे।''** वस्तुतः इस व्यवस्था के दोष निम्नवत् थे :

(i) कृषकों को स्थानान्तरित की गई भूमि इतनी अपर्याप्त थी कि उससे एक परिवार का भरण-पोषण भी सम्भव नहीं था।

1 **न्यू कैम्ब्रिज मार्डन हिस्ट्री,** जिल्द 10, पृ. 369।

(ii) कृषकों को भूमि का लगान, भूमि की कीमत की वार्षिक किश्त तथा नए करों की अदायगी करनी पड़ती थी।

(iii) यह व्यवस्था मात्र स्वामी परिवर्तन की थी। इस व्यवस्था से पूर्व किसान सामन्त के स्वामित्व में रहता था और अब ग्राम समुदाय के स्वामित्व में। **वास्तव में जार अलेक्जेण्डर ने मुक्ति आदेशों द्वारा कृषकों को सामन्तों की दासता से मुक्त कर राज्य के दासत्व में लाकर रख दिया।**'[1]

(iv) इस अधिनियम ने अभिजात वर्ग की स्थिति को सुदृढ़ कर दिया। कृषकों के लिए तो यह अधिनियम लाभ व हानि दोनों का सम्मिश्रण था।

(v) किश्तों का धन अधिक होने के कारण किसानों का किश्त दे पाना सम्भव न हो पाया।

(7) **न्याय व्यवस्था में सुधार** (Reforms in the Judicial System)—रूसी न्याय व्यवस्था भ्रष्टाचार, भेदभाव जैसे दोषों के कारण देश के लिए '**काला दाग**' बनी हुई थी।[2] कानूनों से अनभिज्ञ न्यायाधीश निष्पक्ष न्याय नहीं कर पाते थे। मुकदमे गुप्त रखे जाते थे और लम्बे समय तक चलते थे। कुल मिलाकर न्याय की पुरातन व्यवस्था पूर्णतः दूषित थी।[3]

अतः सन् 1858 ई. को न्याय सम्बन्धी सुधारों की योजना बनाने के उद्देश्य से जार अलेक्जेण्डर द्वितीय के विधि मन्त्रालय के उच्चाधिकारी की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। सन् 1862 ई. में इस आयोग द्वारा प्रस्तुत सुझावों के आधार पर जार द्वितीय ने इंग्लैण्ड एवं फ्रांस की न्याय प्रणाली पर आधारित सिद्धान्तों वाली एक उन्नत एवं नई न्याय प्रणाली लागू की, **जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थाएं थीं** :

(i) न्यायपालिका को स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए उस पर से कार्यपालिका के हस्तक्षेप को समाप्त कर दिया गया।

(ii) फौजदारी मुकदमों में जूरी (Jury) प्रथा लागू की गई।

(iii) न्यायाधीशों को स्वतन्त्र करने के साथ उन्हें पदच्युत करने का अधिकार केवल अदालतों को दे दिया।

(iv) नयी दण्ड संहिता (Penal Code) लागू करके दीवानी तथा फौजदारी कार्यविधि को सरल किया गया।

(v) ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे मुकदमों की सुनवाई का अधिकार Justice of Peace को दे दिया गया।

(vi) दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों के निर्णय हेतु प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय न्यायालय स्थापित किया गया। प्रान्तीय न्यायालय के ऊपर 10 उच्च न्यायालयों (Chamber of Justice) की स्थापना भी की गई।

(vii) प्रान्तीय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार एकमात्र सम्राट को दे दिया गया।

---

1 हेज, **ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन यूरोप**, जिल्द 2, पृ. 259.

2 The old courts were one of the darkest blots on prereform Russia.

—*Sergai Pushkaren.*

3 'About the best thing that could be said for the old system was that it was throughly corrupt."

—*Ault.*

प्रशिक्षित एवं योग्य न्यायाधीशों तथा शिक्षित जूरी (Jurise) के अभाव में प्रारम्भ में इन सुधारों से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, परन्तु शनैः-शनैः भ्रष्टाचार में कमी तथा न्यायप्रियता की भावना में वृद्धि हुई।

(8) **स्थानीय शासन सम्बन्धी सुधार** (Reforms related to Local Administration)—जिला एवं प्रान्तीय परिषदों के गठन एवं अधिकारों के सन्दर्भ में सन् 1861 **ई. में गृहमन्त्री वालुयेव की अध्यक्षता** में जिस आयोग का गठन किया गया था, उसकी रिपोर्ट के आधार पर जनवरी 1864 ई. में एक राजाज्ञा प्रकाशित की गई। इस राजाज्ञा के अनुसार 1864 ई. में रूस के यूरोपीय प्रान्तों में विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास के लिए कतिपय प्रशासनिक सुधार किए गए। प्रत्येक जिले एवं प्रान्त[1] में दो नयी प्रकार की स्थानीय परिषदों (Zemstvo) को स्थापित किया गया। ये परिषदें समाज के कृषक, कुलीन एवं व्यापारी इन तीन वर्गों का प्रतिनिधित्व करती थीं। **राजाज्ञा के अनुसार सड़कों एवं पुलों का जीर्णोद्वार करना, शिक्षा एवं सफाई की देखभाल एवं व्यवस्था करना, अकाल के समय व्यवस्था करना एवं स्थानीय झगड़ों का निपटारा करना** ये कार्य जिला एवं प्रान्तीय परिषदों के कार्य-क्षेत्र में दे दिए गए।

शासन द्वारा नियन्त्रित **परिषदों** (Zemstvo) के निर्णयों को वीटो करने या रद्द करने का अधिकार प्रान्तीय गवर्नरों को था। इन स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होते हुए भी कई प्रान्तों में उपयोगी एवं महत्वपूर्ण कार्य हुए। 1870 ई. में नगरों में **म्युनिसिपल काउन्सिल** (Gords Kayaduna) भी स्थापित किए गए।[2]

(9) **सेना सम्बन्धी सुधार** (Reforms in the Army)—1874 ई. में पारित एक कानून के द्वारा 20 वर्षीय नवयुवकों के लिए 6 वर्षीय सैनिक सेवा अनिवार्य घोषित कर दी गयी। सेना के विभिन्न विभागों के पुनर्गठन एवं सुधारों से रूसी सेना की युद्धक्षमता में उत्तरोत्तर अभूतपूर्व वृद्धि होती चली गयी।

(10) **शिक्षा सम्बन्धी एवं अन्य सुधार** (Educational and other Reforms)—उदारवादी जार अलेक्जेण्डर द्वितीय ने शैक्षिक क्षेत्र में कतिपय परिवर्तन किए। 1864 **ई. के एक अधिनियम द्वारा** सम्पूर्ण देश में विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों को **'प्राथमिक शालाएं'** खोलने की अनुमति प्रदान की गई। माध्यमिक स्कूलों के प्रबन्धन में भी सुधार किए गए। ज़ार निकोलस के समय विश्वविद्यालयों में लगे अनेक प्रतिबन्धों को 1863 **ई. के विश्वविद्यालय अधिनियम** के तहत समाप्त कर दिया गया। 1870 ई. के पश्चात् स्त्रियों को भी उच्च शिक्षा-प्राप्ति के अधिकार दिए गए।

समाचार-पत्रों सम्बन्धी प्रतिबन्ध के कठोर नियमों को उदार किया गया। रेलवे तथा विदेश यात्रा सम्बन्धी सुधारों में भी उदारता की नीति का परिचय दिया।

(11) **आर्थिक विकास** (Economic Development)—अलेक्जेण्डर द्वितीय के समय में आर्थिक विकास के क्षेत्र में रूस का शीघ्रता से औद्योगीकरण हुआ। मशीनों के प्रयोग तथा कारखानों की संख्या में वृद्धि हुई। प्रशासन में उद्योग एवं व्यापार के विकास को प्रोत्साहित

1 उस समय रूस में जिले को उयजेद (Uyezd) तथा प्रान्त को गवर्निया (Gubernia) कहा जाता था।

2 ह्यू सेटन-वाटसन (Hugh Setan-Watson), **दि डिक्लाइन ऑफ इम्पीरियल रशा**, पृ. 61।

करने के उद्देश्य से 1861 ई. में **बैंक ऑफ रशिया** (Bank of Russia) की स्थापना की। 1860 ई. से 1870 ई. के मध्य रूस का विदेशी व्यापार पर्याप्त मात्रा में बढ़ा। रेलों के विस्तार से व्यापार एवं उद्योगों के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई।

उपर्युक्त सुधारों ने अलेक्जेण्डर द्वितीय को **मुक्तिदाता जार** (Tsar the Leberator) के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। केटलबी ने जार अलेक्जेण्डर द्वारा किए गए सुधारों के विषय में लिखा है, "**इन सुधारों के द्वारा (विशेषकर सामन्त प्रथा सम्बन्धी एवं न्याय व प्रशासनिक सुधार) अलेक्जेण्डर द्वितीय ने पीटर महान् की भांति रूस की महान् सेवा की। सारे रूस में एक नवीन भावना की लहर दौड़ गई। नवीन आर्थिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक साहित्य की रचना हुई।**"[1] अब रूसी जनता प्रतिक्रियावाद की समाप्ति के प्रति आश्वस्त हो चुकी थी, परन्तु ये सुधार दीर्घकालिक सिद्ध न हो सके।

पुन: प्रतिक्रियावादी नीति की ओर
(AGAIN TOWARDS REACTION POLICY)

लगभग 10 वर्षों के अनन्तर 1865 ई. से अलेक्जेण्डर द्वितीय की सुधारवादी नीति में व्यापक परिवर्तन आरम्भ हुआ और शनैः-शनैः वह प्रतिक्रियावादी बन गया। **उसकी नीति में परिवर्तन के निम्नलिखित कारण थे :**

(1) 1863 **ई. का पोलैण्ड का विद्रोह** (Revolt in Poland)—1830 ई. के पोलैण्ड विद्रोह ने जार निकोलस को कठोर नीति अपनाने पर विवश कर दिया। यह नीति 1855 ई. अर्थात् उसकी मृत्युपर्यन्त यथावत् बनी रही, परन्तु अलेक्जेण्डर द्वितीय ने सम्राट बनने के पश्चात् उदारता की नीति अपनाते हुए पोलैण्ड के लोगों की सन्तुष्टि हेतु अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए। उसने राजनीतिक निर्वासितों को देश में पुनः वापस लिया। 1839 **ई. में निकोलस ने धर्म एवं शिक्षा पर लगाए प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया।** स्कूली शिक्षा का माध्यम पोलिश भाषा कर दी गई। पोलैण्ड प्रशासन को रूस के प्रशासन से पृथक् करते हुए सिविल प्रशासन का अधिकांश कार्य पोल लोगों के अधीन कर दिया। पोलैण्ड में राज्य परिषद् की स्थापना तथा रूस की भांति विभिन्न क्षेत्रों में जनता द्वारा निर्वाचित परिषदें स्थापित की गईं।

परन्तु मेरोस्लावस्की (Mieroslawaski) जैसे कट्टर राष्ट्रीयता के समर्थक सुधारों से सन्तुष्ट होते हुए रूस के शासन से किसी प्रकार का समझौता करने के पक्ष में नहीं थे। वे जार की सुधारवादी नीति को दुर्बलता का प्रतीक मानते थे। 1859-60 ई. में इटली के एकीकरण की सफलता से प्रोत्साहित होकर पोलैण्ड के राष्ट्रवादी नेता भी स्वतन्त्र पोलैण्ड की कल्पना करने लगे। 1772 ई. में रूस में सम्मिलित पोलैण्ड के हिस्से को पुनः पोलैण्ड में सम्मिलित करने की मांग करने लगे। अलेक्जेण्डर द्वारा मांगें अस्वीकृत किए जाने पर पोलैण्ड के राष्ट्रवादियों ने रूसी शासन के विरुद्ध विध्वंसात्मक कार्यवाही आरम्भ कर दी। विरोधियों को पकड़ने के उद्देश्य से जार के 1863 ई. में अनिवार्य सैनिक भर्ती अभियान से पोलैण्ड में विद्रोह बढ़ता गया। पोलैण्ड के राष्ट्रवादी नेता नेपोलियन III तथा प्रशा से सहयोग न प्राप्त होने पर अपने

1 "By these wide reforms, especialy of serfage and of judicial and local administration. Alexander II performed as great as service as Peter the Great in bringing Russia into line with western nations. A new spirit began to pervade Russia, a new literature of economics, philosophy and politics sprang up."
—Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 403.

सीमित साधनों से ही रूसी शक्ति का सामना करते हुए अन्त में 1864 ई. में पराजित हुए। जार ने पोलैण्ड का पूर्णरूपेण रूसीकरण कर दिया। विद्रोह के दमन के पश्चात् रूसी सरकार ने अत्यन्त कठोर नीति अपनाई। रूसी भाषा को राजभाषा घोषित करते हुए उसकी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। रोमन कैथालिकों के धार्मिक एवं विशेषाधिकार समाप्त करने के अतिरिक्त सभी महत्वपूर्ण पदों से पोल अधिकारी बहिष्कृत कर दिए गए। उनके स्थान पर रूसी अधिकारी नियुक्त किए गए। इस नीति से रूस की सरकार ने पोलैण्ड में राष्ट्रीयता की भावना को पंगु बना दिया। **प्रो. एलीसन फिलिप्स** के अनुसार, "**एक वर्ष तक सारे पोलैण्ड में भय और आतंक का राज्य बना रहा। एक ओर तो युद्ध का आतंक था और दूसरी ओर गुप्त राष्ट्रीय सरकार तथा रूस की दमनकारी कार्यवाही का आतंक था। विद्रोह के असफल हो जाने पर उन्हें यह ज्ञान हुआ कि वास्तव में उन्होंने विद्रोह करके बहुत बड़ी भूल की थी।**"[1]

(2) **निहिलिस्ट आन्दोलन या शून्यवाद** (Nihilist Movement)—प्रसिद्ध उपन्यासकार तुर्गनेव ने अपने उपन्यास 'फादर्स एण्ड सन्स' में शून्यवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। उपन्यास के पात्र वाजरोव के माध्यम से तुर्गनेव (Turgenev) ने निहिलिस्ट शब्द के अभिप्राय की अभिव्यञ्जना की। तुर्गनेव के अनुसार, **शून्यवाद किसी भी सत्ता के स्वामित्व को न तो स्वीकार करता है और न ही संसदीय शासन पद्धति अथवा जूरी द्वारा न्याय में विश्वास करता है। पवित्रता का सिद्धान्त स्वीकार नहीं है। उसकी तो प्रमुख समस्या मानव की रोटी है।**"[2] वास्तव में शून्यवादी व्यक्तिवादी थे। विध्वंस करके व्यवस्था स्थापित करना इनका परम लक्ष्य था। प्राचीनता के विरोधी होने के साथ ही ये जनता में जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। प्राचीन परम्पराओं, मान्यताओं, धर्म, विवाह, नैतिकता के ये प्रबल विरोधी थे। उनको यह विश्वास था कि आतंक का मुकाबला आतंक से ही होगा। उनके अनुसार, "**संगठित अन्याय** (Organized injustice) **पर आधारित शासन प्रणाली का जो कि संगीनों के जंगल के पीछे छुपी हुई है, अन्त करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने की छूट है।**"[3] दार्शनिक एवं साहित्यिक स्वरूप वाला यह शून्यवाद वस्तुतः शिक्षित व्यक्तियों का आन्दोलन था। विश्वविद्यालय के कतिपय नवयुवक इसके प्रति आकृष्ट होकर प्रचार करने लगे। प्रारम्भ में निहिलिस्टों के शान्तिपूर्ण कार्यों के कारण जार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, परन्तु 1870 ई. से 1875 ई. तक श्रमिकों के मध्य हुए प्रचार के परिणामस्वरूप शून्यवादियों के प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि हुई। वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए जार ने उनके प्रति दमनात्मक नीति अपनाई। दमनात्मक नीति के अन्तर्गत शून्यवादियों की धरपकड़ तथा कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गयी। 1874 तक लगभग 1,50,000 व्यक्तियों को बिना किसी अभियोग के राजनीतिक अपराधों के कारण साइबेरिया में निर्वासित कर दिया गया। 1878-79 में पीटर्सबर्ग में 2,000 व्यक्तियों को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया। सरकार की दमनकारी नीति से शून्यवाद आतंकवाद (Terroristic) में परिवर्तित हो गया, '**जनता के बीच जाओ**' (Among the People) **का नारा अब हमें कुछ (हत्या करना है)** (Let us act) **में परिवर्तित हो गया।** यद्यपि 1876 के कुछ उग्र प्रदर्शनों

1 एलीसन फिलिप्स, **पोलैण्ड**, अध्याय 10।

2 **"The fundamental principle of Nihilism was abosulute individualism. It was the negation, in the name of individual liberty, of all the obligations imposed upon the individual by society, by family life and by religion."** —*Turgenev.*

3 लिप्सन, **'यूरोप इन दि नाइनटीन्थ एण्ड ट्वेन्टिएथ सेंचुरीज़'**, पृ. 101।

को सरकार ने कठोरता से दबा दिया, परन्तु इसके बाद शून्यवादियों ने पुलिस अधिकारियों, प्रान्तीय गवर्नरों एवं उच्चाधिकारियों की हत्या आरम्भ कर दी। 1879 ई. में हारकोव प्रान्त के गवर्नर की हत्या तथा जार पर 5 बार गोलियां चलाई गईं। सम्राट की स्पेशल ट्रेन को बारूद से नष्ट करने तथा 1880 ई. में विण्टर पैलेस के ऊपर बम फेंकने जैसे घृणित कार्य भी किए गए, परन्तु जार सौभाग्यवश सुरक्षित रहा।

अत: सरकार का दमन चक्र और अधिक तीव्र हो गया, परन्तु निहिलिस्टों की गतिविधियां पूर्ववत् बनी रहीं। अन्ततः जार ने विवशता में समझौतावादी नीति का अनुसरण करते हुए जनरल लारिस मेलिकाव (Loris Melikov) को समस्त अधिकार प्रदान कर इस समस्या के समाधान का उत्तरदायित्व सौंप दिया।

(3) **समाजवाद** (Socialism)—आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता के पक्षधर समाजवादियों का प्रादुर्भाव रूस में 1870 ई. के पश्चात् हुआ। इनका प्रमुख केन्द्र ज्यूरिख में था। लेवरोख समाजवादियों का नेता था। समाजवादियों का विचार था कि कृषक वर्ग भूख एवं श्रम से दु:खी है तथा सम्भ्रान्त वर्ग के नियन्त्रण में है।

(4) **अलेक्जेण्डर के सुधार लाभकारी सिद्ध नहीं हुए** (Alexander's reforms did not prove fruitful)—सैद्धान्तिक रूप से आकर्षक प्रतीत होते हुए भी अलेक्जेण्डर के सुधार व्यावहारिक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध न हुए। कतिपय इतिहासकारों ने उसे उदारवादी न स्वीकार करते हुए उसके द्वारा किए गए उदारतापूर्ण सुधारों को तात्कालिक आवश्यकता बताया। अपने निर्णय पर दृढ़ न रहने वाले अलेक्जेण्डर के सलाहकार प्रतिक्रियावादी थे। कुछ समय शान्त रहने के पश्चात् शासन के प्रति बढ़ते असन्तोष के कारण प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव सम्राट पर अपेक्षाकृत अधिक दृष्टिगोचर होने लगा।[1] कृषि दासता की समाप्ति के पश्चात् भी कृषकों की आर्थिक स्थिति अपरिवर्तित रही। वे एक परतन्त्रता से मुक्त होकर दूसरी परतन्त्रता के अधीन हो गए। न्याय व्यवस्था में आशानुरूप सफलता न प्राप्त होने से तथा अपेक्षित आशाएं न पूर्ण होने पर जनता में सम्राट के प्रति नैराश्य की स्थिति उत्पन्न हो गई।

(5) **अलेक्जेण्डर का भ्रम** (Misunderstanding of Alexander)—अलेक्जेण्डर का भ्रम यह था कि जनता को अपेक्षा से अधिक सुविधाएं देकर सम्राट की निरंकुशता की छवि को कम किया जा सकता है।

(6) **पान-स्लाव आन्दोलन** (Pan-Slave Movement)—स्लाव जाति में जागृति उत्पन्न करके उन्हें एक शासन के अन्तर्गत संगठित करने के उद्देश्य से रूस में पान-स्लाव का आन्दोलन आरम्भ हो गया। रूस की प्रमुख जाति स्लाव की स्थिति कतिपय प्रदेशों में शोचनीय थी। पान-स्लाव का आन्दोलन ही तुर्की एवं रूस के मध्य युद्ध का एक प्रमुख कारण था।

विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप लिए गए तात्कालिक निर्णयों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अलेक्जेण्डर प्रतिक्रियावादी हो गया। राजनीतिक अपराध हेतु विशेष प्रकार की अदालतें, छोटे अपराधों के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था, उच्च शिक्षा प्राप्त विश्वविद्यालयीय छात्रों का सेवा से निष्कासन, प्रेस की स्वतन्त्रता का परिसीमन, मिल, स्पेन्सर आदि विचारकों के ग्रन्थों का रूस में प्रवेश वर्जित करना आदि कार्य उपरोक्त वक्तव्य के स्पष्ट प्रमाण हैं।

1 **लिप्सन, यूरोप इन दि नाइनटीन्थ एण्ड ट्वण्टिएथ सेंचुरीज,** पृ. 100।

अलेक्जेण्डर II की हत्या एवं उसके शासन काल का अन्त
(MURDER OF ALEXANDER II AND END OF HIS RULE)

अलेक्जेण्डर II के शासन के उत्तरार्द्ध काल में पूर्व जार सम्राटों के शासन काल की समस्त बुराइयों के आ जाने से साम्राज्य में भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई। शिक्षित वर्ग अपने विरोध के कारण आतंकवादी एवं शासक वर्ग प्रतिक्रियावादी हो गया। **विद्रोहों के दमन हेतु जार ने रूस के प्रत्येक भाग में 'Land and Liberty' नामक संस्था स्थापित की, जिसका प्रमुख कार्य क्रान्ति की भावनाओं का दमन करना था।** इस संस्था द्वारा उल्लेखनीय सफलता अर्जित न करने पर क्रान्तिकारियों ने हत्या करनी आरम्भ कर दी। स्वयं सम्राट की हत्या के लिए 5 बार प्रयास किए गए। इसी सन्दर्भ में स्पेशन ट्रेन को बारूद से उड़ाने का तथा उसके सेण्ट पीटर्सबर्ग के डाइनिंग रूम की छत उड़ाने का असफल प्रयास किया गया। अन्त में 13 मार्च, 1881 ई. को एक शून्यवादी ने अलेक्जेण्डर द्वितीय पर उस समय हमला किया जब वह भ्रमण के पश्चात् घर वापस आ रहा था। इस हमले में अलेक्जेण्डर के अंगरक्षक दिवंगत हो गए। इन अंगरक्षकों को देखते समय एक दूसरे बम द्वारा अलेक्जेण्डर द्वितीय बुरी तरह घायल हो गया और कालान्तर में उसकी मृत्यु हो गई। **इस प्रकार 'मुक्तिदाता जार एवं उसके उदार शासन का करुण अन्त हो गया, जिसका आरम्भ आशापूर्ण वातावरण में हुआ था।'[1] उसकी मृत्यु के साथ ही रूस में उदारता की नीति का अन्त हो गया।[2]**

जार अलेक्जेण्डर II का मूल्यांकन करते हुए केटलबी ने लिखा है, "**उसे अपने देश से अनुराग था। वह उसके अपमान को सहन नहीं कर सकता था। उसे अपने उत्तरदायित्व का भी ध्यान था। वह केवल सिद्धान्तवादी ही नहीं था अपितु वह एक क्रियाशील व्यक्ति था। वह किसी विशिष्ट नीति से चिपका न रहा और न ही उसने लम्बे-चौड़े सुधारों की घोषणा की। वह नए युग की नब्ज को पहचानता था तथा नवीनीकरण के अनुसार उसने सुधार किए। उसने शाही अधिकारों की भी रक्षा की।**"[3]

प्रश्न

1. जार अलेक्जेण्डर II के द्वारा प्रारम्भ किए गए सुधार आन्दोलनों का वर्णन कीजिए। **(पूर्वांचल, 1993)**
2. जार अलेक्जेण्डर II की गृह नीति का उल्लेख कीजिए।
3. जार अलेक्जेण्डर II द्वारा किए गए सुधारों का वर्णन कीजिए। **(लखनऊ, 1991, 94)**
4. जार अलेक्जेण्डर II द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
5. जार अलेक्जेण्डर II की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। **(गोरखपुर, 1987, 91)**
6. जार अलेक्जेण्डर II का एक प्रशासक के रूप में मूल्यांकन कीजिए। **(गोरखपुर, 1994)**

1 "Thus perished the Tsar Liberator. At the same time the hopes of the liberals perished also." —*Hazen.*

2 "His assassination put an end of the movement of conciliation." —Ketelbey, *op. cit.*, p. 310.

3 "He was a great lover of Russia, deeply sensitive in her humiliation and conscious of his own responsibility. He was not doctrinaire or theorist..... He committed himself to no policy, announced no lofty programmes of social amelioration. He felt the new spirit of the age and responded to the dictates of a generous humanity....... He carefully guarded the royal prerogatives and obstinately refused to go further than he wished." —Ketelbey, *op. cit.*, p. 279.

20

सशस्त्र क्रान्ति का युग (1871 ई. से 1914 ई.)

[THE AGE OF ARMED PEACE]

भूमिका
(INTRODUCTION)

वर्ष 1871 ई. का यूरोपीय राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। फ्रांस एवं प्रशा के युद्ध यूरोप की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन के कारक रहे। राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण तथा इटली एवं जर्मनी की राष्ट्रीय एकता की स्थापना के साथ ही ऐतिहासिक विकास की एक लम्बी प्रक्रिया समाप्त हो गई। 1871 ई. से 1914 ई. के मध्य बाल्कान युद्धों के अतिरिक्त यूरोप के किसी भूभाग में कोई युद्ध नहीं हुआ, परन्तु 1871 ई. से 1914 ई. के मध्य यूरोप के शक्तिशाली देशों के मध्य जो अनेक सन्धियां एवं समझौते हुए, उन्होंने विभिन्न देशों में पारस्परिक तनाव को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। **1914 ई. तक आते-आते यूरोप दो गुटों में विभक्त हो गया, जिसने विश्व-इतिहास को प्रभावित किया। यही कारण है कि 1871 ई. से 1914 ई. तक का यूरोप का इतिहास विश्व-इतिहास बन गया। 1871 ई. से 1914 ई. तक यूरोप के विभिन्न देशों के मध्य होने वाली सन्धियों एवं समझौतों की संक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत् है।**

तीन सम्राटों का संघ
(THREE EMPEROR'S LEAGUE OR DREIKAISERBUND)

सन् 1870 ई. में जर्मनी ने बिस्मार्क के नेतृत्व में सेडोवा के युद्ध में फ्रांस को पराजित कर उसके ऊपर क्षति-पूर्ति का दावा पेश किया एवं अल्सेस तथा लारेन के महत्वपूर्ण क्षेत्र भी स्वहस्तगत कर लिए। ऐसी स्थिति में फ्रांस द्वारा जर्मन के विरुद्ध प्रतिशोधात्मक युद्ध की आशंका करते हुए बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य फ्रांस को यूरोपीय राजनीति में एकाकी रखना था। आस्ट्रिया, जर्मनी, रूस, फ्रांस एवं इंग्लैण्ड इन पांच देशों को महाशक्ति मानते हुए किन्हीं तीन को सदैव एक साथ रखना उसके उद्देश्य की पूर्ति का साधन था। अपने ये विचार उसने सेब्रोक नामक रूसी राजदूत के सम्मुख रखे थे, "..........**कोई भी अल्पसंख्या में नहीं रहना चाहता...........तीन शक्तियों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा कीजिए क्योंकि संसार में पांच शक्तियां प्रभुत्व सम्पन्न हैं।**"[1] अपने साधन के इसी क्रम में 1872 ई. में बिस्मार्क ने रूस एवं

1 You forget the importance of being a party of three on the European chess-board....nobody wishes to be in minority....try to be trais in a world governed by five powers." —*Bismarck*

आस्ट्रिया के साथ एक समझौता किया। विधिपूर्वक न होते हुए भी इस समझौते को तीन देशों (जर्मनी, आस्ट्रिया एवं रूस) ने एक पवित्र सन्धि की भांति स्वीकार किया। उसकी इस सफलता के सन्दर्भ में सम्राट विलियम ने कहा था, **''वह एक ऐसा जादूगर है जो पांच गेंदों से खेलता है और उनमें से किसी को नीचे नहीं गिरने देता है।''**

त्रिसम्राट गुट के उद्देश्य
(AIMS OF THE LEAGUE)

त्रिसम्राट गुट के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(1) सन् 1871 ई. में फ्रांस को प्रदत्त प्रादेशिक सीमाओं की रक्षा करना।

(2) पूर्वी समस्या से सम्बद्ध किसी भी समस्या पर तीनों देश सम्मिलित निर्णय लेंगे।

(3) राजतन्त्रवादी देश होने के कारण राजतन्त्र की प्रतिष्ठा की रक्षा तथा समाजवाद का दमन तीनों देशों का मुख्य उद्देश्य था।

1872 ई. से 1878 ई. तक अच्छी तरह चलते हुए त्रिगुट को बर्लिन की सन्धि (1878 ई.) से गहरा आघात लगा। बर्लिन सम्मेलन में बिस्मार्क ने रूस का साथ न देते हुए आस्ट्रिया का पक्ष लिया। अतः रूस का रुष्ट होना स्वाभाविक था। रूस ने इस अवसर पर कहा था, **'यदि जर्मनी को सौ वर्षों की मित्रता को बनाए रखना है तो उसे अपनी नीति में परिवर्तन करना होगा।''**[1] 1881 ई. तक रूस जर्मनी का शत्रु बना रहा, परन्तु इन तीन वर्षों में बिस्मार्क ने रूस के प्रति अत्यन्त विनम्र व्यवहार करते हुए बल्गेरिया संकट के समय आस्ट्रिया का साथ न देकर रूस का साथ दिया। बिस्मार्क ने इस अवसर पर कहा था, **''बल्गेरिया में मैंने एक रूसी की भांति कार्य किया है।''**[2]

इस प्रकार परस्पर विरोधी रूस एवं आस्ट्रिया दोनों के साथ सन्धि बिस्मार्क की कूटनीति की परिचायक थी। **यद्यपि 1884 ई. में इस सन्धि को पुनर्जीवित किया गया, परन्तु 1887 ई. में निम्नलिखित कारणों से यह सन्धि टूट गई—**

(क) आस्ट्रिया का मित्र एवं हितैषी होने के कारण जर्मनी की पूर्वी समस्या के प्रति रुचि स्वाभाविक थी, परन्तु दूसरे मित्र रूस के हित पूर्वी समस्या में आस्ट्रिया से टकराते थे। जर्मनी द्वारा निरन्तर आस्ट्रिया की सहायता करते रहने से रूस का रुष्ट होना स्वाभाविक था।

(ख) संरक्षण की नीति के समर्थक बिस्मार्क द्वारा विदेशी माल पर भारी टैक्स लगा देने से अत्यन्त महंगा माल जर्मनी में नहीं बिक पाता था। रूस से आयातित अन्न की भी यही स्थिति थी। अतः रूस, जर्मनी का न केवल राजनीतिक अपितु आर्थिक दृष्टि से भी विरोधी हो गया।

(ग) फ्रांस में बूलांजे के उदय से फ्रांस एवं जर्मनी के बीच प्रतिशोधात्मक युद्ध की सम्भावना प्रतीत होने लगी। ऐसे अवसर पर बिस्मार्क ने रूस का दृष्टिकोण जानना चाहा। **''रूस ने स्पष्ट घोषित किया कि रूस पूर्व में हुए तीनों युद्धों में तटस्थ रहा था, परन्तु इस बार**

1. "If Germany wished the friendship of a hundred years to continue, she alter her ways." —*Bismarck*
2. "In Bulgaria I am a Russian."

वह अपना हित देखेगा, ऐसा इसलिए क्योंकि आस्ट्रिया का सम्राट फ्रांसिस जोसेफ जर्मनी का मित्र है।"[1]

उपर्युक्त प्रबल मतभेदों के फलस्वरूप तीन सम्राटों का गुट समाप्त हो गया, परन्तु बिस्मार्क ने रूस के साथ रहते हुए उसे आश्वस्त किया कि जर्मनी आस्ट्रिया का मित्र होते हुए भी रूस से विरोध का इच्छुक नहीं है।

अत: 1887 ई. में बिस्मार्क ने रूस से पुनराश्वासन सन्धि (Re-Insurance Treaty) करते हुए इसे **नयी बोतलों में पुरानी शराब** (Old wine in new bottles) बतलाया। **इस सन्धि के प्रमुख निर्णय निम्नवत् हैं—**

(1) इस सन्धि की अवधि तीन वर्ष निश्चित की गई।

(2) तीन राष्ट्रों (आस्ट्रिया, रूस एवं जर्मनी) के एकमत होने पर ही टर्की साम्राज्य के सन्दर्भ में कोई निर्णय लिया जाएगा।

(3) बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया के हितों को रूस ने स्वीकार कर लिया।

(4) इन तीनों राष्ट्रों (आस्ट्रिया, जर्मनी एवं रूस) के साथ किसी चौथे राष्ट्र के युद्ध होने पर शेष राज्य एक-दूसरे राष्ट्र के हितों का ध्यान रखते हुए तटस्थता की नीति का पालन करेंगे।

(5) टर्की द्वारा वास्फोरस तथा डार्डेनेलीज के जल अन्तरीपों को युद्ध काल में खोले जाने का विरोध तीनों राष्ट्र (आस्ट्रिया, जर्मनी एवं रूस) एकमत होकर करेंगे।

इस सन्धि ने जहां एक ओर आस्ट्रिया तथा रूस के मध्य होने वाली युद्ध की सम्भावनाओं को टाल दियां, वहीं दूसरी ओर फ्रांस को यूरोप में मित्रहीन बनाए रखा।

द्विराष्ट्र सन्धि (1879)
(DUAL ALLIANCE 1879)

1878 ई. में सम्पन्न हुई बर्लिन की कांग्रेस के पश्चात् पूर्वी समस्या के कारण रूस तथा आस्ट्रिया के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न हो गई। इस अवसर पर आस्ट्रिया का साथ देने से जर्मनी रूस के प्रति सशंकित था। अत: इस संकट से अपने को सुरक्षित करते हुए बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ द्विराष्ट्र सन्धि स्थापित की। 7 **अक्टूबर, 1879 ई. को हस्ताक्षरित इस सन्धि की शर्तें निम्नवत् थीं—**

(1) सन्धि की प्रस्तावना में शान्ति स्थापना को प्रमुखता दी गयी।

(2) 5 वर्ष के लिए की गई यह सन्धि आवश्यकतानुसार दोनों राष्ट्रों की सहमति से 3 वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकती है।

(3) दोनों में से किसी एक पर रूस के आक्रमण होने पर एक देश अपने मित्र देश की सहायता करेगा।

(4) यदि रूस की सहायता पाकर कोई अन्य देश इन दोनों में से किसी एक पर आक्रमण करेगा तो मित्र देश सहायता करेगा। रूस की तटस्थता की स्थिति में दूसरा मित्र देश तटस्थ रहेगा।

---

1 "Russia was neutral in three wars, though it would have been plain interests to a abandon neutrality. Today Russia must consult her own interests in a greater degree and cannot certainly aid Prussia, who is, besides the ally of Emperor Francis Josheph."

स्पष्ट है कि दोनों देशों ने रूस की शत्रुता के कारण विशेष रूप से यह सन्धि रूस के विरुद्ध की थी।

सन्धि का प्रभाव

(1) 1888 ई. तक यह सन्धि गुप्त रही। यद्यपि 3 वर्ष के पश्चात् 1881 ई. में इटली भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गया था, परन्तु सन्धि के गुप्त निर्णयों से वह भी अनभिज्ञ था। यूरोप के अन्य देशों को भी सन्धि का मात्र सामान्य ज्ञान होने से जर्मनी के प्रति शंका स्वाभाविक थी।

(2) इस सन्धि के पूर्व यूरोपीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन के केन्द्र बने रूस तथा फ्रांस अब नगण्य हो गए, इसके विपरीत जर्मनी की शक्ति में वृद्धि हो गई।

(3) इस सन्धि के पश्चात् रूस स्वयं को एकाकी समझने लगा। गूच महोदय के अनुसार, **"सेन स्टेफेनो की सन्धि के समय रूस ने आस्ट्रिया को खो दिया और इस समय उसने जर्मनी को खो दिया।"**[1]

(4) इस सन्धि के पश्चात् यूरोपीय राजनीति में गुटबन्दी का युग एवं सन्धि-प्रतिसन्धि की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी। कालान्तर में इस सन्धि में इटली भी सम्मिलित हो गया। दूसरी ओर रूस, इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की मित्रता होने से यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया। बिस्मार्क के रूस के विरुद्ध कोई योजना न बनाने से बिस्मार्क के सत्ता में बने रहने तक ये सन्धियां सुरक्षात्मक रहीं। फ्रांस तथा इटली के सम्बन्ध में यह सन्धि पूर्णतः मौन थी।

(5) इस सन्धि में बिस्मार्क ने अपनी कूटनीतिक क्षमता का परिचय देते हुए 1866 ई. में सेडोवा युद्ध में पराजित देश को 1879 में अपना प्रमुख समर्थक बना दिया। इस सन्धि के अवसर पर बिस्मार्क ने कहा था, **"यह मेरे लिए 1866 ई. के कार्यों की पूर्ति है।"**[2]

(6) पूर्वी समस्या के सन्दर्भ में आस्ट्रिया को स्वेच्छा से कार्य करने का लाभ मिला।

(7) इस सन्धि ने तीन सम्राटों के संघ को शिथिल कर दिया, परन्तु 1887 ई. तक बिस्मार्क तीन सम्राटों के संघ को यथावत् चलाता रहा।

इस प्रकार इस सन्धि से जर्मनी को अत्यधिक लाभ हुआ। **फे** ने लिखा है, **"यूरोप में उसकी इज्जत तथा जर्मनी में उसकी लोकप्रियता के दृष्टिकोण से बिस्मार्क ने कभी भी ऐसी उपलब्धि प्राप्त नहीं की थी जैसी कि आस्ट्रो-जर्मन संघ से।"**[3]

त्रिराष्ट्र सन्धि (1882 ई.)
(TRIPLE ALLIANCE)

1879 ई. में द्विराष्ट्र सन्धि के पश्चात् बिस्मार्क इटली के दृष्टिकोण का अध्ययन करते हुए उसे भी इस सन्धि में सम्मिलित करने के अवसर की प्रतीक्षा में था। 1881 ई. में ट्यूनिश के प्रश्न पर इटली और फ्रांस के विरोध को देखकर बिस्मार्क ने कूटनीतिक रूप से अपने शत्रु फ्रांस को ट्यूनिश पर अधिकार करने हेतु प्रोत्साहित किया।[4] फलतः फ्रांस ने ट्यूनिश

1 "Russia lost Austria after San-Stefano and now she has lost Germany." —*Gooch.*

2 "It is the completion of my work of 1866." —*Bismarck*

3 "From the point of view of the prestige in Europe and of his popularity in Germany, Bismarck has never accomplished a work so considerable as that of the alliance with Austria." —Fay, *The Origin of the World War*, p. 69.

4 "He encourage France to pluck the ripe Tunisian fruit." —Fay, *op. cit.*,

पर अधिकार कर लिया। इटली एवं फ्रांस में शत्रुता होने के कारण भी बिस्मार्क अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित था। 1882 ई. में इटली के सम्राट विक्टर इमानुएल ने विएना यात्रा के अवसर पर द्विराष्ट्र सन्धि में सम्मिलित होने की अपनी अभिलाषा प्रकट की।[1] बिस्मार्क ने इटली को इस समय यह स्पष्ट कर दिया कि आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए बिना यह सम्भव न था। बिस्मार्क ने कहा, **"बर्लिन की ओर खुलने वाले दरवाजे की ताली विएना में है।"**[2] परिणामस्वरूप 20 मई, 1882 ई. को इटली को भी द्विराष्ट्र सन्धि में सम्मिलित कर लिए जाने से यही सन्धि अब त्रिराष्ट्र सन्धि बन गई। **इसके निर्णय निम्नलिखित थे—**

(1) पांचवर्षीय यह गुप्त सन्धि तीनों देशों की सहमति से 3 वर्ष हेतु पुनः बढ़ाई जा सकेगी।

(2) फ्रांस द्वारा इटली पर आक्रमण होने पर इटली, जर्मनी की सहायता करेगा।

(3) रूस द्वारा जर्मनी या आस्ट्रिया पर आक्रमण की स्थिति में इटली तटस्थ रहेगा, किन्तु रूस द्वारा अन्य किसी देश की सहायता से आक्रमण करने की स्थिति में इटली जर्मनी तथा आस्ट्रिया की सहायता करेगा। इटली के अनुरोध पर यह सन्धि इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में लागू नहीं मानी गयी।

इटली ने यह सन्धि कर तो ली, परन्तु इस सन्धि का पालन सच्चे अर्थों में सम्भव न था। एक इतिहासकार ने सत्य ही लिखा है, **"यद्यपि हम लोगों ने इस सन्धि को स्वीकार कर लिया है, परन्तु सच्चे अर्थों में किसी को भी इससे प्रेम नहीं है। महायुद्ध छिड़ने पर यह सन्धि स्वतः समाप्त हो जाएगी।"** उक्त कथन की सत्यता 1915 ई. में इटली द्वारा मित्रराष्ट्रों से लन्दन की सन्धि में देखी जा सकती है।

फ्रांस तथा रूस की द्विवर्गीय सन्धि 1893 ई.
(DUAL ALLIANCE BETWEEN FRANCE AND RUSSIA)

त्रिराष्ट्र सन्धि के विरोध में 31 दिसम्बर, 1893 ई. में फ्रांस एवं रूस के मध्य द्विवर्गीय सन्धि हुई। यद्यपि फ्रांस रूस के साथ इस प्रकार की सन्धि के लिए 1870 ई. से ही इच्छुक था, किन्तु कतिपय कारणों ने उसके एकाकीपन को बनाए रखा। **प्रथम** बिस्मार्क ने सत्ता में बने रहने तक सभी देशों को प्रलोभन देकर अपने पक्ष में बनाए रखा था। **द्वितीय** फ्रांस एवं रूस की मैत्री पारस्परिक व्यवस्था भेद के कारण सम्भव नहीं थी। फ्रांस प्रजातन्त्रात्मक राज्य था जबकि रूस राजतन्त्रात्मक। रूस इस बात से अत्यन्त भयभीत था कि यदि फ्रांस से मैत्री स्थापित की गई तो फ्रांस की क्रान्ति के बीज रूस में भी प्रवेश कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में रूसी विदेशमन्त्री कैटगाफ ने कहा था, **"मैं फ्रांस से घृणा करता हूं क्योंकि वह (फ्रांस) क्रान्तिकारी विचारों का अड्डा है।"**[3]

परन्तु 1893 ई. के लगभग अग्रलिखित विषम परिस्थितियों के कारण **दोनों देशों को पारस्परिक सन्धि करनी पड़ी—**

1 "It was not with Bismarck that the Triple Alliance was born but with Italy." —*Ibid*

2 The key of door which leads of Berlin is in Vienna."
—Gooch, *History of Modern Europe*, p. 56.

3 "I hate France for she ... is a school of revolutionary propaganda."

1. 1887 ई. में फ्रांस में बूलांजे के उदय से जर्मनी तथा फ्रांस के मध्य युद्ध की सम्भावनाएं प्रबल हो गई थीं, ऐसी परिस्थिति में रूस ने जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस को सहायता देने का वचन दिया था।

2. 1889 ई. में रूस के ग्रांड ड्यूक की पेरिस यात्रा पर उसका अविस्मरणीय स्वागत किया गया।

3. 1889 ई. में फ्रांस ने रूसी सम्राट के अनुरोध पर अपने इंजीनियरों को रूस भेजकर नवीन तकनीक वाली 5 लाख राइफलों का निर्माण कराया। इस सन्दर्भ में रूस ने प्रतिज्ञा की कि वह उसका प्रयोग फ्रांस के विरुद्ध नहीं करेगा।

4. 1888-89 ई. में रूस के द्वारा ऋण की मांग करने पर जर्मनी द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने के बाद फ्रांस ने रूस को ऋण दिया।

5. सन् 1890 ई. **में बिस्मार्क के त्यागपत्र देने के बाद नया चांसलर कैप्रिवी इंग्लैण्ड से मैत्री-पूर्ण सम्बन्धों की स्थापना का इच्छुक था। अतः पुनराश्वासन सन्धि के प्रति यह उदासीन रहा। सन् 1890 से 1914 ई. तक यद्यपि कोई विशाल युद्ध (बाल्कान के अतिरिक्त) नहीं हुआ तथापि पुराने शत्रु आपस में मित्र तथा मित्र शत्रु हो रहे थे। इटली अपने मित्र आस्ट्रिया तथा जर्मनी से विमुख होकर इंग्लैण्ड तथा रूस के प्रति आकृष्ट हो रहा था तो रूस भी अपनी पृथकत्व की नीति का त्याग कर रहा था।**

अतः 31 दिसम्बर, 1893 ई. को रूस व फ्रांस के मध्य द्विवर्गीय सन्धि हुई **जिसके निर्णय निम्नवत् थे—**

1. यह गुप्त सन्धि होगी, जो त्रिराष्ट्र सन्धि के चलते रहने तक चलेगी।

2. फ्रांस पर जर्मनी अथवा आस्ट्रिया का आक्रमण होने पर रूस फ्रांस की तथा रूस पर जर्मनी अथवा आस्ट्रिया का आक्रमण होने पर फ्रांस पूर्ण सैन्य बल के साथ रूस की सहायता करेगा।

इस सन्धि से फ्रांस को होने वाले लाभ के विषय में एक प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान ने कहा है कि '**पिछली पराजयों से नष्ट हुई फ्रांस की प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना हुई है। इससे पूर्व यूरोप की राजनीति में फ्रांस मात्र दर्शक था, परन्तु इस कूटनीतिक सम्बन्ध से फ्रांस का एकाकीपन समाप्त हो गया है।**''

रूस भी इस सन्धि से लाभान्वित हुआ। फ्रांस ने रूस को ट्रांस-साइबेरियन रेलवे के निर्माण के लिए ऋण दिया।

इस सन्धि ने यूरोप के शक्ति सन्तुलन को सुदृढ़ कर दिया। प्रो. फे (Fay) के अनुसार, "**प्रारम्भ के कुछ वर्षों में फ्रांस और रूस की मैत्री से यूरोप की शान्ति खतरे में नहीं वरन् और अधिक सुदृढ़ हो गई।**"[1] इस सन्धि के कारण यूरोप में बने दो गुटों में एक ओर जर्मनी, इटली एवं आस्ट्रिया थे तो दूसरी ओर रूस एवं फ्रांस थे।

हार्दिक मैत्री सम्बन्ध 1907 ई. या फ्रांस व इंग्लैंड के मध्य समझौता (ENTENTE CORDIALE)

पर्याप्त समय तक पृथकत्व की नीति का समर्थक इंग्लैण्ड अपने को महाद्वीपीय शक्ति के स्थान पर सामुद्रिक शक्ति से सम्बोधित करता था। 1894 ई. **तक यूरोप के दो गुटों में बंट**

1 **दि ओरिजन्स ऑफ वर्ल्ड वार,** भाग 1, पृ. 124।

जाने के कारण औपनिवेशिक सन्दर्भों में रुचि रखने वाले मित्रहीन इंग्लैण्ड का चिन्तित होना स्वाभाविक था। वैसे भी अनेक देशों से विभिन्न मामलों में उसकी शत्रुता थी। उपनिवेश स्थापना के कारण जापान तथा बर्लिन सन्धि में रूस के विस्तार का प्रतिरोध करने के कारण रूस से उसकी पुरानी शत्रुता था। मिस्र का प्रश्न फ्रांस से उसकी शत्रुता का कारण था। फेसोदा की घटना से तो दोनों देशों के मध्य युद्ध के लक्षण परिलक्षित होने लगे, परन्तु अपनी अक्षमता स्वीकार करते हुए फ्रांसीसी सेनापति युद्ध से विमुख हो गया। इस घटना के पश्चात् पृथकत्व की नीति का परित्याग कर ब्रिटेन मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम जर्मनी के प्रति उन्मुख हुआ। इसका सबसे प्रधान कारण यह था कि ब्रिटेन व जर्मनी का अतीत समान था। भाषा का उद्गम स्थल एक तथा दोनों ट्यूटोनिक जाति के थे। 1899 ई. में ब्रिटेन के औपनिवेशिक मन्त्री जोसेफ चैम्बरलेन ने घोषित किया था कि, **"ब्रिटेन तथा जर्मन साम्राज्य के मध्य सन्धि होना स्वाभाविक है।"**[1] "परन्तु जर्मनी के सम्राट कैसर विलियम द्वितीय की विश्व-राजनीति के कारण दोनों देशों में मैत्री स्थापित न हो सकी।

अतः अब इंग्लैण्ड ने फ्रांस से अपनी शत्रुता को छोड़ 1903 ई. में मैत्री का प्रस्ताव रखा जिसे फ्रांस ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप 8 अप्रैल, 1904 ई. को दोनों देशों के मध्य एक समझौता हुआ, **जिसके निर्णय निम्नवत् हैं—**

1. मिस्र में अपने हितों की उपेक्षा करते हुए फ्रांस ने मिस्र में ब्रिटेन के हितों के विरुद्ध चुनौती देने वाले देश के विरुद्ध इंग्लैण्ड की सहायता का वचन दिया।

2. मोरक्को पर फ्रांस का आधिपत्य स्वीकार कर लिया गया, परन्तु जिब्राल्टर के सामने मोरक्को के समुद्र तट पर फ्रांस को दुर्गीकरण का अधिकार नहीं दिया गया।

3. मलाया प्रायद्वीप तथा उसके समीपवर्ती द्वीप अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में मान लिए गए।

4. स्याम तथा मेडागास्कर को फ्रांस के प्रभाव क्षेत्र में स्वीकार कर लिया गया।

इस समझौते के विषय में पेरिस में स्थित जर्मनी के राजदूत रेलोलिन ने कहा था कि, **"यह समझौता स्वाभाविक एवं उचित था।"**[2] व्यूलों के अनुसार, **"यह समझौता किसी भी शक्ति के विरोध में नहीं, अपितु फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के पारस्परिक मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न मात्र था,'** परन्तु ब्रिण्डेनबर्ग के अनुसार, **"आंग्ल फ्रैंच समझौते ने जर्मनी की शक्ति को गहरा धक्का दिया एवं जर्मनी के प्रभाव को समाप्त कर दिया।"**

वस्तुतः इस समझौते के परिणामस्वरूप जहां इंग्लैण्ड का जनमानस हर्षातिरेक से परिपूर्ण था, वहीं जर्मनी को अपनी कमजोर स्थिति सुदृढ़ करने हेतु **तीन बार मोरक्को संकट** (सन् 1905, 1908 एवं 1911 ई.) उत्पन्न करना पड़ा, परन्तु इंग्लैण्ड ने 1904 की हार्दिक मैत्री का अनुपालन करते हुए इन संकटों के समय फ्रांस का साथ देकर अपने पारस्परिक सम्बन्ध पर्याप्त मधुर बना दिए।

1907 ई. का आंग्ल-रूसी समझौता तथा ट्रिपल ऐंता की स्थापना
(ANGLO-RUSSIAN AND THE TRIPLE ENTENTE)

बाल्कान प्रदेश, मध्य एशिया तथा प्रशान्त महासागर में इंग्लैण्ड तथा रूस के पारस्परिक हितों के निहित होने पर सम्बन्धों में कटुता स्वाभाविक थी। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री सर एडवर्ड

1 The most natural alliance is that between us and the German Empire."
2 "Very natural and perfectly justified."

ग्रे ने इस सम्बन्ध में कहा था, "**किन्हीं दो देशों के पारस्परिक हितों के टकराने पर उनमें घनिष्ठ मैत्री अथवा घोर शत्रुता की स्थिति हो जाती है।**" रूस-जापान युद्ध से पूर्व 1903 ई. में इंग्लैण्ड ने रूस से अपने कटु सम्बन्धों को दृष्टिगत करते हुए एक समझौता सम्पन्न करने का प्रयास किया जो रूस की उपेक्षा के कारण सम्भव न हो सका, परन्तु 1905 ई. तक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। सन् 1905 ई. में रूसी-क्रान्ति, 1905 ई. में ही जापान द्वारा रूस की पराजय, रूस के विरोध में त्रिराष्ट्र सन्धि का सम्पन्न होना, प्रशान्त महासागर, चीन तथा कोरिया में जापान द्वारा रूस का निरन्तर विरोध एवं सन् 1902 ई. की सन्धि के अनुसार जापान व इंग्लैण्ड की मैत्री इत्यादि महत्वपूर्ण कारकों के फलस्वरूप जापान को नियन्त्रित करने हेतु रूस की इंग्लैण्ड से मैत्री परमावश्यक हो गई। **इधर जर्मनी विरोधी इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री एडवर्ड ग्रे तथा इंग्लैण्ड से मैत्री के पक्षधर रूस के विदेशमन्त्री इजवो लास्के के** प्रयासों के फलस्वरूप सन् 1907 ई. में रूस तथा इंग्लैण्ड की मैत्री हो गई। **इस समझौते की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—**

(1) दोनों देशों ने तिब्बत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए तिब्बत की आन्तरिक स्वतन्त्रता को स्वीकार किया, परन्तु तिब्बत को नाममात्र के लिए चीन के अधीन किया गया। दोनों देशों ने तिब्बत से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित न करना स्वीकार किया।

(2) अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में इंग्लैण्ड ने अपना दावा समाप्त मानते हुए अफगानिस्तान में रूस को भी व्यापार करने की मान्यता प्रदान की। रूस ने अफगानिस्तान को अपना प्रभाव क्षेत्र कहने का दावा समाप्त किया।

(3) फारस को तीन भागों में बांटते हुए दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि उत्तरी फारस रूस के, दक्षिणी फारस इंग्लैण्ड के तथा मध्य फारस फारस के नरेश के प्रभाव क्षेत्र में रहेंगे। फारस की स्वतन्त्रता तथा सीमाओं की रक्षा करते हुए (ईरान) में व्यापार करने का अधिकार दोनों देशों को मान्य होगा।

ब्रेडनबर्ग के अनुसार, "**यह समझौता (Triple Entente) न तो जर्मनी के लिए हानिकारक था और न ही मित्र राष्ट्रों के लिए सुरक्षात्मक था।**" परन्तु जर्मनी ने इस समझौते को अपने प्रति हानिकारक समझा। जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय ने मित्र राष्ट्रों पर आरोप लगाया कि **वे जर्मनी को चारों ओर से घेर रहे हैं।** वास्तव में इस समझौते से आस्ट्रिया व जर्मनी की ओर से रूस निश्चिन्त हो गया। इंग्लैण्ड पूर्वी समस्या के सन्दर्भ में रूसी आशंका से निश्चिन्त हो गया। ग्रे के अनुसार, "**यह समझौता वास्तव में इंग्लैण्ड की दृष्टि से अधिक उपयोगी था।**[1] **परन्तु इस समझौते के सन्दर्भ में विवेच्य है कि इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि जिन देशों के सन्दर्भ में यह समझौता किया गया था, उन देशों से इस सन्दर्भ में कोई परामर्श नहीं किया गया था।**"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'रहस्यात्मक गतिविधियों एवं गुटबन्दियों के परिणामस्वरूप 1904 ई. से 1914 ई. तक का काल यूरोपीय इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का काल था। यद्यपि 1914 ई. से पूर्व यूरोप में सम्पन्न सन्धियां व समझौते सुरक्षात्मक थे, परन्तु कालान्तर में यही आक्रमणकारी सिद्ध हुए।[2] **दो समानान्तर शक्तिशाली गुटों के अभ्युदय से यूरोप में शक्ति सन्तुलन स्थिर रहने के कारण यूरोप कुछ समय तक महायुद्ध के आसन्न खतरे से सुरक्षित रहा।** दो मुख्य गुटों—त्रिराष्ट्र सन्धि तथा हार्दिक मैत्री सन्धि के

1 "What we gained by it was real, what was gained by Russia was apparent."
2 "The road to war was paved with good intentions and bad manners."

अतिरिक्त कालान्तर में यूरोप में अन्य छोटे-छोटे गुटों का भी निर्माण होने लगा। इस सन्तुलन के कारण कतिपय काल तक शान्ति स्थिरता के पश्चात् यूरोपीय जनमानस में भयपूर्ण वातावरण प्रादुर्भूत होने लगा। यह व्यवस्था सार्वजनिक अथवा सार्वजनिक न होकर प्रतिद्वन्दी गुटों की थी। अतः एक गुट जैसे ही शक्तिशाली होता, दूसरा गुट इस सन्तुलन की पूर्ति हेतु तीव्रता से अपनी गतिविधियां तेज करते हुए उस स्तर के शस्त्रास्त्रों का निर्माण करने में संलग्न हो जाता था। परिणामस्वरूप कालान्तर में इन्हीं भयपूर्ण गतिविधियों ने **दोनों गुटों को**[1] युद्ध क्षेत्र की ओर जाने को विवश कर दिया।

प्रश्न

1. 1871 ई. से 1914 ई. तक यूरोप की प्रमुख राजनीतिक गतिविधियों का वर्णन कीजिए। **(लखनऊ, 1990)**
2. यूरोप के दो सैनिक खेमों में बंटने के क्या कारण थे? इसके क्या परिणाम हुए?
3. तीन सम्राटों के संघ के उद्देश्यों व उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (i) द्विराष्ट्र सन्धि
   (ii) त्रिराष्ट्र सन्धि
   (iii) हार्दिक मैत्री सम्बन्ध
   (iv) ट्रिपल एन्ता
5. 1904 के आंग्ल-फ्रांसीसी समझौते के कारण और स्वरूप को रेखांकित कीजिए और उसके महत्व पर प्रकाश डालिए। **(गोरखपुर, 1989)**
6. 1901 ई. से 1914 ई. के मध्य ब्रिटिश विदेश नीति की विवेचना कीजिए। **(गोरखपुर, 1995)**

1 **"In 1907 the Triple Alliance and Triple Entente had stood side by side, in 1914 they stood face to face."** —*Smith.*

21

फ्रांस का तृतीय गणतन्त्र

[THE THIRD REPUBLIC OF FRANCE]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1870 ई. का वर्ष यूरोपीय तथा फ्रांस के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। 2 दिसम्बर, 1870 ई. को सीडान में नेपोलियन तृतीय को पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसे आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस बात की सूचना मिलने पर 4 सितम्बर, 1870 ई. को फ्रांस में व्यवस्थापिका सभा द्वारा अस्थाई गणतन्त्र की स्थापना की गई। गणतन्त्र का शासन चलाने के उद्देश्य से एक अस्थाई **'राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार'** (Government of National Defence) की स्थापना की गई। फ्रांस का प्रशासन इस अस्थाई गणतन्त्र के द्वारा 1875 ई. तक किसी प्रकार चलता रहा। 29 जनवरी, 1875 ई. को फ्रांस में स्थायी गणतन्त्र की स्थापना हुई, जिसे **'तृतीय गणतन्त्र'** के नाम से जाना जाता है।

1870 ई. में स्थापित अस्थाई गणतन्त्र के समक्ष गहन संकट छाया हुआ था। जर्मनी की सेना पेरिस में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही थी। अस्थाई राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार के **युद्धमन्त्री गेम्बेटा** (Gambetta) **ने योग्यतापूर्वक इस स्थिति से निबटने का प्रयत्न किया, किन्तु वह पेरिस को सुरक्षित रखने के अपने उद्देश्य में सफल न हो सका।** जर्मनी की सेना जनवरी, 1871 ई. में अन्ततः पेरिस पर अधिकार करने में सफल हो गई। गेम्बेटा व कुछ गणतन्त्रवादी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध जारी रखना चाहते थे क्योंकि फ्रांसीसी जनता अपनी एक इंच भूमि भी जर्मनी को सौंपने को तैयार न थी[1], किन्तु पेरिस की सरकार ने तत्कालीन स्थिति को देखते हुए युद्ध विराम की घोषणा कर दी।

फ्रांस में फ़रवरी, 1871 ई. में आम चुनाव (General Elections) हुए। इस चुनाव में राजतन्त्रवादियों को बहुमत मिला। 17 फरवरी, 1871 ई. को राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन बोर्दो (Bordeaux) में आमन्त्रित किया गया। इस अधिवेशन में थीयर्स (Theiers) को गणतन्त्र का कार्यपालिका अध्यक्ष (Chief Executive of French Republic) नियुक्त किया गया। **थीयर्स को जर्मनी के साथ शान्ति समझौता करने का भी पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया।** फ्रांस को जर्मनी के साथ हुए युद्ध में पराजय का सामना करना पड़ा था, अतः जर्मनी की

1 "We will neither yield an inch of French soil nor a stone of French Fortress."

अपमानजनक शर्तों को भी उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। 10 मई, 1871 ई. को जर्मनी व फ्रांस के मध्य फ्रेंकफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfurt) हो गई।

फ्रांस में गृह युद्ध/पेरिस कम्यून का विद्रोह
(CIVIL WAR IN FRANCE/REVOLT OF PARIS COMMUNE)

जर्मनी के साथ हो रहे युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भी फ्रांस में शान्ति की स्थापना न हो सकी।[1] युद्ध के समाप्त हो जाने पर फ्रांस की जनता शान्ति की अपेक्षा कर रही थी, किन्तु इसी समय फ्रांस को भीषण गृह युद्ध का सामना करना पड़ा। फ्रांस की अस्थाई सरकार व पेरिस कम्यून के मध्य भीषण संघर्ष हुआ **जो मार्च, 1871 ई. से लेकर मई, 1871 ई. तक चलता रहा।**

गृह युद्ध के कारण (Causes of the Civil War)—मार्च 1871 ई. में प्रारम्भ हुए गृह युद्ध अथवा पेरिस कम्यून के मध्य हुए संघर्ष का मुख्य कारण राष्ट्रीय सभा तथा पेरिसवासियों के विचारों में पारस्परिक मतभेद का होना था। फ्रांस में हुए आम चुनावों में राजतन्त्रवादियों को सर्वाधिक सफलता मिली थी, किन्तु फिर भी वहां गणतन्त्रात्मक शासन की स्थापना की गई थी। अतः राष्ट्रीय सभा फ्रांस में राजतन्त्रात्मक शासन की स्थापना करना चाहती थी जबकि पेरिस के निवासी वहां गणतन्त्रात्मक शासन चाहते थे। अतः संघर्ष का होना स्वाभाविक ही था। **फ्रांस में हुए इस गृह युद्ध के प्रमुख कारण निम्नवत् थे—**

(i) पेरिसवासी फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना चाहते थे। राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों की संख्या अधिक थी। ग्राण्ट एण्ड टेम्परले ने लिखा है कि **"जब राष्ट्रीय सभा ने संविधान-निर्माण के प्रश्न को स्थगित किया तो पेरिस के लोगों को यह भय होने लगा कि राष्ट्रीय सभा फ्रांस में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहती है। इस गृह युद्ध का मुख्य कारण यह भय ही था।"**[2]

(ii) मार्च, 1871 ई. में राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस की राजधानी पेरिस के स्थान पर वार्साय बनाने का प्रयास किया। पेरिसवासी इस अपमान को सहने को तैयार न थे। इसके अतिरिक्त वार्साय सदियों से बूर्बां शासकों का गढ़ रहा था, अतः पेरिसवासियों को लगने लगा कि यह भी फ्रांस में राजतन्त्र की स्थापना करने के प्रयास का एक कदम है।

(iii) इस गृह युद्ध का एक प्रमुख कारण युद्ध (जर्मनी से) के दौरान पेरिस व फ्रांस के शेष भागों के बीच सन्तुलन का नष्ट हो जाना था। पेरिस व फ्रांस के अन्य भागों के मध्य सम्पर्क टूट जाने के कारण परस्पर विरोधी नीतियों का विकास हुआ, जिससे पेरिसवासी आहत हुए।

(iv) पेरिसवासी फ्रेंकफर्ट की अपमानजनक सन्धि से अत्यधिक नाराज थे।

(v) पेरिस की जनता अपार आर्थिक समस्याओं से जूझ रही थी। पेरिस की सरकार ने जनता को स्थिति से निबटने के लिए ऋण दिए थे। राष्ट्रीय सभा ने सभी ऋणों की 48 घण्टों के अन्दर अदायगी के आदेश दिए। पेरिस की जनता के लिए ऐसा करना सम्भव न था, अतः उन्होंने राष्ट्रीय सभा का विरोध किया।

(vi) फ्रांस व जर्मनी के मध्य हुए युद्ध के दौरान राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरी दल (National Guards) की संख्या बहुत अधिक हो गयी थी। सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरियों की सेवाओं

1 "Not yet, however, were the misfortunes of 'the terrible year' at an end."
—Fergusson and Bruun, *op. cit.*, p. 728.

2 यूरोप इन द नाइण्टीन्थ एण्ड ट्वेन्टियथ सैंचुरीज, पृ. 282।

को समाप्त कर दिया। इससे बहुत बड़ी संख्या में लोग बेकार हो गए। क्रेग ने लिखा है, **"इससे पेरिस की जनता और विशेषकर मजदूरों में, जो नेशनल गार्ड में थे, बड़ा असन्तोष फैला।"**[1]

(vii) पेरिस की जनता फ्रांस में **'कम्यून के संघ'** (Federation of Commune) की स्थापना करना चाहते थी। ऐसा होने पर फ्रांस में केन्द्रीय सरकार से कम्यूनों के अधिकार अधिक हो जाते। राष्ट्रीय सभा इस प्रकार के शासन का विरोध कर रही थी, अतः परस्पर विरोधी विचारधाराओं के कारण यह संघर्ष हुआ।

(viii) पेरिस की जनता में घोर असन्तोष व्याप्त था। इसे और अधिक भड़काने व उग्र रूप प्रदान करने में अराजकतावादी, समाजवादी जेकोबिन व उपद्रवी तत्वों ने प्रमुख भूमिका निभाई। ब्लांकी (Blanqui) व प्यात (Pyat) आदि समाजवादियों व साम्यवादियों ने जनता को सरकार के विरुद्ध भड़काया।

विद्रोह की घटनाएं (Events of the Revolt)—फरवरी, 1871 ई. में नेशनल गार्ड ने पेरिस में व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से एक केन्द्रीय समिति (Central Committee) की स्थापना की जिसमें 60 सदस्य थे। इसी समय राष्ट्रीय सभा ने पेरिस में बढ़ते हुए असन्तोष को देखते हुए वहां से उन तोपों को हटाने का प्रयास किया जिन्हें जर्मनी से युद्ध के समय वहां लगाया गया था। राष्ट्रीय सभा के इस कार्य ने चिंगारी का कार्य किया तथा पेरिस की जनता ने तोप हटाने गए सैनिकों को घेर लिया। सैनिकों को पेरिस से भागना पड़ा। इस प्रकार पेरिस में कम्यून का शासन स्थापित हो गया।

कम्यून का शासन (Rule of the Commune)—पेरिस पर अधिकार करने के पश्चात् 26 मार्च, 1871 ई. को कम्यून के चुनाव हुए जिसमें उग्र गणतन्त्रवादी (Radical Republics) को सफलता मिली। पेरिस में कम्यून शासन की स्थापना की गई व लाल झण्डा फहराया गया। राष्ट्रीय सभा के नियमों को रद्द कर दिया गया। कम्यून की नई कार्यकारिणी ने एक घोषणा-पत्र जारी किया जिसमें देश में कम्यूनों के संघ की स्थापना करने की मांग की गई। इस घोषणा-पत्र में सम्राट अथवा राष्ट्रीय सभा द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था को निरंकुश करार देते हुए फ्रांस के लिए अनुपयुक्त कहा गया। इस घोषणा-पत्र में मांग की गई थी कि कम्यूनों को शासन के सभी मामलों यहां तक कि सुरक्षा व्यवस्था के भी पूर्ण अधिकार प्राप्त होने चाहिए। इस घोषणा-पत्र के अनुसार केन्द्रीय शासन का आधार नगरपालिकाएं (कम्यून) हों अर्थात् सम्पूर्ण राज्य समष्टिवाद के आधार पर संगठित नगरपालिकाओं का संघ हो। **कम्यून की इस घोषणा में साम्यवाद, समष्टिवाद, व्यक्तिवाद व जेकोबिनवाद के विचारों का मिश्रण था।**[2]

कम्यून सरकार ने घोषणा की कि फ्रांस में नवीन युग का आविर्भाव हो गया है। इसके साथ ही कम्यून सरकार ने सैनिकवाद, नौकरशाही की भावना व विभिन्न विशेषाधिकारों को समाप्त किए जाने की भी घोषणा की।

विद्रोहियों से संघर्ष (Struggle against the Rebels)—थियर्स की सरकार ने पेरिस कम्यून से समझौते हेतु प्रयत्न किए, किन्तु वार्ता असफल रही। अतः थीयर्स ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए शक्ति का सहारा लेने का निर्णय लिया। **थियर्स ने प्रधान सेनापति मैक महोन (Mac Mahon) के नेतृत्व में पेरिस पर अधिकार करने के लिए एक सेना भेजी।** मैक

1 क्रेग, **यूरोप सिंस** 1815, पृ. 346।
2 चौहान, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 410।

महोन के नेतृत्व में सेना ने पेरिस को 2 अप्रैल से 21 मई तक घेरे रखा। पेरिस की कम्यून ने भी विशाल सेना तैयार की। दोनों सेनाओं में भीषण संघर्ष हुआ। अन्ततः 21 मई, 1871 ई. को मैक महोन की सेना ने पेरिस में प्रवेश किया, किन्तु कम्यून की सेना ने सात दिनों तक पेरिस में भी संघर्ष किया। इस एक सप्ताह में फ्रांसीसी सैनिकों ने विद्रोहियों को ढूंढ-ढूंढकर मौत के घाट उतारा। कहा जाता है कि विद्रोहियों के रक्त से सीन (Seine) नदी का जल लाल हो गया था।[1] इसी कारण फ्रांस में 21 मई से 28 मई तक के सात दिनों को **'खूनी सप्ताह'** (Bloody Week) के नाम से जाना जाता है। अन्ततः 28 मई को विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार पेरिस पर पुनः फ्रांस की सरकार का आधिपत्य हो गया।

विद्रोह के परिणाम (Effects of the Revolt)—फ्रांस में हुए इस विद्रोह के व्यापक परिणाम हुए जिन्होंने फ्रांस के भविष्य को भी प्रभावित किया। इस विद्रोह के प्रमुख **परिणाम निम्नवत् थे**—

(i) इस विद्रोह में अपार जन-धन की हानि हुई। लगभग 17 हजार व्यक्ति इसमें मारे गए, 36,000 व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया, 13,450 विद्रोहियों को कठोर कारावास का दण्ड व लगभग 7,500 को निर्वासित कर दिया गया।

(ii) विद्रोहियों/कम्यून की पराजय से पेरिस की **'नृशंस तानाशाही'** (Brutal Dictatorship) का अन्त हुआ।

(iii) नेशनल गार्ड को समाप्त कर दिया गया।

(iv) कुछ समय के लिए समाजवादी ताकतें फ्रांस में कमजोर हो गईं।

(v) पूंजीपतियों व मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध इस विद्रोह के कारण कटु हो गए।[2]

पेरिस की जनता द्वारा किया गया यह विद्रोह देश के हित में था अथवा नहीं? यह एक विवादास्पद विषय है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि तत्कालीन स्थिति को देखते हुए कम्यून का विद्रोह देश के हित में नहीं था। इसके विपरीत अन्य इतिहासविज्ञ मानते हैं कि फ्रांस में राजतन्त्र के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए यह आवश्यक था। यह संघर्ष न हुआ होता तो फ्रांस को एक बार फिर 1848 ई. के समान समस्याओं का सामना करना पड़ता। अतः अप्रत्यक्ष रूप से इस विद्रोह ने फ्रांस में गणतन्त्र को सशक्त बनाया। इसी कारण कैटलबी ने लिखा है, **"इस विद्रोह से राजतन्त्रवादियों को गहरा आघात लगा तथा जनतन्त्रवादियों को भारी बल मिला।"**[3]

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण
(NATIONAL RECONSTRUCTION)

1871 ई. के मई माह तक फ्रांस की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। 1870 ई. के फ्रेंको-प्रशियन युद्ध व तत्पश्चात् हुए पेरिस कम्यून के विद्रोह के कारण फ्रांस जर्जर हो चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी फ्रांस की प्रतिष्ठा गिरी थी। अतः पेरिस कम्यून के विद्रोह को दबाने के पश्चात् सरकार के समक्ष सर्वप्रमुख कार्य राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना था। अतः

1 "The Seine flowed red with blood."
2 "Between Capital and Labour flowed the blood and the memories of the Commune."
—Ketelbey, *op. cit.*, p. 369.
3 वही।

थियर्स ने राष्ट्रीय निर्माण की दिशा में कार्य करना प्रारम्भ किया।[1] **इसके लिए उसने निम्नलिखित कार्य किए—**

(i) **युद्ध हर्जाने का भुगतान** (Payment of War Indemnity)—थियर्स ने सर्वप्रथम कार्य जर्मनी की सेना को अपने देश से निकालने का किया। इस कार्य के लिए आवश्यक था कि वह जर्मनी को युद्ध हर्जाने की रकम की अदायगी करे। अतः थियर्स ने दो वर्षों के अन्दर ही युद्ध हर्जाने (War Indemnity) की पूरी राशि चुका कर जर्मन सेना से फ्रांस को मुक्त कराया। उसके इस कार्य के कारण ही थियर्स को **'देश का मुक्तिदाता'** (Liberator of the Territory) कहा जाता है।

(ii) **सैनिक सुधार** (Military Reforms)—फ्रांस की खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए शक्तिशाली सेना का होना आवश्यक था। अतः थियर्स ने सेना के पुनर्गठन का कार्य प्रारम्भ किया। फ्रांस में प्रत्येक पुरुष के लिए 5 वर्ष की सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गयी। ऐसे व्यक्तियों को जो यह कार्यकाल पूरा कर लेते, उन्हें रिजर्व सेना में रखा जाता था। फ्रांसीसी सेना का पुनर्गठन प्रशा की सेना की पद्धति की तरह किया गया। फ्रांस में अनेक किलों की उचित देख-रेख की व्यवस्था की गई व नवीन किलों का निर्माण कराया गया। इस प्रकार फ्रांस की सेना को शक्तिशाली बनाकर थियर्स ने फ्रांस की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया।

(iii) **आर्थिक सुधार** (Financial Reforms)—फ्रांस की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए थियर्स ने अनेक आर्थिक सुधार भी किए। उसने फ्रांस के व्यापार व उद्योग के विकास के लिए संरक्षण की नीति अपनायी, जिसके आश्चर्यजनक परिणाम हुए। थियर्स ने आय तथा खनिज पदार्थों पर भी कर लगाने का प्रयास किया। राष्ट्रीय सभा द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया।

(iv) **स्थानीय स्वशासन में सुधार** (Reforms in Local Self-Government)—थियर्स ने स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में भी आवश्यक सुधार किए। छोटे-छोटे नगरों (Towns) में स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों के लिए चुनाव की व्यवस्था की गयी। प्रान्तों की सामान्य परिषदों को अपना अध्यक्ष चुनने तथा प्रान्तीय विषयों के लिए स्थायी समितियां नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया। **थियर्स परम्परावादी था अतः बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण करना उसे पसन्द न था,** किन्तु फिर भी उपरोक्त सुधारों से फ्रांस में स्वशासन पद्धति का विकास हुआ।

(v) **विधान का स्वरूप** (Nature of the Government)—फ्रांस का समुचित विकास करने के साथ ही विधान के स्वरूप का निर्णय किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक था। थियर्स के समक्ष सबसे कठिन समस्या यही थी। थियर्स न केवल स्वयं राजतन्त्र का समर्थक था अपितु राष्ट्रीय सभा में भी राजतन्त्र समर्थकों का बहुमत था, किन्तु थियर्स जानता था कि प्रजा गणतन्त्र की समर्थक है, अतः उसने भी गणतन्त्र का ही समर्थन करने का निर्णय किया। उस समय फ्रांस के सिंहासन के विषय में राजतन्त्रवादियों में मतभेद था तथा तीन राजतन्त्रवादी सिंहासन पर बैठने के दावेदार थे।[2] **ये तीन दावेदार थे—**

(अ) चार्ल्स X का पोता (Grandson) जिसका नाम काम्टे-डी-चेम्बोर्ड (Compte-de-Chambord) था।

1 "After the suppression of the Commune the Government truned to the work of National reconstruction." —Ketelbey, *op. cit.*, p. 369.

2. "There were three heads and only one crown." —*Thiers.*

(ब) लुई फिलिप का पोता काम्टे-डी-पेरिस (Compte-de-paris)

(स) नेपोलियन III का पुत्र प्रिंस इम्पीरियल (Prince Imperial)

इसके विपरीत गणतन्त्रवादियों में एकता थी। इसी कारण गणतन्त्र का समर्थन करते हुए थियर्स ने कहा, **"गणतन्त्र—यह हमें सबसे कम विभाजित करता है।"**[1]

इसी बीच गणतन्त्रवादियों का नेता गेम्बेटा (Gambetta) **निरन्तर गणतन्त्र का प्रचार कर रहा था।** 1872 ई. में गेम्बेटा ने राष्ट्रीय सभा को भंग कर फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करने की मांग की। इसके विपरीत राजतन्त्रवादियों ने थियर्स से मांग की कि उग्र गणतन्त्रवाद का कठोरतापूर्वक दमन किया जाय, किन्तु इसके लिए थियर्स तैयार नहीं हुआ। थियर्स राजतन्त्र व उग्र गणतन्त्र के मध्य के मार्ग पर चलना चाहता था, किन्तु इससे दोनों ही पक्ष उससे नाराज हो गए। इसी संघर्ष में अन्ततः 24 मई, 1873 ई. को उसने त्यागपत्र दे दिया।

थियर्स का मूल्यांकन (Estimate of Thiers)—थियर्स एक उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ था।[2] राष्ट्रीय सभा का कार्यपालिका अध्यक्ष चुने जाने पश्चात् उसने महत्वपूर्ण कार्य किए। उसकी नीतियों एवं कार्यों के परिणामस्वरूप ही फ्रांस अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित कर सका। फ्रांस को पुनः दृढ़ता प्रदान करने का कार्य भी थियर्स ने ही किया। फ्रांस से जर्मन सैनिकों को शीघ्रता से निकालने का कार्य भी उसी के द्वारा किया गया था। संविधान निर्माण के क्षेत्र में भी उसने जनता की इच्छा का आदर करते हुए गणतन्त्रवादियों का समर्थन किया। अतः थियर्स को 19वीं शताब्दी के प्रमुख राजनीतिज्ञों में से एक माना जा सकता है।

संविधान का निर्माण
(DRAFTING OF THE CONSTITUTION)

थियर्स के त्यागपत्र देने के पश्चात् 1873 ई. में ही राष्ट्रीय सभा द्वारा मार्शल मैक महोन (Mac Mahon) को राष्ट्रपति नियुक्त किया गया। मार्शल मैक महोन घोर राजतन्त्रवादी था, अतः उसकी नियुक्ति से गणतन्त्रवादियों की आशाओं पर तुषारापात हुआ। मैक महोन फ्रांस में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता था, किन्तु राजतन्त्रवादियों के परस्पर झगड़ों के कारण वह अपने उद्देश्यों में सफल न हो सका, यद्यपि राष्ट्रीय सभा में भी राजतन्त्रवादियों का बहुमत था। इसी मध्य, गणतन्त्रवादियों के प्रयत्नों से मैक महोन को राष्ट्रीय सभा के लिए उपचुनाव कराने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1874 ई. में हुए इस उपचुनाव में गणतन्त्रवादियों को अपार सफलता मिली, अतः उनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए सरकार ने गणतन्त्रवाद की शासकीय शक्तियों पर विचार व योजना तैयार करने के लिए 30 सदस्यीय एक आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने जनवरी, 1875 ई. में अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने तीन नियम पारित किए जिन्हें सम्मिलित रूप से 1875 **ई. का संविधान** (Constitution of 1875) **कहा गया।**

संविधान की रूपरेखा
(OUTLINE OF THE CONSTITUTION)

1875 ई. के संविधान के द्वारा फ्रांस में इंग्लैण्ड के समान दो सदनों (House) वाले विधान मण्डल की स्थापना की गई। उच्च सदन (Upper House) को सीनेट (Senate) तथा

1 "Republic—it divides us the least." —*Thiers*

2 "He was a man of brilliant parts......Journalist, historian, politician." —Ketelbey, *op. cit.*, p. 370.

निम्न सदन (Lower House) को चैम्बर ऑफ डेपुटीज (Chamber of Deputies) कहा गया।

सीनेट (Senate)—विधान मण्डल के उच्च सदन को सीनेट कहा गया। इसमें सदस्यों की संख्या 300 होनी थी। इनमें से 75 सदस्यों को आजीवन इस सदन का सदस्य बनाया गया। शेष 225 सदस्यों की प्रान्तीय निर्वाचक मण्डलों (Provincial and Colonial Assemblies) द्वारा 9 वर्ष के लिए चुना जाना था। इन सदस्यों के लिए 40 वर्ष से अधिक आयु का होना आवश्यक था। इनमें से 1/3 सदस्यों को प्रत्येक तीसरे वर्ष सेवानिवृत्त होना था।

चेम्बर ऑफ डेपुटीज (Chamber of Deputies)—प्रतिनिधि सभा अथवा चेम्बर ऑफ डेपुटीज के सदस्यों की संख्या 700 थी प्रत्येक सदस्य को पुरुष वयस्क मताधिकार के द्वारा 4 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाना था। यह सभा सीनेट की तुलना में अधिक शक्तिशाली थी क्योंकि मन्त्रिमण्डलों का बनाना व गिराना इसी सभा पर आधारित था।

राष्ट्रीय सभा (National Assembly)—राष्ट्रीय सभा का निर्माण सीनेट व चेम्बर ऑफ डेपुटीज को मिलाकर होता था। इस सभा को संविधान में संशोधन करने तथा राष्ट्रपति को निर्वाचित करने का अधिकार था।

राष्ट्रपति (President)—फ्रांस के इस संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के पद को इंग्लैण्ड के राजा के समान संवैधानिक रखा गया। राष्ट्रपति का चुनाव राष्ट्रीय सभा के द्वारा किया जाता था। राष्ट्रपति का कार्यकाल 7 वर्ष के लिए होता था। राष्ट्रपति को कानूनों को पारित करने का अधिकार था। राष्ट्रपति को चेम्बर ऑफ डेपुटीज को भंग करने का अधिकार था, किन्तु ऐसा वह सीनेट की सहमति से ही कर सकता था। राष्ट्रपति को राज्य के सभी पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार था।

1875 ई. का फ्रांसीसी संविधान इंग्लैण्ड व अमरीका के संविधानों से भिन्न था। यह संविधान वास्तव में राजतन्त्र व गणतन्त्र के बीच समझौता था। राजतन्त्रवादियों का विचार था कि इस संविधान की स्थापना से उपयुक्त समय आने पर राजतन्त्र की स्थापना में परेशानी नहीं होगी। इसके विपरीत गणतन्त्रवादी सोचते थे कि इस संविधान को फिलहाल स्वीकार कर लिया जाए तथा बाद में इसमें आवश्यक संशोधन करके पूर्णतया गणतान्त्रिक बना लिया जाएगा। इसी कारण अधिकांश लोगों का विचार था कि यह संविधान अधिक समय तक नहीं चल सकेगा, किन्तु यह संविधान लगभग 70 वर्षों तक चलता रहा।

इस संविधान की एक विशेष बात यह भी थी कि यह संसदीय प्रणाली (Parliamentary System) पर आधारित था। इसके द्वारा कार्यपालिका पर विधान मण्डल का नियन्त्रण लागू किया गया था। मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती थी। मन्त्री चेम्बर ऑफ डेपुटीज के प्रति उत्तरदायी होते थे। हेजन ने इस संविधान की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "1875 **ई. का फ्रांस का संविधान इंग्लैण्ड अथवा संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में अधिक प्रजातान्त्रिक था।**"[1]

1. "In 1875 France had constitution more democratic than that of England or the united states." —Hazen, *op. cit.*, p. 318.

1875 ई. के फ्रांस के संविधान की एक उल्लेखनीय बात यह भी थी कि इसमें 'गणतन्त्र' (Republic) शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया गया था। बाद में गणतन्त्र समर्थक सदस्य वेलान (Wallon) ने एक संशोधन द्वारा 'गणतन्त्र' शब्द का समावेश संविधान में करवाया।

1875 ई. के फ्रांसीसी संविधान को नीचे दिए गए चार्ट से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है—

1875 ई. का फ्रांसीसी संविधान
(FRENCH CONSTITUTION OF 1875)

राष्ट्रपति (President)

↓

[**कार्यकाल**—7 वर्ष, चेम्बर ऑफ डेपुटीज व सीनेट द्वारा निर्वाचित, सीनेट की सहमति से चेम्बर ऑफ डेपुटीज को भंग कर सकता था, सभी पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार था।]

↓

मन्त्रिमण्डल (Responsible Ministry)

[राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त, चेम्बर ऑफ डेपुटीज के प्रति उत्तरदायी।]

↓

राष्ट्रीय सभा (National Assembly)

[सीनेट व चेम्बर ऑफ डेपुटीज द्वारा निर्मित, राष्ट्रपति का चुनाव करना, समस्त संवैधानिक कार्य।]

↓

चेम्बर ऑफ डेपुटीज (Chamber of Deputies)

↓

[सदस्य संख्या 700, पुरुष वयस्क मतांधिकार द्वारा 4 वर्ष के लिए निर्वाचित, सीनेट से अधिक शक्तिशाली।]

सीनेट (Senate)

↓

[सदस्य संख्या 300, 75 सदस्य आजीवन, 225 सदस्य प्रान्तीय सभाओं द्वारा निर्वाचित।]

फ्रांसीसी गणतन्त्र पर संकट
(DANGERS TO THE FRENCH REPUBLIC)

फ्रांस में 1875 ई. में यद्यपि तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हो गई; किन्तु उसके अनेक दुश्मन फ्रांस में ही विद्यमान थे जो निरन्तर गणतन्त्र की जड़ें कमजोर कर फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहे थे। 1882 ई. **में प्रमुख गणतान्त्रिक नेता गेम्बेटा (Gambetta) की मृत्यु हो गई।** गेम्बेटा की मृत्यु से गणतन्त्र को गहरा धक्का लगा तथा उसके विरोधियों की गतिविधियों में तीव्रता आ गई।

फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र को तीन प्रमुख संकटों का सामना करना पड़ा। ये चार प्रमुख संकट निम्नवत् थे—

(i) बूलैंजिस्ट आन्दोलन (Boulangist Movement)

(ii) ड्रेफस काण्ड (Dreyfus Case)

(iii) चर्च से संघर्ष (Conflict with the Church)

(iv) पनामा नहर काण्ड (Panama Canal Case)

इन चारों संकटों का क्रमवार वर्णन निम्नवत् है—

(1) **बूलैंजिस्ट आन्दोलन** (Boulangist Movement)—यह आन्दोलन **जनरल बूलांजे** (General Boulanger) **द्वारा चलाया गया था,** इसी कारण इसे बूलैंजिस्ट आन्दोलन कहा जाता है। जनरल बूलांजे एक अत्यन्त योग्य एवं कुशल सैनिक अधिकारी था जो फ्रांस के लिए अनेक युद्धों में लड़ चुका था। अपनी असाधारण सैनिक प्रतिभा के बल पर ही वह 1882 ई. में पैदल सेना का अध्यक्ष, 1884 ई. में ट्यूनिस की सेना का अध्यक्ष, व 1886 ई. में फ्रांस का युद्धमन्त्री बन गया। बूलांजे जर्मनी से अपने अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था, अतः युद्धमन्त्री बनने के पश्चात् उसने सेना में अनेक सुधार किए तथा सेना को शक्तिशाली बनाया। सैनिकों में उत्साह को बढ़ाने के लिए उसने लम्बे समय से चली आ रही उनकी मांगों को स्वीकार कर लिया। **ये मांगें निम्नवत् थीं**—

(i) अनिवार्य सैनिक सेवा के कार्यकाल को कम कर दिया गया।

(ii) सैनिकों के वेतन में वृद्धि की गई।

(iii) सैनिकों की छुट्टियां बढ़ाई गईं।

(iv) सैनिकों की रहने की व्यवस्था में सुधार किया गया।

इन मांगों को स्वीकार कर लेने से बूलांजे की लोकप्रियता में अपार वृद्धि हुई। बूलांजे ने धीरे-धीरे अपने आदमियों को उच्च पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे उसने अपना प्रभाव बढ़ाया। बूलांजे का समाचार-पत्रों पर भी अधिकार था, अतः अपने विचारों को उसने सम्पूर्ण फ्रांस में प्रसारित करवाया। शीघ्र ही अपने विचारों से उसने फ्रांसीसी जनता को प्रभावित किया तथा वह गणतन्त्र विरोधियों का नेता बन गया। बूलांजे को कैथोलिकों, बोनापार्टिस्ट व समाजवादियों का भी समर्थन मिलने लगा। उसकी लोकप्रियता को देखते हुए 2 जुलाई, 1886 ई. को लार्ड लॉयस ने कहा था, **"आजकल बातचीत का विषय बूलांजे है.....लोग उसके विषय में जो कहते हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह या तो क्रामवैल बनना चाहता है अथवा पादरी।"** बूलांजे की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह प्रतिनिधि सभा के लिए पांच माह में 6 निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित हुआ था।1889 ई. में पेरिस से भी वह भारी बहुमत से विजयी हुआ था।

इस प्रकार 1886 ई. से 1889 ई. तक बूलांजे फ्रांस की राजनीति पर छाया रहा। गणतन्त्र के लिए वह भारी संकट बन गया था। पेरिस में 1889 ई. में विजयी होने पर यदि वह गणतन्त्र पर आक्रमण कर देता तो निश्चित रूप से गणतन्त्र का पतन हो जाता तथा वह सत्ता में आ जाता, किन्तु बूलांजे ने इस सुनहरे अवसर को खो दिया। इसी कारण उसके विषय में जेम्स जौल ने लिखा है, **"यदि उसकी बुद्धि व साहस ने उसकी अभिलाषा का साथ दिया होता तथा यदि उसे राजनीतिक समय की सही पहचान होती तो वह सफल हो सकता था।"**[1]

---

1 **"If his intelligence and couragae had matched his ambition and if he had a source of political timing he might have succeeded."** **James Joll,** ***Europe Since*** **1870, p. 63.**

बूलांजे की निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता एवं अभिलाषाओं से भयभीत होकर समस्त गणतन्त्रवादी परस्पर मतभेदों को भुलाकर एक हो गए। गणतन्त्रवादियों ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए तत्काल संसद का अधिवेशन बुलाया। संसद में बूलांजे पर देश की सुरक्षा को खतरे में डालने का आरोप लगाया, **किन्तु बूलांजे फ्रांस छोड़कर बेल्जियम भाग गया। उसकी अनुपस्थिति में ही उस पर अभियोग लगाकर उसे आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया।** 1891 **ई. में बेल्जियम में ही उसने आत्महत्या कर ली।** इस प्रकार बूलांजे द्वारा उत्पन्न संकट समाप्त हो गया। यदि बूलांजे सफल हो गया होता तो सम्भवतः फ्रांस में तानाशाही (Dictatorship) की स्थापना हो गई होती।

बूलांजे संकट के परिणाम (Effects of the Boulanger Crisis)—बूलांजे आन्दोलन के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(i) फ्रांस में तानाशाही की स्थापना की योजना असफल हो गई।
(ii) फ्रांस के गणतन्त्र पर आया संकट टल गया।
(iii) राजतन्त्रवादी व गणतन्त्र विरोधियों की आशाओं पर पानी फिर गया।
(iv) गणतन्त्र की जड़ें मजबूत हुईं।
(v) फ्रांस में आर्थिक सुधार करने की ओर ध्यान दिया गया।
(vi) फ्रांसीसी सेना में से राजतन्त्र समर्थक पदाधिकारियों को निष्कासित कर दिया गया।

(2) **ड्रेफस काण्ड** (Dreyfus Case)—फ्रांस के तृतीय गणतन्त्र का यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उसे एक के बाद एक गम्भीर संकटों का सामना करना पड़ा। तृतीय गणतन्त्र अभी बूलांजे आन्दोलन से संभल भी न पाया था कि 1894 ई. में एक अन्य गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया जिसने सरकार की नींव को हिला दिया। यह संकट था—ड्रेफस काण्ड।

ड्रेफस एक यहूदी व्यक्ति था, जो सेना में कप्तान (Captain) के पद पर कार्यरत था। अक्टूबर 1894 ई. में उसे राजद्रोह के आरोप में बन्दी बना लिया गया। उस पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने किसी शत्रु देश को गुप्त कागज (Secret Paper) दिए थे। मुकदमे के दौरान प्रमाण के तौर पर कुछ कागजों को प्रस्तुत किया गया था, जिन पर किसी के हस्ताक्षर नहीं थे। इन कागजों को **'बोर्डरू'** (Bordereau) के नाम से जाना जाता है। कैप्टन ड्रेफस को दोषी ठहराया गया व उसे आजन्म कारावास की सजा दी गई। ड्रेफस निरन्तर स्वयं को निर्दोष बताता रहा, किन्तु उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। उसको अपमानित करके दक्षिणी अमरीका के उत्तरी तट पर स्थित एक उजाड़ द्वीप पर भेज दिया गया। इस द्वीप का नाम **'शैतान का द्वीप'**[1] था।

1896 ई. में फ्रांसीसी सेना के गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष कर्नल पिक्वार्ट (Colonel Picquart) बना। कर्नल पिक्वार्ट ने घोषणा की कि ड्रेफस निर्दोष था, क्योंकि जिन जाली कागजों (बोर्डरू) के आधार पर उसे दोषी ठहराया गया था, उन्हें ड्रेफस ने नहीं अपितु मेजर ऐस्टरहेजी (Major Esterhazy) ने तैयार किया था। **फ्रांस की सरकार ने फ्रांसीसी सेना व न्यायालय की प्रतिष्ठा को बचाने के उद्देश्य से इस मामले को दबाना चाहा तथा कर्नल पिक्वार्ट को पदच्युत करके कर्नल हेनरी** (Colonel Henery) **को उसके स्थान पर नियुक्त किया,** किन्तु

1 Devil's Island.

इससे समस्या का समाधान न हुआ क्योंकि जनता अब तक इस मामले को समझने लगी थी तथा उसमें रुचि ले रही थी। उसी समय उपन्यासकार एमली जोला (Emile Zola) ने एक लेख लिखा जिसमें ड्रेफस को निर्दोष बताया। सरकार ने एमली जोला को भी गिरफ्तार करने का प्रयास किया, किन्तु वह इंग्लैण्ड भाग गया। 1898 ई. में मेजर ऐस्टरहेजी पर दिखावे मात्र के लिए मुकदमा चलाया गया तथा उसे निर्दोष घोषित किया गया। इसी समय ब्रीआं का नया मन्त्रिमण्डल बना। युद्धमन्त्री कैविग्नेक ने तीन दस्तावेज संसद में प्रस्तुत किए जिनके आधार पर ड्रेफस को दोषी प्रमाणित करने का सरकार ने प्रयास किया, किन्तु पिक्वार्ट ने जनता को बताया कि दो दस्तावेज ड्रेफस से सम्बन्धित ही नहीं थे व तीसरा जाली था। इसी समय कर्नल हेनरी ने यह घोषणा की कि तीसरा दस्तावेज उसी ने तैयार किया था। इससे स्थिति बिगड़ गई व कर्नल हेनरी ने आत्महत्या कर ली। विवश होकर कैविग्नेक (Cavigance) को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इन परिस्थितियों में मेजर ऐस्टरहेजी फ्रांस छोड़कर लन्दन भाग गया तथा वहां उसने अपराध को स्वीकार कर लिया।

1899 ई. में ड्रेफस का मामला पुनः न्यायालय में लाया गया। सैनिक न्यायालय ने दुर्भाग्यवश इस बार भी न्याय नहीं किया व ड्रेफस को दोषी ही माना, किन्तु उसकी सजा घटाकर 10 वर्ष कर दी। **इस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि ड्रेफस को झूठे आरोप में फंसाया गया था, अतः राष्ट्रपति लूबे** (President Loubet) **ने उसे क्षमा कर दिया, किन्तु जनता इससे सन्तुष्ट नहीं हुई।** जनता चाहती थी कि ड्रेफस निर्दोष था, अतः उसे निर्दोष घोषित किया जाए। अतः 1906 ई. में पुनः ड्रेफस का मामला न्यायालय में लाया गया। इस बार सुनवाई सिविल न्यायालय में की गई, जिसके द्वारा ड्रेफस को निर्दोष प्रमाणित किया गया। ड्रेफस को पुनः सेना में सम्मिलित कर उसे मेजर का पद दिया गया। उसे सेना द्वारा सम्मानित (Legion of Honour) किया गया। कर्नल पिक्वार्ट को भी ब्रिगेडियर जनरल बना दिया गया।

ड्रेफस काण्ड का फ्रांस के इतिहास में बहुत महत्व है।[1] यद्यपि प्रारम्भ में यह एक साधारण-सी बात थी, किन्तु कालान्तर में इसने गणतन्त्र के लिए एक गम्भीर संकट का रूप ले लिया। गणतन्त्र विरोधियों ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया व गणतन्त्र को बदनाम करने की चेष्टा की, किन्तु क्योंकि इस मामले में प्रमुख दोष सेना का था, अतः इससे अन्ततः सेना के प्रभाव में कमी हुई व गणतन्त्र की स्थिति दृढ़ हुई।

(3) **चर्च से संघर्ष** (Conflict with the Church)—फ्रांस में प्रारम्भं से ही राज्य व चर्च का गहरा सम्बन्ध रहा है। फ्रांस के शासकों ने सदैव ही पोप की आज्ञा का पालन किया, किन्तु नेपोलियन के काल से स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा था। नेपोलियन फ्रांस से पोप के प्रभाव को समाप्त करना चाहता था। अपने उद्देश्य में वह पूर्णतया सफल न हो सका यद्यपि उसके प्रयत्नों से पोप के प्रभाव में कमी अवश्य आई। पोप फ्रांस में राजतन्त्रात्मक शासन को विद्यमान रखना चाहता था, अतः 1871 ई. में जब फ्रांस में गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हुई, तो पोप द्वारा उसका प्रतिरोध किया जाना स्वाभाविक था। फलतः फ्रांस में

1 **"Superficially the Dreyfus affair was a detective story on a national scale but it really marked an important epoch in the history of the third Republic."**
—*Schapiro.*

धर्म-स्थानों व पादरियों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा व फ्रांस में चर्च विरोधी स्थिति, जिसे **'एण्टी-क्लेरीकेलिज्म'** (Anti-Clericalism) कहते थे, उत्पन्न होने लगी।

गणतन्त्र व चर्च के बीच होने वाले संघर्ष के प्रमुख कारण निम्नवत् थे—

(i) गणतन्त्र सरकार परम्परागत धार्मिक विश्वासों में विश्वास नहीं करती थी। इसी कारण उसे नास्तिक कहा जाता था। अतः चर्च द्वारा उसका विरोध किया जाता था। गणतन्त्र सरकार के शक्तिशाली होने पर चर्च की सरकार विरोधी गतिविधियां भी बढ़ने लगी, अतः सरकार व चर्च का संघर्ष भी बढ़ने लगा।

(ii) बूलांजे व ड्रेफस काण्ड में चर्च ने खुलकर राजतन्त्रवादियों का समर्थन किया व सरकार विरोधी कार्य किए। राजतन्त्रवादियों के समर्थन से चर्च निरन्तर शक्तिशाली होते जा रहे थे जो कि गणतन्त्रीय सरकार के खतरे की घंटी थी।

(iii) फ्रांस में शिक्षा चर्च के अधीन थी। गणतन्त्रवादियों को डर था कि यदि यही स्थिति रही तो समस्त छात्र व फ्रांस राजतन्त्र समर्थक बन जाएंगे। इसी कारण गेम्बेटा का कहना था, **''यदि भविष्य में फ्रांस विदेशों पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो उसे शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन करना चाहिए।''**

गणतन्त्रवादी पोप व चर्च के बढ़ते हुए प्रभाव से चिन्तित थे। सभी गणतन्त्रवादी इस बात पर एकमत थे कि चर्च गणतन्त्र का शत्रु है। इस विषय में गेम्बेटा का कथन उल्लेखनीय है। उसने कहा था, **''चर्च गणतन्त्र का शत्रु है।''**[1] इसी प्रकार के विचार कोम्बेज ने भी व्यक्त किए। उसके अनुसार, **''पिछले 35 वर्षों में जब भी प्रजातन्त्र विरोधी आन्दोलन अथवा षड्यन्त्र हुए उनकी तह में चर्च ही था।''**[2] इसी कारण एक समाजवादी नेता जीन जार (Jean Jaures) ने कहा था, **''धार्मिक शक्ति फ्रांस में तभी स्थापित हो सकती है जबकि राज्य का ढांचा धर्म-निरपेक्ष बना दिया जाए।''**

अतः सरकार ने अनेक कदम उठाकर चर्च की शक्ति को समाप्त करने का प्रयास किया। **सरकार ने चर्च के विरुद्ध निम्नलिखित कार्य किए—**

(i) शिक्षा पर से चर्च के प्रभाव को समाप्त करने के लिए सरकारी स्कूलों की स्थापना की गई। इन स्कूलों में निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई।

(ii) सभी धर्माचार्यों को अपने पद का प्रमाण-पत्र सरकार से लेना आवश्यक कर दिया गया।

(iii) विवाह अथवा तलाक की आज्ञा धर्माचार्यों के स्थान पर न्यायालयों से लेना आवश्यक कर दिया गया।

(iv) 1901 ई. में **'एसोसिएशन लॉ'** (Association Law) लागू किया गया, जिसके द्वारा प्रत्येक राजनीतिक व धार्मिक संस्था को सरकार से अनुमति लेना आवश्यक था। इस नियम के द्वारा अनेक धार्मिक संस्थाओं को भंग कर दिया गया।

(v) 1902 ई. में चर्च अधिकृत हजारों स्कूलों को बन्द कर दिया गया।

(vi) 1903 ई. में धार्मिक अनुदान बन्द कर दिया गया।

1 "Clericalism was the enemy of the Republic." —*Gambetta*

2 "Clericalism is, in fact, to be found at the bottom of every agitation and every intrigue from which Republican France has suffered during the last 35 years." —*Combes*

(vii) 1905 ई. में **'पृथक्करण का कानून'** (Law of Separation) पारित किया गया। इसके द्वारा चर्च व राज्य के सम्बन्ध को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। सरकार द्वारा अब किसी भी धर्म को आश्रय नहीं दिया जाना था।

(viii) 1905 ई. में ही नेपोलियन व पोप में हुए समझौते को भी समाप्त कर दिया गया।

पोप पायस X ने फ्रांस की सरकार के इन कार्यों की घोर आलोचना की। उसका विचार था कि चर्च और राज्य को पृथक् नहीं किया जा सकता[1], परन्तु फ्रांस की सरकार ने चर्च के साथ जमकर संघर्ष किया। चर्च के साथ, जर्मनी में, बिस्मार्क ने भी संघर्ष किया था, जिसमें उसे असफलता मिली थी, किन्तु फ्रांस को इस संघर्ष में सफलता मिली।

तृतीय गणतन्त्र द्वारा उपरोक्त कदमों का फ्रांस की कैथोलिक जनता द्वारा विरोध किया गया, अतः सरकार ने यह घोषणा की कि भविष्य में राज्य व चर्च पूर्णतः अलग रहेंगे, किन्तु जनसाधारण को धर्म के बारे में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई। सरकार की इस घोषणा की अधिकांश विद्वानों ने प्रशंसा की है। शेपिरो ने इस विषय में लिखा है कि इससे प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता मिल गई और राज्य को राजनीतिक स्वतन्त्रता।[2] **"इस प्रकार फ्रांस के धार्मिक क्षेत्र में यह एक अभूतपूर्व क्रान्ति थी।"**[3]

(4) **पनामा कैनाल काण्ड** (Panama Canal Case)—1888 ई. में फ्रांस की गणतन्त्र सरकार को एक अन्य समस्या का सामना करना पड़ा जिसे 'पनामा कैनाल काण्ड' के नाम से जाना जाता है। इस नहर को बनाने के लिए **'पनामा कम्पनी'** की स्थापना की गई थी। 1888 ई. में इस कम्पनी का दिवाला निकल गया। इसकी जांच में बड़ी मात्रा में मुद्रा की हेराफेरी का पता लगा। इस हेराफेरी में गणतन्त्र सरकार के अनेक मन्त्रियों का भी हाथ पाया गया। इससे सरकार की बहुत बदनामी हुई।

विदेश नीति
(FOREIGN POLICY)

1870 ई. में जर्मनी के हाथों पराजय के पश्चात् फ्रांस के सम्मान को अपार क्षति पहुंची थी। अतः फ्रांस की गणतन्त्र सरकार का प्रमुख उद्देश्य फ्रांस के खोए हुए सम्मान को वापस अर्जित करना था, किन्तु 1890 ई. तक फ्रांस को इस कार्य में विशेष सफलता न मिली। 1890 ई. में बिस्मार्क को उसके पद से मुक्त कर दिया गया। उसके पश्चात् ही फ्रांस को अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता मिली।

(1) **फ्रांस-रूसी मैत्री सन्धि** (1893) (Franco-Rusian Alliance)—इसके लिए इसी पुस्तक में अध्याय 20 देखिए।

(2) **इंग्लैण्ड व फ्रांस का समझौता** (Anglo-French Entente, 1904)—इसके लिए इसी पुस्तक में अध्याय 20 देखिए।

(3) **त्रि-राष्ट्र संघ** (Triple Entente)—इसके लिए इसी पुस्तक में अध्याय 20 देखिए।

1 "Separation of Church and State is an absolute false thesis, a very pernicious error, It violated sacred rights upon which the very life of the Church depended." —*Pope Pious X*

2 "It gave freedom in religion and freedom in politics to the state." —*Schapiro*

3 "This was a revolution in the reclesiastical regime of France." —*Seignobos*

(4) **जर्मनी से सम्बन्ध** (Relations with Germany)—जर्मनी व फ्रांस के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे। 1870 ई. में सीडान के युद्ध में पराजय के पश्चात् फ्रांस को जर्मनी से फ्रेंकफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfort) करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। इसके द्वारा फ्रांस पर अपमानजनक शर्तें लादी गयी थीं। युद्ध हर्जाने के रूप में विशाल धनराशि के अतिरिक्त अल्सेस व लोरेन के प्रदेशों पर भी जर्मनी ने अधिकार कर लिया था। फ्रांस की जनता इस अपमान को भूली नहीं थी व प्रतिशोध लेना चाहती थी। बिस्मार्क इस बात को अच्छी तरह समझता था, अतः उसने अपने कार्यकाल में फ्रांस को मित्रहीन बनाए रखा। अतः फ्रांस अपने उद्देश्य में सफल न हो सका।

(5) **प्रथम मोरक्को संकट** (First Morocco Crisis)—फ्रांस मोरक्को को अपने प्रभाव में बनाए रखना चाहता था। 1904 ई. में एंग्लो-फ्रेंच समझौते में इंग्लैण्ड ने मोरक्को पर फ्रांस के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। जर्मनी द्वारा इसका घोर विरोध किया गया। क्योंकि विलियम कैसर II भी मोरक्को पर अधिकार करना चाहता था। जर्मनी का मानना था कि मोरक्को सभी देशों के लिए खुला रहना चाहिए। इसी उद्देश्य से जर्मनी ने अपना एक जहाज टैन्जियर (Tangier) भेजा। इसके साथ ही जर्मन ने मोरक्को के विषय में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग की। अतः 16 जनवरी, 1906 ई. को एल्जिसिराज (Algeciras) में यह सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। **इस सम्मेलन में निम्नलिखित निर्णय लिए गए—**

(i) मोरक्को को प्रत्येक राष्ट्र के लिए खुला रखा जाए।
(ii) मोरक्को की राजनीतिक स्वतन्त्रता को वहां के शासक अब्दुल अजीज के नेतृत्व में सुरक्षित रखा जाए।
(iii) मोरक्को में अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की स्थापना की जाए।
(iv) मोरक्को में बैंक की स्थापना की जाए।

यद्यपि इस आन्दोलन की समाप्ति पर जर्मनी व फ्रांस दोनों ने अपनी-अपनी सफलता की घोषणा की, किन्तु सत्य यह है कि दोनों ही इससे असन्तुष्ट थे। जर्मनी इस सम्मेलन के द्वारा इंग्लैण्ड व फ्रांस की मैत्री को खण्डित न कर सका, जबकि फ्रांस अपना प्रभाव मोरक्को पर स्थापित न कर सका।

(6) **मोरक्को का दूसरा संकट** (Second Morocco Crisis)—1908 ई. में कैसाब्लांका (Casablanca) नामक स्थान पर जर्मनी के राजदूत ने कुछ लोगों को भागने में सहायता की, इससे जर्मनी व फ्रांस के सम्बन्ध पुनः तनावपूर्ण हो गए। हेग ट्रिब्यूनल द्वारा इस मामले को सुलझाया गया। 1909 ई. में फ्रांस ने मोरक्को में जर्मनी के आर्थिक प्रभाव को व जर्मनी ने फ्रांस के राजनीतिक व आर्थिक प्रभाव को स्वीकार किया।

(7) **मोरक्को का तीसरा संकट** (Third Crisis of Morocco)—1911 ई. में मोरक्को संकट एक बार पुनः उत्पन्न हो गया। मोरक्को में हुए विद्रोह को दबाने के लिए फ्रांस ने अपनी सेना भेजी। जर्मनी ने फ्रांस के इस कार्य का घोर विरोध किया व हर्जाने के रूप में फ्रेंच कांगो पर अधिकार करना चाहा। **अतः उसने अपना एक युद्ध पोत अगादिर** (Agadir) **के बन्दरगाह भेजा।** इससे जर्मनी व फ्रांस के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऐसे संकट के समय में इंग्लैण्ड ने फ्रांस को पूर्ण समर्थन दिया व जर्मनी को युद्ध की धमकी दी। जर्मनी इस समय युद्ध करना नहीं चाहता था। अतः उसने 4 नवम्बर, 1911 ई. को समझौता कर

लिया। इस समझौते के द्वारा जर्मनी ने मोरक्को पर फ्रांस का प्रभुत्व मान लिया। फ्रांस ने भी फ्रेंच कांगो के कुछ भाग पर जर्मनी का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मोरक्को संकट टल गया।

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

1871 ई. में फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई थी। तृतीय गणतन्त्र को प्रारम्भ में निरन्तर समस्याओं का सामना करना पड़ा। तृतीय गणतन्त्र ने सफलतापूर्वक इन समस्याओं का सामना किया व फ्रांस में गणतन्त्र को शक्तिशाली बनाया। तृतीय गणतन्त्र ने फ्रांस की खोई हुई प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करने का प्रयास किया। फ्रांस ने अनेक राष्ट्रों से मैत्री स्थापित कर, पुनः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त किया। इस प्रकार तृतीय गणतन्त्र ने गृह एवं वैदेशिक दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त कीं।

प्रश्न

1. पेरिस कम्यून पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. फ्रांस में हुए गृह युद्ध के कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
3. गणतन्त्र सरकार द्वारा फ्रांस के पुनर्निर्माण के लिए किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।
4. 1875 ई. के फ्रांस के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. तृतीय गणतन्त्र की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
6. ड्रेफस काण्ड पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

22

जर्मनी में बिस्मार्क का युग (1871—1890)
[THE AGE OF BISMARCK IN GERMANY]

बिस्मार्क का परिचय
(INTRODUCTION OF BISMARCK)

1870 ई. में फ्रांस की पराजय के पश्चात् जर्मनी यूरोप का सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न राज्य था। यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 1871 से 1890 तक बिस्मार्क एक प्रभावशाली व्यक्ति बना रहा। सेडोवा के युद्ध के पश्चात् 1890 तक यूरोप में पेरिस के स्थान पर बर्लिन की प्रधानता रही।[1]

बिस्मार्क का जन्म 1 अप्रैल, 1815 ई. को ब्रेण्डनबर्ग के एक सामन्त के घर हुआ था। उसकी माता एक प्रोफेसर की पौत्री और एक उच्च अधिकारी की पुत्री थी। बिस्मार्क ने बर्लिन की व्यायामशाला में शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त गोर्टिजन और बर्लिन विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उसने प्रशा की सिविल सर्विस में नौकरी कर ली। 1845 ई. से अपने राजनीतिक जीवन को प्रारम्भ करने वाला बिस्मार्क सर्वप्रथम **पैमौरैनिया की प्रान्तीय संसद** का सदस्य बना। संसद के प्रतिनिधि के रूप में वह प्रजा की संसद में तथा फ्रेंकफर्ट की संघीय संसद का सदस्य रहा। वहां पर वह 1851 से 1859 ई. तक रहा। **इन आठ वर्षों में बिस्मार्क की राजनीतिक निपुणता में पर्याप्त वृद्धि हुई।** 1859 ई. में वह रूस में राजदूत नियुक्त किया गया। 1862 ई. में फ्रांस में जर्मन राजदूत होने के पश्चात् इसी वर्ष के अन्त में प्रशा के सम्राट विलियम प्रथम ने उसे अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया।

बिस्मार्क ने एक सुसज्जित सेना लेकर **'रक्त और लौह की नीति'** (Blood and Iron Policy) का अनुसरण करते हुए मात्र 6 वर्षों (1864—1870) के सीमित अन्तराल में ही जर्मनी का एकीकरण कर दिया। एकीकृत जर्मनी के चांसलर पद से आय-व्यय लेखा समिति को सम्बोधित करते हुए उसने कहा था कि **जर्मनी का एकीकरण केवल लौह एवं रक्त की नीति के द्वारा ही सम्भव था।**[2] जर्मनी का एकीकरण कर बिस्मार्क ने ज़र्मनी को यूरोप की राजनीति में प्रमुख स्थान दिला दिया। इसी कारण 1870 ई. से 1890 ई. तक का समय यूरोप के इतिहास में **'बिस्मार्क के युग'** (The Age of Bismarck) के नाम से जाना जाता है। उसे

1 "The Franco-German war made Germany mistress of Europe and Bismarck master of Germany."

2 "It is not by Specifying and majorities that the great questions of the time will have to be decided but by blood and iron."

आधुनिक जर्मनी का निर्माता भी कहा जाता है।[1] इस काल में बिस्मार्क की नीतियों का वर्णन निम्नवत् है—

बिस्मार्क की गृह नीति (1871—1890)
(HOME POLICY OF BISMARCK)

बिस्मार्क को अपनी गृह नीति के अन्तर्गत अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा जिनका उसने कुशलतापूर्वक निराकरण किया। उसने गृह नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए :

1. नये संविधान का निर्माण।
2. चांसलर बनने के पश्चात् प्रमुख कठिनाइयां।
3. कुल्चुर कैम्फ या सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष।
4. बिस्मार्क और समाजवाद।
5. आर्थिक नीति।

नये संविधान का निर्माण (New Constitution)—संघीय राज्य जर्मनी के लिए बिस्मार्क ने 1871 ई. में एक नये संविधान का निर्माण किया, **जिसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं—**

(i) **सम्राट** (Emperor)—संविधान में सम्राट सर्वप्रमुख था। युद्ध की घोषणा तथा सन्धि जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर उसे साम्राज्य परिषद् या बुन्देसराट (Bundesrat) की स्वीकृति लेनी होती थी। संविधान में सम्राट की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उसे जर्मन संघ का अध्यक्ष भी मनोनीत किया गया। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था, जो उसके प्रति उत्तरदायी होता था। सम्राट के कार्यों में विदेशी मामलों के निर्णय, विदेशी राजदूतों का स्वागत, युद्ध की घोषणा एवं युद्ध बन्द करना, विधान सभा के अधिवेशन आहूत करना एवं स्थगित करना, आदि प्रमुख थे। सम्राट के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया था।

(ii) **प्रधानमन्त्री (चांसलर)**—संविधान के अन्तर्गत एक प्रधानमन्त्री की व्यवस्था की गई थी, जिसे जर्मनी में चांसलर कहा जाता था। चांसलर सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। उसे सम्राट ही पदच्युत कर सकता था। चांसलर की सहायता हेतु सचिव होते थे। प्रशा का प्रतिनिधि होने के कारण उसे उच्च सदन का चेयरमैन होने, दोनों सदनों में भाषण देने, बैठकें एवं मतदान करने जैसे विशेषाधिकार प्राप्त थे। 1870 से 1890 ई. तक बिस्मार्क प्रशा का चांसलर रहा।

(iii) **व्यवस्थापिका सभा**—व्यवस्थापिका सभा दो सदनों में विभाजित थी। प्रथम साम्राज्य परिषद् (बुन्देसराट) और द्वितीय लोकसभा अथवा रीखस्टाग (Reichstag)।

साम्राज्य परिषद् (Bundesrat)—सम्पूर्ण साम्राज्य के 25 राजाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला वह उच्च सदन कहलाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति इसमें सभी राज्यों के बराबर सदस्य नहीं भेजे जाते थे। प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार होती थी—प्रशा के 17, बबेरिया के 6, सैक्सनी के 4, बर्टेनबर्ग के 4, बाडेन के 3, हेस के 3 तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों का एक-एक प्रतिनिधि था। इस सदन के अधिवेशन गुप्त एवं प्रतिनिधियों के मतदान सम्राट की इच्छानुसार होते थे। इसमें प्रशा की स्थिति सर्वाधिक सुदृढ़ थी। इस सभा को संविधान में संशोधन करने, संघ के बजट को निश्चित करने, ऑडिट करने, विभिन्न राज्यों की चुंगियां

1 'Architect of Modern Germany'

एकत्र करने, केन्द्र तथा संघ सरकारों के विवादों का निर्णय करने जैसे अधिकार प्राप्त थे। इसके अतिरिक्त युद्ध की घोषणा करने, सन्धि करने, निम्न सदन को भंग करने; जज, राजदूत, सेना तथा उच्च सेना के पदाधिकारियों की नियुक्ति करने के लिए सम्राट इस सभा की अनुमति प्राप्त करता था। केन्द्र तथा संघ सरकारों के मध्य के विवाद का निपटारा करने वाली यह सभा अपील का अन्तिम न्यायालय थी।

लोकसभा (Reichstag)—निम्न सदन अथवा जनता की प्रतिनिधि सभा के नाम से सम्बोधित की जाने वाली इस सभा में 397 सदस्य थे, जिनका निर्वाचन 25 वर्ष या इससे अधिक वर्ष की आयु वाले व्यक्ति गुप्त मतदान द्वारा 5 वर्ष के लिए करते थे। इंगलैण्ड और फ्रांस की भांति इस सभा को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। मन्त्रिमण्डल पर इसका कोई नियन्त्रण नहीं था। यद्यपि बिल इसी सभा से प्रारम्भ होकर साम्राज्य परिषद् में जाते थे, परन्तु इसे पास करने का अधिकार मात्र साम्राज्य परिषद् को ही था। बजट पर विचार-विमर्श लोकसभा में होता था। सेना सम्बन्धी बजट की स्वीकृति एक बार में ही कई वर्षों के लिए ले ली जाती थी, जिससे प्रतिवर्ष विधान सभा की स्वीकृति नहीं लेनी पड़ती थी। नये कर लगाने में लोकसभा की सम्मति आवश्यक थी, परन्तु पुराने करों की वसूली में सम्मति की आवश्यकता नहीं थी। लोकसभा को पूर्ण रूप से वित्तीय अधिकार प्राप्त नहीं थे। नये कानून के निर्माण में कुछ अधिकार रखने वाली लोकसभा व्यावहारिक रूप में केवल एक परामर्शदात्री सभा थी। वास्तविक सत्ता तो साम्राज्य परिषद् या प्रशा के सम्राट में निहित थी।

(iv) **न्यायपालिका** (Judiciary)—साम्राज्य की प्रधान न्यायपालिका संघीय सर्वोच्च न्यायपालिका या सुप्रीम कोर्ट थी। राज्यों की अपील एवं देशद्रोह के मुकदमे सुप्रीम कोर्ट में जाते थे, परन्तु सच्चे अर्थों में यह न तो संघीय न्यायालय था और न ही इसे कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त था।

संविधान के दोष—"जर्मन संविधान का स्वरूप न तो प्रजातान्त्रिक ही था और न ही उत्तरदायी।[1] इसके अतिरिक्त भी इस संविधान में **निम्नलिखित दोष थे :**

1. संघ में प्रशा को सर्वाधिक शक्ति प्राप्त थी जिससे समस्त जर्मनी प्रशा के अधीन हो गया था।

2. सर्वाधिक शक्तिशाली होते हुए भी चांसलर के पास सैनिक अधिकार नहीं थे।

3. विधि निर्माण की शक्ति केन्द्र को प्रदान करने से केन्द्र सबल तथा राज्य निर्बल हो गये थे।

4. प्रतिनिधियों की संख्या की दृष्टि से राज्यों में असमानता थी।

इन दोषों के सन्दर्भ में विवेच्य है कि बिस्मार्क द्वारा संविधान का निर्माण किया गया था। **वह सम्पूर्ण जर्मनी को प्रशा में विलीन करना चाहता था।**[2] प्रशा का कट्टर पक्षपाती होने के कारण साम्राज्य परिषद् में प्रशा की प्रधानता स्वाभाविक थी। पुनः जनसंख्या, क्षेत्रफल एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी प्रशा अन्य राज्यों की अपेक्षा विस्तृत था। बिस्मार्क ने जर्मनी की जनता को वयस्क मताधिकार तथा राज्यों को स्वशासन का अधिकार देकर वहां की जनता

1 "The constitution of Germany was neither democratic nor responsible."
2 "To consolidate Prussia in Germany and to consolidate the position of Germany in Europe."

को राजनीतिक दृष्टि से निर्णय लेने की क्षमता के विकास का पूर्ण अवसर दिया, जो साम्राज्यवादी युग में महत्वपूर्ण बात थी।

चांसलर बनने के पश्चात् बिस्मार्क की प्रमुख कठिनाइयां
(MAIN PROBLEMS BEFORE BISMARCK)

जर्मनी के एकीकरण से ही बिस्मार्क की कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ। एकीकरण के पश्चात् उसके सामने आने वाली प्रमुख **कठिनाइयां थीं :**

1. **फ्रांस से भय**—1870 ई. के सेडोवा के युद्ध में फ्रांस को पराजित करने के पश्चात् भी बिस्मार्क भयभीत था कि फ्रांस अवसर पाकर जर्मनी से प्रतिशोधात्मक युद्ध कर सकता है। इसलिए बिस्मार्क ने इस महत्वपूर्ण समस्या के समाधान के लिए **निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किए :**

(i) फ्रांस को राजनीतिक दृष्टि से पंगु करने हेतु अन्य देशों के साथ गुप्त सन्धियां।

(ii) सैनिक शक्ति की ओर ध्यान देते हुए राज्यों में सैन्य शक्ति की अनिवार्यता।

(iii) जर्मन साम्राज्य की निर्भरता सेना पर देखते हुए बिस्मार्क ने युद्ध का भय दिखाकर सैनिक बजट 7 वर्षों के लिए निश्चित करा लिया।

2. **अल्पसंख्यक जातियों के विरोध की समस्या**—जर्मन साम्राज्य की सीमा पर ऐसे विजित लोग थे, जो जर्मन शासन से घृणा करते थे। बिस्मार्क ने जर्मनीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए उन्हें जर्मन व्यवस्था का समर्थक बनाने का हर सम्भव प्रयास किया। **ऐसे अजर्मन लोगों में 50 लाख पोल, $1\frac{1}{2}$ लाख डेन तथा श्लैसविग, 20 लाख आसेस तथा लारेन के फ्रांसीसी थे।** पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराने के बाद भी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला। यद्यपि अल्पसंख्यक होने के कारण ये जर्मनी के लिए हानिकारक नहीं सिद्ध हुए, परन्तु इनका विरोध जर्मनी के लिए समस्या बनी रही।

3. **जर्मन साम्राज्य में विभिन्नताएं**—जर्मन साम्राज्य में विधि सम्बन्धी, रेल, तार तथा आर्थिक दृष्टि से अनेक भिन्नताएं थीं। इन समस्याओं के समाधान हेतु बिस्मार्क ने **निम्नलिखित कार्य किए**—

(क) समान कानून लागू करना—विभिन्न राज्यों में विभिन्न कानूनों का प्रचलन जर्मनी की एकता में बाधक था, अतः बिस्मार्क ने कानून व्यवस्था की जटिल विभिन्नताओं के स्थान पर सम्पूर्ण साम्राज्य में समान कानूनी कोड बना दिये।

(ख) रीख बैंक (Reich Bank)—विभिन्न प्रकार के बैंकों के प्रचलन से लेन-देन अत्यन्त दुष्कर था, अतः साम्राज्य में आर्थिक समरूपता लाने के लिए बिस्मार्क ने रीख बैंक की शाखाओं की स्थापना राज्यों में नगरों में की।

(ग) मुद्रा पद्धति में समानता—जर्मन साम्राज्य में भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न मुद्रा के प्रचलन से व्यापारिक सम्बन्धों के विकास में बाधा पहुंचती थी। 1871 ई. में बिस्मार्क ने समग्र देश में **एक नया इम्पीरियल सिक्का चलाया।** नये सिक्के पर सम्राट कैसर विलियम प्रथम का चिह्न भी अंकित किया गया।

(घ) राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना—जर्मन साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की न्याय प्रणाली का प्रचलन था। बिस्मार्क ने इससे उत्पन्न अव्यवस्था को दूर करने के लिए सम्पूर्ण जर्मन साम्राज्य में राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना की।

(ङ) जर्मन भाषा की अनिवार्यता—जर्मनी के विभिन्न राज्यों एवं उपनिवेशों में विभिन्न प्रकार की भाषाओं का प्रचलन था। बिस्मार्क ने एकता स्थापित करने हेतु जर्मन भाषा की अनिवार्यता घोषित कर दी। समान भाषा के कारण जनता के पारस्परिक सम्बन्धों का विकास हुआ।

(च) इम्पीरियल रेलवे बोर्ड की स्थापना—प्रत्येक जर्मन राज्य में यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों में विभिन्नताएं थीं। विभिन्न राज्यों की विभिन्न रेलें थीं। प्रबन्ध की दृष्टि से यह असुविधाजनक था। बिस्मार्क ने '**इम्पीरियल रेलवे बोर्ड**' की स्थापना करके समस्त रेल यातायात व्यवस्था को नियमित कर दिया।

4. **राजनीतिक दलों के विरोध की समस्या**—जर्मनी के राजनीतिक दलों में कतिपय बिस्मार्क के समर्थक एवं कतिपय उसकी नीतियों के विरोधी थे। राष्ट्रीय उदारवादी दल एवं समाजवादी दल प्रमुख रूप से बिस्मार्क के विरोधी थे, अतः बिस्मार्क को समय-समय पर इनके विरोध का भी सामना करना पड़ा।

कुल्चुर कैम्फ[1] या सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष

(1871 ई. से 1887 ई. तक)

(KULTUR KAMPF)

जर्मन साम्राज्य के शत्रुओं में कैथोलिक चर्च के अनुयायी तथा समाजवादी ही प्रधानतः सर्वोपरि थे। बिस्मार्क द्वारा रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध की गई कार्यवाही को कुल्चुर कैम्फ अथवा सभ्यता के लिए संघर्ष कहा जाता है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम '**वरिकाओं**' (Virchaw) नामक एक उग्रवादी नेता ने किया था।[2]

बिस्मार्क के कैथोलिक विरोधी होने के कारण

बिस्मार्क के कैथोलिक विरोधी होने के निम्नलिखित कारण थे :

(1) प्रोटेस्टेण्ट देश होने के कारण बिस्मार्क कैथोलिकों को पसन्द नहीं करता था।

(2) प्रशा-आस्ट्रिया संघर्ष में पोप तथा कैथोलिकों ने आस्ट्रिया का साथ देते हुए खुलकर यह इच्छा व्यक्त की थी कि आस्ट्रिया के हैप्सवर्ग परिवार की विजय हो।

(3) जर्मनी में स्थित कैथोलिकों के माध्यम से पोप जर्मनी के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था।

(4) जर्मनी का कैथोलिक दल एक शक्तिशाली राष्ट्र विरोधी संस्था होने के कारण राज्येतर सत्ता अर्थात् पोप से आदेश ग्रहण करता था। बिस्मार्क की गृह एवं विदेश नीति के निर्वहन में रोमन कैथोलिक बाधक थे। वे पोप की ऐहिक सर्वोच्चता के समर्थक थे।

(5) 1870 ई. में पोप द्वारा निर्मित नियम '**अभ्रान्तीयता का सिद्धान्त**' (Papal infallibility) के अनुसार पोप तथा जर्मन राज्य में विरोध होने पर जर्मन नागरिकों को पोप के आदेशों का पालन करना चाहिए। एकतन्त्रवादी बिस्मार्क इस आदेश या नियम को कैसे स्वीकार कर सकता था? वह पोप को अपने नये जर्मन साम्राज्य के लिए खतरा समझता था। **बिस्मार्क ने कहा था, "पोप के अमोघता के सिद्धान्त से राज्य के लिए बड़ा भय उत्पन्न हो गया है। पोप राज्य में मनमाने अधिकार चाहता है।..........वह हमारे कानूनों को अवैध घोषित कर**

1 कुल्चुर का अर्थ संस्कृति अथवा सभ्यता व कैम्फ का अर्थ संघर्ष होता है। इसी कारण कुल्चुर कैम्फ को सभ्यता के लिए संघर्ष भी कहा जाता है।

2 रॉबर्ट्स, बिस्मार्क, पृ. 309।

देता है और देशवासियों पर कर लगाता है। संक्षेप में प्रशा में इस विदेशी (पोप) से अधिक शक्तिशाली कोई नहीं है।''[1] रोमन कैथोलिकों के विरोध के राजनीतिक महत्व को समझते हुए उसने कहा था, **''यह संघर्ष प्रोटेस्टेण्ट राजपरिवार और कैथोलिक चर्च के बीच नहीं है, यह संघर्ष धर्म एवं अधर्म के बीच भी नहीं है, यह तो उस पुराने संघर्ष का परिणाम है, जिसमें ईसा को प्राण त्यागने पड़े। वास्तव में यह उतना ही प्राचीन है जितनी कि मनुष्य जाति। यह संघर्ष वास्तव में संत्ता हथियाने का संघर्ष है।''**

कैथोलिक चर्च के दमन हेतु बिस्मार्क द्वारा किये गये कार्य—कैथोलिक चर्च के दमन हेतु बिस्मार्क ने **निम्नलिखित कार्य किये :**

1. सर्वप्रथम बिस्मार्क ने केन्द्रीय संसद से कैथोलिक पादरियों के **शिक्षा सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये।**

2. 1872 ई. में लोकसभा में कानून बनाकर **जेसुइटों** (Jesuite) को जर्मनी से निष्कासित कर दिया। पादरियों द्वारा **धर्ममंच** (Pulpit) से राज्य की समस्याओं पर भाषण देना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। इसके अतिरिक्त लोकसभा में कैथोलिक दल को साम्राज्य का शत्रु घोषित किया।

3. **अडालबर्ट फाक** (Adalbert Falk) को प्रशा का शिक्षा मन्त्री नियुक्त किया गया। फाक ने 1873 से 1875 के बीच कैथोलिकों के विरुद्ध अनेक कानून पास किये, **जो मई कानून** (May Laws) **या फाक 'कानून** (Falk Laws) कहलाये,[2] इन कानूनों द्वारा कैथोलिकों पर **निम्नलिखित प्रतिबन्ध** लगा दिये गये :

(अ) समस्त कैथोलिक पादरियों के लिए जर्मनी के सार्वजनिक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करना तथा जर्मन नागरिक होना अनिवार्य कर दिया गया।

(ब) रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा संचालित स्कूल राज्य के नियन्त्रण में कर दिये गये।

(स) पादरी जीवन का निर्माण करने वाले स्कूल बन्द कर दिये गए।

(द) पादरियों के धर्म बहिष्कार एवं धार्मिक दण्ड देने के अधिकार समाप्त करके उनके लिए **सिविल मैरिज** (Civil Marriage) अनिवार्य हो गई। राज्य को इसके लिए अधिकृत किया गया कि वह इन कानूनों का उल्लंघन करने वाले पदाधिकारियों को पदच्युत कर दे।[3]

(य) 'चर्च के पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति सम्बन्धी अधिकार राज्य को प्रदान कर दिये गये।

(र) 1875 ई. में बिस्मार्क द्वारा सभी मठों का दमन कर दिया गया।

मई कानून के विरोध में पोप की घोषणा—पोप पायस नवम् ने मई कानूनों को अमान्य घोषित करते हुए सभी जर्मन कैथोलिकों को यह आदेश दिया कि वे इन नियमों को मानने से इनकार कर दें। बिस्मार्क ने इसे अपनी अवमानना समझते हुए घोषणा की कि ''I will

1 "It is infallibility of the Pope which threatens the state. He arrogates to himself whatever secular rights he pleases.......declares our laws null and void, levies taxes.....in a word no one in Prussia is so powerful as this foreigner."—*Bismarck*

2 रॉबर्टसन, बिस्मार्क, पृ. 315।

3 हेजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, पृ. 367।

not go to Canossa either in body or in spirit" (**हम शरीर अथवा मन से कैनोसा नहीं जायेंगे।**[1]), किन्तु कैथोलिकों ने पोप के आदेशानुसार कानूनों का उल्लंघन किया, अतः बिस्मार्क ने कठोर दण्ड नीति का अनुसरण करते हुए हजारों पादरियों को बन्दीगृह में डाल दिया तथा उन्हें धार्मिक पदों से पदच्युत कर दिया। सरकार और चर्च का यह संघर्ष देशव्यापी हो गया तथा अनेक नगर, ग्राम एवं विश्वविद्यालय इस संघर्ष के केन्द्र बन गये।

बिस्मार्क की पराजय—1877 ई. तक हुए कैथोलिकों के दमन के पश्चात् भी कैथोलिकों के प्रभाव में आशातीत एवं आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 1874 के सम्पन्न चुनावों में कैथोलिक दल के सदस्यों की संख्या 63 से बढ़कर 91 हो जाने से उनके उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अब वे पूर्व की अपेक्षा अधिक संगठित होकर शासन की नीतियों का विरोध करने लगे। 1877 **के चुनावों में यह संख्या और बढ़ गई।** 1878 में पोप नवम् की मृत्यु के पश्चात् लियो त्रयोदश नया पोप बना। यह अधिक उदार होने के साथ-साथ अधिक कूटनीतिज्ञ, निपुण एवं मध्यममार्गी था। 1880 ई. में बिस्मार्क तथा पोप लियो त्रयोदश के बीच हुए समझौते से जर्मनी एवं पोप राज्य के मध्य पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गए। बिस्मार्क ने कानूनों को रद्द करते हुए कैथोलिकों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया।[2]

कैथोलिकों के साथ बिस्मार्क द्वारा समझौता किये जाने के प्रमुख कारण

बिस्मार्क द्वारा आत्मसमर्पण या समझौता किये जाने के निम्नलिखित **दो प्रमुख कारण थे**—

(1) इंगलैण्ड, फ्रांस एवं जर्मनी मुक्त व्यापार करने वाले देश थे, परन्तु 1879 ई. के लगभग बिस्मार्क ने मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग करते हुए विदेशी अनाज एवं अन्य वस्तुओं पर शुल्क लगा दिया। इस नीति से कृषक वर्ग लाभान्वित हुआ, परन्तु उद्योगपतियों को हानि हुई। फलस्वरूप समाजवादी प्रजातन्त्रवादियों के संगठन को शक्ति प्राप्त हुई। ऐसी परिस्थिति में बिस्मार्क ने कैथोलिकों के सम्मुख झुककर उनका समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

(2) सोशल डेमोक्रेटिक दल जर्मनी के राजनीतिक दलों में सर्वशक्तिमान था। राजतन्त्र के विरोधी होने के कारण, ये जर्मन साम्राज्य के शत्रु के रूप में सामने आ रहे थे, अतः अब बिस्मार्क के लिए समाजवादियों से संघर्ष कैथोलिकों से संघर्ष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। वेन्स के अनुसार, "**बिस्मार्क के कुल्चुर कैम्फ संघर्ष का कदाचित सबसे प्रमुख परिणाम एक शक्तिशाली सेण्टरपार्टी का गठन था।**"

बिस्मार्क और समाजवाद
(BISMARCK AND SOCIALISM)

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप दो वर्गों का उदय हुआ—पूंजीपति वर्ग एवं मजदूर वर्ग। इन दोनों वर्गों में पूंजीपति वर्ग की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ तथा मजदूर वर्ग की स्थिति पैसे के लिए अपने श्रम का विक्रय करने के कारण अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय थी। मजदूर

1 ऐसा कहकर बिस्मार्क ने 1078 ई. में फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ एवं पोप ग्रेगरी सप्तम के मध्य हुए विवाद की ओर संकेत किया था जिसमें अन्ततः हेनरी चतुर्थ को पोप से हारकर क्षमायाचना के लिए इटली के शहर कैनोसा (Canossa) जाने को बाध्य होना पड़ा था।

2 "So Bismarck went to Canossa, though by a slow and circutious route but he went there and then described his journey as a compromise." —Marriot

वर्ग की शोचनीय स्थिति से द्रवित होकर कुछ हिमायती समाजवादी दल के रूप में संगठित हुए। **समाजवाद के प्रमुख तीन सिद्धान्त थे :**

(1) समाजवाद आर्थिक व्यक्तिवाद के विरुद्ध है।

(2) समाजवाद श्रमिक वर्ग तथा बेकसूर मजदूरों की आवाज है।

(3) समाजवाद धन के वितरण के सम्बन्ध में न्याय चाहता है।

जर्मनी में समाजवाद की स्थिति तथा बिस्मार्क का समाजवादियों से संघर्ष (1871 **से** 1890 **ई.**)

कार्ल मार्क्स के **'अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन' की स्थापना के साथ ही जर्मनी में भी कार्डीनेण्ड लासान ने 'यूनीवर्सल जर्मनी वर्कर्स यूनियन की स्थापना की।** ठीक इसी समय **'सोशल डेमोक्रेटिक दल' की भी स्थापना हुई। सन्** 1875 ई. में **गोथा** (Gotha) नामक स्थान पर इन दोनों दलों के मध्य समझौता हो गया। जर्मनी का समाजवादी दल सार्वजनिक वयस्क मताधिकार, गुप्त मतदान प्रणाली, प्रेस एवं भाषण की स्वतन्त्रता, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, मजदूरों की स्थिति में सुधार तथा अन्य राजनीतिक अधिकारों की मांग कर रहा था। 1871 **ई. में बिस्मार्क के कुल्चुर कैम्फ में अधिक व्यस्त होने के कारण समाजवादी दलों को अपनी शक्ति में वृद्धि करने का अच्छा अवसर मिल गया।** 1874 ई. में समाजवादी दल के 9% प्रतिनिधि लोकसभा हेतु निर्वाचित हुए। 1877 ई. के चुनावों में सोशल डेमोक्रेटिक दल को 5 लाख मत मिले और उनके 12 प्रतिनिधि निर्वाचित हुए। समाजवादी दलों को बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित बिस्मार्क ने उनकी शक्ति को नष्ट करने पर विचार किया।

समाजवादियों के दमन हेतु बिस्मार्क द्वारा किए गए कार्य

समाजवादियों की शक्ति नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक था कि समाजवादियों की संख्या लोकसभा में कम की जाय। इसके लिए जनसाधारण में उनकी प्रसिद्धि को रोकना आवश्यक था, अतः बिस्मार्क ने मई तथा जून 1878 ई. में सम्राट विलियम प्रथम की हत्या के जो दो प्रयास हुए, उनमें समाजवादियों का हाथ न होते हुए भी समाजवादियों पर आरोप लगाते हुए उन्हें समाज व राष्ट्र का शत्रु घोषित किया। फलतः 1878 के चुनाव में बिस्मार्क समर्थकों को बहुमत प्राप्त हुआ और समाजवादियों तथा उदारवादियों की संख्या में कमी आ गई, किन्तु **'समाज और राष्ट्र खतरे में है'** का नारा देकर मतदाताओं को भ्रमित करते हुए बिस्मार्क ने 1878 ई. के चुनावों में जिस प्रकार बहुमत प्राप्त किया, इतिहासकारों ने उस नीति की आलोचना की है। **प्रो. जे. पी. टेलर** ने लिखा है **"शान्ति काल में, जबकि जर्मनी को कोई खतरा नहीं था, इस प्रकार के नारे से जनता का समर्थन प्राप्त करना राजनीतिमत्ता** (Statesmanship) **की असफलता की स्वीकारोक्ति थी।"**[1]

इसके अतिरिक्त बिस्मार्क ने समाजवादियों के विरुद्ध इच्छानुसार कार्यवाही करने हेतु पुलिस को व्यापक अधिकार दिए। समाजवादियों की सभा पर प्रतिबन्ध तथा इन्हें भंग करने का अधिकार पुलिस को दे दिया गया। 1878 ई. में पारित कानूनों द्वारा लगाये गये ये प्रतिबन्ध 4 वर्ष तक लागू रहे तथा इसके बाद 1882 एवं 1886 में पुनः क्रियान्वित किए गए। कठोरतापूर्वक व्यवहृत करते हुए इन कानूनों के अन्तर्गत 1890 ई. तक लगभग 1,400 प्रकाशनों को जब्त कर लिया गया। 3,500 व्यक्तियों को बन्दी तथा 900 व्यक्तियों को

1 ए. जे. पी. टेलर, दी कोर्स ऑफ जर्मन हिस्ट्री, पृ. 131।

निर्वासित किया गया। एक लेखक ने इन कार्यों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था, **"यह कानून अत्यन्त निराशापूर्ण है और अब हम सरकार को वे पुराने ढंग अपनाते हुए देख रहे हैं, जिन्हें मेटरनिख ने 50 वर्ष पूर्व अपनाया था।"**[1]

बिस्मार्क की कठोर नीति के परिणाम

समाजवादियों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए निर्मित बिस्मार्क की कठोर दमनकारी नीति के परिणाम निराशाजनक ही रहे। अब समाजवादी अपने कार्य गुप्त रूप से क्रियान्वित करने लगे। ट्रेड यूनियनों के अवैध घोषित किए जाने के बाद भी **श्रमिक संघ** (Workingmen's Associations) की गतिविधियां उसी प्रकार गुप्त रूप से संचालित होती रहीं जैसे कि इंगलैण्ड में 19वीं सदी के आरम्भ में विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से संचालित रहीं। स्विट्जरलैण्ड से प्रकाशित एक साप्ताहिक समाचार-पत्र पुलिस के प्रतिबन्ध के बाद भी हजारों श्रमिकों तक पहुंच जाता था। लोकसभा में श्रमिकों की संख्या बढ़ती गई। यह **संलग्न तालिका से स्पष्ट है—**

वर्ष	समाजवादियों की संख्या
1881	12
1884	24
1890	35
1912	110

समाजवादियों की सफलता के कारण ही समाजवाद के इतिहास में यह काल **'वीर युग'** (Heroic Age) के नाम से जाना जाता है।[2]

प्रो. हेज के अनुसार, **"बिस्मार्क यूरोप में सारे राजनीतिज्ञों और शासकों में श्रमिकों के हित के लिए कार्य करने वालों में अग्रणी था। उसका उद्देश्य दोहरा था। वह श्रमिकों की शिकायतें समाप्त करके समाजवादियों की शक्ति को निर्बल करना चाहता था। दूसरे, वह स्वयं एक शक्तिशाली सेना का निर्माण करना चाहता था और इसके लिए यह आवश्यक था कि श्रमिकों की दशा में सुधार किया जाये।"**[3] बिस्मार्क ने अपनी इस नीति को **राज्य समाजवाद** (State Socialism) **का नाम दिया। राज्य समाजवाद के नाम से बिस्मार्क ने श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए निम्नलिखित कार्य किए—**

(1) 1881 ई. में बिस्मार्क ने लोकसभा के समक्ष राजा के कर्तव्य सम्बन्धी एक नये सिद्धान्त की घोषणा की। इस घोषणा से पूर्व कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना ही राजा के कर्तव्य थे, परन्तु अब इस घोषणा के बाद मजदूरों की दशा में सुधार, सामाजिक बुराइयों का निराकरण तथा निर्बल जनता का कल्याण करना राजा का नैतिक कर्तव्य हो गया।

(2) 1883 ई. में बिस्मार्क ने **रोग बीमा अधिनियम** (Sickness Insurance Laws) **पास करवाया।** इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक श्रमिक को अनिवार्य रूप से बीमारी के विरुद्ध बीमा कराना पड़ता था, जिससे बीमार अवस्था में श्रमिक को उसकी दैनिक मजदूरी का 1/2 या 3/4 भाग मिलता था। समाजवादी नेता बेबल (Beble) ने इस अधिनियम का विरोध किया।

(3) 1884 **ई. में दुर्घटना बीमा अधिनियम** (Accident Insurance Laws) **पास किया गया।** इस अधिनियम के अनुसार मजदूरों के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने पर उनकी सहायता के लिए निश्चित धनराशि दी जाती थी।

1 हीडेलम, **बिस्मार्क**, पृ. 409।

2 **न्यू केम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री**, जिल्द 11, पृ. 289।

3 **"Bismarck was the pioneer among European statesmen to take action on behalf of the workers."** —*Hayes.*

(4) 1887 ई. में श्रमिकों के काम करने की अवधि निश्चित की गई। रविवार का दिन अवकाश का घोषित किया गया। बच्चों तथा महिलाओं की नियुक्ति पर नियन्त्रण लगा दिया गया।

(5) 1889 ई. में पारित **वृद्धावस्था बीमा अधिनियम** (Old age Insuance Laws) **के अनुसार** 60 वर्ष से अधिक आयु के श्रमिकों का बीमा करके उनके जीवन-यापन की समस्या का समाधान किया गया।

सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए बनी इस योजना की महत्ता 19वीं सदी के इतिहास में स्वीकार की जाती है। यह ठीक है कि बिस्मार्क अपनी इस नीति के द्वारा अपने मूल उद्देश्य अर्थात् **शोसल-डेमोक्रेटिक दल के** प्रभाव को रोकने में सफल न हो सका, परन्तु इस योजना का लाभ इतना अवश्य हुआ कि जर्मनी के मजदूर **स्वतन्त्रता** (Liberty) की अपेक्षा सुरक्षा (Security) को महत्वपूर्ण समझने लगे। **केटलबी** ने इस विषय में लिखा है, **"यह सम्पूर्ण योजना स्पेशल डेमोक्रेटिक दल को उखाड़ने के उद्देश्य से तैयार की गई थी। इसलिए यह जर्मनी में असफल प्रमाणित हुई।"**[1]

बिस्मार्क की आर्थिक नीति (संरक्षण की नीति)
(ECONOMIC POLICY OF BISMARCK)

जर्मनी में 1875 ई. की आर्थिक मन्दी के फलस्वरूप कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में हुई हानि को देखते हुए **मुक्त व्यापार प्रणाली** (Free Trade Policy) के स्थान पर **संरक्षण की नीति** (Protection Policy) की नीति अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा। **जर्मन अर्थशास्त्री वेगनर** तथा उनके अन्य सहयोगियों ने भी राष्ट्रीय उद्योगों एवं कृषि विकास हेतु संरक्षण की नीति को उपयुक्त बताया। 1876 ई. में प्रसिद्ध **उद्योगपति विल्हेम वान कारडार्फ** (Wilhelm Von Kardorff) **की पुस्तक में उन्मुक्त व्यापार प्रणाली** त्यागने के पक्ष में प्रस्तुत किये गये तर्कों से बिस्मार्क काफी प्रभावित हुआ। इसके पूर्व फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस तथा अमेरिका संरक्षण की नीति अपनाकर काफी समृद्ध हो रहे थे।

अतः 1879 ई. में बिस्मार्क ने एक कानून द्वारा राज्यों से आयात की जाने वाली वस्तुओं एवं अनाज पर उच्च दर से आयात शुल्क लगा दिया। इन वस्तुओं में शक्कर एवं तम्बाकू भी सम्मिलित थे। 1885 ई. एवं 1887 ई. में पुनः आयात शुल्क की दरों में वृद्धि की गई। बिस्मार्क की इस नीति से जर्मनी का बाजार कृषकों एवं उद्योगपतियों के हाथों में आ गया तथा विदेशों में भी उसके व्यापार का मार्ग प्रशस्त हुआ। अब जर्मनी उद्योगों के विस्तार के कारण संसार के प्रमुख औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा।

बिस्मार्क की इस प्रकार की संरक्षण की नीति से जर्मनी की आन्तरिक राजनीति भी प्रभावित हुई। उसे सेण्टर पार्टी का समर्थन प्राप्त हुआ और उदारवादी दल दो भागों में विभक्त होकर प्रभावहीन हो गया। **निःसन्देह यह बिस्मार्क की महत्वपूर्ण विजय थी**[2]

बिस्मार्क की आन्तरिक नीति के अन्तिम वर्ष (1886—1890)

बिस्मार्क की आन्तरिक नीति के अन्तिम वर्ष उसके विरोधियों की संख्या बढ़ जाने से विरोध से युक्त थे, परन्तु बिस्मार्क ने विरोधों के बावजूद भी 1886 ई. में सेना सम्बन्धी बिल

1 **केटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स,** पृ. 354।

2 **न्यू कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री,** जिल्द 11, पृ. 191।

लोकसभा में रखे जिसमें सैनिक व्यय में 10% वृद्धि का प्रस्ताव था। **इसका कारण बिस्मार्क ने बल्गेरिया का संकट बतलाया।**

जब तक विलियम प्रथम जर्मनी का शासक रहा, तब तक बिस्मार्क ने विरोधों के बावजूद भी जर्मनी का प्रशासन अपनी इच्छानुसार ही चलाया, किन्तु 5 मार्च, 1888 ई. को विलियम प्रथम की मृत्यु के पश्चात् 15 जून, 1888 को विलियम द्वितीय के गद्दी पर बैठने से दोनों के विचारों में भिन्नता होने के कारण मतभेद उत्तरोत्तर बढ़ता गया। फरवरी, 1890 ई. के चुनावों में बिस्मार्क के समर्थकों की संख्या 250 से घटकर 135 रह जाने तथा विरोधियों की संख्या 207 हो जाने से बिस्मार्क की शक्ति को बड़ा आघात लगा, अतः 30 मार्च, 1890 ई. को बिस्मार्क ने प्रधानमन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया। **बिस्मार्क द्वारा त्यागपत्र दिये जाने से यूरोप के इतिहास में एक युग का अन्त हो गया जो कि 'बिस्मार्क का युग' के नाम से जाना जाता है।**

बिस्मार्क की विदेश नीति (1871 से 1890)
(BISMARCK'S FOREIGN POLICY)

विदेश नीति का मूल सिद्धान्त

1870 ई. के पश्चात् बिस्मार्क की विदेश नीति का स्वरूप स्वयं उसके शब्दों में स्पष्ट होता है। नवीन जर्मन साम्राज्य के चांसलर के पद से उसने कहा था, **"जर्मनी पूर्णरूपेण एक सन्तुष्ट राष्ट्र है। यद्यपि युद्ध के द्वारा जर्मनी को राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रधानता मिली है, परन्तु जर्मनी पुनः युद्ध का मार्ग ग्रहण करेगा तो सारी सफलताएं नष्ट हो जायेंगी।"** बिस्मार्क के इस कथन से उसकी विदेश नीति के **निम्नलिखित प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता है :**

(1) यूरोप की राजनीति में फ्रांस को एकाकी रखना—बिस्मार्क ने सेडोवा के युद्ध के पश्चात् वर्नस्टाफ को लिखा था, "फ्रांस की हमारे विरुद्ध कटुता किसी भी प्रकार कम नहीं हो सकती, चाहे हम उसके राज्य का कुछ भाग लें अथवा छोड़ दें।"[1] इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए फ्रैंकफर्ट की सन्धि के पश्चात् विक्टर ह्यूगो ने कहा था, **अब यूरोप में दो राष्ट्र भयप्रद होंगे। एक (जर्मनी) इसलिए कि वह विजयी है और दूसरा (फ्रांस) इसलिए कि वह पराजित है।**[2] वास्तव में पराजित फ्रांस आल्सेस तथा लारेन के महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेशों का छिन जाना एवं अपने राष्ट्रीय अपमान को कभी नहीं भूल सकता था। जर्मनी को फ्रांस के आक्रमण का भय अस्वाभाविक नहीं था, अतः बिस्मार्क ने फ्रांस को यूरोप में मित्रहीन बनाये रखना अपनी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य निश्चित किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिस्मार्क ने यूरोपीय देशों से सन्धियां एवं समझौते कर फ्रांस को मित्रहीन रखा।

(2) राज्य विस्तार की नीति का परित्याग—1870 में जर्मनी का एकीकरण पूर्ण करने के बाद बिस्मार्क ने एकीकृत जर्मनी को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित करना उद्देश्य निश्चित किया। शान्ति एवं वैभव की स्थापना के लिए जर्मनी का ध्यान युद्धों से हटना आवश्यक था,

1 **ए. जे. पी. टेलर, दि स्ट्रगल फॉर मास्ट्री इन यूरोप,** पृ. 217।

2 ग्राण्ट एवं टेम्परले, **यूरोप इन दि नाइन्टीन्थ एण्ड ट्वेन्टियथ सेंचुरीज,** पृ. 28।

अतः बिस्मार्क ने घोषणा की; "1871 ई. **के पश्चात् जर्मन साम्राज्य की विदेश नीति का मुख्य आधार शान्ति स्थापना तथा जर्मनी के विरुद्ध संगठनों को रोकना है। जर्मनी की नीति का आधार रूस है।**"[1]

(3) **इंगलैण्ड से सद्भावपूर्ण दृष्टिकोण**—फ्रांस को एकाकी रखने के लिए यूरोप की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले देश इंगलैण्ड से मित्रता आवश्यक थी। इंगलैण्ड से शत्रुता केवल उपनिवेश स्थापना की ही ओर से हो सकती थी, अतः बिस्मार्क ने घोषित किया कि जर्मनी महाद्वीपीय देश है, साम्राज्यवादी नहीं। उसने समुद्र पार दूसरे महाद्वीपों में उपनिवेश स्थापना की ओर ध्यान नहीं दिया। दूसरा, बिस्मार्क ने जहाजी बेड़े के निर्माण में इंगलैण्ड से प्रतिस्पर्धा भी नहीं की, **अतः उसने स्पष्ट घोषित किया, "स्थल के चूहे एवं जल के चूहे में कभी लड़ाई नहीं होती है।"**

(4) **आस्ट्रिया के साथ घनिष्ठता**—1866 ई. के आस्ट्रिया एवं प्रशा के युद्ध के पश्चात् बिस्मार्क ने यह अनुभव कर लिया था कि भविष्य की यूरोप की राजनीति में आस्ट्रिया ही जर्मनी का सबसे सहायक देश हो सकता है, अतः आस्ट्रिया एवं प्रशा की परम्पराओं एवं इतिहास में समानता होने के कारण बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को अपना मित्र बनाने का प्रबल प्रयत्न किया। 1879 से 1914 ई. तक आस्ट्रिया जर्मनी का घनिष्ठ मित्र बना रहा।

(5) **रूस के प्रति मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण**—यूरोप में रूस एक ऐसा देश था जो थोड़ी-सी असावधानी होने पर जर्मनी का साथ छोड़ सकता था, अतः बिस्मार्क ने रूस को अपना मित्र बनाये रखने का निरन्तर प्रयास किया।

(6) **पूर्वी समस्या के प्रति उदासीन**—पूर्वी समस्या को व्यर्थ की समस्या समझते हुए बिस्मार्क ने इसके प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। **वह कहा करता था, "कुस्तुन्तुनिया से आने वाली डाक को मैं कभी नहीं खोलता।"**

(7) **जर्मन साम्राज्य के पक्ष में गुटों का निर्माण करना**—ब्रिटेन के यूरोप की राजनीति से पृथक् रहने के कारण बिस्मार्क पांच राष्ट्रों—जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रांस, इटली तथा रूस को शक्तिशाली समझता था, अतः पांच राष्ट्रों में से तीन का गुट बनाकर बिस्मार्क यूरोप की राजनीति में अपना बहुमत स्थापित करना चाहता था। **उसकी इस नीति की स्पष्टता उन विचारों से होती है जिसे उसने रूसी राजदूत के समक्ष रखा था।**"[2]

बिस्मार्क की सन्धियां तथा समझौते
(TREATIES AND COALITIONS OF BISMARCK)

अपनी विदेश नीति के सिद्धान्तों के अनुरूप बिस्मार्क ने विभिन्न राज्यों से **निम्नलिखित सन्धियां एवं समझौते किए :**

(1) **त्रिसम्राट संघ** (Three Emperors League, 1872)—आस्ट्रिया से सम्बन्धों को घनिष्ठ करने के पश्चात् बिस्मार्क रूस को अपना मित्र बनाना चाहता था, परन्तु पूर्वी समस्या के कारण रूस तथा आस्ट्रिया के सम्बन्ध उलझे हुए थे। 1873 ई. में जब आस्ट्रिया के सम्राट

1 "The foreign policy of the German Empire since 1871 has been the maintenance of peace and prevention of Anti German Coalitions and the pivot of the policy in Russia."

2 "You forget the importance of being a party of three on the European chess board...Nobody wishes to be in a minority. All politics reduce themselves to this formula, try to be a trio in a world governed by five powers." —*Bismarck*.

फ्रांसिस जोजफ और रूस का जार, जार द्वितीय एलेक्जेण्टर बर्लिन में सम्राट विलियम से भेंट करने आये थे तो बिस्मार्क ने तीन सम्राटों के संघ का निर्माण किया। **यह कोई निश्चित, लिखित तथा दायित्वपूर्ण नहीं, वरन् कुछ महत्वपूर्ण बातों पर तीन सम्राटों के बीच एक समझौता था।** इस समझौते के अनुसार तीन सम्राटों ने शान्ति, रक्षा तथा पारस्परिक सहयोग की इच्छा प्रकट करते हुए एक-दूसरे को आश्वासन दिया था कि युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने पर तीनों देश पारस्परिक हितों के लिए आपस में विचार-विमर्श करेंगे। इस समझौते की पुष्टि 1874, 1875 एवं 1876 में क्रमशः पीट्सबर्ग, इम्स एवं बर्लिन में हुई। त्रिसम्राट संघ के प्रति अन्य राष्ट्रों के आकर्षण के साथ-साथ, 1873 ई. में इटली के सम्राट विक्टर एमैनुएल ने बर्लिन की यात्रा के दौरान समझौते का समर्थन किया। 1878 ई. तक यह संघ स्थिर रहा।

बर्लिन सन्धि द्वारा संघ में अवरोध—1878 ई. में बाल्कन प्रदेशों के प्रश्न को लेकर हुई सन्धि में बिस्मार्क द्वारा रूस-विरोधी रुख अपनाये जाने से रूस एवं जर्मनी के सम्बन्धों में कटुता आ गई। इस कटुता ने त्रिसम्राट गुट को भंग कर दिया। **गूच के अनुसार, "उच्च राजनीति के क्षेत्र में बर्लिन कांग्रेस का विशिष्ट परिणाम यह था कि रूस एवं जर्मनी में तनाव पैदा हो गया।"**[1] रूस एवं जर्मनी के मध्य यह कटुता 1879 से 1881 ई. तक बनी रही।

(2) **द्विराज्य सन्धि** (Dual Alliance, 1879)—त्रिसम्राट संघ के भंग हो जाने पर रूस ने बिस्मार्क की तीव्र आलोचना की। रूस व जर्मनी की उत्तरोत्तर बढ़ती कटुता के फलस्वरूप युद्ध अवश्यम्भावी प्रतीत होने लगा। इधर फ्रांस से भी शत्रुता होने के कारण दो सीमाओं पर एक साथ युद्ध करना सम्भव न था, अतः **सुरक्षा के लिए बिस्मार्क ने 1879 ई. में आस्ट्रिया के साथ द्विराज्य सन्धि की।**

सन्धि की शर्तें

(i) यदि आस्ट्रिया अथवा जर्मनी में से किसी पर भी रूस आक्रमण करे तो एक मित्र दूसरे मित्र की सहायता करेगा।

(ii) कोई अन्य देश यदि रूस की सहायता से दोनों में से किसी पर भी आक्रमण करे तो एक मित्र दूसरे मित्र की सहायता करेगा।

(iii) यदि कोई अन्य देश बिना रूस की सहायता के किसी एक पर आक्रमण करे तो दूसरा देश तटस्थ रहेगा।

(iv) यह सन्धि गुप्त रहेगी। 5 वर्ष के पश्चात् दोनों देशों की इच्छा से तीन-तीन वर्ष के लिए पुनः बढ़ाई जा सकती है।

इस सन्धि ने जर्मनी को सुरक्षा प्रदान की। **बेन्स के अनुसार, "द्विराज्य सन्धि ने बिस्मार्क को दोहरा आश्वासन दिया। यदि जर्मनी पर फ्रांस आक्रमण करता तो आस्ट्रिया जर्मनी की सहायता करता और यदि जर्मनी पर फ्रांस आक्रमण करता तो आस्ट्रिया कदापि भी फ्रांस की सहायता नहीं करता।**[2] **वास्तव में इस सन्धि को बिस्मार्क की महान सफलता माना जाता है।"**[3] परन्तु इस सन्धि ने गुप्त राजनीति के युग का श्रीगणेश किया और कालान्तर में यही गुप्त सन्धियां प्रथम विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुईं।

1 जी. पी. गूच, **हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप** (1878-1919), पृ. 27।
2 **Benns**, *European History Since* 1870.
3 **"Contemporary opinion regarded Bismarck's establishment of this alliance as a master-stroke."** —*Fay.*

(3) 1881 **ई. में पुनः तीन सम्राटों के गुट की स्थापना** (Three Empirors League re-constituted)—1878 ई. में बर्लिन की सन्धि ने त्रिराष्ट्र संघ को समाप्त कर दिया था, परन्तु बिस्मार्क रूस से शत्रुता के पक्ष में नहीं था, अतः बिस्मार्क के अथक प्रयत्नों से 18 जून, 1881 ई. को बिस्मार्क एवं आस्ट्रिया तथा रूस के राजदूतों ने बर्लिन में तीन सम्राटों के समझौते पर हस्ताक्षर किए। 1881 **ई. में हुए इस समझौते की शर्तें इस प्रकार थीं**—

(i) तीनों राष्ट्रों में से किसी एक के चौथे राष्ट्र के साथ युद्ध की स्थिति में शेष दो राष्ट्र तटस्थ रहकर संघर्ष को सीमित करने की चेष्टा करेंगे।

(ii) जर्मनी की सहमति से रूस ने बर्लिन सन्धि द्वारा स्थापित आस्ट्रिया की नवीन स्थिति एवं उसके हितों का सम्मान करने का वचन दिया।

(iii) तीनों राष्ट्रों ने बाल्कन क्षेत्र में एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखने का पूरा आश्वासन दिया तथा यह भी निश्चित किया गया कि यूरोप में तुर्की की पूर्व निर्धारित सीमा में परिवर्तन तीनों राज्यों की सहमति के बिना सम्भव न होगा।

(iv) तीनों राष्ट्रों ने इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया कि डार्डेनलीज के जलडमरूमध्य को तुर्की सहित सभी राज्यों के युद्धपोतों के लिए बन्द रखा जाये तथा तीनों राज्य इस बात का ध्यान रखेंगे कि तुर्की इस सिद्धान्त का उल्लंघन न कर सके।

यह समझौता तीन वर्षों के लिए था और इसे गुप्त रखने का निर्णय लिया गया।

ए. जे. पी. टेलर के अनुसार, **"तीन सम्राटों का संघ, जो वास्तव में रूस के साथ मित्रता का समझौता था, घुमा-फिरा कर त्रिराज्य सन्धि के निर्माण का कारण बना जो यथार्थ में आस्ट्रिया के हित के विरुद्ध था।"**[1]

(4) **त्रिराज्य सन्धि** (Triple Alliance, 1882)—आस्ट्रिया एवं रूस की ओर से निश्चिन्त होकर बिस्मार्क का ध्यान इटली की ओर गया, यद्यपि बिस्मार्क इटली को नितान्त स्वार्थी, अवसरवादी एवं अविश्वसनीय समझता था, परन्तु बिस्मार्क इटली व फ्रांस की मित्रता को जर्मनी का संकट मानता था। दूसरी ओर उसके मित्र देश आस्ट्रिया को इटली एवं रूस के आक्रमण का भय था। बिस्मार्क इटली तथा आस्ट्रिया के बीच मित्रता सम्पन्न कराकर आस्ट्रिया व इटली की ओर से सन्तुष्ट होना चाहता था। इधर इटली भी ट्यूनिश विवाद में असफलता के कारण फ्रांस के विरुद्ध मित्र की तलाश में था। **अपने एकाकीपन को समाप्त करने के लिए इटली ने बिस्मार्क से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करते हुए त्रिराज्य सन्धि पर हस्ताक्षर किए।**

त्रिराज्य सन्धि की प्रमुख शर्तें

(i) तीनों राष्ट्र (आस्ट्रिया जर्मनी एवं इटली) ने एक दूसरे के प्रति मित्रता तथा किसी भी एक के विरुद्ध कोई सन्धि न करने का आश्वासन दिया। तीनों राष्ट्रों ने राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याएं पारस्परिक विचार-विमर्श से हल करने का निश्चय किया।

(ii) इटली पर फ्रांस के आक्रमण के समय आस्ट्रिया एवं जर्मनी अपने मित्र इटली की सहायता करेंगे।

(iii) जर्मनी पर फ्रांस का आक्रमण होने पर जर्मनी की सहायता इटली करेगा।

1 ए. जे. पी. टेलर, **दि स्ट्रगल फॉर मास्टी इन यूरोप**, पृ. 270-72।

(iv) रूस के जर्मनी या आस्ट्रिया पर आक्रमण के समय इटली तटस्थ रहेगा।

(v) यह सन्धि 5 वर्ष के लिए रहेगी जो कि सन्धिकर्ता राष्ट्रों की सहमति से तीन-तीन वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकती थी। यह सन्धि गुप्त रहेगी।

इस सन्धि ने यूरोप में जर्मनी का प्राधान्य सुरक्षित कर दिया। **राबर्टसन** ने लिखा है, **"ट्रिपल एलायन्स ने मध्य यूरोप को पूरा कर दिया, उससे आल्पस के दर्रे बन्द हो गए। उसने वियाना की ओर का विशाल द्वार जिसमें होकर नेपोलियन ने 1776 ई. में आक्रमण किया था, बन्द कर दिया। उससे जर्मनी को मध्य सागर तक पहुंचने का मार्ग मिला। उसके कारण फ्रांस अपने पड़ोसी लेटिन राज्य (इटली) से मित्रता नहीं कर सका और उसको आल्पस की ओर से आक्रमण के बचाव के लिए अपनी सेना की दो सर्वश्रेष्ठ दुकड़ियां रखना आवश्यक हो गया।"**[1]

यद्यपि बिस्मार्क ने इस सन्धि को **शान्ति का संघ** (League of Peace) कहकर सुरक्षात्मक सन्धि कहा था, परन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि कालान्तर में इस सन्धि का आश्रय लेकर इटली व आस्ट्रिया ने उग्र नीति का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया था। यथार्थ में यह गुट उतना शक्तिशाली नहीं था जितना कि ऊपर से दिखाई देता था। **इटली के हित जर्मनी एवं आस्ट्रिया के हितों से भिन्न होने के कारण इस मैत्री का आधार सदा ही दुर्बल बना रहा।**

(5) **रूमानिया के साथ सन्धि** (Treaty with Romania)—1881 ई. की आस्ट्रिया और सर्बिया की सन्धि ने सर्बिया को आस्ट्रिया का संरक्षित राज्य बना दिया। 1883 ई. में रूमानिया के राजा केरोल के जर्मनी आगमन पर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सम्मुख रूमानिया के साथ सन्धि का प्रस्ताव रखा। आस्ट्रिया के इस प्रस्ताव के स्वीकार कर लेने पर तीनों देशों के मध्य एक सन्धि हो गई। **इस गुप्त सन्धि का कार्यकाल 5 वर्ष था, परन्तु तीनों सदस्यों की सहमति से यह तीन-तीन वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकती थी।**

(6) **त्रिराज्य सन्धि की पुनरावृत्ति** (1887) (Triple Alliance Reconstituted)—जर्मनी ने फ्रांस के तथा आस्ट्रिया ने रूस क़े आक्रमण के भय से उत्पन्न संकटपूर्ण स्थिति के कारण 1882 ई. में इटली से की गई त्रिराज्य सन्धि की पुनरावृत्ति की। **1887 ई. की इस पुनरावृत्ति में कुछ नई धाराएं भी जोड़ दी गईं :**

(i) आस्ट्रिया तथा जर्मनी ने बाल्कान प्रदेशों में इटली के हित को स्वीकार किया।

(ii) भविष्य में टर्की साम्राज्य का यदि विभाजन होगा तो इटली की क्षतिपूर्ति की जायेगी।

(iii) इटली, दक्षिणी अफ्रीका में औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर सकता है। इस विस्तार में जर्मनी तथा आस्ट्रिया उसकी सहायता करेंगे।

(iv) आस्ट्रिया ने आवश्यकता पड़ने पर इटली को अपनी सेना आस्ट्रिया से ले जाने की अनुमति दे दी।

(7) **पुनराश्वासन सन्धि** (Re-Insurance Treaty, 1887)—1887 ई. में रूस एवं आस्ट्रिया के मध्य बल्गेरिया के प्रश्न को लेकर कटुता उत्पन्न होने से दोनों के बीच युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऐसी स्थिति में त्रिराष्ट्र संघ का अस्तित्व डांवाडोल हो गया और फ्रांस

1 राबर्टसन, बिस्मार्क, पूर्वोक्त।

के रूस से मिल जाने की सम्भावनाएं भी बढ़ गईं, अतः बिस्मार्क ने रूस के साथ पुनराश्वासन की सन्धि कर युद्ध को टालने का प्रयत्न किया। **इस सन्धि की शर्तें निम्नवत् थीं :**

(i) यदि कोई चौथा देश रूस, जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करेगा तो अन्य देश तटस्थ रहेंगे।
(ii) दोनों देश उस युद्ध को सीमित रखने की चेष्टा करेंगे।
(iii) बर्लिन सन्धि में आस्ट्रिया के हितों को रूस ने स्वीकार कर लिया।
(iv) तुर्की किसी देश को कोई विशेषाधिकार नहीं देगा। यदि उसने ऐसा किया तो रूस, जर्मनी एवं आस्ट्रिया तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर सकते हैं।

बिस्मार्क की कूटनीतिक योजनाओं की यह अन्तिम सन्धि थी जो 1890 ई. तक उसके परित्याग तक बनी रही। इस सन्धि से बिस्मार्क को जर्मनी एवं फ्रांस के युद्ध के समय तटस्थता का आश्वासन तो मिला, परन्तु यथार्थ रूप में कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं निकला, क्योंकि आस्ट्रिया तथा रूस की जनता इस सन्धि से अनभिज्ञ थी।[1] सन्धि होने के बाद भी रूस के समाचार-पत्रों में जर्मनी की तीव्र आलोचना होने पर सितम्बर 1887 में बिस्मार्क ने इसका विरोध किया, परन्तु इस विरोध का कोई परिणाम नहीं निकला।

(8) **बिस्मार्क और इंगलैण्ड** (Bismarck and England)—**'इंगलैण्ड की सद्‌भावना को यथासम्भव न खोया जाय'** इस नीति पर चलते हुए बिस्मार्क ने इंगलैण्ड से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए निम्नलिखित कार्य किए :

(i) **'जर्मनी विस्तारवादी देश नहीं है।'** बिस्मार्क की इस घोषणा से साम्राज्यवादी इंगलैण्ड के साथ जर्मनी की प्रतियोगिता का प्रश्न समाप्त हो गया।
(ii) उपनिवेशों की स्थापना की ओर ध्यान न देने से बिस्मार्क इंगलैण्ड की औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता से दूर रहा।
(iii) बिस्मार्क ने जहाजी बेड़े का निर्माण नहीं किया।
(iv) इंगलैण्ड की पूर्वी समस्या के प्रति सावधानी देखकर बिस्मार्क इस समस्या के प्रति उदासीन हो गया, जिससे दोनों देशों के बीच कटुता का प्रश्न समाप्त हो गया।
(v) इंगलैण्ड से मधुर सम्बन्ध बनाये रखने हेतु बिस्मार्क ने अपने पुत्र को इंगलैण्ड में राजदूत नियुक्त किया।
(vi) बिस्मार्क ने इंगलैण्ड के साथ दो बार सन्धि का प्रस्ताव रखा, परन्तु यूरोपीय गुटबन्दी से दूर रहते हुए इंगलैण्ड ने विनम्रतापूर्वक सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

अपने इन कार्यों से इंगलैण्ड के प्रति आश्वंस्त होकर 1885 ई. में बिस्मार्क ने कहा था, **"जब तक इंगलैण्ड में अप्रत्याशित प्रकृति का मन्त्रिमण्डल सत्ताधारी न बन जाये, तब तक दोनों देशों के बीच युद्ध की कोई सम्भावना नहीं हो सकती।"**

बिस्मार्क की औपनिवेशिक नीति—इंगलैण्ड के अतिरिक्त यूरोप के समस्त राज्यों में 1870 ई. के पश्चात् ही औपनिवेशिक युग का आरम्भ हुआ। उपनिवेश स्थापना राष्ट्रीय गौरव का प्रश्न था। जर्मनी में भी उपनिवेश स्थापना की मांग तीव्रतर होती जा रही थी। जर्मनी की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए, धर्म प्रचारकों के अपने-अपने धर्म प्रचार के लिए, बढ़ते हुए

1 गूच, **हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 117।**

उद्योगों के लिए, मिलों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति तथा तैयार हुए माल के लिए नए बाजारों की उपलब्धता हेतु उपनिवेशों की स्थापना आवश्यक थी। **लोकमत की अवहेलना करने में असमर्थ बिस्मार्क ने 1879 ई. में समोआ द्वीप में जर्मन कम्पनी को कुछ विशेषाधिकार प्रदान करते हुए 1882 ई. में जर्मन औपनिवेशिक संघ की स्थापना की।** इस संघ की स्थापना के पश्चात् अन्य कम्पनियों ने भी राजकीय सहायता प्राप्त कर पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका, कैमरून, टोगोलैण्ड तथा न्यूगायना में उपनिवेश स्थापित किए। 1886 ई. में बिस्मार्क ने इन उपनिवेशों के मध्य स्टीमर सेवा प्रारम्भ करते हुए जर्मन पदाधिकारियों तथा पुलिस की नियुक्ति की।

बिस्मार्क की औपनिवेशिक नीति के जहां तक महत्व का सम्बन्ध है, इस सन्दर्भ में प्रो. टेलर का कथन महत्वपूर्ण है, **''जर्मनी के उपनिवेशों का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं था। ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध होने की स्थिति में ही उनका सामरिक महत्व हो सकता था।''** इस दृष्टिकोण में बिस्मार्क की औपनिवेशिक नीति सफल नहीं कही जा सकती।

बिस्मार्क की विदेश नीति की समीक्षा

1871 ई. से 89 ई. तक के अपने द्वितीय महत्वपूर्ण काल में बिस्मार्क यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिज्ञ बना रहा। जर्मनी तथा फ्रांस की शत्रुता को ध्यान में रखते हुए जर्मन साम्राज्य की सुरक्षा एवं शान्ति के लिए बिस्मार्क ने विभिन्न राष्ट्रों से सन्धियां कीं एवं गुट बनाना प्रारम्भ किया। उसकी विदेश नीति से न केवल फ्रांस निर्बल एवं एकाकी रहा, अपितु जर्मनी की सीमाएं भी अन्य राष्ट्रों से अनुल्लंघनीय रहीं। **इसीलिए सम्राट विलियम ने उसके विषय में कहा था, ''बिस्मार्क एक ऐसा बाजीगर था, जो एक साथ ही 5 गेंदों (आस्ट्रिया, इटली, रूस, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड) से खेल सकता था, जिसमें कम से कम दो सदा हवा में रहती थीं।''[1]**

इतना होते हुए भी बिस्मार्क की विदेश नीति दोषमुक्त नहीं कही जा सकती। ए. जे. पी. टेलर तथा जैम्सजौर्ट जैसे आधुनिक इतिहासकारों ने बिस्मार्क की कूटनीतिक उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए भी माना है कि बिस्मार्क महान नहीं था, वरन् बिस्मार्क के समय यूरोप के किसी भी देश में ऐसा राजनीतिज्ञ नहीं था जो बिस्मार्क की बराबरी कर सके। **ए. जे. पी. टेलर का मनना है कि ''1890 ई. के पश्चात् यूरोपीय राजनीतिक रंगमच पर जो गन्दगी और भ्रष्टाचार परिलक्षित हुआ, उसका उत्तरदायित्व बिस्मार्क पर जाता है।''[2]**

जब तक बिस्मार्क फ्रांस को ही अपना शत्रु समझता था, तब तक उसकी सन्धियां एवं कूटनीति पूर्ण सफल रहीं, परन्तु रूस को अपना शत्रु बना लेने के पश्चात् उसकी कूटनीति के सम्मुख कठिनाइयां उपस्थित होने लगीं। परिणामतः रूस और फ्रांस दोनों ने अपने उभयनिष्ठ शत्रु जर्मनी के विरुद्ध मित्रता स्थापित कर ली। वास्तव में उसके द्वारा किया गया तीन सम्राटों के संघ का समझौता तथा पुनराश्वासन सन्धि सारहीन थी। यह उसकी विदेश नीति का सर्वाधिक दोषपूर्ण पक्ष था, यद्यपि बिस्मार्क कहता था कि **''गुटबन्दी मेरे लिए दुःस्वप्न है''[3]** परन्तु गुटबन्दी

1 "He was the only man, who could juggle with five balls of which at least two were in the air."
—*William I*

2 ए. जे. पी. टेलर, **दि स्ट्रगल फॉर मास्ट्री इन यूरोप**, पूर्वोक्त।

3 "Coalitions are my nightmare."

एवं गुप्त राजनीति का आरम्भ बिस्मार्क ने ही किया था। इसके दुष्परिणामस्वरूप विरोधियों द्वारा सन्धियों के विरुद्ध प्रति सन्धियां आरम्भ कर देने से यूरोप परस्पर दो गुटों में विभाजित हो गया। भविष्य में यही विश्वयुद्ध का कारण बना। **इस विषय में बिस्मार्क ने अपने मित्र हर बेलिन से कहा था, "मैं प्रथम विश्वयुद्ध नहीं देखूंगा, किन्तु तुम देखोगे और यह निकट पूर्व से प्रारम्भ होगा।"**[1] आगे चलकर बिस्मार्क का यह कथन सत्य सिद्ध हुआ और इसका आरम्भ पूर्व से ही हुआ, लेकिन प्रसिद्ध इतिहासकार **जे. एस. आर. मेरियट** का विचार है कि **"इस प्रकार की भविष्यवाणी में कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सम्भवतः** 1896 **ई. तक बिस्मार्क इस बात से परिचित हो चुका था कि जो बीज उसने बर्लिन की कांग्रेस में बोये थे, उसके शीघ्र ही विध्वंसात्मक फल होंगे।" जे. ए. आर. मेरियट के उक्त कथन से असहमत नहीं हुआ जा सकता और इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रथम विश्वयुद्ध के लिए बिस्मार्क उत्तरदायी था।**

बिस्मार्क का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF BISMARCK)

19वीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास में बिस्मार्क न केवल जर्मनी का, अपितु सम्पूर्ण यूरोप का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली राजनीतिज्ञ था। प्रशा की शक्ति उसके जीवन का आदर्श रही। उसने कहा था, **'हम प्रशा के रहेंगे।'**[2] शताब्दियों से विभक्त और अव्यवस्थित जर्मनी को प्रशा के नेतृत्व में मात्र 9 वर्षों में ही संगठित राज्य बना दिया। अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु बिस्मार्क ने झूठ, छल, कपट, सभी अनैतिक साधनों का प्रयोग किया। उसने विभिन्न राज्यों में फूट डालकर, घृणा उत्पन्न करके तथा मतभेद एवं झगड़े कराकर यूरोपीय राज्यों के पारस्परिक विरोध का लाभ उठाकर बर्लिन को यूरोप की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया।

रक्त और लौह की नीति का अनुयायी बिस्मार्क सैनिकवादी होने के साथ ही चतुर कूटनीतिज्ञ भी था। अपने शत्रु को मित्रहीन बनाकर युद्ध करना उसकी नीति का प्रथम सिद्धान्त था। कूटनीतिक दांव-पेच के द्वारा वह शत्रु पक्ष से ही युद्ध का आरम्भ कराता था। **छल और शक्ति दोनों उसकी कूटनीति के प्रमुख तत्व थे।**[3] **फूट डालना एवं शासन करना** (Divide and Rule) की विदेश नीति का अनुसरण करना उसकी नीति का अंग था।

नितान्त व्यावहारिक बुद्धि का राजनीतिज्ञ होते हुए बिस्मार्क ने उपनिवेशों की स्थापना में कोई रुचि नहीं दिखलाई। **उसकी राजनीति मात्र जर्मनी और यूरोप के लिए थी।**[4] यूरोप के इतिहास में बिस्मार्क का पतन एक नए युग का प्रारम्भ था। **वान बूलों** के शब्दों में, **"बिस्मार्क ने स्वयं हमारी पुरानी नीति का समापन कर हमें नए मार्ग का निर्देश दिया........यह निश्चित**

1 "I shall not see the world war but you will and it will start in the near east." —*Bismarck.*
2 "Prussians we are and Prussians we will remain."
3 "The End was reached by methods which no plain man can approve, by diplomacy, which was a master peace of bluff, duplicity and by over-whelming force unscrupulously applied." —*J. A. R. Marriot.*
4 Bismarck was a realist and a materialist. He did not indulge like Talleyrand in visions of a distant future, in dreams of a German ocean....Bismarck's ambition was to control the continent, to establish a Napoleonic empire in Europe." —*Sarolea.*

है कि उसने न तो जर्मनी के इस नये विकास की कल्पना की थी और न इस युग की समस्याओं की।"[1] मैरियट ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, "उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में वह सदैव उच्च स्थान पर रहेगा।"

प्रश्न

1. बिस्मार्क की गृह नीति का वर्णन कीजिए। (गोरखपुर, 1989, 91, 93; पूर्वांचल, 1994)
2. बिस्मार्क की 'लौह एवं रक्त' की नीति का वर्णन कीजिए।
3. बिस्मार्क के चर्च से हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए।
4. 'कुल्चुर कैम्फ' से आप क्या समझते हैं? बिस्मार्क ने संस्कृति व सभ्यता की रक्षा के लिए क्या किया?
5. बिस्मार्क की विदेश नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
6. बिस्मार्क के चरित्र एवं पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।
7. बिस्मार्क के 'समाजवाद' से हुए संघर्ष का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
8. 1871 ई. के पश्चात् बिस्मार्क की विदेश नीति की समीक्षा कीजिए।

(गोरखपुर, 1988, 90, 92, 95; लखनऊ, 1991, 93, 95)

1 "In the history of the nineteenth century Bismarck will always claim a foremost place." —*Marriot.*

23

कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति

[FOREIGN POLICY OF KAISER WILLIAM II]

भूमिका
(INTRODUCTION)

यूरोप के इतिहास में जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क का महत्वपूर्ण स्थान है। बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण कर 1890 ई. तक जर्मनी की राजनीति को अपने हाथों में रखा और यूरोप में होने वाले प्रत्येक प्रश्न पर अपने अस्तित्व की छाप छोड़ी। वह अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों में पूर्ण सफल भी हुआ था। **इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि जर्मन सम्राट विलियम प्रथम का उसे वरद हस्त प्राप्त था तथा सम्राट ने सम्पूर्ण शासन-सूत्र उसके हाथ में सौंप दिया था।** 9 मार्च, 1888 ई. को विलियिम प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र फ्रेडरिक तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ, परन्तु केवल 99 दिन तक शासन करने के पश्चात् उसका निधन हो गया। अतः 15 जून, 1888 ई. **को 29 वर्ष की आयुं में उसका पुत्र 'विलियम द्वितीय' गद्दी पर बैठा।**

विलियम द्वितीय ने सिंहासनारूढ़ होते समय बिस्मार्क के सम्बन्ध में कहा था, **'साम्राज्य एक ऐसी सेना के सदृश है, जिसका सेनापति युद्ध भूमि में काल कवलित हो चुका है तथा जिसका वह अधिकारी है, जिसका स्थान सेनापति के पश्चात् का है, घायल है, किन्तु हमारे झण्डे को आगे लेकर चलने वाला व्यक्ति हमारा सुप्रसिद्ध नेता हमारा चांसलर है, वह हमारा नेतृत्व करे और हम उसके पीछे चलेंगे।'** विलियम के ये शब्द व्यावहारिक न बन सके और पारस्परिक वैचारिक मतभेदों के कारण बिस्मार्क को 1890 ई. में अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और जर्मनी के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ जिसका नेतृत्व अब किसी चांसलर के हाथ में न होकर निरंकुश सम्राट के हाथ में आ गया। यह ठीक है कि विलियम द्वितीय ने चांसलर को नियुक्त करने की प्रथा का अन्त नहीं किया, परन्तु उसने बिस्मार्क के सदृश किसी चांसलर को शक्तिशाली भी न होने दिया। वस्तुतः बिस्मार्क से उसके वैचारिक मतभेदों का सबसे बड़ा कारण उसका बिस्मार्क की विदेश नीति से सहमत न होना था। अतः अब जर्मनी की विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया। **दूसरे शब्दों में, विलियम द्वितीय की विदेश नीति बिस्मार्क की नीति का निराकरण थी।** विलियम द्वितीय की विदेश नीति के उद्देश्य बिस्मार्क की नीति के बिल्कुल उल्टे थे।

विलियम द्वितीय की विदेश नीति के उद्देश्य
(AIMS OF THE FOREIGN POLICY OF WILLIAM SECOND)

विलियम II की विदेश नीति के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य थे :

(अ) जर्मनी को विश्व शक्ति के रूप में परिवर्तित करना—बिस्मार्क जर्मनी को यूरोपीय शक्ति के रूप में देखना चाहता था, परन्तु विलियम द्वितीय जर्मनी को एक विश्व शक्ति के रूप में परिवर्तित करना चाहता था। इसकी विदेश नीति का आधार विश्व राजनीति था। वह कहा करता था कि **"विश्व में कहीं भी कोई ऐसा कार्य नहीं होना चाहिए जिसमें जर्मनी की सम्मति न हो।"**[1] वह जर्मन जाति को सभ्य मानकर यह कहता था कि **"जर्मन जाति को ईश्वर ने संसार को सभ्य करने के लिए ही बनाया है।"**[2] उसके समय में रूस का राज्य एशिया के बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ था। इंग्लैण्ड व फ्रांस भी विशाल साम्राज्य के स्वामी थे। अतः कैसर जैसा महत्वाकांक्षी शासक जर्मनी को छोटा साम्राज्य कैसे देख सकता था?

(ब) औपनिवेशिक विस्तार की नीति अपनाना—कैसर विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क की उपनिवेशवादी नीति का परित्याग कर विस्तारक नीति को अपनाया। फ्रांस को यूरोप की राजनीति में पृथक् रखने के लिए यह अनिवार्य था कि उन प्रश्नों से जर्मनी स्वतः को अलग रखता जिनको लेकर यूरोपीय देश प्रतिद्वन्द्विता में फंसे थे। **उपनिवेश के प्रश्न को लेकर यूरोपीय देशों में परस्पर युद्ध हो जाने से कटुता का वातावरण भी उत्पन्न हो जाता था।** अतः बिस्मार्क ने तटस्थ रहते हुए उपनिवेश विस्तार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु विलियम द्वितीय ने उपनिवेश विस्तार पर विशेष ध्यान दिया। कैसर विलियम द्वितीय जर्मनी में हो रहे औद्योगिक विस्तार की गति को देखते हुए कच्चे माल एवं बाजार की आवश्यकताओं के लिए उपनिवेश स्थापित करने का इच्छुक था। **यही कारण था कि उसे मोरक्को के प्रश्न पर फ्रांस से तीन बार संघर्ष करना पड़ा था।**

(स) पूर्व की ओर साम्राज्य विस्तार करना—बिस्मार्क बाल्कन प्रदेशों एवं भूमध्यसागर को कोई विशेष महत्व नहीं देता था, परन्तु विलियम द्वितीय बाल्कान प्रदेश के रास्ते से पूर्व की ओर बढ़ना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन का निर्माण कराना चाहता था।

(द) जल सेना का सुदृढ़ीकरण—बिस्मार्क की नीति के विपरीत विलियम द्वितीय नौ सेना का विस्तार एवं उसका सुदृढ़ीकरण करना चाहता था। **वह सामुद्रिक शक्ति को विश्व शक्ति मानता था।**[3]

अपने इन उद्देश्यों को लेकर उसने अपनी परराष्ट्र नीति निर्धारित की। **संक्षेप में तत्कालीन यूरोपीय शक्तियों से उसके सम्बन्धों का विवरण निम्नवत् है :**

इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध
(RELATIONS WITH ENGLAND)

1894 ई. तक विलियिम द्वितीय इंगलैण्ड के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने में सफल हुआ। 1890 ई. में **'प्रिन्स ऑफ वेल्स'** ने बर्लिन की यात्रा की। विलियम भी प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड जाता

1 "Nothing must go on any where in the world in which Germany does not play a part."
2 "God has called us to civilize the world."
3 "Sea power is the world power."

था और दोनों देशों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता था। 1891 ई. में इंग्लैण्ड में उसका भारी स्वागत हुआ। मैनशन हाउस में उसने भाषण देते हुए कहा था, **"मैंने सदा ही इस देश को अपना घर माना है, क्योंकि मैं एक उच्च चरित्र वाली रानी का दौहित्र हूं। दोनों देशों के नागरिकों की नसों में एक ही जाति का खून प्रवाहित होता है। मैं दोनों देशों के मध्य ऐतिहासिक मित्रता को बनाये रखने का प्रयत्न करूंगा।"**[1] परन्तु यह मित्रता स्थायी सिद्ध न हुई। गूच ने लिखा है, "1894 **ई. में आकाश में अन्धकार फैलना प्रारम्भ हो गया और इसके पश्चात् इंग्लैण्ड तथा जर्मनी के आपसी सम्बन्धों में विलियम द्वितीय के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में पाई जाने वाली घनिष्ठता कभी प्राप्त न हो सकी।"**

इंग्लैण्ड के साथ जर्मनी के सम्बन्ध बिगड़ने के प्रमुख कारणों में दोनों देशों के बीच साम्राज्य स्थापना के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता, जर्मनी द्वारा अपनी जल सेना में वृद्धि करना, व्यापारिक क्षेत्र में दोनों देशों की प्रतिद्वन्द्विता एवं कैसर विलियम द्वितीय का व्यक्तित्व विशेष उल्लेखनीय है।

सम्राज्यवादिता के क्षेत्र में दक्षिण अफ्रीका एवं एशिया में आधिपत्य को लेकर दोनों देशों के मध्य कटु सम्बन्ध हो गये। कैटलबी के अनुसार, **'दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न ही दोनों देशों के मनमुटाव का प्रथम प्रकटीकरण था।'**[2] इंग्लैण्ड दक्षिण अफ्रीका में स्थित ट्रांसवाल पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। इस उद्देश्य से इंग्लैण्ड ने ट्रांसवाल पर 1896 ई. में आक्रमण भी किया, परन्तु ट्रांसवाल के राष्ट्रपति क्रूजर (Kruger) ने ब्रिटिश प्रतिनिधि जेम्सन (Jameson) के आक्रमण को असफल कर दिया। कैसर विलियम द्वितीय ने तुरन्त राष्ट्रपति क्रूजर को उसकी इस सफलता पर यह तार किया कि **"मैं, आपको एवं ट्रांसवाल की जनता को किसी मित्रराष्ट्र से सहायता लिए बिना अपने ही प्रयत्नों से अपने देश की आक्रमण से रक्षा करने एवं शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न की सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूं।"** ठीक इसी समय कैसर ने रूस के जार निकोलस को भी स्पष्ट रूप से लिखा कि **'जर्मनी कभी भी इंग्लैण्ड का अधिकार ट्रांसवाल पर नहीं होने देगा।'** कैसर के इन कार्यों से ब्रिटेन व जर्मनी के सम्बन्ध खराब हो गये। ब्रिटेन के प्रसिद्ध समाचारपत्र **मार्निंग पोस्ट** (Morning Post) ने प्रकाशित किया कि **'इंग्लैण्ड अपनी भावी नीति के निर्धारण में उक्त तार तो कभी नहीं भूलेगा।'**

कैसर विलियिम द्वितीय ने तार का उत्तरदायित्व अपने मन्त्रियों पर डालने का प्रयत्न किया। इंग्लैण्ड ने इतने पर भी जर्मनी से मधुर सम्बन्ध कायम रखने के उद्देश्य से जर्मनी के सम्मुख इंग्लैण्ड, जर्मनी एवं अमेरिका की त्रिराष्ट्र मैत्री सन्धि का प्रस्ताव रखा, परन्तु जर्मनी के प्रधानमन्त्री ने इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा कि **'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इंग्लैण्ड ही एक ऐसा देश है जिससे जर्मनी की वास्तविक प्रतिद्वन्द्विता है।'** जर्मनी प्रधानमन्त्री व्यूलो के इस प्रकार के नकारात्मक उत्तर ने इस प्रस्ताव को असफल कर दिया। कैटलबी के अनुसार,

1 **"I have always, felt at home in this lovely country....I shall always, so far as it is in my power, maintain the historic friendship between our nations."**
उद्धृत—सी. डी. एम. कैटलबी—**ए हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन टाइम्स फ्रॉम** 1789, पृ. 394.

2 **"It was in connexion with the South African Policy of Great Britain that the first revelation was given of Anglo-German antagonism."** —**Ketelbey, *Ibid.*, p. 395.**

"अन्ततः इंग्लैण्ड ने जापान के साथ सन्धि कर सुदूर पूर्व में अपने हितों की रक्षा का प्रयत्न किया। इस प्रकार ब्रिटेन की शानदार पृथकतत्व की नीति के एक युग का अन्त हुआ।"[1]

यही नहीं, 1899 ई. से 1902 ई. तक चलने वाले बोअर युद्ध (Boer war) में जर्मनी द्वारा अपनाई गई नीति ने इंग्लैण्ड को जर्मनी का शत्रु बनाने में आग में घी का कार्य किया। टर्की में भी दोनों देशों के हितों में टकराव था। जर्मनी के लिए **एशियाई क्षेत्रों में** प्रवेश के लिए यह आवश्यक था कि वह **'फारस की खाड़ी'** पर आधिपत्य स्थापित करता। इसके लिए टर्की एवं मेसोपोटामिया पर उसका आधिपत्य आवश्यक था। **भूमध्य सागर एवं लाल सागर** में ब्रिटेन का आधिपत्य होने के कारण एशिया में प्रवेश हेतु जर्मनी के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं बचा था। **टर्की से जर्मनी** को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल प्राप्त हो सकता था। जर्मनी की बढ़ती हुई जनसंख्या से टर्की में लोगों को बसाकर राहत प्राप्त की जा सकती थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सुदूरपूर्व में जर्मनी की नजर स्पष्ट होती। **अतः कैसर ने टर्की के प्रति मित्रता का हाथ बढ़ाया।** 1898 ई. में कैसर ने टर्की की यात्रा की और **'दमिश्क'** में घोषणा की कि **'टर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद एवं विश्व के समस्त क्षेत्रों में बसे तीस करोड़ मुसलमानों को जर्मनी को अपना मित्र एवं शुभचिन्तक मानना चाहिए।'** टर्की द्वारा जर्मनी को बगदाद रेलवे के निर्माण की अनुमति प्रदान कर दी गई। कैसर को टर्की की जनता ने **'हाजी मुहम्मद'** की उपाधि से विभूषित किया। **इससे ब्रिटेन चिन्तित हो उठा।**[2] कैसर द्वारा हैमबर्ग से फारस की खाड़ी तक रेलवे के निर्माण की योजना का प्रथम भाग बगदाद रेलवे निर्माण से पूर्ण हो जाता और इससे ब्रिटेन के मध्यपूर्व एवं भारत से प्राप्त होने वाले हितों को खतरा पैदा हो गया। अत: जब 1913 ई. में जर्मनी ने जनरल **'लीमान वान सैण्डर्स'** (Liman Van Sanders) को टर्की की सेना को प्रशिक्षित करने के लिए भेजा तो यह इंग्लैण्ड को असह्य था।

इंग्लैण्ड एवं जर्मनी के मध्य सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न करने के लिए व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता भी उत्तरदायी थी। 1871 ई. के पश्चात् जर्मनी में औद्योगीकरण का जिस प्रकार विकास हुआ उसे दृष्टिगत रखते हुए जर्मनी को कच्चे माल एवं बाजार की नितान्त आवश्यकता थी। जर्मनी का जिस गति से औद्योगिक विकास हुआ था उसका अनुमान इस बात से ही लग जाता है जर्मनी में तैयार वस्तुएं ब्रिटिश साम्राज्य में ब्रिटिश सामग्री का स्थान ले रही थीं। इसका सबसे बड़ा कारण जर्मनी की वस्तुओं का इंग्लैण्ड की वस्तुओं से सस्ता एवं उत्तम होना था। ब्रिटिश व्यापारी या पूंजीपति वर्ग इस स्थिति से असन्तुष्ट था। इंग्लैण्ड के समाचार-पत्र जर्मनी को समाप्त करने की बात कहने लगे। **सटरडे रिव्यू ने** तो यहां तक प्रकाशित किया कि **"जर्मनी की समाप्ति से इंग्लैण्ड का प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूर्व की स्थिति से अधिक सम्पन्न हो जायेगा।"**[3]

व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के साथ-साथ कैसर विलियम की जिन नीतियों ने दोनों देशों के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न की उनमें जर्मनी की जलसेना की वृद्धि ने आग में घी का कार्य किया। कैसर विलियम द्वितीय जर्मनी को जलसेना की दृष्टि से संसार की सर्वोत्कृष्ट शक्ति

1 "England thereupon concluded the Anglo-Japanese Alliance, as a set off of Russia in the Far East. The Era of British isolation was closed." —*Ibid.*, p. 396.

2 "With the development of the Bagdad railway Great Britain began to look with growing apprehension at the German approach to India." —*Ibid.*, p. 396.

3 सटरडे रिव्यू, 4 सितम्बर, 1890।

बनाना चाहता था। कैसर ने घोषित किया, **'हमारा भविष्य सागरों पर निर्भर करता है। मैं तब तक बेचैन रहूंगा जब तक कि मैं जर्मनी की नौसेना की शक्ति को स्थल सेना की समकोटि में नहीं ले आऊंगा। महासागर का मालिक होने पर ही जर्मनी अपनी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति कर सकता है।''**[1] कैसर का यह कथन मात्र कथन ही नहीं था, वरन् उसने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए महत्वपूर्ण कदम भी उठाये। युद्ध के बड़े जहाज, टारपीडो, बोट, क्रूजर एवं विध्वंसात्मक किश्तियां बनाने के उद्देश्य से 1897 में जर्मन रीशटाग ने प्रथम नेवी बिल पास किया। 1901 ई. में रीशटाग ने दूसरा नेवी बिल पास किया। इस बिल के तहत् 1930 ई. तक जर्मनी की जल सैनिक शक्ति का दुगना हो जाना था। 1899 ई. एवं 1907 ई. में विश्व शान्ति के उद्देश्य से होने वाली बैठकों में जर्मनी ने अपनी नौसेना की वृद्धि पर रोक से स्पष्ट इन्कार कर दिया। 1905 ई. में जर्मनी ने प्रथम **ड्रेडनाट** (Dreadnought) का निर्माण कर डाला।

इंग्लैण्ड जो कि विश्व में **'समुद्र की रानी'** (Queen of the Seas) के नाम से जाना जाता था, जर्मनी को उक्त कार्य को कैसे सहन कर सकता था? 1907 ई. में इंग्लैण्ड की लिबरल सरकार ने चार ड्रेडनाट बनाने का दृढ़संकल्प किया, इसने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि अब इंग्लैण्ड का जर्मनी से मुकाबला नौसेना के क्षेत्र में था। **नवम्बर 1908 ई. में लार्ड राबर्ट्स ने लार्ड्स सभा में जर्मनी की नौसैना शक्ति में वृद्धि पर चिन्ता व्यक्ति की।**[2] ब्रिटेन ने समय-समय पर कैसर के पास मित्रतापूर्ण वार्तालाप के लिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों को प्रस्ताव सहित भेजा, परन्तु कैसर ने जल-सेना की वृद्धि के सम्बन्ध में किसी भी समझौते से इन्कार किया। अतः इंग्लैण्ड व जर्मनी के सम्बन्धों में कटुता बनी रही। वस्तुतः इसके लिए कैसर का जिद्दी स्वभाव एवं व्यक्तित्व उत्तरदायी था।

वास्तव में कैसर का व्यक्तित्व विवादास्पद था। 1907 ई. में जहां उसने इंग्लैण्ड जाकर यह घोषित किया कि **'उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे वह अपने घर में आ गया हो'** वहीं बर्लिन लौटते ही उसने इंग्लैण्ड के फर्स्ट लार्ड ऑफ एडमिरेलिटी (First Lord of Admirality) को जो पत्र लिखा उसमें ब्रिटेन की नौसेनिक नीति की कटु आलोचना थी। **इस प्रकार के दोहरे व्यक्तित्व ने दोनों देशों के बीच खाई पैदा कर दी जिसका परिणाम प्रथम विश्व युद्ध के बीज के रूप में देखा जा सकता है।** इंग्लैण्ड से सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न कर टर्की से मित्रता किसी भी दृष्टि से जर्मनी के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हुई। **यही नहीं, इंग्लैण्ड से जर्मनी की शत्रुता ने फ्रांस के एकाकीपन को समाप्त करने में अहं भूमिका तो निभाई ही साथ ही जर्मनी के फ्रांस से और अधिक कटु सम्बन्ध स्थापित हो गये।**

1 "Our future lies on the seas, I will never rest until I have raised my navy to a position similar to that occupied by my army. German colonial aims can be gained only when Germany has become master of the ocean."
—W. Edwards, *British Foreign Policy*, p. 115.

2 "Within a few hours steaming of our coast there is a peoples numbering over sixty millions our most active rivals in commerce and the greatest military power in the world, adding to an overwhelming military strength a naval force which she is resolutely and repidly increasing while we are taking to military precautions in response."
—W. Edwards, *British Foreign Policy*, p. 128.

फ्रांस के साथ सम्बन्ध
(RELATION WITH FRANCE)

19वीं शताब्दी में यूरोप में शक्तिशाली देशों द्वारा किये जाने वाले औपनिवेशिक विस्तार में फ्रांस ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जर्मनी के शत्रु फ्रांस ने मोरक्को के समीप के प्रदेश अल्जीरिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। 1893-94 ई. में रूस के साथ फ्रांस की सन्धि ने फ्रांस के एकाकीपन को तो तोड़ा ही, साथ ही फ्रांस का मनोबल भी बढ़ गया। अत: अब वह अल्जीरिया एवं मोरक्को को मिला देने पर विचार करने लगा। 1902 ई. में मारेक्को एवं फ्रांस के मध्य होने वाले समझौते से फ्रांस के हितों को मोरक्को में स्वीकार कर लिया गया। 1904 ई. में इंग्लैण्ड एवं फ्रांस के मध्य हुए समझौते के अनुसार फ्रांस को मोरक्को में अपने प्रभाव विस्तार की छूट प्राप्त हुई तो फ्रांस ने मिस्र में इंग्लैण्ड के विशेषाधिकारों को स्वीकार कर लिया। जर्मनी के लिए यह एक चिन्ता का विषय बन गया। जर्मनी के लिए व्यापारिक दृष्टि से ही नहीं वरन् टर्की की दृष्टि से भी मोरक्को का महत्वपूर्ण स्थान था। जिब्राल्टर जलडमरूमध्य के निकट होने से वह (मोरक्को) एटलाण्टिक महासागर एवं भूमध्यसागर के प्रवेश द्वार के सदृश था। इससे पूर्व कैसर टर्की से मधुर सम्बन्ध स्थापित कर चुका था और उसने विश्व के सभी मुसलमानों का संरक्षक स्वत: को बतलाया भी था। अत: अब प्रश्न जर्मनी एवं टर्की की प्रतिष्ठा एवं मधुर सम्बन्धों का था। अत: 31 मार्च, 1905 ई. को कैसर ने टैंजियर (मोरक्को) पहुंचकर घोषित किया, **'मोरक्को में जर्मनी के महान हितों की दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। व्यापार उसी समय विकसित हो सकता है जब कि सुल्तान के प्रभुत्व के अन्तर्गत सभी राष्ट्रों को समान अधिकार प्राप्त हों तथा सभी राष्ट्र मोरक्को की स्वतन्त्रता को स्वीकार करें।'**[1] उसने घोषित किया कि वह मोरक्को की स्वतन्त्रता का पक्षधर है। कैसर ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जर्मनी से परामर्श किए बिना पश्चिम के राष्ट्र आपस में मिलकर मोरक्को के भाग्य का निर्णय कदापि नहीं कर सकते हैं। **इस प्रकार मोरक्को पर औपनिवेशिक विस्तार के प्रश्न को लेकर** 1905 **ई. में प्रथम मोरक्को संकट उपस्थित हुआ।**

जर्मनी ने मोरक्को संकट के समाधान हेतु फ्रांस से मांग की कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाये तथा अपने विदेशमन्त्री देलकाजे को पदच्युत करे। फ्रांस के लिए सम्मेलन बुलाना कष्टदायक नहीं था, परन्तु देलकाजे को पदच्युत करना सम्मान के विरुद्ध था, परन्तु जर्मनी द्वारा युद्ध की धमकी दिये जाने एवं युद्ध के लिए पूर्णत: स्वत: को तैयार न पाने के कारण देलकाजे ने त्यागपत्र दे दिया। 16 जनवरी, 1906 ई. को एल्जेसिरास (Algeciras) में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, मोरक्को, रूस, स्पेन, अमेरिका, हालैण्ड, बेल्जियम, स्वीडन, इटली, आदि देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तीन माह तक चले लम्बे वाद विवाद के पश्चात् 7 अप्रैल, 1906 ई. को एक प्रस्ताव पास हुआ। **'कन्वेंशन ऑफ एल्जे सिरास'** के निर्णय अग्रवत् थे :

(अ) मोरक्को को स्वतन्त्र राज्य मानते हुए वहां के सुल्तान की सम्प्रभुता स्थापित की जायेगी।

1 "I hope that under his sovereignty a free Morocco will remain open to the peaceful competition of all nations, without monopoly or annexation, on a ralic of absolute equality."—Grant and Temperley, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 316.

(ब) फ्रांस को यह अधिकार मिल गया कि वह शान्तिपूर्ण तरीके से मोरक्को में अपना विस्तार करे।

(स) मोरक्को में सभी देशों के आर्थिक हितों को मान लिया गया।

(द) फ्रांस एवं स्पेन की सम्मिलित पुलिस मोरक्को की शान्ति एवं सुव्यवस्था को देखेगी।

(य) मोरक्को में एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक स्थापित किया जायेगा।

इस प्रकार जर्मनी ने जिस प्रकार देलकाजे को पदच्युत करवाया एवं मोरक्को के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बनाया उस दृष्टि से यह फ्रांस की कूटनीतिक पराजय थी। **यही कारण था कि जर्मन चांसलर ब्यूलो ने कहा था, "हम न तो जीते हैं और न ही हारे हैं।"** जर्मनी को इस बात का सन्तोष था कि अब फ्रांस उस तरीके से मोरक्को पर अधिकार नहीं कर सकेगा जैसे उसने ट्यूनिस पर किया था, परन्तु यदि तथ्यात्मक दृष्टि सें देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि इसमें फ्रांस को लाभ मिला, कैसर द्वारा मुसलमानों की सुरक्षा के आश्वासन के खोखलेपन को भी इस संकट के निर्णयों ने स्पष्ट कर दिया, जर्मनी अपने इस मूलभूत उद्देश्य में कि फ्रांस को अपमानित किया जाय, पूर्ण सफल न हो पाया। जर्मनी को इटली की मित्रता पर भरोसा न रहा और अब उसने आस्ट्रिया का पूर्ण समर्थन करने का निर्णय लिया। **गूच महोदय** के शब्दों में कहा जा सकता है कि **'कुश्ती प्रतियोगिता के परिणामों के सम्बन्ध में यद्यपि दोनों ही पक्षों (जर्मनी व फ्रांस) ने सन्तुष्ट होने का दावा किया, परन्तु यह सम्मेलन वास्तव में कुश्तियों के दौरों के बीच विश्राम के लिये थोड़ा सा समय प्रदान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सका और उसका स्थायी परिणाम यह निकला कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच बन्धन, जिन्हें ढीला करने के लिए एल्जेसिरास में जर्मनी के प्रतिनिधि ने सर आर्थर निकलसन पर अत्यधिक दबाव डाला था, सफलता न मिली। ब्यूलो के पास बाजी अच्छी आई थी, परन्तु उसने उसे बड़े बुरे ढंग से खेला, वह प्रक्रिया जिसे जर्मनी ने घेराबन्दी का नाम दिया और अंग्रेजों ने सुरक्षा का, अब प्रारम्भ हो गई थी।'**[1]

मोरक्को का संकट यहीं समाप्त नहीं हो गया। सम्मेलन के निर्णय के अनुसार फ्रांस ने शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के बहाने मोरक्को में अपनी सेनाएं भेजनी प्रारम्भ कर दीं। जर्मनी ने फ्रांस के इस कार्य का घोर विरोध किया। **मोरक्को के इस द्वितीय संकट (1908 ई.) को समाप्त करने के लिए एक पंच न्यायालय की स्थापना की गई तथा 8 फरवरी, 1908 ई. को द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया।** इस सम्मेलन में फ्रांस ने मोरक्को की अखण्डता की पुष्टि की, परन्तु 1911 ई. में पुनः तृतीय मोरक्को संकट उत्पन्न हो गया।

वास्तव में मोरक्को की अव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था एवं फ्रांस के ऋण से चल रही आर्थिक व्यवस्था एवं सुल्तान हामिद की अयोग्यता से लाभ उठाकर फ्रांस ने मोरक्को में अपना प्रभाव तीव्र गति से पुनः स्थापित कर लिया। 1911 ई. में मोरक्को के असन्तुष्ट सरदारों ने विद्रोह कर फ्रांस के उच्चपदाधिकारी मार्शा की हत्या कर दी। फ्रांस ने शान्ति स्थापना हेतु मोरक्को की राजधानी फेज में सेना भेजने का अधिकार न होते हुए भी सेना भेज दी। जर्मनी ने इस कार्य का विरोध करते हुए स्पष्ट घोषित किया कि, **"फ्रांस शीघ्र ही फेज से अपनी सेनाएं हटा ले अन्यथा एल्जेसिरास सम्मेलन के निर्णयों पर हस्ताक्षर करने वाला प्रत्येक देश स्वेच्छा से कार्य करने की स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त कर लेगा।"** इसी बीच जर्मन जनता के हितों की रक्षा का बहाना बनाकर दक्षिणी मोरक्को के अगादीर नामक बन्दरगाह पर एक जर्मन जंगी

1 G. P. Gooch, *History of Modern Europe*, pp. 309-310.

जहाजी बेड़ा भेज दिया। जर्मनी के इस कार्य का फ्रांस ने घोर विरोध किया, जर्मनी ने घोषित किया जर्मनी, फ्रांस एवं स्पेन मिलकर मोरक्को समस्या का समाधान कर सकते हैं। वास्तव में युद्ध की धमकी देकर कैसर फ्रांस से अपनी यह शर्त मनवाकर फ्रांस को इंग्लैण्ड से तोड़ना चाहता था, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। फ्रांस ने कैसर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लायड जार्ज ने घोषित किया कि **"जहां पर ब्रिटेन के हित मौजूद हैं वहां पर यदि ब्रिटेन की मन्त्रणा लिए बिना शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया गया तो उस कीमत पर शान्ति का इतना बड़ा अपमान होगा जो इंग्लैण्ड के समान महान देश के लिए असहनीय होगा।"**[1] ब्रिटेन की इस घोषणा से जर्मनी भयभीत हो गया। अन्ततः 4 नवम्बर, 1911 ई. को जर्मनी एवं फ्रांस के मध्य एक सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार मोरक्को पर फ्रांस का नियन्त्रण यथावत बना रहा, परन्तु फ्रांस ने फ्रेंच कांगो का उत्तर-पश्चिमी भाग जर्मनी को दे दिया। इस प्रकार इस संकट का अन्त हुआ, परन्तु फ्रांस के प्रति अपनी नीति में कैसर विलियम द्वितीय असफल रहा और इंग्लैण्ड से फ्रांस की मित्रता प्रगाढ़ होती चली गई।

रूस के साथ सम्बन्ध
(RELATIONS WITH RUSSIA)

बिस्मार्क के चांसलर पद पर रहने तक जर्मनी एवं रूस के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता बनी रही, परन्तु बिस्मार्क के पतन के पश्चात् कैसर विलियिम को आस्ट्रिया एवं टर्की से प्रगाढ़ता की नीति ने जर्मनी-रूसी सम्बन्धों को कमजोर करना प्रारम्भ कर दिया। 1887 ई. की सुरक्षा सन्धि को 1890 ई. में दोहराया जाना था, कैसर ने इस सन्धि की पुनरावृत्ति करने से इन्कार कर दिया। रूस के जार का आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक था। जार ने लिखा, **"मुझे इस बात का सन्तोष है कि सन्धि को दोहराये जाने के लिए मनाही जर्मनी की ओर से हुई है।"** रूस ने अकेलेपन को दूर करने के लिए 1893-94 में फ्रांस से द्विवर्गी सन्धि कर ली। कैसर को इतनी बड़ी घटना की आशा भी नहीं थी। इस सन्धि ने यूरोप को दो गुटों में विभक्त कर दिया। एक गुट में आस्ट्रिया, जर्मनी एवं इटली थे तो दूसरे गुट में फ्रांस एवं रूस। इंग्लैण्ड अभी तटस्थ रहकर यूरोप की गुटबन्दी पर नजर गढ़ाये हुए था। जर्मनी की इंग्लैण्ड के प्रति नीति ने इंग्लैण्ड को फ्रांस व रूस के गुट में 1904 में शामिल कर दिया। इंग्लैण्ड के फ्रांस से समझौते से घबरा कर विलियम कैसर ने 1904 ई. से 1906 ई. तक रूस के जार निकोलस से पत्राचार किया। **यह पत्र-व्यवहार इतिहास में 'विली-निकी पत्राचार' के नाम से जाने जाते हैं, परन्तु रूसी जनता के दृष्टिकोण के कारण कैसर रूस को अपनी ओर कर पाने में असमर्थ रहा। इस प्रकार रूस के प्रति कैसर की नीति असफल ही मानी जा सकती है।**

आस्ट्रिया के साथ सम्बन्ध
(RELATIONS WITH AUSTRIA)

आस्ट्रिया के साथ जर्मनी के मधुर सम्बन्ध बिस्मार्क के समय से ही थे। कैसर ने अपनी विदेश नीति में आस्ट्रिया को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। सिंहासनारूढ़ होने के कुछ माह पश्चात् ही जब उसने रूस की यात्रा की थी तब भी उसने स्वीकार किया कि, **"जर्मनी किसी भी ऐसे कार्य में जिसमें कि आस्ट्रिया के हित महत्वपूर्ण न हों रूस के कार्य में बाधा नहीं पहुंचायेगा।"**

1 **"Britain Should at all hazards maintain her place and her prestige amongst the great powers (if she were to be created as) of no account in the cabinet of Nations. Peace at the price would be a humiliation intolerable for a great country like ours to endure."** —Grant and Temperly, *Europe in 19th and 20th Centuries*, p. 371.

'कन्वेंशन ऑफ एल्जेसिरास' में-आस्ट्रिया की मित्रता का सन्तोषप्रद प्रमाण उसे मिला। अतः उसने आस्ट्रिया के हितों को सर्वोपरि स्थान देते हुए अपनी विदेश नीति संचालित की थी। 1908 ई. में आस्ट्रिया ने बोसनिया एवं हर्जेगोविना पर अधिकार कर लिया था। सर्बिया ने आस्ट्रिया के इस कार्य का विरोध किया और रूस से सहायता मांगी, ऐसे समय में **कैसर ने स्पष्ट रूस से घोषित किया कि यदि युद्ध होगा तो वह आस्ट्रिया का साथ देगा।** ऐसा प्रतीत होने लगा था कि यूरोपीय क्षितिज पर युद्ध के बादल मंडराने लगे हैं। 28 जून, 1914 ई. को सेराजेवो में आस्ट्रिया के राजकुमार आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्नीनेण्ड एवं उसकी पत्नी की हत्या हो गई। आस्ट्रिया ने इसे युद्ध का बहाना बनाते हुए कि इस कार्य में सर्बिया का हाथ है सर्बिया को कठोर शर्तों वाला अल्टीमेटम 48 **घण्टे का समय देकर दे दिया। 48 घण्टे के भीतर ही अल्टीमेटम की अधिकांश शर्तें मान लेने पर भी आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।** आस्ट्रिया का साथ जर्मनी ने दिया और सर्बिया का साथ रूस ने। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध का श्रीगणेश हो गया। पश्चात् में फ्रांस व इंग्लैण्ड ने रूस के गुट में सम्मिलित होकर तथा बल्गेरिया, तुर्की, आदि देशों ने जर्मनी एवं आस्ट्रिया का पक्ष लेकर प्रथम महायुद्ध को और अधिक स्पष्ट कर दिया।

निष्कर्ष

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि कैसर विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क की नीति का परित्याग कर अदूरदर्शिता एवं भूलों का ही परिचय दिया। यह ठीक है कि विश्वयुद्ध का पूर्ण उत्तरदायित्व कैसर विलियम द्वितीय पर नहीं डाला जा सकता इसके लिए इंग्लैण्ड भी उतना ही दोषी था, परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कैसर की विदेश नीति ने जर्मनी के विरुद्ध इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं रूस का शक्तिशाली गुट तैयार कर दिया। **कैसर की विदेश नीति की समीक्षा करते हुए गूच ने ठीक ही लिखा है, "कैसर के सलाहकारों में कुछ की दृष्टि टर्की साम्राज्य पर थी तो कुछ ही एटलांटिक महासागर पर। कैसर को चाहिए था कि या तो वह पूर्वी नीति पर चलता या पश्चिम की नीति पर ही चलता। वास्तव में उसकी सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने दक्षिण-पूर्वी यूरोप में रूस की आकांक्षाओं का विरोध तो किया ही साथ ही इंग्लैण्ड को नौ सेना के क्षेत्र में अपना प्रतिद्वन्द्वी बनाकर प्रबल शत्रु बना दिया।"**

प्रश्न

1. कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए यह बताइए कि वह इन उद्देश्यों को पूर्ण करने में कहां तक सफल हुआ और उसके क्या परिणाम निकले?
2. कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति प्रथम विश्वयुद्ध के लिए कहां तक उत्तरदायी थी?
3. फ्रांस, इंग्लैण्ड, रूस, टर्की एवं आस्ट्रिया के साथ कैसर विलियम द्वितीय के काल में जर्मनी के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
4. इंग्लैण्ड व जर्मनी के बीच कटुता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति पर प्रकाश डालिए।
6. टिप्पणी लिखिए—

   (अ) मोरक्को संकट (ब) कैसर व रूस के सम्बन्ध।
7. 1890 से 1902 के बीच जर्मनी की विदेश नीति का मूल्यांकन कीजिए।

24

नवीन साम्राज्यवाद तथा अफ्रीका का विभाजन

[NEW IMPERIALISM AND THE PARTITION OF AFRICA]

नवीन साम्राज्यवाद
(NEW IMPERIALISM)

यूरोप में साम्राज्यवादिता (Imperialism) की भावना मध्य युग के अन्त तक विकसित हो चुकी थी तथा इसी भावना के वशीभूत होकर इंगलैण्ड, फ्रांस स्पेन, हॉलैण्ड व पुर्तगाल, इत्यादि देशों ने अपने-अपने उपनिवेशों की स्थापना की थी। साम्राज्यवाद की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग तरीकों से की है। वास्तव में साम्राज्यवाद **पूंजीवाद** के चरम विकास के समय उत्पन्न होने वाली अवस्था है। औद्योगिक क्रान्ति के प्ररिणामस्वरूप पूंजीवाद का जन्म हुआ था व इसी को दृढ़ता प्रदान करने के लिए अनेक देशों ने साम्राज्यवादिता का सहारा लिया। तत्कालीन साम्राज्यवादिता अथवा उपनिवेशवाद (Colonialism) के पीछे प्रत्येक देश का मुख्य उद्देश्य **'वाणिज्य'** ही था, किन्तु 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप **'स्वतन्त्र व्यापार'** (Free Trade) की नीति का आविर्भाव हुआ, अतः वाणिज्य पर आधारित उपनिवेशवाद का पतन होने लगा, क्योंकि वाणिज्य के अतिरिक्त उपनिवेशों से किसी देश को कोई मतलब नहीं था। **इस प्रकार 1820 ई. से 1870 ई. तक यूरोप में औपनिवेशिक उदासीनता का युग रहा।**[1]

यूरोप में 1870 ई. के पश्चात् उपनिवेशवाद पुनः शक्तिशाली होने लगा जिसे **'नवीन साम्राज्यवाद'** (New Imperialism) कहा गया। यह साम्राज्यवाद पुराने साम्राज्यवाद से भिन्न था, क्योंकि इसमें उपनिवेशों पर मात्र व्यापारिक अथवा वाणिज्यिक (Trade or Commercial) अधिकार करना ही नहीं, वरन् उन पर राजनीतिक अधिकार भी स्थापित करना था। इस समय अनेक राजनीतिज्ञों व नेताओं ने उपनिवेशवाद के महत्व पर जोर दिया व अपने-अपने देशों को अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने की अपील की। प्रसिद्ध

1 **चौहान, यूरोप का इतिहास, पृ. 649।**

लेखक रस्किन (Ruskin) ने 1870 ई. में कहा, **"इंगलैण्ड को अति शीघ्र नवीन उपनिवेशों की स्थापना करनी चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो नष्ट हो जाएगा।"**[1] इसी प्रकार के विचार फ्रांस के जूल्स फेरी (Jules Ferry) ने भी व्यक्त किये थे।

इस प्रकार 'नवीन साम्राज्यवाद' की भावना के कारण यूरोप के देशों में उपनिवेशों की स्थापना करने के लिए प्रतिस्पर्धा होने लगी। अफ्रीका भी यूरोप के देशों की इस नीति से बच न सका।

नवीन साम्राज्यवाद के विकास के कारण
(CAUSES OF GROWTH OF NEW IMPERIALISM)

1870 ई. के पश्चात् यूरोप में जिस साम्राज्यवादी भावना का जन्म हुआ, उसे **'नवीन साम्राज्यवाद'** कहा जाता है। यह भावना इतनी प्रबल थी कि इंगलैण्ड ने इसे **'श्वेत जाति का दायित्व'** (Burden of the white men), फ्रांस ने **'सभ्यता के विस्तार का कार्य'** (Mission Civilisatrics) तथा इटली ने **'पुनीत कर्तव्य'** (Sacred Duty) मानते हुए इस नीति का पालन करने की घोषणा की। 1820 ई. से 1870 ई. के मध्य औपनिवेशिक उदासीनता रहने के पश्चात् अचानक ऐसे कौन-से कारण उत्पन्न हुए थे जिनसे इस नीति का जन्म हुआ। **ऐसे कारणों पर विचार करना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है :**

1. **आर्थिक कारण** (Economic Causes)—नवीन साम्राज्यवाद के विकास में आर्थिक कारणों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका थी। डेविड थामसन ने लिखा है, **"यह सत्य है कि प्रत्येक देश द्वारा अन्य स्थानों में धन निवेश, जो कि सुरक्षित था तथा जिसका परिणाम आकर्षक था, की नीति ने 19वीं शताब्दी के अन्त में अधिक से अधिक उपनिवेशों की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया।"**[2] औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोप के देशों में उत्पादन खपत की तुलना में बहुत अधिक हो गया था, अतः उस माल को बेचने के लिए उन्हें नये बाजारों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अतः यह देश उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील होने लगे। इन उपनिवेशों से इन्हें दोहरा लाभ होता था। मशीनों से निर्मित माल इन उपनिवेशों में बिकता था तथा माल तैयार करने के लिए कच्चा माल (Raw material) भी ये उपनिवेश ही उपलब्ध कराते थे। इन उपनिवेशों में पूंजी लगाने पर यूरोप के राज्यों की तुलना में बहुत अधिक लाभ होता था। इसी कारण व्यापारी व बैंकर भी अपने देश की सरकारों पर उपनिवेश स्थापित करने के लिए दबाव डाल रहे थे। इसी समय संचार के साधनों में हुई उन्नति ने उपनिवेशों की स्थापना में सहायता की। आवागमन के सुरक्षित तीव्रगामी साधन उपलब्ध होने से माल एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना सरल हो गया तथा दो स्थानों के मध्य सम्पर्क करना व बनाए रखना भी कठिन नहीं रहा था।

2. **धार्मिक कारण** (Religious Causes)—उपनिवेशों की स्थापना करने में धार्मिक कारणों ने भी मदद की।[3] ईसाई धर्म प्रचारकों ने विभिन्न देशों व स्थानों की यात्रा की व उपनिवेशों को स्थापित किये जाने का मार्ग प्रशस्त किया। इन प्रचारकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय

1 लैंडर, **यूरोपियन एलाएंसेज एण्ड एलानइमेण्ट्स**, पृ. 258।
2 "It is undeniable that the search for lucrative yet secure overseas investment played a very great part in the European urge to acquire colonies at the end of Nineteenth Century." —Thomson, *Europe Since Nopoleon*, p. 455.
3 "Christian missionaries played their part too in the spread of colonialism." —Thomson, *op. cit.*, p. 462.

नाम डॉक्टर डेविड लिविंगस्टोन (Dr. David Livingstone) का है। डेविड लिविंगस्टोन को लन्दन मिशनरी सोसाइटी के द्वारा अफ्रीका में धर्म प्रचार के लिए भेजा गया था, किन्तु उसने स्वयं को अफ्रीका में वाणिज्य व ईसाई धर्म का मार्ग बनाने वाले व्यक्ति के रूप में प्रमाणित किया।[1] लिविंगस्टोन लगभग 20 वर्षों तक अफ्रीका में रहा तथा अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व (1873 ई.) उसने इंगलैण्ड सन्देश भेजा कि अफ्रीका उसके व्यापार व ईसाई धर्म के प्रचार के लिए सही स्थान था। डॉ. लिविंगस्टोन के समान ही अन्य धर्म प्रचारकों ने भी कार्य किया व अफ्रीका में यूरोप के देशों का मार्ग प्रशस्त किया। उदाहरणार्थ, फ्रांस के कार्डिनल लेवीगेरी (Cardinal Livigerie) का नाम लिया जा सकता है जिसके विषय में गम्बेटा (Gambetta) ने कहा था, **"उसकी (लेवीगेरी) ट्यूनीशिया में उपस्थिति फ्रांस के लिए एक सेना के समान थी।"**[2]

3. **राजनीतिक कारण** (Political Causes)—आर्थिक एवं धार्मिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक कारणों की भी औपनिवेशिक विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस सम्बन्ध में डेविड थामसन ने लिखा है, **"आर्थिक कारणों के समान ही राजनीतिक कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं थे।"**[3] यूरोपीय देश नवीन सैनिक अड्डों की स्थापना के लिए नए-नए उपनिवेश प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। इंगलैण्ड तो उपनिवेश स्थापित करने की इस दौड़ में सबसे आगे था ही, जर्मनी, फ्रांस व इटली भी इसमें सम्मिलित हो गए, क्योंकि उपनिवेशों की स्थापना व साम्राज्यवादिता को देश के लिए गौरवशाली समझा जाने लगा। इस सम्बन्ध में डेविड थामसन का कथन उल्लेखनीय है, **"यूरोप के प्रमुख देशों में ऐसे कुछ राष्ट्रवादी, राजनीतिज्ञ, लेखक, विचारक व अर्थशास्त्री हुए जिन्होंने राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने के लिए तथा राष्ट्र की सुरक्षा तथा आत्मनिर्भरता की दृष्टि से औपनिवेशिक विस्तार की नीति को प्रबल प्रोत्साहन दिया और उसका प्रचार किया। इटली और जर्मनी जैसे देश, जहां औद्योगिक विकास कम हुआ था, ने राजनीतिक कारणों से ही औपनिवेशिक विस्तार किया।"**[4]

अफ्रीका का विभाजन
(THE PARTITION OF AFRICA)

अफ्रीका एक अत्यन्त विशाल महाद्वीप है जो यूरोप के आकार का तीन गुना है। 19वीं शताब्दी के पूर्व अफ्रीका के विषय में यूरोपीय लोगों को विस्तृत जानकारी नहीं थी। इसी कारण अफ्रीका को **'अन्ध महाद्वीप'** (Dark Continent) के नाम से जाना जाता था। यूरोपीय देशों ने तब तक केवल अफ्रीका के तटीय प्रदेशों पर अधिकार किया था जहां से व्यापारी हब्शियों को गुलाम बना कर बेचते थे। अफ्रीका में विशेष रुचि न लेने के प्रमुख कारणों में वहां की अत्यन्त खराब जलवायु, रेगिस्तान, खराब समुद्र तटों का होना था।

अफ्रीका की खोज (Discovery of Africa)—अफ्रीका जब तक एक 'अन्ध-महाद्वीप' बना रहा किसी ने उसमें विशेष रुचि नहीं ली, किन्तु धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन होने लगा व लोग अफ्रीका की ओर आकर्षित होने लगे। 1843 ई. तक अफ्रीका के मात्र 10 प्रतिशत

1 "An explorer to open a path for Commerce and christianity." —*Ibid.*
2 "His (Livigerie) presence in Tunisia is worth an army for France," —*Gambetta.*
3 "The political factor was no less important than the purely economic." —Thomson, *Europe Since Nepoleon*, p. 460.
4 वही, पृ. 461।

भाग पर यूरोपीय देशों ने अधिकार कर रखा था, किन्तु 1843 ई. से 1890 ई. तक के काल में अनेक साहसिक खोज़कर्ताओं ने, सम्पूर्ण अफ्रीका की यात्रा की व नए-नए प्रदेशों का पता लगाया। अफ्रीका में विभिन्न क्षेत्रों की खोज करने में मिशनरियों का भी प्रमुख योगदान रहा। अपने धर्म के प्रचार के लिए धर्म प्रचारकों ने दुरूह प्रदेशों की भी यात्राएं कीं। **बार्थ** (Barth), नाक्टिगल (Nachtigal) तथा वोगेल (Vogel), आदि अन्वेषणकर्ताओं ने सहारा व सूडान के क्षेत्रों को खोजने में सफलता प्राप्त की। इनके अतिरिक्त ग्रान्ट (Grant), स्पेक (Speke) तथा बेकर (Baker) बड़ी झीलों के क्षेत्र को खोजने में सफल रहे। लिविंगस्टोन (Livingstone) ने जाम्बेसी नदी के द्वारा यात्रा करके विक्टोरिया तथा न्याजा झीलों का पता लगाया व जाम्बेसी (Jambesi) की घाटी की खोज की। लिविंगस्टोन के अफ्रीका में खो जाने के कारण 1874 ई. में उसको ढूंढने के लिए स्टेनली (Stanley) को भेजा गया। स्टेनली ने कांगो की घाटी का पता लगाया तथा वहां की प्राकृतिक सम्पदा के विषय में जानकारी प्राप्त की। स्टेनली ने अपनी खोज के विषय में **'थ्रू द डार्क कान्टीनेन्ट'** (*Through the Dark Continent*) नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसने अफ्रीका को सम्पूर्ण यूरोप में चर्चा का विषय बना दिया।

इस प्रकार अफ्रीका एक 'अन्ध महाद्वीप' न रहा, अतः यूरोपीय देशों में उस पर अधिकार करने की प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई।

अफ्रीका का विभाजन (Partition of Africa)—यूरोप का प्रत्येक देश अफ्रीका के क्षेत्रों पर अधिकार करने का उत्सुक था। इस दिशा में सर्वप्रथम बेल्जियम के शासक लिओपोल्ड (Leopold) ने प्रयास किया। उसने 1876 ई. में अपनी राजधानी ब्रूसेल्स (Brussels) में अफ्रीका के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा का आयोजन किया, जिसमें **अफ्रीका के विकास के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था** (International Association for the Exploration and Civilisation of Central Africa) की स्थापना की गई। इस संस्था का अध्यक्ष बेल्जियम के शासक लिओपोल्ड को ही बनाया गया। यह संस्था अपने उद्देश्यों के अनुरूप कार्य न कर सकी। अतः प्रत्येक देश अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अफ्रीका में हस्तक्षेप करने लगा। इसी समय बेल्जियम के शासन लिओपोल्ड ने स्टेनली की सहायता से कांगो के विशाल राज्य की स्थापना की।

बर्लिन सम्मेलन (Berlin Congress)—बेल्जियम के साम्राट लिओपोल्ड द्वारा कांगो के राज्य की स्थापना करने के साथ ही यूरोप के राष्ट्रों द्वारा अफ्रीका के क्षेत्रों पर अधिकार करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। अतः अफ्रीका के विभाजन की रूपरेखा तैयार करने के लिए नवम्बर 1884 ई. में बर्लिन में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन फरवरी 1885 ई. तक चलता रहा। इस सम्मेलन में स्विट्‌जरलैण्ड के अतिरिक्त यूरोप के सभी प्रमुख राष्ट्रों ने भाग लिया था। अमेरिका भी इस महत्वपूर्ण सम्मेलन में शामिल हुआ था। इस सम्मेलन में एक **जनरल अधिनियम** (General Act) तैयार किया गया, जिसे **बर्लिन अधिनियम** (Berlin Act) कहा जाता है। **इस बर्लिन अधिनियम के द्वारा निम्नलिखित बातें तय की गईं :**

(i) कांगो की घाटी में सभी देशों को व्यापार की सुविधा प्रदान की गई।

(ii) कांगो घाटी में व्यापार पर नियन्त्रण हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की गई।

(iii) कांगो स्वतन्त्र राज्य पर अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा का आधिपत्य स्वीकार किया गया।

(iv) नाइजर नदी के ऊपरी भाग पर इंगलैण्ड व निचले भाग पर फ्रांस के प्रभाव को स्वीकार किया गया।

उपरोक्त अधिनियम से भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ और यूरोपीय राष्ट्रों ने मनमाने तरीके से अफ्रीका पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। अतः बर्लिन कांग्रेस (1884 ई.) के पश्चात् अफ्रीका का विभाजन तीव्र गति से हुआ।[1]

पुर्तगाल और अफ्रीका (Portugal and Africa)—अफीका में अधिकार करने की प्रतिस्पर्धा में पुर्तगाल ने भी भाग लिया तथा अफ्रीका के अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। पुर्तगाल द्वारा अधिकृत अफ्रीकी क्षेत्रों में अंगोला (Angola), मोजम्बिक (Mojambique) व गिनी तट प्रमुख थे।

स्पेन एवं अफ्रीका (Spain and Africa)—स्पेन अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने में विशेष सफल न हो सका। उसे केवल टेंजियर से ही सन्तुष्ट होना पड़ा।

बेल्जियम तथा अफ्रीका (Belgium and Africa)—बेल्जियम अफ्रीका में कांगो के विशाल साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ।

इटली और अफ्रीका (Italy and Africa)—अफ्रीका में ट्यूनिस के क्षेत्र पर अधिकार करने का इच्छुक इटली था, किन्तु 1881 ई. में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार करके उसकी इच्छा पर पानी फेर दिया। कालान्तर में इटली ने इरीट्रिया (Eritrea) व मसोवा (Massowah) में अपने उपनिवेश स्थापित किए। कुछ समय पश्चात् उसने सोमालीलैण्ड (Somaliland) पर भी अधिकार कर लिया। अफ्रीका में सबसे प्रमुख उपलब्धि इटली को 1911 ई. में मिली, जबकि उसने त्रिपोली (Tripoli) पर अधिकार किया। त्रिपोली इटली से पांच गुना बड़ा था। अतः त्रिपोली पर अधिकार कर लेने से इटली के सम्मान में कुछ वृद्धि हुई।[2]

जर्मनी और अफ्रीका (Germany and Africa)—जिस समय अफ्रीका पर अधिकार करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जर्मनी का प्रधानमन्त्री बिस्मार्क था। बिस्मार्क इंगलैण्ड से मधुर सम्बन्ध रखना चाहता था। अतः उसने अफ्रीका में उपनिवेश स्थापना की ओर विशेष ध्यान न दिया, कुछ समय पश्चात् जर्मनी में उद्योग इतना बढ़ गया कि जर्मन व्यापारी उपनिवेशों की आवश्यकता का अनुभव करने लगे। अतः जर्मनी ने भी अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने प्रारम्भ कर किए। जर्मनी ने अफ्रीका में एंग्रा पेक्वेना (Angra paquena), जर्मन दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका (German South-West Africa), तोगोलैण्ड (Togoland), कैमरून (Cameroon) व पूर्वी अफ्रीका (German East Africa), आदि उपनिवेश स्थापित किये व इस प्रकार अफ्रीका के विशाल भूखण्ड पर अधिकार कर लिया।

1 "Following the Berlin conference the partition of Africa proceeded at a hectic pace."
—Walter Wallbank, *Contemporary Africa*, p. 32.

2 "This acquisition (Tripoli) of a colony five times as a large as italy provided some compensation to Italian pride for the failure ,to acquire Tunisia and reduced Franco-Italian friction."
—Ferguson and Bruun, *A Survey of European Civilization*, p. 743.

फ्रांस और अफ्रीका (France and Africa)—अफ्रीका पर अधिकार करने वाले प्रमुख देशों में से एक फ्रांस भी था। फ्रांस ट्यूनिस, मिस्र, मोरक्को व अल्जीरिया पर अधिकार करना चाहता था।

ट्यूनिस को अफ्रीका का प्रवेश द्वार कहा जाता था। ट्यूनिस के महत्व के विषय में देकासे (Decaze) ने कहा था, **"ट्यूनिस अफ्रीका का प्रवेश द्वार है, यहां पर किसी अन्य यूरोपीय राज्य की शक्ति के स्थापित हो जाने से अल्जीरिया की सुरक्षा को अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो सकता है।"**[1] बर्लिन सम्मेलन में फ्रांस को ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिए हरी झण्डी दिखा दी थी, किन्तु इटली भी ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहता था, अतः उसने फ्रांस का विरोध किया। फ्रांस ने इटली की परवाह न करते हुए 12 मई, 1881 को ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। फ्रांस के इस कार्य से इटली फ्रांस का विरोधी हो गया जिसका भावी राजनीति पर गहरा प्रभाव हुआ। इटली ने जर्मनी व आस्ट्रिया के साथ मिलकर त्रिराष्ट्र सन्धि कर ली।

मिस्र पर भी फ्रांस अधिकार करना चाहता था, किन्तु इंगलैण्ड के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। इंगलैण्ड के लिए मिस्र का अत्यधिक राजनीतिक महत्व था। यदि कोई अन्य राष्ट्र मिस्र पर अधिकार कर लेता तो भारत के लिए खतरा हो सकता था। अतः इंगलैण्ड ने फ्रांस द्वारा मिस्र पर अधिकार करने के समस्त प्रयासों को विफल कर दिया।

मिस्र में असफल होने पर फ्रांस ने मेडागास्कर (Madagascar), सेनीगल (Senegal), गिनी (Guinea), आइवरी कोस्ट (Ivory coast), मध्य सूडान में डारफर (Darfur) से चाड (Tchad) तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। सहारा पर भी फ्रांस ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

फ्रांस ने मोरक्को (Morocco) पर भी अधिकार करने का प्रयत्न किया। मोरक्को की आन्तरिक स्थिति अत्यन्त खराब थी जिसका लाभ उठाकर उसने शनैः-शनैः मोरक्को में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया। फ्रांस ने मोरक्को में अपने हितों को इटली व इंगलैण्ड से भी मान्यता प्रदान करा दी, किन्तु जर्मनी मोरक्को पर बढ़ते हुए फ्रांसीसी प्रभाव का विरोध कर रहा था। जर्मनी के साम्राट ने 1905 ई. में घोषणा की, **"मोरक्को में जर्मनी के महान् हित निहित हैं जो बढ़ते जा रहे हैं।"**[2] किन्तु इंगलैण्ड क्योंकि फ्रांस का समर्थन कर रहा था, अतः 1911 ई. में जर्मनी ने फ्रांस के मोरक्को पर प्रभाव को स्वीकार कर लिया।

इंगलैण्ड और अफ्रीका (England and Africa)—इंगलैण्ड सदैव से उपनिवेशवाद में अग्रणी रहा है। अफ्रीका के विभाजन में भी सर्वाधिक उपनिवेश इंगलैण्ड ने ही स्थापित किये।[3] काहिरा (Cairo) से लेकर अन्तरीप (Cape) तक के सम्पूर्ण भू-भाग पर इंगलैण्ड का अधिकार हो गया, जिसके अन्तर्गत गुड होप, नेटाल, ट्रांसवाल, रोडेशिया, सोमालीलैण्ड, नाइजीरिया, गोल्ड कोस्ट, कीनिया, इत्यादि थे।

मिस्र का ब्रिटिश दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व था। मिस्र की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी, अतः 1875 ई. में मिस्र के शासक इस्माइल पाशा ने स्वेज नहर के कुछ शेयर इंगलैण्ड को बेच दिये। 1876 ई. में एक संस्था बनाई गई जिससे मिस्र के खर्चे पर इंगलैण्ड व फ्रांस

1 डब्लू. ए. लैंगर, **यूरोपियन एलाएंसेज एण्ड एलाइनमेन्ट्स** पृ. 218।

2 गूच, **हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप**, पृ. 296।

3 सम्पूर्ण अफ्रीका का लगभग 1/3 भाग इंगलैण्ड के अधीन हो गया था।

का प्रभाव हो गया। इस प्रकार मिस्र में द्वैध शासन (Diarchy) की स्थापना हो गई। कुछ समय पश्चात् इस्माइल पाशा के स्थान पर उसके पुत्र तौफीक को मिस्र का शासक बना दिया गया। तौफीक के शासनकाल में मिस्र की स्थिति बहुत खराब हो गई। आर्थिक तंगी के कारण मिस्रवासी विदेशी हस्तक्षेप का विरोध करने लगे। जनता का नारा था—**'मिस्र मिस्रवासियों का है'** (Egypt is for Egyptians)। मिस्र में स्थिति निरन्तर बिगड़ती गई। अन्ततः सितम्बर
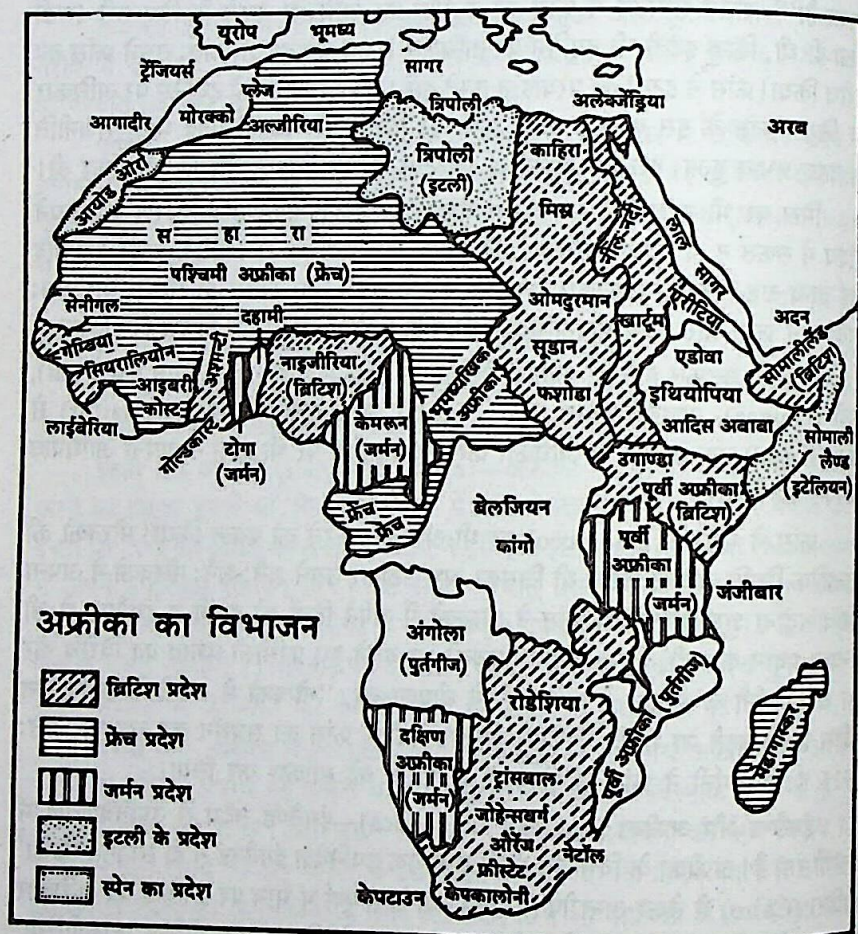
1881 ई. में मिस्र में अरगी पाशा के नेतृत्व में विद्रोह हो गया। इंगलैण्ड व फ्रांस ने इस विद्रोह का दमन करने का प्रयास किया। इंगलैण्ड ने मिस्र के कुछ भागों पर बमबारी करने का प्रयास किया, जिसका फ्रांस द्वारा विरोध किया गया। अतः इंगलैण्ड ने अकेले ही मिस्र के कुछ भागों पर बमबारी की व मिस्र पर अधिकार कर लिया। जर्मनी ने भी इंगलैण्ड का समर्थन किया। अन्ततः फ्रांस ने भी मिस्र पर इंगलैण्ड के प्रभाव को स्वीकार कर लिया। अतः मिस्र इंगलैण्ड का उपनिवेश बन गया।

मिस्र के पश्चात् इंगलैण्ड ने सूडान पर भी अधिकार करना चाहा, किन्तु वहां का शासक मेंहदी अत्यन्त योग्य था, अतः अंग्रेज अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। मेंहदी की मृत्यु के पश्चात् उसके दुर्वल उत्तराधिकारी के कारण सूडान में अव्यवस्था फैल गई। इसका लाभ उठाते हुए, अंग्रेजों ने 1898 ई. में सूडान पर अधिकार कर लिया। मिस्र पर अधिकार बनाये रखने के लिए अंग्रेजों के लिए सूडान का अत्यधिक महत्व था, अतः सूडान पर अधिकार करना इंगलैण्ड की एक बड़ी उपलब्धि थी।

इंगलैण्ड ने दक्षिण अफ्रीका में भी विशाल भू-भाग पर अधिकार किया। केप कोलोनी में रहने वाले बोअर (Boer) कहलाते थे। केप कोलोनी (Cape colony) में धीरे-धीरे अंग्रेजों ने भी बसना प्रारम्भ कर दिया। 1833 ई. में बोअर केप कोलोनी के स्थान पर नेटाल (Natal) में जाकर बस गए। कुछ समय पश्चात् अंग्रेजों द्वारा नेटाल पर भी अधिकार कर लिए जाने पर बोअर आरेन्ज फ्रीस्टेट (Orange Free State) व ट्रांसवाल (Transval) में बस गए। 1880 ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध बोअरों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेजों की सैनिक टुकड़ी को भी बोअरों ने परास्त कर दिया। अतः अंग्रेजों ने ट्रांसवाल को स्वतन्त्र तो मान लिया, किन्तु ट्रांसवाल की वैदेशिक नीति अंग्रेजों द्वारा ही निर्धारित होती थी।

1886 **ई. में ट्रांसवाल में सोने की खानों के विषय में पता चला।** अतः कुछ ही वर्षों में वहां अंग्रेजों की संख्या बहुत अधिक हो गई। बोअर इनको **'यूइटलैण्डर्स'** (Utilanders) कहते थे व उनसे नफरत करते थे। अंग्रेजों का नेता सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) था जो केपकोलोनी का एक पूंजीपति था। उसने विशाल भू-भाग पर अधिकार कर रखा था जिसके नाम पर उस क्षेत्र को **'रोडेशिया'** (Rhodesia) कहा गया। रोड्स 1890 से 1896 ई. तक केपकोलोनी का प्रधानमन्त्री भी रहा था। 1895 ई. में रोड्स के प्रोत्साहन से अंग्रेजों ने डॉ. जेमसन के नेतृत्व में ट्रांसवाल पर आक्रमण किया, परन्तु बोअरों ने डॉ. जेमसन को परास्त कर दिया। इससे अंग्रेजों की अत्यधिक बदनामी हुई व ब्रिटिश शक्ति को धक्का लगा। इस अवसर पर जर्मनी के सम्राट विलियम कैसर II (William Keiser II) ने ट्रांसवाल के राष्ट्रपति क्रूगर (Krugger) को बधाई तार भेजा था जो 'क्रूगर टेलीग्राम' (Krugger Telegram) के नाम से प्रसिद्ध है। इस घटना से इंगलैण्ड व जर्मनी के सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गए।

1899 ई. में बोअरों व अंग्रेजों के मध्य पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसे **'बोअर युद्ध'** (Boer war) कहा जाता है। यह युद्ध तीन वर्ष तक चलता रहा, अन्ततः बोअर पराजित हो गए व 1920 ई. में उन्होंने बेरीनिगिंग (Vereeniging) की सन्धि कर ली। इस प्रकार ट्रांसवाल व ऑरेन्ज फ्री स्टेट पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

इस प्रकार अफ्रीका के बंटवारे से इंगलैण्ड को अत्यधिक लाभ हुआ। कैटलबी ने लिखा है, **"ब्रिटेन के कतिपय साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञों के सपने साकार हो गए।"**

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

अफ्रीका के विभाजन का यूरोप की राजनीति पर भी व्यापक प्रभाव हुआ। इसके कारण फ्रांस, इंगलैण्ड, इटली व जर्मनी में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता हुई जिसका यूरोप कीं राजनीति पर असर पड़ा। ट्यूनिस में फ्रांस व इटली, मोरक्को के कारण फ्रांस व जर्मनी तथा ट्रांसवाल

के कारण इंगलैण्ड व जर्मनी के सम्बन्ध खराब हुए, जिन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के लिए मार्ग प्रशस्त किया, अफ्रीका के विभाजन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो. चौहान ने लिखा है : **"अफ्रीका का विभाजन यूरोप एवं विश्व के इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इसकी एक विशेषता यह थी कि इतने विशाल महाद्वीप का विभाजन बिना युद्ध के पूरा हुआ। समय-समय पर विभिन्न राज्यों में तनातनी हुई, कटुता भी उत्पन्न हुई, संघर्ष की सम्भावनाएं भी दिखाई दीं, किन्तु अन्त में सभी संकटों का कूटनीति के द्वारा निवारण हो गया और कोई युद्ध (महाशक्तियों में) नहीं हुआ। इसकी दूसरी विशेषता यह थी कि यह विभाजन क्रमिक रूप से नहीं वरन् बड़ी तीव्र गति से हुआ। 1878 ई. के बाद तीस वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण क्षेत्र का विभाजन हो गया।"**[1]

उल्लेखनीय है कि यूरोप द्वारा अफ्रीका को बांट दिये जाने से अफ्रीका परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गया। दुर्भाग्य से अभी तक अफ्रीका के अनेक राष्ट्र परतन्त्र ही हैं, किन्तु इसका पहलू यह भी है कि यूरोपियों द्वारा अफ्रीका पर अधिकार कर लिए जाने के कारण अफ्रीका के निवासियों को कुछ लाभ भी हुए। वहां के जनजातीय युद्ध, प्लेग, अमानवीय मान्यताएं, आदि समाप्त हो गए तथा आवागमन के साधनों तथा शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार हुआ।[2]

प्रश्न

1. 1870 ई. के पश्चात् नवीन साम्राज्य के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. 1870 ई. के पश्चात् अफ्रीका के विभाजन का वर्णन कीजिए।
3. उन्नीसवीं शताब्दी में अफ्रीका के विभाजन का वर्णन कीजिए।
4. अफ्रीका के विभाजन के कारणों पर एक लघु निबन्ध लिखिए।
5. 19वीं शताब्दी में अफ्रीका का यूरोपियन शक्तियों के बीच विभाजन का वर्णन कीजिए।

(गोरखपुर, 1987, 90, 92)

1 **यूरोप का इतिहास**, पृ. 669।

2 **"The white man did bring some benefits to the people or Africa, for he curbed their tribal wars, reduced plagues suppressed cruel and degrading practices improved communications, and in some colonies fostered education."**

—Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 774.

25

प्रथम विश्व-युद्ध

[THE FIRST WORLD WAR]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1914 ई. में **प्रारम्भ हुआ प्रथम विश्व-युद्ध न केवल यूरोप की, वरन् विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है।** इससे पूर्व हुए समस्त युद्ध क्षेत्रीय स्तर पर लड़े गये थे, अथवा दो-तीन देशों के मध्य हुए थे, किन्तु इस युद्ध में विश्व का लगभग प्रत्येक देश उलझा हुआ था तथा किसी न किसी पक्ष को समर्थन दे रहा था। अत्यन्त उच्च स्तर पर लड़े गये इस युद्ध में पहली बार गोरी, पीली, काली तथा भूरी जातियों ने एक-दूसरे की हत्या करने में भाग लिया[1] तथा युद्ध की लपटें शीघ्र ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, जल, आकाश में फैल गयीं।[2] शीघ्र ही सम्पूर्ण विश्व इस युद्ध की आग से घिर गया।

इस युद्ध की आशंका बहुत समय पूर्व से ही की जा रही थी। 1898 ई. में बिस्मार्क ने इस युद्ध के विषय में भविष्यवाणी करते हुए हर बेलिन (Herr Ballian) से कहा था, **"मैं विश्व-युद्ध नहीं देखूंगा पर तुम देखोगे और यह पश्चिमी एशिया में प्रारम्भ होगा।**[3] प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार जे. ए. आर. मैरियट का विचार कि **यदि बिस्मार्क ने 1898 ई. में इस प्रकार की भविष्यवाणी कर दी थी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि सम्भवतः 1898 ई. तक बिस्मार्क यह समझ गया था कि जो बीज उसने बर्लिन कांग्रेस में बोया था उससे शीघ्र ही विध्वंसक प्रतिफलों का होना निश्चित था।**[4] मैरियट के इस विचार को कि बिस्मार्क प्रथम विश्व-युद्ध के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी था, स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस युद्ध की पृष्ठभूमि में अनेक अन्य पहलू भी थे जिनका इस युद्ध को प्रारम्भ करने में कम योगदान नहीं था। टर्की साम्राज्य निरन्तर दुर्बल होता जा रहा था तथा बाल्कन प्रदेश में हैप्सवर्गों व रोमनेफों, स्लावों तथा ट्यूटनों में प्रतिस्पर्धा चल रही थी। यद्यपि बिस्मार्क ने बर्लिन कांग्रेस

1 "For the first time, the white, the yellow, the black and the brown races jumped into this unprecedented struggle to kill one-another on a scale unheard so far." —L. Fisher

2 "The war flames spread to the East and the West, to the North and the South to the sea, to the air and to the realm of propaganda." —Ketelbey

3 "I shall not see the world war, but you will and it will start in the Near East." —Bismarck

4 "But in 1898, it not before, Bismarck must have realised that in 1898 he had sown seed that was bound before long to yield a death dealing harvest." —Marriot

में आस्ट्रिया का पक्षपात करके रूस के साथ विश्वासघात किया था तथापि उसने फ्रांस और रूस की इंगलैण्ड से मित्रता नहीं होने दी थी तथा स्वयं ने इटली से भी मित्रता कर ली थी। बिस्मार्क के पश्चात् जर्मनी में कोई भी कुशल राजनीतिज्ञ न हुआ जो बिगड़ती परिस्थिति में सुधार ला सकता। **विश्व-युद्ध तो वास्तव में 1909 ई. में ही प्रारम्भ हो गया होता, यदि बोस्निया एवं हर्जेगोविना के प्रश्न पर रूस ने आस्ट्रिया का सामना करने का निर्णय लिया होता, किन्तु तब रूस युद्ध करने की स्थिति में न था, अतः युद्ध टल गया था।**

प्रथम विश्व-युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE FIRST WORLD WAR)

1914 ई. में प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के **निम्नलिखित प्रमुख कारण थे :**

(क) दल प्रथा (Party System)—प्रथम विश्व-युद्ध का एक अत्यन्त प्रमुख कारण दल प्रथा का जन्म होना था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोप दो सैनिक दलों में विभक्त हो गया था।[1] सर्वप्रथम 1879 ई. में जर्मनी ने आस्ट्रिया के साथ **द्वि-राष्ट्र सन्धि** (Dual Alliance) की। शीघ्र ही इटली भी 1882 ई. में इस दल में सम्मिलित हो गया, इस प्रकार **त्रि-राष्ट्र सन्धि** की स्थापना हुई। इस समय तक जर्मनी में बिस्मार्क शक्ति में था तथा उसकी वैदेशिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य फ्रांस को पृथक् रखना था, किन्तु 1890 ई. में उसके पतन के पश्चात् जर्मनी ने इस ओर ध्यान न दिया। अतः 1894 ई. फ्रांस तथा रूस में संधि हो गयी। इंगलैण्ड बहुत समय पूर्व से इस समय तक **शानदार पृथकत्व की नीति** का पालन कर रहा था, किन्तु इस समय उसे अपनी सुरक्षा के लिए यह सोचने पर विवश होना पड़ा कि यूरोप की महान् शक्तियों में केवल यही एक ऐसा देश है जो अकेला है और ऐसी स्थिति में यदि किसी देश से युद्ध करना हुआ तो स्थिति कितनी शोचनीय हो जायेगी। अतः इंगलैण्ड ने शानदार पृथकत्व भी नीति का परित्याग कर, 1902 ई. में जापान के साथ सन्धि कर ली। 1904 ई. में इंगलैण्ड ने **फ्रांस से सन्धि** (Cordaile Entente) की। 1907 ई. में इसमें रूस भी सम्मिलित हो गया तथा **हार्दिक मैत्री सम्बन्ध** (Triple Entente) की स्थापना हुई। **इस प्रकार यूरोप दो सैनिक दलों में विभक्त हो गया।** एक ओर त्रि-राष्ट्र सन्धि में जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली थे, दूसरे खेमे में 'हार्दिक मैत्री सम्बन्ध' के फ्रांस, इंगलैण्ड व रूस थे। **इस प्रकार यूरोप के दो परस्पर विरोधी दलों में विभक्त हो जाने युद्ध हुए होना स्वाभाविक ही था।**

(ख) गुप्त कूटनीति (Secret Diplomacy)—बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक कूटनीति में भी भ्रष्टता व्याप्त होने लगी थी, जिसका आधार धोखा व झूठ हो गया था। सन्धियां गुप्त होने लगी थीं जिनके विषय में जनता व अन्य देशों के राजनीतिज्ञों को कोई जानकारी नहीं रहती थी।[2] गुप्त राजनीति एवं नीति की भ्रष्टता का उदाहरण इटली की नीति थी।[3] इटली यद्यपि जर्मनी एवं आस्ट्रिया के साथ त्रि-राष्ट्र सन्धि कर चुका था तथापि गुप्त रूप से इंगलैण्ड एवं फ्रांस से भी मित्रता की बात कर रहा था।

1 "Thus the beginning the century saw Europe divided into two 'armed camps', and never has there been a greater demonstration of untruth in saying. If you wish for peace, make ready for war." —*Warner-Marten-Muir*

2 "The greatest single underlying cause of the war was the system of secret alliances." —Fay, *Origin of the Worlds War*, p. 34.

3 "Her (Italy) secret and inconsistent promises reduced the system of alliance into force." —*Thomson*

(ग) राष्ट्रवाद की भावना (Rise of Nationalism)—प्रथम विश्व-युद्ध का एक कारण उग्र राष्ट्रीयता की भावना का होना था। इस समय यूरोप में दो प्रमुख राष्ट्रवाद सम्बन्धी आन्दोलन चल रहे थे। जर्मनी में **'पान जर्मन आन्दोलन'** (Pan German Movement) चल रहा था, जिसका उद्देश्य जर्मनों को जो यूरोप के विभिन्न राज्यों में रह रहे थे, एक महान् जर्मनी के अन्तर्गत एक करना था। इसी प्रकार का एक अन्य आन्दोलन **'पान स्लाव आन्दोलन'** (Pan Slavic Movement) था, जिसके द्वारा स्लाव जाति रूस में सर्वाधिक संख्या में थी, स्वयं को संगठित करना चाहती थी। राष्ट्रीयता की उग्र भावना के परिणामस्वरूप राजनीतिक अराजकता उत्पन्न हो गयी थी। फ्रांस व जर्मनी तथा इंगलैण्ड व जर्मनी के निरन्तर कटु हो हो रहे सम्बन्धों का कारण भी राष्ट्रीयता की भावना ही थी।

(घ) साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा (Imperialistic Rivalry)—यूरोप की महान् शक्तियों में से प्रत्येक देश अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था, क्योंकि देश के सम्मान व आर्थिक कारणों से यह आवश्यक था। **औद्योगिक क्रान्ति ने उपनिवेशों के महत्व को और भी बढ़ा दिया था।** इंगलैण्ड व फ्रांस के पास अनेक उपनिवेश थे। जर्मनी में जब तक विस्मार्क सत्ता में रहा, उसने इंगलैण्ड से इस सम्बन्ध में प्रतिस्पर्द्धा करने का प्रयत्न किया, किन्तु बिस्मार्क के पश्चात् जर्मनी ने भी उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास किया। जर्मनी की इंगलैण्ड व फ्रांस के उपनिवेशों पर भी दृष्टि थी। ऐसी स्थिति में संघर्ष होना निश्चित ही था।

(ङ) सैनिकवाद की भावना (Militarism)—यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उग्र सैनिक भावना का जन्म हुआ तथा तीव्रता से चारों ओर इसका प्रसार हुआ।[1] प्रत्येक देश में सेना के विस्तार एवं हथियारों के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गयी। प्रत्येक देश में यह भावना दृढ़ होने लगी कि राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए सैनिक शक्ति आवश्यक है। इसी समय कुछ विचारकों ने सैनिकवाद का अपने लेखों से अत्यधिक प्रचार किया। ट्रीटस्की (Treitscke) ने अपनी कृति **पॉलिटिक्स' में 'बल प्रयोग ही अधिकार है'** (Might is Right) सिद्धान्त को सराहा। फ्रांस में भी दार्शनिकों ने इसी प्रकार की भावना को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार सैनिकवाद की भावना यूरोपीय राष्ट्रों को निरन्तर युद्ध की ओर अग्रसर कर रही थी।

(च) अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव (Absence of International Organisation)—प्रथम विश्व-युद्ध के समय तक यूरोप अथवा विश्व में कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था न थी, जिसके द्वारा विभिन्न देशों की समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाया जा सकता। अतः इस प्रकार की संस्था के अभाव में राष्ट्रों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा था, जिसका अन्त विश्व-युद्ध के रूप में हुआ।

(छ) अल्सेस एवं लारेन प्रदेश (Provinces of Alsace & Lorraine)—इन दोनों प्रदेशों के कारण फ्रांस एवं जर्मनी में दीर्घकाल से शत्रुता चल रही थी। 1870 ई. में जर्मनी ने फ्रांस को परास्त किया तथा अल्सेस एवं लारेन प्रदेशों पर अधिकार कर विश्व-युद्ध के एक कारण को जन्म दिया। **फ्रांस के लिए अल्सेस एवं लारेन का अत्यधिक महत्व था क्योंकि**

1 "The root cause of the world war must be found in the regeneration of Germany by the Prussian spirit, and her determination to make that spirit prevail in the world politics." —*Marriot*

ये प्रदेश लुई चौदहवें की विजयों के प्रतीक थे, इसके अतिरिक्त लारेन में लोहे की खानों के कारण उसका आर्थिक एवं औद्योगिक महत्व भी था। अतः फ्रांस अल्सेस एवं लारेन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था, परिणामस्वरूप फ्रांस एवं जर्मनी के सम्बन्ध निरन्तर कटु होते गये।

(ज) बोस्निया एवं हर्जेगोविना (Bosnia and Herzagovina)—अल्सेस एवं लारेन प्रदेशों की समस्या के अनुरूप ही बोस्निया एवं हर्जेगोविना की समस्या थी। 1878 ई. में बर्लिन सन्धि के द्वारा ये दोनों प्रदेश प्रशासन हेतु आस्ट्रिया के अधिकार में दिये गये थे, किन्तु आस्ट्रिया पर इन्हें अपने राज्य में मिलाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया। आस्ट्रिया ने 1908 ई. में **बर्लिन सन्धि** (Treaty of Berlin) की अवहेलना कर दोनों प्रदेशों को अपने राज्य में विलीन कर लिया। बोस्निया एवं हर्जेगोविना में मुख्यतः स्लाव जाति रहती थी, अतः सर्बिया ने आस्ट्रिया के इस कार्य का घोर विरोध किया। रूस इस समय पूर्णतः युद्ध के लिए तैयार न था अन्यथा विश्व-युद्ध इसी समय प्रारम्भ हो जाता।

(झ) मोरोक्को संकट (Morocco Crisis)—1904 ई. में इंगलैण्ड व फ्रांस में सन्धि हो जाने से जर्मनी अत्यन्त चिन्तित हुआ, क्योंकि इससे अफ्रीका में उसके उपनिवेशों को हानि होने का भय था। 1905 ई. में मोरोक्को में हुए विद्रोह को दबाने के लिए फ्रांस ने सेना भेजी, जिसका जर्मनी ने घोर विरोध किया तथा फ्रांस को जर्मनी द्वारा रखी गयी अपमानजनक शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। कुछ वर्ष पश्चात् मोरोक्को में अव्यवस्था फैलने पर फ्रांस ने पुनः सेना भेजी। जर्मनी ने भी अपना जहाजी बेड़ा मोरोक्को भेजा, किन्तु इस समय तक स्थिति में परिवर्तन हो चुका था क्योंकि 1970 ई. में हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) हो चुकी थी। इंगलैण्ड ने भी इस अवसर पर जर्मनी को धमकी दी जिससे जर्मनी को पीछे हटना पड़ा, किन्तु वह प्रतिशोध लेने का अवसर ढूंढने लगा।

(ञ) परतन्त्र इटली (Italian Irrendenta)—एड्रियाटिक सागर के उत्तर में इटली का एक प्रदेश था, जिस पर आस्ट्रिया ने अधिकार कर रखा था। इटली निरन्तर आस्ट्रिया से इस प्रदेश को उसे सौंपने के लिए अनुरोध कर रहा था, किन्तु आस्ट्रिया इस बात के लिए तैयार न था। जर्मनी भी आस्ट्रिया का ही समर्थन करता था। **अतः इटली को यह विश्वास हो गया था कि त्रि-राष्ट्र का सदस्य रहते हुए उसे वह प्रदेश नहीं प्राप्त होगा।** अतः उसने इंगलैण्ड, फ्रांस व रूस का समर्थन करने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप, शक्ति सन्तुलन भंग हो गया तथा युद्ध के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे।

(प) बाल्कन युद्ध (Balkan Wars)—प्रथम तथा द्वितीय बाल्कन युद्धों के परिणामस्वरूप यूरोप की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सर्बिया को काफी भूमि प्राप्त हुई जिसका अप्रत्यक्ष लाभ रूस को था। इन युद्धों से आस्ट्रिया एवं जर्मनी का पर्याप्त अहित हुआ। अतः स्पष्ट हो गया कि यदि आस्ट्रिया व जर्मनी अपने हितों को प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे तो युद्ध अवश्य होगा।

(फ) विलियम कैसर द्वितीय की महत्वाकांक्षाएं (Ambitions of William Kaiser II)—**जर्मनी के शासक कैसर द्वितीय को प्रथम विश्व-युद्ध का जन्मदाता कहा जाता है।**[1] जब

1 "A national misfortune, the real father of the world war."
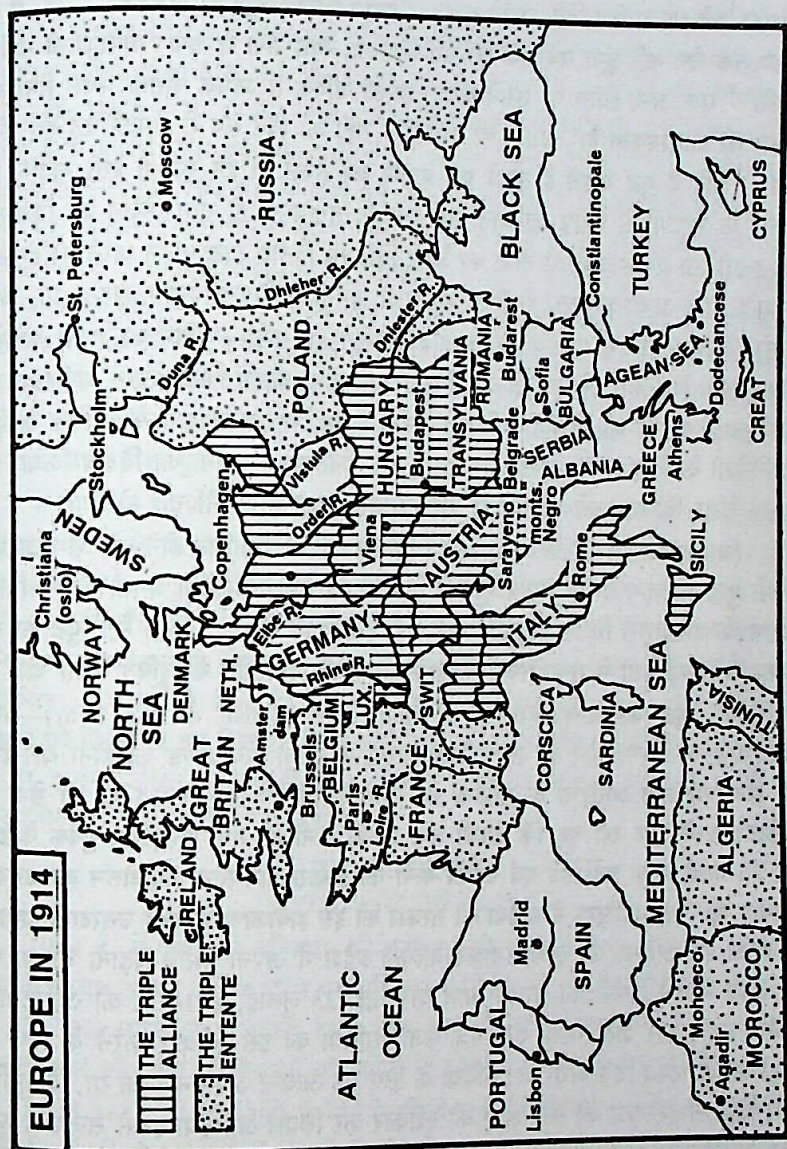
तक बिस्मार्क जर्मनी में शक्ति में रहा उसने सदैव फ्रांस को पृथक रखने तथा इंगलैण्ड से प्रतिस्पर्धा न करने की नीति का पालन किया। कैसर विलियम अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था तथा सैनिक शक्ति के आधार पर विश्व विजेता बनना चाहता था। उसकी थल सेना अत्यन्त शक्तिशाली थी, किन्तु इससे वह सन्तुष्ट न था। वह अपनी जल सेना को भी थल सेना के समान शक्तिशाली बनाना चाहता था। इंगलैण्ड द्वारा जर्मनी की इस प्रकार की नीति पर चिन्तित होना स्वाभाविक ही था, किन्तु कैसर ने अत्यन्त अदूरदर्शिता से कार्य किया तथा

अत्यन्त उत्तेजक भाषण दिये। उसने कहा—**"हमारा भविष्य समुद्र पर निर्भर है..........मैं उस समय तक चैन नहीं लूंगा जब तक कि मेरी जलसेना, स्थल सेना के समान शक्तिशाली नहीं हो जाती।"**[1] एक अन्य स्थान पर उसने कहा, **'हमको अधिक से अधिक नौसेना, स्थल सेना तथा बारूद की आवश्यकता है।'**[2] इतना ही नहीं मित्र राष्ट्रों को स्पष्ट रूप से धमकी देते हुए उसने कहा, **"यदि वे युद्ध चाहते हैं तो वे युद्ध प्रारम्भ कर सकते हैं। हम युद्ध से डरते नहीं।'**[3] इस प्रकार के भाषणों से यूरोप का वातावरण अत्यन्त तनावपूर्ण हो गया। हेजन का विचार है कि इतनी उग्र व महत्वाकांक्षी नीति का कैसर विलियम द्वितीय द्वारा पालन करने पर इंगलैण्ड से युद्ध होना आवश्यक था। इंगलैण्ड प्रारम्भ में जर्मनी से मित्रता करना चाहता था, किन्तु कैसर विलियम ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा—**'बर्लिन का रास्ता आस्ट्रिया होकर आता है।'**[4] कैसर ने पूर्व की ओर विस्तार करना भी प्रारम्भ किया। उसने बर्लिन-बगदाद रेलवे लाइन बनाने का भी प्रयास किया। जर्मनी के पूर्व में अग्रसर होने से इंगलैण्ड के पूर्वी उपनिवेशों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता। अतः इंगलैण्ड ने जर्मनी का विरोध किया। इस प्रकार कैसर विलियम की नीतियों के परिणामस्वरूप युद्ध होना निश्चित हो गया।

(ब) समाचारपत्र (News Papers)—विभिन्न देशों में प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों ने भी युद्ध को जन्म देने में प्रमुख भूमिका निभाई। इन समाचारपत्रों ने जनता की भावनाओं को भड़काया जिससे स्थिति बिगड़ती चली गई। इस विषय में फे ने लिखा है, **"युद्ध का एक कारण सभी बड़े देशों में समाचारपत्रों के द्वारा जनता की विचारधारा को दूषित करना था।"**[5]

(स) युद्ध का तात्कालिक कारण (Immediate Cause of the War)—प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने का तात्कालिक कारण सराजीवो हत्याकाण्ड का होना था। **हंगरी का राजकुमार तथा आस्ट्रिया के साम्राज्य का उत्तराधिकारी 29 जून, 1914 ई. को सेना का निरीक्षण करके लौट रहा था, कि उसकी तथा उसकी पत्नी की एक बोसनियन युवक ने हत्या कर दी। आर्क ड्यूक फर्डिनेण्ड एवं उसकी पत्नी का हत्यारा पान-स्लाव आन्दोलन का उग्रवादी समर्थक था। अतः आस्ट्रिया ने सर्बिया की सरकार को इस हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी ठहराया।** आस्ट्रिया इस अवसर का लाभ उठाकर बाल्कन प्रदेश में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। इस कार्य में उसे जर्मनी का समर्थन प्राप्त था। अतः 23 जुलाई, 1914 ई. को आस्ट्रिया ने सर्बिया को कठोर शर्तों वाला एक पत्र भेजा। सर्बिया को इसे स्वीकार करने के लिए 48 घण्टों का ही समय दिया गया था। सर्बिया के लिए यह अत्यन्त अपमानजनक था, किन्तु फिर भी सर्बिया ने इस पत्र की कछ शर्तों को स्वीकार कर लिया। आस्ट्रिया इससे सन्तुष्ट न हुआ और 28 जुलाई, 1914 ई. को उसने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इंगलैण्ड ने वैदेशिक मन्त्री सर एडवर्ड ग्रे ने युद्ध को टालने का अत्यन्त प्रयास किया, किन्तु असफल रहा।

---

1 "Our future lies on Sea...I will never rest unitl I Have raised my navy to a position similar to that occupied by my army." —*William Kaisar II.*
2 "More navy, More army and more dry powder." —*William Kaisar II.*
3 "If they want war, they can being it. We are not afraid of it."—*William Kaisar II.*
4 "The way to Berlin lies through Vienna."
5 "Another underlying cause of the war was the poisoning of public opinion by the news paper press in all the great countries." —Fay, *op. cit.*, p. 47.

रूस ने सर्बिया के पक्ष में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी ने भी प्रत्युत्तर में रूस व फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इंगलैण्ड अब तक इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ था तथा अभी भी निरन्तर युद्ध को टालने का ही प्रयत्न कर रहा था। ग्रे ने फ्रांस के राजदूत से भी यह कह दिया था कि इंगलैण्ड इस युद्ध में भाग नहीं लेगा, क्योंकि उसका मुख्य कारण फ्रांस एवं रूस के हितों की समानता होगी जिसके विरुद्ध जर्मनी युद्ध लड़ सकता है। इसके पश्चात् ग्रे ने फ्रांस एवं जर्मनी ने बेल्जियम की तटस्थता को स्वीकार करने हेतु आश्वासन प्राप्त करना चाहा। फ्रांस ने तो वचन दे दिया, किन्तु जर्मनी ने कोई उत्तर न दिया। 31 जुलाई, 1914 ई. को एडवर्ड ग्रे ने शान्ति बनाये रखने के लिए विभिन्न देशों को सत्रह तार भेजे, किन्तु इसका कोई प्रभाव न हुआ। **इसी मध्य जर्मनी ने इंगलैण्ड के अनेक जहाजों को पकड़ा व उनका सामान छीन 1839 ई. में हुई लन्दन की सन्धि को भंग करते हुए 3 अगस्त, 1914 ई. को जर्मनी ने बेल्जियम की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा शक्तिशाली राष्ट्रों के अत्याचारों से शक्तिहीन राष्ट्रों की रक्षा हेतु, जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।**

प्रथम विश्व-युद्ध को प्रारम्भ करने के लिए दोनों पक्षों ने परस्पर एक-दूसरे को उत्तदायी ठहराया। जर्मनी के चांसलर वैथमेन ने इंगलैण्ड की वैदेशिक नीति को इस युद्ध का कारण बताया है। उसके अनुसार, '**इंगलैण्ड की वैदेशिक नीति ही विश्व-युद्ध का प्रारम्भ करने वाली थी।**'[1] इसके विपरीत एडवर्ड ग्रे ने जर्मनी की नीति को उत्तरदायी बताते हुए कहा—'**बिस्मार्क की मृत्यु के पश्चात् उसके त्रिगुट के विरुद्ध त्रि-दल की स्थापना हुई तथा दोनों दलों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता, 1914 ई. के विश्व-युद्ध का अनेक कारणों में से एक कारण बना। इस युद्ध ने जर्मन साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।**''[2] किन्तु विश्व-युद्ध का उत्तरदायित्व किसी एक देश अथवा दल पर डालना उचित प्रतीत नहीं होता, दोनों ही दलों पर विश्व-युद्ध प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया जाना चाहिए।[3]

युद्ध की घटनाएं
(EVENTS OF THE WAR)

1914 ई. में जर्मनी ने बेल्जियम की तटस्थता को भंग करते हुए फ्रांस की सीमाओं में प्रवेश किया। उसका उद्देश्य पेरिस पर अधिकार करने का था, किन्तु अपने इस उद्देश्य में वह अन्त तक सफल न हो सका। दूसरी ओर रूस को परास्त करने में उसने प्रारम्भिक सफलता प्राप्त की। रूस की सेनाओं को जर्मनी ने टनेनबर्ग के युद्ध में परास्त किया।

1915-16 ई. में मित्र-राष्ट्रों ने मैसोपोटामिया एवं गैलीपोली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहे। इस वर्ष लड़े गये अन्य प्रमुख युद्ध आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया पर अधिकार करने का प्रयत्न करना था, जर्मनी द्वारा फ्रांस के प्रमुख दुर्ग वर्डन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना था, जर्मनी सफल न हो सका। स्थल-युद्ध के साथ-साथ जल-युद्ध

1 "It was the British foreign policy that first made war possible....We find the Anglo-German conflict to be the ultimate origin of the war." —*Bethman-Hollweg*

2 "After the death of Bismarck, his triple alliance was confronted with the triple Ententes and the rivalry between the two was one of the causes of the Great war of 1914, which shattered the German Empire." —*Edward Grey*

3 "It is clear that on power bears the full responsibility for the war and none is completely guiltless." —*Craig, Europe Since* 1815, p. 496.

भी चल रहा था। 1916 ई. में जर्मनी एवं इंगलैण्ड की नौ-सेनाओं में जूटलैण्ड का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें दोनों ही पक्षों की अपार क्षति हुई।

इसी समय जर्मन पनडुब्बी के कारण अमरीका का जहाज जिसमें बारह-सौ व्यक्ति थे, डूब गया। **अमरीका, जर्मनी के इस कार्य से अत्यन्त क्रोधित हुआ और वह मित्र-राष्ट्रों का साथी**
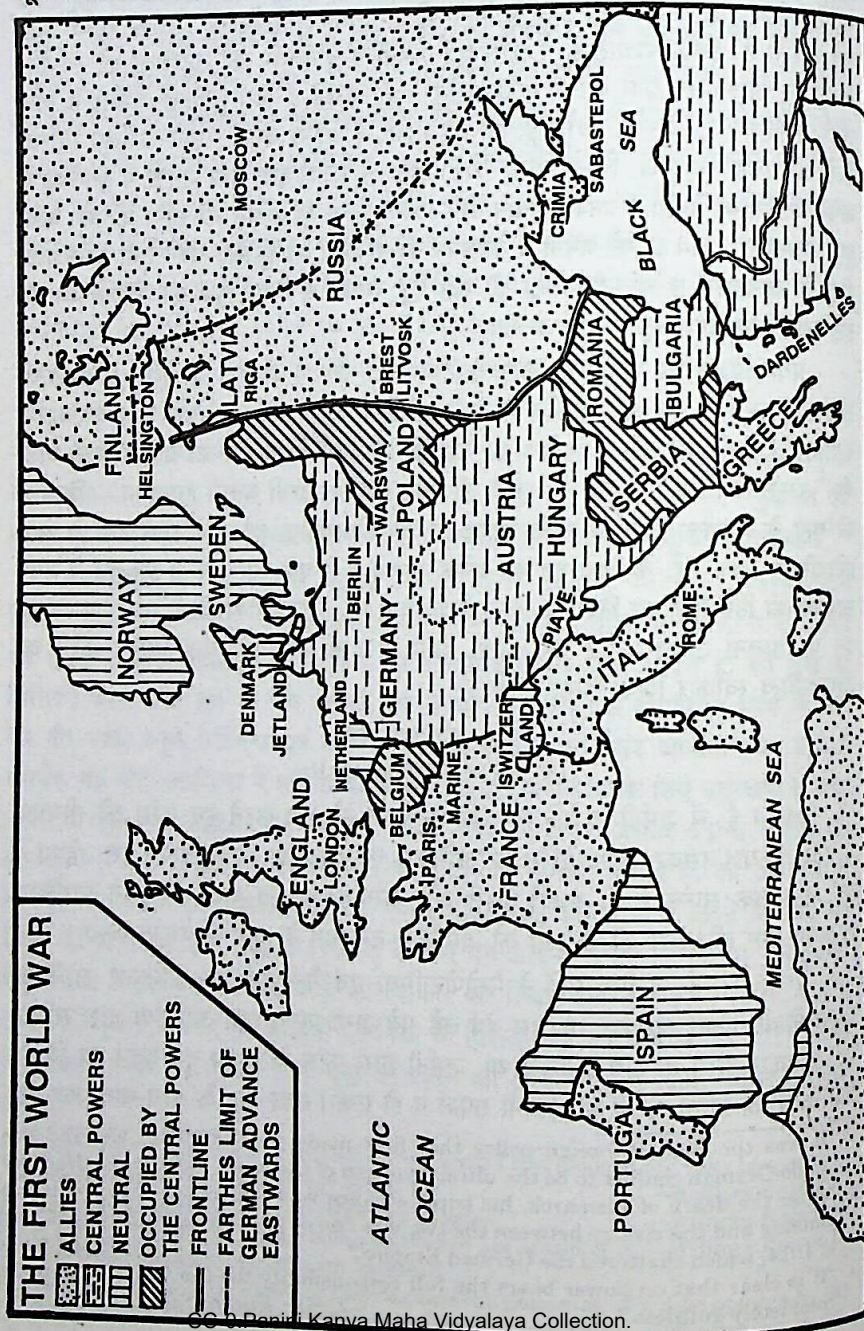
बन गया। 1917 ई. की यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस वर्ष की एक अन्य प्रमुख घटना रूस में क्रान्ति का होना था। जार के स्थान पर बोल्शेविकों की साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। बोल्शेविकों ने जर्मनी को परास्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहे तथा विवश होकर उन्हें ब्रिस्टलीवास्क की सन्धि करनी पड़ी। इस प्रकार युद्ध से रूस पृथक् हो गया जिसमें मित्रराष्ट्रों को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। मित्र-राष्ट्रों को पश्चिमी मोर्चे पर एवं टर्की के विरुद्ध भी सफलता न प्राप्त हुई। प्रथम विश्वयुद्ध में पहली बार वायुयानों का भी प्रयोग किया गया। लन्दन शहर में हवाई बम वर्षा से हजारों नागरिकों की मृत्यु हो गयी।

1918 ई. में स्थिति में परिवर्तन हुआ। यद्यपि इस वर्ष प्रारम्भ में तो जर्मनी को विजय प्राप्त हुई तथा यह पेरिस के बहुत निकट तक पहुंच गया, किन्तु बाद में उसकी स्थिति खराब हो गयी, क्योंकि अमरीका की शक्तिशाली सेना तथा अस्त्र-शस्त्र मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिए पहुंच गये। जर्मनी की सेनाएं प्रत्येक स्थान पर परास्त होने लगीं। आस्ट्रिया के परास्त होने पर जर्मनी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। नवम्बर, 1918 ई. के प्रारम्भ में जर्मनी के सेनापति हिण्डेनबर्ग ने विलियम कैसर द्वितीय को परामर्श दिया कि जर्मनी की आन्तरिक स्थिति भी विस्फोटक हो गयी। अतः वह अपने लिए सुरक्षित स्थान खोज ले, क्योंकि जर्मनी की जनता किसी भी समय उसके विरुद्ध विद्रोह कर सकती है। विलियम कैसर ने हिण्डेनबर्ग की इस सलाह पर विशेष ध्यान न दिया। अन्ततः 8 नवम्बर, 1818 ई. को बर्लिन में क्रान्ति हो गयी तथा विलियम कैसर द्वितीय को सपरिवार हालैण्ड भागना पड़ा। जर्मनी में गणतन्त्र (Weimer Republic) की स्थापना हुई तथा मित्र-राष्ट्रों से सन्धि वार्ता प्रारम्भ हुई। 11 नवम्बर, 1918 ई. को जर्मनी ने युद्ध विराम सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये इस प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हो गया।

प्रथम विश्व-युद्ध के परिणाम
(RESULTS OF THE FIRST WORLD WAR)

1914 से 1918 ई. तक हुआ प्रथम विश्व-युद्ध इससे पूर्व के समस्त युद्धों से अधिक भयंकर एवं विनाशकारी था। **इसमें 36 देशों ने भाग लिया** जिनके एक करोड़ तीस लाख सैनिक हताहत हुए। इस युद्ध में अपार धन व्यय किया गया। दोनों पक्षों ने युद्ध में एक खरब छियासी अरब डालर व्यय किये। इसके अतिरिक्त हजारों व्यक्ति हत्याकाण्डों, बीमारी तथा भूख से मारे गये व एक खरब डालर की सम्पत्ति नष्ट हो गयी।

प्रथम विश्व-युद्ध के विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर गम्भीर प्रभाव हुए। नवीनतम हथियारों के प्रयोग के कारण देशों में आधुनिकतम हथियारों के आविष्कार के लिए प्रतिस्पर्धा होने लगी **इस युद्ध के परिणामस्वरूप प्रजातन्त्र एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।** जिससे विश्व के विभिन्न देशों में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के आन्दोलनों में तीव्रता उत्पन्न हुई तथा आस्ट्रिया, पोलैण्ड, लटाविया, चेकोस्लोवाकिया, आदि देशों में प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति की स्थापना हुई। राष्ट्रीयता के आधार पर अनेक नवीन राज्यों का निर्माण हुआ। इटली एवं जर्मनी की सरकारें जनता को सन्तुष्ट करने में असफल रहीं। अतः वहां नाजीवाद तथा फांसीवाद का उदय हुआ। इंगलैण्ड एवं फ्रांस की शक्ति इस युद्ध के पश्चात् अत्यधिक बढ़ गयी तथा उनके राष्ट्रीय सम्मान में भी वृद्धि हुई। अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन ने शान्ति-स्थापना के लिए चौदह सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा शान्ति की सुरक्षा

के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। इसी युद्ध के समय में रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तथा अमरीका का विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर प्रभाव बढ़ा।

युद्ध के पश्चात् मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ वर्साई की सन्धि (28 जून, 1919 ई.), में आस्ट्रिया के साथ सेंट जर्मेन की सन्धि (10 सितम्बर, 1919 ई.), बल्गारिया के साथ 27 नवम्बर, 1919 ई. को न्यूली की सन्धि, हंगरी से 4 जून, 1920 ई. को त्रिआनो की सन्धि तथा टर्की से 10 अगस्त, 1920 ई. को सेव्रीस (Severes) की सन्धि की। इन समस्त सन्धियों, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जर्मनी के साथ की गयी वर्साई की सन्धि थी, के द्वारा मित्र-राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों के साथ प्रतिशोधात्मक व्यवहार करते हुए अत्यन्त कठोर शर्तें रखीं, जिनका स्वीकार करना किसी भी राष्ट्र के लिए प्रायः असम्भव था, किन्तु पराजित राष्ट्रों को इन्हें स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। जर्मनी के विरुद्ध विशेष रूप से वार्साई की सन्धि में अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया था ताकि जर्मनी को स्थाई रूप से निर्बल बनाया जा सके। **मित्र राष्ट्रों के इस कठोर व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि पराजित राष्ट्रों में प्रतिशोध की भावना जागृत होने लगी तथा वे प्रतिशोध लेने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे, अतः कुछ ही वर्षों के उपरान्त पुनः एक अत्यन्त भयंकर युद्ध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी, जिसे द्वितीय विश्व-युद्ध कहा गया।**

प्रश्न

1. प्रथम विश्व-युद्ध के कारणों का वर्णन कीजिए। **(गोरखपुर,** 1980, 90, 92, 95)
2. प्रथम विश्व-युद्ध के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी राष्ट्र कौन-सा था तथा क्यों ? वर्णन कीजिए। **(लखनऊ,** 1991, 93, 95; **पूर्वांचल,** 1990, 91, 93)
3. प्रथम विश्व-युद्ध के कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
4. प्रथम विश्व-युद्ध के लिए जर्मनी कहां तक उत्तरदायी था ? **(गोरखपुर,** 1994)
5. प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने में प्रमुख शक्तियों के उत्तरदायित्व का परीक्षण कीजिए। **(लखनऊ,** 1992, 94)

26
पेरिस का शान्ति-सम्मेलन
[PEACE CONFERENCE OF PARIS]

भूमिका
(INTRODUCTION)

जर्मनी के द्वारा आत्मसमर्पण कर दिये जाने से 11 नवम्बर, 1918 ई. को प्रथम विश्व-युद्ध की इतिश्री हुई। युद्ध समाप्ति सामान्य जन-जीवन के लिए राहत का सन्देश था। विश्व-युद्ध के दौरान विश्व की सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति डांवाडोल हो चुकी थी। जहां एक ओर पराजित देश—आस्ट्रिया, हंगरी, टर्की एवं जर्मनी भावी व्यवस्था के प्रति आतंकित थे, वहीं दूसरी ओर विजयी मित्र राष्ट्र विजय के उन्माद से प्रसन्न थे। ई. एच. कार का यह कथन बिल्कुल ठीक है, **"विजय के आनन्द के नीचे चिन्ता के अस्फुट स्वर सुनाई दे रहे थे।"**[1] ऐसे वातावरण में वास्तव में यह एक कठिन एवं जटिल कार्य था कि भावी व्यवस्था किस प्रकार स्थापित की जाय? यह मित्रों राष्ट्रों के समक्ष एक महत्वपूर्ण प्रश्न था।

स्थान का चयन
(SELECTION OF THE VENUE)

शान्ति-सम्मेलन के स्थान के चयन के विषय में कहा जा सकता है कि पूर्व में जेनेवा को चयनित किया गया था, परन्तु प्रश्चात् में फ्रांस के सम्मानार्थ उसकी राजधानी **पेरिस को चुना गया। पेरिस को शान्ति-सम्मेलन का स्थान चयनित किये जाने के कारण युद्धोपरान्त हुए शान्ति समझौतों को पेरिस का शान्ति-सम्मेलन भी कहा जाता है।** पेरिस को शान्ति-सम्मेलन का स्थान चुने जाने के सम्बन्ध में वेन्स जैसे विद्वानों की धारणा है कि मित्र राष्ट्रों ने पेरिस को शान्ति-सम्मेलन का स्थान चुनकर शान्ति समझौतों को नहीं, अपितु प्रतिशोधात्मक भावना से युक्त समझौते को किया। फिशर महोदय ने भी इसे दुर्भाग्यपूर्ण कहा है।[2]

सम्मेलन में आमन्त्रित शक्तियां
(INVITED POWERS)

सम्मेलन में 32 राष्ट्रों ने भाग लिया—ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, इटली, जापान, क्यूबा, चीन, ब्राजील, बेल्जियम, हेती, हेडजाज, ग्रीस, चेकोस्लोवाकिया, गोतेमाला, होन्दुरस,

1 **"Beneath the rejocings of victory a deepnote of anxiety made itself heard."**
—*E. H. Carr*

2 **Fisher, *History of Europe*, p. 1258.**

यूगोस्लाविया, लाइबेरिया, पनामा, कमाबिया, पुर्तगाल, पोलैण्ड, निकारागुआ, स्याम, आस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका के संघ, बोलीविया, यूरोगो, एक्यूडोर एवं पीरू। इस सम्मेलन में रूस, आस्ट्रिया, हंगरी एवं जर्मनी को आमन्त्रित नहीं किया गया।

सम्मेलन की परिषद
(COUNCIL OF THE CONFERENCE)

सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन 18 जनवरी, 1919 ई. को हुआ। उद्घाटन के समय महसूस किया गया कि 32 राष्ट्रों की समिति बड़ी है। अतः इसकी संख्या घटाकर 10 कर दी गयी, किन्तु बाद में 4 सदस्यों की एक **'चार बड़ों की समिति'** का निर्णय लिया गया। इस चार बड़ों की समिति में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन, ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री लायड जार्ज, फ्रांस के प्रधानमन्त्री क्लेमांसू एवं इटली के प्रधानमन्त्री औरलैण्डो थे। पश्चात् में प्रथम तीन ही समिति की सर्वमान्य शक्तियां बन गयीं। पूरे सम्मेलन में इन्हीं का प्रभाव देखा जा सकता है।

शान्ति सम्मेलन का कार्यकाल
(TENURE OF THE PEACE CONFERENCE)

8 जनवरी, 1919 ई. को सम्मेलन का औपचारिक उद्घाटन फ्रांस गणराज्य के राष्ट्रपति पुऑकार ने किया।[1] मित्र राष्ट्रों को विभिन्न देशों के साथ शान्ति सन्धि करने में पूरे 5 वर्ष लग गये।

विभिन्न समझौते
(VARIOUS TREATIES)

पेरिस की सन्धि में निम्न समझौते हुए :

(1) जर्मनी के साथ सन्धि—28 जून, 1919 ई.।

(2) सैण्ट जर्मेन की सन्धि—10 सितम्बर, 1919 ई.।

(3) न्यूइली की सन्धि—27 नवम्बर, 1919 ई.।

(4) ट्रियनो की सन्धि—4 जून, 1920 ई.।

(5) टर्की के साथ सेव्रे की सन्धि—10 अगस्त, 1920 ई.।

(6) लोसान की सन्धि—23 जुलाई, 1923 ई.।

इस प्रकार जर्मनी के साथ की गयी वर्साय की सन्धि से लोसान तक की समस्त सन्धियां संयुक्त रूप से शान्ति समझौता कहलाती हैं।

वार्साय की सन्धि—28 जून, 1919 ई.
(TREATY OF VERSAILLES)

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सन् 1919 ई. में की जाने वाली इस सन्धि ने प्रथम विश्व-युद्ध को समाप्त कर दिया था, परन्तु सन्धि ने उन समस्त समस्याओं का अन्त नहीं किया जिनके आधार पर सभी देशों के इतने झगड़े हुए थे। मैरियट ने लिखा है, **"कुछ महीनों तक सम्मेलन की मशीन बुरी तरह किरकिर करती रही। अनेक बार उसके पूर्ण रूप से भग्न होने की आशंका हुई, पर ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के दो मुख्य प्रतिनिधि निराश न हुए और राष्ट्रपति विल्सन की सहायता से उन्होंने सन्धि शर्तें तैयार कर लीं।"**[2]

1 मैरियट, आधुनिक इंगलैण्ड का इतिहास, पृ. 403।

2 वही, पृ. 404।

6 मई, 1919 को वार्साय सन्धि का प्रारूप बनकर तैयार हो गया। इसमें 439 धाराएं तथा 80 हजार शब्द थे। इस सन्धि में 15 भाग थे। 7 मई, 1919 को जर्मनी को 230 पृष्ठ का ड्राफ्ट दिया गया और उसे 3 सप्ताह का समय विचारार्थ दिया गया। जर्मन प्रतिनिधियों ने सन्धि-पत्र के सम्बन्ध में 443 पृष्ठ का एक विस्तृत स्मरण-पत्र मित्र राष्ट्रों को दिया, जिसमें संशोधन की याचना की गयी। जर्मन प्रतिनिधि सन्धि-पत्र से 231वीं धारा के उस अनुच्छेद के निकाले जाने की बात कर रहे थे, जिसके अनुसार उन्हें युद्ध का उत्तरदायी ठहराया गया था, परन्तु मित्र राष्ट्र इसके लिए तैयार नहीं थे। जर्मनी से कहा गया कि वह 5 दिन के भीतर सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर ले अन्यथा वह युद्ध के लिए तैयार रहे। अतः जर्मनी को विवश होकर सन्धि-पत्र हस्ताक्षर करने पड़े। वार्साय के शीशमहल को सन्धि हस्ताक्षर का स्थान चयनित किया गया, क्योंकि 50 वर्ष पूर्व इसी स्थान से प्रशा के राजा को सम्पूर्ण जर्मनी का सम्राट घोषित किया गया था। मूलर हतोत्साहित एवं पीला दिखाई दे रहा था। बेल उस समय शान्त एवं सीधा खड़ा था।[1] जर्मन प्रतिनिधियों पर दबाव डाला गया कि वे सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करें। जर्मन प्रतिनिधि ने हस्ताक्षर करते हुए कहा था : **'मैने सन्धि पर हस्ताक्षर किये हैं, इसलिए नहीं कि मैं इसे एक सन्तोषजनक आलेख मानता हूं, वरन् इसलिए कि यह युद्ध बन्द करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।'**[2] आखिर इस सन्धि में ऐसी क्या व्यवस्थाएं थीं जिनसे जर्मन प्रतिनिधि सन्तुष्ट न थे? **सन्धि की व्यवस्थाएं इस प्रकार थीं :**

(1) **सैनिक व्यवस्थाएं**—वुड्रो विल्सन के 14 सूत्री कार्यक्रमों में सभी देशों के लिए निःशस्त्रीकरण की दिशा में कदम उठाने का प्रावधान रखा गया था, परन्तु इस समय इसे जर्मनी तक ही लागू किया गया। जर्मनी की थल, नभ एवं जल सेना की कुल संख्या एक लाख निश्चित कर दी। इसी में उसके अधिकारियों की संख्या भी थी। उसी नौसेना की संख्या 1,500 सीमित कर दी गयी।[3] सैनिक अधिकारी कम से कम 25 वर्ष तक सेना में रह सकेंगे तथा साधारण सैनिकों को कम से कम 12 वर्षों तक रहना पड़ेगा। जर्मनी की अनिवार्य सैन्य-सेवा जो कि बिस्मार्क के समय लागू कर दी गयी थी, समाप्त कर दी गयी। चुंगी के अधिकारी, वन के रक्षकों तथा तट के रक्षकों की संख्या 1913 से ज्यादा नहीं होगी। पुलिस की संख्या जनसंख्या के अनुपात पर निर्भर रहेगी। जर्मनी 6 युद्धपोत, 6 हल्के क्रूजर, 12 तोपची जहाज और 12 टारपीडो नावें रख सकता था। उसे पनडुब्बी रखने का अधिकार नहीं दिया गया। युद्ध की सामग्री उत्पादन पर रोक लगा दी गयी। राइन नदी के दायें तट पर 30 मील (50 किलोमीटर) तक स्थान का असैनिकीकरण कर दिया। हेलीगोलैण्ड के बन्दरगाह की किलेबन्दी नष्ट करनी पड़ी और उसे आश्वासन देना पड़ा कि भविष्य में वह कभी इसकी किलेबन्दी नहीं करेगा। शिक्षण संस्थाएं, विश्वविद्यालय, सेवामुक्त सैनिकों की संस्थाएं, शिकार और भ्रमण के क्लब, अर्थात् सब प्रकार के संगठन चाहे उनके सदस्यों की आय कुछ भी हो, किसी प्रकार के सैनिक मामलों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। कार ने कहा है, "....1924

1 "Muller was pale and nervous, Bell held himself erect and calm."
2 "I have signed the treaty, not because I consider it a satisfactory document but because it is imperatively necessary to close the war." —*General Stauts*
3 उसकी यह संख्या एक लाख के अन्तर्गत ही थी।

तक जर्मनी का जितना निःशस्त्रीकरण कर दिया गया था वह आधुनिक इतिहास में उल्लिखित किसी भी निःशस्त्रीकरण से अधिक कठोर एवं पूर्ण था।"[1]

(2) **प्रादेशिक व्यवस्थाएं**—जिस वृहद् जर्मन साम्राज्य का निर्माण बिस्मार्क ने रक्त और लौह की नीति से किया था, उसका विघटन कर दिया गया 1870-71 के फ्रेंको-प्रशियन युद्ध के फलस्वरूप आल्सेस तथा लारेन जर्मनी ने फ्रांस से छीन लिये थे। **आल्सेस तथा लारेन के प्रदेश फ्रांस को लौटा दिये गये।** श्लेसविग का उत्तरी भाग डेनमार्क को और दक्षिणी भाग जर्मनी को दिया गया। मेमल लिथुआनिया को दे दिया गया। पोलैण्ड का पुनः निर्माण किया गया। वाल्टिक सागर तक पहुंचने का उसका मार्ग प्रशा से होकर दिया गया। अतः पूर्वी प्रशा शेष जर्मनी से अलग हो गया। पोसेन तथा पश्चिमी प्रशा पर पोलैण्ड का अधिकार माना गया। श्लेसविग का उत्तरी भाग डेनमार्क को और दक्षिणी भाग पर जर्मनी का अधिकार माना गया' माल्मेडी तथा यूपेन के नगर बेल्जियम को सौंप दिये गये। डैन्जिग को जर्मनी से अलग कर राष्ट्र संघ के संरक्षण में सौंपा गया। इस पर शासन करने के लिए जर्मन जनता के द्वारा एक प्रतिनिधि संस्था की बात रखी गयी। सुदूर पूर्व में फिनलैण्ड को मान्यता दे दी गयी। सन् 1870 के पश्चात् जर्मनी जिन देशों से कलात्मक वस्तुएं एवं झण्डे लाया था, उन्हें वापस करना होगा।

(3) **क्षतिपूर्ति एवं आर्थिक व्यवस्था**—5 नवम्बर, 1918 को जब जर्मनी ने आत्मसमर्पण किया था, उस समय मित्र राष्ट्रों के द्वारा जर्मनी को स्पष्ट रूप से बता दिया गया था कि युद्ध में हुई क्षति का हर्जाना उससे लिया जायेगा। जहां एक ओर फ्रांस यह चाहता था कि जर्मनी से युद्ध का पूर्ण व्यय लिया जाय वहीं दूसरी ओर विल्सन क्षतिपूर्ति की रकम निश्चित करना चाहता था। अंततः निश्चित किया गया कि एक क्षतिपूर्ति आयोग निर्मित किया जाय जो मई 1921 तक अपनी रिपोर्ट पेश करे। रिपोर्ट पेश होने तक (1 मई, 1921 तक) जर्मनी लगभग 40 खरब डालर अथवा 200 खरब स्वर्ण मार्क अथवा 100 करोड़ पौण्ड क्षतिपूर्ति कर देगा। इसके आगे जर्मनी कितना देगा यह आगे निर्धारित होना था। हेजन ने लिखा है, **"जर्मनी इस बात पर भी सहमत हो गया कि वह क्षतिपूर्ति के लिए अपने प्रत्यक्ष साधनों का प्रयोग करेगा, अर्थात वह अपने जल-पोत, कोयला, रंग, रासायनिक उत्पादन, जीवित प्राणी तथा अन्य वस्तुएं शत्रुओं को देने पर सहमत हो गया।"**[2]

मित्र राष्ट्र यह समझ चुके थे कि जर्मनी तत्काल नगद चुकाने में असमर्थ है। अतः जर्मनी को फ्रांस एवं इटली को 10 वर्ष तक कोयला देने का, फ्रांस व बेल्जियम को घोड़े, आदि पशु देने का आश्वासन देना पड़ा। मित्र राष्ट्रों ने उसके उपनिवेश छीनकर उसे पूर्णतया पंगु बना दिया। सीरिया एवं लेबनान फ्रांस ने इराक, ट्रांसजार्डन तथा मीरोद्वीप फिलीस्तीन व इंगलैण्ड ने कैमरून तथा तोजोलैण्ड, फ्रांस व इंगलैण्ड ने न्यूजीलैण्ड बेल्जियम ने, भूमध्यरेखा के दक्षिण के समस्त द्वीप आस्ट्रेलिया ने तथा उत्तर के समस्त द्वीप पर जापान ने अपना कब्जा कर लिया। चीन, मोरक्को, मिस्र पर जर्मनी के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये। जर्मनी के उपनिवेश छिन जाने से तेल, रबर, सूत का कच्चा माल उसे मिलना बन्द हो गया। उसके विभिन्न कारखानों में ताले पड़ गये।

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 42।
2 **यूरोप का इतिहास**, पृ. 614।

यही नहीं, सार की घाटी का प्रदेश संघ को सौंप दिया गया। 15 वर्ष पश्चात् जनमत संग्रह द्वारा उसे जर्मनी या फ्रांस को देना था।[1] इस प्रकार जर्मनी के समस्त आर्थिक स्रोत छीन लिए गये। कीन्स के अनुसार, "**जर्मनी के विरुद्ध आर्थिक उपबन्ध अदा नहीं किये जा सकते थे और उसको पूरा कराने के प्रयत्न यूरोप के लिए घातक सिद्ध हुए।**" ऐसी परिस्थिति में जैसा कि लैंगसम ने सत्य ही लिखा है, **क्षतिपूर्ति पर अनुमति देना मानो जर्मनी के लिए रिक्त चैक पर हस्ताक्षर करना था।**

(4) **न्यायिक व्यवस्था**—सन्धि की 231वीं धारा का जिसके अनुसार जर्मनी को युद्ध प्रारम्भ करने का दोषी माना गया था जर्मनी ने विरोध किया था, परन्तु कैसर विलियम II पर युद्ध प्रारम्भ करने का आरोप लगाकर यह निर्णय किया गया कि उस पर 5 देशों के न्यायाधीशों की अदालत पर मुकदमा दर्ज किया जाय। जिन सैनिकों ने युद्ध में जर्मनी की ओर से भाग लिया था उन पर मुकदमा चलाने का आदेश दिया गया। हॉलैण्ड की सरकार से मित्रता के कारण कैसर विलियम II पर मुकदमा न चल सका।

इस प्रकार मैरियट के शब्दों में कहा जा सकता है, "**जर्मन साम्राज्य ने जिसका निर्माण बिस्मार्क ने रक्त एवं लौह की नीति से किया था फिर तलवार खींच ली थी, तलवार से ही उसका विनाश हुआ।**"[2]

सन्धि की समीक्षा
(EVALUATION OF THE TREATY)

वार्साय की सन्धि अपने आप में अनोखी सन्धि थी, इस व्यवस्था ने इतिहासकारों को दो खेमों में लाकर खड़ा कर दिया था। जहां रेस्टेनार्ड वाकर, डेरी जारमेन, लिप्सन, वर्डसाल हास तथा डेविस ने इस सन्धि के गुणों का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर वेथमान हाल्वेग, स्टमस, फोच, आदि विद्वान यह मानते हैं कि सन्धि अपने आप में पूर्णतया दोषयुक्त थी।

पक्ष में तर्क (Arguments in Favour)

इस सन्धि का पक्ष लेकर जोसेफ ने लिखा है, "**अब तक युद्ध के घाव हरे थे सभी का रोष प्रज्वलित था और सम्मेलन संसार का दर्पण बना हुआ था, सभी प्रतिनिधियों ने कई राष्ट्रों का चलचित्र अपने सामने देखा था जिन्होंने नृशंस दबावों से या युद्ध के उचित अनुशासन से मुक्ति पायी थी।**"[3] वास्तव में जिस समय सम्पूर्ण विश्व युद्ध की त्रासदी से आतंकित एवं परेशान था, इस सन्धि ने युद्ध का अन्त कर सम्पूर्ण विश्व को शान्ति दी। सन्धि की व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्र संघ का निर्माण भावी विश्व को शान्ति हेतु एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ। इसे विश्व शान्ति का प्रथम चरण भी कहा जा सकता हैं। वास्तव में, इसी के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ था। राष्ट्रीयता की भावना को इसने प्रोत्साहित किया था। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर ही पोलैण्ड, फिनलैण्ड, एस्टोनिया, लैटविया, लिथुआनिया, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, आदि नये राष्ट्रों का निर्माण हुआ था, डेरी

1 1935 में जनमत संग्रह जर्मनी के पक्ष में आया।

2 मैरियट, आधुनिक इंगलैण्ड का इतिहास, पृ. 407।

3 "All wounds were utterly raw, all tempers frayed, and the conference being the mirror of the world, all the delegetes saw cinematographically the tumbling chaos of many people just released from the hands of brutal oppressors or from the legitimate discipline of war." —Jessop

जारमेन के शब्दों में, "**सन्धि के कुछ ठोस गुण थे, एक तो यह कि इसके द्वारा राष्ट्रीयता और उत्तरवादियों की विजय हुई थी और दूसरा यह कि सन्धि निर्माताओं ने विल्सन के अनुरोध से ऐसी व्यवस्था बना दी थी कि जिससे सन्धि पर पुनः विचार किया जा सकता था, जबकि युद्ध का जोश शान्त हो जाय।**"[1]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने इसके गुणों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है और इसे नैतिक सिद्धान्तों पर अवतरित बतलाया है। यह भी माना है कि इससे पहले कभी शान्ति सन्धि का स्वरूप इतना आदर्शवादी नहीं था।[2]

आलोचना (Criticism)

वार्साय की सन्धि की आलोचना करते हुए जनरल फाश ने कहा था कि **यह सन्धि-पत्र न होकर 20 वर्ष का विरामकाल है।**[3] जनरल फाश के कहे गये, ये शब्द सत्य सिद्ध हुए और 20 वर्ष उपरान्त ही विश्व को द्वितीय विश्वयुद्ध की ज्वाला में जलना पड़ा, विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इसका आलोचनात्मक विवरण दिया है।

(1) **अपमान से पूर्ण एवं थोपी गयी सन्धि**—वार्साय की सन्धि जर्मनी के लिए अपमान से पूर्ण एवं उस पर जबरदस्ती लादी गयी थी, सम्मेलन में जर्मनी को न बुलाना तो अपमान था ही, किन्तु सबसे शर्मनाक बात तो यह थी कि जब हस्ताक्षर करने के लिए उसके प्रतिनिधि आये तो उन्हें नुकीले तारों से घिरे मकान में ठहराया गया, उनसे कैदियों जैसा व्यवहार किया गया। उन्होंने इसे अनिच्छा से स्वीकार किया। जर्मनी के प्रतिनिधियों को धमकी देकर सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करवाये गये। कार महोदय ने लिखा है, "**वह विजेताओं द्वारा विजितों पर लादी गयी थी, आदान-प्रदान की प्रक्रिया के आधार पर परस्पर बातचीत तय नहीं हुई थी। वैसे तो युद्ध समाप्त करने वाली प्रत्येक सन्धि ही एक सीमा तक आरोपित शान्ति स्थापित करने वाली सन्धि होती है, क्योंकि एक पराजित राज्य अपनी पराजय के परिणामों को कभी स्वेच्छा से स्वीकार नहीं करता, किन्तु वार्साय कीं सन्धि में आरोपण की मात्रा आधुनिक युग की किसी भी पिछली शान्ति सन्धि की अपेक्षा अधिक स्पष्ट थी।**"[4] जर्मनी के लोगों ने इसे नैतिक बन्धन भी नहीं माना, सन्धि पर हस्ताक्षर करते हुए एक जर्मन प्रतिनिधि ने कहा, "**हमारा देश दबाव के कारण आत्म-समर्पण कर रहा है, किन्तु जर्मनी यह कभी नहीं भूलेगा कि यह अन्यायपूर्ण सन्धि है।**"

---

1 ".....the peace had the solid merit.....the nationalism and liberalism of nineteenth century idealists had triumphed....that the peace makers of 1919, thanks, largely to the persistence of president wilson, had provided their peace treaties with the machinery of revision, which he at least hoped to see widely employed when the passion of war begun to cool." —*Derray and T. L. Jarman*

2 "There has surely never been constructed a peace of so idealistic character." —*Haran*

3 "This is not a peace, it is an armistics for twenty years." —*Foch*

4 "It was imposed by the victors on the vanquised, not negotiated by a process of give and take between them.......In the treaty of versailles the elements of dictation was more apparent than in any previous peace treaty of modern times." —*E. H. Carr*

(2) **बदले की भावना से भरी सन्धि**—कहा जाता है कि यह सन्धि प्रतिशोधात्मक सन्धि थी। क्लेमांसू ने चुनाव इस नारे से जीता था '**हम कैसर को फांसी दे देंगे तथा जर्मनी से युद्ध का पूरा हर्जाना वसूल करेंगे।**[1] जर्मनी के प्रति की गयी सन्धि को करते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि यदि जर्मनी की जीत होती तो यूरोप की स्वतन्त्रता समाप्त हो सकती थी। विल्सन के उद्देश्यों की वास्तव में जितनी प्रशंसा की जाय कम है, किन्तु उनका पूर्ण एवं यथावत पालन नहीं किया जा सका जिसका मुख्य कारण मित्र राष्ट्रों की प्रतिशोधात्मक भावना थी। जैकसन ने ठीक ही लिखा है, "यह (विल्सन) मोजेज की भांति पहाड़ से नियम की सारिका लेकर उतरा, परन्तु मोजेज की भांति उसने देखा कि जिनका नेतृत्व करने वह आया था वे युद्ध की मूर्ति के उपासक थे।"[2] नेहरू के शब्दों में, "**मित्र राष्ट्र घृणा और प्रतिशोध की भावना से भरे थे। वे मांस का पिण्ड ही नहीं चाहते थे, बल्कि जर्मनी के अर्धमृत शरीर से खून की आखिरी बूंद तक ले लेना चाहते थे।**[3]

(3) **कठोर शर्तें**—सन्धि की शर्तें अत्यन्त कठोर थीं। सन्धि का मुख्य उद्देश्य लायड जार्ज के इस वक्तव्य से स्पष्ट है, "इस सन्धि की धाराएं युद्ध में मृत शहीदों के खून से लिखी गयी हैं। जिन लोगों ने इस युद्ध को शुरू किया था, उन्हें पुनः इसे ऐसा न करने की शिक्षा अवश्य देनी है।"

(4) **एकपक्षीय निर्णय**—सन्धि में किये गये अनेक निर्णय एकपक्षीय थे। जर्मनी को केवल हस्ताक्षर के लिए ही बुलाया गया था। निःशस्त्रीकरण केवल जर्मनी के लिए ही लागू किया गया। उसे अन्य राष्ट्रों पर लागू न किया गया। आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को जर्मनी के लिए लागू न किया गया। यह इतिहास का एक निर्णय है कि सन्धि अपने आप में तभी पूर्ण होती है, जबकि सन्धि वाले देश आपस में जुड़ सकें और उनमें आदान-प्रदान हो सके। सन्धि का अर्थ ही मेल है। जब तक दोनों पक्षों की बातें आदान-प्रदान द्वारा पूर्ण नहीं हो जातीं तब तक सन्धि पूर्ण नहीं हो सकती।

(5) **प्रादेशिक व्यवस्था के दोष**—गार्विन ने लिखा है कि "**सम्पूर्ण व्यवस्था ने यूरोप को बाल्कान की रियासतों के समान बना दिया।**" जिस प्रकार टर्की साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े करने के उपरान्त रियासतों को जन्म दिया था उसी प्रकार जर्मनी के राज्यों को भंग कर छोटी-छोटी रियासतें बना दी गयीं। ये निर्बल रियासतें समय के अन्तराल में अपने को नियन्त्रित न कर पायीं और बड़ी शक्तियों की कठपुतली बन गयीं। जब छोटी रियासतों की व्यवस्था की गयी तो इनकी राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों की अवहेलना की गयी। फलतः छोटी रियासतों की नींव ने यूरोप में कई समस्याएं उत्पन्न कर दीं जिनके कारण यूरोप का शक्ति सन्तुलन ऊपर से नीचे को गया।

यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या यूरोप का बाल्कान की रियासतों के रूप में परिवर्तित हो जाना अनिवार्य था? इसका उत्तर है नहीं। यूरोप का बाल्कान की रियासतों के रूप में बदल पाना रुक सकता था, परन्तु यह तभी हो सकता था जबकि शत्रु राष्ट्र के प्रति बदले की

1 "Make Germany pay", "Hang the Kaiser" "Shilling for Shilling" and "Ton for Ton."
2 "He (Wilson) decended like moses from the mountain, bearing the table of the Law, And like more he found that the men he had come to lend were worshipping a graven image the idol of war." —*Jackson*
3 Nehru, J. L., *The Glimpses of World History.*
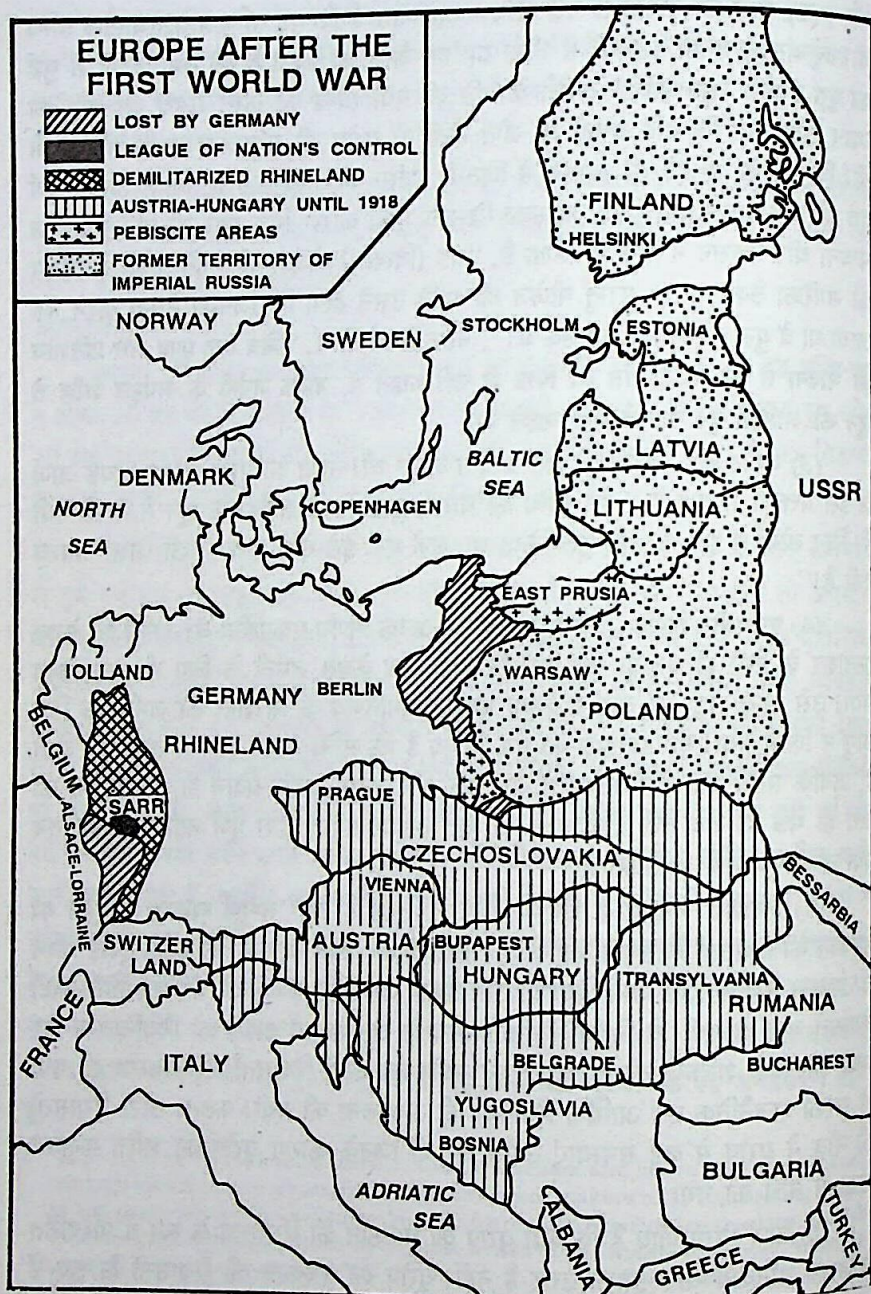
भावना के स्थान पर सहानुभूति बरती जाती। जर्मनी ने सबसे अधिक हानि उठायी थी। इसलिए उसने अपनी कोलोनियों को प्राप्त करने हेतु प्रत्येक कार्य किया जिसका परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध के रूप में देखा जा सकता है। **अतः यह भी कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व-युद्ध के बीज वार्साय सन्धि में ही विद्यमान थे।**

सेण्ट जर्मेन की सन्धि
(TREATY OF St. GERMAIN)

सेण्ट जर्मेन की सन्धि आस्ट्रिया के साथ की गयी, क्योंकि यह पेरिस के पास सेण्ट जर्मेन नामक स्थान पर हुई। अतः इसे सेण्ट जर्मेन की सन्धि के नाम से जाना जाता है। आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों ने सन्धि-पत्र पर 10 सितम्बर, 1919 को हस्ताक्षर किये। **इस सन्धि के अनुसार निम्न व्यवस्थाएं की गयीं :**

1. प्रादेशिक व्यवस्था

(1) आस्ट्रिया ने पोलैण्ड, हंगरी, यूगोस्लाविया, चैकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी।
(2) मोराविया, बोहेमिया, साइलेशिया को मिलाकर चैकोस्लोवाकिया का निर्माण किया गया।
(3) बोसनिया, हर्जेगोविना और कोरिया को मिलाकर यूगोस्लाविया का गठन किया गया।
(4) पोलैण्ड को गैलेशिया तथा रूमानिया को बुकोबिना दिया गया।
(5) आस्ट्रिया में निवास करने वाली विभिन्न जातियां जैसे जर्मन, पोल, रूमानिया, इटैलियन, क्रीट, चैक, आदि को आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार प्रदेश दिये गये।
(6) इटली को इस्ट्रिया, दक्षिणी टायरोल, ट्रीस्ट एवं डालमेशिया दे दिये गये।
(7) हैप्सबर्ग शासन का अन्त हो गया और आस्ट्रिया एक छोटा-सा जनतन्त्र मात्र रह गया।

2. सैन्य व्यवस्था

आस्ट्रिया की सेना की संख्या 30 हजार निश्चित कर दी गयी। उनकी नभ एवं नौसेना को समाप्त कर दिया गया। उसे डैन्यूब नदी में केवल तीन किश्तियां रखने का अधिकार दिया गया।

3. आर्थिक व्यवस्था

युद्ध के हर्जाने की रकम निश्चित करने के लिए एक क्षतिपूर्ति आयोग गठित किया जायेगा। वह जो भी राशि निर्धारत करेगा आस्ट्रिया को स्वीकार होगा। टेशन का उद्योग-प्रधान प्रदेश पोलैण्ड एवं चैकोस्लोवाकिया में बांट दिया गया। यह भी व्यवस्था की गयी कि आस्ट्रिया युद्ध अपराधियों को मित्र राष्ट्रों को सौंप देगा।

इस प्रकार इस सन्धि ने आस्ट्रिया के साम्राज्य को सिकोड़कर रख दिया और उसके अवशेषों पर छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना की गयी, किन्तु इनका निर्माण करते समय सांस्कृतिक सिद्धान्तों को भुला दिया गया। जैसे अनेक जर्मन जो कि जर्मनी के साथ मिलना चाहते थे उन्हें इस भय से कि कहीं जर्मनी अधिक शक्तिशाली न हो जाय, जर्मनी से नहीं मिलाया गया। इटली को टाइरोल दिया गया उसमें $1\frac{1}{2}$ लाख जर्मन रहते थे। ई. एच. कार के अनुसार, **"आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करने वाले दो प्रावधान इस सन्धि में थे। उसमें से एक था आस्ट्रिया और जर्मनी के संयोग का निषेध जो कि वार्साय की सन्धि में की गयी व्यवस्था की पुनरावृत्ति था। दूसरा प्रावधान था विशुद्ध जर्मन भाषी दक्षिणी**

टायरोल का इटली को सौंपा जाना, ताकि उसे ब्रेनर का सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्धान्त मिल जाय।"[1] फिशर महोदय ने भी इस सम्बन्ध में ऐसे विचार प्रस्तुत किये हैं।[2]

न्यूइली की सन्धि
(TREATY OF NUILLY)

यह सन्धि बल्गारिया के साथ की गयी। यह 27 नवम्बर, 1919 ई. को हुई। इसके निर्णय निम्न हैं :

(1) यूनान को थ्रेस का समुद्र तट दे दिया गया।
(2) पश्चिमी बल्गारिया के कुछ प्रदेश जिनकी जनता बल्गेरियन थी, यूगोस्लाविया को दे दिये गये।
(3) बल्गारिया की जल सेना समाप्त कर दी गयी। उसकी सेना संख्या 10 हजार सीमित कर दी गयी।
(4) उस पर 35 करोड़ डालर युद्ध का हर्जाना लादा गया जो कि 37 किश्तों में देय होना था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बल्गारिया को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी थी। कार महोदय ने लिखा है, "सन् 1919 ई. की न्यूइली की सन्धि ने बल्गेरिया की हानि पर अपनी मुहर लगा दी और बल्गेरिया को और भी अधिक हानि में डालते हुए सर्बिया और यूनान से लगी हुई उसकी सीमाओं में परिवर्तन पर दिया गया तथा रूमानिया से लगे हुए उसके 1913 में निर्धारित स्पष्टतया अन्यायपूर्ण सीमान्त को वैसा ही छोड़ दिया गया।

ट्रियानो की सन्धि
(TREATY OF TRIANO)

यह सन्धि हंगरी के साथ हुई। यह 4 जून, 1920 ई. को हुई, इसके अनुसार—ट्रान्सिलवेनिया रूमानिया को और क्रीशिया, सर्बिया को दे दिया गया। स्लोवाकिया, चैकोस्लोवाकिया को दिया गया। हंगरी को आस्ट्रिया से अलग कर दिया गया।

कार के अनुसार, **"मोटे तौर पर ये निर्णय न्यायोचित थे, किन्तु जर्मनी के पूर्वी सीमान्त की अपेक्षा हंगरी के सीमान्त इस बात के अधिक स्पष्ट प्रमाण हैं कि सन्धिकर्ता अपने सिद्धान्तों की मित्र राष्ट्रों के हित में और शत्रु राष्ट्रों के अहित में यथासम्भव खींचतान करने के लिए काफी उत्सुक थे। इस खींचतान का एकत्रित परिणाम बहुत गहरा पड़ा और हंगरी के प्रचारकों ने इन छोटे-मोटे अन्यायों का पूरा-पूरा उपयोग किया।"**[3]

हंगरी को आस्ट्रिया से अलग कर दिया गया जिसका प्रभाव आस्ट्रिया पर भी पड़ा।[4] हंगरी जिसका क्षेत्रफल 12,000 वर्गमील और जनसंख्या 20,000,000 थी यह 35,000 वर्गमील क्षेत्रफल और 80,000 जनसंख्या वाले राज्य में परिणत कर दिया गया।[5]

---

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 7।
2 "Austria was plunged into the pit of despair."
—H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1268.
3 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 8।
4 "The treaty, has left sore places, there is the little republic of Austria, too weak to live comfortably by herself, yet debarred by the peace treaties from joining Germany without the consent of the League."
—Fisher, *A History of Europe*, p. 1268.
5 डॉ. शर्मा, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 314।

हंगरी की सेना 35 हजार सीमित कर दी गयी। आस्ट्रिया के समान ही उस पर क्षतिपूर्ति लादी दी गयी।

सेव्रे की सन्धि
(TREATY OF SEVRES)

यह सन्धि तुर्की की भगोड़ी सरकार के साथ हुई। यह 10 अगस्त, 1920 ई. को हुई। इसके अनुसार :

(1) कुर्दिस्तान को स्वतन्त्र करने का आश्वासन दिया गया।

(2) आर्मीनिया को स्वतन्त्र कर दिया गया।

(3) थ्रेस, एड्रियाटिक, स्मर्नासागर के कुछ टापू तथा गेलीपोली के द्वीप ग्रीस को दे दिये गये।

(4) मिस्र, मोरक्को, ट्रिपोली, सीरिया, फिलिस्तीन, अरब, मैसोपोटामिया पर तुर्की ने अपने अधिकारों का त्याग कर दिया। इस प्रकार तुर्की के खलीफा के पास अनातोलिया का पहाड़ी प्रदेश तथा कुस्तुन्तुनिया के आसपास का ही प्रदेश रहा।

(5) वास्फोरस तथा डार्डेनेलीज जल अन्तरीपों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

वेन्स ने इस सन्धि के विषय में लिखा है, "टर्की पहले से टर्की की एक छाया मात्र रह गयी और उसका अस्तित्व एशियाई राज्य अंगोरा के आसपास बचा रहा।"[1]

परन्तु इस सन्धि का पालन न हो सका। मुस्तफा कमाल पाशा ने इसे स्वीकार नहीं किया। उसने ग्रीस को युद्ध में पराजित करके मित्र राष्ट्रों को इस सन्धि पर विचार-विमर्श के लिए बाध्य कर डाला। कार ने लिखा है, **"जो हो, सेव्रे की सन्धि को अमल में लाने की जो भी धुंधली आशा थी उसे यूनान की घटनाओं ने मिटा दिया।"**[2] अतः मित्र राष्ट्रों ने 24 जुलाई, 1933 को टर्की के साथ पुनः लोसान की सन्धि की।

लोसान की सन्धि
(TREATY OF LAUSANNE)

इस सन्धि के द्वारा निम्न निर्णय लिये गये :

(1) पूर्वी थ्रेस, स्मर्ना और आमीर्निया टर्की को लौटा दिये गये।

(2) मैसोपोटामिया, सूडान, सीरिया, अरब, मिस्र, साइप्रस, फिलीस्तीन पर उसका अधिकार छीन लिया गया।

(3) वासफोरस तथा दानियाल के जलडमरुओं को किलेबन्दी रहित एवं अन्तर्राष्ट्रीय ही रहने दिया गया।

(4) उस पर क्षतिपूर्ति न लादी गयी।

(5) कोई सैन्य प्रतिबन्ध न लगाया गया।

(6) टर्की के सुल्तान को अपने शासक के अन्तर्गत रहने वाला समस्त जातियों के समान व्यवहार का वचन लिया गया।

(7) अनातालिया पर टर्की की पूर्ण सत्ता मानी गयी।

---

1 "Turky was thus reduced to little more than a shadow of her former self, and became a small Asiatic State in the Anatolian upland around Angora." —*Benns*

2 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 11।

इस प्रकार इस सन्धि के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह आरोपित शान्ति न थी। सेव्रे की सन्धि का पूर्ण विरोध कर टर्की ने मित्र राष्ट्रों के रोंगटे खड़े कर दिये थे। वस्तुतः लोसान की सन्धि वास्तविक अर्थों में शान्ति सन्धि कही जा सकती है।

इस प्रकार यूरोप के नक्शे के पुनर्निर्माण का कठिन और श्रमसाध्य कार्य अन्त में पूर्ण हुआ। अनेक समस्याएं, विशेषकर वित्तीय, अभी हल करने को थीं, पर मख्य कार्य, जिसमें 1919 में राजनयिकों ने पेरिस में हाथ लगाया था समाप्त हो गया था।

पेरिस शान्ति समझौते के प्रंमुख चार स्तम्भ : लायड जार्ज (LLOYD GEORGE)

मैरियट ने लायड ज़ार्ज के विषय में लिखा है, **''लायड जार्ज ने इंगलैण्ड तथा यूरोप की राजनीति में बीस वर्षों से भी अधिक समय तक एक महत्वपूर्ण तथा मूर्तिमान भूमिका निभाई''**[1] लायड का जन्म लन्दन में 1863 ई. में हुआ था। उसके पिता का नाम विलियम जार्ज था। 1890 में वह कामन सभा का सदस्य बना। 1905 और 1909 ई. में उसने इंगलैण्ड के वित्त-विभाग का संचालन किया और एक कुशल वित्तमन्त्री के रूप में ख्याति अर्जित की। 1916 ई. में उसने ऐसे समय में प्रधानमन्त्री का पद संभाला, जबकि युद्ध में जर्मनी लगातार सफलताएं प्राप्त कर रहा था। उसने **म्यूनिशन आफ वार** (Munition of war) तथा युद्ध परिषद् (War cabinet) का गठन किया और उसके अथक प्रयत्नों से मित्र राष्ट्र विजयी हुए। जर्मनी को पराजित करने पर जार्ज ने कहा था, **''दूसरे लोगों ने साधारण लड़ाइयां जीती हैं मैंने एक युद्ध पर विजय प्राप्त की है।''**[2]

युद्ध की समाप्ति के बाद जार्ज की स्थिति का बड़ा रोचक वर्णन फिशर ने किया है।[3] परन्तु जार्ज ने बड़ी बुद्धिमानी से ब्रिटिश जनता के विचारों[4] को समझकर अपना चुनाव का नारा **''जर्मनी से पूर्ण हर्जाना लो, शिलिंग के बदले शिलिंग और टन के बदले टन''**[5] दिया और चुनाव जीता।

हालांकि उस चुनाव का नारा अत्यन्त कठोर था, परन्तु क्लेमांसू के मुकाबले उसका दृष्टिकोण उदार था और जहां तक हो सका वह जर्मनी के प्रति उदार रहा। एक बार उसने कहा भी था, **''जर्मनी रूपी गाय का दूध तथा मांस एक साथ नहीं लिया जा सकता।''**

लायड जार्ज के सम्मुख तीन प्रमुख उद्देश्य थे :

(1) नौसेना के मामले में जर्मनी का सर्वनाश,

(2) फ्रांस अत्यधिक शक्तिशाली न बने,

(3) इंगलैण्ड को अधिक से अधिक लाभ दिलवाना।

---

1 Lloyed George played a prominent and a picturesque part in the politics of England as well as Europe for more than two years." —*Marriot*

2 "While others won battles, I won the war." —*George*

3 "Yet despite his brilliant war leadership, and all the lustre of his country's achievements by sea and land, Mr. Lloyd George went in to the conference under a handicap." —H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1263.

4 "The cry went up that Germany should pay the whole cost of the war, that the Kaiser should be hanged and that all Germans who had violated the laws of war should be brought to trial and punished." —H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1263

5 "Make Germany pay, Shilling for Shilling and Ton for Ton."

जार्ज अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल रहा, फिशर महोदय के अनुसार वह इंगलैण्ड को लाभ देने के रूप में सफल रहा।[1] यही कारण है लैन्सिंग ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—**"उसके पास एक अद्‌भुत सजग मस्तिष्क था जो अथक स्फूर्ति से छलकता रहता था, वह बड़ी तेजी के साथ निर्णय कर लिया करता था और उसमें न तो बारीकियों का ध्यान रखता था और न मूलभूत प्रश्नों का, जीवन से उत्फुल्ल, व्यवहार से शिष्ट और स्वभाव से सरल, वह सामाजिक दृष्टि से बहुत ही आकर्षक व्यक्ति था।"**[2]

क्लेमांस
(CLEMENCEAU)

फ्रांस का प्रधानमन्त्री क्लेमांसू शान्ति सम्मेलन के समय 80 वर्ष का वृद्ध व्यक्ति था स्पष्ट है कि उसने राजनीति के प्रत्येक दांव देखे होंगे। उसे सम्मेलन का शेर एवं वयोवृद्ध केसरी की संज्ञा दी गई है। यूरोप की तत्कालीन परिस्थितियों का जितना विशद ज्ञान उसे था शायद ही सम्मेलन में किसी को था। लैंगसम ने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं।[3] फिशर महोदय ने उसे क्रूर भी माना है तो साथ ही फ्रांसीसी संसद के प्रति स्वामिभक्त माना है।[4]

उसका प्रमुख उद्देश्य फ्रांस की सुरक्षा था और उसे वह हर कीमत पर पाना चाहता था, इसीलिए उसने लायड जार्ज एवं विल्सन पर छींटाकशी करते हुए कहा था, **"लायड जार्ज अपने को नेपोलियन मानता है और विल्सन स्वतः को ईसामसीह।"**[5] ईश्वर भी दस आदेश देता है विल्सन 14 आदेश देता है।[6]

कीन्स के अनुसार, **"फ्रांस के प्रति उसका दृष्टिकोण वही था जो कि पेरीक्लीज का ऐथेन्स के प्रति था।"** वास्तव में, अपनी नीतियों के कारण वह पूरे सम्मेलन में छा गया। इसलिए कहा भी जाता है कि उसने सम्पूर्ण सम्मेलन को ही जीत लिया था।[7]

आर्लेण्डो
(ARLANDO)

आर्लेण्डो इटलीं का प्रधानमन्त्री था। वह एक कुशल वक्ता एवं कूटनीतिज्ञ था। 1915 की लन्दन की सन्धि का पक्षधर होने से विल्सन उससे नाराज था। अतः सम्मेलन की बैठकों में उसने कम ही भाग लिया।

1 "Every point in the negotiations which could be won for the British Empire, Mr. Lloyd George was successful in gaining."
—H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1263.

2 शर्मा और व्यास, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 371।

3 "Clemenceau probably was the best diplomat at conference, for surpassing his colleague in knowledge of world affairs and human nature." —*Langsam*

4 "The French Prime Minister was Clemenceau, a rude, sensible, witty octogenarian, utterly empty of illusions, but faithful throughout his violent parliamentary and journalistic career to three affections, science, Froance and liberty." —H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1261.

5 "Lloyd George belives himself to be Napoleon, but president Wilson believes himself to be Jesus Christ." —*Clemenceau*

6 "Even God was satisfied with ten commandments, but Wilson insists on Fourteen." —*Clemenceau*

7 "The french army it was said, had won the war but clemenceau had sold the peace."
—H. A. L. Fisher, A History of Europe.

विल्सन

वुड्रो विल्सन संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति था। वह एक सुन्दर, द्वेष रहित एवं शान्ति से युक्त संसार का स्वप्न देखा करता था। जिस समय युद्ध समाप्त हुआ सम्पूर्ण संसार विल्सन की ओर ऐसे देख रहा था मानो उससे किसी चीज की याचना कर रहा हो। शेपिरो ने लिखा है, **"युद्ध से जर्जरित विश्व विल्सन की ओर इस भावना से निहार रहा था कि वह उस राष्ट्र का प्रतिनिधि था जिसे अपने लिए कोई स्वार्थ नहीं था और जिसने विश्व के सहयोग के द्वारा हमेशा के लिए मानव को युद्ध के ताप से विमुक्त करने का स्वप्न देखा था।"**[1] विल्सन आदर्शवादी था। वह धूर्तता एवं कुटिल चालों से परे था। उसने अपने 14 सिद्धान्तों के आधार पर विश्व शान्ति का स्वप्न देखा था। **उसके 14 सिद्धान्त निम्नवत् हैं :**

1. गोपनीय तरीकों से अन्तर्राष्ट्रीय समझौते नहीं किये जायेंगे, राजनय सदैव निष्कपट रूप में तथा सार्वजनिक दृष्टि से कार्य करेगा, सन्धियां खुले रूप से की जायं।
2. समुद्रतटीय भागों के अलावा युद्ध अथवा शान्ति काल, दोनों अवस्थाओं में जहाज चलाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
3. आन्तरिक सुरक्षा के लिए जितने अस्त्र-शस्त्र पर्याप्त हों उतने ही रखे जायें।
4. औपनिवेशिक दावे बिना पक्षपात के निर्णीत हों।
5. रूस से सेनाएं हटा ली जायें तथा उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान हो।
6. बेल्जियम को खाली किया जाय तथा उसकी स्वतन्त्रता मान्य हो।
7. सम्पूर्ण फ्रांसीसी भूमि स्वतन्त्र कर दी जानी चाहिए। आल्सेस या लारेन के प्रदेश फ्रांस को लौटा दिये जायें।
8. इटली की राष्ट्रीयता के आधार पर उसकी सीमाएं पुनः निर्धारित की जायें।
9. आपसी व्यापार में चुंगियां कम से कम हों।
10. रूमानिया, सर्बिया, माण्टेनेग्रो खाली किये जायें, सर्विया को यह अधिकार दिया जाय कि वह समुद्र तट तक पहुंच सके।
11. टर्की का शासक, अपने शासन के अन्तर्गत रहने वाली सभी जातियों के प्रति समानता की नीति अपनायेगा, डार्डेनेलीज का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाय।
12. आस्ट्रिया हंगरी के विकास हेतु साधन उपलब्ध कराये जायें।
13. पोलैण्ड की स्वतन्त्रता मान्य हो। पोलैण्ड में वे क्षेत्र मिला दिये जायें, जो निर्विवाद रूप से पोल हों। उसकी प्रादेशिक अखण्डता, आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता को मान्यता दी जाय।
14. विश्व शान्ति के लिए छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों का संगठन हो, जिससे दोनों प्रकार के राष्ट्रों की प्रादेशिक अखण्डता एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता की गारण्टियां समान रूप से दी जा सकें।

1 "The eyes of war torn world turned to the American president as the one who represented a nation that wanted nothing for herself, as the one statesman who had seen a vision of a fraternity of nations that would unite mankind to abolish war for ever."
—*Schapiro*

पेरिस शान्ति सम्मेलन में विल्सन के 14 सूत्रों का स्थान

विल्सन के 14 सूत्रों का विश्व शान्ति की कल्पना में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है, यदि पेरिस के शान्ति सम्मेलन में उनका पूर्णतया पालन हुआ होता तो सम्भवतया द्वितीय विश्व-युद्ध न हुआ होता और न जाने विश्व का इतिहास आज क्या होता? खैर विल्सन द्वारा प्रतिपादित 14 सूत्रों का पालन हालांकि अक्षरशः नहीं किया गया, किन्तु बहुत कुछ क्षेत्रों में इनका पालन किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को प्रकाशित करने की व्यवस्था राष्ट्र संघ द्वारा की गयी, हालांकि इससे गुप्त सन्धियां नहीं टाली जा सकीं फिर भी यह एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है, बेल्जियम से सेनाएं हटायी गयीं, आल्सेस तथा लॉरेन के प्रदेश फ्रांस को सौंप दिये गये। सामुद्रिक स्वतन्त्रता की शर्त किसी को मान्य न हुई। जहां तक जल मार्गों के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का प्रश्न था कुछ का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, किन्तु चुंगियों की व्यवस्था पूर्ववत बनी रही। नि:शस्त्रीकरण पराजित राष्ट्रों का ही किया गया। अमेरिका व इंगलैण्ड के अलावा कोई भी देश स्वतः में इसे लागू होने न देना चाहता था। उपनिवेशों में बंटवारे का आधार संरक्षण का सिद्धान्त अपनाया गया, परन्तु इसका भी पूर्णतया पालन न हो सका। रूस से जर्मनी की सेनाएं हटा ली गयीं। इटली के प्रश्न में भी आंशिक पालन हुआ। आस्ट्रिया हंगरी में रहने वाली अल्पसंख्यक जातियों की ओर विशेष ध्यान न दिया गया। टर्की के सम्बन्ध में भी पूर्णतया पालन न हो पाया। राष्ट्र संघ की स्थापना अपने आप में महत्वपूर्ण कदम था।

वास्तव में विल्सन के 14 सिद्धान्त केवल राजनैतिक भाषण थे। कुछ अपने आप में परस्पर विरोधी थे। फिशर के अनुसार वह अपने ही देश में अकेले थे।[1] **परन्तु यह तो कहना ही होगा कि विल्सन के 14 सूत्र अपने आप में महत्वपूर्ण थे और जितना भी उनका पालन हुआ उसने पेरिस शान्ति समझौते की कठोरता को कम करने में काफी मदद की थी।**

प्रश्न

1. वार्साय की सन्धि के गुण एवं दोषों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
2. वार्साय की सन्धि का जर्मनी पर क्या असर हुआ?
3. वार्साय की सन्धि द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी थी? व्याख्या कीजिए।
4. वार्साय की सन्धि यूरोपीय राजनीतिज्ञों की राजनीतिक भूल थी? व्याख्या कीजिए।
5. विल्सन के 14 सूत्रीय कार्यक्रम पर लेख लिखिए।
6. वार्साय की सन्धि का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। **(गोरखपुर, 1987; पूर्वांचल, 1994)**
7. वार्साय की सन्धि के महत्व का विश्लेषण कीजिए। **(गोरखपुर, 1991)**
8. वार्साय की सन्धि के प्रमुख उपबन्धों का वर्णन कीजिए। **(पूर्वांचल, 1989; गोरखपुर, 1993)**

1 "President Wilson indeed was a idealist but in his own country he was almost alone."

27

राष्ट्र संघ

[THE LEAGUE OF NATIONS]

राष्ट्र संघ का जन्म
(GENESIS OF LEAGUE OF NATIONS)

राष्ट्र संघ राष्ट्रपति विल्सन का आविष्कार नहीं कहा जा सकता।[1] वास्तव में यह कतिपय शान्ति के पक्षधरों के मस्तिष्क की उपज का समागम था। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान विश्व को जिन विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा था, उसने विभिन्न देशों के शान्ति विचारकों एवं राजनीतिज्ञों को झकझोर कर रख दिया।

इंग्लैण्ड में लार्ड ब्राइस के नेतृत्व में फरवरी, 1915 में **'युद्ध टालने के लिए प्रस्ताव'** नामक लेख प्रकाशित हुआ। मई, 1915 में इंगलैण्ड में **'लीग आफ सोसाइटी'** की स्थापना हो चुकी थी। टैफ्ट, जो कि अमेरिका का भूतपूर्व राष्ट्रपति था, की अध्यक्षता में अमेरिका में शान्ति स्थापित करने वाले संघ की स्थापना हुई। न्यूयार्क में **स्वतन्त्र राष्ट्र संघ लीग** नामक संस्था का निर्माण हुआ। इस प्रकार अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस एवं न्यूयार्क में इस तरह की विचारधारा के संगठन बन चुके थे। 22 जनवरी, 1917 को विल्सन ने अमेरिकन सीनेट में शान्ति हेतु विश्व संघ की बात कही थी। अतः कहा जा सकता है कि युद्ध की समाप्ति होते-होते एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का माहौल पैदा हो चुका था।

जब पेरिस का सम्मेलन आयोजित हुआ तो उससे पूर्व ही ब्रिटिश विदेश विभाग द्वारा निर्धारित एक कमेटी ने जिसकी अध्यक्षता लॉर्ड फिलीमोर ने की, मार्च 1918 में राष्ट्र संघ की योजना की रूपरेखा तैयार की। कर्नल हाउस, स्टमस, विल्सन, लार्ड सेसिल ने भी अपने-अपने ढंग से रूपरेखाएं बनायीं। 20 जनवरी, 1919 तक इन सभी के प्रारूपों में परिवर्तन होते गये और अन्ततः ब्रिटेन के रखे गये प्रारूप एवं विल्सन के अन्तिम प्रारूप को संयुक्त रूप से संशोधित कर एक नया प्रारूप बनाया गया जिसे शान्ति सम्मेलन के 19 सदस्यों के एक आयोग के अध्ययनार्थ रखा गया, जिसका अध्यक्ष विल्सन था। 28 अप्रैल, 1919 को संशोधित प्रारूप को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। **इस प्रकार अन्ततः 10 जनवरी, 1920 ई. को लीग आफ नेशन्स का वैधानिक रूप से जन्म हुआ।**

1 "The idea of a League of Nations was not original with Wilson, but was a Anglo-Saxon Conception." —Fisher, *A History of Europe*, p. 1266.

राष्ट्र संघ का संविधान
(CONSTITUTION OF THE LEAGUE OF NATIONS)

राष्ट्र संघ जिसे किं समझौते का नाम दिया गया था। 26 धाराओं तथा एक भूमिका वाले संविधान से युक्त था। संविधान की दसवीं, बारहवीं एवं सोलहवीं धाराएं अत्यन्तपूर्ण हैं। इनमें प्रादेशिक अखण्डता, न्यायिक व्यवस्था, आर्थिक एवं सैन्य व्यवस्था का विवरण दिया गया है। मैरियट के अनुसार, "**राष्ट्र संघ के नियमों की प्रतिलिपियां मित्र राष्ट्रों और साथियों तथा कुछ दिन पहले के शत्रुओं के बीच होने वाली सभी मुख्य सन्धियों के आदि में लगायी गयी थीं।**"[1]

उद्देश्य

राष्ट्र संघ की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य उसके प्रारूप की भूमिका में निहित हैं—प्रथमतः, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्ति सन्धियों के माध्यम से निपटारा करना, द्वितीयतः, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शान्ति को बढ़ावा देना, तृतीयतः मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाना जिससे कि विकास एवं उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। हेजन ने इसका विशद वर्णन करते हुए लिखा है, "**सुभाषी आदर्शवादियों ने बार-बार कहा था कि यह अन्तिम युद्ध था जिसका उद्देश्य युद्ध को समाप्त करना था, यदि इस पवित्र भावना की पूर्ति होनी थी तो वह केवल संघ द्वारा ही हो सकती थी। समझौता तैयार होने के पूर्व और पश्चात् उसके प्रस्तावकों ने इसी आशय से उसकी सिफारिश की थी कि वह उद्देश्य की पूर्ति की वास्तव में आशा दिलाता था अथवा उसकी पूर्ति की बहुत कुछ आशा दिलाता था।**"[2]

सदस्यता

हेजन के अनुसार, "प्रारम्भ में राष्ट्र संघ में दो वर्गों के राज्य सम्मिलित होने थे, प्रथमतः, सन्धि के मूल हस्ताक्षरकर्ता जिनकी कुल संख्या बत्तीस थी और द्वितीयतः, कुछ अन्य राज्य, जिनकी संख्या तेरह थी और जो आमन्त्रण को स्वीकार करने के पश्चात् सदस्य बनने थे।"[3] परन्तु समझौते पर प्रारम्भ में केवल 16 देश ही इसके सदस्य बने। **सबसे विचारणीय एवं आश्चर्यजनक बात तो यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका कभी भी इसका सदस्य नहीं बना।**[4] जर्मनी को इसकी सदस्यता 1926 में दी गयी जिसने 1933 में इसे छोड़ा। रूस 1933 में सदस्य बना, किन्तु उसे 1940 में वंचित कर दिया गया। जापान ने 1933 में और इटली ने 1937 में इसकी सदस्यता छोड़ दी।

सदस्यता के सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि असेम्बली का 2/3 बहुमत मिलने पर किसी भी देश को इसकी सदस्यता प्रदान की जा सकती थी, कौंसिल अपनी सर्वसम्मति से किसी को भी सदस्यता से वंचित कर सकती थी। यह भी प्रतिबन्ध था कि यदि कोई देश स्वेच्छा से सदस्यता को छोड़ना चाहे तो उसे दो वर्ष का नोटिस देना होगा।

राष्ट्र संघ का संगठन
(ORGANIZATION OF THE LEAGUE OF NATIONS)

राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग अग्रलिखित थे :

1 **मैरियट, आधुनिक इंगलैण्ड का इतिहास**, पृ. 412।
2 **हेजन, आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 601।
3 **वही**, पृ. 599।
4 "America neither signed the treaty nor joined the League." —**Fisher**, *A History of Europe*, p. 1271.

(क) साधारण सभा (The Assembly)—साधारण सभा को असेम्बली भी कहा जाता था, इस संघ का प्रत्येक देश अपने तीन प्रतिनिधि साधारण सभा के लिए प्रेषित कर सकता था, किन्तु एक से अधिक मत एक राष्ट्र का नहीं होता था, इसका वार्षिक अधिवेशन होता था, जो कि सितम्बर, जनवरी या मई के माह में जेनेवा में होता था। यह अपने सभापति का चयन सदस्यों में से करती थी। साथ ही आठ उप-सभापति भी चयनित किये जाते थे। एक बात उल्लेखनीय है कि साधारण सभा के अध्यक्ष एवं उप-सभापतियों का चयन केवल एक वर्ष के लिए होता था। **यही नहीं, 6 स्थायी समितियां बनायी गयी थीं**—(1) विश्व में नि:शस्त्रीकरण के क्षेत्र से सम्बन्धित समिति, (2) तकनीकी संगठनों से सम्बन्धित समिति, (3) मानवतावादी एवं समाजवादी प्रश्नों से सम्बन्धित समिति, (4) राजनैतिक क्षेत्र में उठे प्रश्नों के निदान से सम्बन्धित समिति, (5) कानूनों के गठन एवं पालन से सम्बन्धित समिति, (6) महत्वपूर्ण विवादों के सन्दर्भ में असेम्बली के विशेषाधिकार द्वारा निर्मित होने वाली समिति।

राष्ट्र संघ व उसके प्रमुख अंग

सचिवालय

[स्थाई कार्यालय जेनेवा में, महासचिव की देख-रेख में काम, अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों को देखती थी। राष्ट्र संघ की कार्यवाही को लेखनीबद्ध करना, आवश्यक सूचना एकत्र करना, पत्र-व्यवहार करना प्रमुख कार्य।]

परामर्श आयोग

[विभिन्न आयोग जिनका कार्य अपने-अपने क्षेत्र में राष्ट्रसंघ को परामर्श देना था। उदाहरणार्थ, सेना के लिए आयोग। बच्चों की सुरक्षा के लिए आयोग इत्यादि।]

तकनीकी आयोग

[तकनीकी विषयों में परामर्श देने के लिए।]

स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

[15 न्यायाधीश, अन्तर्राष्ट्रीय मामले निबटाना।]

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ

[तीन अंग थे—(i) साधारण सभा, (ii) प्रशासकीय सभा, (iii) कार्यालय। मजदूरों की स्थिति सुधारने का कार्य।]

कार्यक्षेत्र

(1) **परामर्श सम्बन्धी**—यदि कोई ऐसा विवाद जो कि अन्तर्राष्ट्रीय हित से सम्बन्धित हो, असेम्बली विचार कर सकती थी तथा अपने प्रस्ताव को कौंसिल के सम्मुख रख सकती थी, किन्तु विडम्बना यह थी कि असेम्बली उक्त विषयक विवादों या प्रश्नों पर केवल विचार ही कर सकती थी अथवा कौंसिल को प्रस्ताव ही भेज सकती थी। इसके अलावा कुछ भी नहीं। कोई कार्यवाही नहीं कर सकती थी।

(2) **निर्वाचन सम्बन्धी**—असेम्बली 2/3 बहुमत से प्रतिवर्ष अध्यक्ष एवं उपाध्यक्षों का चयन करती थी। राष्ट्र संघ का महासचिव, जिसकी नियुक्ति राष्ट्र संघ द्वारा होती थी, इसकी पुष्टि करता था।

(3) **अंगीभूत कार्य**—असेम्बली को यह अधिकार था कि वह संविदा के नियमों में परिवर्तन कर सकेगी, किन्तु यह परिवर्तन तभी मान्य होते थे जबकि उसे कौंसिल या प्रभावित देश स्वीकार करें।

मावर का विचार है, "**वास्तव में सभा केवल एक वाद-विवाद का मंच न होकर राष्ट्र संघ का एक प्रभावशाली अंग थी।**"[1]

किन्तु वास्तविकता से देखें तो कहा जा सकता है कि असेम्बली के पास अधिकार क्षेत्र तो थे, किन्तु कई निर्णयों को वह केवल कौंसिल को प्रेषित भर ही कर सकती थी लागू नहीं। कहा जा सकता है कि वह ज्यादा संवैधानिक संस्था ही थी व्यावहारिक कम।

(ख) कौंसिल (परिषद्) (Council)—परिषद् (कौंसिल) जो संघ की कार्यकारिणी भी कही जा सकती है दो प्रकार के सदस्यों वाली थी, प्रथमतः, स्थायी सदस्यों से युक्त द्वितीयतः, अस्थायी सदस्यों से युक्त।

जिस समय राष्ट्र संघ का मसौदा तैयार किया गया उस समय यह विचार रखा गया कि अमेरिका, इंगलैण्ड, इटली, फ्रांस और जापान इसके स्थायी सदस्य होंगे, **परन्तु बड़े आश्चर्य की बात थी कि जिस राष्ट्र संघ के निर्माण में अमेरिका का महत्वपूर्ण हाथ था, वही इसका सदस्य न बना।**[2] अतः स्थायी सदस्यों की संख्या केवल 4 रह गयी। इन्हें निषेधाधिकार प्राप्त नहीं था।

अस्थायी सदस्यों की संख्या प्रारम्भ में 4 फिर बढ़ते-बढ़ते 11 तक पहुंच गयी। इसकी अवधि 3 वर्ष की थी। महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसके 1/3 सदस्य प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करते थे। तात्पर्य यह है कि 1/3 सदस्यों का प्रतिवर्ष चयन होना निश्चित था।

अध्यक्षता—परिषद् की अध्यक्षता क्रमानुसार[3] परिवर्तित होती रहती थी। अतः अध्यक्ष का चयन केवल एक ही देश के प्रतिनिधि के हाथ नहीं था।

1 Mawer, *International Government*, p. 379.

2 इसका कारण यह था कि अमेरिका की सीनेट ने वार्साय की सन्धि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था क्योंकि इसके द्वारा सभी देशों के साथ समान व्यवहार (विल्सन का एक सिद्धान्त) का खण्डन होता था। वार्साय सन्धि के आधार पर ही राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी थी। अतः अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य न बन सका।

3 सदस्यों की फ्रेंच नामावली के अनुसार।

कार्यक्षेत्र

(1) **निर्वाचन एवं नियुक्ति सम्बन्धी**—असेम्बली के सहयोग से कौंसिल के अतिरिक्त स्थायी, अस्थायी सदस्यों की नियुक्ति, अस्थायी सदस्यों की संख्या निर्धारण, महासचिव की नियुक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों के सदस्यों तथा न्यायालय के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति करती थी।

(2) **शान्ति व्यवस्था से सम्बन्धित कार्य**—राष्ट्र संघ की संविदा के 10वें अनुच्छेद में शान्ति व्यवस्था से सम्बन्धित प्रयोगों का विवेचन दिया गया है, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य नि:शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में है। इस अनुच्छेद के अनुसार, "संघ की परिषद् विभिन्न स्थानों द्वारा विचार तथा कार्यवाही हेतु योजनाएं तैयार करेगी और विभिन्न शासनों द्वारा इन योजनाओं को स्वीकार किये जाने के पश्चात् परिषद् की सहमति के बिना उन योजनाओं में निर्धारित मात्रा में वृद्धि नहीं की जायेगी। शासकों को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि युद्ध सामग्री व उसके व्यक्तिगत उत्पादन के दुष्परिणामों को किस प्रकार न्यून किया जा सकता था और उनको सैनिक कार्यक्रमों की सूचना पूर्णरूप से तथा बिना किसी हिचक के एक-दूसरे को देनी थी।"[1]

इसी अनुच्छेद में यह भी स्पष्ट है कि यदि राष्ट्र संघ के किसी सदस्य पर कोई अन्य देश आक्रमण करेगा तो राष्ट्र संघ अपने सदस्य को सैनिक सहायता प्रदान करेगा, परन्तु यह कार्य परिषद् को सौंपा गया कि वह निर्णय दे कि कितनी मात्रा में सैनिक सहायता दी जायेगी। इसके अलावा परिषद् विभिन्न देशों के विवादों का निपटारा करती थी तथा असेम्बली के पास भी इन झगड़ों की व्याख्या की जाती थी। हार्वर्ड का कथन है, **"विश्व शान्ति की दिशा में परिषद् एक उत्साहवर्धक कदम था जिससे यह स्पष्ट हो गया कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान युद्ध के अतिरिक्त अन्य उपायों से भी किया जा सकता है।"**[2]

मैण्डेट व्यवस्था की व्यवस्था सम्बन्धी कार्य—उन सभी छोटे देशों के विषय में जानकारी लेना जो बड़े देशों के शासनादेश के अन्तर्गत शासित होते थे। सार की घाटी, डेन्जिग तथा मिश्रित आयोगों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अनेक कार्य करने पड़ते थे।

इन परिस्थितियों का अवलोकन करने पर कहा जा सकता है कि राष्ट्र संघ की परिषद् को व्यवहार में सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे और वह असेम्बली के मुकाबले कार्यशक्तियों के सन्दर्भ में पूर्णतया ज्यादा शक्तिशाली कही जा सकती है।

(ग) **सचिवालय**—राष्ट्र संघ का एक सचिवालय भी था। इसे सर्वाधिक उपयोगी एवं कम विवादास्पद अंग कहा जाता है। इसमें कार्य करने वाले लोगों की कुल संख्या 600 थी, महासचिव इसका प्रधान होता था। सर ड्यूमण्ड ही 1920 से 1933 तक इसका महासचिव रहा।

(घ) **अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन**—अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन यद्यपि राष्ट्र संघ के बजट से ही चलता था, किन्तु यह प्रशासनिक क्षेत्र में पूर्णतया स्वतन्त्र था। प्रसिद्ध इतिहासकार के

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 602।
2 Harward Ellis, *The Origin, Structure and Working of the League of Nations*, p. 157.

शब्दों में, "**अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन जिसका कार्यालय जेनेवा में था, का निर्माण शान्ति सन्धियों के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा श्रमिकों की स्थिति में प्रचार के उद्देश्य से हुआ था।**"[1] यह भी उल्लेखनीय है कि इसकी अपनी एक साधारण सभा, परिषद् एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय भी था, परन्तु इसकी उपलब्धियां अपने आप में सीमित नहीं, परन्तु इसका अपने आप में विशेष महत्व है कि इसने श्रमिकों के संगठन की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाया था। श्रमिकों से 48 घण्टे प्रतिमाह कार्य की सीमा निर्धारित की गयी। 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों से भी कार्य करवाना वर्जित किया गया जो कि आज भी विभिन्न देशों में पालनीय कहा जा सकता है वह चाहे कितना ही सीमित क्यों न हो।

(ङ) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का विचार राष्ट्र संघ के अनुच्छेद 14 में दिया गया है, इसका प्रमुख उद्देश्य ऐसे विचारों को जो कि दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच हों और राष्ट्र संघ के न्यायालय के सम्मुख समाधान हेतु प्रस्तुत किए जाएं, उनका समाधान करना था। कार के अनुसार, "**न्यायालय की संविधि में एवं तथाकथित ऐच्छिक धारा भी थी जिस पर हस्ताक्षर करने वालों के लिए यह आवश्यक था कि वे उनके और राष्ट्र संघ के अन्य सदस्यों के बीच वैधिक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के विवाद को उसके सामने निर्णय हेतु प्रस्तुत करें।**"[2]

इस न्यायालय के लिए प्रारम्भ में 11 न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी, किन्तु पश्चात् में यह संख्या 15 कर दी गयी। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का केन्द्र हेग को चुना गया। कार के अनुसार 1922 से 1933 के बीच पचास से भी अधिक मामलों में इसने निर्णय एवं राय दी।[3]

(च) एजेंसियां तथा आयोग—राष्ट्र संघ के द्वारा कार्यों का सम्पादन यथोचित रूप से यथासमय हो सके, इसके लिए विभिन्न एजेंसियां तथा आयोगों की स्थापना की, आर्थिक वित्तीय, यातायात, मादक पदार्थ निषेध आयोग, आदि उल्लेखनीय हैं, इन एजेंसियों एवं आयोगों के द्वारा समय-समय पर अपनी रिपोर्टें आयोग को प्रेषित की जाती थीं।

राष्ट्र संघ के कार्य
(WORKS OF LEAGUE OF NATIONS)

राष्ट्र संघ ने अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए लगभग 20 वर्षों तक कार्य किया, इन बीस वर्षों के कार्यकाल में उसके द्वारा किये गये अनेक कार्यों में उसे सफलताएं भी मिलीं और असफलताएं भी, परन्तु उसके द्वारा सम्पादित सफलताएं भी आलोचना का मूल विषय रही हैं।

राष्ट्रसंघ द्वारा सम्पादित सफल कार्य (Achievements of League of Nations)

(क) प्रशासनिक कार्य—प्रशासनिक या राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रसंघ द्वारा निम्न सफल प्रयास किये गये :

(1) अल्बानिया विवाद का हल—यूनान और यूगोस्लाविया के पश्चिम में स्थित अल्बानिया एक छोटा-सा देश था। अल्बानिया को यूनान और यूगोस्लाविया दोनों आपस में बांटना चाहते

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 96-97।
2 **वही**, पृ. 97।
3 **वही**, पृ. 97।

थे। इधर राष्ट्रसंघ के द्वारा अल्बानिया को स्वतन्त्र राज्य घोषित किया जा चुका था, अतः 1912 ई. में यूगोस्लाविया ने अल्बानिया में अपनी सेनाएं भेजीं। अल्बानिया की अपील पर राष्ट्र संघ ने इस मामले को समझौते द्वारा हल करने में सफलता प्राप्त की।

(2) **आलैण्ड का विवाद**—आलैण्ड द्वीप समूह पर, जो कि बाल्टिक सागर में स्थित था, स्वेडन तथा फिनलैण्ड अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। अतः विवाद स्वाभाविक था। राष्ट्र संघ ने तीन सदस्यीय एक आयोग का गठन उक्त विवाद का हल करने हेतु किया। आयोग की सिफारिश पर कौंसिल ने आलैण्ड पर फिनलैण्ड के आधिपत्य की घोषणा की, परन्तु वहां निवास करने वाली स्वेडिश जनता के अधिकारों एवं सुरक्षा की गारण्टी दी गयी। स्वेडिश निवासी स्वेडिश भाषा में शिक्षा ले सकेंगे। यह द्वीप निःशस्त्र एवं तटस्थ घोषित किया गया। दोनों देशों ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया।

(3) **रूमानिया और हंगरी से सम्बन्धित विवाद**—पेरिस के गठित समझौते के अनुसार रूमानिया को ट्रांसिलवानिया और वनात का प्रदेश दे दिया गया था, परन्तु ट्रांसिलवानिया और वनात में जो हंगेरियन निवास करते थे वे चाहते थे कि वे हंगरी चले जायें, परन्तु रूमानिया को दिये गये इन प्रदेशों में उनकी सम्पत्ति लगी हुई थी। अतः अब यह प्रश्न रूमानिया और हंगरी दोनों देशों में विवाद का विषय बन गया। राष्ट्र संघ ने इस विवाद का शान्तिपूर्ण ढंग से अन्त कर दिया।

(4) **यूनान और बल्गेरिया का विवाद**—यह विवाद बाल्कान समस्या से सम्बन्धित था। अक्टूबर 1925 में यूनानी सीमा में तैनात एक यूनानी कमाण्डर की हत्या हो गयी, फलस्वरूप यूनानी सेना बल्गेरिया में घुस गयी और 70 वर्ग मील भूमि पर कब्जा कर लिया। बल्गेरिया ने प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 के अन्तर्गत राष्ट्र संघ के सम्मुख समस्या को रखा। राष्ट्र संघ ने पेरिस में अधिवेशन बुलाकर यूनानी सरकार को आदेश दिया कि वह अपनी सेनाएं अधिकृत क्षेत्र से हटा ले। ब्रिटेन, फ्रांस एवं इटैलियन अधिकारियों को निर्देश दिये कि वे वस्तुस्थिति का परीक्षण करें। फलतः यूनानी सेनाएं वहां से हट गयीं। 5 व्यक्तियों के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यूनान को दोषी ठहराया, फलतः यूनान को युद्ध का मुआवजा देना पड़ा। कार के अनुसार, "**यूनान-बल्गेरिया विवाद कमजोर और बराबरी के ऐसे राज्यों में था, जिनमें से किसी के भी परिषद् में कोई प्रभावशाली समर्थक नहीं थे। इन बातों के कारण यह विवाद स्पष्ट रूप में राष्ट्र संघ की कार्यवाही के योग्य था। इससे परिषद् के लिए निष्पक्ष निर्णय करना और उसे दोनों ही पक्षों से स्वीकृत करा लेना सरल हो गया।**"[1]

(5) **फ्रांस व ब्रिटेन का विवाद**—मोरक्को एवं ट्यूनिस में आधिपत्य को लेकर फ्रांस व इंगलैण्ड के बीच आपस में झगड़ा हो गया। फ्रांस ने ब्रिटेन के इस प्रस्ताव को '**पंच निर्णय**' द्वारा इस मामले को हल किया जाना चाहिए, नामंजूरी दे दी। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने इस फ्रांसीसी दावे को वह '**उसका घरेलू मामला है**', अस्वीकृत कर दिया। अन्ततः मामला राष्ट्र संघ तक पहुंचा और आपसी माध्यम से समझौता हो गया।

(6) **मेमल समस्या**—लिथुआनिया ने 1923 ई. में मेमल पर आक्रमण किया और फ्रांसीसियों को वहां से निकाल दिया। राष्ट्र संघ ने इस पर निर्णय दिया कि मेमल निवासी

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 93।

आन्तरिक रूप से स्वतन्त्र रहेंगे, किन्तु बन्दरगाह के अलावा सारे मेमल पर लिथुआनिया का अधिकार माना जायेगा। वहां पर शासन करने हेतु एक बोर्ड बनाया गया।

(7) **पोलैण्ड एवं चैकोस्लोवाकिया का विवाद**—पोलैण्ड एवं चैकोस्लोवाकिया दोनों ने राष्ट्र संघ के द्वारा निर्धारित की गयी सीमाओं को स्वीकार किया।

(8) **मौसूल विवाद**—पेरिस की सन्धि के अन्तर्गत टर्की के साथ हुई सन्धि में यह व्यवस्था थी कि टर्की और ब्रिटिश के प्रदेशाधीन राज्य इराक के बीच यदि सीमान्त समझौता न हो पाये तो इसका निर्णय राष्ट्र संघ की परिषद् द्वारा किया जायेगा। 1924 में राष्ट्र संघ ने एक आयोग उक्त सन्दर्भ में गठित किया। इसी बीच टर्की की कुर्द जाति ने टर्की के सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। **विद्रोह क्रूरतापूर्वक दबा दिया गया और फलस्वरूप कुर्द भागकर मौसूल आये और अस्थाई सीमान्त पर मुठभेड़ें हुईं।** राष्ट्र संघ ने इस सम्बन्ध में दूसरा आयोग बिठाया जिसने अपनी रिपोर्ट में तुर्क कठोरता का उल्लेख किया। राष्ट्र संघ ने निर्णय लिया कि मौसूल का विलायत का सारा प्रदेश शासनाधीन मान लिया जाय, टर्की ने इसे नामंजूर कर दिया, किन्तु मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तक ले जाया गया। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने राष्ट्र संघ की परिषद् के निर्णय को अन्तिम फैसला माना। टर्की को विवश होकर इसे मानना पड़ा। इस प्रकार सीमान्त सम्बन्धी विवाद समाप्त हुआ।

(9) **लोटेशिया का मामला**—पेरू तथा कोलम्बिया के बीच लोटेशिया के प्रश्न पर विवाद छिड़ गया। पेरू ने लोटेशिया पर अधिकार कर लिया। कोलम्बिया की अपील पर राष्ट्र संघ ने 1934 में समझौता कराया। पेरू को लोटेशिया, कोलम्बिया को लौटाना पड़ा।

(10) **अपर साइलेशिया**—जर्मनी और पोलैण्ड के मध्य सीमा विवाद को लेकर साइलेशिया का प्रश्न आया, परिषद् ने निर्णय दिया कि अपर साइलेशिया का विभाजन कर दोनों में बांट दिया जाय। कार ने लिखा है, "**राष्ट्र संघ की सभी सफलताओं के बारे में अधिक ध्यान देने योग्य बात यह थी कि ये सफलताएं समझौतों का मार्ग अपनाते हुए प्राप्त की गयी थीं। सभी मामलों से स्पष्ट है कि परिषद् केवल मानने-समझने की रीति ही काम में ला सकी थी।**"

(11) **सार घाटी का प्रश्न**—वार्साय की सन्धि के अनुसार सार की घाटी का प्रशासन 15 वर्षों तक के लिए राष्ट्र संघ के संरक्षण में दिया गया था। 15 वर्षों के पश्चात् उसमें जनमत संग्रह कराया गया, क्योंकि इस बीच सार के निवासियों को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे और राष्ट्र संघ पर फ्रांस का प्रभुत्व था। अतः सार की घाटी के जनमत संग्रह में जर्मनी के पक्ष में मत आये। फलतः 1935 में सार की घाटी जर्मनी को सौंप दी गयी।

(12) **डैन्जिंग का स्वतन्त्र नगर**—पेरिस की सन्धि के अनुसार व्यवस्था की गयी कि डैन्जिंग के स्वतन्त्र नगर का कार्यभार राष्ट्र संघ चलायेगा। पोलैण्ड का डैन्जिंग के बन्दरगाह पर नियन्त्रण होने से नगर एवं बन्दरगाह के बीच छींटाकशी होती रहती थी। अतः प्रशासनिक व्यवस्था को राष्ट्र संघ ने अपने हाथ में लेकर कमिश्नर की मदद से ठीक तरह चलाने में सफलता प्राप्त की और छींटाकशी को कम करने में सफलता प्राप्त की।

(13) **मैंनेट व्यवस्था**—शान्ति सन्धियों से पूर्व जो भी प्रदेश जर्मनी के अधीन थे और जो अब विभिन्न शक्तियों में विभाजित हो चुके थे एवं टर्की के खलीफा के अरब उपनिवेशों की समुचित व्यवस्था की देखभाल के लिए विभिन्न देशों को चुना गया जो कि संरक्षक राज्य कहलाये। वे सभी प्रदेश जो संरक्षक राज्यों की देखभाल में थे संरक्षित राज्य कहलाये।

संरक्षक राज्यों को अपने शासन-प्रबन्ध की रिपोर्ट प्रत्येक वर्ष परिषद् को देनी होती थी। व्यवहार में यह पद्धति संरक्षक राज्यों द्वारा उपनिवेशों के शोषण के रूप में सामने आयी, परन्तु इसने एक नई व्यवस्था की नींव डाली।

(ख) आर्थिक कार्य—इतिहासकार **कार** के शब्दों में, **"आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए राष्ट्र संघ ने एक नया और विशाल संगठन प्रस्तुत किया।**[1] वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय सहायता संघ राष्ट्र संघ के आर्थिक कार्यों का ही प्रशंसनीय परिणाम कहा जा सकता है। यह व्यवस्था कर दी गयी कि प्रतिवर्ष जेनेवा में विभिन्न देशों के अर्थ एवं वित्त विशेषज्ञ इकट्ठे हों तथा विश्व की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करें। इससे संघ ने वास्तव में आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े एवं संकटग्रस्त देशों की वित्तीय सहायता पहुंचाने में सफलता प्राप्त की। 1923 में आस्ट्रिया को अन्तर्राष्ट्रीय ऋण प्रदान करने में सहायता, आर्थिक मन्दी के समय (1931-32 और 1933) में पुनः सहायता, 1924, 1928, 1932 और 1933 में यूनान एवं 1926 एवं 1928 में बल्गेरिया को आर्थिक सहायताएं इसी का परिणाम कही जा सकती हैं। यूनान के 10 लाख शरणार्थियों को बसाने में 5 करोड़ डालर राष्ट्र संघ द्वारा दिये गये जो कि प्रशंसनीय नहीं हैं। युद्ध बन्दियों को अपने देश भेजने में महत्वपूर्ण कार्य किया। इसी तरह डैन्जिग के लिए एक केन्द्रीय बैंक निर्मित किया गया, **कार** के अनुसार, **"सन् 1920 में ब्रुसेल्स में एक सामान्य वित्त सम्मेलन हुआ जिसका उद्देश्य युद्धोत्तर वित्तीय पुनर्निर्माण पर विचार करना था, इसी प्रकार शुल्क दरों में कमी करने तथा अन्य व्यापारिक बाधाओं को दूर करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए जेनेवा में सन् 1927 में एक आर्थिक सम्मेलन भी हुआ था।"**[2]

(ग) सामाजिक तथा मानवीय हितैषी कार्य—हैजा, चेचक, मलेरिया, आदि रोगों के कारणों एवं रोकथाम के उपायों, यातायात के साधनों का विकास, रेलों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था, विद्युत एवं जल का वितरण, आदि सम्बन्धी अनेक कार्य किये गये, स्त्रियों के व्यापार, वेश्यावृत्ति, पोस्टरों के प्रकाशनों, आदि पर रोक लगाने के लिए नियम बनाये, विवाह की उम्र सम्बन्धी कानून बनाये, अबोध बच्चों की समस्या एवं बाल-कल्याण पर ध्यान दिया। मादक द्रव्यों का निषेध, दासता की समाप्ति, बेकारी की समस्या, आदि की ओर ध्यान दिया। नेपाल, बर्मा, आदि को प्रोत्साहित किया कि वे दास प्रथा को समाप्त करें। करीब 5 लाख युद्ध बन्दियों को उनके घर पहुंचाया गया।

(घ) बौद्धिक कार्य—स्मारकों, कलाकृतियों की सुरक्षा, प्रौढ़ एवं श्रमिकों की शिक्षा की व्यवस्था, थियेटरों, संगीत एवं कविता, आदि के क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा देना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का वैज्ञानिक परीक्षण, आदि विषयों में राष्ट्र संघ ने महत्वपूर्ण कार्य किये।

इस प्रकार राष्ट्र संघ के द्वारा प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, मानवीय एवं बौद्धिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये गये जिनमें राष्ट्र संघ को पर्याप्त सफलता मिली। वास्तव में लीग की सफलता का मुख्य कारण उसके द्वारा समय-समय पर बुलाये गये सम्मेलन भी हैं। लीग की सबसे महत्वपूर्ण सफलता का आकलन **लैंगसम** के शब्दों में किया जा सकता

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 96।
2 **वही**, पृ. 96।

है, "**शायद लीग की सबसे बड़ी देन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के प्रसार का प्रभाव था। किसी भी संस्था के मुकाबले लीग ने मानव को विश्व की समस्याओं से अवगत किया एवं संकुचित जातीयता के विचारों से उसे मुक्त किया।**"[1]

राष्ट्र संघ के द्वारा किये गये असफल कार्य
(FAILURES OF LEAGUE OF NATIONS)

इतिहासकार **कार** के शब्दों में, **अपनी सर्वाधिक प्रतिष्ठा एवं शक्ति की अवधि में राष्ट्र संघ का एकमात्र आधार उसका नैतिक अधिकार था, क्योंकि अनुच्छेद 11 के अधीन उसे अन्य कोई शक्तियां प्राप्त नहीं थीं। सन् 1932 से पहले अनुच्छेद 15 में उपबन्धित निर्णय और दण्ड शक्ति की प्रक्रिया का आश्रय लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।**[2]

यद्यपि राष्ट्र संघ ने अनेक सामाजिक तथा लौकिक कार्यों में सफलता अर्जित की थी, किन्तु उसे कई मामलों में असफलता का मुंह भी देखना पड़ा जिनका वर्णन निम्नलिखित है :

(1) **विलना विवाद** (Dispute Over Vilna 1920-22)—विलना नगर पर पोलैण्ड और लिथुआनिया दोनों अपना अधिकार करना चाहते थे। लिथुआनिया ने राष्ट्र संघ से न्याय की अपील की। इधर पोलैण्ड के पक्ष में फ्रांस और इटली ने अपना समर्थन दिया। पोलैण्ड ने विलना पर अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार बड़ी शक्तियों का समर्थन मिलने के कारण राष्ट्र संघ पोलैण्ड के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं कर सका।

(2) **कोर्फ्यू विवाद**, 1923 (The Cofru Incident)—एक बार मुसोलिनी ने कहा था, "**केवल युद्ध ही समस्त मानवीय शक्ति को उच्चतम शिखर तक पहुंचाता है और जो युद्ध का सामना करते हैं, उन व्यक्तियों पर श्रेष्ठता की मुहर लगा देता है।**"[3]

इटली की श्रेष्ठता को चरम उत्कर्ष तक पहुंचाने के लिए मुसोलिनी अपने उक्त कथन पर ही चला। उसकी इस नीति का आरम्भ कोर्फ्यू विवाद से ही हो जाता है। यूनान तथा अल्बानिया के मध्य सीमा सम्बन्धी मसले को हल करने के लिए आयोग बनाया गया था। सन् 1923 ई. में इस आयोग के कुछ इटैलियन अधिकारियों की यूनान में हत्या कर दी गयी, इटली ने यूनान से 5 दिन के भीतर 5 करोड़ डालर क्षतिपूर्ति की मांग की। यूनान ने राष्ट्र संघ से न्याय की अपील की। इससे अपनी बातचीत पूरी न होते देख इटली ने यूनान के कोर्फ्यू नामक स्थान पर बमवारी कर उसे अधिकृत कर लिया। **इसी बीच राष्ट्र संघ ने निर्णय दिया कि इटली यूनान को कोर्फ्यू लौटा दे।** यूनान इटली से क्षमा याचना करे। हालांकि राष्ट्र संघ के इस निर्णय को दोनों देशों ने स्वीकार किया, किन्तु इससे राष्ट्र संघ की असफलता इस मायने में दर्शित हुई कि वह इटली के खिलाफ चाहकर भी कठोर शर्तें न लगा सका, इटली ने बम वर्षा की थी उसके मुआवजे के सम्बन्ध में भी राष्ट्र संघ ने चुप्पी साध ली। वास्तव में उसकी यह चुप्पी मूक रूप में उसकी असफलता का एक और कदम ही थी।

1 "Perhaps the greatest general contribution of the League was its influence in spreading the idea of international Co-operation." —*Langsam*

2 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 94।

3 "Only war carries human energies to the highest level and puts the seal of nobility upon peoples who have courage to under take it." —*Mussolini*

(3) **चीन एवं जापान का मामला** (Issue of China and Japan)—रूस एवं जापान के बीच हुई सन्धि के फलस्वरूप दक्षिणी मंचूरिया रेलवे की रक्षा के लिए मंचूरिया में लगभग 1,500 सैनिक रखने का अधिकार जापान को मिल गया था। जापान ने इस कार्य हेतु अपना मुख्यालय मुकदन को बनाया था। 18-19 सितम्बर, 1931 ई. को कुछ चीनी दस्ते रेलवे लाइन को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे, ऐसा कहकर जापान ने मुकदन के उत्तर में 200 मील के घेरे तक सम्पूर्ण चीनी क्षेत्र में अपना कब्जा कर लिया और नवम्बर के मध्य तक उत्तरी मंचूरिया में भी कब्जा कर लिया। चीन ने राष्ट्र संघ से अपील की। 1935 ई. में जापान ने राष्ट्र संघ से इस्तीफा दे दिया। राष्ट्र संघ द्वारा बैठाये गये लिटन कमीशन ने युद्ध हेतु जापान को दोषी ठहराया, किन्तु राष्ट्र संघ न तो चीन की भूमि लौटा सका, न ही उसकी प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा कर सका, न ही जापान का कुछ बिगाड़ सका और न ही युद्ध बन्द करा सका।

अपनी इस असफलता को छिपाने के लिए राष्ट्र संघ ने कई बहाने भी किये। जैसा कि कार महोदय ने लिखा है, **"यह कहा गया कि यह अग्नि परीक्षा ऐसे समय में उपस्थित हुई थी जब सारा संसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्पूर्ण एवं विनाशकारी संकोच से कष्टग्रस्त था। यदि प्रसंविदा के अनुसार जापान से वित्तीय एवं आर्थिक सम्बन्ध तोड़ लिये जाते तो उसका अर्थ जानबूझकर वर्तमान आर्थिक कष्ट को बढ़ाना होता।"**[1]

किन्तु इतना तो निश्चित था कि **"राष्ट्र संघ के सदस्य किसी शक्तिशाली और सशस्त्र सज्जित राज्य की आक्रमणात्मक कार्यवाही को रोकने के लिए तैयार नहीं थे।"**[2] इसीलिए डेविड थाम्पसन ने लिखा है, "चीन के विरुद्ध जापान के आक्रमण को राष्ट्र संघ रोक न सका। यह उसकी इस दुर्बलता का कि वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दुर्बल और अशक्त राज्यों को सुरक्षित न रख सका, प्रथम और प्रमुख प्रमाण है।"[3]

(4) **पेरागुए तथा बोलीविया का विवाद** (Problem of Perague and Bolivia)—बोलीविया एवं पेरागुए दक्षिणी अमेरिका के दो छोटे राज्य थे। ये दोनों राष्ट्र संघ के सदस्य भी थे। दोनों के बीच चाको नामक प्रान्त को लेकर संघर्ष छिड़ गया। 1928 ई. में पेरागुए ने चाको पर अधिकार कर लिया। बोलीविया की अपील पर राष्ट्र संघ ने आयोग गठित कर घटना स्थल पर जांच हेतु भेजा, किन्तु राष्ट्र संघ के प्रस्ताव को पेरागुए ने मानने से इन्कार कर दिया और सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। इस प्रकार राष्ट्र संघ इस मामले में भी शान्ति स्थापित न कर सका।

(5) **इथोपिया विवाद** (Ethopia Crisis)—इथोपिया अफ्रीका का स्वतन्त्र देश था। इसे अबीसीनिया भी कहा जाता है। मुसोलिनी ने अबीसीनिया के विरुद्ध यह कहकर युद्ध की घोषणा कर दी कि इथोपिया (अबीसीनिया) ने इटली के विरुद्ध युद्ध किया है। **मुसोलिनी का कहना था कि वह सुरक्षा के लिए युद्ध कर रहा है।** इथोपिया के शासक हेली सिलासी ने राष्ट्र संघ से रक्षा हेतु प्रार्थना की। राष्ट्र संघ ने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये, किन्तु

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 149।

2 **वही**, पृ. 149।

3 "The ineffectiveness of the League of Nations to prevent or to check Japanese aggression against China was the first serious blow to its prestige as an agency for providing security." —*David Thomson*

इटली अपने कार्य में दृढ़ रहा और मई 1936 में इथोपिया की राजधानी आदिस अबाबा पर अधिकार कर लिया। जून में इटली का शासक इथोपिया का शासक घोषित कर दिया गया।

राष्ट्र संघ के द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध सफल न हो सके, क्योंकि रूस के अलावा किसी अन्य देश ने अबीसीनिया का पक्ष नहीं लिया। अत: 15 जुलाई को आर्थिक प्रतिबन्ध भी हटा दिये गये। **कार** के शब्दों में, **"इटली की विजय राष्ट्र संघ के लिए भयंकर मार थी।"**[1]

(6) **स्पेनिश गृह युद्ध**, 1936-1939 (Spanish Civil War)—स्पेन में गणतन्त्रवादी सरकार थी, किन्तु प्रतिक्रियावादी इससे सन्तुष्ट न थे। अतः उन्होंने जनरल फ्रांको के नेतृत्व में सरकार का विरोध प्रारम्भ कर दिया। अत: स्पेन में गृह युद्ध छिड़ गया। हिटलर और मुसोलिनी की मदद से फ्रांको का प्रभाव बढ़ता चला गया और विदेशी सेनाएं स्पेन में घुस आयीं। 20 अक्टूबर, 1937 को राष्ट्र संघ की साधारण सभा ने यह आदेश दिया कि स्पेन से विदेशी सेनाएं तत्काल हट जायें, किन्तु इटली व जर्मनी ने इसकी परवाह नहीं की तथा प्रतिक्रियावादी जनरल फ्रेंको के नेतृत्व में विजयी हुए। वास्तव में यह राष्ट्र संघ की बहुत बड़ी असफलता थी।

(7) **जर्मनी एवं राष्ट्र संघ** (Germany and the League of Nations)—राष्ट्र संघ जर्मनी की कार्यवाहियों को भी न रोक पाया। हिटलर ने वार्साय सन्धि के निःशस्त्रीकरण की पाबन्दी को तोड़कर जर्मनी का शस्त्रीकरण किया। जर्मनी ने आस्ट्रिया एवं चेकोस्लोवाकिया को भी निगल लिया। ये सभी विवाद राष्ट्र संघ के सामने आये, किन्तु राष्ट्र संघ न तो जर्मनी के शस्त्रीकरण को रोकने में, न ही आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया की प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा में सफल हुआ।

(8) **रूसी-फिनिश युद्ध** (Russian-Finish War)—1939 के अन्त तक रूस ने फिनलैण्ड पर आक्रमण किया और 1940 के शुरू में उसे अधिकृत भी कर लिया। राष्ट्र संघ रूस को संघ से निष्कासित करने के सिवाय कुछ भी न कर सका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बड़ी शक्तियों के सन्दर्भ में राष्ट्र संघ अपने कार्यों में पूर्णतया असफल रहा और एक दिन ऐसा भी आया जब 19 **अप्रैल**, 1946 **को राष्ट्र संघ की समाप्ति की घोषणा भी कर दी गयी।**

राष्ट्र संघ की असफलता के कारण
(CAUSES OF THE FAILURE OF THE LEAGUE OF NATIONS)

राष्ट्र संघ की असफलता के निम्न कारण थे :

(क) **वार्साय सन्धि से लीग का सम्बन्ध जुड़ा होना**—राष्ट्र संघ, वार्साय सन्धि से जुड़ा हुआ था। वार्साय की सन्धि अपने आप में पूर्ण नहीं थी। उसने असन्तोष को जन्म दिया था। वार्साय की सन्धि की धाराएं, लायड जार्ज की साम्राज्य परक प्रवृत्ति, विल्सन की आदर्शवादिता और क्लेमांसू की स्वार्थपरता का सुन्दर नमूना थीं। अतः पराजित राष्ट्रों के साथ कठोर शर्तें लादी गयी थीं। उनका घोर अपमान किया गया था। अतः पराजित राष्ट्र शक्ति प्राप्त कर वार्साय की धाराओं को तोड़-फोड़ कर पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते थे। ऐसी परिस्थिति में शान्ति का कार्य राष्ट्र संघ को सौंपा गया, जब तक पराजित राष्ट्र पूर्ण शक्ति अर्जित न कर पाये, राष्ट्र संघ को सफलताएं मिलीं, किन्तु जैसे ही पराजित राष्ट्र—जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली, आदि ने शक्ति अर्जित कर ली और उन्हें हिटलर, मुसोलिनी और फ्रांको जैसा नेतृत्व मिला राष्ट्र

1 "The Italian victory was a grave blow to the League." —*E. H. Carr*

संघ की असफलताओं का सिलसिला शुरू हो गया। वार्साय की धाराओं की रक्षा ही राष्ट्र संघ का आधार थी। अतः वार्साय की धाराओं की अवज्ञा राष्ट्र संघ की अवहेलना समझा गया। इसीलिए **नोरमन बेण्टविच** ने लिखा है, **"लीग एक बदनाम मां की अवैध सन्तान थी।"**[1]

(ख) अमेरिका का असहयोग—अमेरिका जिसे कि सभी स्वार्थों से दूर समझा जाता था और जिसके राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए भरसक प्रयत्न भी किया था, न तो शान्ति सन्धियों पर ही हस्ताक्षर किये और न ही राष्ट्रसंघ की सदस्यता स्वीकार की, **गोथोर्न हार्डी** के अनुसार, **"एक बालक यूरोप के दरवाजे पर अनाथों की भांति छोड़ दिया गया।"**[2]

(ग) संवैधानिक दोष—राष्ट्र संघ का संविधान उनकी सफलता में बाधक बना, उसके नियम स्वयं में निर्बल थे जिनका वर्णन निम्नवत् है :

(1) **सदस्यता ऐच्छिक**—राष्ट्र संघ की सदस्यता ऐच्छिक थी, किसी राष्ट्र को सदस्यता के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था, राष्ट्र संघ की सदस्यता त्यागने के बाद सदस्यता त्यागे हुए राष्ट्र को राष्ट्र संघ के आदेशों के लिए बाध्य नहीं जा सकता था। जर्मनी, इटली, जापान इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

(2) **सेना सम्बन्धी धारा**—राष्ट्र संघ की 16वीं धारा के अनुसार, राष्ट्र संघ कौंसिल को सैनिक कार्यवाही का हुक्म दे सकती थी, परन्तु राष्ट्र संघ के पास अपनी सेना नहीं थी। उसे सैनिक कार्यवाही के लिए सदस्य राष्ट्रों से सैनिक सहायता लेनी होती थी। आर्थिक प्रतिबन्ध भी सेना के ही माध्यम से कड़ाई से लागू किये जा सकते थे, किन्तु जब कभी सैनिक कार्यवाही की जरूरत पड़ी, बड़े राष्ट्रों ने पूर्ण सहयोग राष्ट्र संघ को न दिया। यदि राष्ट्र संघ के पास अपनी सेना होती तो उसे सदस्य राष्ट्रों की ओर न ताकना होता।

(3) **धारा 11 के दोष**—धारा 11 के अनुसार कौंसिल के सामने प्रस्तुत किये गये मसले पर कार्यवाही हेतु कौंसिल की सर्वसम्मति आवश्यक थी। स्वार्थ लोलुप बड़े राष्ट्रों के प्रति कौंसिल की सर्वसम्मति एक ढकोसला मात्र थी। अतः समय पर कार्यवाही सम्भव न हो पाती थी, जिसका लाभ आक्रामक देश उठा लेते थे।

(4) **युद्ध का पूर्ण निषेध नहीं**—राष्ट्र संघ के संविधान में युद्ध का पूर्ण निषेध नहीं किया गया था। रक्षात्मक युद्ध को जायज बताया गया था। अतः प्रत्येक आक्रामक राष्ट्र ने अपने युद्ध को रक्षात्मक बतलाया और युद्ध जारी रखा, राष्ट्र संघ की पद्धति जटिल एवं पेचीदा होने के कारण जब तक यह निश्चित हो पाता कि वह रक्षात्मक युद्ध है या आक्रामक, आक्रामक राष्ट्र अपना पूर्ण प्रभुत्व बना लेता था।

(घ) तुष्टीकरण का प्रभाव—रूस ही एक ऐसा देश था जिसने राष्ट्र संघ का सर्वाधिक पालन किया। रूस में समाजवादी प्रवृत्तियां तीव्र गति से बढ़ रही थीं। रूस ने ही मुसोलिनी तथा हिटलर की आक्रामक प्रवृत्तियों का विरोध भी किया था एवं उनके प्रति कठोर नीति अपनाने पर भी जोर दिया था, परन्तु राष्ट्र संघ के अन्य सदस्य राष्ट्र जिनमें ब्रिटेन, फ्रांस, आदि थे, ने जर्मनी व इटली के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया, अधिनायकवादी अपना नारा 'समाजवाद का नाश' देते रहे और पूंजीवादी राष्ट्र अधिनायकवादियों की गतिविधियों को अन्दर ही अन्दर समर्थन देते रहे, यदि हिटलर और मुसोलिनी के प्रति तुष्टिकरण की नीति

1 "The league of nations was dishonourable daughter of a disreputed mother."
—*Norman Bentwitch*

2 Hardy, *Short History of International Affairs*, p. 198.

न अपनायी जाती तो ये शक्तियां आगे न बढ़ पातीं और राष्ट्र संघ का अस्तित्व भी बना रहता।

(ङ) विभिन्न देशों के स्वार्थ—टर्की बाल्कान में, जापान चीन में, इटली एड्रियाटिक सागर में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था, उधर जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति से फ्रांस भयभीत था। अमेरिका जापान की उन्नति से ईर्ष्या करता था। रूस में समाजवादी प्रवृत्तियां बढ़ रही थीं। इंगलैण्ड व फ्रांस प्रतिद्वन्द्वी थे। अतः कहा जा सकता है कि विश्व के प्रमुख देश अपने-अपने क्षेत्र में स्थार्थ ग्रस्त थे। जब भी किसी पर आंच आती वे राष्ट्र संघ की अवहेलना करके अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते थे। सभी राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का अभाव था। अतः राष्ट्र संघ का अस्तित्व खतरे में पड़ गया।

(6) **आर्थिक विप्लव**—सबसे बड़ी घटना जो विश्व के मंच से घटित हुई वह थी—1930 का आर्थिक विप्लव, सभी देशों में आर्थिक राष्ट्रवाद की भावनाएं प्रबल हो गयीं और प्रत्येक देश ने आर्थिक दृष्टिकोण से ही अपनी नीतियों का निर्धारण किया। मानवीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण ताक में रख दिया गया जिससे राष्ट्रसंघ को धक्का लगा, वह चाहकर भी आर्थिक प्रतिबन्ध से सम्बन्धित कार्यवाहियों को कड़ाई से लागू न कर सका और उसका पतन निश्चित हो गया।

महत्व
(SIGNIFICANCE)

अपने कार्यकाल में विभिन्न असफलताओं के बावजूद भी लीग का महत्व स्वयं सिद्ध है। **यह बात सत्य है कि 18 अप्रैल, 1946 ई. को लीग का अन्त हो गया, किन्तु यदि हम कहें कि राष्ट्र संघ के रूप में पुनः जन्म ले लिया तो अत्युक्ति न होगी।** वास्तव में लीग के उद्देश्य एवं सिद्धान्त अपने आप में अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। लीग की असफलता का मुख्य दोष राष्ट्र संघ को नहीं, वरन् तत्कालीन राष्ट्रों की स्वार्थपरता को जाता है, जिन्होंने लीग के महान उद्देश्यों के प्रति आंखें बन्द कर लीं।

सामाजिक, आर्थिक एवं मानवीय क्षेत्र में लीग के कार्य प्रशंसनीय रहे, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को नई दिशा दी, इसने विश्व को एक मंच पर लाकर विचारों के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। फिशर महोदय ने भी इसके महत्व का आकलन उक्त रूप में ही किया है।[1]

प्रश्न

1. राष्ट्र संघ के जन्म के कारणों का वर्णन कीजिए। **(लखनऊ, 1991)**
2. राष्ट्र संघ की संरचना का वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्र संघ अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहां तक सफल हुआ?
4. मेण्डेट व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसके गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।
5. राष्ट्र संघ की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
6. राष्ट्र संघ की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

1 "More important still is the opportunity which the league meetings afford for the formation of friendships the comparison of ideas, the enlargement of knowledge and adjustment of differing points of view."
—H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1276.

28

रूस-जापान युद्ध

(1904—1905)

[THE RUSSIO-JAPANESE WAR]

भूमिका
(INTRODUCTION)

सुदूर पूर्व के इतिहास में रूस-जापान युद्ध एक युगान्तरकारी घटना के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जापान में बढ़ती सैन्यवादी एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों ने सुदूर पूर्व के प्रश्नों को लेकर रूस को जापान का कट्टर दुश्मन बना दिया। दोनों के मध्य तनाव इतना अधिकं बढ़ गया कि 1904-05 **में जापान ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।** इतिहास में इस युद्ध को रूस-जापान युद्ध के नाम से जाना जाता है।

युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE WAR)

रूस-जापान युद्ध के निम्नलिखित कारण थे :

(अ) शिमोनोस्की की सन्धि पर त्रिपक्षीय हस्तक्षेप—साम्राज्यवाद की दौड़ में यूरोपीय राष्ट्रों की समकक्षता के दावेदार जापान ने चीन के दैविक साम्राज्य को 1894-95 ई. में युद्ध कर पराजित किया था एवं शिमोनोस्की की सन्धि के लिए चीन को बाध्य किया था। इस सन्धि के अनुसार लियाओ तुंग, फारमोसा, द्वीप एवं पैस्केडोर्स द्वीप पर जापान का आधिपत्य स्थापित हो गया था और जापान को क्षतिपूर्ति हेतु 50 लाख डालर भी प्राप्त होने थे। सोते हुए अजगर (Sleeping dragon) चीन को जगाकर एवं बुरी तरह पराजित कर जापान ने सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। शिमोनोस्की की सन्धि से जापान को प्राप्त होने वाले लाभों से रूस, फ्रांस एवं जर्मनी के कान खड़े हो गये। इन तीनों राष्ट्रों ने शिमोनोस्की की सन्धि का विरोध प्रारम्भ कर दिया। त्रिपक्षीय हस्तक्षेप के सम्मुख जापान को झुकना पड़ा और उसे सन्धि से प्राप्त होने वाले क्षेत्रों को त्यागना पड़ा। **त्रिपक्षीय हस्तक्षेप के अपमान की कड़वी गोली जापान के गले से नीचे कब उतरने वाली थी। उसे उसी दिन आभास हो गया कि पश्चिम शान्ति प्रेमी सभ्यता के स्थान पर सशस्त्र शक्ति का अधिक सम्मान करते हैं। अतः अपनी सैन्य शक्ति का संवर्धन एवं आगामी शक्ति परीक्षण के लिए उसे जुट ही जाना था। इधर त्रिपक्षीय हस्तक्षेप का मूल कारण रूस की सुदूर पूर्व में बढ़ती महत्वाकांक्षाएं थीं, इस बात को भी वह समझ चुका था।**

1896 ई. में रूस-चीन सन्धि की गुप्त शर्तों ने जापान को स्पष्ट कर दिया था कि निकट भविष्य में उसका मुकाबला रूस से होगा।

(ब) मंचूरिया का प्रश्न—रूस एवं जापान के बीच मतभेदों में वृद्धि का प्रधान कारण मंचूरिया पर दोनों देशों द्वारा अपने-अपने प्रभाव की वृद्धि करने की नीति था। चीन की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर 3,65,000 वर्गमील में विस्तृत मंचूरिया अपनी शस्य-श्यामला, उपजाऊ भूमि एवं रत्नगर्भ के प्राकृतिक भण्डार के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र था। सोयाबीन, बाजरा एवं गेहूं के प्रभूत उत्पादन के लिए प्रसिद्ध मंचूरिया में लोहा, कोयला एवं स्वर्ण, आदि खनिज पदार्थों का बाहुल्य था। मंचूरिया प्रत्येक दृष्टिकोण से चीनी साम्राज्य का एक प्रान्त था। सम्पदा से भरपूर इस क्षेत्र पर साम्राज्यवादी दौर से गुजरने वाले जापान एवं रूस का अपना-अपना प्रभाव स्थापित करने के प्रति संघर्षरत होना स्वाभाविक ही था।[1]

शिमोनोस्की की सन्धि का विरोध कर रूस ने चीन का पक्ष लेते हुए चीन को अपने प्रभाव में ले ही लिया। रूस की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं स्पष्ट प्रकट होने लगीं। 1895 ई. में उसने चीन से सन्धि भी कर ली। डेविड एच. जेम्स के शब्दों में, **''उदीयमान सूर्य के देश की जनता के हितों की कीमत पर रूसी भालू तथा चीनी दैत्य एक-दूसरे के साथी हो गये। मंचूली से ब्लादीवोस्टक तक रेलवे लाइन बिछाने की अनुमति प्राप्त कर रूस ने सुदूर पूर्व में अपने प्रसार हेतु अग्रिम कार्यवाही प्रारम्भ कर दी।**[2] पोर्ट आर्थर एवं उसके समीप का प्रदेश रूस ने 25 वर्ष के पट्टे पर प्राप्त कर लिया। इस क्षेत्र की किलेबन्दी इस आशय से प्रारम्भ कर दी गई कि रूसी जंगी जहाज सुरक्षित रह सकें। पोर्ट आर्थर प्रशान्त महासागर में रूस का सबसे बड़ा सैनिक अड्डा बन जाने से रूस की शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। अब रूस मंचूरिया में पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने पर विचार करने लगा। विनाके ने लिखा है, ''रूसी राजनीतिज्ञ तथा वित्त मन्त्री काउण्ट वीटे ने अपने संस्मरण में इस बात को स्वीकार किया है कि **''मंचूरिया की शतरंज पर अनेक रूसी चालों का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक विस्तार था। 1900 ई. के पश्चात् रूस ने प्रत्येक सम्भव रास्ते से मंचूरिया को पेकिंग से अलग करने का प्रयत्न किया।''**[3] अपने इस मंसूबे को पूर्ण करने के लिए रूस ने ऐसा जाल फैंका कि मंचूरिया में रेलवे लाइन बिछाने के लिए जिन दो कम्पनियों एवं धनापूर्ति के लिए जिस बैंक का गठन किया गया उसे अपने नियन्त्रण में ले लिया। रेलवे लाइनों की रक्षार्थ रूसी सेना ने इस प्रदेश पर रहना शुरू कर दिया। बाक्सर विद्रोह का लाभ उठाकर रूस ने बाक्सर विद्रोहियों से रेलवे लाइनों की रक्षा का बहाना बनाकर मंचूरिया में सैन्य बल भेजा और शनैः-शनैः रूसी सैनिक शासन कायम कर लिया। इस प्रकार **रूस ने मंचूरिया को अपने राजनीतिक एवं सैनिक प्रभाव में ले लिया।**

1 "Manchuria was well worth a struggle to gain or retain."
—Vinacke, *A History of the Far-East in Modern Times*, p. 167.

2 "The Russian bear and the Chinese dragon became playmates at the expense of the people of the rising sun. Having gained permission to build a 'Chinese Eastern Railway' from Manchuria to Vladivostok, Russia prepared for the next move."
—David H. James, *The Rise and Fall of the Japanese Empire*, p. 133.

3 "Political expansion was behind the several Russian moves on the Manchurian chess board. After 1900 they tried in every possible way to detach Manchuria from Peking."
—Vinacke, *A History of the Far-East in Modern Times*, p. 168.

रूस की इन गतिविधियों से जापान सशंकित हो गया। जापान अपने देश की बढ़ती जनसंख्या को मंचूरिया में बसाकर इस समस्या का हल करने का इच्छुक था। लियाओतंग पर उसके अधिकार के पीछे भी यह धारणा थी। रूस के कारण उसे लियाओतुंग छोड़ना पड़ा था और अब स्वयं रूस अपना प्रभुत्व मंचूरिया में स्थापित कर रहा था। इस बात को जापान कैसे सहन कर सकता था? **इधर रूस ने 1903 ई. में मास्को और पोर्ट आर्थर के बीच सीधी रेलवे लाइन का निर्माण कर लिया था और पूर्वी एशिया के लिए एक रूसी वायसराय नियुक्त कर दिया। यह मंचूरिया को रूस का एक प्रान्त घोषित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। जापान के लिए यह असहनीय था। अतः युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।**

12 जनवरी, 1904 को जापान के सम्राट ने अन्तिम बार शान्ति का प्रयास किया। रूस के सामने जापान ने शर्तें रखीं कि रूस चीन की प्रादेशिक अखण्डता को स्वीकार करते हुए मंचूरिया में जापान व अन्य देशों के वैध कार्यों में हस्तक्षेप न करे, कोरिया में जापानी हितों पर हस्तक्षेप न करने पर जापान, मंचूरिया को अपने प्रभाव क्षेत्र से बाहर मान लेगा। इन शर्तों का कोई सन्तोषप्रद उत्तर रूस ने नहीं दिया और रूसी सैनिक जमाव पूर्व की ओर बढ़ता गया। अतः बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जापान के विदेशमन्त्री को ही कहना पड़ा, **"जापान के कोरिया में सबसे प्रबल एवं प्रभावी राजनीतिक एवं व्यावसायिक हित एवं स्वार्थ हैं, अपनी सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए वह न तो अपने हितों को छोड़ सकता है और न किसी अन्य शक्ति कों इसमें भागीदार बना सकता है।"**[1]

(स) आंग्ल-जापानी सन्धि 1902—1902-03 से जापान ने जिस प्रकार की शर्तें रूस के सम्मुख रखना प्रारम्भ किया था, वे यामागाता लोबानोफ समझौते एवं निशी रोजेन समझौते की शर्तों से कुछ भिन्न थीं। जापान ने अब उन्मुक्त द्वार नीति के अनुपात एवं चीन की प्रादेशिक अखण्डता की बात को भी कहना प्रारम्भ कर दिया था। यही नहीं, अब उसकी शर्तों में कठोरता का रुख भी आ गया था। इसका सबसे बड़ा कारण रूस द्वारा 1899 ई. में निशी रोज़ेन समझौते का उल्लंघन करते हुए यालू नदी के तट पर लकड़ी चिराई के ठेके को प्राप्त कर चिराई हेतु भेजे गये 20 हजार रूसियों में रूसी सैनिकों के भी होने से इंगलैण्ड का सशंकित होकर 1902 ई. में जापान से सन्धि करना था। **इस सन्धि के अनुसार—**

(अ) इंगलैण्ड एवं जापान दोनों देशों ने कोरिया की प्रादेशिक अखण्डता एवं स्वतन्त्रता कायम रखने का निश्चय किया।

(ब) जापान ने चीन में इंगलैण्ड के हितों को मान्यता प्रदान कर दी।

(स) दोनों देशों में से किसी एक को यदि तीसरे देश के साथ युद्ध करना पड़े तो दूसरा देश तटस्थ रहेगा, किन्तु यदि युद्ध में कोई अन्य देश शत्रु देश को सहायता प्रदान करेगा तो दोनों देश एक-दूसरे की सैनिक सहायता करेंगे।

(द) पांच वर्ष के लिए मान्य इस सन्धि को आपसी सहमति से बढ़ाया जा सकेगा।

इस सन्धि से जापान का मनोबल काफी बढ़ गया था और उसे इंगलैण्ड का समर्थन प्राप्त हो चुका था। विश्व राजनीति को इस सन्धि ने पूर्णतः प्रभावित करके रख दिया। इंगलैण्ड

1 "Japan Possesses paramount political as well as commercial interests and influence in Korea, which, having regard to her own security, she cannot consent to surrender to or shave with any power."

—Asakawa, *Russo-Japanese Conflict*, p. 294.

जो कि सीधे रूस से युद्ध करने की स्थिति में नहीं था, सुदूर पूर्व में रूसी प्रभाव को रोकने के लिए जापान के हाथ मजबूत करने की राजनीति में पूर्णतः सफल हो गया। हेजन ने ठीक ही लिखा है, **"इतिहास में पहली बार एक एशियाई शक्ति ने पूर्णरूप से समान स्तर पर एक यूरोपीय शक्ति से सन्धि की। जापान ने राष्ट्र परिवार में प्रवेश किया तथा उसकी महत्ता का यह उल्लेखनीय प्रमाण था कि ग्रेट ब्रिटेन ने उसकी मैत्री को लाभदायक समझा।"**[1]

इस प्रकार रूस एवं जापान की साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न कोरिया एवं मंचूरिया में अपने-अपने आधिपत्य के प्रश्न ने रूस-जापान युद्ध को जन्म दे दिया, किन्तु इतना तो माना ही जा सकता है कि युद्ध के लिए अधिक उत्तरदायी रूस था, क्योंकि उसी ने जापान एवं रूस के मध्य हुए समझौतों को पहले तोड़ा था। उसकी अति लिप्सा ने इंगलैण्ड को भी अपने पूर्वी साम्राज्य की सुरक्षा के प्रश्न से सशंकित कर दिया था।

युद्ध की घटनाएं
(EVENTS OF RUSSO-JAPANESE WAR)

12 जनवरी, 1904 ई. के जापान द्वारा प्रस्तावित शर्तों को रूस द्वारा यथावत् न मानने पर 10 फरवरी, 1904 ई. को जापान ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध की घोषणा के साथ ही जापान ने कोरिया के राजा से मित्रता स्थापित कर कोरिया प्रायद्वीप पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। 1902 ई. को इंगलैण्ड से सन्धि कर वह इंगलैण्ड से निश्चिन्त था। उधर चीन के प्रति अमेरिका को उन्मुक्त द्वार की नीति की वकालत कर उसने अमेरिका की सहानुभूति अर्जित कर ली थी। **टाइलर डैनेट के शब्दों में, "युद्ध छिड़ते ही अमेरिका ने जर्मनी एवं फ्रांस को सूचित कर दिया कि यदि उन्होंने 1895 ई. की भांति मिलकर जापान के विरुद्ध कोई कार्यवाही की या रूस का साथ दिया तो अमेरिका जापान का समर्थन करेगा।"**[2] चीन ने पहले ही तटस्थता की घोषणा कर दी। अतः युद्ध रूस एवं जापान के मध्य ही हुआ। प्रारम्भ से ही जापान ने हर मुठभेड़ में रूस को परास्त किया। मई 1904 ई. में जापान ने रूस को कोरिया की सीमाओं एवं पोर्ट आर्थर के उत्तरी क्षेत्र में भारी शिकस्त दी। जुलाई में जिन रूसी जहाजी बेड़ों ने व्लाडीवोस्टक एवं पोर्ट आर्थर से बाहर निकलने की कोशिश, की उन्हें जापानी नौ-सेना ने नष्ट कर दिया। सितम्बर में मंचूरिया में आधिपत्य स्थापित कर जनवरी 1905 तक जापान ने पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया। निर्णायक युद्ध मुकदेन में हुआ जो 20 फरवरी से 16 मार्च, 1905 तक जारी रहा। इस युद्ध में रूस ने अपने साहस को छोड़ दिया। इधर जापान ने अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट से 31 मई, 1905 ई. को सन्धि हेतु मध्यस्थता करने की प्रार्थना की। 6 जून, 1905 ई. को रूजवेल्ट ने सन्धि वार्ता से सम्बन्धित पत्र रूस के जार को भेजा जिसे जार ने स्वीकार कर लिया और **5 सितम्बर, 1905 ई. को रूस एवं जापान के मध्य पोर्ट्समाउथ की सन्धि ने युद्ध का अन्त कर दिया।**

1 "For the first time in history, an Asiatic power had entered into an alliance with a European power on the plane of entire equality. Japan had entered the family of nations and it was a remarkable evidence of her importance that hreat Britain saw an advantage in an alliance with her."—Hazen, *A History of Modern Europe.*

2 Tyler Dennett, *Roosevelt and the Russo-Japanese War*, p. 10.

पोर्ट्समाउथ की सन्धि, 1955
(TREATY OF PORTSMOUTH)

इस सन्धि के अनुबन्ध निम्नवत् थे :

(अ) रूस ने कोरिया में जापान के प्रमुख राजनीतिक, आर्थिक एवं सैनिक हितों को मान्यता प्रदान कर दी।

(ब) लियाओतुंग प्रायद्वीप का पट्टा जापान को सौंप दिया गया तथा वहां के रेलवे एवं खानों पर जापान का अधिकार होगा।

(स) रूस ने सखालिन का आधां दक्षिणी भाग जापान को दे दिया।

(द) रूस एवं जापान दोनों सखालीन द्वीप की किलेबन्दी नहीं करेंगे तथा मंचूरिया की रेलवे को सैनिक कार्यों में प्रयोग नहीं करेंगे।

(य) दोनों देश मंचूरिया में अपने-अपने हथियारबन्द रेलवे रक्षकों के रखने का अधिकार तो रखेंगे, परन्तु मंचूरिया को दोनों देश तुरन्त खाली करेंगे।

(र) सखालिन एवं लियाओतुंग प्रायद्वीप के उत्तर एवं पश्चिमी समुद्र में जापान का मछली पकड़ने का अधिकार होगा।

(ल) पट्टे की भूमि को छोड़कर मंचूरिया में चीनी प्रभुत्व का सम्मान दोनों देश करेंगे।

(व) दोनों देशों ने वहाम के द्वार सभी देशों के लिए खोलना स्वीकार कर लिया।

(श) दोनों देश एक-दूसरे के युद्धबन्दियों का हर्जाना देने को तैयार हो गये। इससे जापान को 2 करोड़ डालर का लाभ हुआ।

रूस-जापान युद्ध के परिणाम
(CONSEQUENCES OF RUSSO-JAPANESE WAR)

रूस-जापान युद्ध के परिणामों को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :

(अ) जापान पर प्रभाव—युद्ध की घोषणा जापान ने की थी। अतः रूस-जापान युद्ध जापान के लिए जीवन एवं मरण का प्रश्न था। यदि युद्ध में जापान की पराजय हो जाती तो उसकी समस्त पूर्वकालिक सफलताओं का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। अतः जापान ने अपनी विजय के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया था। अतः जापानी जनता युद्ध में विजय प्राप्ति के पश्चात् होने वाले लाभों के अम्बार के लिए आशान्वित थी, परन्तु पोर्ट्समाउथ की सन्धि जापानी जनता को सन्तुष्ट न कर सकी। सन्धि जापानी जनता की आशा के अनुरूप न तो कोई विशेष क्षतिपूर्ति दे पाई और न ही प्रादेशिक लाभ। अतः जापान में सन्धि के विरोध में भयंकर विद्रोह ही उठा। **रिचार्ड स्टोरी** के शब्दों में, **"सैनिक कानून की घोषणा के बावजूद भी टोकियो में** 150 **पुलिस चौकियों, उच्च अधिकारियों के** 40 **मकानों**, 10 **गिरजाघरों को जला दिया गया तथा** 1,000 **व्यक्तियों को जिनमें अधिकांश पुलिस कर्मचारी थे, मार डाला गया।"** फलस्वरूप युद्ध का संचालन करने वाली **कटसूरा** (Katsura) सरकार का पतन हो गया।

जापानी जनता के इस असन्तोष को देखते हुए भी जापान को प्राप्त होने वाले युद्ध के लाभों की महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता, जापान की सामरिक कुशलता विश्व

प्रसिद्ध हो गई। रॉबर्टसन के शब्दों में, "**एशिया की शक्ति द्वारा यूरोप की शक्ति को प्रथम बार पराजित करने के रूप में रूस-जापान युद्ध स्मरणीय है।**"[1] इस विजय ने जापान को दक्षिणी मंचूरिया में रूस का उत्तराधिकारी बना दिया। उसने कोरिया में रूसी प्रसार को नियन्त्रित कर दिया।[2] यही नहीं चीन में अब वह यूरोपीय राष्ट्रों का प्रतिद्वन्द्वी बन गया और साम्राज्यवाद के मार्ग पर उसके कदम तीव्र हो गए। इस प्रकार सुदूर पूर्व में एक नई शक्ति का उदय हो गया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इस प्रतिष्ठा ने अमेरिका एवं जापान के सम्बन्धों में दरार पैदा कर दी। अमेरिकन व्यापारी सशंकित हो गए कि जापान अब पूर्व में उनकी गतिविधियों को नियन्त्रित कर देगा। **रिचर्ड स्टोरी** ने इस प्रतिष्ठा का सही मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "**जापान की शक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में जो वृद्धि हुई उसकी कल्पना स्वयं जापान ने भी नहीं की थे। महाद्वीपीय प्रसार का उसका स्वप्न जिसे विपक्षीय हस्तक्षेप ने सन् 1895 में धूमिल कर दिया था, अब यथार्थ हो उठा, यूरोपीय शक्तियों ने इस विजय हेतु जापान को बधाइयां दीं, परन्तु जापान के इस शक्ति प्रदर्शन से वे व्याकुल भी हो उठीं। सुदूर पूर्व में शक्ति का सन्तुलन बिगड़ जाने से उनके द्वारा जापानियों की प्रशंसा शनैः-शनैः घृणा में परिवर्तित हो गई।**"

(ब) रूस पर प्रभाव—रूस-जापान युद्ध ने रूस की आन्तरिक राजनीति को झकझोर कर रख दिया। रूस की पराजय ने रूसी जारशाही के विरुद्ध रूस में विद्रोहों को जन्म दे दिया, युद्ध में रूस की पराजय होते देख रूसी जनता ने जार निकोलस के पुतले जलाकर युद्ध बन्द करो के नारों से रूस की गलियों को गुंजा कर रख दिया। '**एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त हो**' के नारे रूस में सर्वत्र सुनाई देने लगे। 1905 की रूसी क्रान्ति, 26 जनवरी का भीषण हत्याकाण्ड, ड्यूमा की स्थापना एवं रूस में वैध राजसत्ता कायम करने के असफल प्रयत्न—रूस-जापान युद्ध की विभीषिका के ही परिणाम थे। एक प्रकार से 1917 ई. की बोल्शेविक क्रान्ति की पृष्ठभूमि इस युद्ध के परिणाम में देखी जा सकती है।

(स) यूरोप की राजनीति पर प्रभाव—रूस-जापान युद्ध ने जापान एवं रूस को ही प्रभावित नहीं किया, अपितु यूरोप की राजनीति में भी उथल-पुथल पैदा कर दी। चीन की लूटखसोट के लिए साम्राज्यवादी देशों ने अमेरिका की **उन्मुक्त द्वार की नीति** (Policy of open door) को अनुमोदित कर दिया। रूस का पूर्वी एशिया की ओर प्रसारवाद रुककर अब निकट-पूर्व अथवा बाल्कान प्रदेशों की ओर फैलना प्रारम्भ हुआ। निकट पूर्व एवं बाल्कान क्षेत्रों में रूसी प्रसारवाद ने जहां 1908 में बोस्निया समस्या को उत्पन्न कर दिया वहीं 1912-13 में बाल्कान युद्धों की भूमि तैयार हो गई। जापान के अद्वितीय शक्ति विस्तार ने यूरोपीय देशों में खलबली उत्पन्न कर दी। अतः यूरोप में गुटबन्दियों को प्रोत्साहन मिला। इंगलैण्ड एवं फ्रांस में 1904 में समझौता हो चुका था। रूस-जापान युद्ध में अमेरिका के रुख के कारण फ्रांस चाहकर भी रूस की सहायता नहीं कर सका था। अब रूस की पराजय के पश्चात् फ्रांस ने रूस को

1 "The Russo-Japanese war of 1905 was memorable in the sense that for the first time a European power was defeated by an Asian power." —*Robertson.*

2 "The Establishment of the Japanese protectorate in Korea was thus complete. Having consolidated her position at Seoul, Japan was prepared to implement in South Manchuria the new position which the Treaty of Portsmouth had given her." —Clyde, *The Far-East*, p. 239.

इंगलैण्ड के निकट लाने का पूर्ण प्रयत्न कर 1907 में त्रिराष्ट्रीय समझौता करने में सफलता प्राप्त कर ली। इस समझौते के विरोध में जर्मनी, आस्ट्रिया एवं इटली का गुट भी तैयार हो गया। इस प्रकार यूरोप दो गुटों में विभक्त हो गया। इंगलैण्ड के एकाकीपन की नीति का अन्त इस युद्ध का महत्वपूर्ण परिणाम था जिसने विश्वयुद्ध के बीज बो दिये।

(द) एशिया पर प्रभाव—रूस-जापान युद्ध के दूरगामी परिणाम साम्राज्यवादी शक्तियों की लिप्सा के शिकार एशिया के राष्ट्रों पर भी देखे जा सकते हैं। एशिया के शोषित राष्ट्रों में नवजागरण की लहर पैदा करने में जापान की विजय एक प्रतीक बन गई। जापान की विजय से आश्चर्यचकित हो चीन उन कारकों का परीक्षण करने लगा, जिनके कारण जापान महाशक्ति के रूप में सामने आया था। **हेजन** के अनुसार, **''एक पूर्वी राज्य जापान की एक महती पाश्चात्य शक्ति चीन पर विजयों ने बहुत-से प्रभावशाली चीनियों को यूरोपीय पद्धतियों और यूरोपीय ज्ञान को अपनाने के लाभों के विषय में आश्वस्त कर दिया, साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि आक्रमणकारियों को बाहर निकालने का एकमात्र उपाय है, उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों से सुसज्जित हो जाना।''** अब जापान के प्रवासी चीनियों ने अगस्त, 1905 ई. में डॉ. सुनयातसेन, के नेतृत्व में **'तुंग मेंग हुई'** नामक संस्था का निर्पाण कर लिया। इस संस्था ने स्पष्ट घोषित किया कि चीन के पराभव का मूल कारण मंचू राजवंश है। अतः माना जा सकता है कि जापान की विजय मंचू राजवंश के उन्मूलन के लिए 1911 ई. की चीनी क्रान्ति की पृष्ठभूमि का पृष्ठाधार बन गई। भारत में इस युद्ध ने राष्ट्रवादियों के हृदय में नवीन चेतना भर दी। सुरेन्द्र बनर्जी के अनुसार **''पूर्व में सूर्य का अरुणोदय हुआ है। जापान ने उगते हुए सूर्य का अभिनन्दन किया है। सूर्य अपने पूर्ण तेज के समय भारत के क्षितिज पर भी आयेगा और भारत को आलोकित करेगा।''**

इस प्रकार माना जा सकता है कि रूस-जापान युद्ध के परिणाम अत्यन्त दूरगामी थे। मैरियट ने इसके प्रभाव का सही मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा है, **''रूस-जापान युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण था और इसके प्रभाव अत्यन्त दूरगामी थे। एशिया में जापान की विजय ने रूस के विस्तार पर प्रतिबन्ध लगा दिया और जापान की स्थिति का महत्व और बढ़ा दिया।'**

रूस की पराजय के कारण
(CAUSES OF THE DEFEAT OF RUSSIA)

रूस-जापान युद्ध के इस परिणाम की आशा सम्पूर्ण विश्व में किसी ने भी नहीं की थी कि जापान जैसा छोटा-सा देश रूस जैसे विशाल देश को पराजित कर देगा, परन्तु जापान ने रूस को परास्त कर सम्पूर्ण विश्व को अचम्भित कर दिया। यदि ऐतिहासिक परीक्षण किया जाय तो युद्ध में जापान की विजय अप्रत्याशित नहीं लगती। **संक्षेप में, युद्ध में रूस की पराजय के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण थे :**

(अ) रूस की लापरवाही—जिस प्रकार जापान ने कोरिया में रूसी विस्तार को रोकने के लिए एक के बाद एक प्रस्ताव रूस के सम्मुख रखे, उससे रूस को यह भान हुआ कि जापान युद्ध का साहस नहीं करेगा और इसी प्रकार प्रस्ताव रखता रहेगा। अतः रूस युद्ध के प्रति निश्चिन्त हो कोरिया एवं मंचूरिया में अपने प्रभुत्व को कायम करने की तिकड़म में लगा रहा और युद्ध की तैयारियां नहीं कीं। इधर जापान ने बारम्बार प्रस्तावों पर रूस के ध्यान न दिये जाने पर युद्ध की पूर्ण तैयारियां करना प्रारम्भ कर दीं। अतः अचानक जापान

द्वारा आक्रमण की घोषणा से स्वयं रूस अचम्भित हो गया था। इसी असावधानी के कारण रूस को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

(ब) नेतृत्व का अभाव—रूस की सेना में नेतृत्व क्षमता का पूर्ण अभाव था। जापानियों में राष्ट्रीयता की भावना भरी थी और उनके लिए युद्ध जीवन और मरण का विषय बन चुका था।

(स) युद्ध स्थल का रूस से दूर होना—रूस-जापान युद्ध मंचूरिया में लड़ा गया था। यह स्थान रूस से अधिक दूर था और जापान के निकट था। अतः रूसी जापानियों के अनुपात में शीघ्र एवं समय पर युद्ध स्थल तक नहीं पहुंच पाये।

(द) रूस का आर्थिक संकट—युद्ध के मध्य में ही रूस को भयंकर संकट से गुजरना पड़ा। आर्थिक स्थिति की भयंकरता के कारण रूसी जनता ने युद्ध बन्द करने की मांग करना प्रारम्भ कर दिया था। रूस में आन्तरिक विद्रोह होने लगे। अतः शोचनीय आर्थिक स्थिति के कारण रूस का युद्ध जारी रखना असम्भव था।

(य) युद्ध के प्रति यूरोपीय शक्तियों का रुख—युद्ध की घोषणा करने से पूर्व 1902 ई. में जापान ने इंग्लैण्ड से समझौता कर उसकी तटस्थता का आश्वासन तो पा ही लिया था तथा साथ ही युद्ध में किसी अन्य देश द्वारा शत्रु पक्ष की सहायता करने पर इंगलैण्ड की सहायता का आश्वासन भी ले लिया था। अमेरिका की उन्मुक्त द्वार नीति की वकालत से उसकी सहानुभूति प्राप्त कर ली। अतः अमेरिका ने युद्ध घोषित होते ही स्पष्ट घोषित कर दिया कि यदि 1895 की तरह फ्रांस व जर्मनी ने रूस का पक्ष लेते हुए जापान के प्रति कोई कार्यवाही की तो अमेरिका जापान का समर्थन करेगा। इस घोषणा ने फ्रांस व जर्मनी को बांधकर रख दिया। वे चाहकर भी रूस की सहायता नहीं कर सके।

इस प्रकार माना जा सकता है कि रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय का मूल कारण रूसी लापरवाही से उत्पन्न सैन्य व्यवस्था की अव्यवस्थित स्थिति थी, जिसे रूस के आर्थिक संकट एवं युद्ध के प्रति यूरोपीय शक्तियों के रुख ने अवश्यम्भावी बना दिया।

प्रश्न

1. 1904-05 ई. के रूस-जापान युद्ध के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
2. रूस-जापान युद्ध के महत्व को इंगित कीजिए।
3. रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय के कारणों पर प्रकाश डालिए।

29

1905 ई. की रूसी क्रान्ति

[RUSSIAN REVOLUTION OF 1905 A. D.]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1871 ई. के पेरिस कम्यून के पश्चात् से पश्चिमी यूरोप में कोई शक्तिशाली जनव्यापी क्रान्तिकारी विस्फोट नहीं हुए थे, किन्तु रूस में इसके विपर्रीत मजदूरों और कृषकों का जनव्यापी आन्दोलन प्रत्येकं दशक के साथ निरन्तर और अधिक तीव्रता के साथ बढ़ता ही जा रहा था। वस्तुत: इसका मूल कारण यह था कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी रूस की राजनीतिक स्थिति प्राचीन सिद्धान्तों एवं रूढ़िवादिता से ग्रस्त थी। यूरोप में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होने वाले परिवर्तनों से रूस बिल्कुल दूर ही रहा था। इतना सब कुछ होते हुए भी अलेक्जेण्डर प्रथम के शासन काल में जो सुधार कार्यक्रम रूस में प्रारम्भ किया गया, उसे उसके उत्तराधिकारियों ने निरंकुशतावादी नीतियों के माध्यम से लगभग समाप्त ही कर दिया। **अतः रूस में एक लम्बे इतिहास के अन्दर धधकते हुए ज्वालमुखी का एकाएक विस्फोट** 1905 **की रूसी क्रान्ति के रूप में हुआ।**

1905 ई. की रूसी क्रान्ति के कारण
(CAUSES OF THE RUSSIAN REVOLUTION OF 1905)

1905 ई. की रूसी क्रान्ति के कारणों को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :

(1) **रूस की सामाजिक स्थिति**—रूस की सामाजिक स्थिति 1905 ई. की रूसी क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थी। इस समय रूस जो कि यूरोप के विशाल देशों में जाना ज़ाता था, विभिन्न जातियों का निवास स्थल था। **रूस के विशाल साम्राज्य में रूसी, पोल, फिन, आर्मीनियन आदि विभिन्न जातियां निवास करती थीं।** ये विभिन्न जातियां कैथालिक, प्रोटेस्टेण्ट एवं यहूदी धर्म की अनुयायी थीं। इसके विपरीत रूस की अधिकांश जनता यूनानी आर्थोडक्स चर्च की अनुयायी थी। रूस का **राजधर्म यूनानी आर्थोडक्स धर्म था।** अत: रूसी राजधर्म के अनुयायियों को जो सुविधाएं प्राप्त थीं उससे अन्य धर्मों के अनुयायी वंचित थे। उन पर राज्य की ओर से अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। **केटलबी** के अनुसार, **''किन्तु अन्य सभी जाति व धर्म के अनुयायियों के अनुपात में यहूदी सबसे अधिक कष्ट में थे।''**[1] यहूदियों पर तो लगभग 600 प्रतिबन्ध लगे

1 "But of al the races and sects the Jews suffered most."
—C. D. M. Ketelbey, *A History of Modern Times from* 1789. p. 378.

थे। अतः रूसी साम्राज्य में निवास करने वाली विभिन्न जातियों में भयंकर असन्तोष विद्यमान था।

रूसी साम्राज्य में जहां एक ओर विभिन्न जातियों के असन्तोष का ताण्डव नृत्य हो रहा था वहीं दूसरी ओर रूसी समाज भी मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त था जिनमें पर्याप्त विषमता थी। **यह विषमता लगभग उसी प्रकार की प्रतीत होती है जैसे कि 1789 ई. में फ्रांस की राज्य क्रान्ति से पूर्व थी।** रूस का प्रथम वर्ग जिसे अधिकार युक्त वर्ग के रूप में जाना जा सकता है, विशेष अधिकारों से सम्पन्न था। इस दल में राज-परिवार, सामन्त एवं उच्चपदाधिकारी थे। ये करों से मुक्त थे तथा राज्य के उच्च पद इन्हें प्राप्त थे। इनके पास अपार धन था और ये वैभवशाली जीवन व्यतीत करते थे। **द्वितीय वर्ग जिसे अधिकार हीन वर्ग के रूप में इंगित किया जा सकता है।** रूस के निर्धन मजदूर, अर्द्धदास एवं कृषक सम्मिलित थे। इस वर्ग को कोई अधिकार नहीं थे। दिन भर कठिन परिश्रम करने के पश्चात् भी इन्हें भरपेट भोजन प्राप्त नहीं हो पाता था। किसानों का जीवन भुखमरी, अकाल एवं दरिद्रता का घर बन चुका था। यह ठीक है कि जार सिकन्दर द्वितीय ने देश में दास प्रथा का अन्त कर दिया था, परन्तु इससे कृषकों के कष्ट कम होने के स्थान पर और अधिक बढ़ गए। दोनों वर्गों की इस विषमता ने पारस्परिक शत्रुता को जन्म दे दिया।

(2) **जार-सम्राटों की निरंकुशतावादी नीति**—रूस में दीर्घकाल से निरंकुश जारशाही का शासन था। रूस के जार स्वेच्छाचारी शासन एवं दैवी-अधिकार के सिद्धान्त के पक्षपाती थे। जार अलेक्जेण्डरं प्रथम ने यद्यपि प्रारम्भ में उदार नीति का पालन किया था, किन्तु बाद में वह पुनः प्रतिक्रियावादी बन गया। अलेक्जेण्डर द्वितीय (1855-81) यद्यपि **मुक्तिदाता** के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, परन्तु जब सुधारों के विरोध में सामन्तों एवं जमींदारों की तीव्र प्रतिक्रिया हुई एवं संवैधानिक शासन की मांग जोर पकड़ने लगी तो अलेक्जेण्डर द्वितीय ने निरंकुश एवं कठोर शासन कायम किया। उसका पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय (1881-94) अत्यधिकजिद्दी एवं संकुचित विचारधारा का व्यक्ति था। उसने सिंहासन पर बैठते ही एक जार, एक चर्च और एक रूस[1] का नारा दिया। उसने स्पष्ट घोषित किया कि, "**ईश्वर की वाणी हमें प्रेरणा देती है कि हम निरंकुश सत्ता की शक्ति एवं सत्यता में विश्वास रखें और उसे जनता के कल्याण के लिए शक्तिशाली बनाएं।**" उसने अपने पिता के हत्यारों का पता लगाकर उन्हें साइबेरिया निर्वासित किया। प्रेस तथा विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। निर्वासित न्यायाधीशों का स्थान सरकारी कर्मचारियों ने ले लिया। स्वशासन संस्थाओं के अधिकारों को सीमित कर दिया गया। सम्पूर्ण रूस फौजी कानून के अन्तर्गत आ गया। रूसीकरण की नीति का अवलम्बन करते हुए उसने सम्पूर्ण देश में धर्म, भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से एकता का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। सम्पूर्ण रूसी जनता को यूनानी चर्च स्वीकार करने की आज्ञा देकर यहूदियों पर अत्याचार किए गए। जर्मन भाषा में शिक्षा बन्द कर दी गई। 1885 से रूसी भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यों में प्रारम्भ हो गया। 1880 ई. से 1900 के मध्य लगभग 15 लाख यहूदी अमरीका जाकर बस गए। दक्षिणी रूस के लगभग सभी प्रोटेस्टेन्टों को निकाल बाहर किया गया। उसकी रूसीकरण की इस नीति ने रूसीकरण के द्वारा सताए गए लोगों को उसका विरोधी बना दिया। केटलबी ने उसके प्रति पनपने वाली विरोधी भावना

1 One Tsar, one Church, one Russia.

का आंकलन करते हुए लिखा है : **"जार अलेक्जेण्डर तृतीय की मृत्यु का शोक किसी भी वर्ग ने नहीं मनाया सिवाय किसानों व नशाविरोधियों के।"**[1]

अलेक्जेण्डर तृतीय का उत्तराधिकारी निकोलस द्वितीय का शासन काल (1894-1917) तो प्रतिक्रियावाद का गढ़ ही था। निकोलस द्वितीय अपनी रानी के प्रभाव में था जो कि स्वयं रास्पुटिन नामक भ्रष्ट साधु के प्रभाव में थी। जार के परामर्शदाता पोब्ये दोनोस्तेफ का कथन था कि, **"प्रजातन्त्र मानव सभ्यता की सर्वाधिक बोझिल और जटिल प्रणाली है तथा प्रेस हमारे काल की सबसे झूठी संस्था है।"** जार निकोलस द्वितीय की निरंकुशता की पराकाष्ठा फिनलैण्ड का रूसीकरण था, किन्तु जब 1904 में रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय ने प्रशासन की भ्रष्टता एवं अयोग्यता को स्पष्ट कर दिया तो जुलाई 1904 में निकोलस द्वितीय के मन्त्री प्लेह्व की हत्या कर दी गई और 1905 ई. में क्रान्ति हो गई।

(3) **भ्रष्ट नौकरशाही**—रूस की क्रान्ति 1905 के लिए रूस की भ्रष्ट, निकम्मी एवं पतित नौकरशाही को भी कम उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। फिशर के शब्दों में, **"सैनिकों एवं राजनयिकों का घेरा जो कि रूसी साम्राज्य के चतुर्दिक था शान्तिवादी नहीं था।"**[2] सरकारी अधिकारी अयोग्य, रिश्वतखोर एवं विलासी थे। वे जार को प्रसन्न रखने एवं उच्च पदों की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बना चुके थे। भ्रष्ट नौकरशाही से रूस की जनता त्रस्त हो चुकी थी।

(4) **यूनानी कैथोलिक चर्च का प्रभाव**—रूस का यूनानी कैथोलिक चर्च राजधर्म घोषित किया जा चुका था। अतः यह चर्च जार की निरंकुशता का पक्षपाती था। राज्याश्रय पाकर यूनानी कैथोलिक चर्च के पादरी निरंकुश हो गए थे। चर्च का बढ़ता प्रभाव जनता के कष्टों का महान् कारण बन गया।

(5) **इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव**—रूस पर इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का व्यापक प्रभाव पड़ा था और वहां पर बड़े-बड़े कल कारखानों एवं परिवहन साधनों का विकास हुआ। कल कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों ने समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होकर अपनी सुविधाओं की प्राप्ति हेतु आवाज उठानी प्रारम्भ कर दी। फलस्वरूप मजदूर संगठनों एवं पूंजीपतियों के पारस्परिक संघर्ष ने तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी।

(6) **राजनीतिक चेतना**—रूस में जारशाही की निरंकुशता एवं रूसीकरण की प्रक्रिया के कारण उत्पन्न असन्तोष से अनेक गैर रूसियों को रूस से अन्य देशों को पलायन करना पड़ा था। रूस में जारशाही के विरोध में असन्तोष था। इधर पाश्चात्य विचारों के कारण रूसियों में चेतना प्रबल होने लगी थी। सुधारवादियों, आतंकवादियों एवं देशभक्त रूसियों ने अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाने प्रारम्भ कर दिए। मुक्ति संघ (1892), संवैधानिक लोकतन्त्र (1892), समाजवादी लोकतन्त्र दल (1894) एवं समाजवादी क्रान्तिकारी दल (1901), नामक संगठनों ने जारशाही की निरंकुशता के खिलाफ जनमानस में चेतना भरने का कार्य किया।

1 'No classes regretted the death of Alexander III in 1894. Save perhaps the peasants and the anti-alcohalic groups of the state in whose behalf alone he adopted sympathetic measures."

—C. D. M. Ketelbey, *A History of Modern Times from* 1789, o. 378.

2 "The circle of Soldiers and diplomatists who stood round the Russian Throne were not pacifists."

—Fisher, *A History of Europe*, Vol II., p. 1210.

(7) **रूस-जापान युद्ध 1904 में रूस की पराजय**—जारशाही की निरंकुशता के खिलाफ व्यापक असन्तोष को रूस-जापान युद्ध 1904 में रूस की पराजय ने और अधिक भड़का दिया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रूस की इस पराजय ने जनता को भड़का कर रख दिया। रूसी जनता के सामने अब जारशाही में व्याप्त भ्रष्ट शासन प्रणाली स्पष्ट मुखरित हो गई थी। अतः जारशाही की निरंकुशता का अन्त करने के लिए रूस की जनता तत्पर हो गई।

क्रान्ति की घटनाएं
(EVENTS OF THE REVOLUTION)

रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय का समाचार रूसी जनता के लिए असह्य हो उठा। जार की निरंकुशता के प्रति असन्तोष का लावा अब फट गया। सम्पूर्ण रूस में युद्ध का अन्त, जारशाही का अन्त एवं क्रान्ति का जयघोष गूंजने लगा। **हड़तालों, आन्दोलनों एवं सभाओं की बाढ़ आ गई।**[1]

जार निकोलस द्वितीय ने दूफोफस नामक सैनिक अधिकारी को कठोरतापूर्वक दमन करने का आदेश दिया। इधर 22 जनवरी, 1905 ई. को सेण्ट पीटर्सबर्ग में एक घटना घटित हो गई जिसे **खूनी रविवार** (Bloody Sunday) के नाम से जाना जाता है। उग्रवादी दल के नेता पादरी गेपन (Gapon) सेण्ट पीटर्सबर्ग की सड़कों पर मजदूरों का जुलूस निकालते हुए शान्तिपूर्वक अपनी मांगें जार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए राजमहल की ओर बढ़ गया। सैनिक अधिकारियों ने इसे राजमहल में हमला करने का प्रयत्न समझते हुए निहत्थे मजदूरों पर गोलियां चली दीं। हजारों मजदूर काल-कवलित हो गए तथा अनेक घायल हो गए। खूनी रविवार के नाम से दुर्घटना का समाचार मिलते ही रूस में सर्वत्र विद्रोह का लावा उमड़ पड़ा। अब जनसाधारण स्पष्ट रूप से समझ गया कि जार उनका **'पिता'** नहीं अपितु **'घोर-शत्रु'** है, मई माह में **'इवानोवो-वोज्नेसेंस्क'** के हड़ताली कपड़ा मजदूरों ने अपनी हड़ताल के नेतृत्व हेतु एक विशेष परिषद् का चयन किया। **ये ही मजदूर प्रतिनिधियों की वे सर्वप्रथम सोवियतें थीं, जिन्हें आगे चलकर रूस में क्रान्तिकारी सत्ता के लिए निकाय बन जाना था।**[2] जून माह में युद्धपोत पोत्योम्किन के जहाजियों ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह ने स्पष्ट कर दिया कि अब जारशाही समर्थन हेतु स्वयं अपनी सेना पर भी निर्भर नहीं कर सकती थी। मास्को के प्रेस मजदूरों की हड़ताल ने तो एक नया मोड़ ही दे दिया। अक्टूबर 1905 ई. में देशव्यापी हड़ताल हो गई। इसमें **बीस लाख** औद्योगिक एवं रेल मजदूरों ने भाग लिया। रूस के भीतरी एवं जातीय प्रदेशों में भी काम-काज ठप्प पड़ गया। निम्न श्रेणी, नौकरी पेशा, अध्यापक एवं छात्रों का पूर्ण सहयोग विद्रोहियों को मिलता देख जारशाही संकट में आ गई। जार ने 17 अक्टूबर, 1905 को एक घोषणा पत्र प्रकाशित करवाया। इसमें कहा गया कि, **'जारशाही जनता को प्रजातन्त्रात्मक स्वतन्त्रताएं प्रदान करने तथा विधायी संस्था—राज्य 'ड्यूमा' के आह्वान का वचन देती है।'**[3]

1 "There was rising one of the periodic flood tides of Russian emotionalism."
—Ketelbey, *A History of Modern Times from 1789*, p. 379.

2 सम्पादक—प्रो. अ. ज. मानफ्रेद—**संक्षिप्त विश्व का इतिहास**, पहला भाग, पृ. 618, 'प्रगति प्रकाशन मास्को'।

3 **पूर्वोक्त**, पृ. 619।

लेनिन और वोल्शेविकों ने जारशाही की चालाकी का पर्दाफाश करते हुए सशस्त्र विद्रोह हेतु आह्वान किया। दिसम्बर 1905 में मास्को के मजदूरों द्वारा संगठित सशस्त्र विद्रोह कर दिया। जारशाही ने विद्रोह को कुचल दिया और मार्च-अप्रैल 1906 ई. में ड्यूमा के गठन हेतु निर्वाचन हुए। **प्रथम ड्यूमा दो माह से अधिक कार्य न कर सकी।** 15 मार्च, 1907 ई. को दूसरी ड्यूमा के गठन हेतु निर्वाचन हुए, किन्तु जार निकोलस द्वितीय जो कि जनता के प्रतिनिधियों को ड्यूमा में नहीं रखना चाहता था। ड्यूमा के अधिकांश सदस्यों को जेल में डाल दिया। 16 जून, 1907 ई. को दूसरी ड्यूमा भी भंग हो गई। 14 नवम्बर, 1907 ई. को तृतीय ड्यूमा का गठन हुआ जिस पर जारशाही का पूर्ण नियन्त्रण था। शनैः-शनैः ड्यूमा के निर्वाचन द्वारा गठन की प्रक्रिया समाप्त हो गई और जार का निरंकुश शासन पुनः अस्तित्व में आ गया। इस प्रकार 1905 ई. में जार की निरंकुशता के विरोध में आरम्भ हुई रूसी क्रान्ति असफल हो गई।

1905 ई. की रूसी क्रान्ति की असफलता के कारण
(CAUSES OF THE FAILURE OF THE RUSSIAN REVOLUTION 1905)

1905 ई. की रूसी क्रान्ति की असफलता के कारणों का इस प्रकार से वर्णन किया जा सकता है :

(1) **क्रान्ति का नेतृत्व संगठित न होना**—रूसी क्रान्ति 1905 ई. की विफलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण क्रान्ति के नेतृत्व का संगठित न होना था। रूस के राजनीतिक दल समुदायों के रूप में थे। वे क्रान्ति के समय तक राजनीतिक विचारों के आधार पर संगठित नहीं थे। **एक दल मध्यमार्गी उदारवादियों का था** (आकटोबेरिस्ट) जो कि जार की अक्टूबर के घोषणा-पत्र का समर्थन कर रहा था। **दूसरी ओर सोशल डेमोक्रेटिक दल ड्यूमा का अधिवेशन बुलाने का पक्षपाती था।** मेन्शेविकों की समझौतावादी नीति ने मजदूरों के मनोबल पर बुरा असर डाला। इसके अतिरिक्त विद्रोहों के अलग-अलग समय पर अलग-अलग स्थान पर फूटने तथा एक नेतृत्वकारी केन्द्र के अभाव के कारण ये विद्रोह देशव्यापी क्रान्ति के रूप में सामने न आ सके। अतः जारशाही के लिए क्रान्ति के केन्द्रों को अलगाव में डालने एवं उसे कुचलने में सफलता मिल गई।

(2) **सर्वहारा एवं कृषक वर्ग में दृढ़ सहबन्ध का अभाव**—सर्वहारा वर्ग एवं कृषक वर्ग में दृढ़ सहबन्ध का अभाव था जो कि 1906-1907 में स्पष्ट रूप से सामने आया और क्रान्ति की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। कृषक वर्ग अब भी यह आशा रखता था कि जार की कृपा एवं ड्यूमा के निर्णय से उनकी हालत ठीक हो सकती है और उन्हें अधिक जमीन मिल सकती है, अतः कृषकों ने ढुलमुल नीति का पालन किया।

(3) **सैनिकों में ढुलमुलपन**—जिस प्रकार का ढुलमुलपन कृषक वर्ग में था उसी प्रकार का ढुलमुलपन सैनिकों में भी था। यह ठीक है कि कुछ रेजीमेण्टों ने विद्रोहियों का साथ दिया, किन्तु सेना एवं नौसेना पूर्णतः क्रान्ति के पक्ष में नहीं थी। सैनिकों का भरपूर प्रयोग क्रान्ति के दमन हेतु किया गया।

(4) **पश्चिमी पूंजीवादी देशों द्वारा जार की सहायता**—1905 की रूसी क्रान्ति के देखकर लगभग सभी पूंजीवादी देशों के कान खड़े हो गए। रूसी क्रान्ति जिस प्रकार समाजवादी क्रान्ति के स्वरूप में चिह्नित हो रही थी उससे पश्चिमी पूंजीवादी देशों ने अपने हित में खतरा

महसूस किया। जर्मन सम्राट-कैसर विलियम द्वितीय नें क्रान्ति के दमन हेतु जार की पूर्ण सहायता की। आस्ट्रिया यहां तक कि गणतन्त्रवादी फ्रांस भी इस दृष्टि से पीछे नहीं रहा। पश्चिमी पूंजीवादी देशों से हर सम्भव सहायता प्राप्त कर जार के लिए क्रान्ति को कुचलना आसान हो गया।

(5) **नौकरशाही का जार को समर्थन**—जारशाही को बुर्जुआ वर्ग का भरपूर समर्थन प्राप्त था। नौकरशाही भी इस जन क्रान्ति की भीषणता से घबरा गई और उसने जार की हर सम्भव सहायता की।

इस प्रकार स्पष्ट है कि क्रान्तिकारियों में केन्द्रीकृत नेतृत्व, पारस्परिक एकता का अभाव जहां क्रान्ति के पतन का मूल कारण बना, वहीं सैनिकों का ढुलमुलपन, पश्चिमी पूंजीवादी देशों द्वारा जार की सहायता एवं जार को नौकरशाही का समर्थन भी क्रान्ति की विफलता में कम उत्तरदायी नहीं रहा।

1905 ई. की रूसी क्रान्ति का महत्व/परिणाम
(IMPORTANCE/RESULTS OF THE RUSSIAN REVOLUTION 1905)

यह ठीक है कि 1905 ई. की रूसी क्रान्ति असफल हो गई थी, किन्तु इसके महत्व/दूरगामी परिणामों ने रूस को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। **संक्षेप में इसके महत्व/परिणामों को इस प्रकार से इंगित किया जा सकता है :**

(1) **मजदूर वर्ग के राजनीतिक शिक्षण में वृद्धि**—रूसी क्रान्ति 1905 ने मजदूर वर्ग के राजनीतिक शिक्षण में वृद्धि की। उनका जार की श्रेष्ठता एवं पूजनीयता सम्बन्धी भ्रम टूट गया। अब यह स्पष्ट हो गया कि सफलता प्राप्त करने के लिए किसी भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में अगुआ या अहम् भूमिका सर्वहारावर्ग को ही निभानी है।

(2) **सेना एवं कृषक वर्ग का महत्व स्पष्ट होना**—सेना एवं कृषक वर्ग की अस्पष्ट मानसिक स्थिति के कारण 1905 की क्रान्ति असफल हो गई थी। अब यह स्पष्ट हो गया कि सफलता के लिए सर्वहारा एवं कृषक वर्ग में दृढ़ सहबन्ध और सेना को क्रान्ति के पक्ष में लाने की नितान्त आवश्यकता है।

(3) **सोवियत निकायों का महत्व स्पष्ट होना**—1905 ई. की क्रान्ति के दौरान सोवियत निकायों ने जिस प्रकार लड़ाई लड़ी थी उससे उसका महत्व स्पष्ट हो गया। अब यह स्पष्ट हो गया कि **मार्क्स एवं लेनिन के अनुगामियों की पार्टी (बोल्शेविकों की पार्टी) ही अविचल है और इसी पार्टी को केन्द्र मानकर अन्य निकायों को इसके झण्डे के नीचे सफलता के लिए लाया जा सकता है।**

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन पर प्रभाव**—रूसी क्रान्ति 1905 ई. ने अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन पर गहरा प्रभाव डाला। यह क्रान्ति पश्चिमी यूरोप के विभिन्न देशों में श्रमिक आन्दोलन के लिए उद्दीपक बन गई। खूनी रविवार की घटना ने सम्पूर्ण यूरोप के मजदूरों के कान खड़े कर दिए। फ्रांसीसी ट्रेड यूनियन के नेताओं ने रूसी मजदूरों के नाम एक सन्देश में लिखा, "**हम पर भरोसा कीजिए। आप हमारी सहायता के विषय में निश्चिन्त हो सकते हैं। जार मुर्दाबाद। सामाजिक क्रान्ति जिन्दाबाद।**"[1] सितम्बर में बुडापेस्ट में, अक्टूबर-नवम्बर में विएना, प्राग एवं क्रकाउ में मजदूरों ने हड़ताल की। आस्ट्रियाई एवं चैक मजदूरों की

1. पूर्वोक्त, पृ. 621।

पुलिस एवं सेना के साथ भयंकर मुठभेड़ें हुईं। 'जो रूस में हुआ है,वह हमारे यहां भी होगा' का नारा विदेशी मजदूर संगठनों का प्रमुख नारा बन गया। रूस की क्रान्ति के अनुभव ने सारी क्रान्तिकारी शक्तियों की एकता की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया। फलस्वरूप फ्रांसीसी समाजवादियों ने **'एकीकृत पार्टी'** का गठन किया। फ्रांसीसी लेखक अनातेल ने क्रान्ति के समय ठीक ही लिखा था, **'रूसी क्रान्ति एक विश्वव्यापी क्रान्ति है। उसने विश्व सर्वहारावर्ग के समक्ष अपने संघर्ष के तरीकों और अपने लक्ष्यों का अपनी शक्ति और अपनी नियति का प्रदर्शन कर दिया है.......नए यूरोप के भाग्य और मानव जाति के भविष्य का इस समय नेवा, विश्चुला और वोल्गा के तटों पर निर्धारण किया जा रहा है।''**[1] नि:सन्देह 1905 ई. की रूसी क्रान्ति ने यह स्पष्ट कर दिया था कि रूस विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के केन्द्र के रूप में परिणत हो गया था।

(5) 1917 **ई. की रूसी क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करना**—लेनिन के ये शब्द कि "1905 **के 'सवेश पूर्वाभ्यास' के बिना 1917 में अक्टूबर क्रान्ति का विजय असम्भव होती।''**[2] नि:सन्देह तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। वास्तव में 1905 की क्रान्ति की असफलता के कारणों ने क्रान्तिकारियों को उनकी कमजोरियों से अवगत करा दिया था। यदि 1905 ई. की क्रान्ति सफल हो जाती तो 1917 की क्रान्ति न होती और जार की तानाशाही आगे न बढ़ती, किन्तु जैसा कि लिप्सन महोदय ने लिखा है, **"जार की अन्धी सरकार ने समय को नहीं पहचाना, उसने अवसर को हाथ से खो दिया। फलतः सुधार आन्दोलन क्रान्तिकारी हो गया तथा आगे चलकर उसने जार के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया। रूसी सामाजिक व्यवस्था को भी उसने एक नई दिशा में परिवर्तित कर दिया।''**[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 1905 की रूसी क्रान्ति यद्यपि असफल हो गई, किन्तु इसने रूस ही नहीं विश्व को भी प्रभावित किया।

प्रश्न

1. रूस की क्रान्ति 1905 ई. के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
2. रूस की क्रान्ति 1905 ई. के कारणों एवं घटनाओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. रूस की क्रान्ति 1905 ई. के असफलता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. '1905 ई. की रूसी क्रान्ति, 1917 की रूसी क्रान्ति का पूर्वाभ्यास थी'—इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. '1905 ई. सवेश पूर्वाभ्यास के बिना 1917 की अक्टूबर की विजय असम्भव होती'—लेनिन के इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

---

1 पूर्वोक्त, पृ. 621-22।

2 पूर्वोक्त, पृ. 620।

3 Lipson, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 340

30

1917 ई. की रूसी क्रान्ति

[RUSSIAN REVOLUTION OF 1917 A. D.]

क्रान्ति का अर्थ
(MEANING OF REVOLUTION)

किसी भी व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन क्रान्ति कहलाता है। किसी भी देश में होने वाली क्रान्ति के बीज उस देश की जनता की स्थिति और मनोदशा में निहित रहते हैं। असन्तोष को जन्म देने वाली भौतिक परिस्थितियां क्रान्ति हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। ऐसी स्थिति में जब सरकार के लिए पुरानी लीक पर चलना कठिन हो जाता है और वह सफल सुधार योजना द्वारा समयानुकूल नया पथ खोजने में असमर्थ हो जाती है तो देश में क्रान्ति का होना स्वाभाविक हो जाता है।

अठारहवीं से बीसवीं सदी तक का यूरोप का इतिहास क्रान्तियों से भरा है। यूरोप के लगभग सभी देश क्रान्ति से अछूते न रहे था। रूस भी इसका अपवाद नहीं रहा। **रूस में 1917 ई. की समाजवादी क्रान्ति हुई जो कि यूरोप के इतिहास की ही नहीं, अपिंतु विश्व-इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी।** इसने रूस को ही नहीं, अपितु संसार के समस्त देशों को प्रभावित किया।

रूसी क्रान्ति के दो चरण
(TWO PHASES OF THE RUSSIAN REVOLUTION)

1917 में रूस की दो क्रान्तियां हुईं। एक **'मार्च की क्रान्ति'** कही जाती है और दूसरी **'नवम्बर की क्रान्ति'**, परन्तु यदि यह कहा जाय कि ये दोनों क्रान्तियां एक ही क्रान्ति के दो दौर या दो अध्याय थे तो अनुचित न होगा। वास्तव में, मार्च की क्रान्ति का स्वरूप राजनीतिक और नवम्बर की क्रान्ति का सामाजिक दौर था।

रूसी क्रान्ति के कारण
(CAUSES OF THE RUSSIAN REVOLUTION)

क्रान्ति एक छोटे-से समय का परिणाम नहीं होती, वरन् इसके पीछे लम्बे समय से चले आ रहे कुछ आधारभूत मौलिक कारण होते हैं। रूस में भी वस्तुतः क्रान्ति के लक्षण 1905 से ही दृष्टिगोचर हो रहे थे, किन्तु जारशाही की निरंकुशता उन्हें दबाने में सफल रही। जहां एक ओर जार निकोलस ने प्रारम्भ में शासन सम्बन्धी सुधारों की घोषणा की और ड्यूमा की स्थापना का वचन देकर स्थिति को काबू में रखा, वहीं बाद में प्रतिक्रियावादी शासन लागू

कर जनता को क्रोधित कर दिया। समय आने पर यह क्रोध 1917 की महान क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ, जिसने रूस ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को अपनी ज्वाला से प्रभावित किया। संक्षेप में **रूसी क्रान्ति के निम्न कारण थे :**

(1) **निरंकुश राजतन्त्र** (Autocratic Monarchy)—रूस के शासक (जार) निरंकुशता के पक्षपाती थे। वे दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। जार एलेक्जेण्डर प्रथम एवं निकोलस प्रथम ने प्रतिक्रियावादी एवं दमनकारी नीतियों का मार्ग अपनाया। जार एलेक्जेण्डर II सुधार योजना का पक्षपाती था, किन्तु उसके द्वारा किये गये न्यायिक एवं स्थानीय शासन सम्बन्धी सुधारों का सामन्तों व जमींदारों ने विरोध किया। दूसरी ओर जनता उसके द्वारा किये गये सुधारों के कारण संवैधानिक सुधारों की आशा करने लगी, किन्तु जनता की आशा पर पानी फिर गया क्योंकि जार पुनः निरंकुश हो चुका था। निहिलिस्ट आन्दोलन का दमन कर दिया। जार निकोलस I की हत्या के बाद एजेक्जेण्डर III और फिर उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र निकोलस II रूढ़िवादिता के कट्टर समर्थक थे। जार निकोलस II के समय हुए रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय से जनता उखड़ चुकी थी और रूस क्रान्ति के दौर पर था। स्थिति पर नियन्त्रण करने के लिए निकोलस ने कुछ सुधार किये, किन्तु बाद में वह पुनः निरंकुश हो गया। **हेजन ने लिखा है "कई मास तक विवाद, प्रकाशन (प्रेस) और भाषण की असाधारण स्वतन्त्रता रही जो बीच-बीच में जब-तब अधिकारियों द्वारा समाप्त कर दी जाती थी, परन्तु वह समाप्ति उसकी केवल पुनः स्थापना के लिए होती थी।**[1]

जारशाही की निरंकुशता इतनी बढ़ गई थी कि 1905 में परिस्थिति को संभालने के लिए जार निकोलस ने ड्यूमा की स्थापना करने की घोषणा यह कहकर की थी कि ड्यूमा के सदस्य जनता द्वारा चुने जायेंगे और उसी की स्वीकृति से कानूनों का निर्माण होगा, विद्रोह के शान्त हो जाने पर ड्यूमा को संसद का प्रथम सदन माना गया। हेजन के अनुसार, **ड्यूमा जो कि विधि निर्मात्री संस्था होनी थी तथा जिसको राज्याधिकारियों की देखभाल का अधिकार प्राप्त होना था, परन्तु इसके अधिवेशन आरम्भ होने के पूर्व ही इसके पर काट दिये गये।"**[2] साम्राज्य परिषद् नामक दूसरे सदन का निर्माण किया गया। प्रथम ड्यूमा को जुलाई 1906 और द्वितीय ड्यूमा को जून 1907 में भंग कर दिया गया। मताधिकार सीमित कर दिया गया। निर्वाचन विधि में परिवर्तन करते हुए लगभग 1,30,000 भूमिपतियों को अधिकांश सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया। **हेजन ने लिखा है,** "अब तक प्रदान की गई सांविधानिक स्वतन्त्रताओं का यह भी गम्भीर अतिक्रमण था, क्योंकि इन स्वतन्त्रताओं में इस बात का वचन दिया गया था कि ड्यूमा की सहमति के बिना निर्वाचन विधि में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।[3] परिणामस्वरूप तृतीय ड्यूमा में प्रतिक्रियावादी बड़े जमींदार चुने गये। अतः ड्यूमा नाममात्र की प्रतिनिधि संस्था रह गई।

(2) **कृषकों की स्थिति** (Condition of Peasants)—औद्योगिक दौड़ में रूस यूरोप के प्रमुख राज्यों की तुलना में काफी पीछे था। रूस अभी तक कृषि-प्रधान देश था, किंतु कृषि-प्रधान देश होते हुए भी किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। दूसरे शब्दों में, किसानों

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 506।
2 **वही,** पृ. 508।
3 **वही,** पृ. 510।

को कृषि-दास की संज्ञा दी गई। उनकी स्थिति अर्द्धदासों की तरह थी। किसानों पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। फलतः 1902 में पोल्टावा और हारकोव के कृषक-विद्रोह हुए। 1905 में किसानों ने अनेक स्थानों पर दंगे भी किये। फलतः 1906 और 1910 में कुछ भूमि सम्बन्धी सुधार हुए, परन्तु ये भूमिहीनों की समस्या को सुलझा न सके। ड्यूमा के कैडट दल का विसम्पत्तिकरण का सुझाव शासन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। लेनिन ने कृषकों को समझाया कि, "**हमें संसदीय गणतन्त्र की आवश्यकता नहीं है। हमें मध्यवर्गीय जनतन्त्र नहीं चाहिए। हमें मजदूरों, कृषकों एवं सैनिकों के द्वारा संगठित सरकार के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की सरकार नहीं चाहिए।**"

(3) **मजदूर वर्ग व पूंजीवाद** (Labours and the Capitalism)—जार एलेक्जैण्डर के समय से रूस में औद्योगीकरण की गति तीव्र हो गई थी। औद्योगिक संस्थानों के मालिक धनाढ्य व्यक्ति थे। इससे पूंजीवाद को प्रोत्साहन मिला। **पूंजीवाद का मुख्य उद्देश्य 'काम अधिक वेतन कम' रहा है।** अतः श्रमिक वर्ग से अधिक से अधिक काम लिया जाता था और कम से कम वेतन दिया जाता था। भूमिहीन किसान रोजगार की खोज में औद्योगिक संस्थानों की ओर मुड़ रहे थे। इससे पूंजीपतियों को पूर्ण मनमानी का अवसर प्राप्त हुआ। श्रमिक गन्दी व तंग गलियों में रहते थे। वे कोई मजदूर संघ नहीं बना सकते थे। शासन हर सम्भव उद्योगपतियों का साथ दे रहा था। परिणामस्वरूप श्रमिकों पर समाजवादी सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। श्रमिकों ने 1905 में तो सैण्ट पीटर्सबर्ग में श्रमिकों की सोवियत तक बना डाली। फिशर के अनुसार, "**इस साम्यवादी प्रचार ने देश के श्रमिकों में जारशाही के प्रति घोर असन्तोष एवं घृणा उत्पन्न कर दी, जिसके कारण लोग जार के शासन का अन्त करने के लिए क्रान्तिकारियों का साथ देने लगे।**"[1]

(4) **अल्पसंख्यकों का विद्रोह** (Revolt of the Minorities)—**रूस में यहूदी, पोल, फिन और अल्पसंख्यक जातियां निवास करती थीं।** ये सभी जातियां रूसी साम्राज्य के अधीन थीं और पराधीनता का अनुभव करती थीं। जार इन जातियों का रूसीकरण करना चाहता था। शिक्षा का माध्यम रूसी भाषा कर दिया गया। उच्च पदों पर रूसी नियुक्त किये गये। रूसी प्रशासन ने अल्पसंख्यक जातियों की राष्ट्रीय भावनाओं का दमन करने का प्रयत्न किया। यहूदियों व आर्मेनियनों पर भीषण अत्याचार किये गये। 1905 में जार्जिया, पोलैण्ड और वाल्टिक प्रान्तों में व्रिदोह हुए। इन्हें जिस तरह कुचला गया, ये सभी निरंकुश शासन के अन्त करने के पक्षपाती हो गये।

(5) **प्रबुद्ध वर्ग का प्रभाव** (Impact of the Intellectuals)—**टालस्टाय, वास्तोविस्की, तुर्गनेव, मैक्जिम गोर्की, मार्क्स और बाकुनिन के विचारों ने रूसी जनता को अत्यधिक प्रभावित किया।** इनके विचारों ने रूसी जनता में बौद्धिक विप्लव पैदा कर दिया और रूसी जनता समाजवादी विचारों से प्रभावित हुई। वह निरंकुशता की समाप्ति चाहने लगी। जार ने साम्यवादी विचारों के देश में आगमनं पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त न हो सकी।

(6) **यूरोपीय लोकतन्त्रों का प्रभाव** (Impact of the Democratic Countries of Europe)—प्रथम विश्व-युद्ध में रूस इंगलैण्ड तथा फ्रांस की ओर से लड़ा। **इंगलैण्ड और फ्रांस**

1 H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1209.

कर जनता को क्रोधित कर दिया। समय आने पर यह क्रोध 1917 की महान क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ, जिसने रूस ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को अपनी ज्वाला से प्रभावित किया। संक्षेप में **रूसी क्रान्ति के निम्न कारण थे :**

(1) **निरंकुश राजतन्त्र** (Autocratic Monarchy)—रूस के शासक (जार) निरंकुशता के पक्षपाती थे। वे दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। जार एलेक्जेण्डर प्रथम एवं निकोलस प्रथम ने प्रतिक्रियावादी एवं दमनकारी नीतियों का मार्ग अपनाया। जार एलेक्जेण्डर II सुधार योजना का पक्षपाती था, किन्तु उसके द्वारा किये गये न्यायिक एवं स्थानीय शासन सम्बन्धी सुधारों का सामन्तों व जमींदारों ने विरोध किया। दूसरी ओर जनता उसके द्वारा किये गये सुधारों के कारण संवैधानिक सुधारों की आशा करने लगी, किन्तु जनता की आशा पर पानी फिर गया क्योंकि जार पुनः निरंकुश हो चुका था। निहिलिस्ट आन्दोलन का दमन कर दिया। जार निकोलस I की हत्या के बाद एजेक्जेण्डर III और फिर उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र निकोलस II रूढ़िवादिता के कट्टर समर्थक थे। जार निकोलस II के समय हुए रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय से जनता उखड़ चुकी थी और रूस क्रान्ति के दौर पर था। स्थिति पर नियन्त्रण करने के लिए निकोलस ने कुछ सुधार किये, किन्तु बाद में वह पुनः निरंकुश हो गया। **हेजन ने लिखा है "कई मास तक विवाद, प्रकाशन (प्रेस) और भाषण की असाधारण स्वतन्त्रता रही जो बीच-बीच में जब-तब अधिकारियों द्वारा समाप्त कर दी जाती थी, परन्तु वह समाप्ति उसकी केवल पुनः स्थापना के लिए होती थी।**[1]

जारशाही की निरंकुशता इतनी बढ़ गई थी कि 1905 में परिस्थिति को संभालने के लिए जार निकोलस ने ड्यूमा की स्थापना करने की घोषणा यह कहकर की थी कि ड्यूमा के सदस्य जनता द्वारा चुने जायेंगे और उसी की स्वीकृति से कानूनों का निर्माण होगा, विद्रोह के शान्त हो जाने पर ड्यूमा को संसद का प्रथम सदन माना गया। हेजन के अनुसार, **ड्यूमा जो कि विधि निर्मात्री संस्था होनी थी तथा जिसको राज्याधिकारियों की देखभाल का अधिकार प्राप्त होना था, परन्तु इसके अधिवेशन आरम्भ होने के पूर्व ही इसके पर काट दिये गये।**"[2] साम्राज्य परिषद् नामक दूसरे सदन का निर्माण किया गया। प्रथम ड्यूमा को जुलाई 1906 और द्वितीय ड्यूमा को जून 1907 में भंग कर दिया गया। मताधिकार सीमित कर दिया गया। निर्वाचन विधि में परिवर्तन करते हुए लगभग 1,30,000 भूमिपतियों को अधिकांश सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया। **हेजन ने लिखा है,** "अब तक प्रदान की गई सांविधानिक स्वतन्त्रताओं का यह भी गम्भीर अतिक्रमण था, क्योंकि इन स्वतन्त्रताओं में इस बात का वचन दिया गया था कि ड्यूमा की सहमति के बिना निर्वाचन विधि में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।[3] परिणामस्वरूप तृतीय ड्यूमा में प्रतिक्रियावादी बड़े जमींदार चुने गये। अतः ड्यूमा नाममात्र की प्रतिनिधि संस्था रह गई।

(2) **कृषकों की स्थिति** (Condition of Peasants)—औद्योगिक दौड़ में रूस यूरोप के प्रमुख राज्यों की तुलना में काफी पीछे था। रूस अभी तक कृषि-प्रधान देश था, किन्तु कृषि-प्रधान देश होते हुए भी किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। दूसरे शब्दों में, किसानों

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 506।
2 **वही**, पृ. 508।
3 **वही**, पृ. 510।

को कृषि-दास की संज्ञा दी गई। उनकी स्थिति अर्द्धदासों की तरह थी। किसानों पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। फलतः 1902 में पोल्टावा और हारकोव के कृषक-विद्रोह हुए। 1905 में किसानों ने अनेक स्थानों पर दंगे भी किये। फलतः 1906 और 1910 में कुछ भूमि सम्बन्धी सुधार हुए, परन्तु ये भूमिहीनों की समस्या को सुलझा न सके। ड्यूमा के कैडट दल का विसम्पत्तिकरण का सुझाव शासन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। लेनिन ने कृषकों को समझाया कि, **"हमें संसदीय गणतन्त्र की आवश्यकता नहीं है। हमें मध्यवर्गीय जनतन्त्र नहीं चाहिए। हमें मजदूरों, कृषकों एवं सैनिकों के द्वारा संगठित सरकार के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की सरकार नहीं चाहिए।"**

(3) **मजदूर वर्ग व पूंजीवाद** (Labours and the Capitalism)—जार एलेक्जैण्डर के समय से रूस में औद्योगीकरण की गति तीव्र हो गई थी। औद्योगिक संस्थानों के मालिक धनाढ्य व्यक्ति थे। इससे पूंजीवाद को प्रोत्साहन मिला। **पूंजीवाद का मुख्य उद्देश्य 'काम अधिक वेतन कम' रहा है।** अतः श्रमिक वर्ग से अधिक से अधिक काम लिया जाता था और कम से कम वेतन दिया जाता था। भूमिहीन किसान रोजगार की खोज में औद्योगिक संस्थानों की ओर मुड़ रहे थे। इससे पूंजीपतियों को पूर्ण मनमानी का अवसर प्राप्त हुआ। श्रमिक गन्दी व तंग गलियों में रहते थे। वे कोई मजदूर संघ नहीं बना सकते थे। शासन हर सम्भव उद्योगपतियों का साथ दे रहा था। परिणामस्वरूप श्रमिकों पर समाजवादी सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। श्रमिकों ने 1905 में तो सैण्ट पीटर्सबर्ग में श्रमिकों की सोवियत तक बना डाली। फिशर के अनुसार, **"इस साम्यवादी प्रचार ने देश के श्रमिकों में जारशाही के प्रति घोर असन्तोष एवं घृणा उत्पन्न कर दी, जिसके कारण लोग जार के शासन का अन्त करने के लिए क्रान्तिकारियों का साथ देने लगे।"**[1]

(4) **अल्पसंख्यकों का विद्रोह** (Revolt of the Minorities)—**रूस में यहूदी, पोल, फिन और अल्पसंख्यक जातियां निवास करती थीं।** ये सभी जातियां रूसी साम्राज्य के अधीन थीं और पराधीनता का अनुभव करती थीं। जार इन जातियों का रूसीकरण करना चाहता था। शिक्षा का माध्यम रूसी भाषा कर दिया गया। उच्च पदों पर रूसी नियुक्त किये गये। रूसी प्रशासन ने अल्पसंख्यक जातियों की राष्ट्रीय भावनाओं का दमन करने का प्रयत्न किया। यहूदियों व आर्मेनियनों पर भीषण अत्याचार किये गये। 1905 में जार्जिया, पोलैण्ड और वाल्टिक प्रान्तों में विद्रोह हुए। इन्हें जिस तरह कुचला गया, ये सभी निरंकुश शासन के अन्त करने के पक्षपाती हो गये।

(5) **प्रबुद्ध वर्ग का प्रभाव** (Impact of the Intellectuals)—**टालस्टाय, वास्तोविस्की, तुर्गनिव, मैक्जिम गोर्की, मार्क्स और बाकुनिन के विचारों ने रूसी जनता को अत्यधिक प्रभावित किया।** इनके विचारों ने रूसी जनता में बौद्धिक विप्लव पैदा कर दिया और रूसी जनता समाजवादी विचारों से प्रभावित हुई। वह निरंकुशता की समाप्ति चाहने लगी। जार ने साम्यवादी विचारों के देश में आगमनं पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त न हो सकी।

(6) **यूरोपीय लोकतन्त्रों का प्रभाव** (Impact of the Democratic Countries of Europe)—प्रथम विश्व-युद्ध में रूस इंगलैण्ड तथा फ्रांस की ओर से लड़ा। **इंगलैण्ड और फ्रांस**

1 H. A. L. Fisher, *A History of Europe*, p. 1209.

का युद्ध का नारा राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र की रक्षा करना था। वे इसी के लिए लड़ रहे थे। उनके इस प्रचार का रूस पर गहरा प्रभाव पड़ा। रूसी जनता ने देखा कि जब रूसी सेना राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के लिए लड़ रही है तो देश में निरंकुशता क्यों है? अतः वह देश में लोकतन्त्र की स्थापना की आकांक्षा करने लगी।

(7) **समाजवाद का विकास एवं बोल्शेविक दल के प्रचार का प्रभाव** (Growth of Socialism)—कृषकों की दयनीय स्थिति ने, सामान्य जनता की अभावग्रस्त परिस्थितियों ने रूस में समाजवादी प्रवृत्ति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समाजवादी विचारों से प्रभावित होकर रूस में आन्दोलन चलाया गया जिसे बासेदनिकी कहा जाता था। आन्दोलनकारियों ने अपना आन्दोलन कृषकों की भूमिहीनता के विरुद्ध किया था। 1903 में समाजवादी लोकतन्त्र—बोल्शेविक और मैन्शेविक दो दलों में विभक्त हो गया। **प्रथम का नेतृत्व लेनिन ने किया।** लेनिन सर्वहारा वर्ग का प्रभुत्व रूस में चाहता था, जबकि दूसरा दल अन्य वर्गों का सहयोग प्राप्त कर जनतन्त्र का पक्षपाती था, परन्तु जारशाही का अन्त इन दोनों का उद्देश्य था। **अतः दोनों ने रूसी जनता को जारों के विरुद्ध शासन सुधारों के लिए प्रेरित किया।**

(8) **जार निकोलस II का व्यक्तित्व एवं भ्रष्ट शासन** (Corrupt Rule of Zar Nicholas II)—फिशर के अनुसार, "रूस का जार निकोलस द्वितीय बड़ा अन्धविश्वासी था और अयोग्य था। वह दुर्बल और हठी स्वभाव का मन्दबुद्धि था, जिसमें घटनाओं के महत्व और व्यक्तियों के चरित्र को समझने की शक्ति नहीं थी।[1] **उस पर महारानी अलैकजैण्ड्रा का विशेष प्रभाव था। वह स्वेच्छाचारी शासन की पक्षपाती थी। जारीना रासपुटिन नामक साधु के हाथ की कठपुतली बनी हुई थी।**"[2] रासपुटिन ने अपने व्यापक प्रभाव का लाभ उठाकर प्रशासन में हस्तक्षेप शुरू कर दिया। उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति रासपुटिन के हाथ में आश्रित हो गई। इससे प्रशासन में बड़ी गड़बड़ी फैल गई। फलतः राजदरबार में रासपुटिन के विरोध में एक दल बन गया, जिसने दिसम्बर, 1916 में रासपुटिन की हत्या कर दी। जार इससे अत्यन्त दुःखी हुआ उसने हत्यारों का पता लगाने के आदेश दिये, जिससे सम्पूर्ण दरबारी भी रुष्ट हो गये और वे भी उसके विरोधी बन गये।

(9) **प्रथम महायुद्ध में रूस का प्रवेश एवं आर्थिक संकट** (First World War and the Economic Crisis)—अगस्त, 1914 में प्रारम्भ हुए प्रथम विश्व-युद्ध में रूस ने मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ना स्वीकार किया। इसी समय संसद के लगभग सभी सदस्यों ने इसे स्वीकार भी किया, परन्तु जार व जारीना की विवेकहीनता, युद्ध कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप एवं कर्तव्यहीनता ने सेना के मनोबल को गिरा दिया। सैनिक युद्ध लड़ने गये, परन्तु उनके पास युद्ध सामग्री का अभाव रहा। युद्ध के प्रारम्भिक दो वर्षों में रूस को घोर पराजय का मुंह देखना पड़ा।

1 "Nicholas was not the man of ride the storm. Like Louis XVI, he not for private rather than for public life." —Fisher, *A History of Europe*, pp. 1209-1210.

2 "In the choice of these blind and desperate expendients he was influenced by his tragic and melancholy wife, whose infltuation for Rasputin." —*op. cit.*, p. 1210.

इधर वाल्टिक सागर एवं काले सागर के बन्द हो जाने से रूस पश्चिमी संसार से बिल्कुल अलग-थलग पड़ गया। फलस्वरूप अनाज का अभाव हो गया। महंगाई बढ़ गई। कीमतें आकाश छूने लगीं और 1917 तक निर्वाह व्यय 1914 की तुलना में लगभग 700 गुना बढ़ गया।[1] **डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है,** "रूस में अनाज, कपड़े और ईंधन के मूल्य इतने अधिक बढ़ गये थे कि निर्धन लोगों के लिए उन्हें खरीद पाना कठिन हो गया। लोग यह समझते थे कि रूस में सब वस्तुएं प्रचुर मात्रा में हैं और पूंजीपतियों ने उन्हें अपने कब्जे में कर लिया है।[2] **इसी प्रकार लिप्सन ने लिखा है,** "क्रान्ति का तात्कालिक कारण खाद्य सामग्री की कमी पर जनता का असन्तोष था। डबलरोटी खरीदने के लिए लोगों की लम्बी कतारें लगने लगीं, जिनके कारण हड़तालें और उपद्रव होने लगे और उन्होंने अचानक ही युद्ध के और राजतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह का रूप धारण कर लिया।[3]

मार्च, 1917 की क्रान्ति
(REVOLUTION OF MARCH, 1917)

मार्च, 1917 में रूस की राजधानी पेट्रोगाड में क्रान्तिं अप्रत्याशित रूप से हो गई। फिशर ने लिखा है, "**क्रान्ति जो बहुत पहले से घुमड़ रही थी, एक उग्र और संगठित विप्लव के रूप में नहीं, अपितु आकस्मिक और पहले से अचिन्तित घटनाओं के रूप में फैली।**"[4] वास्तव में लग तो ऐसा रहा था कि क्रान्ति फूट पड़ेगी, परन्तु एकाएक 7 मार्च को ही इसके फूट पड़ने की कल्पना तक किसी ने न की थी।

7 मार्च को भूख-प्यास से पीड़ित असहाय मजदूरों ने पेट्रोगाड की सड़कों पर जुलूस निकाला। सड़कों के किनारे होटलों पर गरम-गरम डबलरोटियों के अम्बारों को देखकर वे उस पर टूट पड़े। ये रोटी के नारे लगाते हुए सड़कों पर घूमने लगे। जार ने सेना को आदेश दिया कि इन पर गोलियां चलाये, परन्तु सैनिकों ने आज्ञा पालन नहीं किया। 8 मार्च को कारखानों में काम करने वाले मजदूरों ने हड़ताल कर दी। शहर की सड़कों पर "**रोटी दो, युद्ध बन्द करो, अत्याचारी शासन का नाश हो**" जैसे नारे सुनाई देने लगे। 11 मार्च को जार ने ड्यूमा को भंग कर दिया। सैनिक आन्दोलनकारियों से जा मिले। 13 मार्च को राजधानी पर मजदूरों का अधिकार हो गया। 14 **मार्च को ड्यूमा ने रोजियांको के नेतृत्व में कार्यकारिणी सभा की स्थापना की। पेट्रोगाड की सोवियत ने भी एक कार्यकारिणी बनाई।** 14 मार्च के दिन दोनों समितियों को मिलाकर एक कर दिया गया और अस्थायी सरकार बनाई गई। इस अस्थायी सरकार का नेता प्रिन्स ल्वाव (Prince Lvov) था। इसमें एलेक्जैण्डर करेन्स्की (Alexander Keransky), मिल्यूकोव (Milukov) और गुचकोव (Guchkov) को शामिल

1 डॉ. मथुरालाल वर्मा, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 256-b।
2 डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 697।
3 E. Lipson, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 343.
4 "The revolution, which had been long impending, burst out, not, as might have been expeceted, with a violent and organized upheavel, but in a series of apparently causal and undermeditated protests, accumulating in volume and significance until it was clear that the whole country, nobles as well as bourgeois: the soldiers as well as the liberals and socialists, had fallen away from their allegiance to the Tzar."
—Fisher, *A History of Europe*, p. 1241.

किया गया। 15 मार्च, 1917 को जार को विश्वास हो गया कि स्थिति पर काबू नहीं पाया जा सकता। अतः उसने सिंहासन त्याग दिया। "**इस प्रकार रोमानॉफ नामक वंश के अन्तिम शासक जार निकोलस द्वितीय का राज्यकाल समाप्त हुआ, इस वंश ने 300 वर्षों से अधिक तक रूस पर शासन किया।**"[1] लिप्सन ने लिखा है, "जार से शासन सत्ता मजदूरों ने छीनी थी, पर उन्होंने उसे तुरन्त ही मध्यम वर्ग को सौंप दिया।"[2]

अस्थायी सरकार का मन्त्रिमण्डल

जिस अन्तरिम सरकार की स्थापना की गई थी, उसके नेता प्रिन्स ल्वोव ने मन्त्रिमण्डल बनाया जो कि व्यापारियों और उदार भूस्वामियों का प्रतिनिधित्व करता था। गुचकोव युद्ध मन्त्री बना। मिल्यूकोव जो सांविधानिक लोकतन्त्र दल का प्रतिनिधित्व करता था, विदेश मन्त्री बना और करेन्स्की, जो सैनिकों और श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता था, न्याय मन्त्री बना। मित्र राष्ट्रों ने भी इस अन्तरिम सरकार को तुरन्त मान्यता दे दी।

अस्थायी सरकार की घोषणाएं (कार्य)

अस्थायी सरकार क्योंकि उदारवादी सिद्धान्तों में विश्वास करती थी और क्योंकि इसके मन्त्रिमण्डल के प्रमुख नेता विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व करते थे। अतः इसने आश्चर्यजनक परिवर्तन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। **अस्थायी सरकार ने तुरन्त निम्नलिखित घोषणाएं कीं :**

(1) **राजनीतिक घोषणाएं**—जार के शासनकाल में जो राजनीतिक बन्दी बनाये गये थे, उन्हें छोड़ दिया गया। जिन लोगों को देश से निष्कासित किया गया था, उन्हें पुनः रूस आने की अनुमति दी गई। एक अन्य घोषणा के अनुसार, पोलैण्ड को स्वायत्त शासन का प्रण किया गया तथा फिनलैण्ड के वैध अधिकारों को मान्यता दी गई। अस्थायी सरकार ने युद्ध जारी करने की घोषणा भी की। देश में नवीन संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की गई।

(2) **स्वतन्त्रता सम्बन्धी घोषणाएं**—जार के निरंकुश शासन के अन्तर्गत भाषण, प्रेस, लेखन, आदि पर लगे प्रतिबन्धों को अस्थायी सरकार ने रद्द कर दिया। घोषणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को भाषण, लेखन, प्रेस, आदि की स्वतन्त्रता दी गई। मजदूरों को संघ बनाने का अधिकार दिया गया। वयस्क मताधिकार की घोषणा की गई।

(3) **न्यायिक घोषणाएं**—31 मार्च को मृत्युदण्ड जैसे भयंकर दण्ड को समाप्त कर दिया गया। पुलिस के अधिकार सीमित कर दिये गये। अब पुलिस का कोई अधिकारी किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से बन्दी नहीं बना सकता था।

(4) **यहूदियों के प्रति उदार घोषणा**—रूस के जारों ने रूस के रूसीकरण करने के उद्देश्य से यहूदियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये थे। अस्थायी सरकार ने उन सभी कानूनों को रद्द कर दिया जो कि यहूदियों के विरुद्ध थे।

अस्थायी सरकार की कठिनाइयां

अस्थायी सरकार ने यद्यपि राजनैतिक, सामाजिक, न्यायिक, आदि क्षेत्रों में विभिन्न घोषणाएं कीं, जिससे काफी हद तक जारशाही की पुरातन व्यवस्था की जड़ पर करारी चोट

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 563।
2 **F. Lipson**, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, **p. 344.**

पड़ी। रूसी जनता को अनेक सुधार प्रदान दिये गये थे, किन्तु इसके बावजूद भी अस्थायी सरकार को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा था। **उसके सम्मुख आयी प्रमुख कठिनाइयां निम्न थीं :**

(1) **युद्ध सम्बन्धी कठिनाई**—सैनिकों के विचार में क्रान्ति का प्रमुख लक्ष्य युद्ध की समाप्ति था, किन्तु अस्थायी सरकार मित्र राष्ट्रों के सहयोग से युद्ध जारी रखना चाहती थी। वह टर्की, स्टेटस तथा बाल्कान क्षेत्र पर अधिकार की पक्षधर थी। यही कारण था कि उसने अपनी विभिन्न घोषणाओं में युद्ध को जारी रखने का भी ऐलान किया था, परन्तु सैनिक युद्ध से अब ऊब चुके थे। वे युद्ध के भार से छूटना चाहते थे। जनता का कहना था कि युद्ध में रत रहने से रूस का अत्यधिक व्यय युद्ध में होगा। यदि युद्ध न हो तो वह व्यय शासन सुधार में लगाया जाय। जब युद्ध की घोषणा की गई तो विदेश मन्त्री मिल्यूकोव को त्यागपत्र देना पड़ा। गुचकोव ने भी त्यागपत्र दे दिया। करेन्स्की युद्ध मन्त्री बनाया गया।

(2) **सत्ता के दृढ़ीकरण की समस्या**—क्रान्ति में मजदूरों, श्रमिकों, किसानों का महत्वपूर्ण योगदान था, किन्तु शासन सत्ता मध्यमवर्गीय उदारवादी विचारधारा के प्रतिनिधियों के पास चली गई थी। श्रमिक सत्ता अपने हाथ में लेना चाहते थे। अस्थायी सरकार को संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना की आशा थी। उसका विचार था कि लोगों को व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार होना चाहिए, परन्तु श्रमिक वर्ग एवं रूसी सैनिकों की सोवियत का विचार था कि भूमि किसानों को मुआबजे के बिना दे दी जाय तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

(3) **सोवियतों के संगठनों का विस्तृत प्रचार**—श्रमिक, मजदूरों एवं किसानों ने सुदूर गांवों में जा जाकर अस्थायी सरकार के विरोध में प्रचार करना शुरू कर दिया। इनके साथ सैनिक प्रतिनिधि भी शामिल थे। स्थान-स्थान पर सोवियतें (संगठन) बना दिये गये। इन सोवियतों ने सरकार से सम्बन्धित कार्यों को करना शुरू कर दिया जिससे अस्थायी सरकार की स्थिति प्रारम्भ से ही निर्बल रही। ये सोवियतें उसके लिए एक विकट चुनौती बनकर सामने आयीं।

(4) **श्रमिकों द्वारा हड़तालों का आह्वान**—श्रमिकों ने कारखानों में समय-समय पर हड़तालें करना प्रारम्भ कर दिया। श्रमिकों ने आतंकवादी कार्यों को अपनाया जिससे अस्थायी सरकार की स्थिति और भी जटिल हो गई।

परन्तु इन सभी समस्याओं को सुलझाने में अस्थायी सरकार सफल नही हो सकी। लिप्सन ने लिखा है, "**सैनिकों की दृष्टि में रूसी क्रान्ति का उद्देश्य था—युद्ध की समाप्ति; शहरी मजदूरों की दृष्टि में इसका उद्देश्य था—पूंजीवाद का यदि उन्मूलन न भी सही तो नियन्त्रण और किसानों की दृष्टि में इस क्रान्ति का उद्देश्य था—भूमि की प्राप्ति। मध्यमवर्गीय अन्तरिम सरकार इन तीनों आशाओं में से एक भी पूरा न कर सकी।**"[1]

अखिल रूसी कांग्रेस का सम्मेलन
(ALL RUSSIAN CONGRESS OF SOVIETS)

पैट्रोगाड की क्रान्तिकारी सोवियत ने अपना एक आज्ञा-पत्र 15 मार्च, 1917 ई. को प्रसारित किया। इसके अनुसार जल और थल सेना उन्हीं कार्यों को करेगी जिन मामलों में अस्थाई सरकार और सोवियत के विचार आपस में न टकराते हों। अस्थायी सरकार के इस

1 E. Lipson, *Europe in the 19th and 20th Centuries*, p. 344.

आज्ञा-पत्र के विरोध किये जाने पर जून, 1917 में सोवियत पेट्रोगाड ने सोवियतों की अखिल रूसी कांग्रेस (All Russian Congress of Soviets) बुलवाई। इस सम्मेलन में क्रान्तिकारी, समाजवादी, बोल्शेविक तथा मेन्शेविक दलों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। इस कांग्रेस ने घोषित किया, **"केवल राजनैतिक क्रान्ति से काम नहीं चलेगा। सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति भी जरूरी है।"** इसमें अखिल रूसी सोवियत कार्यकारिणी समिति (All Russian Executive Committee of Soviets) एवं एक 20 सदस्यों की प्रेसीडियम (Presidium) बनाई गई। जुलाई, 1917 में सरकार के खिलाफ विद्रोह हो गया। अस्थायी सरकार ने देखा कि विद्रोह को भड़काने में बोल्शेविकों का प्रमुख हाथ है। अतः बोल्शेविक दल का प्रमुख रूस छोड़कर भाग गया।

ल्वोव मन्त्रिमण्डल का पतन : करेन्स्की का मन्त्रिमण्डल

परन्तु जनता का क्रोध बढ़ता ही चला गया। फलतः ल्वोव को त्यागपत्र देना पड़ा। करेन्स्की ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया, परन्तु बोल्शेविक सन्तुष्ट न थे। जर्मन सेनाएं तेजी से रूस की ओर बढ़ रही थीं। रीगा का पतन हो चुका था। मेन्शेविक भी मन्त्रिमण्डल से अलग हो गये।

बोल्शेविक क्रान्ति
(BOLSHEVIK REVOLUTION)

बोल्शेविकों ने प्रावदा (Pravada) नामक समाचार-पत्र के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार एवं प्रसार शुरू कर दिया। सम्पूर्ण रूस में बोल्शेविकों का स्वर गूंज रहा था, **"युद्ध समाप्त हो, किसानों को खेत मिलें तथा गरीबों को रोटी।"**[1] 3 अप्रैल को लेनिन पेट्रोगाड पहुंचा। मई, 1917 को ट्रास्टस्की अमेरिका से पैट्रोगाड पहुंचा। ट्राटस्की ने जो कि एक अन्य दल का नेता था बोल्शेविक दल से सहयोग किया। जुलाई में करेन्स्की सरकार ने बोल्शेविकों को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। लेनिन भागकर फिनलैण्ड चला गया उसने वहीं से बोल्शेविकों को पत्र लिखकर उनका मार्ग दर्शन किया।[2] उसने अपनी नीतियों एवं विचारों से उन्हें गुप्त पत्रों द्वारा अवगत कराया। लेनिन ने 23 अक्टूबर, को सशस्त्र क्रान्ति का दिन चुनने का आदेश दिया। सेना ने युद्ध करने से इंकार कर दिया। मजदूरों ने हड़ताल कर दी। 6 नवम्बर को लाल रक्षकों (Red Gaurds) ने पैट्रोगाड के रेलवे स्टेशनों, टेलीफोन केन्द्रों, सरकारी भवनों में अधिकार कर लिया। ये रेड गार्ड बोल्शेविक दल के स्वयं-सेवक थे। इनकी संख्या 25 हजार थी, परन्तु पैट्रोगाड की सेना का सहयोग प्राप्त होने से इनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गई थी। 7 नवम्बर को करेन्स्की रूस छोड़कर भाग गया। बिना रक्त बहाये रूस की राजधानी पर बोल्शेविक दल का अधिकार हो गया। ट्राटस्की ने सोवियत के पैट्रोगाड को जो अपनी रिपोर्ट भेजी थी उसमें कहा था, **"लोग कहते थे कि जब बलवा होगा तो क्रान्ति रक्त की नदियों से डूब जायेगी, परन्तु हमने एक भी व्यक्ति की मृत्यु की खबर नहीं सुनी। इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं है कि किसी क्रान्ति में इतने लोग सम्मिलित हों और वह रक्तहीन हो।"**[3]

8 नवम्बर, 1917 को नई सरकार ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। इस सरकार का अध्यक्ष लेनिन बना। ट्राटस्की को विदेश मन्त्रालय दिया गया और संविधान सभा के चुनाव

1 डॉ. मथुरालाल वर्मा, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 58-b।
2 **वही**, पृ. 250-b।
3 डॉ. मथुरालाल वर्मा, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 260।

की घोषणा की गई जो कि 15 नवम्बर को हुए, परन्तु बोल्शेविक दल को बहुमत न मिल पाने पर लेनिन ने इस सभा को प्रतिक्रियावादी सभा कहा और इसे भंग कर दिया। इस प्रकार रूस में पूर्णतया सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र स्थापित कर दिया गया। **डेरी और जारमेन** के शब्दों में **"युद्ध ने अवसर दिया और भाग्य ने लेनिन जैसा नेता पैदा किया। इस नेता की आत्मशक्ति और बुद्धि ने अवसर को परख कर परिस्थिति पर विजय पा ली।"**[1]

ब्रेस्ट लिटोवस्क की सन्धि (Treaty of Brest Litovsk)—बोल्शेविक सरकार ने तुरन्त ही रूस के युद्ध से हाथ खींच लिये जाने की घोषणा की। मित्र राष्ट्रों के उस ओर ध्यान न दिये जाने से लेनिन के प्रयत्नों से रूस ने जर्मनी के साथ 3 मार्च, 1918 को ब्रेस्ट लिटोवस्क की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार :

(1) रूस ने एस्टोनिया, लिथोनिया, लिटेविया, फिनलैण्ड, आलैण्ड, पोलैण्ड, लिथुआनिआ, कोरलैण्ड से अपने अधिकार त्याग दिये। उसने यूक्रेन से अपनी सेनाएं हटा लीं। रूस ने जर्मनी को तीन करोड़ पौण्ड युद्ध का हर्जाना देने का वचन लिया।

हालांकि यह सन्धि रूस के लिए अपमानजनक थी, परन्तु वह युद्ध से अलग हो गया और आन्तरिक समस्याओं की ओर अपना ध्यान दे सका। रूस में सरकार के विरोधियों की कमी न थी। रूस में तुरन्त ही गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया, किन्तु लेनिन ने बड़ी कार्यकुशलता से अपने विरोधियों को कुचल दिया और रूस को आर्थिक दृढ़ता प्रदान की।

बोल्शेविक क्रान्ति की सफलता के कारण

बोल्शेविक क्रान्ति की सफलता के निम्नलिखित कारण थे :

(1) **युद्ध का विरोध**—1905 से 1917 तक के समय में जारशाही नीतियों में कोई परिवर्तन न देखकर जनता सशंकित हो गई थी। अब उसका यह विचार बन चुका था कि जारशाही का ही अन्त करके ही रूसी सन्तुलन को ठीक किया जा सकता है। अतः जैसे-जैसे क्रान्तिकारी भावनाएं देश में बढ़ती गईं, जारशाही निरंकुश होती चली गई और अन्ततः रूस में अस्थायी सरकार की स्थापना हुई, किन्तु अस्थायी सरकार ने भी युद्ध जारी रखने की नीति अपनाई। कैटलबी ने लिखा है। **"युद्ध और क्रान्ति दोनों को एक साथ जारी रखने के निष्फल प्रयास के पश्चात करेन्स्की की नरम दल की सरकार नवम्बर, 1917 में लेनिन और ट्राटस्की के नेतृत्व में बोल्शेविकों द्वारा पलट दी गयी। बोल्शेविक पार्टी का यद्यपि अल्पमत था, किन्तु उसकी स्थिति फ्रांस के जैकोबिनों के समान कार्य और निर्णय करने वालों की थी।"**[2]

(2) **यूरोपीय राष्ट्रों का हस्तक्षेप नहीं**—प्रथम विश्व युद्ध जारी होने के कारण यूरोपीय राष्ट्र रूसी क्रान्ति में सशस्त्र हस्तक्षेप न कर सके।

(3) **विरोधियों में फूट**—विरोधियों की दोषपूर्ण नीति एवं फूट का लाभ बोल्शेविकों ने उठाया।

---

1 "The war, then, produced the opportunity. Fate produced the leader in Lenin. His great and intellectual and personal powers enabled him to dominate the situation, he saw the opportunity when others did not." —*Derry and Jarman.*

2 "After a vain attempt to conduct a war and a revolution at the same time Kerensky's moderates were overthrown in Nov. 1917, by the Bolshevik's party under Lenin and Trotsky a party which, though in minority, was like the Jacobins of France, one of action and decision." —*Ketelbey*

(4) **समय की अनुकूलता**—कठिन समय में भी बोल्शेविक गुपचुप अपना प्रचार अभियान चलाते रहे। वे लेनिन के निर्देशों का पालन करते रहे। बोल्शेविकों ने उचित समय में क्रान्ति करके सत्ता पर अधिकार कर सफलता प्राप्त की।

(5) **जनता का समर्थन**—डेविड थामसन के अनुसार, "लेनिन द्वारा निर्मित बोल्शेविकों का **कार्यक्रम चार-सूत्रीय था** : (1) कृषकों को भूमि, (2) भूखों को भोजन, (3) सोवियतों को शक्ति, (4) जर्मनी के साथ सन्धि।"[1]

इस प्रकार की घोषणाओं से सेना, मजदूर, कृषक, आदि सभी बोल्शेविकों के समर्थक बन गये। लेनिन ने शासन सम्बन्धी सुधार करके रूस को समाजवादी सोवियतों का लोकतान्त्रिक देश बना डाला।

महत्व

फ्रांस की 1789 ई. की राज्य क्रान्ति के समान ही रूस की 1917 की रूसी क्रान्ति ने रूस को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। क्रान्ति का महत्व तब स्वतः और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है जबकि हम देखते हैं कि क्रान्ति के सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए रूस आज संसार की प्रमुख महाशक्ति है। **रूस की 1917 की क्रान्ति के निम्न महत्वपूर्ण परिणाम निकले :**

(1) रूस की 1917 की क्रान्ति ने 300 वर्षों से चले आ रहे **निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी जार शासन की समाप्ति कर दी।**

(2) रूस में **सर्वहारा वर्ग की सरकार की स्थापना हुई।** इसने रूस में एक नये प्रकार का समाजवादी ढांचा तैयार किया।

(3) रूस में स्थापित हुई साम्यवादी सरकार ने पूंजीवाद का घोर विरोध किया। फलतः **रूस में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।** जमींदारों व पूंजीपतियों को समाप्त कर दिया गया। कृषक वर्ग को उनकी जरूरत के अनुसार भूमि प्रदान की गई। इस प्रकार रूस ने जिस नई आर्थिक नीति का आह्वान किया, उसके सम्बन्ध में बेन्स के शब्दों में कहा जा सकता है, "**रूस का वह आर्थिक जीवन एक राज्य समानता, सरकारी पूंजीवाद का एक विलक्षण चित्र था।**"[2]

(4) रूस की क्रान्ति ने रूस में ही प्रभाव नहीं डाला, अपितु **विश्व को भी प्रभावित किया।** रूसी क्रान्ति का सबसे प्रथम परिणाम विश्वयुद्ध से रूस का हाथ खींच लेना था, जिसका सीधा सम्बन्ध 3 मार्च, 1918 की ब्रेस्ट विलोवेस्ट की सन्धि के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि इस सन्धि से रूस को अत्यधिक अपमान सहन करना पड़ा, किन्तु युद्ध से अलग होकर वह देश की आर्थिक व्यवस्था एवं पुनर्निर्माण की ओर ध्यान दे सका। रूस ने जिस नवीन पद्धति से कार्य किया, जिसे हम आज '**समाजवादी सोवियत गणतन्त्र संघ**' के नाम से भी जानते हैं जो कि क्रान्ति की देन है, रूस को आज संसार की महाशक्ति के रूप में स्थान दिया है। रूस का विचार था कि यूरोप में सर्वहारा वर्ग की सरकार स्थापित की जायेंगी। अतः 1919 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल स्थापित किया गया। इसी कारण विश्व दो गुटों में बंट गया। एक गुट में पूंजीवादी देश आ गये और दूसरे में साम्यवादी। दूसरे शब्दों में, विश्व पुनः दो गुटों में विभाजित हो गया।

1 "Its Programme, formulated by Lenin, was fourfold, land to the peasants, food to the starving, power to the Soviets and peace with Germany." —*David Thomson.*

2 "Russia's economic life came to present a strange picture of intermingled state socialism, state capitalism and private capitalism." —*Benns*

(5) **रूसी क्रान्ति की महत्वपूर्ण उपलब्धि लेनिन का उदय भी** कहा जा सकता है जिसने रूस की भावी नीति को पूर्णतया एक नई दिशा दें दी। आज भी रूस में लेनिन का बड़े आदर के साथ नाम लिया जाता है। अतः क्रान्ति के इसी क्रम में लेनिन की भूमिका का विवेचन करना अप्रासंगिक न होगा।

लेनिन और स्टालिन के अधीन रूस
(RUSSIA UNDER LENIN AND STALIN)

बीसवीं शताब्दी की प्रमुख घटनाओं में रूस की 1917 ई. की क्रान्ति भी थी, जिसने निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति पर कुठाराघात किया था। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप रूस **में बोल्शेविक सरकार** (Bolshevik Government) की स्थापना हुई जिसने 7 नवम्बर, 1917 को कार्य-भार संभाला। बोल्शेविक दल का अध्यक्ष लेनिन (Lenin) था, जिसने रूस में 1917 ई. से 1924 ई. तक शासन किया। 1924 ई. में लेनिन की मृत्यु हो गई।

लेनिन का युग (1917 ई. -1924 ई.)
(THE AGE OF LENIN)

1917 ई. की रूसी क्रान्ति तथा बोल्शेविकों द्वारा सत्ता प्राप्त करने में जिस व्यक्ति का सर्वाधिक योगदान रहा था, उसका नाम **ब्लाडीमिर इलियच यूलियानोव** (Vladimar Ilyich Ulyanov) था, जो निकोलाई लेनिन के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। लेनिन का जन्म 1870 ई. में सिमविर्स्क में हुआ था। सिमविर्स्क का नाम अब लेनिन के नाम पर लैनिनिस्क रख दिया गया है। 17 वर्ष की आयु में लेनिन ने काजान विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया, किन्तु उग्रवादी गतिविधियों के कारण उसे विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया, तब उसने सेण्ट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया तथा 1891 ई. में विधि की उपाधि प्राप्त की, किन्तु उसने अपनी आन्दोलनकारी प्रवृत्ति को न छोड़ा। अतः उसे दण्डस्वरूप 1897 ई. में साइबेरिया भेज दिया गया। साइबेरिया में उसे 1900 ई. तक रहना पड़ा। साइबेरिया में रहना भी लेनिन की विचारधारा को परिवर्तित न कर सका तथा वह पूर्ववत् मजदूरों के उत्थान के लिए कार्य करता रहा। अपने विचारों को रूस में कार्यान्वित न होता देखकर लेनिन स्विटजरलैण्ड चला गया व वहां रहकर क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करता रहा। 1917 ई. में वह रूस आ गया व क्रान्ति का नेतृत्व कर पुरातन व्यवस्था व अत्याचारी शासन का अन्त करने में सफल हुआ।

लेनिन के कार्य (Works of Lenin)

बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात् लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार के समक्ष अनेक समस्याएं थीं जिनका समाधान करना आवश्यक था। इन समस्याओं में प्रमुख रूस में शान्ति की स्थापना करना, साम्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर रूस की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में परिवर्तन करना तथा रूस में बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप को रोकना था। तत्कालीन सरकार के समक्ष विद्यमान समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए स्वयं लेनिन ने कहा था, "**हमारा उद्देश्य किसानों को भूमि, भूखों को खाना, रूस को शक्ति एवं जर्मनी में शान्ति स्थापित करना है।**"[1] अतः उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए लेनिन अग्रलिखित कार्य किये :

1 **"Land to the peasants, food to the starving, power to Soviets and peace with Germany."**
—*Lenin*

शान्ति की स्थापना (Peace in Russia)—7 नवम्बर, 1917 ई. को यद्यपि बोल्शेविकों ने सत्ता प्राप्त कर ली थी, किन्तु उन्हें आगामी तीन वर्षों तक गणतन्त्र विरोधियों से संघर्ष करना पड़ा। बोल्शेविकों के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी मेन्शेविक थे, जिन्हें बाह्य देशों में सहायता प्राप्त हो रही थी। बोल्शेविकों ने इन शक्तियों का जमकर विरोध किया। अन्ततः 1920 ई. के अन्त तक बोल्शेविक रूस में शान्ति स्थापना करने में सफल हो गये।

नवीन संविधान (New Constitution)—बोल्शेविक सरकार ने एक नवीन संविधान की भी रचना की जिसे 1918 ई. की ग्रीष्मकालीन ऋतु से लागू कर दिया। इस संविधान के द्वारा ही '**रूसी साम्यवादी संघीय सोवियत गणतन्त्र**' की स्थापना हुई। इस संविधान के द्वारा रूस के सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान किया गया। शासन की समस्त सत्ता '**अखिल रूसी कांग्रेस**' में निहित हो गई। कानूनों को पारित करने के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसे '**अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति**' कहा गया। इस समिति के सदस्यों का निर्वाचन 'अखिल रूसी कांग्रेस' द्वारा किया जाता था। इसके अतिरिक्त भी अनेक कांग्रेसें थीं, उदाहरणार्थ—जिला कांग्रेस, काउण्टी कांग्रेस, मण्डलीय कांग्रेस तथा प्रान्तीय कांग्रेस। इन कांग्रेसों में एक 'पीपुल्स कमीसार कांग्रेस' प्रमुख थी व इसके कार्य व अधिकार 'कैबिनेट' (मन्त्रिमण्डल) के समान थे।

लेनिन की नवीन आर्थिक नीति
(NEW ECONOMIC POLICY OF LENIN)

1917 ई. में बोल्शेविक सरकार के गठन के पश्चात लेनिन ने जिस नीति को अपनाया, उसे '**राजकीय पूंजीवाद**' या '**नियन्त्रित पूंजीवाद**' (State Capitalism or Controlled Capitalism) कहा जाता है। यह नीति नवम्बर 1917 ई. से जुलाई 1918 ई. तक चलती रही तथा इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा आर्थिक नियन्त्रण पूंजीपतियों से छीनकर अपने हाथों में ले लिया गया। उत्पादन पर भी इस नीति के अन्तर्गत नियन्त्रण रखा गया। इस व्यवस्था में उद्योगों का आंशिक प्रबन्ध अपने पास रखा था। इसी कारण इस नीति को '**नियन्त्रित पूंजीवाद**' भी कहा गया। रूसी जनता की इच्छा थी कि सरकार को उद्योगों पर पूर्ण नियन्त्रण कर लेना चाहिए, अर्थात् जनता उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थी। अतः रूस में गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसने अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। अतः रूस की सरकार ने नियन्त्रित पूंजीवाद की इस नीति का परित्याग कर '**यौद्धिक साम्यवाद**' (War Communism) को अपनाया। **इस नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख कार्य किए गए :**

(i) नियन्त्रित पूंजीवाद को समाप्त कर दिया गया।

(ii) समाजवादी तथा साम्यवादी कार्यक्रम लागू किए गए।

(iii) कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया गया।

(iv) राजकीय तथा सामूहिक फार्मों (Collective Farms) की स्थापना की गई।

(v) सम्पूर्ण भूमि पर राज्य का अधिकार माना गया।

(vi) खाद्यान्नों के मूल्य निर्धारित किये गये।

(vii) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया।

सरकार द्वारा उपरोक्त कार्य किये जाने से स्थिति और भी खराब हो गई। किसान खेती छोड़कर सेना में भर्ती होने लगे, जिससे अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई। उद्योगों का भी

ह्रास हुआ तथा उत्पादन क्षमता कम हो गई। इसी समय मुद्रा स्फीति के कारण मजदूरों की स्थिति अत्यन्त खराब हो गई। बोल्शेविक सरकार की यौद्धिक साम्यवाद की नीति पूर्णतया असफल प्रमाणित हुई। इससे रूस की स्थिति और भी खराब हो गई व सम्पूर्ण देश में असन्तोष की भावना प्रबल होने लगी। स्वयं लेनिन ने भी इस नीति के दोषों को स्वीकार करते हुए कहा था, **''यह आर्थिक संकट और सैनिक समस्याओं का परिणाम था, किसी सिद्धान्त का नहीं। आवश्यकतावश एक ऐसी नीति का पालन करना पड़ा था जो पूंजीवाद के समाज से संक्रमण से पूर्णतया प्रतिकूल थी।''**

इस प्रकार 1918 ई. में लागू की गई यौद्धिक साम्यवाद की नीति का मार्च 1921 ई. में परित्याग कर दिया गया।

इस प्रकार 1921 ई. में यौद्धिक साम्यवाद के असफल होने पर सरकार के समक्ष पुनः आर्थिक समस्या उत्पन्न हो गई। **इस समय बोल्शेविकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि कृषकों को परिवर्तित करने की अपेक्षा अपनी ही नीति को बदलना उचित था।**[1] अतः लेनिन ने 1921 ई. में एक आर्थिक नीति की घोषणा की जिसे नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) कहा गया।

नवीन आर्थिक नीति के कारण (Causes of the New Economic Policy)—1921 ई. में लेनिन द्वारा नवीन आर्थिक नीति अपनाने के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे :

(i) रूस में राजकीय पूंजीवाद व यौद्धिक साम्यवादी नीतियां असफल हो चुकी थीं, अतः एक नवीन आर्थिक नीति की आवश्यकता थी।

(ii) पिछली नीतियों द्वारा बोल्शेविक सरकार को यह स्पष्ट हो गया था कि समाजवाद की उतनी स्थापना की जानी चाहिए, जितने की आवश्यकता है। इस नीति के अन्तर्गत ऐसा ही किया गया था।

(iii) मजदूरों व किसानों की खराब आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक था कि नीतियों में परिवर्तन किया जाय।

(iv) व्यापारी वर्ग भी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण से रुष्ट था।

(v) कृषक विद्रोहों से बोल्शेविक सरकार चिन्तित थी, किन्तु मार्च, 1921 ई. में लाल नौ-सेना द्वारा विद्रोह किये जाने से सरकार के लिए तत्काल कोई कदम उठाना आवश्यक हो गया।

ग्राण्ट और **टेम्परले** ने नवीन आर्थिक नीति के विषय में लिखा है, **''गृह-युद्ध की समाप्ति पर देश को फिर भी अव्यवस्था, भय और दुर्भिक्ष पीड़ित देखकर कुछ हद तक निजी उद्योगों को पुनः प्रचलित किया गया। इसी को लेनिन की नई आर्थिक नीति कहा गया।''**[2]

आर्थिक नीति के प्रमुख उद्देश्य (Main Aims of the N. E. P.)—लेनिन की नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य मजदूर वर्ग तथा किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना, देश में रहने वाले श्रमजीवियों को रूस की अर्थव्यवस्था की उन्नति करने के लिए प्रोत्साहन देना तथा अर्थव्यवस्था के प्रमुख सूत्रों को शासन के अधिकार में रखते हुए आंशिक रूप से पूंजीवादी व्यवस्था को कार्य करने की अनुमति प्रदान करना था। लेनिन ने स्वयं ही अपनी आर्थिक नीति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि वास्तव में मजदूर वर्ग और किसानों के सम्बन्धों

1 हेजन, पूर्वोक्त, पृ. 618।

2 ग्राण्ट और टेम्परले, यूरोप, 19वीं तथा 20वीं सदी में, पृ. 521।

पर और उनके संघर्ष व समझौते पर ही हमारी क्रान्ति के भाग्य का निर्णय होगा। मजदूर वर्ग और किसानों के हित अलग-अलग हैं। लेनिन का विचार था कि कृषकों के साथ समझौता होने से ही साम्यवादी (कम्युनिस्ट) क्रान्ति को सुरक्षित रखा जा सकता है। लेनिन का मानना था कि किसानों को आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्ट रखना आवश्यक था।

लेनिन द्वारा आरम्भ की गई आर्थिक नीति के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य थे :

(1) लेनिन की आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य रूस के किसानों को आर्थिक रूप से सम्पन्न बनाकर उनमें व्याप्त असन्तोष को दूर करना था। इसके साथ ही मजदूर वर्ग को प्रोत्साहित कर रूसी क्रान्ति को सशक्त बनाना भी लेनिन का उद्देश्य था।

(2) नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य उत्पादन को बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को लागू करना था ताकि श्रमिकों व किसानों की स्थिति में सुधार हो सके।

(3) जनता का कल्याण करना भी इस नीति का उद्देश्य था।

(4) लेनिन अपनी नवीन आर्थिक नीति के द्वारा रूस में मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed economy) की स्थापना करना चाहता था। इसी का पालन करने के लिए सीमित राष्ट्रीयकरण की नीति अपनाई गई।

पश्चिमी देशों ने रूस की इस नवीन आर्थिक नीति की आलोचना की। प्रसिद्ध रूसी इतिहासकार बर्नादस्की ने लिखा है, "**उनकी (पश्चिमी देशों की) दृष्टि में नवीन आर्थिक नीति का अर्थ बोल्शेविकों का पूंजीवादी विश्व के सम्मुख आत्मसमर्पण मात्र था और लगभग निरपवाद रूप से उसे दुर्बलता का लक्षण माना गया। महाद्वीपीय लोग यह समझने लगे थे कि बोल्शेविकों की तथाकथित शक्तिहीनता से विदेशी हितधारियों को रूस के प्राकृतिक साधनों के उपयोग के अवसर प्राप्त होंगे।**[1]

नवीन आर्थिक नीति के कार्यक्रम (Programmes of N. E. P.)—लेनिन ने नवीन आर्थिक नीति को लागू करने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम अपनाये जिनमें प्रमुख निम्नवत् थे :

(i) लेनिन ने इस नीति के अन्तर्गत सर्वप्रथम यौद्धिक साम्यवाद की आवश्यक अधिग्रहण की नीति को समाप्त कर दिया। इस प्रकार किसानों के अतिरिक्त उपज, जो पहले अनिवार्य रूप से वसूल की जाती थी बन्द कर दी गई। नवीन नीति के अन्तर्गत किसानों से कृषि उत्पादन कर लिया जाने लगा। बर्नादस्की ने लिखा है, "**पहले कर वस्तु के रूप में लिया जाता था, बाद में वह राशि के रूप में चुकाया जाने लगा। अब कृषकों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे अपनी अतिरिक्त फसल की व्यवस्था अपनी इच्छानुसार कर सकेंगे, अर्थात उसे खुले बाजार** (Open Market) **में बेच सकते थे। उगाही के बदले कर की प्रतिस्थापना करने वाली प्रज्ञप्ति ने आर्थिक पद्धति के पूर्ण परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर दिया, क्योंकि इस प्रक्रिया से व्यापार की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ।**"[2] इस प्रकार गांव व शहर आर्थिक रूप से परस्पर जुड़े।

(ii) नवीन कर प्रणाली के द्वारा आर्थिक स्थिति के अनुसार कर निर्धारित किया गया। धनी व्यक्ति से अधिक व गरीब से कम कर लिया जाता था।

1 जार्ज बर्नादस्की, **रूस का इतिहास**, पृ. 303।
2 **वही**, पृ. 303।

(iii) कृषक-सहकारिता (Co-operative Farming) को भी प्रोत्साहित किया गया व किसानों को वेतन-भोगी श्रमिक रखने की सुविधा प्रदान की गई।

(vi) राजकीय व सहकारी व्यापार को भी प्रोत्साहित किया गया। इससे व्यापारियों की प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी।

(v) कृषि के समान उद्योगों में भी सुधार किया गया। बड़े उद्योगों को सरकार के अधीन रखा गया, किन्तु उनकी व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये गये। वस्तु-विनिमय (Barter System) को त्याग दिया गया व मुद्रा प्रणाली लागू की गई। उद्योगों को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया गया।

(vi) छोटे उद्योगों को उद्योगपतियों के अधीन ही रहने दिया गया।

(vii) एक सहकारी बैंक की भी स्थापना की गई।

(viii) रूस में बड़े उद्योग लगाने के लिए विदेशियों को आमन्त्रित व प्रोत्साहित किया गया।

(ix) श्रमिकों की नियुक्ति के लिए रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई जहां से उन्हें उनकी योग्यतानुसार काम दिलाया जाता था।

(x) निर्यात को बढ़ावा दिया गया। इसके लिए निजी व्यापारियों को विदेशी व्यापार करने की अनुमति दी गई। विदेशी व्यापार पर कर भी कम किया गया।

इस प्रकार लेनिन ने अपनी इस नीति के द्वारा रूस की अर्थव्यवस्था को एक नया रूप प्रदान किया। डेविड थामसन ने लिखा है, **"लेनिन का नवीन प्रयोग, नवीन आर्थिक नीति यौद्धिक साम्यवाद की नीति के बिलकुल विपरीत था।"**[1]

नवीन आर्थिक नीति के प्रभाव (Impact of the N. E. P.)—लेनिन की आर्थिक नीति से रूस को अत्यधिक लाभ हुआ। इस नीति ने मजदूर वर्ग तथा किसानों के आर्थिक गठबन्धन को मजबूत बनाया, उत्पादक शक्तियों को समाजवादी दिशा प्रदान की, समाजवादी अर्थव्यवस्था की भूमिका तैयार की तथा रूसी शासन को सुदृढ़ बनाया। इस नीति से उद्योग, कृषि, यातायात, वैदेशिक व्यापार, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में उल्लेखनीय उन्नति हुई। मात्र 4 वर्षों में राष्ट्रीय आय में 15% की वृद्धि हुई।

लेनिन की नवीन आर्थिक नीति की सबसे बड़ी उपलब्धि रूस का आर्थिक पुनर्निर्माण करना था। इस सन्दर्भ में डेविड थामसन का कथन उल्लेखनीय है, **"इस नीति के सर्वाधिक नाटकीय एवं दूरगामी प्रभावों में महत्वपूर्ण यह था कि इसके परिणामस्वरूप रूस का आर्थिक पुनर्निर्माण हुआ।"**[2] इस नीति द्वारा कृषि का पुनरुद्धार हुआ। यद्यपि 1921 ई. में रूस में अकाल पड़ा, किन्तु सरकार के सहयोग से किसानों ने इस स्थिति का सामना किया। 1922 व 1923 ई. में फसलों के अच्छे रहने के कारण स्थिति में सुधार हुआ। इसके साथ ही इस नीति के अन्तर्गत किसानों को दी गई सुविधाओं के कारण कृषि की स्थिति में व्यापक उन्नति हुई। विदेशों से भी कृषि मशीनों तथा विभिन्न उपकरणों का आयात कर कृषि-उत्पादन को

1 **"His new improvisation, the New Economic Policy (NEP), was a reversal of the policies of War Communism."—David Thomson, *Europe Since Napoleon*, p. 549.**

2 **"Most dramatic of all, and most far-reaching in its eventual Consequences, was the economic recovery of Soviet Union as a result of Lenin's New Economic Policy." —*Ibid.*, p. 621.**

बढ़ाया गया। परिणामस्वरूप रूस में कृषि क्षेत्र 1921 ई. की तुलना में 1927 ई. तक डेढ़ गुना हो गया।

कृषि के साथ-साथ नवीन आर्थिक नीति से उद्योगों का भी पुनरुद्धार हुआ। 1921 ई. में लेनिन ने अपने मित्र क्रजिजानोत्सकी को राष्ट्रीय योजना का अध्यक्ष नियुक्त किया। क्रजिजानोत्सकी प्रसिद्ध ऊर्जा इंजीनियर था। अतः उसके प्रयासों से अनेक बिजलीघरों का निर्माण किया गया। इसके परिणामस्वरूप बड़े व छोटे उद्योगों का विकास द्रुत गति से हुआ। मानफ्रेद ने लिखा है कि राजकीय उद्यमों में अधिक कुशल और योग्य श्रमजीवियों को अधिक वेतन व पुरस्कार देने तथा उन्हें '**श्रमवीर**' की उपाधि देने के निर्णय से उत्पादन बढ़ा।[1] 1924-25 ई. में रूस में उत्पादन बढ़ाओ आन्दोलन (Increase Production Movement) चला जिससे उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उत्पादन बढ़ाने में सरकार की नीति से प्रोत्साहित श्रमिकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूस की सर्वोच्च राष्ट्रीय अर्थ परिषद के अध्यक्ष फेलिक्स दजेरजीस्की ने श्रमिकों की प्रशंसा करते हुए कहा, **अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में हमारे मजदूरों व किसानों द्वारा दिखाया गया यह पराक्रम युद्ध के मोर्चे पर दिखाए गए पराक्रम से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है।**

लेनिन की आर्थिक नीति से जहां रूस को भी अत्यधिक लाभ हुआ वहीं उसके समक्ष अनेक संकट उत्पन्न हुए। इन संकटों में प्रमुख—**ईंधन संकट** (Fuel Crisis), **बिक्री संकट** (Sales Crisis) तथा **कैंची संकट** (Scissors Crisis) थे। 1921 ई. में जब नवीन आर्थिक नीति को लागू किया गया था। उस समय रूस में ईंधन संकट विद्यमान था। इसको दूर किये बिना उद्योगों का विकास सम्भव न था। ईंधन संकट के कारण यातायात व उद्योगों की स्थिति खराब होती जा रही थी। रूसी सरकार ने इस संकट को दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाए तथा इस संकट को 1922 ई. तक समाप्त कर दिया गया।

दूसरा संकट बिक्री से सम्बन्धित उत्पन्न हुआ। इस संकट के उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण थे। पहला, कार्यशील पूंजी (Working Capital) का अभाव होना व दूसरा बिक्री के लिए तैयार वस्तुओं का भण्डार हो जाना। इस समय कच्चे माल को खरीदने के लिए धन की आवश्यकता थी। दूसरी ओर बने हुए माल का भण्डार अधिक होने के कारण शहरों व गांवों के मध्य आर्थिक सन्तुलन न होना था। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने शहरों व गांवों के मध्य आर्थिक सन्तुलन को सुधारा। सरकार ने वितरण प्रणाली में भी सुधार किये। इसके अतिरिक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रतिष्ठानों को छोड़कर शेष को बन्द कर दिया। इस प्रकार यह संकट भी समाप्त हो गया।

इसी समय रूस में **कैंची संकट** उत्पन्न हो गया। इसके मूल में बिक्री संकट ही था। बिक्री संकट के कारण औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य में भारी गिरावट आई थी। इसके विपरीत कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के मूल्य अधिक हो गए। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में विषम स्थिति हो गई। इस संकट में क्योंकि औद्योगिक व कृषि उत्पादनों के मूल्य एक-दूसरे के विपरीत (कैंची की दो पत्तियों के समान) थे, इस कारण, इस संकट को '**कैंची संकट**' कहा गया। सन्तुलित अर्थव्यवस्था के लिए औद्योगिक व कृषि उत्पादनों में सन्तुलन बना रहना आवश्यक है, अतः सरकार को इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाने पड़े। जब अन्य सभी प्रयास असफल हो गए तो

1 अ. ज. मानफ्रेद, संक्षिप्त विश्व का इतिहास, खण्ड 5 पृ. 69।

'स्टालिन ने **'राशनिंग'** (Rationing) के द्वारा मूल्यों पर नियन्त्रण कर इस संकट को समाप्त किया।

इन सब संकटों के पश्चात भी लेनिन की नवीन आर्थिक नीति 1927 ई. तक चलती रही। लेनिन की इस आर्थिक नीति के विषय में बर्नादस्की ने लिखा है, "**इस समय से 1927 ई. तक रूस में जो आर्थिक पद्धति प्रचलित रही वह संकर-योजना** (Mixed Planning) **थी। वह न तो समाजवादी, न पूंजीवादी; बल्कि इस दोनों के बीच की थी। वह नवीन आर्थिक नीति के तथा आरम्भ किये गये सभी सुधारों की सीमा तक वास्तविक समाजवादी पद्धति से भिन्न थी। वह पूंजीवादी स्वरूप से इसलिए भिन्न थी कि उसमें आर्थिक मामलों में विशेषकर विदेशी व्यापार में, शासकीय नियन्त्रण अन्तर्निहित था।**"[1] लेनिन ने इस नवीन आर्थिक नीति के द्वारा अपनी उस घोषणा को सही प्रमाणित करने का प्रयास किया जो उसने क्रान्ति के तुरन्त पश्चात् की थी। उसने कहा था, "**हम पुरातन-व्यवस्था को समाप्त कर उसके खण्डहरों पर अपना मन्दिर बनायेंगे। यह एक ऐसा मन्दिर होगा जो सबके लिए खुशियां लाएगा।**"[2]

21 जनवरी, 1924 ई. को विश्व के इस महान् नेता की मृत्यु हो गई। हेजन ने लेनिन की अत्यधिक प्रशंसा की है। उनके शब्दों में, "**जूलियस सीजर के समय से इतिहास का वह (लेनिन) सम्भवतः सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था।**"[3]

स्टालिन का युग (1928—1953)
(THE AGE OF STALIN)

प्रारम्भिक जीवन (Early Life)—स्टालिन[4] रूस के इतिहास का एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था। उसने अपनी नीतियों से न केवल रूस अपितु सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। स्टालिन का जन्म 1879 ई. में गोरी नामक गांव में हुआ था। स्टालिन के पिता अपने पुत्र को पादरी बनाना चाहते थे, किन्तु स्टालिन प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी विचारों का था, अतः युवा होते ही उसने क्रान्तिकारियों का साथ देना प्रारम्भ कर दिया। उसकी क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण उसे अनेक बार गिरफ्तार किया गया। लेनिन के सम्पर्क में आकर उसने साम्यवादी दल (Communist Party) की सदस्यता ग्रहण कर ली।

स्टालिन व ट्राटस्की (Stalin and Trotsky)—21 जनवरी, 1924 ई. को लेनिन की मृत्यु हो गई। लेनिन के उत्तराधिकार के लिए दो प्रमुख दावेदार थे—ट्राटस्की (Trotsky Leon) व जोसेफ स्टालिन (Joseph Stalin)। रूस की मार्च 1917 ई. में हुई क्रान्ति के समय इन दोनों ही नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अतः लेनिन की मृत्यु के पश्चात् दोनों में ही संघर्ष हुआ। यह संघर्ष 1924 ई. से 1929 ई. तक चलता रहा। दोनों के मध्य वैचारिक मतभेद भी थे। ट्राटस्की का विचार था कि रूस को विश्व में बोल्शेविक क्रान्ति करने की आशा नहीं करनी चाहिए। उसका विचार था कि यदि रूस में यह क्रान्ति सफल हो जायेगी

1 बर्नादस्की, **रूस का इतिहास**, पृ. 322-23।

2 "We will destroy everything and on the ruins we will build our temple. It will be a temple for the happiness of all." —*Lenin*

3 He was probably the most influential man in history from the time of Julius Caesar." —Hazen, *Modern Europe*, p. 566.

4 स्टालिन का वास्तविक नाम जोसेफ विसलियोरोविच जगोश्विली था। एक बार पुलिस से बचने के लिए उसने अपना नाम जोसेफ बी स्टील रख लिया था। स्टील (लौह पुरुष) से ही उसका नाम स्टालिन पड़ा।

तो विश्व के देश स्वतः ही उसका अनुकरण करेंगे। इसके विपरीत स्टालिन का विचार था क़ि बोल्शेविक क्रान्ति अन्य देशों में कराने का प्रयास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ट्राटस्की पूंजीवाद का घोर विरोधी था व उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था, जबकि स्टालिन रूस का औद्योगिक विकास करना चाहता था तथा इसके लिए अन्य देशों से मशीनें मंगवाना चाहता था। ट्राटस्की भूमि पर राज्य का स्वामित्व रखने के पक्ष में था, जबकि स्टालिन चाहता था कि भूमि का स्वामित्व किसानों के पास होना चाहिए।

इस प्रकार ट्राटस्की व स्टालिन के मतों में भिन्नता होने के कारण, दोनों के मध्य 1929 ई. तक संघर्ष चलता रहा। 1929 ई. में ट्राटस्की को दल से निष्कासित कर दिया गया। अन्ततः ट्राटस्की रूस छोड़कर भागने के लिए विवश हो गया। इस प्रकार लेनिन की मृत्यु के कुछ वर्षों के पश्चात स्टालिन रूस में सर्वेसर्वा बन बैठा।[1]

स्टालिन की गृह नीति
(HOME POLICY OF STALIN)

स्टालिन 1929 ई. में रूस का शासक तो बन गया, किन्तु उसके समक्ष अनेक समस्याएं विद्यमान थीं। स्टालिन रूस को प्रत्येक दृष्टि से उन्नत देखना चाहता था। स्टालिन ने 1931 ई. में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था, "**हम (रूस) उन्नत देशों की तुलना से पचास अथवा कहना चाहिए सौ वर्ष पिछड़े हुए हैं। हमें हर हालत में इस खाई को दस वर्षों के अन्दर भरना है। या तो हम ऐसा करने में सफल हों अन्यथा वे (उन्नत देश) हमें कुचल देंगे।**"[2]

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)—स्टालिन के समक्ष सबसे बड़ी समस्या रूस का आर्थिक विकास करने की थी। स्टालिन का विचार था कि आर्थिक विकास करने के लिए योजनाबद्ध नीतियों का होना आवश्यक है, अतः 1925 ई. में स्टालिन ने रूस में **योजना आयोग** (Planning Commission) की नियुक्ति की। इस योजना आयोग के द्वारा **पंचवर्षीय योजना** (Five Years Plan) को प्रारम्भ किया जिसे रूस में '**प्यातीलेत्का**' कहते थे। रूस की प्रथम पंचवर्षीय योजना 1929 ई. में लागू की गई। हेजन ने लिखा है कि, "**यह एक विशद एवं विवरणपूर्ण योजना थी जिसको एक विशेषज्ञ मण्डल ने सावधानी से तैयार किया था और एक ठोस आर्थिक विकास कार्य के लिए बनाई थी।**"[3] रूस में लागू की गई इस प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि व उद्योग दोनों के लिए ही विकास की योजना बनाई गई थी। इस योजना के द्वारा नवीन व्यापारिक विधियों का निर्माण, उत्पादक कारखानों की स्थापना, कृषि-सम्बन्धी उपकरणों के कारखानों की स्थापना, इस्पात कारखानों की स्थापना व रेल मार्गों का निर्माण किया जाना था। इस प्रकार इन उपायों के द्वारा देश के उद्योग की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया था। इसके साथ ही कृषि के विकास के लिए सामूहिक खेती व राजकीय फार्मों (Collective and State Farms) की संख्या में वृद्धि करना व उसका समाजीकरण

1 "Within three years of Lenin's death, Stalin outmaneuvered his rivals and became the most powerfull leader in the Soviet government. For a quarter of century (1928—1953) he exercised dictatorial authority." —Ferguson, Bruun, *op. cit.*

2 We (Russians) are fifty or a hundred years behind the advanced countries. We must make good this lag in ten years. Either we do it or they crush us." —*Stalin*

3 हेजन, पूर्वोक्त, पृ. 621

करना निश्चित किया गया था। यह व्यवस्था व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त पर आधारित थी तथा यह निश्चित किया गया कि बढ़ा हुआ उत्पादन कृषकों में विभाजित कर दिया जाएगा।

रूस में द्वितीय पंचवर्षीय योजना 1934 ई. में लागू की गई। इस योजना को पहली पंचवर्षीय योजना से भी अधिक कुशलता से तैयार किया गया। इसमें श्रम की उत्पादकता में वृद्धि और उत्पादन व्यय में कमी की ओर विशेष ध्यान दिया गया। यूरोप में उस समय हिटलर का भय बढ़ता जा रहा था, अतः युद्ध सामग्री के उत्पादन की ओर भी इस योजना में ध्यान रखा गया। भविष्य में, द्वितीय विश्वयुद्ध के समय, रूस को इस दूरदर्शी योजना के कारण बहुत लाभ हुआ। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के समय रूसी सेनाओं के पास अधिकांश सामान स्वदेशी था।

स्टालिन द्वारा लागू की गई पंचवर्षीय योजनाओं व इनके क्रियान्वयन से रूस की आर्थिक स्थिति में अद्भुत सुधार हुआ। इस दौरान रूस में अनेक औद्योगिक कारखाने, जल-विद्युत कारखाने, बांध, मजदूरों के लिए मकान, कृषि सम्बन्धी कारखाने, इत्यादि बनाए गए थे जिससे वह रूस जो 1921 ई. में पिछड़े हुए देशों की गिनती में आता था, अब उन्नत देशों की बराबरी करने लगा। इन योजनाओं के कारण रूस यूरोप के प्रमुख देशों में से एक बन गया। हार्डी ने स्टालिन की इस नीति की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"स्टालिन की आन्तरिक विकास की विशाल योजना सम्बन्धी नीति विश्व के देशों के लिए दोहरे लाभ की प्रमाणित हुई। एक ओर तो इससे रूस द्वारा अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का भय दूर हुआ वहीं विश्व शान्ति को बनाए रखने में भी यह नीति सहायक रही।"**

सांस्कृतिक उन्नति (Cultural Development)—स्टालिन ने संस्कृति के क्षेत्र में भी उन्नति करने का प्रयत्न किया। रूसी जनता में अशिक्षितों की संख्या बहुत अधिक थी, अतः शिक्षा पर सरकार द्वारा बहुत अधिक ध्यान दिया गया। सरकार ने 3 वर्ष से 16 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। शिक्षा को निःशुल्क भी बनाया गया। बोल्शेविक सरकार द्वारा तकनीकी शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। उच्चस्तरीय शोध-कार्यों के लिए प्रयोगशालाओं का भी निर्माण कराया गया। इस प्रकार बोल्शेविक सरकार के प्रयत्नों से शिक्षितों की संख्या में असाधारण गति से वृद्धि हुई। शिक्षा के साथ ही स्त्रियों पर लगे हुए अनेक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गये। रूस में वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए भी सरकार ने कदम उठाए।

रूसी सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं (Regional languages) को भी प्रोत्साहित किया। भाषा को आधार मानकर प्रान्तों का पुनर्गठन किया गया। अनेक रूसी भाषाओं को लिपिबद्ध किया गया व प्रान्तीय भाषाओं में शिक्षा व कामकाज करने की अनुमति दी गई।

रूसी सरकार के द्वारा मनोरंजन के साधनों का विकास भी किया गया। बच्चों के व बड़ों के लिए क्रीड़ागृह का निर्माण किया गया। नृत्यशालाओं व थिएटरों को भी बनवाया गया।

विरोधियों का दमन (Rebels were Punished)—रूस में अभी तक बोल्शेविक क्रान्ति के अनेक विरोधी विद्यमान थे। बोल्शेविक क्रान्ति को पूर्णता प्रदान करने के लिए स्टालिन इन विद्रोहियों का दमन करना आवश्यक समझता था। अतः स्टालिन ने ढूंढ़-ढूंढ़कर इन विद्रोहियों को दण्डित किया व अनेक को मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार स्टालिन ने अपनी व सरकार की स्थिति को सुदृढ़ बनाया व रूस में शान्ति की स्थापना की।

नवीन संविधान को लागू करना (1936 ई.) (New Constitution was Implemented)—रूस में 1917 ई. में क्रान्ति हुई थी, तत्पश्चात् 1918 ई. पुनः एक नए संविधान का निर्माण किया गया था। इन दोनों ही संविधानों से समाजवादी व्यवस्था पूर्णतया स्थापित नहीं हो सकी थी। इसके अतिरिक्त 1923 ई. के पश्चात् रूस में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सके थे। अतः रूस में पूर्ण समाजवादी व्यवस्था लागू करने व नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नवीन संविधान की आवश्यकता को स्टालिन ने अनुभव किया। अतः 1936 ई. में रूस में एक नवीन संविधान की रचना की गई, जिसे '**स्टालिन संविधान** (Stalin Constitution) कहा जाता है।

इस संविधान के द्वारा रूस में संघ-राज्य (Federal Government) की स्थापना की गई। इस प्रकार इस नवीन संविधान के द्वारा बने देश को **समाजवादी गणराज्य संघ**[1] (Union of Soviet Socialist Republic) कहा गया। इस संघ में 11 गणराज्य थे।

इस संविधान के द्वारा सर्वोच्च शक्ति **सुप्रीम कौंसिल** (Supreme Council) में निहित थी। सुप्रीम कौंसिल की एक कार्यकारिणी को '**प्रेसीडियम** (Presidium) कहा गया। सुप्रीम कौंसिल की एक अन्य समिति को **लोक प्रबन्धक परिषद्** (Council of Peoples Commissar) कहा गया। संसद में दो सदन थे—(i) **संघीय परिषद्** (Council of Union) व (ii) **राष्ट्रीयताओं की परिषद्** (Council of Nationalities)। संघीय परिषद् जनता के प्रतिनिधियों की संस्था थी, जबकि राष्ट्रीयताओं की परिषद् में जातियों, राज्यों व राष्ट्रों के प्रतिनिधि होते थे। इन दोनों ही परिषदों का कार्यकाल चार वर्ष था। संघीय परिषद् व राष्ट्रीयताओं की परिषद् को संयुक्त रूप से सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) कहते थे। शासन की सत्ता मन्त्रिमण्डल में निहित थी। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी था। जिस समय संसद का अधिवेशन न चल रहा हो तब मन्त्री प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होते थे।

इस संविधान के द्वारा रूस में विभिन्न स्तर के न्यायालयों की स्थापना की गई। सर्वोच्च न्यायालय 'संघीय सर्वोच्च न्यायालय' था, तत्पश्चात् गणराज्यों के सर्वोच्च न्यायालय, क्षेत्रीय न्यायालय, क्षेत्रीय न्यायालय, लोक न्यायालय तथा विशेष न्यायालय थे।

1936 ई. के संविधान के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई। इनके अन्तर्गत काम का अधिकार, निःशुल्क चिकित्सा, वृद्धावस्था में आर्थिक सहायता, निःशुल्क शिक्षा, आदि थे। प्रत्येक व्यक्ति को सीमित सम्पत्ति रखने का ही अधिकार था तथा श्रम का शोषण किये जाने का घोर विरोध किया गया था।

1936 ई. के रूसी संविधान को निम्नवत् तालिका से समझा जा सकता है।

प्रेसीडियम

↓

1 इसी समय से रूस को **यू. एस. एस. आर.** (U. S. S. R.) कहा जाने लगा।

लेनिन एवं स्टालिनकालीन रूस की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF RUSSIA UNDER LENIN AND STALIN)

1917 ई. में रूस में क्रान्ति हुई। क्रान्ति के परिणामस्वरूप रूस से जार के तानाशाही शासन का अन्त हुआ व बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार के समय में रूस में साम्यवादी शासन को लागू किया गया। यूरोप के अन्य देशों के लिए यह एक चौंकाने वाली घटना थी, क्योंकि अधिकांश देश पूंजीवादी थे तथा वहां प्रजातान्त्रिक अथवा राजन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था विद्यमान थी। रूसी क्रान्तिकारियों को विश्वास था कि उनकी क्रान्ति का प्रभाव विश्व के अन्य देशों पर भी पड़ेगा व वहां भी क्रान्तियां होंगी। लेनिन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा था, **"हम सभी राष्ट्रों से शान्ति का आह्वान करेंगे और सभी उपनिवेशों एवं अधीन राज्यों को स्वतन्त्र किये जाने की मांग करेंगे........जर्मनी, इंगलैण्ड और फ्रांस की सरकारें इन मांगों को स्वीकार नहीं करेंगी। अतः हमें संघर्ष के लिए तैयार रहना पड़ेगा हम एशिया के उपनिवेशों एवं अधीनस्थ देशों की पीड़ित एवं शोषित जनता को विद्रोह करने के लिए सुनियोजित ढंग से प्रेरित करेंगे। हम समाजवादी सर्वहारा वर्ग को भी, अपनी-अपनी सरकारों के विरुद्ध विद्रोही बनाएंगे।"**[1] पूंजीवादी देशों ने इस प्रकार की रूसी नीति का घोर विरोध किया व प्रत्युत्तर में यूरोप में फासीवाद व नाज़ीवाद का जन्म हुआ, क्योंकि यूरोपीय देशों का विचार था कि साम्यवाद का जवाब अधिनायकवाद ही था। रूस में साम्यवाद व साम्यवादी विचारधाराओं को फैलने से रोकने के लिए यूरोप के पूंजीवादी देशों ने यथासम्भव प्रयास किया। इन परिस्थितियों में रूस के लिए किसी भी देश से सम्बन्ध बनाना कठिन था।

1917 ई. से 1945 ई. के बीच रूस को विभिन्न परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। अध्ययन की सुविधा के लिए रूसी विदेश-नीति को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) रूसी विदेश नीति (1917—1921 ई.)
(ii) ,, ,, (1921—1934 ई.)
(iii) ,, ,, (1934—1938 ई.)
(iv) ,, ,, (1938—1939 ई.)
(v) ,, ,, (1939—1941 ई.)
(vi) ,, ,, (1941—1946 ई.)

प्रत्येक काल में रूसी वैदेशिक नीति का क्रमवार वर्णन निम्नवत् है :

(i) रूसी विदेश नीति (1917—1921 **ई.**) (Russian Foreign Policy)—1917 ई. के पश्चात् रूसी वैदेशिक नीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे—प्रथम तो यह कि साम्यवादी (बोल्शेविक) क्रान्ति को विश्वव्यापी किस प्रकार बनाया जाय तथा दूसरा, पश्चिमी देशों द्वारा किये जा रहे साम्यवाद के विरोध का सामना किस प्रकार किया जाय। अपने इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए रूस ने अनेक कार्य किये। लेनिन का विचार था कि क्रान्ति साम्यवाद की सफलता का प्रथम चरण था व यह क्रान्ति शीघ्र ही अन्य देशों में भी फैलेगी। लेनिन ने कहा था, **"यूरोप में एक समाजवादी क्रान्ति होगी, यह एक वैज्ञानिक भविष्यवाणी है।"** इस भविष्यवाणी

1 डी. शब, **लेनिन** पृ. 144।

को साकार रूप प्रदान करने के लिए साम्यवादियों ने "**विश्व के मजदूरो एक हो जाओ, तुम्हें अपने बन्धनों के अतिरिक्त और कुछ नहीं खोना है**" का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इसी उद्देश्य के लिए मार्च 1918 ई. में '**तृतीय साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय संगठन**' (कामिन्टर्न) की स्थापना मास्को में की। इसका मुख्य कार्य विश्व क्रान्ति की योजना बनाना, पूंजीवादी देशों में साम्यवादी साहित्य भेजना, कृषकों व मजदूरों को क्रान्ति के लिए प्रेरित करना था। इसी कारण पूंजीवादी राष्ट्र कामिन्टर्न पर विशेष नजर रखते थे। कामिन्टर्न के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वानलाव ने लिखा है, "**कामिन्टर्न की स्थापना के बाद क्रान्तिकारी आन्दोलन, सोवियत संघ के वैदेशिक सम्बन्धों का एक स्थायी तत्व बन गया था।**"[1]

रूस के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अनेक देशों में क्रान्तियां तथा विद्रोह हुए। 1919 ई. में हंगरी में साम्यवादी (Communist) शासन की स्थापना हुई, किन्तु पूंजीवादी राष्ट्रों ने इसे असफल बना दिया। कामिन्टर्न ने 1919 ई. में बवेरिया में भी विद्रोह कराया। 1920 ई. में इटली के विभिन्न भागों में भी साम्यवादी आन्दोलन हुए। कामिन्टर्न द्वारा अनेक देशों में साम्यवादी आन्दोलन कराने के प्रयास किये गए, किन्तु वह सफल न हो सके।

3 मार्च, 1918 ई. को रूस द्वारा जर्मनी के साथ ब्रेस्टलिटोवस्क की सन्धि की गयी। इससे मित्र राष्ट्र रूस से नाराज हो गए, क्योंकि उन्होंने इसे इन्हें हराने के लिए उठाया हुआ एक कदम समझा। रूस की सरकार ने जार द्वारा पश्चिमी देशों से लिये गये ऋण को भी लौटाने से इन्कार कर दिया। इससे भी रूस व पश्चिमी देशों के सम्बन्ध 1917 ई. से 1921 ई. के मध्य अत्यन्त कटु बने रहे।

(ii) **रूसी विदेश नीति** (1921 ई.—1934 ई.) (Foreign Policy of Russia)—रूसी विदेश नीति के इस चरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। रूस अपनी आन्तरिक स्थिति व जर्जर आर्थिक स्थिति के कारण इस बात के लिए विवश हुआ कि वह अपनी नीति में परिवर्तन करे। शूमां ने लिखा है, "1921 ई. का वर्ष **सोवियत रूस की आन्तरिक एवं बाह्य नीति में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन का समय था।**"[2] रूस की वैदेशिक नीति के इस समय तीन प्रमुख उद्देश्य थे :

(अ) जर्मनी को पश्चिमी देशों के गुट में न जाने देना।

(ब) पश्चिमी देशों से कूटनीति सम्बन्ध स्थापित करना।

(स) पश्चिमी राष्ट्रों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करके अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारना।

अपनी इस नीति के अन्तर्गत रूस ने अन्य देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु पश्चिमी देश ऐसा करने के लिए उत्सुक न थे। रूस के विदेशमन्त्री चिचेरिन के प्रयत्नों से को जेनेवा में होने वाले सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया। रूस ने इस सम्मेलन में पश्चिमी देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। फिर भी अप्रैल, 1922 ई. में हुए इस जेनेवा सम्मेलन से रूस को अनेक लाभ हुए। रूस व इटली के मध्य एक व्यापारिक सन्धि हो गई। इससे

1 वान लाव, **द डिप्लोमेट्स**, पृ. 237।

2 "The year 1921 marked a sharp turning point, both in the internal politics and in the foreign relations of the Soviet Government." —*Schuman*

अधिक महत्वपूर्ण जर्मनी के साथ 16 अप्रैल, 1922 ई. को हुई **रैपेलो की सन्धि** (Teraty of Rapallo) थी। इस सम्मेलन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए हार्डी ने लिखा है **"इस सम्मेलन का एक-मात्र मूर्त परिणाम रूस और जर्मनी के बीच रैपेलो की सन्धि का होना था जिसने अन्य देशों के संशय व अविश्वास को और बढ़ा दिया।"**[1]

रैपेलो की सन्धि के द्वारा जर्मनी ने रूस को मान्यता (Recognition) प्रदान की व दोनों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए। इस प्रकार इस सन्धि से रूस को बहुत लाभ हुआ। लैंगसम ने इसके महत्व के विषय में लिखा है : **"इस सन्धि ने रूस की लन्दन और पेरिस पर निर्भरता को कम कर दिया।"**[2] ई. एफ. कार ने भी इसके विषय में लिखा है, **"दो अभिशक्त स्वाभाविक रूप से एक साथ मिल गए तथा रैपेलो की सन्धि ने दोनों को दस वर्षों से भी अधिक समय के लिए मित्र बनाए रखा।"**[3]

इसके अतिरिक्त भी रूस ने अनेक सन्धियां कीं। 1922 ई. में तुर्की, 1926 ई. में जर्मनी व लिथुआनिआ, 1927 ई. में ईरान, पोलैण्ड, लाटविया व 1932 ई. में इस्टानियों से सन्धि की। इसी बीच इंगलैण्ड, फ्रांस व इटली ने रूस को मान्यता प्रदान कर दी। रूस यद्यपि पश्चिमी देशों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु कामिन्टर्न के कारण इस कार्य में कठिनाई होती थी। इस विषय में शूमां का उपरोक्त कथन उल्लेखनीय है, **"सोवियत राजनीतिज्ञ सहयोग की बातें करते, लेकिन कामिन्टर्न क्रान्ति का उपदेश देता था।"**[4]

(iii) **रूसी विदेशी नीति** (1934 **ई.**—1938 **ई.**) (Russian Foreign Policy)—यूरोप में इस काल में कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होंने रूसी विदेश नीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इसी काल में जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ जो साम्यवाद का घोर दुश्मन था तथा साम्यवाद को जड़ से समाप्त करना चाहता था। हिटलर के अभ्युदय ने रूस में घोर संकट उत्पन्न कर दिया, क्योंकि पश्चिमी राष्ट्र पहले से ही उसके विरोधी थे। अतः रूस के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपनी सुरक्षा के लिए पश्चिमी राष्ट्रों से मित्रतां करे। शूमां ने तत्कालीन स्थिति के विषय में लिखा है, **"फासीवाद के कारण रूस का समाजवादी व उदारवादी राष्ट्रों के साथ सहयोग अनिवार्य हो गया.......इसका परिणाम सोवियत कूटनीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का पुनर्वाचन था।"**[5]

अतः रूस ने पोलैण्ड, ईरान, लाटविया, अफगानिस्तान, आदि के साथ समझौते किए। रूस ने राष्ट्र-संघ की सदस्यता भी ग्रहण कर ली व उसका घोर समर्थक बन गया। 1932 ई. में रूस ने फ्रांस के साथ परस्पर सहयोग की सन्धि की। फ्रांस भी जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति

1 गैथार्न हार्डी, **अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास**, पृ. 87।

2 "It lessened the Soviet dependence upon the good will of London and Paris." —*Langsam*

3 "The two outcasts naturally joined hands and the Rapallo treaty established friendly relations between them for more than ten years." —*E. H. Carr*

4 "Soviet diplomates offered Co-operation but Comintern preached revolution." —*Schuman*

5 "To Prevent Destruction of the Communist movement throughout the world. Moscow must co-operate with socialists and liberals against Fascism. The Result was revolution in Soviet diplomacy and a reorientation of international Communalism." —*Schuman*

से भयभीत था, अतः वह इस सन्धि के लिए तैयार हो गया। इसी वर्ष रूस ने चैकोस्लोवाकिया से भी सन्धि की। रूस की इस नीति को फासिस्टवादी शक्तियों ने गम्भीरता से लिया व साम्यवाद के विरुद्ध **एण्टी कामिन्टर्न समझौता** (Anti-Commintern Pact) किया।

इस प्रकार 1934—1938 ई. के मध्य यद्यपि रूस ने पश्चिमी देशों के साथ सहयोग की नीति अपनाई, किन्तु व्यावहारिक रूप में यह मित्रता वास्तविक न हो सकी। पश्चिमी देश फासिस्टवाद व साम्यवाद में परस्पर संघर्ष कराना चाहते थे, रूस से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी। शूमां ने लिखा है, "**इस उद्वेगपूर्ण मैत्री भाव में पारस्परिक विश्वास का अभाव था।**"[1] इस प्रकार पश्चिमी देश साम्यवाद व फासिस्टवाद दोनों को ही रोकना चाहते थे। इसी कारण 1938 ई. के म्यूनिख सम्मेलन में इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली व जर्मनी ने चैकोस्लोवाकिया का विभाजन कर दिया तथा रूस को इस सम्मेलन में आमन्त्रित भी नहीं किया गया। रूस के लिए यह अत्यन्त चिन्ता का विषय बन गया व उसे इंगलैण्ड और फ्रांस पर विश्वास न रहा।

(iv) **रूस की विदेश नीति** (1934 **ई.**—1939 **ई.**) (Russian Foreign Policy)—म्यूनिख समझौते के कारण रूस की स्थिति अत्यन्त दुरूह हो गई। इस समझौते ने उसे पुनः मित्रविहीन कर दिया था। यूरोप में युद्ध की आशंका बढ़ती जा रही थी। रूस स्वयं को युद्ध से अलग रखना चाहता था। रूस को यह स्पष्ट हो गया कि युद्ध से बचने का एक मात्र रास्ता जर्मनी से सन्धि करने का था। अतः उसने इस दिशा में प्रयत्न किये व अगस्त 1939 ई. में जर्मनी से उसने अनाक्रमणं सन्धि कर ली।

(v) **रूस की विदेश नीति** (1939 **ई.**—1941 **ई.**) (Foreign Policy of Russia)—रूस व जर्मनी के मध्य हुई इस सन्धि ने पश्चिमी देशों को चिन्तित कर दिया। रूस व जर्मनी के मध्य सन्धि हिटलर की महान् उपलब्धि थी। इस सन्धि के होते ही जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। रूस ने प्रारम्भ में इस युद्ध में भाग नहीं लिया व अपनी सैनिक शक्ति की वृद्धि करने में लगा रहा। जर्मनी की सेनाओं के पोलैण्ड में प्रवेश करने के बाद रूस ने भी पूर्वी पोलैण्ड पर अधिकार कर लिया। इसके बाद रूस ने एस्टोनिया, लेटेविया तथा लिथुआनिआ पर जुलाई 1940 में अधिकार कर लिया। रूस ने फिनलैण्ड के भी अनेक भागों पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात रूमानिया के भी कुछ-भू-भाग पर रूस ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार इस अवधि में रूस ने अपनी सीमाओं को सुरक्षित किया, लेकिन रूस की बढ़ती हुई शक्ति ने हिटलर को चिन्ता में डाल दिया व वह रूस पर आक्रमण की योजना बनाने लगा, ताकि उसकी शक्ति को कुचला जा सके तथा उन स्थानों पर भी अधिकार किया जा सके जहां तेल व अनाज के भण्डार थे।[2] जापान ने जर्मनी का विरोध किया व रूस के साथ अप्रैल 1914 ई. अनाक्रमण की सन्धि कर ली।

(vi) **रूस की विदेश नीति** (1941 **ई.**—1945 **ई.**) (Foreign Policy of Russia)—22 जून, 1941 ई. को जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के कारण रूस ने पुनः पश्चिमी देशों से मित्रता का हाथ बढ़ाया। रूस इस समय तक शक्तिशाली हो चुका था तथा मित्र राष्ट्रों को ज़र्मनी के विरुद्ध सहायता की आवश्यकता थी। अतः मई,

1 शूमां, **इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स**, पृ. 530।

2 यूक्रेन में अनाज के भण्डार व काकेशस में तेल के कुएं थे।

1941 में इंगलैण्ड व जून में रूस की विशेष सहायता न की, तथापि रूस ने जर्मनी की सेनाओं को सफल न होने दिया। अन्ततः जर्मनी की पराजय हुई।

स्टालिन का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF STALIN)

स्टालिन निःसन्देह एक योग्य प्रशासक था। उसने वास्तविक अर्थों में रूस का निर्माण किया। जिस समय वह शक्ति में आया रूस की आन्तरिक स्थिति, आर्थिक स्थिति जर्जरित थी तथा विदेशों में सम्मान न था। रूस को एक पिछड़ा हुआ देश माना जाता था, किन्तु अपनी कुशल नीतियों के द्वारा न केवल उसने रूस को एक समृद्धशाली देश बनाया वरन् ऐसा संविधान भी प्रदान किया जो आज भी लगभग उसी रूप में विद्यमान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसने न केवल रूस के लिए सम्मान अर्जित किया वरन् रूस को विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में ला खड़ा किया। स्टालिन के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए वेन्स ने लिखा है, "1941 **ई. में रूस नेतृत्व, जनशक्ति, सैन्य शक्ति, कृषि एवं औद्योगिक संसाधनों के कारण उस पर (रूस) होने वाले आक्रमण का सामना करने के लिए 1914 ई. की तुलना में कहीं अधिक सुसज्जित था। निःसन्देह यह सब कुछ रूस को स्टालिन ने ही उपलब्ध कराया था।**

6 मार्च, 1953 ई. को स्टालिन की मृत्यु हुई।

प्रश्न

1. रूस की 1917 ई. की क्रान्ति के कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
2. रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
3. लेनिन की नवीन आर्थिक नीति (N. E. P.) का वर्णन कीजिए। रूस को इससे क्या लाभ हुए?
4. रूस के उत्थान के लिए लेनिन द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. स्टालिन द्वारा रूस की उन्नति के लिए किये गये कार्यों का वर्णन कीजिए।
6. स्टालिन की गृह-नीति का वर्णन कीजिए।
7. लेनिन एवं स्टालिन की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
8. 1917 ई. से 1945 ई. तक रूस की विदेश नीति के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
9. 19वीं शताब्दी की बोल्शेविक क्रान्ति के कारणों का वर्णन कीजिए।

(गोरखपुर, 1987, 91, 94; **लखनऊ,** 1991, 93, 95; **पूर्वांचल,** 1989, 91, 95)

31

इटली में फासीवाद
[FASCISM IN ITALY]

फासीवाद का उदय
(RISE OF FASCISM)

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जहां जर्मनी में नाजीवाद का उत्कर्ष हुआ, वहीं दूसरी ओर इटली में फासीवाद का उत्कर्ष हुआ। कैटलबी के शब्दों में, **''प्रारम्भ में फासीवाद जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में उदित हुआ, किन्तु पश्चात् में वह एक वाद अथवा एक सिद्धान्त और विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली के रूप में विकसित हुआ।''**[1] नाजीवाद का नेतृत्व हिटलर ने किया था तो फासीवाद के नेता मुसोलिनी ने फासीवाद को उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुंचाया।

एक बात उल्लेखनीय है कि प्रथम विश्वयुद्ध में इटली मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ा था और जर्मनी मित्र राष्ट्रों का विरोधी था, फिर भी इटली में जर्मनी की तरह फासीवाद का उत्कर्ष हुआ। यह बात भी विचारणीय है कि 1860 ई. से इटली में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी, किन्तु अचानक फासीवाद की धारा ने उसे उखाड़ फेंका जो कि यूरोप के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

फासीवाद की परिभाषा
(DEFINITION OF FASCISM)

यहां पर यह समझना आवश्यक है कि फासीवाद है क्या? फासिस्ट शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द **फेसियो** (Fascio) से हुई है। प्राचीन रोमवासी छड़ियों के बण्डल को **फेसेज** (Fasces) कहते थे जिसे सत्ता का प्रतीक समझा जाता था। **इस चिन्ह को शक्ति, एकता व अनुशासन का प्रतीक भी माना जाता था।** मुसोलिनी ने, इसी शब्द से अपने आन्दोलन को प्रेरित किया। उनके लिए एकता (Unity) का महत्व था। **इसीलिए वे एक राज्य, एक झण्डा व एक नेता में विश्वास रखते थे।** फासीवादी काली कमीज पहनते थे व उग्रराष्ट्रवाद के समर्थक थे। वे सैनिकवाद पर विश्वास करते थे। इस प्रकार वे तानाशाही के समर्थक थे। तानाशाह सर्वाधिकार पूर्ण राज्य (Totalitarian State) स्थापित करना चाहते थे। फासीवाद की परिभाषा देते हुए मुसोलिनी ने कहा, **''फासीवाद कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिनकी हर बात को विस्तारपूर्वक पहले से ही स्थिर कर लिया गया हो। फासीवाद का जन्म कार्य किए जाने की**

1 **"Fascism began as an instinct, and only later developed a philosophy and a system of government."**

—C. D. M. Ketelbey, *A History of Modern Times From*, 1789, p. 462.

आवश्यकता के कारण हुआ है। अतः फासीवाद सैद्धान्तिक होने के स्थान पर प्रारम्भ से ही व्यावहारिक रहा है।" फासीवाद व साम्यवाद की तुलना करते हुए भी मुसोलिनी ने कहा, "फासीवाद यथार्थ पर आधारित है, जबकि साम्यवाद सिद्धान्त पर। हम सिद्धान्त तथा विवाद के बादलों से निकलना चाहते हैं।" फासीवाद के अन्तर्गत राज्य (State) को सर्वोपरि माना जाता था, मुसोलिनी का कहना था। "राज्य के अन्दर सब कुछ है, राज्य के बाहर कुछ नहीं तथा राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं है।"[1]

फासीवाद के उत्कर्ष के कारण
(CAUSES OF THE RISE OF FASCISM)

(1) **प्रथम विश्वयुद्ध में इटली की भूमिका का प्रभाव**—प्रथम विश्वयुद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में भाग लिया था। उसे दक्षिणी मोर्चे पर आस्ट्रिया का मुकाबला करने का कार्य सौंपा, किन्तु आस्ट्रिया की सेना नें केपोरेटो (Caporetto) के युद्ध में इटली को बुरी तरह पराजित कर दिया। इसके उपरान्त पियावे नदी की इटली द्वारा मोर्चेबन्दी की गई और उसकी सहायता के लिए फ्रांस व इंग्लैण्ड की सेनाएं आ गईं और आस्ट्रिया को इटली ने जून 1918 में पराजित किया, तदुपरान्त अमेरिका एवं इंग्लैण्ड की सेनाओं की सहायता से इटली की सेना ने विटोरिया वेनिटो (Vittorio Veneto) के युद्ध में आस्ट्रिया को बुरी तरह पराजित किया, किन्तु दम तोड़ते हुए आस्ट्रिया को इंग्लैण्ड, फ्रांस या अमेरिका की सेनाओं की मदद से पराजित करना कोई महत्वपूर्ण एवं शौर्य की बात नहीं कही जा सकती। इटली निवासियों के लिए इन विजयों का इसी कारण कोई विशेष महत्व नहीं था। इटली निवासियों की धारणा बन चुकी थी इटली की सरकार एवं सेना निर्बल है।

(2) **सन्धिजनित बटवारे में इटली की उपेक्षा**—विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों के द्वारा उसे 26 अप्रैल, 1916 ई. को लन्दन की सन्धि के कारण मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ना पड़ा। इस सन्धि के अनुसार इटली को ट्रेण्टिनो, ट्रीस्ट, इस्ट्रिया, फ्यूम के अलावा टेल्मेशियन तटीय क्षेत्र, ब्रेनर के दर्रे तक टिरोल क्षेत्र और अल्बानिया, आदि दिए जाने थे, विल्सन ने इस गुप्त सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया।[2] इटली को केवल, ट्रेण्टिनो, डेल्मेशिया के तट का कुछ भाग एवं दक्षिणी टिरोल से ही सन्तोष करना पड़ा। फ्यूम जिस पर इटली निवासी आस लगाए बैठे थे, न मिला। इटली में सर्वत्र कहा जाने लगा, "**इटली की भावनाओं एवं विजयों पर कुठाराघात किया गया है।**"[3] फ्यूम न मिलने से जनता में रोष व्याप्त था जिसका लाभ उठाकर सितम्बर 1919 ई. को डेन्जियो (D. Aunznio) नामक इटली के एक कवि ने फ्यूम पर अपना अधिकार कर लिया, क्योंकि फासिस्ट डेन्जियो के साथ थे, अतः युद्ध के सैनिक फासिस्ट पार्टी में मिल गए। जनता गणतन्त्र से नफरत करने लगी।[4]

(3) **युद्धोपरान्त आर्थिक स्थिति**—इतिहासकार कैटलबी ने लिखा है, विश्व युद्ध के पश्चात् के कुछ वर्षों में इटली की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी, जिस कारण पूर्ण अर्थव्यवस्था फैली हुई थी।[1] परन्तु दूसरी ओर कुछ विद्वानों का मत है कि इटली की आर्थिक

1 "All with in the state, nothing out side the state, nothing against the state."
—*Mussolini.*

2 ई. एच. कार, दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृ. 59.

3 "Italian achievement were being discounted and Italian Imperialism denounced."
—*Italians*

4 "Filthy Parasites on the bitter blood of the nation."
—*Italians*

स्थिति कमजोर न हुई थी, परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि विश्वयुद्ध के बाद के आर्थिक संकट से इटली बच गया हो, ऐसा सम्भव न था। युद्ध का खर्चा 12 अरब मुद्रा एवं माल की हानि 3 अरब का होने का अनुमान था। व्यापार की स्थिति अत्यन्त अच्छी न थी। जिस देश को असन्तोष सन्धि ने निरुत्साह बना दिया था, उस देश की आर्थिक संकट ने रीढ़ तोड़ दी।[2]

(4) **देश में अव्यवस्था**—इतिहासकार केटलबी ने लिखा है, "**साधारणतया इटली में कहीं किसानों का उपद्रव हो रहा था, कहीं मिलों में हड़तालें, तोड़-फोड़ की वारदातें, साम्यवादी उग्र प्रदर्शन कर रहे थे तो कहीं मिलों में मजदूर वर्गों ने अपना अधिकार कर लिया था, कहीं किसानों ने भूमि पर कब्जा कर लिया था।**"[3] इस प्रकार इटली अव्यवस्था के दौर से गुजर रहा था। जनता परेशान हो चुकी थी। वे सैनिक जो कि केपोरेटों के युद्ध में विवशता से पीछे हटे थे उन्हें देशद्रोही घोषित किया गया जिससे सैनिक पूर्णतया असन्तुष्ट थे। इटली निवासी देश को व्यवस्थित देखना चाहते थे। वे एक ऐसी सरकार को चाहते थे जो कि देश को व्यवस्थित कर सके। कैटलबी के अनुसार इटली में पूर्ण अशान्ति का बोलवाला था, फासीवाद इस अशान्ति के अन्त की प्रेरणा का आकस्मिक प्रभाव था।"[4]

(5) **साम्यवाद का प्रभाव**—यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मुसोलिनी की पार्टी को सर्वाधिक सफलता दिलाने का कार्य साम्यवाद के विस्तृत प्रचार एवं प्रसार ने किया। साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से इटली की जनता पूर्णतया डर चुकी थी। पार्लियामेण्ट में नवम्बर, 1919 के निर्वाचन में समाजवादी 156 स्थान पा चुके थे। सम्राट का अन्त हो, लेनिन के विचारों को लागू किया जाए, इस प्रकार के विचार पनपने लगे। ऐसा लगता था कि इटली में मजदूरों की सरकार बन जाएगी। **साम्यवादी विस्फोट होगा।**[5] देश के विचारक, राष्ट्रवादी, बड़े-बड़े भूमिपति इससे चिन्तित थे। ऐसी परिस्थिति में मुसोलिनी ने अपनी पार्टी को लोगों के बीच सुदृढ़ता देने में पर्याप्त सफल कार्य किया।

(6) **हीगेलवाद का विचार**—हीगेल जिसका जन्म जर्मनी में हुआ था, का मानना था कि राज्य संसार की आत्मा है।[6] **वह व्यक्ति की महत्ता के स्थान पर राज्य की महत्ता पर बल देता था।**[7] उसके इन विचारों से इटली के फासीवाद पर विशेष प्रभाव पड़ा।

(7) **भविष्यवादी आन्दोलन**—मैरेनिटी नामक व्यक्ति जो कि इस आन्दोलन का नेता था, के विचार थे कि भूतकाल को भूलकर भविष्य के लिए मार्ग प्रदर्शित करने का पक्षधर था। उसके अनुसार इटली को अपने पराभव को भूलकर अपने पराभव को भविष्य में साम्राज्यवादी

1 "During the years following the war Italy was full of disorder and discontent arising from financial and economic hardhsip."
—Ketelbey, *A History of Modern Times*, p. 463.

2 **डॉ. गोपीनाथ शर्मा, यूरोप का इतिहास**, पृ. 402.

3 "There were agrarian riots, strikes and sabotage in the factories; there were Bolshevist demonstrations, the workman seized the factories, the peasants the land." —Ketelbey, *A History of Modern Times From* 1789, p. 463.

4 "It was Primary impluse towards integration and order and strong government, spontaneously arising from chaos." —*op. cit.*, p. 462.

5 "Itlay seemed on the verge of a communist revolution." —*op. cit.*, p. 463.

6 "State is the supreme manifestation of God on earth.

7 "Nothing for the individuak all for Italy."

बनकर मिटाना चाहिए। उसके युद्धवादी आन्दोलन के प्रभाव से फासी पार्टी की विचारधाराओं को प्रोत्साहन मिला।

उक्त परिस्थितियों ने फासीवाद को पनपने में पर्याप्त भूमिका निभाई। भाग्य से उसे मुसोलिनी जैसा नेता मिल गया। जिसने इटली में फासिज्म की पताका फहरा डाली और इटली में 1922 से 1944 तक फासीवाद का ही बोलबाला बना रहा।

मुसोलिनी का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं फासी दल
(EARLY LIFE OF MUSSOLINI AND THE FASCIST PARTY)

बेनिटो मुसोलिनी (Benito Mussolini) का जन्म 1883 ई. में उत्तरी इटली के रोमानिया नामक गांव में हुआ था। उसका पिता लोहार था, परन्तु उसके पिता के विचार समाजवादी थे। उसकी मां अध्यापिका थी। माता एवं पिता के विचारों का पूर्ण प्रभाव मुसोलिनी पर पड़ा और उसके विचार भी क्रान्तिकारी बनते चले गए। अठारह वर्ष की उम्र में ही उसने अध्यापन का कार्य शुरू किया, किन्तु शीघ्र ही वह स्विट्जरलैण्ड गया जहां उसने लोजेन तथा जनेवा के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की। उसके उग्रवादी विचारों ने स्विस सरकार को परेशान कर दिया। अतः वह इटली आकर शिक्षक का कार्य करने लगा। समाजवादी विचारों से प्रभावित मुसोलिनी को किसानों को भड़काकर विद्रोह करवाने के आरोप में 1908 ई. में जेल का मुंह भी देखना पड़ा। 1912 ई. में वह अवन्ति नामक समाजवादी पत्र का सम्पादक बन गया। विश्वयुद्ध का प्रारम्भ होना था कि मुसोलिनी के विचारों में अचानक परिवर्तन आ गया, युद्ध में भाग लेने का पक्ष लेने के कारण उसे अवन्ति के सम्पादक पद से हटना पड़ा, परन्तु उसने अपना **पोपोलो-डी इटेलिया** (Popolo 'd' Italia) नामक पत्र निकाला और इटली की सेना में भर्ती भी हो गया। उसके शौर्य एवं वीरता के लिए उसे कार्पोरल की उपाधि मिली।

युद्ध की समाप्ति पर मित्र राष्ट्रों द्वारा इटली से किए वायदे पूरे न करने पर मुसोलिनी ने **'फासी दी कामबाटिमेंटो'** (Faci di Combattimento) नामक दल बनाया। प्रारम्भ में उसका कहना था कि फासिज्म पार्टी विरोधी आन्दोलन है जिससे उसका प्रचार एवं प्रसार द्रुत गति से हुआ। धीरे-धीरे देश में फासिस्ट दलों की शाखाएं खोली गईं। जहां 1919 में इस संगठन की संख्या 22 और सदस्यों की संख्या 17,000 थी, वहीं 1921 में संगठनों की संख्या 2,000 और सदस्यों की संख्या 3 लाख से भी ज्यादा हो गयी। 1921 में 35 फासिस्ट सदस्य लोकसभा में आए।

मुसोलिनी ने इस दल को सैनिक रूप दिया। इसके सैनिक काली कमीज पहनते थे और इनका अपना अलग झण्डा भी था। ये लोग काले कुर्ते वाले कहलाते थे, मुसोलिनी इस दल का ड्यूस[1] (Duce) था। उसने कहना शुरू कर दिया कि जिस समय विश्वयुद्ध हो रहा था, सरकार की अकर्मण्यता स्पष्ट थी। युद्ध में विजय का श्रेय नागरिकों को है, सरकार को नहीं। फासिस्ट दल रचनात्मक कार्यों को कर सकता है और हमें सरकार बनाने का अधिकार भी है, क्योंकि हमने ही देश को युद्ध में झोंका एवं विजयी बनाया है।

मुसोलिनी ने नेपल्स में अस्त्र-शस्त्रों से लैस 40,000 स्वयं सेवकों की बैठक आयोजित की और स्पष्ट रूप से कह दिया कि साम्यवाद से निपटने के लिए सत्ता उनके हाथों सौंप दी

1 ड्यूस नेता या कमाण्डर को कहते थे, जो कि ईश्वर के समान माना जाता था।

जाए वरन् रोम पर आक्रमण किया जाएगा, कैटलबी ने लिखा 1922 में अपनी काली कुर्ती वाली सेना के साथ मुसोलिनी ने रोम हथिया लिया और शासन सत्ता हथिया ली। यदि विक्टर एमानुअल विरोध करता तो इटली गृह युद्ध की चपेट में होता। इस प्रकार 1922 से 1944 ई. तक मुसोलिनी इटली का वास्तविक शासक बना रहा।[1]

फासीवाद के सिद्धान्त
(PRINCIPLES OF FASCISM)

नाजीवाद की ही तरह फासिज्म के भी अपने कुछ सिद्धान्त थे। फासीवाद एक धर्म है। वे इसे लोकतन्त्र का विरोधी मानते थे तथा फासिज्म को एक चोटी कहा जाता था।[2] फासीवादियों का विश्वास था कि राज्य ही सर्वशक्तिमान सत्ता है। **व्यक्ति को राज्य के लिए समर्पित होना चाहिए, क्योंकि राज्य में सभी वस्तुएं विद्यमान हैं।**[3] वे फासिज्म को एक विश्वास कहते थे।[4] उनका कहना था कि फासीवाद यूरोप की एक विशेष संस्कृति होगा।[5] वे इस बात पर विश्वास रखते थे कि केवल फासिज्म ही सत्तावान रहे, क्योंकि केवल फासिज्म ही महान है।

मुसोलिनी की गृह नीति
(MUSSOLINI'S HOME POLICY)

गृहयुद्ध से देश को बचाने के लिए विक्टर एमानुअल ने मुसोलिनी को मन्त्रिमण्डल बनाने का अधिकार दे दिया। मुसोलिनी ने तुरन्त घोषित किया, **'कल इटली में मन्त्रिमण्डल न होकर उसकी (मुसोलिनी की) सरकार का निर्माण होगा।'**[6] 31 अक्टूबर, 1922 ई. को मुसोलिनी ने मन्त्रिमण्डल बनाया। जनता जो कि परिवर्तन की पक्षपाती थी, इस परिवर्तन को सहज स्वीकार कर दिया। **मुसोलिनी सम्पूर्ण सत्ता को अपने हाथ में करना चाहता था अतः उसने निम्न कदम उठाए :**

(1) **सत्ता का संगठन**—मुसोलिनी ने सर्वप्रथम राजनीतिक क्षेत्र में फासीवादी सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयत्न किया। उसने संसद के समस्त अधिकार अपने में निहित कर लिए। 1923 ई. में उसने यह नियम बनाया कि बहुमत प्राप्त दल को लोक सभा में $\frac{2}{3}$ स्थान प्राप्त होंगे, शेष $\frac{1}{3}$ स्थान अपने-अपने मत की प्राप्ति अनुपात में नियमतः विभाजित होंगे। 1924 ई. के निर्वाचन में इस नियम के अनुसार फासिस्टों को $\frac{2}{3}$ स्थान मिल गए। 1928 ई. के निर्वाचन में सम्पूर्ण लोक सभा में फासिस्टों का प्रभुत्व छा गया।

---

1 "In 1922 Mussolini's Black shirts marched upon Rome and seized the governments. Has the king resisted, civil war might have followed and Victor Emmanuel have taken the road of exile. Twenty four years sooner than, in fact, he did, but he invited "the strong man" to his side, and from 1922 to his fall in 1944 Mussolini was the ruler of Italy."
—C. D. M. Katelby : *A History of Modern Times From* 1788, p. 463.

2 "Democracies are like shifting sand, out state Political ideal is rock—Iranite peak." —*Mussolini*

3 "Every thing in the state, nothing out side the state, nothing against the state."

4 "Fascism was a faith, one of those spiritual forces which renovate the history of great peoples." —*Mussolini*

5 "Fascism was bound to become the standard type of civilization of our century for Europe the former of European renaissance." —*Mussolini*

6 "Tomorrow Italy will have not a ministry, but a government." —*Mussolini*

अब मुसोलिनी ने संसद से एक अधिनियम पारित करवाकर प्रधानमन्त्री के पद को सत्ताधारी के रूप में परिवर्तित कर दिया। वह संसद से अलग हो गया तथा जल, थल और वायु तीनों सेनाओं का अधिपति बन गया। उसे **शासन का प्रधान**[1] कहा जाने लगा। अब वह केवल सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। संसद के सदस्यों की नियुक्ति एवं पदच्युति उसके आदेशों पर निर्भर हो गई। **उसने शासन को सुचारु रूप से चलाने के निम्न वर्ग बनाए :**

(क) मिनिस्ट्री (Ministry)—यह एक प्रकार की कैबिनेट थी। इसमें फासीवादियों का बहुमत था।

(ख) ग्राण्ड कौंसिल ऑफ फासिस्ट पार्टी (Grand Council of Fascist Party)—यह फासीदल की समिति थी। इसके सदस्यों की संख्या 25 थी।

(ग) पार्लियामेण्ट (Parliament)—(i) **सीनेट**—इसके सदस्यों का चयन मुसोलिनी करता था तथा इसके सदस्य आजीवन होते थे।

(घ) चैम्बर ऑफ डिपुटीज (Chamber of Deputies)—मन्त्रिमण्डल एवं फासिस्ट पार्टी द्वारा इसके सदस्यों का चयन होता था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण शासन तन्त्र को मुसोलिनी ने अपने हाथों में ले लिया और वह तानाशाह बन बैठा।

(2) **इटली का फासिस्टीकरण**—मुसोलिनी द्वारा किए गए संसदीय परिवर्तनों का विरोध भी किया गया, किन्तु मुसोलिनी ने विरोधियों का दमन कर दिया। समाजवादी नेता मोटिओटो जो कि प्रबल विरोधी था, हत्या कर दी गई। विरोध न हो, इसके लिए लेखन, भाषण एवं पत्रों पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया। नौकरियों में फासिस्ट दल के सदस्य या फासिज्म में विश्वास करने वाले रखे जाते थे। जो फासिज्म में विश्वास नहीं करता था, नौकरी से निकाल दिया गया। उन्हें कठोर सजा दी जाती थी। गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई जिसका प्रमुख कार्य विरोधियों का पता लगाना था।

(3) **फासी दल का संगठन**—इटली के फासीकरण के लिए उसने भरसक प्रयत्न किया। उसने कहा कि इटली में केवल फासीदल ही रहेगा, क्योंकि वह महान है।[2] 1920 ई. में एक कानून द्वारा इस दल को मान्यता दे दी गई। स्थानीय एवं प्रान्तीय शाखाएं खोली गईं और इन सभी शाखाओं को केन्द्रीय संस्था से जोड़ा गया जिसका प्रधान मुसोलिनी था। 1926 ई. में एक नियम बनाया कि मन्त्रिपरिषद् के सदस्य ग्राण्ड कौंसिल के सदस्य होंगे। अतः मन्त्रिपरिषद् एवं कौंसिल में कोई भेद न रहा और 1938 तक एक समय ऐसा आया कि कौंसिल ही सर्वेसर्वा हो गई।

(4) **शिक्षा**—शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। फासीवादी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। शिक्षालयों में शिक्षक फासीदल में विश्वास करने वाले लिए जाने लगे। डीन एवं प्रोफेसर फासिस्ट दल में विश्वास रखने वाले ही चयनित होते थे। वैज्ञानिक उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न किया गया। मुसोलिनी कला का पक्षपाती था।[3] 6 वर्ष से 8 वर्ष तक के बालकों

1 "Head of the Government."
2 "All parties must end, must fall. I want to see a panorama of ruins around me, the ruins of the other political force—so that Fascism may stand alone, gigantic and dominant." —*Mussolini*
3 "Without art there is no civilization." —*Mussolini*

को फिगली-डेमा थूपा का सदस्य होना पड़ता था। 8 से 14 वर्ष तक बालकों को बालचर संस्था में प्रशिक्षण लेना होता था। 14 से 18 वर्ष तक के बालक अवानगर्डिया नामक संस्था में प्रशिक्षित किए जाते थे। 21 से 33 वर्ष तक की आयु का प्रत्येक पुरुष सैन्य शिक्षा लेता था। सैन्य-शिक्षा आवश्यक थी। इस प्रकार उसने शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 1921 में जहां निरक्षरों की संख्या का अनुपात 25 था, वहीं 1935 में घटकर वह 5% हो गया।

(5) **यहूदियों का विरोध**—हिटलर की तरह मुसोलिनी यहूदियों का विरोधी था। उसका मानना था कि इटली विशुद्ध आर्य जाति के लिए है। वह यहूदियों को अनार्य मानता था। यहूदियों को पढ़ने, नौकरी एवं विवाह, आदि अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता था।

(6) **पोप से सम्बन्ध**—सम्पूर्ण यूरोप के इतिहास में रोम के पोप का महत्व उल्लेखनीय रहा है। इटली के एकीकरण के बाद पोप अपने को वैटकिन का बन्दी माना करता था। वह रोमन कैथोलिक जनता को समय-समय पर जो आज्ञाएं दिया करता था, उसने इटली को अत्यधिक हानि होती थी। **मुसोलिनी चाहता था कि राज्य का ध्यान धर्म से हटकर वैदेशिक मामलों की ओर अधिक होना चाहिए।** अतः मुसोलिनी ने पोप से बातचीत कर समझौता करना उचित समझा। उधर रोम का पोप समाजवादी प्रभाव से डरा हुआ था। अतः दोनों के बीच 11 फरवरी, 1629 ई. को **लेटरिन की सन्धि** हुई। **इसके अनुसार :**

(i) रोम पर इटली की सरकार का अधिकार मान्य हुआ।
(ii) वेटिकन नगर पोप का स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया गया।
(iii) पोप ने 10 करोड़ डालर देना स्वीकार किया। साथ में अपने प्रादेशिक अधिकार को छोड़ दिया।
(iv) सरकार पादरियों का वेतंन देगी।
(v) कैथोलिक धर्म राज धर्म माना गया।
(vi) शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।
(vii) धार्मिक विवाह प्रामाणिक घोषित्त हुआ।

इस प्रकार पोप ने स्वयं कहा, "**इटली ने ईश्वर पा लिया है और ईश्वर को इटली मिल गया है।**"[1] इससे मुसोलिनी का महत्व बढ़ गया और राज्य की सरकार एवं राज्य के नागरिकों का धार्मिक विवादों से ध्यान हटकर देश के विकास की ओर गया। उसके इस कार्य की विद्वानों ने प्रशंसा की है।[2]

(7) **आर्थिक क्षेत्र में सुधार**—जिस समय मुसोलिनी ने सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ली, इटली आर्थिक कष्ट से गुजर रहा था। इटली का बजट करोड़ों रुपयों के घाटे में चल रहा था। अतः देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाना अत्यन्त आवश्यक था, **इसके लिए उसने अनेक कार्य किए :**

(अ) **सिण्टीकेटिज्म को प्रोत्साहन**—सिण्टीकेटिज्म का तात्पर्य उस विचारधारा से है, जिसका व्यावसायिक सरकार बनाने की योजना समाजवादियों, मजदूरों एवं फासिस्टों में पनप रही थी। ये लोग चाहते थे कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए मिलकर कार्य

1 "God has been restored to Italy and Italy has been restored to God." —*Pius XI*
2 "Mussolini's greatest achievement in Foreign policy was the Lateran Treaty of 1929 with Pope Pius XI." —Preston Slosson, *Europe Since* 1815, p. 392.

करना चाहिए। 1926 ई. में एक नियम द्वारा प्रान्तीय एवं स्थानीय शाखाएं खोली गईं और सम्पर्क केन्द्रीय शाखाओं से जोड़ा गया। केन्द्र में बनाई गई 13 सिण्टीकेटों का नियन्त्रण निगम मन्त्री के हाथों दिया गया। यह पद स्वयं मुसोलिनी ने संभाला।

हर व्यवसाय की सिण्टीकेट अलग-अलग थी और अपने-अपने स्तर से कार्य देखती थीं, परन्तु ये अपना सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से स्थापित नहीं कर सकती थीं।

(ब) श्रमिक अधिकार पत्र—सन् 1927 ई. में श्रमिक अधिकार पत्र घोषित किया गया जिसके अनुसार रविवार छुट्टी का दिन घोषित किया गया। मजदूरों की चिकित्सा, मुआवजे, मृत्यु एवं बुढ़ापे सम्बन्धी बीमे, आदि के अधिकारों को मान्यता दी गई। मजदूर के लिए 8 घण्टे का कार्य निश्चित किया गया। इससे अधिक पर अतिरिक्त धन देय घोषित किया गया। हड़ताल, आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(स) कारपोरेट स्टेट—1928 ई. में एक नियम पास किया गया। इस नियम से आर्थिक क्षेत्र को राजनीति से जोड़ा गया। इसका तात्पर्य था कि आर्थिक विभागों को अब देश की लोकसभा बनाने का अधिकार मिल गया। यह कार्य केन्द्र की 13 सिण्टीकेट्स अपनी सामान्य परिषदों के माध्यम से करती थीं।

(द) निगमात्मक व्यवस्था—1934 ई. में अर्थव्यवस्था को निगमात्मक व्यवस्था में बदला गया। देश में 22 निगमों की स्थापना की गई। निगमों का मुख्य कार्य वितरण एवं मूल्य की व्यवस्था ठीक करना, श्रम के झगड़ों को हल करना, उत्पादन को बढ़ाना और सरकार की विशेष परामर्श देना था। इस व्यवस्था से देश को काफी लाभ मिला। **वास्तव में यह देश की उन्नति का महान प्रयत्न था।**

(य) कृषि सम्बन्धी कार्य—रोम तथा नेपल्स के दलदली भागों को सुखाकर कृषि योग्य बनाया गया। खाद, औजार और आधुनिक माध्यमों से कृषि की व्यवस्था की गई। गेहूं का उत्पादन बढ़ाया गया। विदेशों से आने वाले अनाज पर कर लगाया गया जिससे स्वदेशी कृषि को प्रोत्साहन मिला। चलचित्रों के माध्यम से कृषि की शिक्षा दी गई।

(र) औद्योगिक कार्य—मुसोलिनी ने रेलों को विकसित किया। यातायात को सुगम बनाया। रेशम का उत्पादन किया गया। इटली में जहाज बनाने के कारखाने बनाए गए। इन कारखानों की देख-रेख के लिए बोर्ड बनाया गया विद्युत शक्ति का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया गया। इन औद्योगिक कार्यों से इटली की आर्थिक स्थिति काफी हद तक सुधरी।

(ल) बेरोजगारी दूर करने के उपाय—बेरोजगारी दूर करने के लिए स्कूलों, कॉलेजों, सड़कों, इमारतों, आदि को ठीक किया गया जिससे अनेक बेरोजगार काम में लग गए। यहूदियों के प्रति घृणा भरी गई। सैन्य व्यवस्था पर बल दिया गया, इटली के अनेक बेरोजगार सेना में भर्ती हो गए। कृषि को प्रोत्साहित करने से बेराजगारी कम हुई।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि मुसोलिनी ने आर्थिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए, परन्तु **प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण इटली का उतना आर्थिक विकास न हो पाया जितना प्रयत्न मुसोलिनी ने किया था।** फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा की उसकी गृह-नीति ने देश को राष्ट्रवादी एवं फासीवादी बनाने में कोई कसर न छोड़ी।

मुसोलिनी की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF MUSSOLINI)

इटली यद्यपि विश्वयुद्ध में विजयी हुआ था, किन्तु मित्रराष्ट्रों ने उससे जो भी वायदे किए थे, पूरे नहीं किए थे। मुसोलिनी का विचार था कि यह इटली का अपमान है। वह चाहता था कि इस अपमान का बदला मित्र राष्ट्रों पर भरोसे की नीति छोड़कर साम्राज्यवादिता की नीति अपनाकर लिया जा सकता है। उसका मानना था कि मित्र राष्ट्रों द्वारा बनाई गयी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं किसी देश के निवासियों की भावुकता एवं सिद्धान्तों से धराशायी हो जाती हैं। इनका अस्तित्व देशवासियों की भावनाओं तक ही सीमित है।[1]

मुसोलिनी चाहता था कि बाल्कान प्रायद्वीप, पश्चिमी एशिया एवं अफ्रीका में साम्राज्य विस्तार कर इटली के पराभव को दूर किया जाए। उसके विचार में शान्ति का अर्थ केवल युद्ध के लिए थोड़ा-सा विश्राम मात्र था।[2] उसने एक बार कहा भी था, "**युद्ध का सामना करने वाले व्यक्तियों पर ही श्रेष्ठता की मुहर लग सकती है।**"[3] मुसोलिनी भूमध्यसागर को इटली की झील के रूप में परिणत करना चाहता था।[4] अपने इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर मुसोलिनी ने अपनी विदेशी नीति को कार्यान्वित किया। इटली की जनता ने उसका इसलिए स्वागत किया क्योंकि वह भी इटली को उच्चतम शिखर पर देखना चाहती थी।

अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत मुसोलिनी ने निम्नलिखित कार्य किए :

(1) **डोडिकानीज तथा रोड्स द्वीपों का सैन्यीकरण**—1920 ई. में हुई सेव्र सन्धि के अनुसार डोडिकानीज और रोड्स इन दोनों द्वीपों पर यूनान ने अधिकार कर लिया जबकि ये पूर्व में इटली के अधीम थे। इटली की निगाह अभी भी इन दोनों द्वीपों पर लगी थी। टर्की के सुल्तान कलामपाशा द्वारा यूनान को पराजित करने के उपरान्त सेव्र की सन्धि तोड़े जाने से इटली को अप्रत्याशित लाभ हो गया। 24 जुलाई, 1923 ई. को हुई लोजान की सन्धि ने सेव्र की सन्धि को संशोधित किया और वे दोनों द्वीप इटली को प्राप्त हो गए। वास्तव में मुसोलिनी भूमध्य सागर को इटैलियन झील बनाना चाहता था। अतः उसने पूर्वी भूमध्य सागर में स्थित इन दोनों द्वीपों का सैन्यीकरण शुरू कर दिया। उसने नौ सैनिक अड्डे बनाए तथा द्वीपों की किलेबन्दी कर डाली। यह उसकी विदेशी नीति का प्रथम अभियान था।

(2) **टाइरोल के प्रति नीति**—पेरिस की सन्धि के अनुसार टाइरेल का ट्रेण्डिनो नामक क्षेत्र इटली को सौंप दिया गया था। टाइरोल का वह भाग जो कि जर्मन बहुल था, इटली के क्षेत्र में आ गया। इटली ने अपने इस वायदे को कि उनके साथ समानता का व्यवहार करेगा, भुलाकर कोई परवाह नहीं की। **मुसोलिनी ने गैरइटैलियन्स को इटैलियन प्रभाव में मानना शुरू कर दिया।** उसने यह भी स्पष्टतया घोषित किया कि वह इटली के मामलों में कोई विदेशी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रकार मुसोलिनी के हौंसले बढ़ते ही चले गए।

1 "All international or league organization crumble to the ground when ever the heart of nations is stirred deeply by sentimentaly idealist or practical considerations." —*Mussolini*

2 "Peace is a pause for war." —*Mussolini*

3 "Only war carries human energies to the highest level and puts the seal of nobility upon who have the courage to undertake it." —*Mussolini*

4 "He aspired to transform the Mediterranean into an Italian lake."
—Anderson, *Modern Europe in Perspective*, p. 478.

(3) **करफू पर बम वर्षा**—यूनान तथा अल्बानिया के सीमा विवाद को सुलझाने के लिए 'डीलिमिटेशन कमीशन' कार्य कर रहा था कि यूनान में अगस्त 1923 ई. को कुछ इटैलियन अधिकारियों की हत्या कर दी गई। मुसोलिनी ने, जो कि यूनान को चेतावानी दी कि 5 दिन के भीतर यूनान मामले की जांच कराकर अपराधियों को दण्ड दे तथा इटली को 5 करोड़ थीरा युद्ध का हर्जाना दे। यूनान ने इस बात को राष्ट्र संघ के सम्मुख रखा। मुसोलिनी ने यूनान के करफू टापू पर बम वर्षा की और उस पर अधिकार कर लिया, किन्तु इंग्लैण्ड के दबाव के कारण उसे टापू खाली करना पड़ा, परन्तु उसने क्षतिपूर्ति की रकम वसूल कर ही ली, यह मुसोलिनी की एक महत्वपूर्ण सफलता थी। इससे राष्ट्र संघ की निर्बलता सिद्ध हुई और मुसोलिनी को अग्रिम कार्यवाही हेतु प्रोत्साहन मिला।

(4) **यूगोस्लाविया से सन्धि 27 जनवरी, 1924 ई.**—इटली और यूगोस्लाविया के सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। दोनों के बीच प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इटली वार्साय की सन्धि में परिवर्तन का इच्छुक था, जबकि यूगोस्लाविया वार्साय की सन्धि को यथावत रखना चाहता था। एड्रियाटिक सागर में दोनों के हित आपस में टकराते थे, किन्तु मुसोलिनी फ्यूम पर अधिकार कर भूमध्य सागर में अपनी स्थिति को दृढ़ करना चाहता था। अतः उसने यूगोस्लाविया से 27 जनवरी, 1924 ई. को सन्धि की।

इस सन्धि से जारा का बन्दरगाह और डालमेशिया का समुद्र तट यूगोस्लाविया को दिया गया। इटली का फ्यूम पर अधिकार हो गया, परन्तु फ्यूम का बन्दरगाह यूगोस्लाविया के पास ही रहा। फ्यूम का नगर प्राप्त करना मुसोलिनी की विदेश नीति के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण सफलता थी।

(5) **रूस से 1924 ई. की सन्धि**—मुसोलिनी यूरोप की राजनीति में किसी शक्तिशाली मित्र का साथ ढूंढ रहा था। उसने देखा कि रूस वार्साय सन्धि का विरोधी है और परिवर्तन का इच्छुक है। अतः मुसोलिनी ने फरवरी 1924 ई. में रूस के साथ व्यापारिक सन्धि की और साथ ही रूसी सरकार को मान्यता प्रदान की। इस सन्धि से हालांकि इटली को कुछ प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसने यूरोपीय राजनीति में रूस को मित्र बना लिया, जिससे राजनैतिक मंच पर इटली का सम्मान बढ़ गया।

(6) **रोम पैक्ट 1935 ई.**—इटली के साथ फ्रांस के व्यापारिक सम्बन्ध व्यापारिक मतभेदों के कारण अच्छे नहीं थे। जहां ट्यूनिस, कार्सिका और सेवाय पर मुसोलिनी अधिकार करना चाहता था, वहीं इन पर फ्रांस का अधिकार था। भूमध्यसागर में भी दोनों के हित टकराते थे, परन्तु हिटलर के उत्कर्ष ने दोनों को करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिटलर एवं मुसोलिनी दोनों के आस्ट्रिया सम्बन्धी विचारों ने **रोम-पैक्ट** को जन्म दे दिया। इसके अनुसार :

(1) फ्रांस के 44,500 वर्ग मील अफ्रीकी क्षेत्र इटली को प्राप्त हो गए।

(2) दोनों देशों में प्रतिद्वन्द्विता समाप्त हो गई।

(3) आस्ट्रिया पर संकट आने पर दोनों देश परस्पर विचार-विमर्श करेंगे।

(4) यूरोप की स्थिति यथावत् रहेगी।

(7) **स्ट्रेसा की सन्धि**—यह सन्धि भी हिटलर के भय से 1935 ई. में स्ट्रेसा नामक स्थान पर इंग्लैण्ड से की गई। इसका महत्व इस बात से है कि इंग्लैण्ड, इटली और फ्रांस के गठबन्धन ने हिटलर के विरोध में एक मोर्चे का कार्य किया।

(8) **अन्य देशों से सन्धियां**—मुसोलिनी ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए 1926 ई. में रूमानिया और स्पेन से, 1927 ई. में हंगरी से, 1928 ई. में यूनान व टर्की से, 1932 ई. में रूस से सन्धियां कीं। इंन सन्धियों से यूरोपीय जगत में इटली ने अपना सम्मानित स्थान बना लिया। वेन्स महोदय ने तो यहां तक कहा है कि 1930 **ई. तक मुसोलिनी व्यावसायिक एवं कूटनीतिक प्रभाव बढ़ाने में सफल रहा।**

(9) **अबीसीनिया पर अधिकार**—मुसोलिनी अबीसीनिया पर अधिकार करने का इच्छुक था। मुसोलिनी कें लिए उपनिवेश स्थापित करना अत्यधिक जरूरी इसलिए भी हो चुका था, क्योंकि इटली में बेकारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी। अबीसीनिया पर किसी देश ने अपना दावा घोषित नहीं किया था। अबीसीनिया व्यापारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। वहां पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल विद्यमान था। सोमालीलैण्ड और आस्ट्रिया के बीच के इस क्षेत्र पर अधिकार कर मुसोलिनी अपने साम्राज्य का विस्तृत प्रसार करना चाहता था। उसने कहा भी था कि औद्योगिक सामग्री की प्राप्ति के लिए वह युद्ध करने को भी तैयार है।[1] उसने कहा, ''**यदि उसे विजय मिलेगी तो वह अबीसीनिया का बादशाह बनेगा अन्यथा वह इटली का शासक है ही।**''[2]

5 दिसम्बर, 1934 ई. को इटेलियन सोमालीलैण्ड के पास लगे वालवाल (Walwal) के नगर में इटली और अबीसीनिया की सेनाओं में संघर्ष हो गया, मुसोलिनी ने अबीसीनिया की सीमाओं पर अपनी सेनाएं एकत्र कीं और 3 अक्टूबर, 1935 ई. को अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। इटली के विरुद्ध लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्ध सफल न हो पाए। अन्ततः 7 दिसम्बर, 1935 ई. को फ्रांस के विदेश मन्त्री लावेल तथा इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री सैम्यूएल होर ने इटली की सन्तुष्टि हेतु पेरिस में समझौता किया, परन्तु समझौता लागू न हो सका और 5 मई, 1936 ई. को मुसोलिनी की सेना आदिस अबाबा में घुस गई और 9 मई, 1936 ई. को मुसोलिनी अबीसीनिया का सम्राट घोषित कर दिया गया। अबीसीनिया का शासक हेल हिलासी असहाय था। उसकी पुकार किसी ने न सुनी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्र संघ के द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्ध इटली का कुछ न कर सके। यदि इंग्लैण्ड और फ्रांस इटली के विरुद्ध एक हो जाते और सैनिक कार्यवाही की धमकी देते तो शायद मुसोलिनी अबीसीनिया पर अधिकार न कर पाता। कार ने लिखा है, ''**यह राष्ट्र संघ के लिए भयंकर मार थी।**''[3] गैरेट के शब्दों में, ''**अबीसीनिया की लाश ने यूरोप के जीवन को विषाक्त कर दिया।**''[4] लैंगसम महोदय ने तो यहां तक लिखा है, ''रोम बर्लिन धुरी की सम्भावना यहीं से स्पष्ट हो चुकी थी।''[5]

(10) **राष्ट्र संघ का परित्याग** (1936 ई.)—इसके तुरन्त बाद इटली ने राष्ट्र संघ की सदस्यता से हाथ खींच लिए।

(11) **रोम-बर्लिन धुरी की स्थापना**—हिटलर इस बात से पूर्णतया भिज्ञ था कि मुसोलिनी को अपनी ओर करके ही आस्ट्रिया पर अधिकार पाया जा सकता है। यूरोपीय राजनीति

1 "War is to man what maternity is to woman." —*Mussolini*
2 "If we win, I shall be king of Abyssinia. If we lose, I shall be king of Itlay." —*Mussolini*
3 "The Italian Victory was a grave blow to the League." —*Carr*
4 "The corpse of Abyssinia remained to poison the life of Europe." —*Garrat*
5 "The Rome-Berlin axis began to capitalize its nuisance value in international politics." —*Langsom*

इंटली के इर्द-गिर्द घूम रही थी। अबीसीनिया के प्रति इटली के रवैये ने फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं रूस को चौकन्ना कर दिया था। फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं रूस के व्यवहार से भी इटली खिन्न था कष्ट के समय हिटलर ने इटली की पर्याप्त मदद की। मुसोलिनी समझ गया कि हिटलर सच्चा मित्र है। अतः इटली व जर्मनी के बीच 26 अक्टूबर, 1936 ई. को एक समझौता हुआ जो इतिहास में रोम-बर्लिन धुरी के नाम से प्रख्यात है, **इस समझौते की शर्तें इस प्रकार थीं :**

(i) दोनों देश समाजवादी व्यवस्था का विरोध करेंगे।

(ii) स्पेन की रक्षा की जाएगी।

(iii) दोनों देश समय-समय पर वार्ता करेंगे।

(iv) जर्मनी का आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया पर मौन अधिकार स्वीकार कर लिया गया। आस्ट्रिया से किए गए 1919 ई. के समझौते को जैसे इटली ने भुला ही दिया था। शीघ्र ही इस सन्धि में जापान को शामिल कर लिया गया और रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी का निर्माण हो गया।

(12) **अल्बानिया पर अधिकार**—इटली का अल्बानिया के लिए विशेष महत्व था। इटली को भूमध्य सागर पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए औटेण्ड्रो के जलडमरूमध्य पर अधिकार करना जरूरी था। औटेण्ड्रो के एक ओर इटली और दूसरी और अल्बानिया थे। 1925 ई. में अल्बानिया में गणतन्त्रात्मक शासन स्थापित कर दिया गया था। इसका राष्ट्रपति जूगो (Zugo) नामक व्यक्ति हो गया। अल्बानिया आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा था। उसकी स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः 27 नवम्बर, 1926 ई. को अल्बानिया ने इटली से सन्धि की। **इस सन्धि की धाराएं निम्नांकित थीं :**

(i) अल्बानिया के सैनिकों को इटली के सैनिक पदाधिकारी प्रशिक्षित करेंगे।

(ii) अल्बानिया इटली के अहित में किसी अन्य देश से सन्धि नहीं करेगा।

(iii) दोनों देश बाह्य आक्रमणकारी का सामना मिलकर करेंगे। यह शर्त 20 वर्ष तक रहेगी।

इस प्रकार एक प्रकार से अल्बानिया पर इटली का ही प्रभुत्व छा गया। इसी समय अल्बानिया और युगोस्लाविया के बीच युद्ध का संकट दिखाई देने लगा। मुसोलिनी ने अल्बानिया में उसकी सहायता के बहाने अपनी सेनाएं भेज दीं और 1936 ई. में आक्रमण कर इटली में मिला लिया।

(13) **स्पेन से सम्बन्ध**—विश्वयुद्ध के दौरान स्पेन की तटस्थता की नीति ने आर्थिक रूप में अन्य देशों के मुकाबले स्पेन की आर्थिक स्थिति को बिगड़ने न दिया था, परन्तु विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भ्रष्टाचार का जो दौर स्पेन में चला, उसने स्पेन की कमर तोड़ दी। इस समय, समय के साथ-साथ समाजवादी, साम्यवादी, अराजकतावादी, गणतन्त्रवादी अनेक दल पनपने लगे। सभी स्पेन में अपना प्रभाव बढ़ाकर अपनी सरकार स्थापित करना चाहते थे। 1913 ई. में गणतन्त्र की स्थापना स्पेन में हुई। स्पेन में फासिस्टी नेता जनरल फ्रेंको गणतन्त्र को उखाड़कर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था।

इधर इटली भूमध्य सागर में प्रभाव बढ़ाने के कारण स्पेन में रुचि लेने लगा। उसने जनरल फ्रेंको को सहायता पहुंचाना शुरू कर दिया। जर्मनी ने इटली का साथ दिया और अन्ततः 1939 ई. में जनरल फ्रेंको की विजय हुई। जनरल फ्रेंको की विजय से इटली को

यह लाभ हुआ कि भूमध्य सागर में उसके विरोध में बनने वाले गुट की सम्भावना समाप्त हो गई।

(14) **सज्जन समझौता** 1937—2 जून, 1937 ई. को इटली ने इंग्लैण्ड के साथ एक समझौता किया जो सज्जन समझौता (Gentlemens Agreements) कहलाता है। इसके अनुसार स्पेन की तटस्थता पर जोर दिया गया। भूमध्य सागर में दोनों ने एक-दूसरे की स्वतन्त्रता मानी।

मुसोलिनी ने इससे ठीक बाद नौसेना बढ़ा ली। इधर इटली को सन्तुष्ट करने की ब्रिटेन की नीति से ब्रिटिश इटालियन एक्ट के अनुसार अबीसीनिया पर इटली की सत्ता को मान्यता दे दी।

(15) **इटली व जर्मनी का समझौता** 22 मई, 1939 ई.—22 मई, 1939 ई. को इटली ने जर्मनी के साथ राजनैतिक समझौता किया। इस समझौते को फौलादी समझौता (Steel Pact) भी कहा जाता है। इसके अनुसार दोनों एक-दूसरे की सैन्य सहायता करेंगे।

(16) **द्वितीय विश्वयुद्ध व इटली**—हिटलर ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण करके द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म दे दिया। स्टील पैक्ट के अनुसार इस समय मुसोलिनी को हिटलर का साथ देना चाहिए था, किन्तु जैसा कि हेजन ने लिखा है, **"इस कारण इटली अशक्त था, जर्मनी के हित में उसका तटस्थ रहना ठीक था। स्पेन के गृहयुद्ध में वह पूर्णतया थक चुका था—वह युद्ध का विचार भी नहीं कर सकता था।"**[1] कुछ भी हो अन्ततः 11 जून, 1940 ई. को मुसोलिनी ने हिटलर की ओर से मित्र राष्ट्रों के विरोध में युद्ध की घोषणा कर दी। प्रारम्भ में उन्हें विजय मिली, किन्तु बाद में उसे असफलता मिली और एक दिन ऐसा भी आया जब 25 जुलाई, 1943 ई. को उसे बन्दी बना लिया गया और 18 अप्रैल, 1945 ई. को देश की जनता ने उसे उसकी प्रेयसी पेताच्ची (पेताच्यी) के साथ मृत्युदण्ड दे दिया।

इस प्रकार अन्ततः कहा जा सकता है कि मुसोलिनी ने इटली को चरम उत्कर्ष तक तो उठाया, किन्तु उसकी फासिज्म की संवर्धन की महत्वाकांक्षा उसके वध का कारण बनी।[2]

प्रश्न

1. इटली में फासिस्टवाद के उदय के कारणों व प्रगति का वर्णन कीजिए।
2. फासिस्टवाद से आप क्या समझते हैं? इसके उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण इटली में मुसोलिनी की उदय हुआ।
4. मुसोलिनी की गृह नीति व उनके परिणामों का वर्णन कीजिए।
5. मुसोलिनी की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।

---

1 Hajen, C. D., *Modern Europe upto* 1945, p. 389.

2 "The outcome was that Fascism's 'will to power' brought not glory and Empire but the end of Fascism and the execution of Duce." —*Benns*

32

जर्मनी में नाजीवाद

[NAZISM IN GERMANY]

भूमिका
(INTRODUCTION)

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी पूर्णतया पराजित हो गया था और हाहेनजालर्न राजवंश के शासक विलियम द्वितीय के शासन काल का भी अन्त हो गया। जर्मनी में हरएबर्ट के नेतृत्व में प्रजातान्त्रिक सरकार बनी। एबर्ट ने वाइमर नामक नगर में लोकसभा को बुलाया। अतः इसे **वाइमर गणतन्त्र** की सरकार भी कहा जाता है, परन्तु वाइमर गणतन्त्र जर्मनी में पूर्ण शान्ति एवं समृद्धि स्थापित करने में सफल न हुआ। इस असफलता का प्रमुख कारण उसके द्वारा उस वार्साय की सन्धि पर 28 जून, 1919 को हस्ताक्षर करना था जिसे जर्मनी की जनता ने एवं यहां तक कि उसके प्रतिनिधियों ने भी मन से कभी स्वीकार नहीं किया। इसका पूरा लाभ जर्मनी में पनप रहे नाजी[1] दल ने उठाया, जिसका नेता एल्डाफ हिटलर था, नाजी दल ने हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में अपनी तानाशाही स्थापित कर ली।

हिटलर का संक्षिप्त जीवन परिचय
(LIFE OF ADOLF HILTER)

हिटलर का पूरा नाम एडाल्फ हिटलर था। उसका जन्म आस्ट्रिया एवं बवेरिया की सीमा पर स्थित ब्रूनो (Braunau) नामक गांव में 20 अप्रैल, 1889 ई. को हुआ था। हिटलर कला प्रेमी था। अतः वह वास्तु कला की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से विएना गया, परन्तु विद्यालय की प्रवेश परीक्षा की असफलता के कारण उसका प्रवेश न हो सका। अतः उसने अपनी अजीविका का माध्यम लोगों के घरों में चित्रकारी बना लिया। हिटलर का स्वभाव साहस एवं शौर्य की प्रतिमूर्ति था।

विएना में मजदूरों के द्वारा प्रतिस्पर्धी नजरों से देखे जाने पर हिटलर विएना से 1912 ई. में म्यूनिख आ गया। जब 1914 में महायुद्ध छिड़ा तो बवेरिया की सेना में भर्ती हो गया। युद्ध के दौरान उसने **'आयरन क्रास'** (Iron Cross) की पदवी प्राप्त की। उसे विश्वास था कि विश्वयुद्ध में जर्मनी विजयी होगा, किन्तु उसकी यह आशा निराशा में बदल गई। उसकी

1 जर्मनी ने इटली की फासिस्टवादी विचारधारा को राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism) के रूप में अपनाया। इसी विचारधारा के लोगों को नाजी (Nazi) अथवा नात्सी कहा गया। नाजीवाद का नेता हिटलर था।

यह धारणा थी कि समाजवादियों, साम्यवादियों और यहूदियों के देशद्रोह के कारण ही जर्मनी को पराजय का मुंह देखना पड़ा है। **इधर वार्साय की सन्धि ने आग में घी का कार्य किया और उसने वार्साय की व्यवस्था को जर्मनी के लिए कलंक माना और वार्साय की सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाली वाइमर गणतन्त्र की सरकार का अन्त करने के लिए कार्यक्रम निश्चित करने का बीड़ा उठाया।**

कार्यक्रम—युद्ध समाप्त होने पर हिटलर म्यूनिख आ गया और यहां पर गुप्तचर विभाग में भर्ती हो गया। इसी समय म्यूनिख में श्रमिक दल नामक एक दल गुप्त रूप से सरकार की नीतियों के खिलाफ अपना कार्य कर रहा था। इस दल में 6 सदस्य थे। दल की बैठकें म्यूनिख में शराबखाने के एक कमरे में हुआ करती थीं। हिटलर ने इसकी सदस्यता स्वीकार कर ली और इस दल का सातवां सदस्य बन गया।

शीघ्र ही हिटलर इस दल का नेता बन गया और इसका नाम बदलकर **राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन श्रमिक संघ** (National Socialist German Labour Party) रख दिया। इसे नाजी पार्टी (Nazi Party) भी कहा गया।

हिटलर ने दल में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए लेबर पार्टी के संस्थापक ड्रेक्सटर को पार्टी से अलग कर दिया। उसने रोजनबर्ग (Rogenberg), गोबल्स (Gobbeles), हैस (Hess) और गोयरिंग (Goering), आदि को अपना सहयोगी बनाया।

हिटलर ने 8 नवम्बर, 1923 ई. को वाइमर सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे सफलता न मिली। उसे 5 वर्ष कैद की सजा सुनाई गई, किन्तु उसके अच्छे व्यवहार के कारण 8 ही माह में उसे कारावास से मुक्त कर दिया गया। अपने 8 माह के कारावास के दौरान उसने अपनी आत्मकथा लिखी, जो इतिहास में **'मेरा संघर्ष'** के नाम से जानी जाती है। 'मेरा संघर्ष' (*Main Kampf*) में हिटलर ने अपनी पार्टी के भावी उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों का विस्तार से उल्लेख किया है। इस पुस्तक का प्रथम भाग 1925 ई. में और द्वितीय भाग 1927 ई. में प्रकाशित हुआ।[1] **इस पुस्तक को नाजियों की बाइबिल भी कहा जाता है।**

पार्टी का संगठन—जेल से छूटने के पश्चात् हिटलर ने नाजी पार्टी का संगठन नये सिरे से किया। अपने दल को पूर्ण विकास देने में उसे 7 वर्ष का समय लगा। उसने अपने दल का एक चिन्ह बनाया। यह चिन्ह स्वास्तिक का चिन्ह था। उसने अपने दल का विकास सुदूर गांवों तक भी किया और अपने सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए हर क्षेत्र में एक प्रचारक भेजा। उसने हिटलर यूथ सोसाइटी (Hitler Youth Society) की स्थापना की। इस कारण उसे नवयुवकों का सहयोग मिल सका। उसने पार्टी के कार्य को सुगमता के लिए दो वर्गों में विभक्त किया।

(A) Schuiz Stufflen (S.S.)—इसके सदस्य नाजी नेताओं की रक्षा करते और काले रंग की कमीज पहनते थे।

(B) Sturm Ahteilungen (S. A.)—नाजी पार्टी की सुरक्षा तथा अन्य पार्टियों की एकता को तोड़ना इनका प्रमुख कार्य था। ये भूरे रंग की कमीज पहनते थे। इस प्रकार हिटलर

1 सी. डी. एच. हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 680।

ने पार्टी का संगठन इस प्रकार किया कि प्रत्येक सदस्य अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग तरह से कार्य कर सका।

हिटलर द्वारा सत्ता की प्राप्ति—हिटलर के द्वारा पार्टी के संगठन एवं तीव्र प्रचार ने पार्टी में नई जान डाल दी। हेजन के अनुसार, "उन्होंने विपत्ति तथा असन्तोष के प्रत्येक कारण से लाभ उठाया। जब 1830 का विश्वव्यापी अवनमन घटित हुआ, तब इसका उन्होंने आश्चर्यजनक लाभ उठाया। फलतः इस दल के मानने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन शीघ्रता से बढ़ी।[1] फलतः 1930 के चुनावों में उनको दिये गये मतों की संख्या 64 लाख 1 हजार पहुंच गई[2] और उन्होंने 107 स्थान प्राप्त कर लिये। 1932 ई. के राष्ट्रपति चुनाव में उनके प्रत्याशी को 11,300,000 मत प्राप्त हुए। उसी वर्ष अप्रैल के अन्तिम मतदान में उसको 13,40,00,000 मत प्राप्त हुए। संसदीय निर्वाचनों में उनको रैक्सटैग में 230 स्थान मिले।[3] हिटलर का सितारा बुलन्द था। उसकी विजय एक ग़म्भीर षड़्यन्त्र, पोपन षड्यन्त्र ने सफल बना दी। चा़न्सलर कुर्तवान श्लीचर को उसका मित्र फ्रांस बान पापेन अपदस्थ करना चाहता था। उसने राष्ट्रपति हिण्डेनबर्ग को कहा कि जर्मनी को समाजवाद से खतरा है। इस वॉल्शेविक खतरे से जर्मनी को केवल हिटलर ही बचा सकता है। हिण्डेनबर्ग ने भयभीत होकर हिटलर को प्रधानमन्त्री बनाया और पापेन उप-प्रधानमन्त्री बना, परन्तु हिटलर चान्सलर पद से ही सन्तुष्ट नहीं था। लिप्सन के अनुसार, "**उसने सम्पूर्ण शासन सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने के लिए सभी उचित, अनुचित साधनों का सहारा लिया और सम्पूर्ण शासन सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली।**"[4]

चांसलर बनते ही उसने सर्वप्रथम जर्मन पार्लियामेण्ट को भंग कर दिया। इसी बीच 27 फरवरी, 1923 ई. को संसद भवन में आग लग गई। हिटलर ने इसे समाजवादियों का कृत्य बतलाया और अपने विरोधी दलों को जेल में ठूंस दिया। निर्वाचन में साधारण बहुमत प्राप्त कर हिटलर ने सत्ता अपने हाथ में ले ली और अप्रैल 1933 को संसद ने 4 वर्ष के लिए सम्पूर्ण अधिकार हिटलर को अर्पित कर दिये।

हिटलर इस पर भी सन्तुष्ट नहीं था। उसने सभी विरोधी दलों को समाप्त कर दिया। नाजी पार्टी को ही वैधानिक ठहराया गया। पुलिस के स्थान पर नाजी सुरक्षा दल के सैनिक रखे गये। हिटलर ने जैसा कि अपनी पुस्तक '**मेरा संघर्ष**' (*Main Campf*) में लिखा है। "एक चालाक विजेता विजित देश पर अपनी मांगें थोपता चला जाता," हिटलरशाही को जर्मनी में थोपना शुरू कर दिया। 30 जून, 1934 ई. को उसने अपने विरोधियों की हत्याएं करवाईं, श्लीचर का अन्त कर दिया। पापेन भाग गया। 2 अगस्त, 1934 को हिण्डेनबर्ग की मृत्यु के बाद उसने राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री के पद को एक कर दिया। कहा जा सकता है कि हिटलर के उत्थान के साथ ही जर्मनी में गणतन्त्र का एक और प्रयास असफल हो गया।[5]

1 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 681।
2 डॉ. मथुरा लाल शर्मा, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 70С।
3 हेजन, **आधुनिक यूरोप का इतिहास**, पृ. 681।
4 ग्राण्ट और टैम्परले, **यूरोप 19वीं शताब्दी में**, पृ. 544-545।
5 "With Hitler's advent another experiment in German democracy had ended in failure." —*op. cit.*, p. 472.

हिटलर/नाजी दल के उद्देश्य
(AIMS OF HITLER/NAZI PARTY)

हिटलर ने अपनी पार्टी के निम्न उद्देश्य बतलाये :

(अ) वार्साय सन्धि का विरोध—नाजी पार्टी का मुख्य उद्देश्य वार्साय की सन्धि का विरोध था। हिटलर की धारणा थी कि इस सन्धि पर देशद्रोहियों ने हस्ताक्षर किये हैं। अतः यह जर्मन जनता को मान्य नहीं है। अतः ऐसी सन्धि की धाराओं को समाप्त कर दिया जाय। इस सन्दर्भ में उसने अपनी पुस्तक 'मेरा संघर्ष' में लिखा है, **''जर्मनी की सीमाएं अकस्मात हुई घटना का परिणाम है।''** राज्यों की सीमाओं का निर्धारण व्यक्तियों की इच्छा पर निर्भर है। उसे निश्चित करने का कार्य भी व्यक्तियों का ही है, जिन्हें बनाया अथवा बदला जा सकता है, क्योंकि वार्साय की सन्धि के द्वारा निश्चित की गई जर्मनी की सीमाओं के कारण जर्मनी आर्थिक रूप से पंगु हो चुका था। अतः हिटलर ने जर्मनी को सुदृढ़ करने के लिए वार्साय सन्धि का विरोध किया।

(ब) एक व्यक्ति के शासन की स्थापना—वार्साय की सन्धि ने जर्मनी में वाइमर गणतन्त्र की स्थापना कर दी थी। हिटलर इस प्रकार के गणतन्त्र का घोर विरोधी था। नाजियों की धारणा थी कि वास्तविक गणतन्त्र वह है जिसमें व्यक्तियों द्वारा चुने गये केवल एक व्यक्ति द्वारा शासन किया जाना चाहिए।

(स) वृहत्तर जर्मनी का निर्माण—नाजी पार्टी का प्रमुख उद्देश्य वृहत्तर जर्मनी का निर्माण करना था। शिपेरो के अनुसार, **''हिटलर का एकमात्र उद्देश्य केवल उन प्रदेशों की प्राप्ति ही नहीं था जिन्हें कि वार्साय की सन्धि के अनुसार छीन लिया गया था, अपितु जर्मनी को एक सत्तात्मक राष्ट्र बनाने का पक्षधर था। छोटे-छोटे राज्यों को जर्मनी में मिलाकर वह अपने को सर्वश्रेष्ठ शक्तिसम्पन्न बनाना चाहता था।''** दूसरे शब्दों में वह इसे तृतीय महान जर्मन साम्राज्य का निर्माण भी कहा जा सकता है।

(द) निःशस्त्रीकरण जर्मनी के लिए नहीं होना चाहिए—निःशस्त्रीकरण जर्मनी के लिए ही लागू नहीं होना चाहिए। यदि यह लागू हो तो समस्त राष्ट्रों के लिए होना चाहिए। जर्मनी का निर्माण रक्त और लौह की नीति से हुआ था। उसे पुनः अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कर वार्साय सन्धि में किये गये अपमान का बदला लेना चाहिए।

(य) नाजी पार्टी का प्रमुख उद्देश्य था कि विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय का कारण यहूदी जाति थी। अतः यहूदियों को देश से निकाल देना चाहिए।

(र) सामाजिक उद्देश्य—जो व्यक्ति जितनी योग्यता रखता है, उसे उसकी योग्यता के अनुसार रोजगार प्रदान करना चाहिए तथा जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाना चाहिए।

(स) आर्थिक उद्देश्य—युद्ध के दौरान पूंजीपतियों द्वारा कमाये गये समस्त लाभ नष्ट कर दिये जाने चाहिए। समस्त कारखानों, मिलों अथवा बड़ी-बड़ी दुकानों का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए। उसे सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। कृषकों की उन्नति के लिए कृषि को प्रोत्साहन देना होगा। अपनी पुस्तक में हिटलर ने लिखा है, **''हमारे पास यूरोप में कृषि हेतु आवश्यक भूमि होनी चाहिए......यह महत्व हमारे लिए कृषि-प्राप्ति के सवाल का प्रश्न है।''** वृद्ध लोगों को सरकार की ओर से पेंशन मिलनी चाहिए।

(व) धार्मिक उद्देश्य—धर्म अपने आप में स्वतन्त्र है, किन्तु यदि धर्म राष्ट्र की प्रगति में बाधक होगा तो उसे राज्य द्वारा समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह बात उल्लेखनीय है कि हिटलर की गृह एवं विदेशी नीतियां नाजियों के उद्देश्यों पर ही आधारित थीं।

हिटलर की गृह नीति
(HOME POLICY OF HITLER)

कैटलबी ने लिखा है, "1933 ई. **से लेकर अपने शासनकाल के अन्तिम समय तक हिटलर ने आतंक एवं हिंसा का आश्रय लिया और अधिनायकवादी भ्रान्त अपीलों सैन्य प्रदर्शनों, झूठे वायदों एवं छलपूर्ण उपायों से उसने अपने आपको बनाये रखा।**"[1] यह बात सही है कि हिटलर ने सत्ता शक्ति के बल पर प्राप्त की थी। अतः उसे शक्ति से ही बनाये रखा जा सकता था।**अतः हिटलर ने अपनी गृहनीति के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण कदम उठाये :**

(1) **विरोधियों का दमन**—लिप्सन के अनुसार, "**हिटलर ने अपने विरोधियों का दमन इस तरह किया मानो कोई कसाई, कसाईखाने में पशु का वध कर रहा हो।**" उसके दो प्रमुख शत्रु थे। एक तो समाजवादी जो कि मार्क्स के अनुयायी थे, दूसरे यहूदी। यहूदियों के विषय में तो वह कहता भी था, "**जिसने गत तीन पीढ़ियों में किसी यहूदी से विवाह किया है अथवा जर्मनी के विरोध में कोई देश द्रोहात्मक कार्य किया है, उसे यहूदी समझा जाय।**[2] समाजवादियों एवं यहूदियों को जेल में ठूंस दिया गया। उस समय यहूदियों के बारे में जर्मनी में कहा जाता था'**यहूदी विश्व के दुश्मन हैं**' (Jew is the enemy of the world) तथा"**जो यहूदियों को मारता है, वह अच्छा कार्य करता है**" (who kills a Jew, does a good dead)। उन्हें कारागार में कठोर दण्ड दिया जाता था। उनसे नाजी दल की सदस्यता ग्रहण करने को कहा जाता था। उसके सहयोगी गोयरिंग ने गोस्पापों एवं समाधि स्थलों की स्थापना की थी, यही नहीं, उसने रोमन कैथोलिकों का भी दमन किया। कैटलबी के अनुसार, "**जर्मनी में न केवल साम्यवादियों, यहूदियों, उदार वर्गों, शान्ति चाहने वाले लोगों, कैथोलिकों, धर्म प्रचारकों बल्कि सभी प्रकार के लोगों को सताया गया जिससे लाखों जर्मन घर छोड़कर भाग गये।**"[3] उसने आतंक स्थापित कर दिया। उसके शत्रु या तो कब्रों में या जेलों में या श्रम-शिविरों में थे। उसके विरोध में कोई चूं तक नहीं कर सकता था।[4]

(2) **एक व्यक्ति के शासन का दृढ़ीकरण**—हिटलर ने जर्मनी को मजबूत बनाने का कार्य किया। राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री दोनों के पद एक में मिला दिये गये। 1935 के बाद वह प्रधान राष्ट्रपति भी हो गया। **वह फ्यूरर कहलाना पसन्द करता था।**[5] हरमन गोरिंग को गृहमन्त्री बनाया गया। पुलिस विभाग नाजियों से भर दिया गया। जोजेफ गोबलन को प्रचार मन्त्री बनाकर नाजी दल के सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। कस्बों एवं गांवों की निकायों की अध्यक्षता हिटलर में केन्द्रित कर दी गई। पार्लियामेण्ट्री शासन को भंग करने के लिए धारा

1 "He set up the regime stained by an infamy that degraded the German national recovery." —Ketelbey, *A History of Modern Times from* 1789, p. 473.
2 डॉ. मथुरालाल वर्मा : **यूरोप का इतिहास**, पृ. 820।
3 Ketelbey : *A History of Modern Times from* 1789, p. 473.
4 "His enemies were in the grave, or in prison, or in Labour Camps, opposition was silent." —*op. cit.*, p. 472.
5 "He was Chancellor and President, and from 1935 supreme chief of the Armed Forces, but he liked to be Known by the simple elastic title of Fuhrer." —Ketelbey, *A History of Modern Times from* 1789, p. 487.

सभा की शक्तियों को क्षीण कर दिया गया। कानून बनाने का एकमात्र अधिकार हिटलर तक सीमित कर दिया गया। गवर्नरों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती थी। उसने परामर्श समितियां स्थापित कीं जिनकी संख्या 14 थी, परन्तु वे उसी की इच्छा पर निर्भर होकर कार्य करती थीं। जर्मन संघ के समस्त राज्यों की विधान सभाओं को भंग कर दिया गया। रीश्टाग केवल उसकी प्रतिनिधि मात्र बनकर रह गई।

हिटलर ने समस्य राजनैतिक पार्टियों को समाप्त कर दिया। वह कहा करता था, "**राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी ही राज्य है।**"[1] 14 जुलाई, 1933 ई. को केवल राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी को वैध माना है। नौकरी करने के लिए इसी दल की सदस्यता अनिवार्य कर दी गई।

इस प्रकार जर्मनी को पूर्ण रूप से एक व्यक्ति के हाथों सीमित कर दिया गया। वह व्यक्ति था हिटलर।

(3) **धार्मिक क्षेत्र**—हिटलर क्योंकि एक व्यक्ति के शासन पर विश्वास करता था, अतः धर्म के मामले में भी किसी दूसरी सत्ता का हस्तक्षेप वह स्वीकार नहीं कर सकता था। रोमन कैथोलिक रोम के पोप के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे। हिटलर का विचार था कि जर्मनी के निवासी जर्मनी के बाहर की किसी सत्ता के आदेशों का पालन न करें। अतः उसने बाइबिल के आर्यन सन्दर्भ की नई व्याख्या की और कैथोलिकों पर अत्याचार किये। **प्रोटेस्टेण्ट** गिरजाघरों की व्यवस्था भी केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत निर्धारित कर दी गई। लुडविग मूलर नया अध्यक्ष घोषित किया गया जिसने जर्मन ईसाइत्व की कल्पना पर अधिक जोर दिया।

(4) **शिक्षा**—हिटलर का विचार था कि केवल जर्मन जाति को छोड़कर अन्य जातियां आर्य नहीं हैं। अतः उसने सभी सरकारी पदों, शिक्षालयों, विश्वविद्यालयों, आदि से गैर-आर्यन जाति के लोगों को पदच्युत कर दिया। जो लोग आर्य नहीं थे उन्हें किसी प्रकार की सुविधा स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में न दी गई। पाठ्य- पुस्तकें नाजी दल के सिद्धान्तों एवं उसकी गाथा से पूरित की गईं। पाठ्य-विषयों का पाठ्यक्रम नाजी सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर कड़ी नजर रखी गई। **नाजी मानते थे कि सच्चा एवं सही इतिहास उसे कहा जायेगा जो कि रक्त एवं भूमि से सम्बन्धित हो।**[2] राइच कल्चर चैम्बर की स्थापना पत्रकारिता, रेडियो, संगीत, फिल्मों, साहित्य एवं कला पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए की गई।

(5) **आर्थिक क्षेत्र**—प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की हालत आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त नाजुक हो चुकी थी और जिस तरीके से वार्साय की सन्धि लागू की गई थी, जर्मनी आर्थिक दृष्टि से पंगु हो चुका था। अतः हिटलर का प्रमुख उद्देश्य जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से समुन्नत बनाना था। उसने मई, 1934 ई. में एक नियम बनाकर हड़ताल, आदि पर रोक लगा दी। लेबर ट्रस्टी नामक संस्थाओं की स्थापना की गई जिससे श्रमिक वर्ग की समस्याओं को हल किया जा सके तथा उनके अधिकारों की रक्षा की जा सके। **बेकारी की समस्या दूर करने के लिए उसने स्त्रियों को चारदीवारी के अन्दर रहने का आदेश दिया।**[3] यहूदियों को देश से निकाल दिया गया। सेना की वृद्धि, लेबर कैम्प की स्थापनाएं, आदि उपायों से तत्काल लगभग 20 लाख बेकारों को रोजगार दिया।

1 The National Socialist Party in the State. —*Hitler*

2 "History is one of the numerous fallacies of liberalism.......the clue to German history is the growth of a nation from blood and soil." —*Kandel*

3 "The Place of a German women is her home."

जहां तक उद्योग-धन्धों का प्रश्न था, हिटलर चाहता था कि देश स्वावलम्बी बने। खेती को राज्य नियन्त्रण में ले लिया गया। जो चीजें जर्मनी की दैनिक आवश्यकता की थीं जिन्हें कि जर्मनी में उत्पादिन नहीं किया जा सकता, हिटलर ने विदेशों को कच्चा माल देकर वे चीजें प्राप्त कर लीं। इस प्रकार जर्मनी ने अपना व्यापारिक क्षेत्र बढ़ा लिया। **जब हिटलर के शासन काल के पांचवें वर्ष में सरकारी आंकड़े बताये गये तो स्पष्ट हो गया कि सन् 1933 की अपेक्षा उद्योग द्वारा उत्पादन दुगना हो गया है।** फौलाद के उत्पादन में 56,50,000 टन से 2,00,00,000 टन की वृद्धि हो गई। इसी प्रकार काम में लगने वालों की संख्या भी 12,80,000 से 1,83,70,000 बढ़ गई।[1]

अन्ततः उसकी गृह-नीति के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि हिटलर ने देश के आत्माभिमान की वृद्धि की, किन्तु उसकी नीति ने विश्व में घृणा, भय एवं सन्देह का माहौल पैदा करके रख दिया।

हिटलर की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF HITLER)

हिटलर ने अपनी विदेश-नीति के सन्दर्भ में विस्तृत विवेचना अपनी पुस्तक 'मेरा संघर्ष' में की है। हिंटलर ने अपना नारा **'वार्साय की सन्धि का नाश हो'** दिया था, स्पष्ट है कि हिटलर वार्साय की सन्धि की सम्पूर्ण व्यवस्था को कुचलना चाहता था। वह जर्मनी को एकसत्तात्मक राष्ट्र बनाना चाहता था। वह चाहता था कि जर्मनी विश्व की महान शक्ति बने। इसका मानना था कि जर्मनी को धुरी शक्ति बनाने के कार्य के पीछे ईश्वरीय प्रेरणा है[2] और इस कार्य को वही कर सकता है।

हिटलर की विदेश नीति के सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में जब तक उसने जर्मनी का अच्छा-खासा सैन्यीकरण नहीं किया, तब तक उसने शान्ति समझौतों का नारा दिया **और जब जर्मनी का सैन्यीकरण हो गया तो बल का पूर्ण प्रयोग कर समझौतों को ताक में रख दिया।**[3] हिटलर ने अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए :

(1) **निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्र संघ को छोड़ना**—1932 ई. में जेनेवा में राष्ट्र संघ ने निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें 10 राष्ट्रों के 200 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में हिटलर ने प्रस्ताव रखा कि अन्य देशों की तरह उसे भी शस्त्रीकरण का समान अधिकार दिया जाय अथवा सभी राष्ट्रों को जर्मनी के समान ही समान रूप से निःशस्त्रीकरण का पालन करना चाहिए। फ्रांस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। अतः हिटलर ने 14 अक्टूबर, 1933 ई. को निःशस्त्रीकरण सम्मेलन एवं राष्ट्र संघ से अलग होने का नोटिस दे दिया। नवम्बर 1933 में हुए जनमत संग्रह ने भी हिंटलर के राष्ट्र संघ को छोड़ने का समर्थन किया।

(2) **पोलैण्ड-जर्मन समझौता (23 जनवरी, 1934 ई.)**—पोलैण्ड और जर्मनी के पारस्परिक सम्बन्ध कुछ अच्छे नहीं थे, किन्तु दोनों की परिस्थितियों ने दोनों को समझौते के लिए प्रेरित

1 डॉ. गोपीनाथ शर्मा—**यूरोप का इतिहास**, पृ. 385।
2 "He had a divine mission to make the Germans the dominant power in the world."
3 "Hitler's immediate foreign policy after getting into power in Germany was to throw dust in the eyes of leaders of foreign nations by talking of peace and to cover up his altimate objects until Germany was rearmed." —*Derry and Jarman*

किया। पोलैण्ड की स्थिति रूस एवं जर्मनी के मध्य थी। यदि रूस व जर्मनी में संघर्ष होता तो पोलैण्ड बीच में होने से पिस सकता था। दूसरा पोलैण्ड का मित्र फ्रांस उससे काफी दूर था। अतः पोलैण्ड अपनी सुरक्षा के लिए कुछ परेशान था। इधर जर्मनी पोलैण्ड से समझौता कर यूरोप के राष्ट्रों को दिखाना चाहता था कि वह शान्ति का समर्थक है। यदि पोलैण्ड से मित्रता हो जाय तो वह अन्य शत्रुओं का सामना आसानी से कर सकता था। अतः हिटलर ने 23 जनवरी, 1934 ई. को पोलैण्ड के साथ 10 वर्ष के लिए **अनाक्रमण समझौता** (Non-aggression Pact) किया। **इस समझौते की शर्तें इस प्रकार थीं :**

(i) जर्मनी ने यह आश्वासन दिया कि वह 10 वर्ष तक अपनी पूर्वी सीमाओं में परिवर्तन की मांग न उठायेगा जिसमें पोलिश गलियारा भी था।

(ii) दोनों देश एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे।

(3) **चार शक्तियों का समझौता** (1933 ई.)—अपने को शान्ति का दूत दर्शाने वाले हिटलर ने मुसोलिनी के प्रस्ताव पर 1933 ई. में इंगलैण्ड, फ्रांस व इटली के साथ शान्ति समझौता किया।

(4) **सार की प्राप्ति**—सार का क्षेत्र जो कि वार्साय की सन्धि के अनुसार 15 वर्षों के लिए राष्ट्र संघ के संरक्षण में था, जनमत संग्रह के पश्चात् जर्मनी को दिया गया। मतदान में कुल 5,00,000 मत पड़े जिसमें से 90% जर्मनी के पक्ष में थे। एक मार्च 1935 को यह क्षेत्र जर्मनी को दे दिया गया। इस घटना के विषय में कार ने लिखा है, **"अब जर्मनी की, जैसा कि हिटलर ने अनेक बार घोषित किया, पश्चिम में और अधिक क्षेत्रिक महत्वाकांक्षाएं नहीं रही थीं। वार्साय की सन्धि से भी जर्मनी को अब कोई और आशा नहीं थी।"**[1] अतः उसने वार्साय की सन्धि पर आक्रमण शुरू कर दिया, जिसका पहला प्रहार सैन्यीकरण पंर था।

(5) **जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू करना**—वर्साय सन्धि की धाराओं को तोड़ते हुए हिटलर ने 16 मार्च, 1935 को जर्मनी में अनिवार्य सैन्य सेवा की घोषणा की। 16 मार्च, 1935 को उसने घोषणा की कि "जर्मनी अब अपने को वर्साय की सैन्य धाराओं से मुक्त मानता है। जर्मनी की शान्तिकालीन सैनिक संख्या 5,50,000 होगी और जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू की जायेगी।"[2]

(6) **स्ट्रेसा सम्मेलन** (अप्रैल, 1935)—जर्मनी के द्वारा अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दिये जाने की यूरोपीय देशों में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। यूरोपीय राष्ट्र चिन्तित हो उठे। अतः फ्रांस, इंगलैण्ड एवं इटली इन तीन राष्ट्रों का स्ट्रेसा में सम्मेलन हुआ जिसमें हिटलर के कार्य की निन्दा की गई, किन्तु स्ट्रेसा सम्मेलन का जर्मनी पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, क्योंकि अब तक जर्मनी इंगलैण्ड के साथ नौ-सैनिक वार्ता में संलग्न था।

(7) **इंगलैण्ड-जर्मन नौसेना समझौता** (जून, 1935)—हिटलर ने बड़ी सूझ-बूझ से इंगलैण्ड से नौसेना सम्बन्धी समझौता जून 1935 को किया। **इसके अनुसार :**

(i) जर्मनी को इंगलैण्ड की अपेक्षा 35 प्रतिशत नौसेना रखने का अधिकार प्राप्त हो गया।

1 ई. एच. कार, दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, 1919-1939, पृ. 188।
2 वही, पृ. 189।

(ii) जर्मनी अपने पड़ोसियों के बराबर वायुसेना रख सकेगा। कार महोदय ने इस समझौते के विषय में लिखा है, "......**यह समझौता इतना असंगत लगता था कि फ्रांस, इटली और सोवियत संघ में इससे इतनी हैरानी हुई जितनी कि इंगलैण्ड द्वारा जेनेवा प्रस्ताव का प्रस्तोता बनने पर भी जर्मनी में नहीं हुई थी।**"[1] हार्डी महोदय ने इसे इंगलैण्ड द्वारा जर्मनी के वार्साय सन्धि को तोड़े जाने का अनुमोदन माना है। कुछ भी हो इस सन्धि से वार्साय की सन्धि टूट गई। जर्मनी को बल मिला। स्ट्रेसा सम्मेलन बेकार सिद्ध हुआ। मैरियट ने लिखा है, "उस सहमति का (स्ट्रेसा सम्मेलन का) कुछ भी मूल्य रहा हो, उसमें जून 1935 में ब्रिटेन तथा जर्मनी की नाविक सन्धि ने एक घातक दरार डाल दी।[2]

(8) **राइन क्षेत्र का सैन्यीकरण** (7 मार्च, 1936)—वार्साय की सन्धि के अनुसार राइन का क्षेत्र विसैन्यीकृत घोषित कर दिया गया था। हिटलर इस क्षेत्र में सेनाएं भेजना चाहता था। 1935 ई. में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया तो फ्रांस और इंगलैण्ड ने इटली के विरोध में आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये, किन्तु जर्मनी ने इटली की सहायता कर मुसोलिनी की मित्रता प्राप्त कर ली।

7 मार्च, 1936 ई. को हिटलर ने राइन क्षेत्र में अपनी सेनाएं भेज दी और राइनलैण्ड पर अधिकार कर लिया। इस सम्बन्ध में मैरियट ने लिखा है, "......**यदि इंगलैण्ड और फ्रांस इस कार्य का विरोध करते तो हिटलर पीछे हट जाता। लोकार्नो के करार को घृणा के साथ फाड़ दिया गया, फ्रांस ने सोवियत रूस के साथ जो सन्धि (मई 1935 में) की थी, उसका डंक खींच लिया गया था।**"[3]

हिटलर के इस कार्य के दूरगामी परिणाम निकले। प्रथम तो फ्रांस की कमजोरी प्रदर्शित हो गई, फ्रांस के मित्रों ने उसका साथ छोड़ दिया। उदाहरण के लिए, बेल्जियम तटस्थ हो गया। द्वितीय, राष्ट्र संघ एवं वार्साय और लोकार्नो सन्धियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया।

(9) **रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी की स्थापना**—अबीसीनिया पर किये गये मुसोलिनी के आक्रमण की हिटलर द्वारा सराहना ही नहीं की गई, बल्कि हिटलर ने इटली को आर्थिक सहायता भी प्रदान की थी। उसके इस कार्य ने मुसोलिनी को हिटलर के नजदीक ला दिया। 21 अक्टूबर, 1936 ई. को दोनों देशों के विदेश मन्त्रियों ने एक समझौता किया। **इसके अनुसार :**

(i) जर्मनी ने स्वीकार किया कि अबीसीनिया पर इटली का अधिकार न्यायोचित है।

(ii) इटली ने स्वीकार किया कि जर्मनी आस्ट्रिया पर अधिकार कर सकता है।

हिटलर ने इटली को तो अपनी ओर मिला लिया, किन्तु वह चाहता था कि यूरोप में कोई ऐसी शक्ति की मित्रता उसे और प्राप्त हो जाय जो कि रूस के विरोध में उसका साथ दे। हिटलर ने देखा कि जापान रूस का विरोधी है। अतः उसने 25 नवम्बर, 1936 ई. को रूस के खिलाफ जापान से सन्धि कर ली। यह सन्धि इतिहास में एण्टी कामिण्टर्न पैक्ट (Anti Comintern Pact) के नाम से जानी जाती, किन्तु इस पैक्ट ने शीघ्र ही **रोम-बर्लिन-टोक्यो**

1 **वही**, पृ. 191।

2 **मैरियट, आधुनिक इंगलैण्ड का इतिहास**, पृ. 511।

3 **वही**, पृ. 512।

PARTITION OF CZECHOSLOVAKIA
(1938-39)
TERRITORY OCCUPIED BY HITLAR'S GERMANY
TERRITORY OCCUPIED BY HUNGARY UNDER NORTHY
TERRITORY OCCUPIED BY POLAND
GERMANY
PRAGUE
BOHEMIA-MORAVIA
BRNO
TESCHEN
POLAND
SLOVAKIA
GERMANY
AUSTRIA
HUNGARY
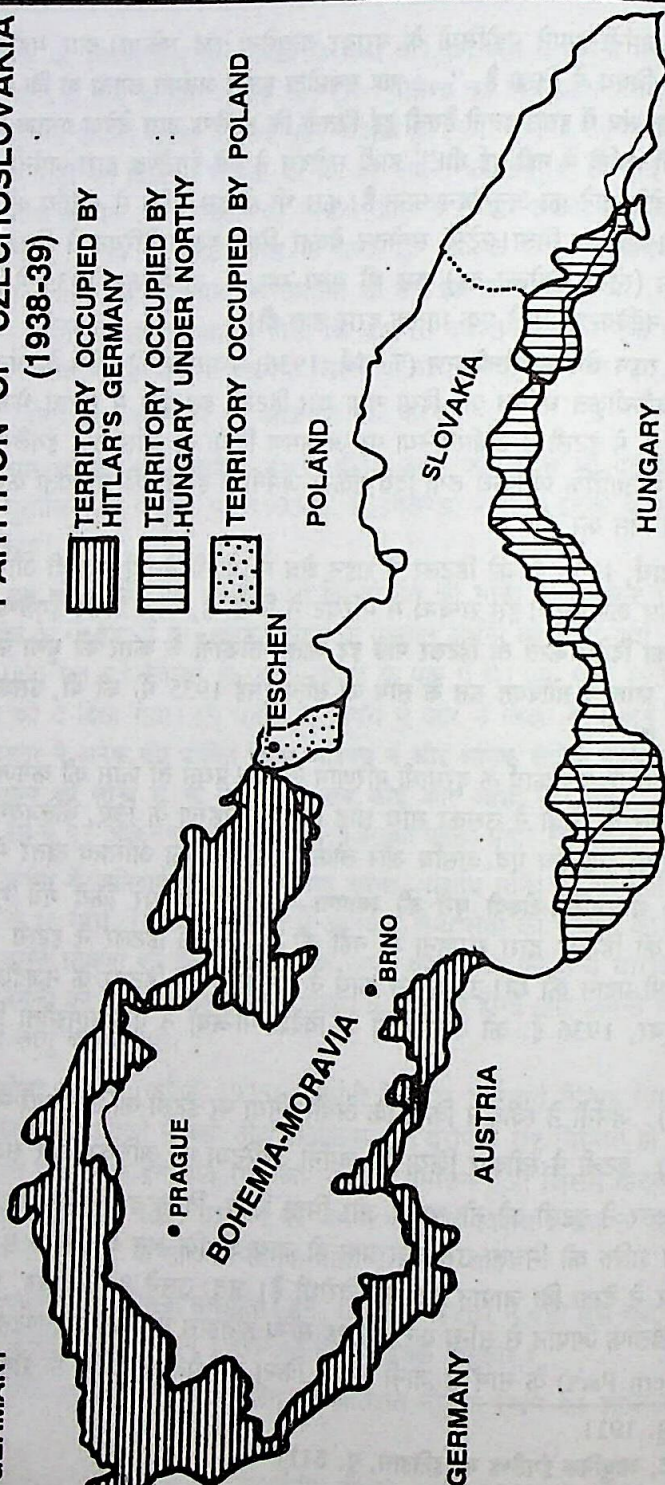
धुरी (Roman-Berlin-Tokyo Axis) का रूप धारण कर लिया।[1] कहने का तात्पर्य है कि एण्टी कामिण्टर्न पैक्ट को इटली ने भी स्वीकार कर लिया। कैटलबी ने सत्य ही लिखा है, **"यहीं से नाजियों की प्रगति बढ़ती गई। उनकी, भूख, क्षमता और दृढ़ता की कोई सीमा न रही। यूरोप के राष्ट्र दो धुसी में बंट गये। एक ओर इंगलैण्ड, फ्रांस एवं रूस हो गये तो दूसरी ओर जर्मनी इटली और जापान।"**

(10) **आस्ट्रिया पर अधिकार**—सत्ता संभालते ही हिटलर का एक मुख्य उद्देश्य आस्ट्रिया पर अधिकार करना रहा था। 1934 ई. में हिटलर के द्वारा आस्ट्रिया को हड़पने का प्रयत्न किया गया, किन्तु इटली के द्वारा ब्रेनर दर्रे पर सेना भेज दिये जाने के कारण हिटलर को अपने अभियान में सफलता न मिली। मुसोलिनी के इस तरह आड़े जाने से हिटलर समझ गया कि अपने इस अभियान की सफलता के लिए इटली की मित्रता आवश्यक है। इसी कारण उसने इटली द्वारा अबीसीनिया को हड़पने का स्वागत किया। **रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी ने दोनों की मित्रता गाढ़ी कर दी।** 13 मार्च, 1938 को हिटलर की फौजें आस्ट्रिया में घुस गईं और आस्ट्रिया को जर्मन साम्राज्य का एक प्रान्त निर्विरोध घोषित कर दिया गया। डॉ. शुस्निमा ने इस विषय में कहा था, "हमें जबरदस्ती के आगे समर्पण करना पड़ रहा है, ईश्वर ही आस्ट्रिया की रक्षा कर सकता है।"[2] इस प्रकार आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाने से हिटलर ब्रेनर दर्रे से इटली, यूगोस्लाविया एवं हंगरी के साथ सम्बन्ध स्थापित बेरोकटोक कर सका। इसीलिए हिटलर ने कहा था कि जर्मनी विजय की घड़ी से गुजर रहा है।[3]

(11) **चैकोस्लोवाकिया को हस्तगत करना**—आस्ट्रिया पर विजय प्राप्त कर लेने से हिटलर चैकोस्लोवाकिया को आसानी से हस्तगत कर सकता था। चैकोस्लोवाकिया में एक करोड़ पचास लाख नागरिकों में से 16 प्रतिशत स्लोवाक्स, 50 प्रतिशत चैक्स, 22 प्रतिशत जर्मन, 4 प्रतिशत हंगेरियन और 4 प्रतिशत रूमानियन थे, चैक्स लोगों का सरकारी पदों पर अधिक प्रभाव था। अतः गैर-चैक्स जातियां चाहती थीं कि सरकारी पदों पर उनका अंनुपात भी बराबर का हो। हंगेरियन हंगरी में मिलना चाहते थे। जर्मन चाहते थे कि सीमान्त प्रदेशों को जर्मनी में मिला दिया जाय। स्लाव स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। अवसर का लाभ उठाकर हिटलर ने चैकोस्लोवाकिया में रहने वाले जर्मनों को विद्रोह के लिए भड़काया, स्वेडटन जर्मन संघ पूर्ण स्वराज्य की मांग करने लगा। इधर हिटलर स्वेडटन जर्मन संघ की मदद करने लगा। चैकोस्लोवाकिया और जर्मनी के बीच युद्ध का वातावरण पैदा हो गया, **परन्तु इंगलैण्ड ने हस्तक्षेप करके एक समझौता कराया जो कि म्यूनिख समझौता कहलाता है। इसके अनुसार :**

(i) स्युडेटनलैण्ड पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

(ii) इंगलैण्ड व फ्रांस ने चैकोस्लोवाकिया की नई सीमाओं की रक्षा का आश्वासन दिया।

---

1 इसके विषय में मुसोलिनी ने कहा था :
"An axis around which can revolve all those European States with a will to collaboration and peace."

2 **"We have yielded to force. God Proctect Austria."** —*Schuschingg*

3 **"All Germany is living through the hour of victory—Seventy four millions in one united Reich. No threats, no hardships, no force can make us break our oath to be united for ever."** —*Hitler*

(iii) हिटलर ने स्वीकार किया कि वह अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान करेगा।

(iv) हिटलर ने वचन दिया कि स्युडेटनलैण्ड यूरोप में उसका अन्तिम सीमा विस्तार है।

म्यूनिख समझौते के विषय में शूमेन ने लिखा है, **"म्यूनिख समझौता शान्ति स्थापित करने की नीति की चरम सीमा, पश्चिमी प्रजातन्त्र व्यवस्था के लिए मौत का आह्वान एवं मिलकर सुरक्षा की भावना की व्यवस्था के अन्त का प्रतीक था।"**[1]

म्यूनिख समझौता वास्तव में हिटलर की प्यास को और बढ़ाने के समान था। हिटलर की प्यास इतने से ही न बुझी। उसने तुरन्त स्लोवाकों को भी इस आशय से उत्साहित करवाया कि वे स्वतन्त्र राज्य की मांग करें। उसने स्लोवाकों का मन्त्रिमण्डल भी बनवा डाला। यहां तक चैक राष्ट्रपति डॉ. हाशा को अन्ततः विवश किया कि वह चैकोस्लोवाकिया को जर्मनी में मिलाने के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश हो गया। हिटलर ने यह कार्य सैन्य-बल के आधार पर किया। इंगलैण्ड और फ्रांस ने समझ लिया था कि यह उनकी पराजय है और जर्मन की जीत।[2]

(12) **हिटलर द्वारा मेमल पर अधिकार**—हिटलर ने इसी बीच सैन्यबल से लिथुआनिया को डराकर मेमल के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया।

(13) **रूस से सन्धि**—हिटलर पूर्वी यूरोप तथा मध्य यूरोप में अधिकार का इच्छुक था। इधर मित्रराष्ट्र उसके मेमल पर अधिकार से सतर्क हो चुके थे। स्पष्ट था कि हिटलर का अगला निशाना पोलैण्ड ही था। हिटलर ने परिस्थिति का अवलोकन कर तुरन्त अगस्त 1939 को रूस का अनाक्रमण समझौता कर लिया। **इसी शर्तों के अनुसार :**

(i) दोनों एक दूसरे के मित्र रहेंगे।

(ii) पोलैण्ड को जर्मनी एवं रूस में बांटा जायेगा।

(iii) रूस जर्मनी को युद्ध सामग्री एवं खाद्य सामग्री देगा।

(iv) वाल्टिक राज्यों में रूस की स्वतन्त्रता घोषित की गई। इस समझौते की आलोचना की गई, किन्तु इतना निश्चित था कि फ्रांस व इंगलैण्ड की गलत नीतियों, के कारण ही रूस ने यह व्यावहारिक कदम उठाया था।[3] इस प्रकार हिटलर ने एक निर्णायक सन्धि कर अपना पलड़ा भारी कर लिया और पोलैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारी में जुट गया जिसकी पृष्ठभूमि उसने पोलैण्ड से डांजिंग मांगकर इस समझौते से पूर्व ही डाल दी थी।

पोलैण्ड पर आक्रमण—हिटलर की मांग से स्पष्ट था कि वह पोलैण्ड को भी हड़पना चाहता है, क्योंकि डांजिंग पर अधिकार करके वह आसानी से पूर्वी पोलैण्ड, जर्मनी और समुद्र का सीधा सम्बन्ध कर सकता था। उसने 1934 ई. का समझौता रद्द करने की घोषणा की। जर्मनी को रूस के साथ की गई सन्धि ने साहस प्रदान कर ही दिया था। **अतः हिटलर ने**

1 "The Munich Pact was the culmination of appeasement and warrant of death for the Western Democracies. It was the symbol of collapse of the system of collective security." —*Schuman.*

2 "England and France had suffered a major, diplomatic defeat, Hiter was triumphant." —*Derry and Jarman*

3 "This agreement is not an indication of Russia's cunningness but is a practical step taken by it to ensure its defence." —*Hazen*
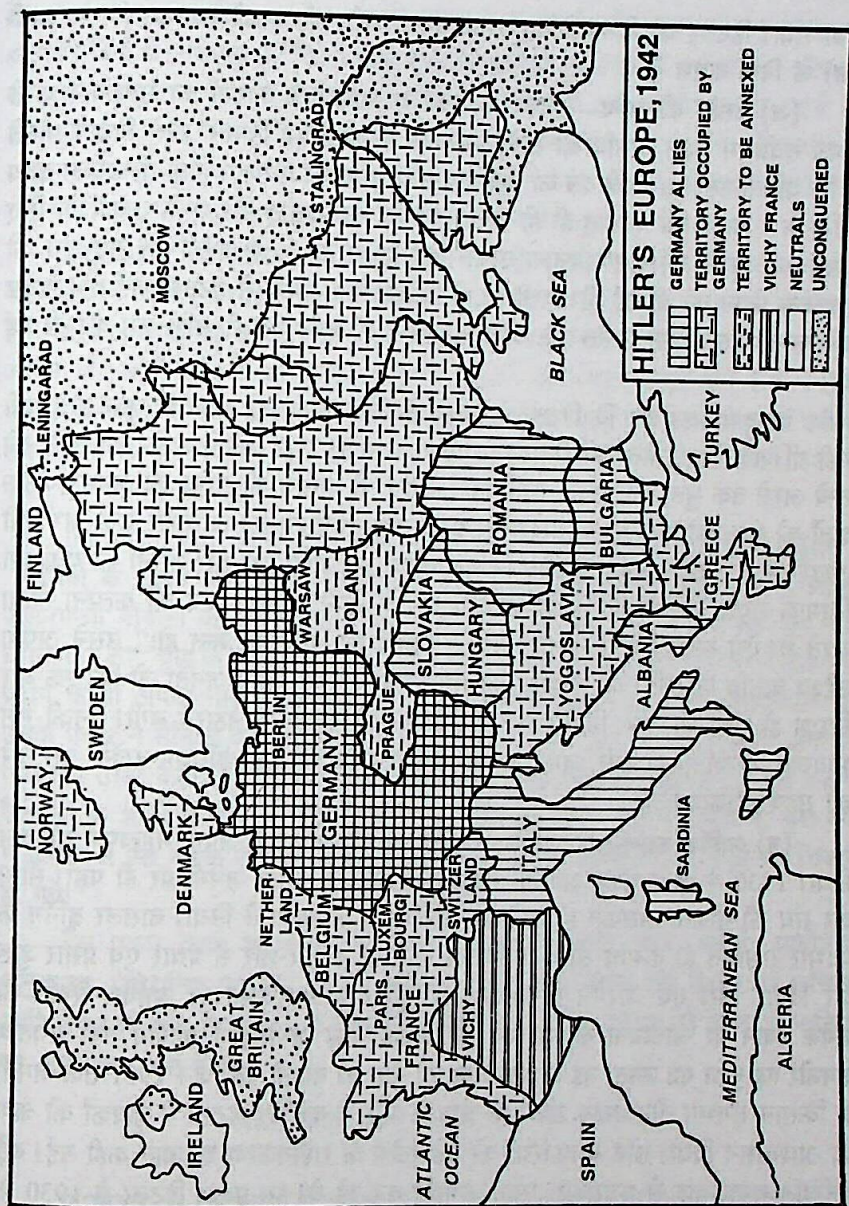
पोलिश सरकार पर यह आरोप लगाकर कि पोल जर्मनों के साथ अत्यांचारपूर्ण व्यवहार करते हैं, एक सितम्बर, 1939 को पोलैण्ड पर आक्रमण करके द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म दे डाला।

हिटलर या नाजी दल के उत्कर्ष के कारण
(CAUSES OF THE RISE OF HITLER/NAZI PARTY)

हिटलर ने तानाशाही शासन की स्थापना की। उसने सत्ता को रक्तपात के जरिए काबू में रखा। फिर भी उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और नाजी दल का दिन-प्रतिदिन उत्कर्ष होता

चला गया। हिटलर को दिन-प्रतिदिन सफलताएं मिलती गईं। **उसकी सफलता (अथवा नाजी दल) के निम्न कारण थे :**

(अ) वर्साय की सन्धि—हिटलर के उदय या उत्कर्ष के कारणों का मूल्यांकन करते समय सर्वप्रथम ध्यान वार्साय की सन्धि पर जाता है। हार्डी एवं लिप्सन[1] जैसे विद्वान मानते हैं कि यदि हिटलर या नाजी दल का उत्कर्ष वार्साय सन्धि का परिणाम होता तो उसका उदय सन्धि के 3 या 4 वर्ष पश्चात् ही हो जाता। 14 वर्ष के पश्चात् हिटलर के उत्कर्ष के लिए वार्साय की सन्धि को कारण बनाना उचित नहीं है। 1927 ई. में जर्मनी को राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान कर दी गई थी। 1930 ई. में विदेशी सेना जर्मनी से हटा ली गई थी। डावेस यंग प्लान और लोजान सम्मेलन के अन्तर्गत जर्मनी की क्षतिपूर्ति की राशि कम कर दी गई थी।

परन्तु यह कह देना कि हिटलर के उत्कर्ष के लिए वार्साय की सन्धि बिल्कुल उत्तरदायी नहीं थी। तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार फ्रांस 1871 ई. की फ्रेंकफोर्ट की सन्धि को लम्बे अरसे तक भुला नहीं सका, उसी प्रकार जर्मन भी वार्साय की सन्धि की अपमानजनक शर्तों को भूल नहीं पाये थे। रूर प्रदेश पर फ्रांस तथा बेल्जियम का अधिकार उन्हें अभी भी अखर रहा था। केवल जर्मनी के लिए निःशस्त्रीकरण उन्हें अखर रहा था। जर्मनी का युवा वर्ग बिस्मार्क सदृश वीरों के लिए आहें भर रहा था। वे अपने अतीत गौरव की कल्पना किया करते थे। ऐसे समय हिटलर ने नारा दिया, "**वार्साय की सन्धि का अन्त हो।**" उसने अपना उद्देश्य वार्साय की सन्धि की व्यवस्था को भंग करना बताया, जर्मन जनता जो कि एक बार निराश हो चुकी थी, पुनः हिटलर की ओर आशा की नजरों से निहारने लगी। उनकी सुप्त भावनाएं प्रज्ज्वलित हो उठीं, जर्मन जनता ने हिटलर के 'हम पुनः हथियार रखेंगे' इस नारे को सहर्ष स्वीकार किया।

(ब) आर्थिक कारण—हिटलर के उत्कर्ष में आर्थिक संकट ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1930 में हुए भयंकर आर्थिक संकट का सर्वाधिक प्रभाव जर्मनी पर ही पड़ा। सीमा कर संघ की योजना असफल हो जाने पर कर्टियस ने अवकाश ले लिया। चांसलर ब्रूनिंग के पदभार संभालते ही वार्साय सन्धि के विरुद्ध नात्सियों ने जोर-शोर से प्रचार एवं प्रसार शुरू कर दिया।[2] डेरी एवं जारमेन के शब्दों में, "**बुरी तरह अस्त-व्यस्त हुई आर्थिक स्थिति की प्रत्येक स्थान पर आलोचना की जा रही थी। प्रत्येक जगह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा गणतन्त्र कमजोर पड़ चुका था। जनता नई व्यवस्था तथा नये नेता को चाहती थी।**[3] जून 1931 तक जर्मनी के किसान लगभग तीन अरब डालर के ऋण के भार से दबे थे। हिटलर ने कृषकों को ऋण का आश्वासन दिया। छोटे व्यापारियों को बड़े स्टोर्स के राष्ट्रीयकरण की बात कही गई। बड़े पूंजीपति समाजवाद से घबराकर उसका समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार हिटलर ने 1930 के आर्थिक संकट का पूर्ण लाभ उठाया।

(स) गणतन्त्र के प्रति जनता का रोष—जर्मनी में गणतन्त्र का उदय वार्साय की सन्धि का परिणाम था। वाइमर गणतन्त्र का वार्साय की सन्धि से जुड़ा होना उसके पतन एवं नाजीवाद

1 Lipson : *Europe in the 19th and the 20th Centuries.*

2 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।**

3 **"Ever where there was fundamental criticism of an economic system which had broken down so disastrously every where people began to look to new men and new methods."**

—Derry and Jarman

के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुआ। वाइमर गणतन्त्र ने ही वार्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे। गणतन्त्र की विदेश नीति पूर्णतया असफल रही। डेंजिंग एवं पोलिश गलियारे की प्राप्ति, आस्ट्रिया के साथ एकीकरण, उपनिवेशों की प्राप्ति तथा सैन्यीकरण के प्रश्नों में उसे पूर्ण असफलता मिली, जिससे उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा और जर्मनी की जनता ने गणतन्त्र शासन का विरोध किया। जनता प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली की असफलता देख रही थी। जर्मन जनता की भावना का पूर्ण लाभ हिटलर ने उठाया।

(द) हिटलर का व्यक्तित्व एवं उसका प्रचार—नाजी दल के उत्कर्ष में हिटलर का स्वयं का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण था। उसका व्यक्तित्व विभिन्न विशेषताओं से युक्त था। हार्डी ने लिखा है, **"उसमें आश्चर्यजनक प्रतिभा थी।"**[1] वह प्रतिभाशाली वक्ता था। वह अपने भाषणों से जर्मन जनता को अपने उद्देश्यों को समझकर अपने विचारों को प्रस्तुत करता था। वेन्स ने इस सन्दर्भ में लिखा भी है, **"हिटलर में एक मनोवैज्ञानिक, कुशल नेता, उत्तम अभिनेता एवं प्रवीण संगठनकर्ता के गुण विद्यमान थे।"** उसने जिस प्रकार पार्टी का संगठन किया, उससे उसकी पार्टी में नवीनता आ गई।

हिटलर का प्रचार कार्य अपने आप में आकर्षक एवं अद्भुत था। कैटलबी के अनुसार, **"नाजियों के सामने आई प्रत्येक समस्या का समाधान आवश्यकतानुसार होता था।"**[2] उसके प्रधानमन्त्री गोबल्स का विचार था, "झूठी बात को इतना दोहराओ कि वह सत्य का रूप धारण कर ले।" युद्ध के पश्चात् जर्मनी में बेरोजगारी अत्यधिक बढ़ गई थी। हिटलर ने रोजगार प्रदान करना अपना नारा दिया और युवा वर्ग का समर्थन प्राप्त कर लिया। शस्त्रीकरण के उसके प्रचार ने सैनिकों का समर्थन उसे दिया। उसने लोकतन्त्र का चिल्ला-चिल्लाकर जनाजा निकाला। उसने कहा, **"प्रजातन्त्र पागलों, डरपोक तथा भूखे लोगों की व्यवस्था है।**[3] इस प्रकार कैटलबी के शब्दों में कहा जा सकता है, **"जर्मनी के वृद्ध वर्ग ने बड़ी असमंजस में, युवा वर्ग ने उत्साह से उसे अपना नेता इस प्रकार स्वीकार किया कि वे उसकी अनर्गल बातों का शिकार हो गये।"**[4]

इस प्रकार कहा जा सकता है, **"भाषण, विज्ञापन, झण्डे, गीत, वर्दियां, आयोजन, अनुशासन, ऐतिहासिक परम्पराएं, जातीय अभिमान के सिद्धान्त, उत्साह और हिटलर का व्यक्तित्व आदि ने लाखों जर्मन निवासियों को मूल्य की बढ़ोत्तरी और विदेशी आतंक की तुलना में नाजियों का अन्ध भक्त बना दिया।"**

फासीवाद और नाजीवाद में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN FASCISM AND NAZISM)

फासीवाद व नाजीवाद में अनेक समानताएं थीं, क्योंकि नाजीवाद की उत्पत्ति भी फासीवाद से ही हुई थी। **दोनों में अग्र समानताएं थीं :**

1 Gathorne Hardy : *A Short History of International Affairs*, p. 358.

2 "The approach to each problem was tactical."
—Ketelbey, *A History of Modern Times From 1789*, p. 473.

3 डॉ. मथुरालाल वर्मा, **यूरोप का इतिहास**, पृ. 770।

4 "In this scarcely credible story not the least incredible feature in that the German people should have come to accept, and follow this rule—the old certainly with misgiving and doubt, but the young with enthusiasm."
—Ketelbey, *A History of Modern Times From 1789*, p. 473.

(i) दोनों के सिद्धान्त एक समान थे।
(ii) दोनों राष्ट्र/राज्य को सर्वोपरि मानते थे।
(iii) दोनों हिंसा व युद्ध में विश्वास रखते थे।
(iv) दोनों तानाशाही व सैनिक राज्य के समर्थक थे।

एक समान होते हुए भी **दोनों में कुछ अन्तर थे :**

(i) नाज़ी रक्त की शुद्धता पर बल देते थे, फासीवादी नहीं।
(ii) फासीवादी चर्च को मानते थे, नाजी नहीं।
(iii) फासीवादी नाजियों की तुलना में अधिक नैतिकतावादी थे।
(iv) फासीवादी अपने तानाशाह को **ड्यूस** (Duce) व नाजी **फ्यूहरर** (Fuhrer) कहते थे।

प्रश्न

1. हिटलर के प्रारम्भिक जीवन व उसकी उन्नति के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. नाजीवाद से आप क्या समझते हैं? जर्मनी में नाजीवाद के उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. जर्मनी में हिटलर के उत्थान पर एक लेख लिखिए।
4. हिटलर की गृह एवं वैदेशिक नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
5. जर्मनी के गणतन्त्र को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? वर्णन कीजिए।

33

इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति
(1870 ई. - 1945 ई.)
[FOREIGN POLICY OF ENGLAND]

1870 ई. से 1914 ई. तक इंग्लैण्ड में कई विदेशमन्त्री रहे, जिनकी नीतियों का वर्णन निम्नलिखित है—

ग्लैडस्टनकालीन विदेश नीति

मैरियट के अनुसार, "**यदि यह सत्य है कि पामर्स्टन की मृत्यु ने इंग्लैण्ड के इतिहास में एक महान् युग को समाप्त किया तो यह भी कम सत्य नहीं है कि 1868 ई. के संसदीय चुनावों तथा ग्लैडस्टन के प्रथम मन्त्रिमण्डल से एक नया युग प्रारम्भ हुआ।**" लेकिन ग्लैडस्टन की रुचि मुख्यतः घरेलू मामलों में थी न कि वैदेशिक मामलों में। पामर्स्टन ने अपने प्रशासन काल में विदेश नीति की ओर विशेष ध्यान दिया था, किन्तु ग्लैडस्टन के शासन काल में गृह नीति को ही प्रमुख माना गया। ग्लैडस्टन यद्यपि 19वीं शताब्दी का एक प्रमुख राजनीतिज्ञ था, किन्तु अपनी कमजोर विदेश नीति के कारण, सशक्त गृह नीति के कारण हुई उसकी वाहवाही भी कम हो गयी। ग्लैडस्टन न तो पामर्स्टन के समान आक्रामक विदेश नीति का समर्थक था और न ही उसकी वैदेशिक नीति डिजरैली की साम्राज्यवादिता की नीति के समान थी। ग्लैडस्टन एक शान्तिप्रिय प्रधानमन्त्री था। ग्लैडस्टन नए-नए राज्यों को जीतकर, मात्र इंग्लैण्ड के साम्राज्य विस्तार के लिए, उनकी स्वतन्त्रता का हनन नहीं करना चाहता था, क्योंकि वह एक स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्ति था। ग्लैडस्टन इंग्लैण्ड के अधीन उपनिवेशों को भी स्वतन्त्रता के पक्ष में था। **अतः अनेक प्रदेशों को स्वशासन** (Self Government) **प्रदान करके उसने अपनी स्वतन्त्र विचारधारा का परिचय दिया।**[1] ग्लैडस्टन शानदार **अलगाव की नीति** (Policy of Isolation) का समर्थक था। अतः पामर्स्टन के समय में तेज-तर्रार वैदेशिक नीति के कारण यूरोप में इंग्लैण्ड की बढ़ी हुई प्रतिष्ठा ग्लैडस्टन की इस कमजोर नीति (Supine-Policy) के कारण समाप्त होने लगी। ग्रीन ने लिखा है कि उसमें सबसे बड़ी कमी यह थी कि वह जनता की भावनाओं को समझ नहीं पाया।[1] ग्लैडस्टन की विदेश नीति के विषय में सेंडर्स (Sandors) ने लिखा है '**ग्लैडस्टन ने विदेशी मामलों में वह गम्भीरता और तत्परता बहुत कम मात्रा में दिखाई जो उसने गृह नियमों के बनाने में तथा वित्त विभाग में दिखाई थी। यह बात**

1 ग्लैडस्टन की इस प्रकार की नीति के कारण लोग उसे '**लिटिल इंगलैण्डर**' (Little Englander) कहते थे।

2 'Gladstone had the glaring defect of not feeling the right pulse of his country men'. —*Green*.

स्वीकार की गई कि चूंकि वह अपने उच्च आदर्श विदेशों की राजनीति में बरतने की इच्छा रखता था। इसलिए कभी भी वह इन लाभों को प्राप्त कराने में असफल रहा जिनको इंग्लैण्ड पाने का अधिकारी था।'

जिस समय ग्लैडस्टन ने अपना पहला मन्त्रिमण्डल बनाया था, वह काल यूरोप की राजनीति में महत्वपूर्ण था। इसी काल में इटली की राजधानी फ्लोरेन्स से रोम को स्थानान्तरित हुई और इटली की एकता पूर्ण हुई। इसी युग में जर्मनी का भी एक एकीकरण पूर्ण हुआ। फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना, काला सागर में रूस द्वारा अधिकारों की अन्तिम मांग और वैटिकन परिषद् द्वारा पोप की अव्यभिचारिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। यदि ये घटनाएं एकाकी भी बनी रहतीं तो भी इनका ब्रिटेन की स्थिति पर प्रभाव पड़ता, किन्तु ये घटनाएं एकाकी नहीं रहीं। **इसी कारण यद्यपि ग्लैडस्टन अपनी शान्तिप्रिय नीति को प्रत्येक मामले में लागू करना चाहता था। फिर भी समय-समय पर ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं जिन्होंने उसे आक्रामक रुख अपनाने के लिए विवश किया।** ग्लैडस्टन के मन्त्रिमण्डल के प्रथम विदेश सचिव क्लैरेंडन की 1870 ई. में मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् ग्रेन वाइल विदेश सचिव बना था। ग्लैडस्टनकालीन प्रमुख घटनाएं निम्नवत् थीं—

(1) **फ्रांस और प्रशा का युद्ध**—फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय विदेशों में विजय प्राप्त करके स्वयं को नेपोलियन महान् के समान महत्वाकांक्षी एवं योग्य प्रमाणित करना चाहता था। 1868 ई. में क्रान्तिकारियों ने स्पेन में रानी ईसाबेला को हटाकर एक अस्थायी सरकार की स्थापना की थी और एक सांविधानिक राजतन्त्र की स्थापना के लिए प्रयत्न किया जा रहा था। अस्थायी सरकार ने हाहेनजोलर्न के राजकुमार लियोपोल्ड को सिंहासनासीन होने के लिए आमन्त्रित किया। फ्रांस की सरकार इसके विरोध में थी। प्रशा के राजा विलियम ने फ्रांस के विरोध के कारण इस प्रस्ताव को वापस ले लिया, किन्तु नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के राजा से इस आश्वासन की मांग की कि वह कभी भी स्पेन के सिंहासन पर हाहेनजोलर्न के वंशज को नहीं बैठने देगा।

नेपोलियन तृतीय की इस मांग से प्रशा में क्षोभ उत्पन्न हो गया। इसी समय कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने प्रशा के राजा और फ्रांस के राजदूत के मध्य हुई वार्ता से सम्बन्धित एक सूचना, जिसे इतिहास में **एम्स टेलीग्राम** (Ems Telegram) के नाम से जाना जाता है, के शब्दों में, अन्तर करके प्रकाशित करा दिया जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि प्रशा के शासक ने नेपोलियन तृतीय का अपमान किया हो। जैसा कि बिस्मार्क चाहता था कि उसके इस कार्य की वैसी ही प्रतिक्रिया फ्रांस में हुई। फ्रांस की जनता व नेपोलियन तृतीय क्रोध में आ गए और फ्रांस ने प्रशा पर आक्रमण की घोषणा कर दी। नेपोलियन तृतीय का विचार था कि फ्रांस को आस्ट्रिया एवं इटली अवश्य सहयोग देंगे, किन्तु बिस्मार्क ने अपनी क़ूटनीति से ऐसा नहीं होने दिया। **प्रशा ने नेपोलियन तृतीय को सेडान (Sedan) के युद्ध में 1 सितम्बर, 1870 ई. को परास्त किया। 18 जनवरी, 1871 ई को पेरिस ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।** इस युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना हुई तथा प्रशा का राजा विलियम जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो जाने के कारण, 18 जनवरी, 1871 ई. को जर्मनी का सम्राट घोषित किया गया। वैटिकन नगर को छोड़कर शेष इटली का भी एकीकरण हो गया।

इस युद्ध के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड फ्रांस के विरोध में था, परन्तु बाद में इंग्लैण्ड की सहानुभूति फ्रांस के साथ हो गयी थी, परन्तु इस युद्ध में इंग्लैण्ड का तटस्थ रहना अत्यधिक हानिकारक प्रमाणित हुआ क्योंकि इससे फ्रांस के साथ उसके सम्बन्ध खराब हो गए तथा जर्मनी का एकीकरण हो गया जो भविष्य में इंग्लैण्ड के लिए संकट का कारण बना फिर भी यद्यपि इस युद्ध में इंग्लैण्ड तटस्थ रहा तथापि उसने जर्मनी के सम्राट विलियम से स्पेन में लियोपोल्ड को राजा न बनाने का आग्रह किया। इसके बाद भी जब बेल्जियम पर प्रशा के अधिकार करने की चर्चा ग्रेनवाइल के पास पहुंची तब उसने बेल्जियम की रक्षा के लिए तटस्थ देशों का एक संघ बनाया। परिणामस्वरूप बेल्जियम की स्वतन्त्रता पर आंच न आ सकी और प्रशा फ्रांस से अनुचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में असफल रहा।

(2) **इटली का एकीकरण**—जिस प्रकार बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से जर्मनी का एकीकरण किया था **उसी प्रकार इटली में कैवूर** (Cavour) **ने अपनी राजनीतिक प्रतिभा से नेपोलियन की महत्वाकांक्षा, मैजिनी के उत्साह तथा गेरीबाल्डी की तलवार, इन तीनों को अपनी ध्येय की सिद्धि के लिए लगाया और इटली की एकता को पूर्ण किया।** रोम पर कैवूर अधिकार नहीं कर सका था क्योंकि ऐसा करने से नेपोलियन तृतीय के रुष्ट होने का खतरा था, किन्तु 1870 ई. में नेपोलियन के पतन तथा रोम से फ्रांस की सेना के हट जाने के कारण विक्टर ऐमनुअल ने रोम पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। ग्लैडस्टन रोम के विषय में भी पूर्ण तटस्थ रहा फलस्वरूप इटली का एकीकरण पूर्ण हुआ और रोम इटली की राजधानी बन गया।

(3) **रूस के साथ सम्बन्ध**—फ्रांस-प्रशा युद्ध के कारण रूस को क्रीमिया युद्ध के समय उस पर लादी गयी पेरिस की सन्धि को तोड़ने का अवसर प्राप्त हो गया। उसने काला सागर में अपने जहाजी बेड़े को सुदृढ़ करके उसे बासफोरस तथा डार्डनेलीस तक जाने में समर्थ बना दिया। अतएव मार्च 1871 ई. में इंग्लैण्ड के विदेश सचिव ग्रेनवाइल ने लन्दन में एक सभा का आयोजन किया। इस सभा में यह निर्णय लिया गया कि किसी भी यूरोपीय सन्धि को तोड़ने का अधिकार किसी एक देश को नहीं होगा। इसमें यह भी निर्धारित किया गया कि काला सागर तथा दूसरे जलडमरूमध्यों में टर्की को मित्र देशों के युद्धपोत आने देने का अधिकार होगा। इस प्रकार इंग्लैण्ड ने काला सागर पर टर्की के प्रभुत्व को स्थापित कराया और रूस का उस पर एकमात्र अधिकार न हो सका।

(4) **अलबामा की समस्या**—अमरीका और इंग्लैण्ड के सम्बन्ध मधुर थे, किन्तु अमरीका के गृह युद्ध के समय अलबामा नामक युद्धपोत (जो कि इंग्लैण्ड में बना था और अमरीका की दक्षिणी रियासतों ने खरीदा था) ने अमरीका को भारी क्षति पहुंचायी। अमरीका ने जहाजरानी तथा अन्य हानियों के कारण ब्रिटिश सरकार से क्षतिपूर्ति की मांग की। इंग्लैण्ड की सरकार प्रारम्भ में क्षतिपूर्ति देना नहीं चाहती थी अपितु उसने अमरीका से कनाडा में हुई हानि के लिए क्षतिपूर्ति की मांग की। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश उत्तरी अमरीका के समुद्र में, जो कि अमरीका से बहुत दूर था, मछली पकड़ने के अधिकारों को लेकर मतभेद था। **उपर्युक्त समस्याओं एवं मतभेदों को दूर करने के उद्देश्य से ग्लैडस्टन इन समस्याओं को मध्यस्थों के समक्ष रखने पर तैयार हो गया अतः जेनेवा में इन समस्याओं का निराकरण किया गया।** इंग्लैण्ड अमरीका की उसकी जहाजरानी को हुए नुकसान को पूरा करने को तैयार हो गया तथा उसने अपने

हुआ कि उसे उस समुद्र में मछली पकड़ने का भी अधिकार मिल गया। इंग्लैण्ड में जेनेवा में हुए इस निर्णय का घोर विरोध हुआ और जगह-जगह प्रदर्शन हुए, किन्तु ग्लैडस्टन ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि यदि इंग्लैण्ड क्षतिपूर्ति की राशि न देकर अमरीका से युद्ध मोल लेता तो उससे अधिक धन युद्ध में व्यय हो जाता। साथ ही साथ अमरीका से सम्बन्ध भी खराब हो जाते। ग्लैडस्टन का सोचना गलत नहीं था, वास्तव में उसने न केवल एक युद्ध को टाला वरन् मध्यस्थता का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय रूप से देशों के मध्य अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने के लिए स्वीकार किया गया।

(5) **अशांटी का युद्ध** (1873-74)—गोल्ड कोस्ट (Gold Coast), इंग्लैण्ड ने 1871 ई. में सुमात्रा को देकर डचों से प्राप्त किया था। अशांटी नामक एक जाति जो कि अफ्रीका में गोल्ड कोस्ट के आन्तरिक भागों में रहती थी, ने अंग्रेजों को कर देने से इन्कार कर दिया तथा एक अन्य जाति फैन्टी पर आक्रमण कर दिया जो कि इंग्लैण्ड के अधीन ही थी। **विवश होकर अशांटी जाति के विरुद्ध इंग्लैण्ड को युद्ध लड़ना पड़ा, इस समय अशांटी जाति का शासक कौफी कैलकली** (Coffee Calcale) **था।** शीघ्र ही इंग्लैण्ड ने अशांटी शासक को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश किया। राजा कैलकली ने वहां शान्ति रखने का वचन दिया तथा मानव वध भी बन्द करना स्वीकार किया। इस प्रकार 1874 ई. में ग्लैडस्टन गोल्ड कोस्ट में शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ।

(6) **बोअर युद्ध**—डिजरैली ने अपने प्रधानमन्त्रित्व काल में अफ्रीका में ट्रांसवाल को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया था। ट्रांसवाल में रहने वाली बोअर जाति डिजरैली की इस साम्राज्यवादिता को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी। क्रूगर (Kruger) के नेतृत्व में बोअरों ने 1880 ई. में विद्रोह कर दिया। चार स्थानों पर भयंकर युद्ध हुए। चौथा युद्ध मजूबा हिल पर हुआ जिसमें बोअर विजयी हुए। इंग्लैण्ड की सरकार ने भारत से सर फ्रेडरिक रार्बट्स (Sir Fredrick Roberts) को मजूबा हिल की पराजय का बदला लेने अफ्रीका भेजा, **किन्तु इसी बीच ग्लैडस्टन ने युद्ध बन्द कर दिया, क्योंकि उसका आदर्शवादी विचार था कि यह सम्भव है कि अंग्रेजी सेना अपनी सैनिक शक्ति से बोअरों को परास्त कर दे, किन्तु वे उनकी स्वतन्त्रता की भावना को नहीं कुचल सकते थे।** अतः ग्लैडस्टन के कारण सन् 1881 ई. में बोअरों से इंग्लैण्ड ने सन्धि कर ली और अंग्रेजी ताज के आधिपत्य में उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी। ग्लैडस्टन के द्वारा भावनात्मक निर्णय व नीति के कारण इंग्लैण्ड की जनता अप्रसन्न हो गयी और ग्लैडस्टन की कटु आलोचना हुई।

(7) **अरेबी बे का विद्रोह** (1881)—मिस्र में इंग्लैण्ड के हस्तक्षेप का युग डिजरैली द्वारा स्वेज नहर के हिस्सों को खरीदने से प्रारम्भ हो चुका था। मिस्र का खदीवी इस्माइल सूडान पर विजय प्राप्त करने के लोभ में फंसकर इंग्लैण्ड और फ्रांस का ऋणी हो गया और इस प्रकार मिस्र की वित्त व्यवस्था पर इन दोनों देशों का अधिकार अप्रत्यक्ष रूप से हो चुका था। इन देशों ने 1879 ई. में इस्माइल को उसके पद से हटाकर उसके पुत्र तैफिक (Tewfik) को गद्दी पर बैठा दिया था मिस्र में विदेशियों के हस्तक्षेप के विरुद्ध सन् 1881 ई. में एक आन्दोलन हुआ जिसको इतिहास में अरेबी के विद्रोह के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन का नारा **"मिस्र, मिस्र निवासियों के लिए है"**[1] था। इन आन्दोलनकारियों ने विदेशियों को निकाल दिया और लगभग पचास यूरोपियनों को बिना किसी कारण मार डाला था। लार्ड

1 'Egypt for Egyptians'

क्रामर ने इस पर कहा 'स्पष्ट रूप से कुछ न कुछ करना आवश्यक था, क्योंकि मिस्र के समाज का पूर्ण ढांचा समाप्त होने वाला था।'[1]

मिस्र में फ्रांस ने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। अतएव इंग्लैण्ड को विवश होकर शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। शीघ्र ही अंग्रेज सेनाओं ने अंग्रेज आन्दोलन को कुचल दिया। ग्लैडस्टन के शब्दों में, **'सैनिक कार्यवाहियां अब पूर्ण हो चुकी थीं। अरेबी बन्दी बना लिया गया, उस पर अभियोग चलाया गया, उसको दण्ड दिया गया एवं अन्त में उसको लंका भेज दिया गया।'**[2] इस प्रकार इंग्लैण्ड का मिस्र पर प्रभाव बढ़ गया।

(8) **सूडान का विद्रोह**—सूडान मिस्र के अधीन था, वहां पर मिस्र के अत्याचारी शासन से तंग आकर मिस्र के विरुद्ध विद्रोह हो गया, मिस्री सेना विद्रोह को दबाने में असफल रही। महदी के बहुत से भूभाग पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजी सेना जो कि मिस्र की सहायतार्थ गई वह भी सूडान में घिर गयी। इंग्लैण्ड ने अपनी फंसी हुई सेना को खारतूम से निकालने के लिए जनरल गार्डन को मिस्र भेजा। जनरल गार्डन को बड़े सम्मान के साथ विदा किया गया। जनरल मार्ले ने इस सम्बन्ध में लिखा है, **'लार्ड ग्रेनवाइल विदेशमन्त्री ने गार्डन का स्टेशन पर टिकट खरीदा, लार्ड वूल्जले ने उसका बैग उठाया और सेनापति ड्यूक ऑफ कैम्ब्रिज ने उसके गाड़ी में बैठने के लिए गाड़ी की खिड़की को खोलकर पकड़े रखा।'** यद्यपि जनरल गार्डन से महदी से युद्ध न करने के लिए कहा गया था। तथापि गार्डन ने महदी के अत्याचारों को असहनीय मानते हुए उसे दण्ड देने के उद्देश्य से महदी पर आक्रमण करना चाहा। इसकी सूचना जब इंग्लैण्ड पहुंची तो लार्ड वूल्जले को गार्डन की सहायतार्थ मिस्र रवाना किया, किन्तु लार्ड वूल्जले के पहुंचने से पूर्व ही युद्ध छिड़ गया और 26 जनवरी सन् 1885 ई. को गार्डन मार डाला गया। इससे इंग्लैण्ड में क्षोभ के साथ-साथ रोष उत्पन्न हो गया यहां तक कि महारानी विक्टोरिया ने ग्लैडस्टन को लिखा **'यह सोचकर अत्यन्त भय उत्पन्न हो रहा था कि यदि इससे पूर्व ही कार्यवाही की गई होती तो खारतून का पतन तथा बहुत से बहुमूल्य जीवनों का अन्त न होता।'**[3] ग्लैडस्टन ने अपने आलोचकों को समझाया कि गार्डन को अंग्रेजी सेना को लाने के लिए भेजा गया था, किन्तु उसने सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करके महदी से युद्ध किया, अतः अपनी मौत के लिए वह स्वयं ही जिम्मेदार था न कि सरकार।

(9) **अफगानिस्तान से मित्रता**—टर्की साम्राज्य में अपने प्रयत्नों में असफल रहने के पश्चात् रूस की दृष्टि अब अफगानिस्तान पर थी और वह निरन्तर उस दिशा में अग्रसर हो रहा था। रूस ने पेन्जदेह (Penjdeh) में अफगानों को परास्त किया। इंग्लैण्ड, अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता बनाए रखना चाहता था। अतएव ग्लैडस्टन ने युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। रूस इंग्लैण्ड को युद्ध में कूदते देख इस समस्या को मध्यस्थता द्वारा हल करने के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार एक कठिन समस्या का समाधान हो गया।

(10) **पूर्वी समस्या**—ग्लैडस्टन ने पूर्वी समस्या के विषय में मुख्य रूप से बर्लिन की सन्धि की धाराओं को कार्यान्वित करने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रयास नहीं किया, किन्तु

1 'Manifestly, something had to be done, for the whole framework of society in Egypt was on the point of collapsing.' —*Lord Cromer*

2 'The series of military operations, was now complete. Arabi was captured, brought to trial, Sentenced to death had finally deported to Ceylon.' —*Gladston*

3 'It was to fearful to consider that the fall of Khartoum might have been prevented and many precious lives saved by earlier action.' —*Queen Victoria*

टर्की के सुल्तान ने बर्लिन की सन्धि की अनेक धाराओं को पूरा नहीं किया था अतएव ग्लैडस्टन एवं उसका मन्त्रिमण्डल इस कार्य को **यूरोपीय संघ** (Concert of Europe) के मांध्यम से कराना चाहता था। अन्त में यूरोपीय शक्तियों के दबाव में आकर टर्की ने बर्लिन की सन्धि की धाराओं को पूरा किया।

ग्लैडस्टन शान्ति एवं तटस्थता को पसन्द करता था। अतएव उसकी वैदेशिक नीति को अंग्रेजी जनता ने पसन्द नहीं किया। उसकी विदेशी नीति के सम्बन्ध में मैरियट ने लिखा है, **'ग्लैडस्टन की विदेश नीति बड़ी दुर्बल तथा बेढंगी थी। यह भावना कि उसकी विदेश नीति से ब्रिटिश प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा, लिबरल दल के 1874 ई. के चुनाव में हारने का प्रमुख कारण था।**[1]

बैंजामिन डिजरैली की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF DISRAELI)

ग्लैडस्टन की कमजोर विदेश नीति से इंग्लैण्ड की जनता निराश हो चुकी थी और एक शक्तिशाली एवं जोशीली विदेश नीति की अपेक्षा कर रही थी। डिजरैली जो कि एक महान् साम्राज्यवादी था, के भाषणों से इंग्लैण्ड की जनता बहुत प्रभावित हुई थी और वे अपने खोए हुए राष्ट्रीय गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए डिजरैली को विश्वासपात्र एवं योग्य व्यक्ति समझने लगे थे। डिजरैली ने जनता के विश्वास को वास्तविकता में परिणत किया और इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को उच्चतम शिखर तक पहुंचाया। वह सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान को अर्जित करना, स्थापित करना तथा सुरक्षित करना चाहता था।[2] पामर्स्टन की तरह उसने आक्रामक एवं हस्तक्षेप की नीति को अपनाया था। वह इंग्लैण्ड को यूरोप का मुखिया बनाना चाहता था, अतः उसने साम्राज्यवादी नीति को अपनाया। उसका कहना था कि, **'अपने अधिकार में एक नवीन संसार है, नवीन प्रभाव कार्य कर रहे हैं, नवीन तथा अज्ञात पदार्थ संकट में हैं जिनका आपको सम्मान करना है.........इंग्लैण्ड के सम्बन्ध यूरोप से वैसे नहीं हैं जैसे कि लार्ड चेथम अथवा फ्रेडरिक महान् के समय में थे। इंग्लैण्ड की महारानी पूर्व के सर्वाधिक शक्तिशाली राज्यों की सम्प्रभु बन गयी है। भूमण्डल के दूसरी ओर उसके वे उपनिवेश हैं जो कि सम्पत्ति एवं जनता से परिपूर्ण हैं.......शक्ति के वितरण में ये विशाल एवं नवीन तत्व हैं.......इस समय हमारा कर्तव्य यह है कि हम इंग्लैण्ड के साम्राज्य को बनाए रखें।'**[3] साम्राज्यवादिता में उसका गहरा विश्वास था। वह अंग्रेजी उपनिवेशों की ओर से लापरवाह होने के लिए तैयार न था। वह इन बस्तियों से इंग्लैण्ड के सम्बन्ध अधिक से अधिक घनिष्ठ करना चाहता था। साथ-साथ वह

1 'The foreign policy of Gladston was very weak and awkwardly managed and the feeling that British prestige had been greatly impaired, was an importand cause of the defeat of liberals the elections of 1874.' —*Marriot*

2 'Upholding, maintaining and preserving the supreme national honour.' —*Disraeli*

3 'You have a new world, new influences at work, new and unkown objects and dangers with which to cope...... The relations of England to Europe are not the same as they were in the days of Lord Chathom or Frederick the Great. The Queen of England has become the sovereign of the most powerful of oriental stats. On the other side of the globe there are now establishments belonging to her, teeming with wealth and population...... There are vast and novel elements in the distribution of the power..... What our duty at this critical moment is to maintain the Empire of England.' —*Disraeli*

इन उपनिवेशों को स्वायत्त शासन दिए जाने के पक्ष में था, **किन्तु इम्पीरियल टैरिफ** (Imperial Tariff) **व मिलिट्री कोड** (Military Code) **को इंग्लैण्ड के अधीन ही रखना चाहता था।** उसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन यूरोप की न केवल एक महान् शक्ति ही है, बल्कि वह अब व्यापारिक देशों के व्यापार का महान् केन्द्र बन चुका है। हमारा कर्तव्य ब्रिटेन के उस साम्राज्य को स्थापित रखना है जिसके कारण ब्रिटेन को यूरोप की कौंसिल में अत्यधिक महत्ता प्राप्त हो सकती है और जो अकेला ही महाद्वीप की शान्ति को सुरक्षित बना सकता है।[1] डिजरैली चाहता था कि नया संसार प्रमुख रूप से अंग्रेजी संसार हो। नए प्रभावों को उसने ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के अनुरूप निर्मित करने का प्रयत्न किया। अपने इसी प्रयास को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उसने अनेक साम्राज्यवादी कार्य किए जिसमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

(क) स्वेज नहर के हिस्से खरीदना—स्वेज नहर एक महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग है क्योंकि यह भूमध्य सागर से लाल सागर को जोड़ती है। इंग्लैण्ड के लिए इस नहर का विशेष महत्व भारत के कारण भी था। 1875 ई. में डिजरैली ने मिस्र के खदीब से स्वेज नहर के एक लाख छियत्तर हजार भाग (Shares)[2] को खरीद लिया यदि डिजरैली ने इनको खरीदा न होता तो निश्चित रूप से इन्हें फ्रांस ने खरीद लिया होता। डिजरैली ने यह कार्य अत्यन्त गुप्त रूप से एवं शीघ्रता से किया। उसने संसद तथा विदेशमन्त्री से भी इस विषय में परामर्श लेना उचित नहीं समझा। उसके इस कार्य की प्रारम्भ मे कटु आलोचना की गई, किन्तु शीघ्र ही इसका लाभ लोग समझ गए। नेपोलियन महान् का कहना था कि इंग्लैण्ड को नष्ट करने के लिए मिस्र पर अधिकार कर लेना चाहिए। उसके इन शब्दों से मिस्र का इंग्लैण्ड के लिए महत्व स्पष्ट हो जाता है। **डिजरैली के स्वेज नहर के हिस्से खरीदने से मिस्र की कुंजी इंग्लैण्ड को मिल गयी।**

(ख) राज-उपाधि विधेयक—1875-76 ई. की शीत ऋतु में युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) भारत आया। उसका भारत में भव्य स्वागत किया गया, फलस्वरूप भारत और इंग्लैण्ड के मध्य, सम्बन्धों में कुछ सौहार्द्र उत्पन्न हुआ। 1876 ई. में डिजरैली ने एक बिल पारित कराया जिसका नाम '**रायल टाइटिल्स बिल**' (The Royal Titles Bill) था। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी (Empress of India) की उपाधि धारण कर भारत को पूर्णतया ताज के अधीन कर दिया गया। 1877 ई. में डिजरैली की योग्यता के अनुसार भारत की राजधानी दिल्ली में एक विराट दरबार का आयोजन किया गया। भारत की सभी प्रमुख रियासतों के शासकों ने इसमें भाग लिया और महारानी विक्टोरिया के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की। **डिजरैली ने इस अवसर पर कहा, 'भारत में भारत के राजा-महाराजा तथा जनता (राष्ट्र) यह जानते हैं कि इस विधेयक का क्या अर्थ है और वे यह भी जानते हैं कि इसका वही अर्थ है जिसकी उनको इच्छा है।'**

1 'Great Britain is no longer a mere European power, but she is the metropolis of a great maritime empire. Our duty is to maintain this vast empire of England which alone can make it a supreme power in the council of Europe and which alone can make efforts to secure lasting peace in the continent.' —*Disraeli*

2 कुल हिस्से चार लाख थे।

(ग) फिजी द्वीप पर अधिकार—1876 ई. में फिजी द्वीप पर अंग्रेजों की पूर्ण सत्ता स्थापित हो गयी। प्रशान्त महासागर के द्वीपों पर शासन करने के लिए एक हाई-कमिश्नर को वहां भेजा गया।

(घ) दक्षिणी अफ्रीका में युद्ध—डिजरैली अफ्रीका की दक्षिणी रियासतों को एक संघ में सम्मिलित कर देना चाहता था। ट्रांसवाल को भी यह इसी संघ में मिलाना चाहता था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सर वार्टल फ्रेयर (Sir Bartle Frere) को अफ्रीका भेजा। उसने ट्रांसवाल को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया, किन्तु उसके ऐसा करने से ट्रांसवाल की जुलू (Zulu) जाति ने विद्रोह कर इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। प्रारम्भ में कुछ विफलताओं के पश्चात् अन्त में अंग्रेज सेना ने जुलू जाति को हथियार डालने के लिए विवश किया। सन् 1879 ई. में पूर्ण रूप से ट्रांसवाल इंग्लैण्ड के अधीन हो गया।

(ङ) बिस्मार्क की महत्वाकांक्षाओं का प्रतिरोध—यद्यपि बिस्मार्क अपनी कूटनीति से जर्मनी का एकीकरण कर चुका था, परन्तु उसकी महत्वाकांक्षाएं बढ़ती ही जा रही थीं। डिजरैली उसकी महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाना चाहता था। डिजरैली को 1875 ई. में ज्ञात हुआ कि जर्मनी फ्रांस की शक्ति को रूस तथा आस्ट्रिया की सहायता से समाप्त करना चाहता है। **डिजरैली ने स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए तत्काल घोषणा कर दी कि यदि फ्रांस पर आक्रमण हुआ तो उसे वह इंग्लैण्ड के ऊपर आक्रमण समझेगा।** उसकी इस धमकी ने प्रभाव डाला और बिस्मार्क ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया। इसी प्रकार बिस्मार्क ने स्पेन तथा बेल्जियम के विषय में हस्तक्षेप करना चाहा। डिजरैली ने रूस को अपनी ओर मिलाया और बिस्मार्क की नीति का विरोध किया, बिस्मार्क को विवश होकर पुनः चुप रहना पड़ा।

(च) आयरलैण्ड और डिजरैली—डिजरैली के समय में भी आयरलैण्ड में स्थित शान्तिपूर्ण नहीं थी। वहां पर व्यापक असन्तोष छाया हुआ था। यद्यपि डिज़रैली ने आयरलैण्ड को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु वहां व्यापक असन्तोष को कम करने में सफल न हो सका। 1878 ई. में आयरलैण्ड की स्थिति अकाल पड़ने के कारण और खराब हो गयी। आयरिश नेता पारनेल ने अपने होमरूल आन्दोलन को और तीव्र कर दिया। 1879 ई. में क्वींस विश्वविद्यालय के स्थान पर आयरलैण्ड विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। डिजरैली ने इन आन्दोलनों को पसन्द नहीं किया और उसने आयरलैण्ड में कठोर कदम उठाए।

(छ) पूर्वी समस्या और डिजरैली—डिजरैली के शासन काल में एक बार फिर पूर्वी समस्या उठ खड़ी हुई। टर्की के तुर्क लोग वहां रह रहे ईसाइयों पर घोर अत्याचार करते थे। 1875 ई. में हर्जेगोविना की जनता ने वहां कर वसूलने वालों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा उन पर अत्यधिक अत्याचार किए जिससे यूरोप के ईसाई जगत में सनसनी फैल गई। **आस्ट्रिया के चांसलर काउन्ट एन्ड्रैसी** (Count Andrassy) **ने टर्की की सरकार में सुधार करने का प्रस्ताव रखा। जिसका डिजरैली ने भी समर्थन किया।** टर्की ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया, किन्तु क्रियात्मक रूप से उसने इन्हें कार्यान्वित नहीं किया। इस पर एक बार फिर 1876 ई. में आस्ट्रिया ने टर्की की सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया, किन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

1876 ई. में टर्की के अत्याचारों से परेशान होकर बल्गारिया के ईसाइयों ने विद्रोह कर दिया, किन्तु टर्की की सेना ने बल्गारिया के विद्रोह का क्रूरतापूर्वक दमन किया। ऐसा माना जाता है कि तुर्कों ने बारह सौ ईसाइयों को एक दुर्ग में बन्द कर जीवित जला दिया

था। इसे सुनकर ग्लैडस्टन अत्यधिक दु:खी हुआ और उसने एक पत्रिका **'बल्गारिया अत्याचार तथा पूर्वी प्रश्न'**[1] प्रकाशित की जिसमें उसने अपने देशवासियों से प्रार्थना की कि वे सरकार से अनुरोध करें कि वह टर्की की शक्ति को समाप्त कर देने में यूरोप के अन्य राष्ट्रों को सम्पूर्ण शक्ति के साथ सहयोग दें। तुर्कों को बल्गारिया से हटाकर वहां हो रहे अत्याचारों को समाप्त करें। उसने अपने भाषणों तथा लेखों में यह मांग की कि तुर्कों को बोरिया-बिस्तर के साथ उन प्रान्तों से निकाल देना चाहिए जिन्हें उन्होंने अपवित्र तथा नष्ट कर दिया है।[2] इस पर भी डिजरैली ने कोई कार्यवाही नहीं की। फलतः टर्की साम्राज्य में रह रहे ईसाइयों की सुरक्षा के लिए रूस आगे बढ़ा और 1877 ई. में रूस और टर्की का युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में रूस ने टर्की को परास्त किया और उसने सैन स्टीफेनो (San Stefano) की सन्धि करने के लिए विवश किया। इस सन्धि के द्वारा रूस को काला सागर में व्यापारिक तथा अन्य अनेक सुविधाएं मिल गयीं तथा रूस के नियन्त्रण में एक विशाल बल्गारिया की स्थापना की गयी। इस सन्धि से इंग्लैण्ड सहित अन्य यूरोपीय शक्तियों के हितों को आघात पहुंचा, अतः आस्ट्रिया ने एक सम्मेलन के आयोजन का प्रस्ताव किया। इंग्लैण्ड की ओर से लार्ड डर्बी ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और स्पष्ट किया कि सेन स्टीफेनो की सन्धि में जितने भी विषय सम्मिलित हैं, उन पर सम्मेलन में विचार कि जाना चाहिए। **डिजरैली ने अपने भाषण के दौरान कहा कि 'हमारी नीति की मूलगत विशेषता' तथा 'कूटनीति का मुख्यांग' यही है।**[3] सेन स्टीफेनो की सन्धि पर उसकी प्रतिक्रिया इन शब्दों में स्पष्ट हैं, 'यह यूरोप में उसमानी साम्राज्य की सीमाओं को समाप्त करती है। यह एक विशाल राज्य को जन्म देती है जो कि बल्गारिया के नाम से बनाया गया है, परन्तु इसमें अनेक ऐसी प्रजातियां हैं जो कि बल्गारिया की नहीं हैं। उसमानी सुल्तान के सभी यूरोपीय राज्य...... रूस के प्रशासन के अधीन रख दिए गए हैं......समस्त शर्तों का समग्र परिणाम यह होगा कि काला सागर कैस्पियन सागर के समान एक रूसी झील बन जाएगा।'[4] रूस इस प्रकार के यूरोपियन सम्मेलन के विरोध में था, किन्तु युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर उसने सम्मेलन आयोजित किया जाना स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व कि इस सम्मेलन (बर्लिन कांग्रेस) के विषय में विचार किया जाए, यह जानना आवश्यक है सेन स्टीफेनो की सन्धि की कौन-कौन सी धाराएं थीं। **सेन स्टीफेनो की सन्धि की मुख्य धाराएं इस प्रकार थीं—**

(1) टर्की सर्बिया, मौन्टेनीग्रो और रूमानिया को स्वतन्त्रता प्रदान कर देगा।

(2) बोस्निया एवं हर्जेगोविना को टर्की के अधीन स्वायत्त शासन दे दिया जाए।

(3) रूस को बातूम, कार्स और बैसेरेबिया के प्रदेश मिलेंगे।

(4) वृहत बल्गारिया को समुद्री मार्ग के लिए एजियन सागर दिया जाए।

---

1 'Bulgarian Horrors and the Question of the East.'

2 'Turks should be cleared out 'bag and baggage'......from the province they have desolated and profaned.' —*Gladstone*

3 'This had been throughout 'the Key note of our policy', the diapason of our diplomacy.' —*Disraeli*

4 'It abolishes the dominion of the Ottoman Empire in Europe; it creates a large state which under the name of Bulgaria, is inhabited by many races not Bulgaria......all the European dominions of the—Ottoman porle are....put under the administration of Russia......the effect of all the stipulations combined will be to make the Black sea as much a Russia lake as the Caspian.' —*Disraeli*

उपर्युक्त सन्धि की शर्तों को देखते हुए इंग्लैण्ड बल्गारिया को रूस के प्रभाव से मुक्त कराना आवश्यक समझता था क्योंकि उससे बाल्कन प्रदेश में रूस का प्रभुत्व बढ़ने की आशा थी। **इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों द्वारा इस सन्धि को एक यूरोपीय कांग्रेस के समक्ष रखवाने का यह एक प्रमुख कारण था।** अतः बर्लिन में हुई इस कांग्रेस में बिस्मार्क ने अध्यक्ष का पद सुशोभित करते हुए **'ईमानदार दलाल'** (Honest Broker) की भूमिका निभाने की घोषणा की। इस सम्मेलन में अन्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त इंग्लैण्ड की ओर से डिजरैली एवं सैलिसबरी आए। **इस सम्मेलन में निम्न शर्तों को निर्धारित किया गया—**

(1) बल्गारिया को तीन भागों में विभक्त कर दिया गया—

(क) बल्गारिया

(ख) दक्षिणी बल्गारिया अर्थात् मैसिडोनिया टर्की के अधीन कर दिया गया।

(ग) वृहद् बल्गारिया से पूर्वी रूमेलिया की रियासत पृथक् करके एक स्वशासित राज्य के रूप में टर्की के अधीन बना दी गयी। इस रियासत का गवर्नर टर्की द्वारा मनोनीत किया जाना था जो कि क्रिश्चियन होना आवश्यक था। नियुक्ति के समय टर्की से आशा की जाती थी कि वह यूरोपीय शक्तियों से गवर्नर की नियुक्ति करते समय परामर्श लेगा।

(2) सर्बिया, मौण्टेनीग्रो एवं रूमानिया की रियासतों को टर्की से स्वतन्त्र कर दिया गया।

(3) आस्ट्रिया को बोस्निया और हर्जेगोविना को रियासतों का अधिकार दिया गया और उनके प्रशासन का भार भी आस्ट्रिया को सौंपा गया।

(4) रूस को डाबरूशा (Dobrdusha) के बदले (रूमानिया से) बैसेरेबिया प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बातूम (Batoum) तथा कार्स (Kars) के प्रदेश मिले।

(5) रूस से रूमानिया को डाबरूसा मिला।

(6) टर्की अपनी सभी रियासतों में धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करेगा।

(7) इंग्लैण्ड को इस सन्धि में साइप्रस का द्वीप मिलेगा।

इस सन्धि के पश्चात् डिजरैली ने इंग्लैण्ड लौटकर गर्व से घोषणा की कि **'मैं इंग्लैण्ड के लिए एक सम्मानपूर्वक शान्ति लाया हूं।'**[1] डिजरैली की यह व्यक्तिगत एवं राजनीतिक विजय थी। बार्लेन की सन्धि ने रूस की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। उसने पश्चिम में बढ़ने पर विचार छोड़ दिया। इंग्लैण्ड के सम्मान में यूरोप में वृद्धि हुई। इसके साथ ही इस सन्धि में कुछ कमियां भी थीं। जिन बाल्कन देशों ने इस युद्ध में भाग नहीं लिया था, उन्हें किसी भी प्रकार से इस सन्धि से सन्तोष नहीं हुआ। यूनान को थीसले (Thessaley) तथा आएपीरस (Epirus) नहीं दिया गया था। डिजरैली का एक विचार था कि इस सन्धि के द्वारा रूस की शक्ति को कम करके वह इंग्लैण्ड की स्थिति सुदृढ़ कर सकेगा, किन्तु बर्लिन की सन्धि का विपरीत प्रभाव हुआ क्योंकि इस सन्धि के पश्चात् रूस ने टर्की साम्राज्य के स्थान पर अफगानिस्तान की ओर ध्यान केन्द्रित किया जिससे इंग्लैण्ड के समक्ष एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई।

---

1 **'I have brought peace with honour.'** *—Disraeli.*

इसके पश्चात् भी इसमें सन्देह नहीं है कि रूस को टर्की साम्राज्य की विघटित होती हुई शक्ति का लाभ डिजरैली ने नहीं उठाने दिया। साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से भी साइप्रस के द्वीप पर अधिकार प्राप्त करना भी एक सामरिक महत्व की बात थी।

(ज) **द्वितीय अफगान युद्ध**—बर्लिन की सन्धि के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के भारतीय उपनिवेश के लिए संकट उत्पन्न हो गया, क्योंकि रूस ने अफगानिस्तान में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था। डिजरैली अफगानिस्तान के सम्बन्ध में शक्तिशाली वैदेशिक नीति अपनाने के पक्ष में था। जब नार्थ ब्रुक ने ऐसी नीति पर चलने से इन्कार कर दिया तो उसे वापस बुलाकर लार्ड लिटन को ऐसा करने के उद्देश्य से भेजा गया। लार्ड लिटन ने रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए अग्रिम नीति (Forward policy) अपनायी और बोलन के दर्रे पर अपनी स्थिति सुदृढ़ की।

नवम्बर, 1878 ई. में द्वितीय अफगान युद्ध प्रारम्भ हो गया और शेर अली देश छोड़ने पर विवश हुआ। इंग्लैण्ड ने शेर अली के पुत्र याकूब खां के साथ एक सन्धि की जिसमें उसने रूस के विरुद्ध इंग्लैण्ड की सहायता करना स्वीकार किया। इसके साथ ही याकूब खां ने काबुल में एक ब्रिटिश एजेण्ट को रखना भी स्वीकार किया। इस सन्धि के दो माह पश्चात् ही काबुल में ब्रिटिश एजेण्ट की हत्या कर दी गयी। फलस्वरूप अफगानिस्तान के विरुद्ध इंग्लैण्ड ने तृतीय युद्ध प्रारम्भ कर दिया जो कि डिजरैली के मन्त्रिमंण्डल के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी चलता रहा।

लार्ड सैलिसबरी की विदेश नीति
(FOREIGN POLICY OF LORDS SALISBURY)

सैलिसबरी के प्रधानमन्त्री बनने से पूर्व यूरोपीय स्थिति इंग्लैण्ड की दृष्टि से असन्तोषजनक थी। ग्लैडस्टन की नीति सर्वथा असफल रही थी और इंग्लैण्ड का यूरोप में सम्मान घटा था। बर्लिन कांग्रेस की धाराएं यूरोप में व्यवहार में नहीं लायी जा रही थीं, किन्तु इंग्लैण्ड फिर भी किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं कर रहा था। **इसका यह अर्थ नहीं है कि उस समय इंग्लैण्ड शक्तिहीन हो गया था वरन् उस समय इंग्लैण्ड शानदार अलगाव की नीति** (Policy of Splendid Isolaton) **का पालन कर रहा था।** यद्यपि सैलिसबरी ने भी इसी अलगाव की नीति का पालन किया, किन्तु उसने इंग्लैण्ड के गौरव की पुनर्स्थापना करने का भी पूर्ण ख्याल रखा जैसा कि मैरियट ने लिखा है, '**उसने निश्चय किया कि वह विदेशों में अंग्रेजी नीति को आदर एवं सम्मान सहित बरतेगा वह हस्तक्षेप की नीति से दूर रहेगा तथा इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को सुरक्षित तथा निर्भयता से कायम रखेगा।**'[1]

यद्यपि सैलिसबरी ग्लैडस्टन के समान **अच्छे पड़ोसी रखने की नीति** (Good Neighbouring Policy) का समर्थक था तथापि दूसरी ओर डिजरैली के समान एक साम्राज्यवादी विचारधारा में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। डिजरैली के समान वह भी उपनिवेशों को इंग्लैण्ड के लिए महत्वपूर्ण मानता था। उसने उपनिवेशों से अपने सम्बन्ध मधुर एवं दृढ़ करने के उद्देश्य से 1887 ई. में एक सभा का आयोजन किया जिसमें समस्त उपनिवेशों को निमन्त्रित किया गया। कुछ समय पश्चात् प्रति वर्ष ऐसी सभाओं का आयोजन

1 **"He determined to perform the English part with honour, to abstain from meddling diplomacy and to uphold the English honour steadily and fearlessly.' —*Marriot***

होने लगा। इसी समय उपनिवेशों के कारण यूरोप के विभिन्न देशों में संघर्ष प्रारम्भ हो गए। एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने के लिए यूरोप के राष्ट्र एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो गए। सैलिसबरी ने भी इस अवसर का पूर्ण लाभ उठाया और इंग्लैण्ड के साम्राज्य का विस्तार किया। जिसके अन्तर्गत उसने निम्नलिखित कार्य किए—

(1) **बर्लिन कांग्रेस** (Berlin Congress)—टर्की साम्राज्य में ईसाई जनता तुर्कों के अत्याचारों से परेशान होकर स्वतन्त्र होने का प्रयत्न कर रही थी। जिस समय बल्गारिया ने विद्रोह किया तो तुर्कों ने क्रूरतम तरीकों से इस विद्रोह का दमन किया। ऐसी स्थिति में अन्य राष्ट्रों ने तो हस्तक्षेप न किया, किन्तु रूस अपने राजनीतिक हितों के कारण शान्त न रह सका। उसने टर्की को परास्त कर सेन स्टीफेनो की सन्धि मानने पर विवश किया। इस दौरान इंग्लैण्ड का वैदेशिक मन्त्री लार्ड डर्बी था। लॉर्ड डर्बी एक शान्तिप्रिय व्यक्ति था। **प्रधानमन्त्री डिजरैली को उसकी यह शान्तिप्रियता पसन्द न थी। अतः लॉर्ड डर्बी के स्थान पर लॉर्ड सैलिसबरी को विदेशमन्त्री बनाया गया।** सैलिसबरी इससे पूर्व टर्की में रह चुका था अतएव उसे टर्की के विषय में विस्तृत जानकारी थी। भारतीय उपनिवेश के कारण सैलिसबरी टर्की के महत्व से परिचित था। अतः वह टर्की साम्राज्य में रूस के हस्तक्षेप का विरोधी था। उसने तथा डिजरैली ने सेन स्टीफेनो की सन्धि पर पुनर्विचार करने का यूरोपींय शक्तियों से आग्रह किया। सैलिसबरी ने अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ गुप्त समझौते कर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया और रूस को विवश होकर बर्लिन कांग्रेस की शर्तों को स्वीकार करना पड़ा। सैलिसबरी और डिजरैली के प्रयत्नों से इंग्लैण्ड को दुहरा लाभ हुआ। एक ओर रूस के बाल्कन प्रदेश में बढ़ते प्रभाव को रोक दिया गया तथा साइप्रस का द्वीप भी इंग्लैण्ड को प्राप्त हुआ।

(2) **जर्मनी से सम्बन्ध**—बिस्मार्क का प्रभुत्व उस समय यूरोप की राजनीति पर छाया हुआ था। 1879 ई. में बिस्मार्क ने इंग्लैण्ड के समक्ष एक समझौते का प्रस्ताव रखा। डिजरैली की इच्छा इस समझौते को करने की थी, किन्तु सैलिसबरी को इसमें विशेष रुचि नहीं थी। यद्यपि इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि यदि यह समझौता इंग्लैण्ड और जर्मनी के मध्य हो गया होता तो उसका क्या परिणाम होता; तथापि इतिहासकारों का अनुमान है कि यदि यह समझौता हो जाता तो सम्भवतः प्रथम विश्व-युद्ध ही नहीं होता। सैलिसबरी का बिस्मार्क पर विश्वास न होने के कारण इंग्लैण्ड ने यह अवसर खो दिया। जर्मनी ने 1879 ई. के अतिरिक्त 1889, 1895 व 1899 ई. में भी इंग्लैण्ड की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया, किन्तु सैलिसबरी को फ्रांस के साहित्य में रुचि थी एवं फ्रांस में उसकी जागीर होने के कारण उसने जर्मनी से समझौता नहीं किया। सैलिसबरी को जर्मन सम्राट विलियम कैसलर द्वितीय पर भी विश्वास न था, वह उसे एक **अविश्वसनीय व्यक्ति** (Untrust worthy) मानता था।

बिस्मार्क के युग तक जर्मनी ने इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक विस्तार में हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु बिस्मार्क के पतन के तत्काल पश्चात् जर्मनी ने अफ्रीका में विस्तार करने का प्रयत्न किया। सैलिसबरी ने जर्मनी के इन प्रस्तावों का विरोध किया और अन्त में 1890 ई. (जुलाई) में एक सन्धि हुई जिसके द्वारा जर्मनी ने जंजीबार पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार किया और इंग्लैण्ड ने हैलीगोलैण्ड जर्मनी को देना स्वीकार किया। इससे इंग्लैण्ड को न्यासालैण्ड तथा उगांडा का संरक्षण भी प्राप्त हो गया तथा नील क्षेत्र में जर्मनी का प्रभाव समाप्त हो गया।

(3) **मिस्र के साथ सम्बन्ध**—मिस्र में इंग्लैण्ड की प्रोटेक्टोरेट की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु कुछ अंग्रेजी राजनीतिज्ञ मिस्र को खाली कर देने के पक्ष में थे। मिस्र में इंग्लैण्ड के सैनिक दस्ते उपस्थित थे जिन्हें सैलिसबरी हटाना नहीं चाहता था। उसने मिस्र पर अपना अधिकार बनाए रखा।

(4) **अफ्रीका**—यूरोप के राष्ट्रों में अफ्रीका में उपनिवेश स्थापना के लिए प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी, इसमें प्रमुख इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी थे। 1890 ई. की इंग्लैण्ड व जर्मनी के मध्य हुई सन्धि के द्वारा जर्मनी ने अफ्रीका में हैलीगोलैण्ड लेकर इंग्लैण्ड का जंजीबार पर अधिकार स्वीकार कर लिया था। 1890 ई. में ही पुर्तगाल से सैलिसबरी ने सन्धि की जिसके द्वारा जम्बासी नदी को अंग्रेजी साम्राज्य की सीमा मान लिया गया। सैलिसबरी ने फ्रांस से भी सन्धि की जिसके द्वारा मिस्र तथा कांगो के कारण दोनों देशों में बढ़ती शत्रुता को कम किया गया। इस प्रकार सैलिसबरी अपने प्रयत्नों से इंग्लैण्ड को युद्धों से दूर रखने में सफल हुआ जैसा कि ट्रैवेलियन का भी मत है, '**सैलिसबरी की विवेकपूर्ण सौदेबाजी की वैदेशिक नीति और लगातार सुविधा देने की नीति ने अफ्रीका की बस्तियों के विषय में युद्ध को टालने में सफलता प्राप्त की।**[1]

(5) **फैशोदा की घटना**—इंग्लैण्ड और फ्रांस के पारस्परिक मधुर सम्बन्ध नहीं थे, क्योंकि उपनिवेशों को लेकर दोनों देशों के हित आपस में टकराते थे। इसी समय फ्रांस ने **कैप्टन मरचैण्ड** (Capt. Marchand) **के नेतृत्व में लगभग 120 सैनिकों को नील नदी की ऊपरी घाटी के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा।** फैशोदा (Fashoda) नामक स्थान पर पहुंचकर उसने फ्रांस का झण्डा लगा दिया। फैशोदा उस समय इंग्लैण्ड के प्रभाव में था। 1892 ई. में सर हर्ब किचनर की नियुक्ति सूडान पर अधिकार करने के लिए की गई। किचनर ने मरचैण्ड को तत्काल वापस लौटने के लिए कहा, किन्तु मरचैण्ड के द्वारा इन्कार किए जाने पर युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। ग्राण्ट एण्ड टेम्परले के शब्दों में, '**ब्रिटिश सरकार से आशा करना निरर्थक था कि रक्त और धन बहाकर जिस सूडान को उन्होंने जीता था, उसके समृद्धिशाली प्रदेश को फ्रांस के कुछ सैनिकों को सौंप देगा। फ्रांस के लिए भी अपना झण्डा हटाना कठिन था। अतः युद्ध अथवा धमकी ही इसका निर्णय कर सकती थी। लॉर्ड रोजबर्ग ने अपने भाषण में कहा कि जब वह इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री था, तभी उसने कहा था कि फ्रांस का वह कार्य जो वह आज कर रहा है, हमारे प्रति अमैत्रीपूर्ण होगा। इसके साथ ही लॉर्ड सैलिसबरी की दृढ़ता से निर्णायक स्थिति पक्ष में रही।**[2] शीघ्र ही फ्रांसीसी राजदूत ने घोषणा की कि फैशोदा से फ्रांसीसी सेनाएं वापस बुला ली जाएंगी। फ्रांस के इस व्यवहार ने भविष्य में दोनों देशों को निकट लाने में

1 'Salisbury's foriegn policy of prudent bargain and constant concession prevented European war on account of African territory.'

2 'It was hard to expect the British Government, which had spent blood and gold in reconquering Sudan with an army, to surrender some of its richest province to a French exploerer with a platoon. On the other hand, it was hard for French to haul down the tricolour. Force or the threat of force was to decide the issue. Lord Roseberg made a speech in which he pointed out that it would be an unfriendly act for France to make claims it was now making. This combined with the firm attitude of Lord Salisbury, proved decisive. —*Grant & Temperley.*

सहायता की जैसा कि सेसिल (Cecil) ने लिखा है, 'फैशोदा के अन्धकारमय वातावरण में फ्रांस और इंग्लैण्ड के भविष्य के मेल का बीज बोया गया था।' हेजन ने भी अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है, **'अंग्रेजों के द्वारा दृढ़ पग उठाने के कारण फ्रांस ने सेना वापस बुलाकर फैशोदा की घटना को समाप्त कर दिया। दोनों ही देश इसके प्रभाव को भुला न सके और छह वर्ष पश्चात् 8 अप्रैल, 1904 ई. को दोनों देशों के मध्य सन्धि हुई जिसके अनुसार न केवल दोनों के बीच तनावों के स्रोत बन्द हो गए वरन् चिरकालीन शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की भी स्थापना हुई जो भविष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई।'**[1]

(6) **बोअर का युद्ध** (Boer War)—दक्षिणी अफ्रीका के अधिकांश प्रदेशों पर अंग्रेजों का ही राज्य था, किन्तु ट्रांसवाल पर बोअर अपना अधिकार मानते थे, अतः दोनों के मध्य युद्ध होना स्वाभाविक था। 1899 ई. में यह युद्ध प्रारम्भ हो गया। औरेंज फ्री स्टेट ने ट्रांसवाल का साथ दिया। अंग्रेज जनता इस युद्ध के पक्ष में नहीं थी, किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस ओर ध्यान न दिया। लोगों में इस युद्ध को लेकर गम्भीर उत्तेजना थी। प्रारम्भ में अंग्रेजों की पराजय हुई, किन्तु अन्त में 1902 ई. में बोअर परास्त हुए और इस प्रकार ट्रांसवाल तथा नैटाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

(7) **वेनेजुएला की समस्या**—वेनेजुएला (Venezuella) दक्षिणी अमरीका में एक छोटा-सा गणतन्त्र था। 1893 ई. में स्पेन को पोप से प्राप्त समस्त भूमि पर उसने अपना अधिकार बताया। उस भूमि में कुछ भूमि (ब्रिटिश गोयाना) ऐसी भी थी जिस पर इंग्लैण्ड का अधिकार था। **अन्त में इस समस्या को सुलझाने के लिए इसे आर्बिट्रेशन बोर्ड** (Arbitration Board) **को सौंप दिया।** इस बोर्ड का फैसला इंग्लैण्ड के पक्ष में हुआ, फलस्वरूप सैलिसबरी का प्रयत्न सफल हुआ।

(8) **आर्मीनिया की समस्या**—आर्मीनिया एशिया माइनर की पूर्वी सीमा पर एक छोटा सा प्रदेश था। इंग्लैण्ड की पूर्वी नीति में टर्की साम्राज्य की अखण्डता को बनाए रखना एक प्रमुख सिद्धान्त था, परन्तु बर्लिन की कांग्रेस के पश्चात् टर्की साम्राज्य पूर्ववत् बना न रह सका। सैलिसबरी स्वयं भी विशेषतः बाल्कन राज्यों को स्वतन्त्र देखना चाहता था। **फलतः आर्मीनिया के लोगों के साथ जोकि तुर्कों के अत्याचारों से तंग आकर स्वतन्त्र होना चाह रहे थे, इंग्लैण्ड की पूर्ण सहानुभूति थी।** सैलिसबरी क्योंकि किसी प्रकार के यूरोपीय झगड़े में नहीं पड़ना चाहता था, अतः उसने एक कमीशन नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा जिसमें यूरोपीय राष्ट्रों के प्रतिनिधि तथा टर्की के प्रतिनिधि सम्मिलित किए गए। इस कमीशन ने कुछ सुझाव टर्की के सुल्तान के समक्ष रखे, किन्तु सुल्तान ने उन्हें अस्वीकृत कर दिया। टर्की का सुल्तान विद्रोह को सख्ती से दबाना चाहता था। अतः टर्की के अत्याचारों के परिणामस्वरूप 1893-95 ई. के मध्य एक लाख आर्मीनियन मारे गए। इसी समय कुछ आर्मीनियनों ने कुस्तुन्तुनिया पर आक्रमण कर ओटोमन बैंक पर अधिकार कर लिया। टर्की की सेना ने आर्मीनियनों को

1 'The Fashoda incident ended in the withdrawal of French before the resolute attitude of England. The lesson of this incicent was not lost upon either power and six years later. on 8 April 1904, they signed an agreement which not only removed the sources of friction between them once for all but which established what came to be known as the Entente Cordiale destenied to be of great significance in the future.' —*Hazen.*

घेरकर लगभग पांच हजार लोगों को मार डाला। सैलिसबरी इस समस्या को सुलझा न सका। आर्मीनियन के सम्बन्ध में उसकी नीति असफल रही। कैटिलबर्ट ने भी लिखा है, **सैलिसबरी की आर्मीनियन नीति पूर्णतः असफल रही और वह तुर्कों द्वारा आर्मीनियनों के कत्ल को रोक न सका।'**[1]

(9) **क्रीट**—क्रीट (Crete) नामक द्वीप में अनेक जातियां निवास करती थीं जिनमें प्रमुख यूनानी लोग थे। 1896 ई. में क्रीट के निवासियों ने टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। क्रीट की ईसाई जनता तुर्कों से मुक्त होना चाहती थी। यद्यपि टर्की के सुल्तान ने कुछ सुविधाएं उन्हें प्रदान कर रखी थीं, किन्तु उनसे क्रीट के निवासी सन्तुष्ट न थे। 1896 **ई. में वेनिजीलोस** (Venizdelos) **के नेतृत्व में हुए इस विद्रोह में क्रीट की सहायता यूनान ने भी की।** यद्यपि यूनान परास्त किया गया तथा सैलिसबरी के प्रयत्नों से क्रीट को टर्की की प्रभुता के अन्तर्गत स्वशासन प्रदान किया गया। यूरोपीय शक्तियों ने क्रीट पर शासन करने के लिए यूनान के राजकुमार को नियुक्त किया। इस प्रकार सैलिसबरी क्रीट के ईसाइयों को टर्की के अत्याचारों से बचाने में सफल हुआ।

(10) **भारत का उत्तर-पश्चिमी प्रान्त**—भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अफरीदियों तथा औराक्जाइयों ने विद्रोह कर दिया तथा 1895 ई. में चित्राल को घेर लिया। 46 दिनों के पश्चात् ये घेरा तोड़ दिया गया और चित्राल पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया। मालाकंद में भी अंग्रेजों ने एक शक्तिशाली सैनिक चौकी स्थापित की। 1897 ई. में पुनः अफरीदियों तथा औराक्जाइयों ने विद्रोह कर दिया, किन्तु जनरल लौरवार्ट ने इसे 1898 ई. में दबा दिया।

(11) **चीन**—टर्की साम्राज्य के समान चीन में भी अत्यन्त अव्यवस्था थी। चीन के शासक अयोग्य एवं कमजोर थे। 1894-95 ई. में चीन तथा जापान के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें चीन पराजित हुआ। अतः यूरोप के राष्ट्रों ने चीन की दुर्बलता से लाभ उठाना चाहा। चीन में जर्मनी ने 1898 ई. में किया चाओ (Kiao Chau) पट्टे (Lease) पर ले लिया। रूस ने भी पोर्ट मार्थर पट्टे पर ले लिया। फ्रांस भी दक्षिणी चीन में अपने प्रभाव में वृद्धि करना चाहता था। अंग्रेजों के पास चीन का व्यापार 80% पहले से ही था। सैलिसबरी चीन को यूरोपीय राष्ट्रों से बचाना चाहता था। **इंग्लैण्ड ने अपने व्यापार की सुरक्षा के दृष्टिकोण से वी-हाई-वी** (Wei-Hai-Wei) **तथा हांगकांग की भूमि पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।**

चीन में विदेशियों (जिन्हें चीनी शैतान कहते थे) के प्रति गहरा आक्रोश था. अतः वहां विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह हो गया। इस विद्रोह को बौक्सर्ज (Boxers) अथवा सेक्रेड हारमोनी फिस्ट्स (Sacred Harmony Fists) कहा जाता है। विद्रोह में बड़ी संख्या में ईसाइयों की हत्या हुई। शीघ्र ही समस्त यूरोपीय राष्ट्र एक ओर हो गए और चीनियों को परास्त किया गया। यद्यपि सैलिसबरी चीन में इंगलैण्ड के हितों को सुरक्षित रखने में सफल हुआ, किन्तु रूस व जर्मनी के प्रभाव को चीन में बढ़ने से वह न रोक सका।

(12) **जापान से सम्बन्ध**—सैलिसबरी अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में अलगाव की नीति से हो रहे अहित को समझने लगा था अतः उसने 1902 ई. में जापान से सन्धि

1 **'Salisbury's policy regarding Arminia proved a total failure and he could not check the Turks from murdering the Arminians.'**

कर ली। जापान भी रूस का सामना करने के लिए इंग्लैण्ड की सहायता चाहता था, अतः ज़ापान भी इस सन्धि के लिए इच्छुक था। 12 **फरवरी, 1902 ई. को हुई इस सन्धि की प्रमुख धाराएं इस प्रकार थीं**—

(1) किसी अन्य राष्ट्र से अकेले युद्ध होने पर सन्धिकर्ता देश तटस्थ रहेंगे।

(2) एक से अधिक देशों के युद्ध में भाग लेने पर दोनों राष्ट्र (इंग्लैण्ड व जापान) एक दूसरे की सहायता करेंगे।

यह सन्धि **पांच वर्षों के लिए की गयी थी** जो कि अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सैलिसबरी की वैदेशिक नीति सफल रही। रैम्जे म्योर ने सैलिसबरी के विषय में अपना विचार इन शब्दों में प्रकट किया है, 'अन्ततः सैलिसबरी की नीति प्रधानमन्त्री तथां विदेश मन्त्री दोनों ही रूपों में सफल रही।'[1]

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व इंग्लैण्ड की विदेश नीति (1902-1914)
(FOREIGN POLICY OF ENGLAND BEFORE WORLD WAR I)

लार्ड सैलिसबरी के काल तक इंग्लैण्ड ने शानदार अलगाव (Splendid Isolation) के सिद्धान्त को वैदैशिक नीति का आधार बनाया था। सैलिसबरी के पश्चात् इंग्लैण्ड की विदेश नीति का संचालन लार्ड लैंसडाउन और एडवर्ड ग्रे द्वारा किया गया। इन राजनीतिज्ञों ने अलगाव की नीति को त्यागकर इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति को एक नयी दिशा तथा गति प्रदान की। **सैलिसबरी ने अलगाव की नीति को अवकाश प्राप्त करने से कुछ समय पूर्व, जापान से सन्धि करके त्याग दिया था। लैंसडाउन ने भी इसी नीति का पालन करते हुए यूरोपीय देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु आवश्यक कदम उठाए।** तत्कालीन परिस्थितियों में फ्रांस तथा रूस से सम्बन्ध सुधारने की विशेष आवश्यकता थी, अन्यथा इंग्लैण्ड के लिए संकट उत्पन्न हो सकता था क्योंकि जर्मनी काफी समय पूर्व से गठबन्धन कर रहा था और 1882 ई. में आस्ट्रिया व इटली के साथ त्रिराष्ट्र सन्धि कर चुका था। अतः इंग्लैण्ड ने भी यूरोप में मित्रों की खोज प्रारम्भ कर दी।

लार्ड लैंसडाउन ने बालफोर मन्त्रिमण्डल के समय जुलाई 1902 ई. से दिसम्बर 1905 ई. तक वैदेशिक मन्त्री के पद पर कार्य किया था। बालफोर के पश्चात् उदारवादी नेता कैम्पवेल बैनरमन के द्वारा मन्त्रिमण्डल बनाए जाने के समय से 1916 ई. तक एडवर्ड ग्रे वैदेशिक मन्त्री के रूप में कार्य करता रहा था। लैंसडाउन तथा ग्रे दोनों ही सामज्यवादी विचारधारा के व्यक्ति थे तथा यूरोप में शक्ति-सन्तुलन को बनाए रखना चाहते थे। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व इंग्लैण्ड की विदेश नीति की विभिन्न विशेषताएं इस प्रकार से थीं—

(क) जर्मनी से सम्बन्ध—बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की फ्रांस तथा जर्मनी के प्रति अपनाई गई नीति में विशिष्ट रूप से परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। अब तक तो जर्मनी के साथ इंग्लैण्ड के सम्बन्ध सामान्य रहे थे, किन्तु जर्मनी के साथ सम्बन्ध शीघ्र ही बिगड़ने प्रारम्भ हो गए क्योंकि विलियम कैसर की सामुद्रिक तथा औपनिवेशिक नीति इंग्लैण्ड के हितों के विरुद्ध थी। 1899 **ई. में जर्मनी में नेवी कानून** (Navy Law) **पारित हुआ, जिसके द्वारा जर्मनी की नौसेना में वृद्धि करने, बड़े-बड़े युद्धपोतों, टारपीडो आदि की व्यवस्था करने का निश्चय किया गया।** इस प्रकार की जर्मनी की नीति से इंग्लैण्ड का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

1 **'On the whole, his success both as a Prime Minister as well as Foreign Minister was great and enviable.'**
—Ramsay Muir.

इंग्लैण्ड सामुद्रिक शक्ति में यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बना रहना चाहता था अन्यथा उसकी स्वयं की स्वतन्त्रता व उपनिवेशों के लिए संकट उत्पन्न हो सकता था। जर्मनी में 1902 ई. में एक पान-जर्मन लीग (Pan-German League) की भी स्थापना हुई, जिसका तत्काल परिणाम इंग्लैण्ड द्वारा फ्रांस तथा रूस से मित्रता स्थापित करना था। यद्यपि इंग्लैण्ड का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से जर्मनी का विरोध करना नहीं था, परन्तु इंग्लैण्ड के द्वारा 1904 ई. और 1907 ई. में फ्रांस और रूस से क्रमशः इन संन्धियों के करने का परिणाम यह हुआ कि जर्मनी का यह दृष्टिकोण बन गया कि इंग्लैण्ड उसको चारों ओर से घेरने का प्रयत्न कर रहा था। इंग्लैण्ड की नीति में परिवर्तन का एक अन्य कारण जर्मनी और टर्की के मध्य बर्लिन-बगदाद रेलवे लाइन की योजना थी। इतना ही नहीं वरन् कैसर विलियम द्वितीय को 'हाजी मुहम्मद' की उपाधि का प्रदान किया जाना था। इंग्लैण्ड का जर्मनी और टर्की के मध्य बढ़ती मित्रता को देखकर भयभीत होना स्वाभाविक ही था क्योंकि इससे उसके भारतीय उपनिवेश को खतरा उत्पन्न हो सकता था।

टर्की के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् कैसर विलियम द्वितीय जब भूमध्य सागर से लौट रहा था तब उसने मार्च 1905 ई. में टैंजीयर पहुंचने पर मोरक्को के सुल्तान की स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की मांग की जिसमें मुख्य रूप से यह मांग किए जाने की सम्भावना थी कि वह अपने विदेशमन्त्री डैलकासे (Delcasse) को पदच्युत कर दे। **जर्मनी द्वारा इस प्रकार की मांग किए जाने का मुख्य कारण विलियम का यह सोचना था कि 1904 ई. का आंग्ल-फ्रांसीसी समझौता मात्र डैलकासे के प्रयत्नों का परिणाम था।** विलियम कैसर, फ्रांस की नीति का स्पष्ट रूप चाहता था क्योंकि उसे यह चिन्ता रहती थी कि कहीं फ्रांस इतना शक्तिशाली न हो जाए कि 1870-71 ई. की पराजय का प्रतिशोध लेने का प्रयत्न करे। यही कारण था कि विलियम ने फ्रांस के विदेशमन्त्री को निलम्बित करने की मांग करके फ्रांस को असमय उकसाने का प्रयत्न किया। फ्रांस युद्ध के लिए अभी तैयार न था, अतः वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने के लिए तैयार हो गया। 12 जून, 1905 ई. को डैलकासे ने त्यागपत्र दे दिया।

(ख) अलजेसिरास सम्मेलन (1906)—जनवरी 1906 ई. में मोरक्को के प्रश्न पर अलजेसिराय (स्पेन) सम्मेलन बुलाना निश्चित हुआ। **मैरियट के अनुसार यदि फ्रांस युद्ध के लिए तैयार होता अथवा रूस जापान के हाथों न पराजित हुआ होता तो यह सम्मेलन कभी न होता।** इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता को समाप्त करने में जर्मनी को सफलता न मिल सकी; वस्तुतः इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड और फ्रांस की सन्धि और दृढ़ हो गयी। इस सम्मेलन में स्पेन और फ्रांस, इंग्लैण्ड और रूस एक-दूसरे के निकट आ गए। इस सम्मेलन में आस्ट्रिया और हंगरी के अतिरिक्त इटली तक ने फ्रांस का समर्थन किया। फ्रांस और जर्मनी के मध्य मतभेद को दूर करने हेतु 1909 ई. में एक समझौता सम्पन्न हुआ जिसके द्वारा फ्रांस ने जर्मनी के समान आर्थिक अधिकार को स्वीकार किया। दूसरी ओर जर्मनी ने फ्रांस के राजनीतिक हितों को स्वीकार किया, किन्तु यह समझौता लम्बे समय तक चल न सका क्योंकि जर्मनी फ्रांस के द्वारा अधिक से अधिक अधिकार करने की भावना को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। 1911 **ई. में मोरक्को में विद्रोह हुआ जिसे दबाने के लिए फ्रांस ने अपनी सेनाएं भेजीं।** फ्रांस के इस कार्य से नाराज होकर जर्मनी ने पेन्थर नामक जहाज मोरक्को

भेजा। इस स्थिति में इंग्लैण्ड ने भी फ्रांस की सहायतार्थ एक जहाज भेजा। इंग्लैण्ड के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप जर्मनी युद्ध के स्थान पर वार्ता के लिए तैयार हो गया। फ्रांस को मोरक्को का संरक्षण सौंप दिया गया तथा जर्मनी को अन्य देशों के समान आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने के अधिकार के अतिरिक्त फ्रांसीसी कांगो में एक छोटा क्षेत्र दिया गया।

(ग) हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Entente Cordiale, 1904)—बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जहां एक ओर इंग्लैण्ड व जर्मनी के सम्बन्धों में कटुता आती जा रही थी, दूसरी ओर फ्रांस के साथ सम्बन्ध मधुरता की राह पर अग्रसरित हो रहे थे। **दोनों देशों (इंग्लैण्ड तथा फ्रांस) में मधुर सम्बन्ध फैशोदा की घटना से प्रारम्भ हुए।** जर्मनी के वैदेशिक मन्त्री प्रिंस ब्यूलो के अनुसार दोनों देशों के मध्य मित्रता का बीजारोपण उस वार्तालाप से हुआ जब एक फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ ने इटलीवासी के प्रश्न के उत्तर में कहा था कि फैशोदा का प्रभाव अति उत्तम होगा। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ के विचार से सूडान सम्बन्धी मतभेद दूर हो जाने पर इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता में कोई बाधा शेष नहीं थी। मैरियट के अनुसार यदि फ्रांस की रुचि अन्य उपनिवेशों में न बढ़ रही होती तो वह नील पर अपने हितों को इतनी सरलता से समर्पित न करता।

1898 ई. में फ्रांस के विदेशमन्त्री के पद पर डैलकासे (Delcessa) के कार्यरत होते ही एक नयी औपनिवेशिक प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। डैलकासे अपने कार्य कलापों का केन्द्र भूमध्य सागर को बनाना चाहता था और ऐसा करने के लिए इंग्लैण्ड और इटली की मित्रता प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक था। **अतः डैलकासे ने 1900 ई. और 1902 ई. में दो समझौतों के द्वारा इटली की ट्रिपोली सम्बन्धी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने में सहयोग का वचन दिया। इन समझौतों का एक विशेष महत्व यह भी है कि इनसे त्रिराष्ट्र सन्धि** (Triple Alliance) **का महत्व क्षीण हो गया।** इसी समय रूस और जापान के सम्बन्ध अत्यधिक तनावपूर्ण हो गए। अत: फ्रांस, जर्मनी से अपनी सुरक्षा के लिए मित्र की तलाश में था। 1903 ई. में एडवर्ड सप्तम् ने फ्रांस की यात्रा की जिसके महत्वपूर्ण परिणाम हुए। कुछ समय पश्चात् फ्रांस का राष्ट्रपति लुम्बे (Lumbet) भी इंग्लैण्ड गया जहां लुम्बे का भव्य स्वागत किया गया। धीरे-धीरे दोनों देशों के मध्य समझौते का मार्ग प्रशस्त हो रहा था। शीघ्र ही 1904 ई. में दोनों देश मित्रता के गठबन्धन में बंध गए। इस समझौते की अन्तिम रूपरेखा फ्रांस के राजदूत काम्बो (Paul Combon) तथा लॉर्ड लैंसडाउन के द्वारा तैयार की गई। इस समझौते में दोनों देशों के हित निहित थे। फ्रांस, सूडान में हुए अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था तथा अपने उपनिवेशों में भी वृद्धि करना चाहता था। फ्रांस, जर्मनी से अल्सेस तथा लोरेन (Alsace & Lorraine) के प्रदेशों को पुन: प्राप्त करना चाहता था। दूसरी ओर इंग्लैण्ड भी एक शक्तिशाली राष्ट्र से मित्रता करना चाहता था क्योंकि जर्मनी विश्व-राजनीति (Weltpolitik) से इंग्लैण्ड के व्यापार एवं नौसेना के लिए संकट उत्पन्न हो गया था। फ्रांस से मित्रता करना सबसे सरल था क्योंकि फ्रांस भी जर्मनी की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत था, **अतः दोनों देशों के प्रयासों के परिणामस्वरूप** 8 **अप्रैल**, 1904 **ई. को समझौता** (Entente Crodiale) **सम्पन्न हो गया।**

इस समझौते के परिणामस्वरूप दोनों देशों की पारस्परिक समस्याएं तो समाप्त हो ही गयीं, इसके अतिरिक्त यूरोप व उसके बाहर दोनों देशों ने मिलकर कार्य करना प्रारम्भ किया। इस समझौते में यद्यपि जर्मनी से किसी प्रकार से युद्ध में सहायता करने का वचन इंग्लैण्ड

ने फ्रांस को नहीं दिया था तथापि आगामी घटनाओं ने यह प्रमाणित किया कि इंग्लैण्ड फ्रांस को प्रत्येक रूप में सहायता करने के लिए तैयार था।

(घ) इंग्लैण्ड और रूस—फ्रांस और इंग्लैण्ड 1909 ई. के समझौते के द्वारा मित्र बन चुके थे तथा फ्रांस और रूस पहले से ही आपस में मित्र थे, किन्तु इंग्लैण्ड और रूस के सम्बन्ध अनेक विवादों के कारण तनावपूर्ण थे। एडवर्ड ग्रे इंग्लैण्ड और रूस के तनावपूर्ण सम्बन्धों को पारस्परिक वार्ताओं द्वारा मधुर बनाना चाहता था। **एडवर्ड ग्रे के इन प्रयासों में फ्रांस ने उसे पूर्ण सहयोग दिया क्योंकि इंग्लैण्ड और रूस के मध्य युद्ध होने की स्थिति में फ्रांस को हानि पहुंचने की सम्भावना थी।** अतः इंग्लैण्ड व फ्रांस के प्रयत्नों से 1907 ई. में रूस और इंग्लैण्ड में एक सन्धि हो गयी जिसके द्वारा दोनों देशों ने अपने झगड़ों का समाधान कर लिया। तिब्बत के मामले में दोनों देशों ने उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया तथा तिब्बत को आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्रता दे दी गयी। चीन सरकार के अधीन उसे केवल नाममात्र के लिए ही रखा गया। रूस अफगानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र में न स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया। अफगानिस्तान में व्यापार करने के अधिकार दोनों देशों को दिए गए। दोनों देशों ने फारस (ईरान) की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का वचन लिया। फारस को तीन प्रभाव-क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया। उत्तरी फारस को रूस के तथा दक्षिणी फारस इंग्लैण्ड के अधीन माना गया। मध्य फारस को तटस्थ स्वीकार किया गया।

इस समझौते से इंग्लैण्ड व रूस दोनों को ही लाभ प्राप्त हुआ। रूस को आस्ट्रिया व जर्मनी से अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं थी। इंग्लैण्ड को टर्की साम्राज्य में रूस का भय समाप्त हो गया। एडवर्ड ग्रे के अनुसार इस सन्धि से अधिक लाभ इंग्लैण्ड को ही हुआ।[1] इस समझौते में फ्रांस, जो पहले से ही, इंग्लैण्ड व रूस का मित्र था, सम्मिलित हो गया और **इस प्रकार यूरोप दो शक्तिशाली दलों में विभक्त हो गया**—एक ओर त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) जिसमें जर्मनी, आस्ट्रिया व इटली थे तथा दूसरा हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) जिसमें इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा रूस थे। अतः यूरोप एक बड़े युद्ध की ओर अग्रसर हो रहा था।

इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति (1919-39 ई.)
(FOREIGN POLICY OF GREAT BRITAIN)

प्रथम विश्वयुद्ध लगभग चार वर्ष तीन माह तक चलता रहा था। 28 जुलाई, 1914 ई. को सर्बिया द्वारा आस्ट्रिया एवं हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से प्रारम्भ हुआ तथा 11 नवम्बर, 1918 ई. को समाप्त हुआ। मित्र-राष्ट्रों ने 1919 ई. में जर्मनी से वार्साई (Versailles) की सन्धि (28 जून), आस्ट्रिया से सेण्ट जर्मेन की सन्धि (10 सितम्बर), बल्गारिया से न्यूइली (Neuilly) की सन्धि (27 नवम्बर) तथा 1920 ई. में हंगरी से त्रिआनो (Trianon) की सन्धि (4 जून) की, किन्तु टर्की के साथ अन्तिम शान्ति सन्धि पर 23 जुलाई, 1923 ई. को लौसां (Lousanne) में हस्ताक्षर हुए। यह सन्धि 6 अगस्त, 1924 ई. को कार्यान्वित हुई तथा इसके पश्चात् ही सम्पूर्ण संसार में पुनः विधिवत् शान्ति की स्थापना हो सकी। इन समस्त सन्धियों तथा इनके कारण की गई अनेक अन्य सन्धियों को शान्ति-समझौते के नाम से जाना जाता

1 'What we gained by it was real, what gained by Russia was apparent.'

भेजा। इस स्थिति में इंग्लैण्ड ने भी फ्रांस की सहायतार्थ एक जहाज भेजा। इंग्लैण्ड के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप जर्मनी युद्ध के स्थान पर वार्ता के लिए तैयार हो गया। फ्रांस को मोरक्को का संरक्षण सौंप दिया गया तथा जर्मनी को अन्य देशों के समान आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने के अधिकार के अतिरिक्त फ्रांसीसी कांगो में एक छोटा क्षेत्र दिया गया।

(ग) हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Entente Cordiale, 1904)—बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जहां एक ओर इंग्लैण्ड व जर्मनी के सम्बन्धों में कटुता आती जा रही थी, दूसरी ओर फ्रांस के साथ सम्बन्ध मधुरता की राह पर अग्रसरित हो रहे थे। **दोनों देशों (इंग्लैण्ड तथा फ्रांस) में मधुर सम्बन्ध फैशोदा की घटना से प्रारम्भ हुए।** जर्मनी के वैदेशिक मन्त्री प्रिंस ब्यूलो के अनुसार दोनों देशों के मध्य मित्रता का बीजारोपण उस वार्तालाप से हुआ जब एक फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ ने इटलीवासी के प्रश्न के उत्तर में कहा था कि फैशोदा का प्रभाव अति उत्तम होगा। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ के विचार से सूडान सम्बन्धी मतभेद दूर हो जाने पर इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता में कोई बाधा शेष नहीं थी। मैरियट के अनुसार यदि फ्रांस की रुचि अन्य उपनिवेशों में न बढ़ रही होती तो वह नील पर अपने हितों को इतनी सरलता से समर्पित न करता।

1898 ई. में फ्रांस के विदेशमन्त्री के पद पर डैलकासे (Delcessa) के कार्यरत होते ही एक नयी औपनिवेशिक प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। डैलकासे अपने कार्य कलापों का केन्द्र भूमध्य सागर को बनाना चाहता था और ऐसा करने के लिए इंग्लैण्ड और इटली की मित्रता प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक था। **अतः डैलकासे ने 1900 ई. और 1902 ई. में दो समझौतों के द्वारा इटली की ट्रिपोली सम्बन्धी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने में सहयोग का वचन दिया। इन समझौतों का एक विशेष महत्व यह भी है कि इनसे त्रिराष्ट्र सन्धि** (Triple Alliance) **का महत्व क्षीण हो गया।** इसी समय रूस और जापान के सम्बन्ध अत्यधिक तनावपूर्ण हो गए। अतः फ्रांस, जर्मनी से अपनी सुरक्षा के लिए मित्र की तलाश में था। 1903 ई. में एडवर्ड सप्तम् ने फ्रांस की यात्रा की जिसके महत्वपूर्ण परिणाम हुए। कुछ समय पश्चात् फ्रांस का राष्ट्रपति लुम्बे (Lumbet) भी इंग्लैण्ड गया जहां लुम्बे का भव्य स्वागत किया गया। धीरे-धीरे दोनों देशों के मध्य समझौते का मार्ग प्रशस्त हो रहा था। शीघ्र ही 1904 ई. में दोनों देश मित्रता के गठबन्धन में बंध गए। इस समझौते की अन्तिम रूपरेखा फ्रांस के राजदूत काम्बो (Paul Combon) तथा लॉर्ड लैंसडाउन के द्वारा तैयार की गई। इस समझौते में दोनों देशों के हित निहित थे। फ्रांस, सूडान में हुए अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था तथा अपने उपनिवेशों में भी वृद्धि करना चाहता था। फ्रांस, जर्मनी से अल्सेस तथा लोरेन (Alsace & Lorraine) के प्रदेशों को पुनः प्राप्त करना चाहता था। दूसरी ओर इंग्लैण्ड भी एक शक्तिशाली राष्ट्र से मित्रता करना चाहता था क्योंकि जर्मनी विश्व-राजनीति (Weltpolitik) से इंग्लैण्ड के व्यापार एवं नौसेना के लिए संकट उत्पन्न हो गया था। फ्रांस से मित्रता करना सबसे सरल था क्योंकि फ्रांस भी जर्मनी की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत था, **अतः दोनों देशों के प्रयासों के परिणामस्वरूप** 8 **अप्रैल**, 1904 **ई. को समझौता** (Entente Crodiale) **सम्पन्न हो गया।**

इस समझौते के परिणामस्वरूप दोनों देशों की पारस्परिक समस्याएं तो समाप्त हो ही गयीं, इसके अतिरिक्त यूरोप व उसके बाहर दोनों देशों ने मिलकर कार्य करना प्रारम्भ किया। इस समझौते में यद्यपि जर्मनी से किसी प्रकार से युद्ध में सहायता करने का वचन इंग्लैण्ड

ने फ्रांस को नहीं दिया था तथापि आगामी घटनाओं ने यह प्रमाणित किया कि इंग्लैण्ड फ्रांस को प्रत्येक रूप में सहायता करने के लिए तैयार था।

(घ) **इंग्लैण्ड और रूस**—फ्रांस और इंग्लैण्ड 1909 ई. के समझौते के द्वारा मित्र बन चुके थे तथा फ्रांस और रूस पहले से ही आपस में मित्र थे, किन्तु इंग्लैण्ड और रूस के सम्बन्ध अनेक विवादों के कारण तनावपूर्ण थे। एडवर्ड ग्रे इंग्लैण्ड और रूस के तनावपूर्ण सम्बन्धों को पारस्परिक वार्ताओं द्वारा मधुर बनाना चाहता था। **एडवर्ड ग्रे के इन प्रयासों में फ्रांस ने उसे पूर्ण सहयोग दिया क्योंकि इंग्लैण्ड और रूस के मध्य युद्ध होने की स्थिति में फ्रांस को हानि पहुंचने की सम्भावना थी।** अतः इंग्लैण्ड व फ्रांस के प्रयत्नों से 1907 ई. में रूस और इंग्लैण्ड में एक सन्धि हो गयी जिसके द्वारा दोनों देशों ने अपने झगड़ों का समाधान कर लिया। तिब्बत के मामले में दोनों देशों ने उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया तथा तिब्बत को आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्रता दे दी गयी। चीन सरकार के अधीन उसे केवल नाममात्र के लिए ही रखा गया। रूस अफगानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र में न स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया। अफगानिस्तान में व्यापार करने के अधिकार दोनों देशों को दिए गए। दोनों देशों ने फारस (ईरान) की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का वचन लिया। फारस को तीन प्रभाव-क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया। उत्तरी फारस को रूस के तथा दक्षिणी फारस इंग्लैण्ड के अधीन माना गया। मध्य फारस को तटस्थ स्वीकार किया गया।

इस समझौते से इंग्लैण्ड व रूस दोनों को ही लाभ प्राप्त हुआ। रूस को आस्ट्रिया व जर्मनी से अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं थी। इंग्लैण्ड को टर्की साम्राज्य में रूस का भय समाप्त हो गया। एडवर्ड ग्रे के अनुसार इस सन्धि से अधिक लाभ इंग्लैण्ड को ही हुआ।[1] इस समझौते में फ्रांस, जो पहले से ही, इंग्लैण्ड व रूस का मित्र था, सम्मिलित हो गया और **इस प्रकार यूरोप दो शक्तिशाली दलों में विभक्त हो गया**—एक ओर त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) जिसमें जर्मनी, आस्ट्रिया व इटली थे तथा दूसरा हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) जिसमें इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा रूस थे। अतः यूरोप एक बड़े युद्ध की ओर अग्रसर हो रहा था।

इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति (1919-39 ई.)
(FOREIGN POLICY OF GREAT BRITAIN)

प्रथम विश्वयुद्ध लगभग चार वर्ष तीन माह तक चलता रहा था। 28 जुलाई, 1914 ई. को सर्बिया द्वारा आस्ट्रिया एवं हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से प्रारम्भ हुआ तथा 11 नवम्बर, 1918 ई. को समाप्त हुआ। मित्र-राष्ट्रों ने 1919 ई. में जर्मनी से वार्साई (Versailles) की सन्धि (28 जून), आस्ट्रिया से सेण्ट जर्मेन की सन्धि (10 सितम्बर), बल्गारिया से न्यूइली (Neuilly) की सन्धि (27 नवम्बर) तथा 1920 ई. में हंगरी से त्रिआनो (Trianon) की सन्धि (4 जून) की, किन्तु टर्की के साथ अन्तिम शान्ति सन्धि पर 23 जुलाई, 1923 ई. को लौसां (Lousanne) में हस्ताक्षर हुए। यह सन्धि 6 अगस्त, 1924 ई. को कार्यान्वित हुई तथा इसके पश्चात् ही सम्पूर्ण संसार में पुनः विधिवत् शान्ति की स्थापना हो सकी। इन समस्त सन्धियों तथा इनके कारण की गई अनेक अन्य सन्धियों को शान्ति-समझौते के नाम से जाना जाता

1 'What we gained by it was real, what gained by Russia was apparent.'

है। **प्रथम और द्वितीय विश्व-युद्ध के मध्य की अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस समझौते का ही परिणाम थी।**

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड अच्छी प्रकार से समझ गया था कि विश्व में शान्ति बनाए रखने में वह अकेला असमर्थ था तथा यूरोपीय संघ भी इस कार्य में कोई विशेष योगदान नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त यूरोपीय देशों में कुछ ऐसे भी थे जो कि इंग्लैण्ड में शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य से कोई सहयोग देने को तैयार न थे। विश्वयुद्ध ने आर्थिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए थे, इसी कारण से 1919 ई. के पश्चात् इंग्लैण्ड निरन्तर राष्ट्र संघ के माध्यम से उन सभी कार्यों को पूर्ण करने में लग गया था, जिनका उसने स्वयं सैद्धान्तिक रूप से पालन किया था। यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड की नीति का आर्थिक पहलू भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यूरोप में अर्थव्यवस्था निरन्तर खराब होती जा रही थी जिससे बेरोजगारी बढ़ रही थी तथा मूल्यों में भारी कमी हो रही थी। 1933 **ई. में एक आर्थिक अधिवेशन बुलाया भी गया, किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ।** इंग्लैण्ड निरन्तर यूरोप व जर्मनी की अर्थव्यवस्था को सुधारने का प्रयास कर रहा था। प्रथम विश्व-युद्ध के समय यद्यपि फ्रांस तथा रूस इंग्लैण्ड के मित्र रहे थे तथा जर्मनी शत्रु देश था तथापि इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति जर्मनी के प्रति अनुदार नहीं थी।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तथा द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के मध्य के बीस वर्षों में इंग्लैण्ड की नीति में कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि अनेक बार मन्त्रिमण्डल बदले, परन्तु वैदेशिक नीति एक समान बनी रही। अपवाद के रूप में इतना अवश्य हुआ कि श्रमिक मन्त्रिमण्डल के समय (प्रथम बार 1924 ई. में कुछ माह के लिए तथा दूसरी बार 1929 ई. से 1931 ई. तक) रूस की बोल्शेविक सरकार (Bolsheviks) से कुछ अधिक निकटतम सम्बन्धों की स्थापना की गई अन्यथा नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति के अन्तर्गत इस प्रकार कार्य किए गए :

1. फ्रांस से सम्बन्ध (Relations with France)

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी को परास्त करने के पश्चात् मित्र-राष्ट्रों ने वार्साई की अपमानजनक सन्धि करने के लिए उसे विवश किया था, अतः मित्र-राष्ट्रों को भय था कि भविष्य में जर्मनी शक्तिशाली बनकर अपने अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करेगा। सबसे अधिक भय फ्रांस को था क्योंकि उसकी सीमा जर्मनी से मिली हुई थी। इसी कारण उसने इंग्लैण्ड तथा अमरीका से सुरक्षा की गारण्टी मांगी थी। **दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने मार्च, 1919 ई. में उसे यह गारण्टी प्रदान की थी, किन्तु कुछ समय पश्चात् अमरीका ने अपने द्वारा दी गई इस गारण्टी को वापस ले लिया।** इंग्लैण्ड फ्रांस को अकेले गारण्टी देने को तैयार न था अतः उसने भी अपनी गारण्टी वापस ले ली परिणामस्वरूप फ्रांस और इंग्लैण्ड के सम्बन्धों में कटुता आने लगी।

लॉयड जार्ज (Lloyd George) ने जर्मनी के आक्रमण के विरुद्ध इन परिस्थितियों में भी दिसम्बर, 1921 ई. में फ्रांस को सहायता देने का प्रस्ताव रखा, परन्तु फ्रांस ने इस प्रस्ताव के साथ ही कुछ नयी शर्तें रखीं, जिसमें वह अपने मित्र पोलैण्ड की सहायता करवाना भी चाहता था। इसके अतिरिक्त वार्साय की सन्धि की किसी भी धारा को तोड़ना आक्रामक कार्यवाही समझी जाए और दोनों देशों के सेनाध्यक्ष इस हेतु एक समझौता करें। इस प्रकार

की शर्तों को स्वीकार करने के लिए लॉयड जार्ज तैयार न हुआ। **अतएव द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने तक कोई समझौता न हो सका।** यद्यपि 1923 ई. के फ्रांसीसी कर्नल रेक्विन द्वारा तैयार किया गया **'ड्राफ्ट ट्रीटी ऑफ म्युचुअल असिस्टेंस'** (Draft Treaty of Mutual Assistance) तथा जेनेवा प्रोटोकल के द्वारा दोनों देशों में समझौता सम्पन्न किए जाने के प्रयत्न किए गए, किन्तु ये फलदायी प्रमाणित न हो सके। 1928 ई. में किलोगब्रियां समझौते की अनेक शर्तों को इंग्लैण्ड द्वारा स्वीकार किए जाने से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि इंग्लैण्ड फ्रांस से अपने सम्बन्ध मधुर तो रखना चाहता था पर स्वयं को किसी प्रकार की गारण्टी के कारण भविष्य में किसी प्रकार के युद्ध में उलझानें के पक्ष में न था।

2. जर्मनी से सम्बन्ध (Relations with Germany)

पेरिस की सन्धि में यद्यपि जर्मनी को विश्वयुद्ध के लिए दोषी ठहराया गया था, परन्तु इंग्लैण्ड के दृष्टिकोण में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था। इंग्लैण्ड यह नहीं चाहता था कि फ्रांस यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश हो जाए, साथ ही साथ उसे साम्यवादी रूस से भी भय था, अतः इंग्लैण्ड का जर्मनी के प्रति व्यवहार मृदु होता जा रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व जर्मनी इंग्लैण्ड के सामान का प्रमुख ग्राहक था, अतः इंग्लैण्ड जर्मनी की आर्थिक स्थिति को सुधारकर उसके साथ पुनः व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। लायड जार्ज का विचार था **'स्वतन्त्र, सन्तुष्ट तथा समृद्ध जर्मनी सभ्यता के लिए आवश्यक है।'**[1] अतः वार्साई की सन्धि की शर्तों को इंग्लैण्ड जर्मनी पर कठोरतापूर्वक लगाना नहीं चाहता था। इंग्लैण्ड जर्मनी के क्रमिक शस्त्रीकरण के पक्ष में भी था। इंग्लैण्ड राष्ट्रसंघ के संविधान में परिवर्तन करके उसे जर्मनी के लिए अधिक कठोर बनाने का विरोधी था। इंग्लैण्ड जर्मनी के हर्जाने की धनराशि को भी कम करके किसी प्रकार की कठोरता के बिना वसूलने के पक्ष में था।

1922 ई. **में जर्मनी ने अपनी आर्थिक स्थिति को शोचनीय बताते हुए क्षतिपूर्ति करने से इन्कार कर दिया। फ्रांस ने जर्मनी पर जान-बूझकर क्षतिपूर्ति न करने का दोषारोपण किया।** अतः 1924 ई. में फ्रांस ने जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इंग्लैण्ड ने फ्रांस के इस कदम का घोर विरोध किया। 1925 ई. में लोकार्नो समझौते के द्वारा इंग्लैण्ड ने जर्मनी की पश्चिमी सीमा को स्वीकार कर लिया, किन्तु पूर्वी सीमा के लिए कोई आश्वासन नहीं दिया। फ्रांस जर्मनी की पूर्वी सीमा के विषय में भी इंग्लैण्ड से आश्वासन चाहता था, किन्तु **जर्मनी के प्रधानमन्त्री स्ट्रेसमन की उदार-नीति के कारण जर्मनी और मित्र-राष्ट्रों के सम्बन्धों में पहले के समान कठोरता न रही।**

1933 ई. में हिटलर के उदय के पश्चात् इंग्लैण्ड ने जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। इंग्लैण्ड द्वारा इस प्रकार की नीति अपनाने के कुछ विशेष कारण थे। इंग्लैण्ड साम्यवादी रूस से भयभीत था, अतः वह तानाशाही जर्मनी, इटली और जापान को प्रोत्साहित कर रूस के प्रभाव और विस्तार को रोकना चाहता था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड रूस, जर्मनी और जापान को आपस में लड़ाकर निर्बल बनाना चाहता था ताकि यूरोप में शक्ति सन्तुलन बना रहे। उस समय इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति भी असन्तोषजनक थी, अतः वह युद्ध से बचना चाहता था। इंग्लैण्ड के द्वारा तुष्टीकरण की नीति अपनाने के कारण उसने जर्मनी के अनेक आपत्तिजनक कार्यों का भी विरोध न किया। **जर्मनी का हिटलर द्वारा शस्त्रीकरण करना,**

1 **'A free, a contented and a prosperous Germany is essential to civilisation.'** —*Lloyd George*

वार्साई सन्धि को अस्वीकार करना, लोकार्नो समझौते को तोड़कर 1936 ई. में राइन प्रदेश में अपनी सेनाएं भेजना, ऐसे ही कुछ कार्य थे। इसके अतिरिक्त 1936 ई. में स्पेन में हुए गृहयुद्ध में हिटलर ने जनरल फ्रेंको को महत्वपूर्ण सहायता पहुंचायी। 1938 ई. में हिटलर ने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। 1939 ई. चैकोस्लोवाकिया पर भी जर्मनी ने अधिकार कर लिया। 1939 ई. में ही हिटलर ने लिथ्यूनिया को डरा-धमकाकर उसे मेमेल प्राप्त कर लिया।

इंग्लैण्ड के जर्मनी के प्रति इस तुष्टीकरण की नीति के परिणाम विनाशकारी प्रमाणित हुए। इंग्लैण्ड की इस प्रकार की नीति ने हिटलर को और अधिक प्रोत्साहित किया, सामूहिक सुरक्षा को निर्बल बनाया तथा फ्रांस एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए संकट उत्पन्न कर दिया। इंग्लैण्ड ने इन नए तानाशाही राज्यों के वास्तविक रूप को समझने में भूल की थी। **उसका विचार था कि कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात् वे शान्त हो जाएंगे।** इंग्लैण्ड यह न समझ सका कि इन राज्यों की साम्राज्य-लिप्सा अनन्त है। अन्त में, 1939 ई. में इंग्लैण्ड ने अपनी इस भूल को स्वीकार किया।[1] एक विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि हिटलर ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंग्रेजी-फ्रांसीसी और अंग्रेजी-रूसी मतभेदों का पूर्ण लाभ उठाया। उस समय यदि इंग्लैण्ड, रूस तथा फ्रांस अपने पारस्परिक मतभेदों को भूलकर जर्मनी के विरुद्ध तत्काल सामूहिक कार्यवाही करते तो सम्भवतः हिटलर की आक्रमणात्मक नीति व महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जा सकता था।

3. इटली से सम्बन्ध (Relations with Italy)

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् कुछ समय तक इटली व इंग्लैण्ड के सम्बन्ध सामान्य रहे। 1925 ई. में दोनों देशों ने लोकार्नो समझौते (Locarno Pact) की रक्षा का आश्वासन दिया। 1935 ई. में भी स्ट्रेसा सम्मेलन में इंग्लैण्ड और इटली दोनों ने जर्मनी के शस्त्रीकरण के प्रति घोर विरोध किया था, किन्तु अबीसीनिया (Abyssinia) के प्रश्न पर दोनों के सम्बन्ध अमधुर हो गए। 1935 ई. में जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करना चाहा तो इंग्लैण्ड द्वारा इटली के इस कार्य का विरोध किया गया। इंग्लैण्ड की इस नीति से इटली का झुकाव जर्मनी की ओर होने लगा। इंग्लैण्ड की अबीसीनिया के सम्बन्ध में इटली के प्रति नीति अनिश्चित एवं अस्पष्ट थी। **प्रारम्भ में उसने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों** (economic sanctions) **का समर्थन किया, किन्तु बाद में इस भय से कि कहीं इटली जर्मनी से मिल न जाए, उसने इटली के प्रति भी तुष्टीकरण की नीति का सहारा लिया और होरलावल योजना के द्वारा इटली को अबीसीनिया का अधिकांश प्रदेश देने की बात की, किन्तु इस योजना के कार्यान्वित करने से पूर्व ही यह योजना प्रकट हो गयी।** इंग्लैण्ड की जनता के द्वारा इसका घोर विरोध किया गया। परिणामस्वरूप, इंग्लैण्ड के तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री सैमुअल होर को त्यागपत्र देने के लिए विवश होना पड़ा। अबीसीनिया के विषय में इंग्लैण्ड की नीति नितान्त असफल प्रमाणित हुई।

अबीसीनिया की घटना के पश्चात् इंग्लैण्ड ने इटली से मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए अत्यन्त प्रयास किए। 1937 ई. में इटली व इंग्लैण्ड ने भूमध्य सागर में यथास्थिति (status quo) बनाए रखने की घोषणा की। 1938 ई. में दोनों देशों के मध्य पुनः एक समझौता किया गया। इस समझौते के द्वारा इंग्लैण्ड ने अबीसीनिया पर इटली का आधिपत्य स्वीकार

1 'Everything that I have worked for, everything that I have hoped for everything that I have believed in during my public life, has crashed into ruins.

—*Chamberlain.*

किया। **इन सब प्रयासों के उपरान्त[1] भी इंग्लैण्ड और इटली के सम्बन्ध मधुर न हो सके।** जनवरी, 1939 ई. में चेम्बरलेन तथा हैलीफाक्स पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ करने हेतु रोम गए, परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिल सकी क्योंकि इटली तानाशाही दल में शामिल हो चुका था।

4. रूस से सम्बन्ध (Relations with Russia)

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त होने से पूर्व ही 1917 ई. में रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति के कारण वहां सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के युग का समारम्भ हुआ था। रूस ने स्वयं को युद्ध से अलग कर लिया तथा 3 मार्च, 1918 ई. को जर्मनी से ब्रेस्ट लिटोवस्क (Breast Litovsk) की सन्धि की। रूस के इस कार्य को इंग्लैण्ड ने विश्वासघात समझा। 1919-20 ई. में इंग्लैण्ड ने रूसी आक्रमण के विरुद्ध एस्टोनिया में अपनी सेनाएं भेजीं। इन सेनाओं ने रूसी सेनाओं से युद्ध भी किया।

इंग्लैण्ड यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से रूस से कोई सन्धि करने के पक्ष में न था, किन्तु 31 मार्च, 1921 ई. को उसने रूस की बोल्शेविक सरकार के साथ व्यापारिक समझौता कर लिया जिसमें रूस ने इंग्लैण्ड को उसके विरुद्ध प्रचार न करने का आश्वासन दिया। इस समझौते का यद्यपि कोई स्पष्ट कारण तो न था, परन्तु इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली तथा उदारवादी नीति के समर्थक होने के कारण ही यह परिवर्तन सम्भव हुआ। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड की सम्पन्नता उसके व्यापार पर ही निर्भर करती थी अतः उसके लिए स्वाभाविक ही था कि अपना आर्थिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए बोल्शेविकों द्वारा बढ़ाए गए मित्रता के हाथ को अस्वीकार न करे।

1926 ई. में इंग्लैण्ड में हुई एक प्रमुख हड़ताल के कारण पुनः इंग्लैण्ड व रूस के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया क्योंकि रूस ने इस हड़ताल को प्रोत्साहन दिया था। 1929 ई. में इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार के बनने से एक बार फिर अंग्रेजी-रूसी सम्बन्धों में सुधार हुआ।

तानाशाही जर्मनी व जापान के उदय से रूस पश्चिमी देशों एवं राष्ट्रसंघ की ओर झुकने लगा। जापान के कारण मंचूरिया, व्लाडीवोस्टक और पूर्वी साइबेरिया के लिए संकट उत्पन्न हो गया था। रूस राष्ट्रसंघ का सदस्य बन गया और राष्ट्रसंघ के नेतृत्व तथा पश्चिमी देशों के साथ मिलकर तानाशाही सरकारों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने के प्रस्ताव रखे, परन्तु पश्चिमी देशों, विशेषकर इंग्लैण्ड, ने रूस की इस योजना को अपना सहयोग न दिया क्योंकि साम्यवादी रूस को इंग्लैण्ड अपने लिए खतरा समझता था। उसे नियन्त्रित रखने के लिए वह जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन कर रहा था। अतः रूस 1939 ई. तक भली-भांति समझ चुका था कि पश्चिमी राष्ट्र विशेषतया इंग्लैण्ड उसके साथ मिलकर कार्य करना नहीं चाहते, अतः वह जर्मनी की ओर झुकने लगा।

यद्यपि बाद में जर्मनी के बंढ़ते हुए खतरे को देखकर इंग्लैण्ड ने रूस के साथ मित्रता करना चाहा तथा पारस्परिक वार्तालाप के लिए एक शिष्टमण्डल रूस भेजा, किन्तु इस शिष्टमण्डल

1 'Mussolini, bitter at Britain's treachery, fearful of the consequences of his actions, triumphant in his victory and contemptuous of the fifty nations led by one whom he had successful defied—Mussolini could never again be content in friendship with the West, and his eyes had now been turned towards the road that was to end in a public square in Milan.' —*Gathrone Hardy.*

में कोई उच्च पदाधिकारी न था। लॉयड जार्ज ने अंग्रेजी सरकार के इस व्यवहार की कटु आलोचना की।[1] इंग्लैण्ड, रूस को जर्मनी के विरुद्ध करके स्वयं उत्तरदायित्वों से बचना चाहता था, अतः अंग्रेजी-रूसी वार्ता का असफल हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। इंग्लैण्ड की नीति को समझकर 23 अगस्त, 1939 ई. को रूस ने जर्मनी के साथ एक अनाक्रमण समझौते पर हस्ताक्षर कर लिए।

5. संयुक्त राज्य अमरीका से सम्बन्ध (Relations with U. S. A.)

अमरीका ने उसी समय यूरोपीय तथा एशियाई राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था जिस समय प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह युद्ध में भाग लेना नहीं चाहता था, किन्तु जर्मनी द्वारा विवश किए जाने पर उसे युद्ध में भाग लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके पश्चात् विश्व राजनीति से पृथक् रहना नितान्त असम्भव था। युद्ध की समाप्ति पर हुई पेरिस वार्ता में अमरीका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने स्वयं भाग लिया था। अमरीका तथा इंग्लैण्ड ने फ्रांस को उसकी सुरक्षा की गारण्टी भी दी थी, किन्तु अमरीका की सीनेट द्वारा पेरिस की सम्पूर्ण सन्धियों को अस्वीकार कर दिए जाने के कारण यह धारा कार्यान्वित नहीं की जा सकी। **इंग्लैण्ड इस सन्धि में अमरीका का सहयोगी था, किन्तु अमरीका के द्वारा अस्वीकार किए जाने पर इंग्लैण्ड ने भी इस सन्धि की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया।** इंग्लैण्ड की भविष्य में नीति भी अमरीका की नीति से प्रभावित थी। इंग्लैण्ड जर्मनी से क्षतिपूर्ति की राशि बलपूर्वक वसूल करना नहीं चाहता था, परन्तु फिर भी वह इतना अवश्य चाहता था कि अमरीका यदि उससे ऋण वापस न ले तब ही उसके लिए ऐसा करना सम्भव था, सम्भवतः इसी कारण से इंग्लैण्ड ने जर्मनी के अधिकृत प्रदेश ताइवान पर अधिकार बनाए रखा था।

अमरीका यूरोपीय राजनीति सें स्वयं को अलग रखना चाहता था, किन्तु फिर भी जापान की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से यह भयभीत था अतः सुदूरपूर्व की समस्याओं में इंग्लैण्ड का साथ देने को उत्सुक था। इस क्षेत्र में दोनों देशों के पारस्परिक सहयोग करने में एक विशेष समस्या यह थी कि इंग्लैण्ड और जापान के मध्य एक सन्धि पहले से ही चल रही थी (जो 1922 ई. में समाप्त होने वाली थी)। इंग्लैण्ड इस सन्धि की अवधि की समाप्ति के पश्चात् अमरीका को भी इसमें सम्मिलित करने के लिए तैयार था। **इसी उद्देश्य से वाशिंगटन में 12 नवम्बर, 1921 ई. को एक सम्मेलन प्रारम्भ हुआ जो 6 फरवरी. 1922 ई. तक चलता रहा जिसके अन्तर्गत अनेक सन्धियां हुई।**

6. इंग्लैण्ड और निःशस्त्रीकरण (Disarmament)

इंग्लैण्ड निःशस्त्रीकरण किए जाने के पक्ष में था। उसने पेरिस समझौते के पश्चात् अपना शस्त्रीकरण सीमित कर दिया था तथा 1930 ई. में लन्दन में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन भी बुलाया, परन्तु फ्रांस तथा जर्मनी के पारस्परिक विरोध के कारण वह अपने उद्देश्य में

1 "Negotiations have been going on for four months with Russia and no one konws how things stand to-day...... Mr. Chamberlain negotiated directly with Hitler; he went to Berlin to see him; he had Lord Halifax made visits to Rome, bat who have they sent to Russia? They have not sent even the lowest in rank of a Cabinet Minister. They have sent a clerk in the Foreign office. It is an insult. Yet the government want the help of their gigantic army and airforce." —*Lloyd George.*

सफल न हो सका। उसने अमरीका और जापान के साथ मिलकर कुछ निर्णय किए जिनके अनुसार इंग्लैण्ड ने पांच, अमरीका ने तीन और जापान ने एक युद्धपोत नष्ट कर दिया तथा प्रत्येक ने अपने-अपने युद्धपोतों एवं पनडुब्बियों को नियन्त्रित करने का आश्वासन दिया।

1933 ई. **में इंग्लैण्ड ने फ्रांस, जर्मनी और इटली के साथ मिलकर एक समझौता किया जिसे चार देशों की सन्धि** (Four Power Pact) **कहा जाता है।** इस समझौते का उद्देश्य शान्ति बनाए रखना तथा नि:शस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करना था।

7. इंग्लैण्ड और मध्यपूर्व (England and Central-East)

प्रथम विश्वयुद्ध में टर्की ने केन्द्रीय शक्तियों का साथ दिया था, अतः इंग्लैण्ड टर्की के प्रभाव को कम करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इंग्लैण्ड ने अरब राज्यों का टर्की के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करा दिया। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर हुई पेरिस वार्ता के समय टर्की से अरब राष्ट्रों को पृथक् कर दिया गया था, परन्तु उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न देकर आदेश व्यवस्था (mandatory system) में रख दिया गया था। **इसी योजना के अन्तर्गत इराक, फिलिस्तीन** (Palestine) **तथा ट्रांसजोर्डन के शासन चलाने का कार्य सौंपा गया।** अतः अरब जनता का इंग्लैण्ड के प्रति रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था क्योंकि अब ये राज्य पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। कुछ समय पश्चात् इराक और ट्रांसजोर्डन को स्वतन्त्र कर दिया गया, किन्तु फिलिस्तीन पूर्ववत् इंग्लैण्ड के अधीन रहा।

8. मिस्त्र से सम्बन्ध (Relations with Egypt)

मिस्त्र को भी प्रथम विश्वयुद्ध के समय इंग्लैण्ड ने अपने संरक्षण में ले लिया था तथा तत्कालीन खदीब को हटाकर सुल्तान अहमद फऊद को मिस्त्र के सिंहासन पर बैठाया था। इससे रुष्ट होकर मिस्त्रवासियों ने जगलुलपाशा के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप, 1922 ई. में मिस्त्र को आंशिक स्वतन्त्रता देने के लिए इंग्लैण्ड को बाध्य होना पड़ा। मिस्त्र पर से इंग्लैण्ड का संरक्षण समाप्त हो गया और सुल्तान अहमदवाफ को मिस्त्र का प्रथम सुल्तान घोषित किया गया। **मिस्त्र पर केवल चार विषयों में अभी भी इंग्लैण्ड का संरक्षण बना रहा। ये विषय थे—स्वेज की सुरक्षा, विदेशी आक्रमण से मिस्त्र की रक्षा, मिस्त्र में विदेशियों के हितों की रक्षा तथा सूडान पर अंग्रेजी नियन्त्रण।** 1923 ई. के चुनावों के पश्चात् जगलुलपाशा मिस्त्र का प्रधानमन्त्री बना। 1927 ई. में जगलुलपाशा की मृत्यु के पश्चात् नहसपाशा वफत प्रधानमन्त्री बना। 1936 ई. में इंग्लैण्ड ने सुल्तान फारुक से सन्धि करके मिस्त्र को प्रभुत्व सम्पन्न राज्य स्वीकार किया।

9. इंग्लैण्ड और डार्डेनेलीज की समस्या (England and Dardenelles Problem)

डार्डेनेलीज का जलडमरूमध्य एशिया तथा यूरोप के मध्य स्थित होने के कारण व्यापक महत्व रखता है। इंग्लैण्ड किसी भी देश के युद्ध-पोतों द्वारा इसका प्रयोग किया जाना पसन्द नहीं करता था। युद्धोपरान्त इस क्षेत्र का नि:शस्त्रीकरण कर दिया गया तथा इसके नियन्त्रण का कार्यभार एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन को सौंपा गया। टर्की से की गई लोसां की सन्धि में इसी सिद्धान्त का पालन करते हुए जहाजरानी के लिए सभी देशों को सुविधाएं इस प्रदेश में दी गयीं, परन्तु 1936 **ई. में टर्की के अनुरोध पर मौंट्रयू** (Montreux) **में एक सम्मेलन बुलाया गया।** जिसमें डार्डेनेलीज का नियन्त्रण टर्की को सौंप दिया गया तथा उसे वहां पर सेना रखने तथा युद्धकाल में उस मार्ग को बन्द करने का अधिकार दिया गया।

10. चैकोस्लोवाकिया (Checoslovakia)

हिटलर चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार करने के लिए उत्सुक था। 28 मार्च, 1938 ई. को बर्लिन में एक गुप्त सभा हुई जिसमें हिटलर, हैस, रिबिन ट्रोप तथा चैकोस्लोवाकिया की सूडेटन जर्मन दल के नेताओं ने भाग लिया। **इस सभा में यह निर्णय लिया गया था कि सूडेटन जर्मन नेता चैकोस्लोवाकिया की सरकार से वार्तालाप करेंगे तथा उनके सम्मुख ऐसी मांगें रखें जिनको वह स्वीकार न करे।** जिस समय यह सूचना इंग्लैण्ड पहुंची तब भी चेतावनी देने के अतिरिक्त अन्य कुछ इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों ने नहीं किया। चैकोस्लोवाक सरकार ने सूडेटन नेताओं के प्रयत्नों के प्रति कठोर रुख अपनाया। तब चैम्बरलेन ने इस समस्या के समाधान हेतु फ्रांस के प्रधानमन्त्री डलेडियर से भेंट की। दोनों नेताओं ने चैकोस्लोवाकिया के विभाजन की एक योजना तैयार की, किन्तु चैकोस्लोवाकिया उसे मानने को तैयार न था। मुसोलिनी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप म्यूनिख में एक सभा हुई जिसके द्वारा बोहेमिया का एक विशाल भाग जर्मनी को दे दिया गया। इंग्लैण्ड में इस पर पूर्ण सन्तोष व्यक्त किया गया। चैम्बरलेन 30 दिसम्बर, 1938 ई. को इंग्लैण्ड लौटा तो उसका डिजरैली के समान (1878 ई. में बर्लिन से लौटने पर) भव्य स्वागत हुआ। **संयुक्त राज्य, कुछ जर्मन लोग ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व ने नेविल चैम्बरलेन का महान् शान्ति संस्थापक के रूप में जय-जयकार किया।'**[1]

वैदेशिक नीति का मूल्यांकन
(EVALUATION OF BRITISH FOREIGN POLICY)

इतिहास साक्षी है कि इंग्लैण्ड की इस प्रकार की नीति नितान्त असंगत थी। तानाशाही राज्यों की आंकांक्षाओं को नियन्त्रित करने के लिए तुष्टीकरण की नीति का पालन करना इंग्लैण्ड की एक भूल थी। **इंग्लैण्ड की इस नीति की असफलता शीघ्र ही प्रदर्शित हो गयी क्योंकि हिटलर ने मार्च 1939 ई. के म्यूनिख समझौते को भंग करके प्राग पर आक्रमण किया और बोहेमिया तथा मुराविया पर अधिकार कर लिया।** शीघ्र ही हिटलर ने मेमेल (Poland) पर भी अधिकार कर लिया। हिटलर अब केवल युद्ध का बहाना खोज रहा था और शीघ्र ही उसने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण करके युद्ध प्रारम्भ कर दिया। फलतः 3 सितम्बर को इंग्लैण्ड ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी क्योंकि इंग्लैण्ड इस समय से पूर्व ही पोलैण्ड, रूमानिया तथा इटली से समझौते कर चुका था। **इंग्लैण्ड 1919 ई. में स्थापित की गयी शान्ति को बनाए रखने में सफल न हो सका और यही कारण था कि उसे बीस वर्षों उपरान्त उस असफलता के कारण युद्ध लड़ना पड़ा।**[2]

यहां पर यह विचारणीय है कि क्या कारण था कि इंग्लैण्ड निरन्तर तुष्टीकरण की नीति का पालन करता रहा और तानाशाहों को इस बात की सूचना न दे सका कि शान्ति की स्थापना के लिए इंग्लैण्ड बिना किसी संकोच के युद्ध भी कर सकता है। इंग्लैण्ड की इस नीति का यह अर्थ कदापि नहीं था कि इंग्लैण्ड के राजनीतिक क्षितिज में दूरदर्शी राजनीतिज्ञों की

1 **'No such welcome as awaited Mr. Chamberlain on 30 September 1938, has been given to an English statesman since Lord Beaconsfield in 1878, brought back 'Peace with Honour' from Berlin. The United States, not a few Germans, may the whole world, hailed Neville Chamberlain as the Great peacemaker.' —*Marriot.***

2 **'England had failed to keep the peace, she had made in 1919, and two decades later had to fight because of that failure." —*Eckles and Hale.***

कमी थी। लायड जार्ज ने इटली द्वारा अबीसीनिया पर आक्रमण के समय ही कहा था, **''नीति से पहला स्थान शक्ति का है जिसको मन्त्रिमण्डल ने भुला दिया है।''**[1] उस समय प्रजातन्त्रीय सरकारों को मिलाकर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का शक्ति से सामना करना चाहिए था, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उस समय इंग्लैण्ड के नागरिकों की विचारधारा युद्ध विरोधी थी। इंग्लैण्ड में कोई भी व्यक्ति युद्ध नहीं चाहता था। इसी कारण इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ प्रत्येक संकट का सामना करते हुए भी युद्ध को टालने का प्रयत्न करते रहे। **इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड को जर्मनी से सहानुभूति भी थी। इसका प्रमुख कारण कुछ जर्मन राजनीतिज्ञों के द्वारा इंग्लैण्ड का विश्वास प्राप्त कर लिया जाना था, किन्तु इस प्रकार की उदारवादी वैदेशिक नीति से इंग्लैण्ड की दुर्बलता ही प्रकट हुई तथा सम्पूर्ण विश्व को द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण हानि उठानी पड़ी।**

प्रश्न

1. ग्लैडस्टनकालीन इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
2. डिजरैली की विदेश नीति का वर्णन कीजिए।
3. सैलिसबरी की वैदेशिक नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
4. 1871 ई. से 1914 ई. तक इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
5. 1919 ई. से 1939 ई. तक इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
6. 1871 ई. से 1939 ई. तक इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

---

1 **'Strength comes before policy, that is what the cabinet has forgotten."**

—*Lloyd George.*

34

स्पेन का गृह-युद्ध (1936-1939 ई.)

[THE SPANISH CIVIL WAR]

भूमिका
(INTRODUCTION)

स्पेन में 1936 ई. से 1939 ई. तक गृह-युद्ध हुआ। स्पेन का यह गृह-युद्ध यद्यपि स्पेन का आन्तरिक मामला था; किन्तु विदेशी शक्तियों के इसमें हस्तक्षेप करने के कारण यह गृह-युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का हो गया। इस गृह-युद्ध के परिणाम भी दूरगामी हुए तथा इसने द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म देने में भी अहम् भूमिका निभायी।

गृह-युद्ध की पृष्ठभूमि
(BACKGROUND OF THE SPANISH CIVIL WAR)

19वीं शताब्दी में स्पेन ने यूरोपीय राजनीति में सक्रिय भूमिका नहीं निभायी। 19वीं सदी में स्पेन पहले के समान ही स्थानीय, प्रगतिशील और संकुचित दृष्टिकोण वाला ही बना रहा। इस शताब्दी में स्पेन में यदा-कदा उदारवादी आन्दोलन अवश्य हुए, किन्तु उनका दमन किया जाता रहा तथा ये आन्दोलन कोई स्थायी प्रभाव स्पेन पर न छोड़ सके। **स्पेन में दीर्घकाल से राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति थी तथा कुलीन वर्ग व पादरियों का प्रभाव स्पेन की शासन व्यवस्था पर छाया हुआ था।** चिरकाल से इन लोगों का प्रभाव बना हुआ था और वे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी अदूरदर्शी व अनुदार बने हुए थे। ये लोग उन परिवर्तनशील आर्थिक परिस्थितियों के प्रति उदासीन रुख अपनाए हुए थे जो कि सम्पूर्ण विश्व में अधिकाधिक प्रचलित होती जा रही थी।[1] स्पेन के अनुदार लोग विश्वयुद्ध के समय केन्द्रीय शक्तियों के समर्थक थे तथा उदारवादी लोग मित्र राष्ट्रों के प्रति अपनी निष्ठा रखते थे, किन्तु स्पेन की सरकार प्रथम विश्वयुद्ध में तटस्थ बनी रही।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड की आन्तरिक स्थिति पहले से भी खराब होने लगी। स्पेन की आर्थिक स्थिति जो पहले से ही खराब थी अब और अधिक खराब हो गयी। श्रमिकों में असन्तोष की भावना निरन्तर बढ़ती जा रही थी। स्पेन के **कैटालोनिया क्षेत्र में आर्थिक कठिनाइयों के कारण निरन्तर विद्रोही भावनाएं प्रबल होती जा रही थीं।** कैटालोनिया में स्वतन्त्रता की मांग जोर पकड़ रही थी; उन लोगों की मांग थी कि उनके राज्य को स्वतन्त्र कर वहां

1 **हेजन, आधुनिक यूरोप का इतिहास, पृ. 650।**

पृथक् संसद व कार्यपालिका हो जिसमें स्पेन की सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो। इन मांगों के लिए कैटालोनिया के निवासी निरन्तर आन्दोलन कर रहे थे।

इसी समय स्पेन को मोरक्को की समस्या का भी सामना करना पड़ा। मोरक्को ने 1917 ई. में स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह युद्ध इतने लम्बे समय तक चला जिसमें स्पेन को अत्यधिक जन-धन की हानि उठानी पड़ी। 1921 ई. में मोरक्को के विद्रोहियों ने स्पेन के जनरल सिलवैस्ट्रे को पराजित कर दिया। जनरल सिलवैस्ट्रे के 12,000 सैनिक मारे गए। इस पराजय के कारण जनरल सिलवैस्ट्रे ने आत्महत्या कर ली। इस घटना से स्पेन की जनता शासक अलफांसी XIII के विरुद्ध हो गयी क्योंकि जनता का विचार था कि राजा द्वारा सैनिक मामलों में हस्तक्षेप के कारण ही स्पेनी सेना की मोरक्को में पराजय हुई थी।

1923 **ई. में एक सैनिक अधिकारी प्रीमो दि रिवेरा** (Primo de Rivera) **ने विद्रोहियों का दमन कर स्पेन की सत्ता पर अधिकार करने का प्रयास किया।** स्पेन के राजा अलफांसो ने स्वयं को असुरक्षित पाकर प्रीमो दि रिवेरा को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। रिवेरा ने स्पेन की संसद व संविधान को समाप्त कर दिया तथा शक्ति के द्वारा अधिनायकवाद की स्थापना की। उसने सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली व 1923 ई. से 1930 ई. तक एक तानाशाह (Dictator) की तरह स्पेन में शासन किया। रिवेरा ने भाषण, प्रेस आदि के अधिकारों को जनता से छीन लिया। रिवेरा ने स्पेन की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसमें वह विशेष सफलता प्राप्त न कर सका। अन्ततः 1930 ई. में उसने अस्वस्थ होने व विपरीत परिस्थितियों को देखते हुए त्यागपत्र दे दिया व स्वयं फ्रांस चला गया।

स्पेन में गणतन्त्र की स्थापना
(ESTABLISHMENT OF REPUBLIC)

रिवेरा के पश्चात् स्पेन में जनरल वैरेंगुअर ने सरकार बनायी। उसने भी रिवेरा के समान तानाशाह तरीके से शासन करना चाहा, किन्तु स्पेन में गणतन्त्र की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही थी। स्पेन की जनता नारे लगा रही थी कि **'राजा तथा राजतन्त्र समाप्त हो'**। राजा के प्रयासों के पंश्चात् भी गणतन्त्र की भावनाएं कमजोर न हुईं। अन्ततः 1930 ई. में ही अलफांसो XIII स्पेन छोड़कर फ्रांस भाग गया। इस प्रकार गणतन्त्रवादियों की विजय हुई। अलफांसो के पलायन के पश्चात् जमोरा (Zamora) को अस्थायी राष्ट्रपति बनाया गया। 28 जून, 1931 ई. को स्पेन में चुनाव हुए जिसमें गणतन्त्रवादियों की भारी विजय हुई। स्पेन को **'सभी वर्गों के श्रमिकों का लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र'** घोषित किया गया तथा जमोरा को स्थायी राष्ट्रपति नियुक्त किया गया।

इस प्रकार स्थापित गणतन्त्रात्मक सरकार ने स्पेन में अनेक सुधार किए। 1933 ई. में स्पेन में पुनः चुनाव हुए जिसमें गणतन्त्रवादियों को पहले की तुलना में बहुत कम सफलता मिली। अतः कैथोलिक पार्टी के सहयोग से रिपब्लिकन गणतन्त्र दल के नेता लेरू (Lerroux) ने सरकार बनायी। उसने पिछली सरकार द्वारा लागू अध्यादेशों को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। अतः लेरू की नीतियों के विरुद्ध जनता में असन्तोष की भावना व्याप्त होने लगी। जनता ने अनेक बार विद्रोह किए जिनका सरकार ने कठोरतापूर्वक दमन कर दिया।

1936 ई. में हुए आम चुनावों में गणराज्य समर्थक विभिन्न दलों ने अजाना के नेतृत्व में सरकार बनायी। इस सरकार ने विरोधियों का दमन करने के लिए कठोर कदम उठाए। अतः सम्पूर्ण स्पेन में अराजकता फैल गयी व गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

गृह-युद्ध का प्रारम्भ
(CIVIL WAR BEGINS)

सन् 1936 ई. के उत्तरार्द्ध की सबसे महत्वपूर्ण घटना एक ऐसे देश में हुई जिसका अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में नगण्य स्थान रहा था।[1] 17 जुलाई, 1936 ई. को स्पेनिश मोरक्को में तैनात सेना के सेनापति फ्रांको (General Franco) ने स्पेन की आन्तरिक स्थिति को देखते हुए विद्रोह कर दिया। **इस प्रकार स्पेन में गृह-युद्ध 17 जुलाई, 1936 ई. को प्रारम्भ हो गया।** जनरल फ्रांको सेना के साथ स्पेन में घुस गया व बिना किसी विरोध का सामना किए उसने दक्षिणी स्पेन पर अधिकार कर लिया। नवम्बर के मध्य तक जनरल फ्रांको मेड्रिड के उपनगरों तक पहुंच गया। अतः स्पेनिश सरकार को अपना मुख्यालय वेलिन्शिया (Velencia) में स्थापित करना पड़ा। जनरल फ्रांको को जर्मनी व इटली की सहायता प्राप्त हो रही थी।[2] अतः जनरल फ्रांको निरन्तर विजय प्राप्त करता रहा। अन्ततः 28 जनवरी, 1839 ई. को उसने बार्सीलोना पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण स्पेन पर अधिकार करने के पश्चात् जनरल फ्रांको ने स्पेन में अपनी सरकार की घोषणा कर दी। कुछ समय पश्चात् यूरोपीय राष्ट्रों ने भी जनरल फ्रांको की सरकार को मान्यता प्रदान कर दी।

स्पेनिश गृह-युद्ध का महत्व
(SIGNIFICANCE OF THE SPANISH CIVIL WAR)

जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है स्पेन का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेष हस्तक्षेप नहीं था। सामान्य परिस्थितियों में स्पेन में हुए गृह-युद्ध से किसी अन्य देश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए था, लेकिन कुछ विशेष कारणों ने न केवल स्पेन के गृह-युद्धों को अन्तर्राष्ट्रीय घटना बनाया वरन् उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी स्थापित किया। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए ई. एच. कार ने लिखा है, "**वैसे अन्य परिस्थितियों में स्पेन का गृह-युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय घटना न बना होता। जिन कारणों से वह अन्तर्राष्ट्रीय घटना बन सका, वे दो प्रकार के थे। एक तो इटली हाल ही में अबीसीनिया पर विजय प्राप्त कर चुका था। जिससे भूमध्यसागर का सामरिक महत्व सुस्पष्ट हो गया था। अतः उसने पश्चिमी भूमध्य सागर में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के इस अवसर का स्वागत किया। दूसरे, प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही यह विचार जोर पकड़ रहा था कि किसी देश विशेष का आन्तरिक संगठन जिस राजनीतिक सिद्धान्त पर आधारित हो, उस देश से अन्य देशों में उस सिद्धान्त की विजय के लिए प्रोत्साहन तथा सहायता अपेक्षित है।**"[3] इसी सिद्धान्त के आधार पर जनरल फ्रांको को इटली व जर्मनी ने इस गृह-युद्ध में सहायता की थी, जबकि दूसरी ओर रूस स्पेन की साम्यवादी सरकार को समर्थन दे रहा था।

1 ई. एच. कार, **दो विश्वयुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध**, पृ. 225।

2 "From the first days of this new revolt, the 'Nationalists', as the insurgents styled, themselves, receieved arms, planes, artillery and military aid from Germany and Italy."
—Ferguson and Bruun, *op. cit.*, p. 857.

3 ई. एच. कार., **पूर्वोक्त**, पृ. 226।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्पेन का गृह-युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी। **इस गृह-युद्ध के प्रति यूरोप की विभिन्न शक्तियों का रुख निम्नलिखित था :**

1. **इटली** (Italy)—इटली में उस समय मुसोलिनी का शासन था, जिसका विश्वास फासिस्टवाद में था। अतः इटली यूरोप के अन्य देशों में भी फासिस्टवाद की स्थापना करना चाहता था। इसी आधार पर उसने आस्ट्रिया में भी फासिस्टवाद की स्थापना पर जोर दिया था। 1936 ई. में हुए स्पेन के इस गृह-युद्ध को इटली ने फासिस्टवाद व कम्यूनिज्म के मध्य संघर्ष माना और जनरल फ्रांको की सहायता करके परोक्ष रूप से फासिस्टवाद की सहायता की। फ्रांको की सेना को मोरक्को से स्पेन लाने के लिए भी इटली ने अपने वायुयान भेजे थे।

फासिस्टवाद के अतिरिक्त भी इटली इस गृह-युद्ध से लाभ उठाना चाहता था। फ्रांको के शासन की स्थापना से इटली का भूमध्य सागर में प्रभाव बढ़ गया जिससे वह इंग्लैण्ड और फ्रांस को हानि पहुंचा सकता था।

2. **जर्मनी** (Germany)—जर्मनी ने भी स्पेनिश गृह-युद्ध में उन्हीं कारणों से जनरल फ्रांको की मदद की जिनकी वजह से इटली ने की थी। जर्मनी में हिटलर की सत्ता थी, जो गणतन्त्र का घोर विरोधी था। अतः वह स्पेन में भी एकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना करना चाहता था। इसके अतिरिक्त स्पेन में मित्र-सरकार होने पर जर्मनी अपने पारम्परिक शत्रु फ्रांस के लिए खतरा बन सकता था क्योंकि फ्रांस तीन ओर से घिर जाता। स्पेन में फ्रांको की सरकार बनने से फ्रांस पूर्व में जर्मनी, दक्षिण में इटली व पश्चिम में स्पेन से घिर गया। इसके अतिरिक्त स्पेन के गृह-युद्ध में जनरल फ्रांको की सहायता करके जर्मनी ने भूमध्य सागर में भी अपने प्रभाव को बढ़ा लिया जिससे इंग्लैण्ड के उपनिवेशों को खतरा उत्पन्न हो गया।

3. **रूस** (Russia)—स्पेन के गृह-युद्ध में रूस ही एक ऐसा देश था जिसकी सहानुभूति स्पेनिश सरकार के प्रति थी तथा जिसने स्पेन की सहायता की। इस सहानुभूति का कारण रूस का साम्यवादी होना था। वह स्पेन में गणतन्त्र का समर्थक था। रूस का मानना था कि यदि स्पेन में तानाशाही की स्थापना हो गयी तो विश्व में तानाशाही का महत्व बढ़ जाएगा क्योंकि इटली व जर्मनी में पहले से ही तानाशाही शासन विद्यमान था। रूस के जर्मनी से सम्बन्ध भी कटु थे। अतः वह यूरोप में जर्मनी के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना चाहता था। **रूस का विचार था कि यदि स्पेनी गृह-युद्ध में स्पेनी सरकार की पराजय हो गयी तो जर्मनी का प्रभाव स्पेन पर भी छा जाएगा।** इसी कारण उसने इंग्लैण्ड व फ्रांस से भी स्पेनी सरकार की मदद करने का आह्वान किया। रूस ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि स्पेन के विद्रोहियों (जनरल फ्रांको) को इटली व जर्मनी से मिलने वाली सहायता को रोका जा सके, किन्तु रूस अपने इस उद्देश्य में सफल न हो सका।

4. **इंग्लैण्ड** (England)—रूस ने इंग्लैण्ड से स्पेनिश सरकार की सहायता करने की अपील की थी, किन्तु इंग्लैण्ड ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि इंग्लैण्ड इसे स्पेन का आन्तरिक मामला मानते हुए उसमें हस्तक्षेप करने का इच्छुक न था। इसके अतिरिक्त

इंग्लैण्ड जनरल फ्रांको को भी नाराज करना नहीं चाहता था क्योंकि इससे उसके जिब्राल्टर नामक उपनिवेश के लिए संकट उत्पन्न हो सकता था। इंग्लैण्ड द्वारा रूस की अपील को स्वीकार न करने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि **इंग्लैण्ड कम्यूनिज्म का विरोधी था व कम्यूनिज्म को फैलने से रोकना चाहता था।** यदि स्पेन में रूस की सहायता से स्पेनी सरकार कायम रह जाती तो कम्यूनिज्म को बढ़ावा मिलता।

5. **फ्रांस** (France)—फ्रांस व इंग्लैण्ड मित्र थे। अतः इंग्लैण्ड का अनुकरण करते हुए उसने भी स्वयं को इस गृह-युद्ध से अलग नहीं रखा। इसके अतिरिक्त फ्रांस का मुख्य शत्रु जर्मनी था। अतः फ्रांस इटली से अच्छे सम्बन्ध रखना चाहता था। स्पेन के गृह-युद्ध में क्योंकि इटली भी जनरल फ्रांको की मदद कर रहा था। अतः फ्रांस ने स्पेनिश सरकार की सहायता करके इटली को नाराज करना उचित न समझा।

6. **अमरीका** (America)—अमरीका ने भी स्पेन के गृह-युद्ध से स्वयं को अलग ही रखा क्योंकि वह भी कम्यूनिज्म का घोर विरोधी था। अमरीका, फ्रांस व इंग्लैण्ड का विचार था कि कम्यूनिज्म को विश्व में फैलने से रोकने के लिए कुछ देशों में तानाशाहों का रहना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त अमरीका स्वयं को यूरोपीय राजनीति से अलग रखना चाहता था।

गृह-युद्ध के प्रभाव
(EFFECTS OF THE CIVIL WAR)

स्पेन का गृह-युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी। अतः इसके प्रभाव भी अन्तर्राष्ट्रीय ही हुए। इस गृह-युद्ध का प्रभाव केवल इतना ही नहीं हुआ कि इससे स्पेन में गणतन्त्र की समाप्ति व तानाशाही की स्थापना हुई वरन् इसने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। इस युद्ध के प्रारम्भ होते ही यूरोप के दो शिविरों में विभक्त होने के लक्षण प्रकट होने लगे थे। इटली, जर्मनी व पुर्तगाल स्पष्टतया विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे, जबकि रूस स्पेनी सरकार का समर्थक था। यदि रूस की अपील पर फ्रांस व इंग्लैण्ड भी इसमें हस्तक्षेप करते तो यूरोप दो शिविरों में बंट गया होता। इस गृह-युद्ध के कारण रूस इंग्लैण्ड व फ्रांस से नाराज हो गया, दूसरी ओर जर्मनी और इटली के सम्बन्ध घनिष्ठ हो गए। डेविड थामसन ने इस विषय में लिखा है, **"इस गृह-युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसने स्पष्ट कर दिया कि लोकतन्त्रात्मक सरकारों को पराजित करने के लिए जर्मनी तथा इटली की आक्रामक तानाशाह सरकारें आपस में मिल सकती थीं अथवा यह कहना चाहिए कि मिल रही थीं तथा लोकतन्त्रों की कमजोरी के कारण वे अपने उद्देश्य में सफल भी हो सकती थीं।"**[1] इस गृह-युद्ध के कारण तानाशाहों का यूरोप में प्रभाव बढ़ा तथा राष्ट्र संघ (League of Nations) की कमजोरी स्पष्ट हो गयी। यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र संघ इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह किसी शक्तिशाली देश पर अंकुश लगा सके।

---

1 "War's chief significance was that it revealed that the aggressive nationalistic dictatorships of Italy and Germany could and would ally together in order to defeat democratic governments, and that they might in face of democratic weakness and disarray succeed in their purpose."

—David Thomson, *Europe since Napoleon*, p. 677

स्पेन के इस गृह-युद्ध में स्पेन की व्यक्तिगत भी अत्यधिक हानि हुई। लाखों लोग इस गृह-युद्ध में मारे गए व अपार सम्पत्ति नष्ट हो गयी।[1]

प्रश्न

1. स्पेन के गृह-युद्ध की पृष्ठभूमि, घटनाओं व प्रभावों का वर्णन कीजिए।
2. स्पेन के गृह-युद्ध की पृष्ठभूमि व अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का वर्णन कीजिए।
3. स्पेन के गृह-युद्ध के प्रति विश्व के अन्य देशों के दृष्टिकोणों का वर्णन कीजिए।

1 **"The civil war probably cost her a million in dead or exiles, as well as the destruction of many of her cities and the laying waste of much of her countryside."**
—David Thomson, *op. cit.*, p. 676-677.

35

द्वितीय विश्व-युद्ध
[SECOND WORLD WAR]

भूमिका
(INTRODUCTION)

प्रथम विश्व-युद्ध 1914-18 ई. तक चला था तथा इसमें भाग ले रहे 36 राष्ट्रों को अपार जन-धन की हानि का सामना करना पड़ा था। **युद्ध की समाप्ति पर पराजित राष्ट्रों तथा विशेष रूप से जर्मनी के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया जिससे उन राष्ट्रों में प्रतिशोध की भावना प्रबल होती गयी और बीस वर्ष पश्चात् पुनः युद्ध के बादल विश्व पर मंडराने लगे।** इंगलैण्ड की तुष्टीकरण की नीति से यह बादल और भी सघन होते गये और शीघ्र ही 1939 ई. में द्वितीय विश्व-युद्ध के रूप में प्रस्फुटित हो गये।

द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE SOCOND WORLD WAR)

1939 ई. से 1945 ई. तक हुए इस युद्ध के प्रारम्भ होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे :

(i) **प्रथम विश्व-युद्ध एवं वार्साय की सन्धि** (First World War and the Treaty of Versailles)—द्वितीय विश्व-युद्ध का एक प्रमुख कारण प्रथम विश्व-युद्ध में ही निहित था। द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के वही कारण थे जिनके कारण प्रथम विश्व-युद्ध हुआ था। वार्साय की सन्धि, ऐसा प्रतीत होता है कि शान्ति सन्धि नहीं थी, अपितु बीस वर्षों के लिए युद्ध-विराम सन्धि थी। प्रथम विश्व-युद्ध सम्भवतः दोनों पक्षों की आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सका था। अतः इन अरमानों की पूर्ति हेतु द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ।

वार्साय की सन्धि (Treaty of Versailles) पर भी द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व है। प्रथम विश्व-युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् 1919 ई. में जर्मन के साथ वार्साय की सन्धि की गयी थी। **जर्मनी के साथ इसमें प्रतिशोध की भावना से अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया था, ताकि उसे स्थायी रूप से शक्तिहीन बनाया जा सके।** इस सन्धि के द्वारा जर्मनी को अनेक भागों में विभक्त किया गया, उसके उपनिवेशों पर मित्र-राष्ट्रों ने अधिकार किया तथा खानों एवं कारखानों को मित्र-राष्ट्रों ने परस्पर वितरित कर लिया। **जर्मनी पर युद्ध-हर्जाना भी इतना अधिक किया गया था कि उसे चुकाना जर्मनी के लिए असम्भव था।** जर्मनी से इस सन्धि-पत्र पर बलपूर्वक हस्ताक्षर कराये गये। इस प्रकार मित्र-राष्ट्रों द्वारा अदूरदर्शिता

का प्रदर्शन करती हुई, जर्मनी के साथ की गयी इस सन्धि ने जर्मन को इसे भंग करने एवं मित्र-राष्ट्रों से प्रतिशोध लेने के लिए बाध्य किया। **इसी कारण द्वितीय विश्व-युद्ध को प्रतिशोधात्मक-युद्ध** (War of Revenge) **कहा जाता है।**

(ii) **दलबन्दी** (Party System)—प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व यूरोप दो सैनिक खेमों **त्रि-दल** (Triple Alliance) तथा **त्रि-मैत्री** (Triple Entente) में विभक्त हो गया था। इसी प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध के पूर्व भी यूरोप दो भागों में विभक्त हो चुका। **द्वितीय विश्व-युद्ध में एक ओर जर्मनी, इटली व जापान थे जिन्हें धुरी शक्तियां** (Axis Powers) **कहते थे।** धुरी शक्तियां वार्साय सन्धि की विरोधी तथा अधिनायकवाद की समर्थक थीं। **दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों में फ्रांस, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया थे।** युद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ समय पश्चात् इंग्लैण्ड मित्र राष्ट्रों की तथा रूस धुरी शक्तियों की ओर हो गया। युद्ध काल में जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण किये जाने से रूस भी मित्र-राष्ट्रों की ओर हो गया तथा पर्ल हार्बर पर आक्रमण होने पर अमरीका भी इसी दल में मिल गया। इस प्रकार पोलैण्ड व जर्मनी का झगड़ा विश्व-युद्ध में परिणत हो गया।

(iii) **सैनिकवाद** (Militarism) 1919 ई. की वार्साय की सन्धि के द्वारा जर्मनी को निर्बल बनाने के उद्देश्य से उसका निःशस्त्रीकरण कर दिया गया था। इसके पश्चात् भी फ्रांस का जर्मनी के प्रति भय कम न हुआ। अतः वह सैनिक तैयारियां करता ही रहा। 1933 ई. में जर्मनी में हिटलर शक्ति में आया। **हिटलर ने वार्साय की सन्धि की अवहेलना करके अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। उसने सैनिक सेवा अनिवार्य की तथा हथियारों के उत्पादन को बढ़ाया।** हिटलर द्वारा निरन्तर सैनिक शक्ति में वृद्धि होते देखकर इंगलैण्ड को भी इस ओर ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। इंगलैण्ड, जो प्रारम्भ में निःशस्त्रीकरण के पक्ष में था, हिटलर की नीति को देखकर स्वयं की सैन्य-शक्ति में वृद्धि करने पर विवश हुआ। धीरे-धीरे जापान, इटली तथा रूस ने भी अपनी सैन्य-शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ किया। सभी देशों के द्वारा सैनिक तैयारियां करने पर युद्ध का होना स्वाभाविक ही था।

(iv) **राष्ट्र संघ की निर्बलता** (Weakness of League of Nations)—प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् पारस्परिक समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने के उद्देश्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी थी, **किन्तु राष्ट्र-संघ अपने उद्देश्य में सफलता न प्राप्त कर सका।** अनेक राष्ट्र, राष्ट्र-संघ से पृथक् हो गये तथा उन्होंने उसके प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, किन्तु राष्ट्र संघ ऐसे देशों के विरुद्ध कार्यवाही न कर सका जिससे उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गयी। अतः अन्य देशों को भी राष्ट्र संघ से सुरक्षा प्राप्त करने का विश्वास समाप्त हो गया।

(v) **साम्राज्यवाद** (Imperialism)—प्रथम विश्व-युद्ध का भी एक प्रमुख कारण साम्राज्यवाद था। इस युद्ध के पश्चात् भी साम्राज्यवाद की भावनाएं समाप्त न हो सकीं। **जर्मनी एवं इटली वार्साय सन्धि का विरोध करते हुए बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो गये।** जापान भी साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था तथा उसकी दृष्टि चीन पर लगी थी। इन देशों की साम्राज्यवादी नीति इंगलैण्ड व फ्रांस के हितों से टकरा रही थी। अतः युद्ध होना आवश्यक भी था।

(vi) **तानाशाहों का उदय** (Rise of Dictators)—द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व यूरोप के अनेक देशों में तानाशाहों का शासन स्थापित हुआ। जर्मनी में बीमर गणतन्त्र के शासन की असफलता के पश्चात् नाजी दल का नेता हिटलर (Hitler) शक्ति में आया। **उसका प्रमुख उद्देश्य वार्साय सन्धि की अवहेलना करके जर्मनी के खोये हुए सम्मान को पुनः अर्जित करना था।** अतः अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने सैन्य-शक्ति को बढ़ाया व आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया।

इटली में भी मुसोलिनी (Mussolini) नामक तानाशाह शक्ति में आया तथा इटली में फासीवाद की स्थापना करने में सफल हुआ। **इटली का विचार था कि यद्यपि उसने मित्र-राष्ट्रों को प्रथम विश्व-युद्ध में सहयोग दिया तथापि उसे उचित इनाम नहीं दिया गया।** अतः यह मित्र राष्ट्रों एवं वार्साय की सन्धि का विरोधी हो गया तथा उपनिवेश स्थापना के लिए प्रयत्नशील हो गया। **स्पेन में भी तानाशाही की भावनाएं शक्तिशाली होती गयीं** तथा शीघ्र ही जनरल फ्रैंको नामक व्यक्ति ने इटली एवं जर्मनी की सहायता से गणतन्त्र शासन के विरुद्ध विद्रोह किया तथा अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार विभिन्न देशों में तानाशाहों का उदय हुआ, जिन्होंने शीघ्र ही अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का प्रयास सैनिक शक्ति के आधार पर किया। ऐसी स्थिति में युद्ध होना स्वाभाविक ही था।

(vii) **दो विचारधाराओं का संघर्ष** (Struggle between two thought)—द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व में **दो प्रकार की विचारधाराएं प्रचलित थीं—जनतन्त्रात्मक एवं एकतन्त्रात्मक।** जनतन्त्रात्मक विचारधारा इंगलैण्ड, फ्रांस एवं अमरीका में प्रचलित थी जबकि इटली, जर्मनी एवं जापान एकतन्त्रात्मक विचारधारा के समर्थक थे। शीघ्र ही इन दोनों विचारधाराओं में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अतः दोनों में निर्णय होना निश्चित ही था जिसका एकमात्र रास्ता युद्ध ही था। इटली के तानाशाह मुसोलिनी ने एक बार कहा था—'**दोनों विचारधाराओं के संघर्ष में समझौता होना असम्भव है। इस संघर्ष के कारण या तो हम रहेंगे अथवा वे ही रहेंगे।**'[1]

(viii) **राष्ट्रीय समाजवाद** (National Socialism)—**जर्मनी में इस प्रकार की भावना जागृत हो गयी कि वे शुद्ध आर्य हैं। अतः मनुष्यों में श्रेष्ठ होने के कारण उन्हें ही शासन करने का अधिकार प्राप्त है।** यह राष्ट्रीय समाजवाद की भावना भविष्य में अत्यन्त हानिकारक प्रमाणित हुई। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् जर्मनी को विभिन्न भागों में विभक्त कर दिया था जिसने जर्मन अलग-अलग राष्ट्रों के अधीन हो गये थे। आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया तथा पोलैण्ड में रहने वाले जर्मनों के कारण अत्यन्त गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी। **हिटलर विदेशों में रहने वाले जर्मनों को जर्मनी से मिलाना चाहता था।** जर्मनी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शक्ति का सहारा लिया। फ्रांस व इंग्लैण्ड ने तुष्टीकरण की नीति के स्थान पर यदि इसी समय जर्मनी को आस्ट्रिया पर अधिकार करने से रोका होता तो सम्भवतः द्वितीय विश्व-युद्ध न होता।

(ix) **तुष्टीकरण की नीति** (Policy of Appeasement)—मित्र राष्ट्रों द्वारा तानाशाहों के प्रति तुष्टीकरण की नीति के परिणामस्वरूप तानाशाह अत्यधिक शक्तिशाली होते चले गये और विश्व-युद्ध का एक कारण बने। मित्र-राष्ट्रों द्वारा तुष्टीकरण की नीति का पालन करने

1 "The struggle between the two worlds permits no compromise, either we or they."
—*Mussolini.*

का कारण मित्र-राष्ट्रों में पारस्परिक झगड़ों का होना था। इंगलैण्ड और अमरीका जर्मनी के प्रति उदारता का व्यवहार करना चाहते थे, क्योंकि उनका मत था कि इस प्रकार के व्यवहार करने पर जर्मनी भविष्य में युद्ध नहीं करेगा। वहां इंगलैण्ड में बने सामान की अत्यधिक मांग थी। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड रूस के साम्यवाद के प्रति अत्यन्त शंकित था तथा रूस के साम्यवाद को रोकने के लिए जर्मनी का उत्थान आवश्यक था। इंगलैण्ड यूरोप के झगड़ों में पुनः पड़ना नहीं चाहता था। फ्रांस जर्मनी के प्रति कठोर नीति का पालन करना चाहता था। **इस प्रकार मित्र-राष्ट्रों में परस्पर मतभेद से तानाशाहों ने लाभ उठाया।** हिटलर ने आस्ट्रिया को अपने अधिकार में ले लिया तथा चैकोस्लोवाकिया को भी सेना भेजी। इटली ने भी अबीसीनिया पर अधिकार कर लिया। इंगलैण्ड ने फिर भी कोई ठोस कार्यवाही न की। तानाशाहों की महत्वाकांक्षाएं मित्र-राष्ट्रों की तुष्टीकरण की नीति से बढ़ती गयीं। अतः युद्ध का होना निश्चित हो गया।

(x) **अनाक्रमण सन्धि** (Non-aggression Pact)—रूस की साम्यवादी नीति के कारण इंगलैण्ड व रूस के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया था। मित्र-राष्ट्र रूस पर विश्वास न करते थे तथा म्यूनिख सम्मेलन में भी रूस को आमन्त्रित नहीं किया गया था। रूस पश्चिम में जर्मनी एवं पूर्व में जापान से घिरा हुआ था। अतः मित्र-राष्ट्रों से मित्रता करना चाहता था। इंगलैण्ड एवं फ्रांस भी जर्मनी के विरुद्ध रूस से सन्धि करना चाहते थे, किन्तु रूस की कुछ शर्तें थीं जिन्हें इंगलैण्ड स्वीकार करने के लिए तैयार न था। अतः रूस जो पहले से ही मित्र-राष्ट्रों से प्रसन्न न था, अब रुष्ट हो गया तथा उसने जर्मनी के साथ 1939 ई. में **अनाक्रमण सन्धि** (Non-aggression Pact) कर लिया। **जर्मनी को इससे अत्यधिक लाभ हुआ, क्योंकि इसके उसकी पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गयी।**

इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ बनाकर जर्मनी ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। पोलैण्ड की सहायतार्थ इंगलैण्ड व फ्रांस ने तथा जर्मनी की ओर से रूस ने हस्तक्षेप किया, परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

युद्ध की घटनाएं
(EVENTS OF THE WAR)

जर्मनी ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण किया। **पोलैण्ड** ने यद्यपि अत्यन्त वीरतापूर्वक जर्मन सेनाओं का सामना किया, किन्तु जर्मन सेनाओं की सहायतार्थ रूस की सेनाओं के भी आ जाने पर पोलैण्ड परास्त हुआ तथा उस पर जर्मनी एवं रूस का अधिकार हो गया। रूस जर्मनी पर विश्वास नहीं करता था। अतः उसने फिनलैण्ड पर भी अधिकार किया तत्पश्चात् लटाविया, लिथूनिया तथा एस्टोनिया पर अधिकार कर अपनी पश्चिमी सीमा को रूस ने सुरक्षित कर लिया।

1940 **ई. के प्रारम्भ में जर्मनी ने डेनमार्क तथा नीदरलैण्ड पर अधिकार कर लिया।** तत्पश्चात् 1914 ई. की पराजय का प्रतिशोध लेने हेतु बेल्जियम होते हुए फ्रांस पर जर्मनी ने आक्रमण किया। कन्कर्क के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। जिसमें जर्मन सेना ने फ्रांस व इंगलैण्ड की सेनाओं को बुरी तरह परास्त किया। 22 जून, 1940 ई. को फ्रांस ने हथियार डाले। इस विजय से फ्रांस के विस्तृत भाग पर जर्मनी का अधिकार हो गया। इसी वर्ष इटली भी फ्रांस के अधीन उसके क्षेत्र सेवाय, नाइस, कोर्सिका, आदि अधिकार करने के उद्देश्य से युद्ध में

सम्मिलित हो गया। **जर्मनी की सेना की सहायता से इटली यूनान को परास्त करने में भी सफल हो गया। जर्मनी ने क्रीट पर भी अधिकार कर लिया तथा पतझड़ के मौसम में इंगलैण्ड पर हवाई आक्रमण किया।** लन्दन व अन्य बड़े नगरों पर बमबारी की गयी जिसमें हजारों व्यक्ति मारे गये तथा अपार सम्पत्ति नष्ट हुई। इंगलैण्ड ने भी जर्मनी के जहाजों को नष्ट करना प्रारम्भ किया तथा जर्मनी को विशेष सफल न होने दिया।
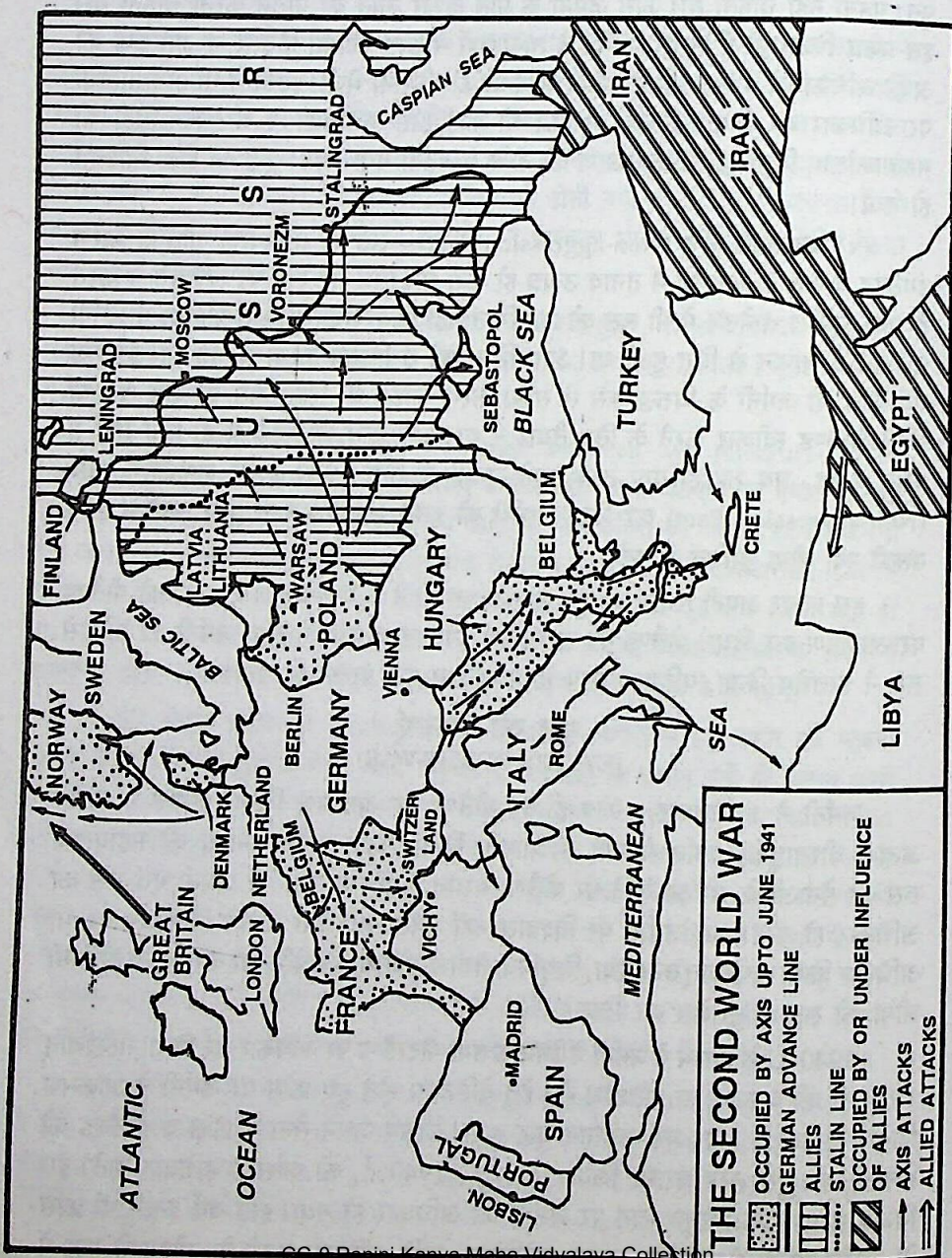
22 जून, 1941 ई. को जर्मनी ने 1919 को अनाक्रमण सन्धि को भंग करके बिना किसी चेतावनी के रूस पर आक्रमण कर दिया। यहां पर यह जानना आवश्यक है कि जर्मनी ने अचानक रूस पर आक्रमण क्यों कर दिया। **जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण करने के निम्नलिखित कारण थे :**

(i) जर्मनी रूस की बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित होने लगा था।

(ii) हिटलर का विचार था कि रूस जर्मनी को धोखा दे रहा था व किसी भी समय वह जर्मनी पर आक्रमण कर सकता था।

(iii) हिटलर को यह भी सन्देह था कि इंग्लैण्ड व अमेरिका ने रूस से सन्धि कर ली थी।

अतः हिटलर का विचार था कि इंगलैण्ड को पराजित करने से पूर्व रूस की शक्ति कुचलना आवश्यक था, ताकि इंगलैण्ड को रूस की मदद न मिल सके। इस विषय में लैंगसम का कथन उल्लेखनीय है, "**नाजी नेता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब तक उन्हें पूर्वी सीमा पर जर्मन सेना एवं विमानों को रखना पड़ेगा तब तक इंगलैण्ड को पराजित करना सम्भव न होगा। अतः उन्होंने पहले अचानक विद्युतगति से आक्रमण कर रूस को पराजित करने और फिर इंगलैण्ड के विरुद्ध सम्पूर्ण शक्ति लगाने का निश्चय किया।**"[1] वैसे भी हिटलर व साम्यवादी रूस मजबूरी में ही एक दूसरे का साथ दे रहे थे। रूस पर आक्रमण करते समय हिटलर ने मुसोलिनी को लिखा था। **सोवियत के साथ मैत्री निभाना अत्यधिक कष्टप्रद हो गया था। इससे मुझे अत्यधिक मानसिक क्लेश हो रहा था। अब मैं शान्ति अनुभव कर रहा हूं।**"[2] हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण करना उसकी एक बड़ी भूल थी। हिटलर का विचार था कि वह रूस को सफलतापूर्वक परास्त कर लेगा, किन्तु रूसी सेना ने अत्यन्त वीरतापूर्वक जर्मन सेनाओं का सामना किया तथा हिटलर को उसके उद्देश्य पूर्ति में सफल न होने दिया। रूस पर जर्मनी द्वारा आक्रमण करने के परिणामस्वरूप रूस ने जुलाई, 1941 ई. में इंगलैण्ड से सन्धि कर ली।

जापान का इस समय तक चीन से युद्ध चल रहा था, किन्तु दिसम्बर, 1941 ई. में जापान ने अमरीका के मध्य प्रदेश पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी एवं इटली ने जापान को सहायता दी। **अमरीका को भी विवश होकर युद्ध में कूदना पड़ा** तथा वह भी मित्र-राष्ट्रों से मिल गया तथा चर्चिल एवं रूजवेल्ट ने '**एटलांटिक चार्टर**' की घोषणा की।

उत्तरी अफ्रीका में भी भीषण लड़ाइयां लड़ी गयीं। प्रारम्भ में जर्मनी तथा इटली की सेनाओं ने 1932 ई. में मिस्र, अल्जीरिया, त्रिपोली, आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, **किन्तु 1943 ई. में स्थिति में परिवर्तन हो गया।** अफ्रीका से इटली एवं जर्मनी का प्रभाव समाप्त करने में मित्र-राष्ट्रों की सेनाएं सफल हुईं, तत्पश्चात् इटली पर आक्रमण किया गया तथा सिसली केपमेटापन, आदि पर विजय प्राप्त की। मित्र-राष्ट्रों ने शीघ्र ही सम्पूर्ण इटली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार मुसोलिनी का पतन हो गया तथा उसे भागकर जर्मन जाना पड़ा।

इटली को परास्त करने के पश्चात् मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी पर आक्रमण किये। 1944 ई. में नार्वे पर अधिकार कर लिया गया तथा फ्रांस को जर्मनी से मुक्त कराया गया। इंगलैण्ड व

1 **लैंगमस, वर्ल्ड सिंस** 1914, पृ. 555।

2 **क्रेग, यूरोप सिंस** 1815, पृ. 749।

अमरीका की वायुसेना ने जर्मनी पर भीषण आक्रमण किये तथा जन-धन की अपार हानि हुई जर्मनी के कारखानों को भी हवाई आक्रमण से नष्ट कर दिया गया, तत्पश्चात् पश्चिम की ओर से अमरीका तथा इंगलैण्ड की सेनाओं ने और पूर्व दिशा से जर्मनी पर रूस की सेना आक्रमण किया तथा निरन्तर सफलता प्राप्त की। अप्रेल, 1945 ई. में हिटलर ने आत्महत्या कर ली। अतः मई, 1945 ई. में जर्मनी की सेना ने हथियार डाल दिये।

जापान अब भी युद्ध में व्यस्त था। जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर अमरीका ने 6 व 9 अगस्त, 1945 ई. को अणुबम गिराये। जापान में अब और युद्ध करने का साहस न बचा था। अतः 14 अगस्त, 1945 ई. को जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार 1 सितम्बर, 1939 ई. को प्रारम्भ हुआ द्वितीय विश्व-युद्ध 14 अगस्त, 1945 ई. को समाप्त हुआ।

द्वितीय विश्व-युद्ध के परिणाम
(EFFECTS OF THE SECOND WORLD WAR)

लगभग 6 वर्षों तक लड़ा जाने वाला द्वितीय विश्व-युद्ध मानव इतिहास का सबसे भयावह एवं विनाशकारी युद्ध था, जिसने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। **इसके प्रभाव इतने व्यापक थे कि विश्व-इतिहास में एक युग का ही अन्त हो गया और एक नये युग का प्रारम्भ हुआ**, परन्तु इस नूतन युग में भय, चिन्ता, अनिश्चितता एवं तनाव की स्थिति पूर्ववत् ही बनी रही। **संक्षेप में द्वितीय विश्व-युद्ध के परिणामों को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :**

(1) **युद्धरत देशों की क्षति**—द्वितीय विश्व-युद्ध में भाग लेने वाले देशों को गम्भीर क्षति उठानी पड़ी थी। सर्वाधिक क्षति रूस को उठानी पड़ी। **केवल स्तालिनग्राड के युद्ध में मारे गये रूसी नागरिकों की संख्या तो सम्पूर्ण युद्ध में मारे गये अमरीकनों के लगभग बराबर ही थी।** इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि पश्चिमी मित्रों ने 1944 ई. तक धुरी राष्ट्रों के विरोध में कोई दूसरा मोर्चा नहीं खोला था। अतः जर्मनी के प्रहार को रूसी मोर्चे को ही सहना पड़ा था। युद्ध में रूस को 1 खरब 28 करोड़ डालर की सम्पत्ति का नुकसान सहना पड़ा। उसके 17 हजार नगर नष्ट हो गये और 70 लाख नागरिक काल-कवलित हो गये। ब्रिटेन को भी महान क्षति का सामना करना पड़ा। उसके 4 लाख 45 हजार नागरिक काल-कवलित हो गये। उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पहले की अपेक्षा कम हो गया। कोयले एवं कपड़े के उत्पादन में कमी आ जाने से 41% गिरावट आ गयी। उसे 1946 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका से 3 अरब 75 करोड़ डालर कर्ज के रूप में लेना पड़ा। यह कर्ज उसे 2% ब्याज की दर पर 50 वर्ष में चुकाना तय हुआ था। फ्रांस को भी 3 लाख 80 हजार नागरिकों के हाथ धोना पड़ा। उसका कृषि का उत्पादन 38% कम हो गया और औद्योगिक उत्पादन 30% घट गया। स्थिति यहां तक पहुंच गयी कि 1945 ई. में फ्रांस के रहन-सहन की वस्तुओं की कीमतों में 296% की वृद्धि हो गयी। **इटली** के युद्ध में 6 लाख 36 हजार 37 सैनिक काल-कवलित हो गये। उसकी राष्ट्रीय सम्पत्ति पूर्व की अपेक्षा अब मात्र 1/3 रह गयी। उसे लगभग 1 लाख खरब 'लिरा' की क्षति उठानी पड़ी। **जर्मनी** को भी भयंकर क्षति का सामना करना पड़ा। उसे 40 लाख जर्मन नागरिकों से हाथ धोना पड़ा। एक निरीक्षक के अनुसार, "**1945 ई. में जर्मनी विशिष्ट नगरों, भयभीत व्यक्तियों और कल्पनातीत भयंकर दुर्दशाओं का देश था।**" जर्मनी का विभाजन

कर दिया गया। जापान का भी आर्थिक पराभव हुआ। हिरोशिमा एवं नागासाकी में गिराये गये एटम बम के कारण जापान का मनोबल टूट चुका था। जापान का प्रादेशिक प्रभुत्व भी पूर्व से कम हो गया। उसे विदेशी बाजारों एवं कच्चे माल के साधनों से वंचित होना पड़ा। जहां तक **अमेरिका** का सम्बन्ध है अमेरिका युद्ध में अन्त में कूदा था। न तो उसकी भूमि पर युद्ध लड़ा गया और न ही उसे भयंकर बम वर्षा का सामना करना पड़ा। अतः अमेरिका को कोई विशेष हानि नहीं उठानी पड़ी। उल्टे युद्ध के पश्चात् उसके उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। जहां तक छोटे-छोटे राष्ट्रों का सम्बन्ध था उन्हें भी अपार क्षति उठानी पड़ी। **चैकोस्लोवाकिया** के 2 लाख 50 हजार नागरिक मारे गये। **पोलैण्ड** को 60 लाख व्यक्तियों की बलि देनी पड़ी। **हंगरी** के 70 प्रतिशत कारखाने एवं मशीनें युद्ध काल में समाप्त हो गयीं। **यूगोस्लाविया, बल्गारिया, यूनान** एवं **अलबानिया** भी आर्थिक संकट में फंस गये।

(2) **यूरोपीय प्रभुत्व की समाप्ति**—द्वितीय विश्व-युद्ध ने जिस नूतन युग को जन्म दिया वह युग यूरोपीय प्रभुत्व की समाप्ति का युग था। द्वितीय महायुद्ध ने यूरोपीय शक्तियों को इतना झकझोर दिया था कि युद्ध से पूर्व तक **विश्व को अनुशासित करने का दावा करने वाला यूरोप** (World Domination Europe) अब **समस्या प्रधान यूरोप** (Problem Europe) के रूप में सामने आ गया। धुरी राष्ट्रों ने अपना साम्राज्य खो दिया। ब्रिटेन, फ्रांस, आदि भी शक्तिहीन हो गये।

(3) **दो महाशक्तियों का उदय**—यूरोप की प्रभुसत्ता विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर क्षीण होते ही नये युग में दो महाशक्तियों का अभ्युदय हुआ। **संयुक्त राज्य अमेरिका एवं रूस ये दो शक्तियां थीं।** रूस को युद्ध के अन्त तक विशाल प्रदेश प्राप्त हो चुके थे। वह अपनी सीमाएं पश्चिम में फैला ही चुका था। पोलैण्ड, रूमानिया, हंगरी, बल्गेरिया, अल्बानिया एवं चैकोस्लोवाकिया, आदि राष्ट्रों की सरकारें रूस के मित्र के रूप में सामने आयीं। जापान का पतन हो ही चुका था। **ब्रिटेन आर्थिक रूप से जर्जरित हो गया।** जर्मनी व इटली की शक्ति क्षीण हो गयी थी। चीन गृह युद्ध की अग्नि में तप रहा था। अतः रूस का मुकाबला करने वाली एक ही शक्ति बच गयी थी। वह शक्ति थी संयुक्त राज्य अमेरिका। विश्व के पूंजीवादी देशों के लिए अमेरिका उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए आशा बन गया था।

(4) **शीत युद्ध का प्रारम्भ**—द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका ने रूस के साथ मिलकर धुरी राष्ट्रों का विरोध किया था। इससे ऐसा लगता था कि युद्ध के पश्चात् इस मित्रतापूर्ण व्यवहार से शान्ति की स्थापना होगी। लैंगसम के शब्दों में, "**आशावादी इस बात से निश्चिन्त थे कि भविष्य में शान्ति निश्चित रूप से बनी रहेगी जैसे ही युद्ध समाप्त होगा विभिन्न राज्यों की एकता जो युद्ध के कठिन वर्षों में थी वह शान्ति बनाये रखेगी।**"[1] किन्तु यह आशा उस समय निराधार सिद्ध हुई जब विश्व के रंगमंच पर सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका दो महाशक्तियों के रूप में उभर कर सामने आये। दोनों की विचारधाराएं एक-दूसरे से अलग थीं। अतः दोनों विश्व के दो परस्पर विरोधी खेमों का प्रतिनिधित्व करने लगे। इससे दोनों के मध्य तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया जिसने '**शीत युद्ध**' को जन्म दिया।

---

1 **"The optimists were certain that future peace would be assured by the continuance, after the hostilities caused of the unity that characterised the difficult war years."**
—*Langsom*

(5) **साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन**—द्वितीय विश्व-युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन भी था। मित्र राष्ट्रों ने धुरी राष्ट्रों के विरोध में केवल स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर युद्ध किया था। अतः युद्ध

PARTITION OF GERMANY (1945)
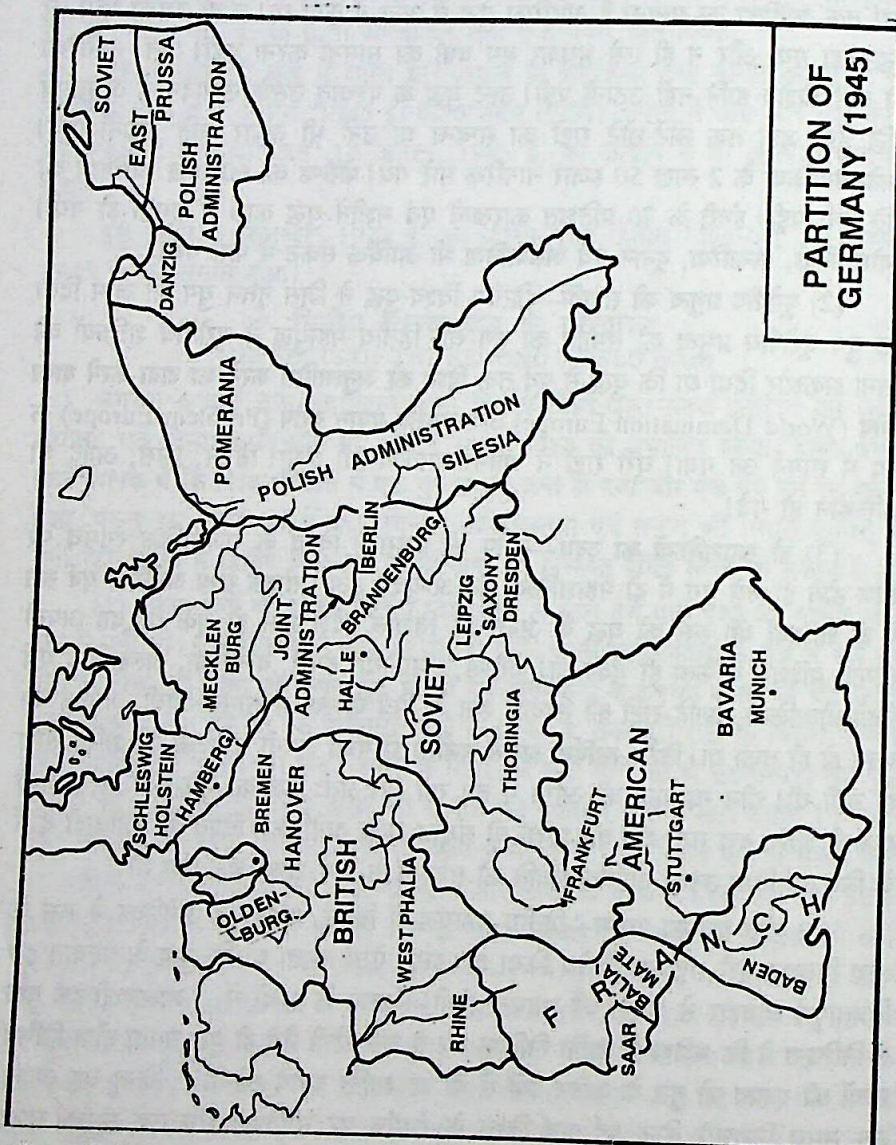
की समाप्ति के पश्चात् साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन होना स्वाभाविक हो चुका था, क्योंकि युद्ध में मित्र राष्ट्र विजयी हुए थे।

(6) **उपनिवेशों में नव-जागरण**—द्वितीय विश्व-युद्ध का गम्भीर प्रभाव उन उपनिवेशों पर पड़ा जो कि पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के शिकार थे। जापान ने **'एशिया एशिया वालों के लिए'** का जो नारा अपने हितों की दृष्टि से दिया था, वह अप्रत्यक्ष रूप से भारत

एवं चीन जैसे उपनिवेशों के लिए स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गया। जापान ने जिस प्रकार पश्चिमी राष्ट्रों की साम्राज्यवादिता का अपने ढंग से विरोध किया था वह एशिया के उपनिवेशों के लिए एक ज्वलन्त प्रतीक था। द्वितीय महायुद्ध तो स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्णय की दुहाई पर धुरी राष्ट्रों के विरोध में ही लड़ा गया था। अतः बर्मा, भारत एवं चीन जैसे राष्ट्रों में राष्ट्रीयता का संचार होने लगा जिसने उपनिवेश व्यवस्था पर प्रबल आघात किया। 1945 से पूर्व तो विश्व की जनसंख्या का 33% उपनिवेशों में निवास करता था जबकि आज केवल 4% ही निवास करता है। यही कारण है कि चेस्टर बाउल्स ने लिखा है, **"सम्पूर्ण महाद्वीप (एशिया) पर हुई क्रान्ति के धुएं और अग्नि में उन दिनों का अन्त हो गया, जबकि एशिया के गुलाम लोग किसी पश्चिमी राष्ट्र की दी गई आवाज में नाच उठते थे।"**[1] एशिया एवं अफ्रीका के पराधीन राष्ट्र स्वतन्त्र होने लगे। स्मिथ ने ठीक ही लिखा है, **"अब यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में यूरोपीय राष्ट्रों के सम्बन्ध और गैर यूरोपीय राष्ट्रों के सम्बन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे।"**[2]

(7) **मानवतावाद**—विश्व-युद्ध में कमजोर राष्ट्रों को साम्राज्यवादी शिकंजों का शिकार होना पड़ा था। युद्ध के पूर्व एवं युद्ध काल में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को जिस प्रकार कुचला गया था उससे प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवीय अधिकारों का एक घोषणा पत्र प्रकाशित कर मानवता की पवित्रता कायम करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया।

(8) **निःशस्त्रीकरण के प्रयास**—द्वितीय विश्व-युद्ध में अणु बम के प्रयोग एवं उससे हुई विनाश लीला ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में निःशस्त्रीकरण का प्रश्न खड़ा कर दिया, परन्तु निःशस्त्रीकरण की दिशा में रूस एवं अमेरिका के मध्य मतभेदों के कारण निःशस्त्रीकरण के लिए किये गये प्रयास कभी सार्थक न हो सके।

(9) **प्रादेशिक संगठन**—शीत युद्ध की स्थिति को देखते हुए साम्यवादी रूस एवं गैरसाम्यवादी अमेरिका ने अपने-अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए क्षेत्रीय या प्रादेशिक संगठनों का गठन प्रारम्भ कर दिया, जिसमें नाटो, वारसा पैक्ट, सीटो एवं ओ. ए. एस. विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय विश्व-युद्ध ने प्रथम महायुद्ध के सदृश ही अनेक समस्याएं उत्पन्न कर दीं। यह ठीक है कि इस युद्ध के प्रभाव ने साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी प्रवृत्ति की समाप्ति में योगदान दिया और एशिया एवं अफ्रीका में राष्ट्रवाद हिलोरें लेने लगा, परन्तु जिस प्रकार एक नये विश्व का गठन हुआ उसमें दो महाशक्तियों के प्रादुर्भाव ने युद्धकालीन एकता का विघटन कर दिया।

युद्धकालीन एकता का विघटन
(END OF THE WAR TIME UNITY)

द्वितीय विश्व-युद्ध में अमेरिका, ब्रिटेन एवं फ्रांस ने अपनी पुरानी शत्रुता को भुलाकर धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली एवं जापान) का डटकर मुकाबला किया था। युद्ध के समय मित्र राष्ट्रों की इस एकता से ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित होगी, किन्तु

1 "The days when a western nation could call the tune and the Asian subject peoples would dance to it have ended in the smoke and fire of revolution across the whole continent." —*Chester Bowles*

2 G. C. Smith : *Pattern of the Post War World*, p. 9.

विश्व-युद्ध समाप्त होते ही यह आशा सही सिद्ध नहीं हुई। रूस एवं अमेरिका के रूप में दो महाशक्तियों का उदय हुआ। **युद्धकालीन एकता का विघटन हो गया। संक्षेप में इस विघटन के निम्नलिखित कारण हैं :**

(1) **सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था**—युद्धकालीन एकता के विघटन का महत्वपूर्ण कारण सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था का विकास था। युद्ध के समय तो ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका जैसे पूंजीवादी देशों की प्रमुख समस्या धुरी राष्ट्रों का दमन थी। अतः रूस को अपने खेमे में मिलाने के लिए उन्हें रूसी व्यवस्था पर प्रत्यक्षतः विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे रूस का इतना दमन करना चाहते थे कि रूसी साम्यवादी व्यवस्था पूंजीवाद के लिए खतरा न बन सके। यही कारण था कि 1941 ई. में जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण करने पर इंगलैण्ड एवं रूस के बीच हुए समझौते को सुदृढ़ करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। पश्चिमी देशों ने तो इसे **'निषेधात्मक मैत्री'** की संज्ञा दी। रूस के इस अनुरोध को कि युद्ध का द्वितीय मोर्चा फ्रांस में खोला जाना चाहिए, चर्चिल ने यह कहकर खटाई में डालने का प्रयत्न किया कि दूसरा मोर्चा बाल्कान प्रदेश में खुलना चाहिए। स्तालिन के अनुरोध पर बहस 1942 ई. से 1944 ई. तक जारी रही। इस बीच जर्मनी की सेनाओं के लगातार प्रहार रूस पर हो रहे थे। **पूंजीवादी मित्र देश चाहते भी यही थे कि रूस पर जर्मनी के इतने प्रहार हों कि रूस पुनः सिर न उठा सके।** इस प्रकार पूंजीवादी देशों ने अपने मित्र देश रूस की पीठ में छुरा भौंकने का जो प्रयत्न किया उससे रूस का सशंकित होना स्वाभाविक ही था।

(2) **सोवियत संघ का राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति रूख**—पूंजीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के चंगुल से अपने को आजाद करने के लिए एशिया एवं अफ्रीका के विभिन्न उपनिवेशों में जो राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे उसे द्वितीय विश्व-युद्ध ने और अधिक भड़का दिया। रूस इस प्रकार के आन्दोलनों का पक्षपाती था, किन्तु ब्रिटेन ने इस प्रकार के आन्दोलनों को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया। अतः रूस एवं ब्रिटेन के सम्बन्धों में दरार पड़नी प्रारम्भ हो गई।

(3) **युद्ध काल में रूस के प्रति अविश्वास**—युद्ध काल में रूस के मित्र राष्ट्रों ने सदा ही उसके प्रति अविश्वास की धारणा रखी। 13 अगस्त, 1943 ई. को चर्चिल ने यूगोस्लाविया और यूनान में राजवंशों के पुनर्स्थापन की बात कही। मार्शल टीटो द्वारा इस बात का विरोध किये जाने पर चर्चिल ने उसे सहायता देना भी बन्द कर दिया। अब अमेरिका ने जापान पर एटम बम गिराया तो उसने ब्रिटेन को तो विश्वास में ले लिया, परन्तु रूस को इस विषय में कोई जानकारी तक नहीं दी।

(4) **युद्धोत्तर समस्याओं में मतैक्य न होना**—जैसे ही द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त हुआ 5 मार्च, 1946 ई. को चर्चिल ने अमेरिका में फुल्टन (Fulton) नामक स्थान पर सोवियत रूस को **लौह आवरण** (Iron Curtain) की संज्ञा देते हुए अपने भाषण में रूस का अपमान किया। सोवियत रूस जो कि युद्ध काल से ही स्थिति को जांच एवं परख रहा था, अब अपने लिए एक ऐसी मजबूत आधारशिला खड़ी करना चाहता था जिस पर स्वयं खड़ा होकर गर्व कर सके। उसकी इस भावना को युद्ध के पश्चात् उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अमेरिका एवं ब्रिटेन के रूसी विरोधी रुख ने और अधिक मजबूत बना दिया। फारस, टर्की, यूनान एवं जर्मनी की समस्याओं के समाधान के प्रश्न पर रूस का मतैक्य ब्रिटेन व अमेरिका से नहीं था। इसी समय सोवियत रूस को पृथक् कर यूरोप के एक संयुक्त राज्य की स्थापना की बात

भी पूंजीवादी देश करने लगे थे। 10 अगस्त, 1945 में एक फ्रांसीसी दैनिक पत्र ने प्रकाशित किया कि **"यदि यूरोप को सोवियत संघ के पंजों से बचाना है तो पश्चिमी देशों को एक हो जाना चाहिए।"**

इस प्रकार युद्ध काल में तथा युद्ध काल के पश्चात् पश्चिमी पूंजीवादी राष्ट्रों द्वारा रूस के प्रति अपनाई गई नीतियों से क्षुब्ध होकर 20 सितम्बर, 1945 ई. को सोवियत समाचार पत्र इजवेस्तिया (Izvestia) ने लिखा है, **"पश्चिमी गुट पश्चिम में रूसी विश्वास को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।"** सन्देह एवं भय के वातावरण में रूस का अलग हो जाना स्वाभाविक ही था। अतः अब विश्व-इतिहास का एक नया दौर आरम्भ हुआ जिसे **'शीत-युद्ध का दौर'** (Cold War Era) के नाम से जाना जाता है।

प्रश्न

1. द्वितीय विश्व-युद्ध के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
2. द्वितीय विश्व-युद्ध के कारणों एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. द्वितीय विश्व-युद्ध की प्रमुख घटनाओं एवं परिणामों को उल्लेख कीजिए।

36

संयुक्त राष्ट्र संघ
[THE UNITED NATIONS ORGANISATIONS]

भूमिका
(INTRODUCTION)

प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व-शान्ति की स्थापना के उद्देश्य से राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी, परन्तु राष्ट्र-संघ शान्ति स्थापना करने में असफल रहा और विश्व को बीस वर्ष पश्चात् ही द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका का सामना करना पड़ा। यह प्रश्न अपने आप में अलग है कि राष्ट्र संघ की असफलता क्या उसके जन्म के साथ ही निश्चित हो चुकी थी? कुल मिलाकर राष्ट्र संघ की असफलता ने स्थायी शान्ति को सुरक्षित रखने वाले एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता का अनुभव करा ही दिया। प्रश्न यह उठा कि क्या राष्ट्र संघ को ही पुनर्जीवित कर नया रूप दिया जाय? किन्तु अमेरिका एवं पश्चिमी देश राष्ट्र संघ से पृथक् संगठन के पक्षपाती थे। अत: एक नई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के गठन के प्रयास युद्ध काल में ही प्रारम्भ हो गए।

संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण की पृष्ठभूमि
(BACKGROUND OF THE FORMATION OF U. N. O.)

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना किसी एक दिन के प्रयत्न का परिणाम नहीं है। विश्व-युद्ध के काल से ही इसके गठन के प्रयास हेतु मित्र राष्ट्रों के मध्य वार्तालाप एवं विचारों का जो आदान-प्रदान हुआ, संयुक्त राष्ट्र संघ उसी की उपज है। इस प्रकार विश्व-युद्ध के दौरान से ही अनेक प्रयास इस सम्बन्ध में किये गये। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण की पृष्ठभूमि को लन्दन घोषणा से सैनफ्रांसिस्को सम्मेलन तक मित्र राष्ट्रों के किए गए प्रयासों के निम्नलिखित चरणों में इंगित किया जा सकता है।

(1) **लन्दन घोषणा** (14 जुलाई, 1941)—युद्ध-काल में जुलाई, 1941 ई. में लन्दन में मित्र राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। **इस सम्मेलन की घोषणा में विश्व में स्थायी शान्ति की बात कही गई।** यह ठीक है कि इस घोषणा में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शान्ति की घोषणा की गई थी, उसे दृष्टिगत रखते हुए लन्दन घोषणा को संयुक्त राष्ट्र संघ का बीजारोपण माना जाता है।

(2) **अटलांटिक चार्टर** (14 अगस्त, 1941)—द्वितीय विश्व-युद्ध में अपना कदम रखने से पूर्व अमेरिका ने भाषण, धर्म, अभाव एवं भय की स्वतन्त्रता की बात कही थी।[1] इस

1 लैंगसम, दि वर्ल्ड सिंस 1914, पृ. 569।

घोषणा के पश्चात् रूजवेल्ट ने इंगलैण्ड की सहायता की थी। इसके तुरन्त पश्चात् रूजवेल्ट एवं चर्चिल ने समान हितों पर बात के लिए मुलाकात की और बातचीत के पश्चात् 14 अगस्त, 1941 को एक संयुक्त विज्ञप्ति जारी की गई जिसे **'अटलांटिक चार्टर'** कहा जाता है। इस चार्टर में आक्रमण से सुरक्षा के प्रश्न पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि प्रत्येक राष्ट्र के लोग स्वेच्छा की शासन व्यवस्था अंगीकार करने के लिए स्वतन्त्र हैं। इस चार्टर में जिस प्रकार शक्ति स्थापना की बात कही गई, उसी को दृष्टिगत रखते हुए इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का प्रथम कदम माना जाता है।

(3) **संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा** (1 **जनवरी**, 1942)—1 जनवरी, 1942 ई. में मित्र राष्ट्रों एवं उनके साथी सभी राष्ट्रों ने वाशिंगटन में एक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस घोषणा पत्र में जर्मनी एवं उसके साथी राष्ट्रों को पराजित करने पर जोर देते हुए अटलांटिक चार्टर को स्वीकार किया गया। **साथ ही इस घोषणा में प्रथम बार 'संयुक्त राष्ट्र' शब्द का प्रयोग हुआ। लैंगसम ने यहीं से संयुक्त राष्ट्र संघ का श्रीगणेश माना है।**[1]

(4) **मास्को सम्मेलन** (30 **अक्टूबर**, 1943)—संयुक्त राष्ट्रों की उपरोक्त घोषणा को रूस एवं चीन ने पश्चात् में स्वीकार कर लिया। अतः 30 अक्टूबर, 1943 ई. में इंगलैण्ड, अमेरिका, चीन एवं रूस के प्रमुख प्रतिनिधियों की बैठक मास्को में हुई। 1 नवम्बर, 1943 को **'मास्को घोषणा'** पर हस्ताक्षर कर मित्र राष्ट्रों ने स्वीकार किया कि युद्ध के पश्चात् एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना आवश्यक है। रूसी प्रतिनिधि एस. बी. क्राइलोब ने मास्को सम्मेलन के महत्व के विषय में लिखा है, **''मास्को संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म स्थान बन गया, क्योंकि यह मास्को ही था, जहां पर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की घोषणा की गई।''**

(5) **तेहरान सम्मेलन (नवम्बर 1943)**—मास्को सम्मेलन के पश्चात् तेहरान में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें चर्चिल, रूजवेल्ट एवं स्तालिन प्रथम बार एक साथ मिले। बैठक के पश्चात् 1 दिसम्बर, 1943 ई. को संयुक्त रूप से घोषणा की गई कि विश्व के सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को विश्व संगठन का सदस्य होने के लिए आमन्त्रित किया जाएगा।

(6) **डम्बर्टन आक्स सम्मेलन (अगस्त-अक्टूबर**, 1944)—21 अगस्त, 1944 ई. से 7 अक्टूबर, 1944 ई. तक वाशिंगटन नगर के एक भवन 'डम्बर्टन आक्स' में अमेरिका, रूस, चीन एवं इंगलैण्ड के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के प्रारम्भिक प्रस्तावों की रूपरेखा निर्धारित की गई। सम्मेलन के प्रस्तावों की घोषणा 9 अक्टूबर, 1944 ई. को करते समय अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा था, **''प्रस्तावित सामान्य सम्मेलन को मेहराव की मुख्य आधारशिला समझना चाहिए। सुरक्षा एवं शान्ति की इमारत के नियोजन का कार्य अच्छी तरह से आरम्भ हो गया है। अब यह राष्ट्रों के लिए वांछनीय है कि वे रचनात्मक उद्देश्य और पारस्परिक विश्वास की भावनाओं के साथ इस निर्माण कार्य को पूर्ण करें।''**[2]

(7) **याल्टा सम्मेलन**—डम्बर्टन आक्स सम्मेलन में उभरे मतभेदों के निराकरण हेतु फरवरी 1945 ई. में याल्टा में एक सम्मेलन हुआ। इसमें अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, चीन एवं

---

1 **पूर्वोक्त**, पृ. 567-68।

2 "The projected general organisation may be regarded as the Keystone of the arch." —*Roosevelt*

फ्रांस के वीटो (Veto) के अधिकार को स्वीकार करते हुए यह घोषणा की गई कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हेतु 25 अप्रैल, 1945 ई. में सैनफ्रांसिस्को में एक सम्मेलन आयोजित किया जायेगा।

(8) **सैनफ्रांसिस्को सम्मेलन (अप्रैल-जून** 1945)—याल्टा सम्मेलन में लिए गए निर्णय के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हेतु 1945 ई. में सैनफ्रांसिस्को में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 50 देशों ने भाग लिया। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ का मसविदा तैयार कर चार्टर को अन्तिम रूप प्रदान किया गया। 24 अक्टूबर, 1945 ई. को सुरक्षा परिषद के पांच स्थाई सदस्यों (अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस एवं चीन) तथा अन्य 24 राष्ट्रों का समर्थन पत्र प्राप्त होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ का विधान लागू कर दिया गया। इसी दिन को संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस के रूप में मनाया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य एवं सिद्धान्त
(AIMS AND PRINCIPLES OF THE UNITED NATIONS ORGANIZATION)

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में 19 अध्याय, 111 धाराएं एवं लगभग 10 हजार शब्द हैं। चार्टर के अनुच्छेद में उसके उद्देश्यों एवं चार्टर की दूसरी धारा में उसके सिद्धान्तों का उल्लेख है। **इसके उद्देश्य एवं सिद्धान्त निम्नवत् हैं :**

(अ) उद्देश्य (Aims)

संयुक्त राष्ट्र संघ के अग्रलिखित उद्देश्य थे :

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा कायम रखते हुए युद्ध से **मानव जाति की रक्षा करना तथा शान्ति भंग करने वाली आक्रामक कार्यवाहियों को रोकने के उपाय करना।**

(2) राष्ट्रों के समान अधिकारों एवं आत्म-निर्णय के आधार पर विश्व के राष्ट्रों के मध्य **मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास एवं विश्व शान्ति को सुदृढ़ बनाने के उपाय करना।**

(3) विश्व की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवतावादी समस्याओं के निराकरण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना **तथा मानव अधिकारों व आधारभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति** सम्मान भावना का विकास **करना।**

(4) संयुक्त राष्ट्र संघ को एक ऐसे केन्द्र के रूप में लाना जो कि उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न राष्ट्रों द्वारा किये जाने वाले **प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित** कर सके।

(ब) सिद्धान्त (Principles)

संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्त निम्नवत् हैं :

(1) संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी **सदस्य राष्ट्रों की सार्वभौमिकता और समानता अक्षुण्ण है।**

(2) सभी सदस्य राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के **नियमों का पालन करेंगे।**

(3) पारस्परिक **झगड़ों का निपटारा** सभी सदस्य राष्ट्र शान्तिमय उपायों से करेंगे।

(4) कोई भी सदस्य राष्ट्र किसी राष्ट्र की **प्रादेशिक अखण्डता एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता** के विरुद्ध कोई भी ऐसा कार्य नहीं करेगा जिससे उस राष्ट्र एवं संयुक्त राष्ट्र संघ का अपमान होता हो।

(5) संयुक्त राष्ट्र संघ यह प्रयत्न करेगा कि संघ के सदस्य राष्ट्रों के अतिरिक्त भी अन्य राष्ट्र संघ के **सिद्धान्तों का पालन** करें।

(6) संघ किसी भी राष्ट्र के **आन्तरिक मामलों में दखल नहीं देगा।**

(7) सभी सदस्य राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों के अनुरूप संघ को उस समय **पूर्ण सहायता प्रदान** करेंगे जबकि संघ किसी राष्ट्र के विरुद्ध कार्यवाही कर रहा हो।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता एवं मुख्य बातें

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में दो प्रकार के सदस्यों की व्यवस्था है। संघ के चार्टर में 3 से लेकर 6 अनुच्छेद तक सदस्यता का विस्तृत उल्लेख है। **प्रथम प्रकार के सदस्यों को प्रारम्भिक सदस्य कहा जाता है।** ये वे सदस्य राष्ट्र हैं जिन्होंने सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लिया था या चार्टर के विधान को स्वीकार किया था। **दूसरे प्रकार के सदस्य निर्वाचित सदस्य कहलाते हैं।** ये संघ के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए एक प्रार्थना पत्र देकर पश्चात् में संघ के सदस्य बने हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता सुरक्षा परिषद् के समर्थन एवं महासभा की स्वीकृति के पश्चात् सम्भव है। संघ किसी भी सदस्य राष्ट्र को यदि वह चार्टर के सिद्धान्तों का अतिक्रमण करता है तो सुरक्षा परिषद् के समर्थन एवं महासभा के निर्णय के अनुसार निष्कासित कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रधान कार्यालय न्यूयार्क में है। अंग्रेजी, चीनी, स्पेनिश, फ्रेंच एवं रूसी भाषाएं संयुक्त राष्ट्र संघ को स्वीकृत भाषाएं हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अंग

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की 7वीं धारा में उसके जिन 6 अंगों का उल्लेख है, **उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है :**

(1) साधारण सभा (General Assembly)

(अ) संगठन—साधारण सभा संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रमुख अंग है। साधारण सभा के सदस्य संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य राष्ट्र हैं। साधारण सभा के अधिवेशन में जो कि वर्ष में एक बार सितम्बर माह के बाद पड़ने वाले पहले मंगलवार से आरम्भ होता है, प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपने 5 प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी है। विशेष परिस्थिति में यदि सुरक्षा परिषद् या संघ के आधे से अधिक सदस्य चाहें तो साधारण सभा का अधिवेशन कभी भी बुला सकते हैं।

(ब) कार्य एवं शक्तियां—चार्टर की धारा 10 से 17 तक सभा के कार्यों एवं शक्तियों का उल्लेख है। सभा को संयुक्त राष्ट्र संघ का बजट स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। वह संरक्षण समिति को आदेश दे सकती है तथा उसके कार्यों का निरीक्षण कर सकती है। आर्थिक एवं सामाजिक समिति के सदस्यों का चयन एवं उनके कार्यों को स्वीकृत करने की शक्ति भी सभा के पास है। सुरक्षा परिषद् के सहयोग से वह संयुक्त राष्ट्र संघ के नये सदस्यों की भरती एवं अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय एवं कार्यालय में कुछ नियुक्तियां तथा संघ के विधान में परिवर्तन कर सकती है। **यह ठीक है कि शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करने का कार्य सुरक्षा परिषद् का है, परन्तु साधारण सभा भी इस विषय में सीमित कार्यवाही कर सकती है, परन्तु यदि विषय सुरक्षा परिषद के विचाराधीन है तो वह इस विषय में कुछ नहीं कर सकती।** 1950 ई. में शान्ति एवं सुरक्षा प्रस्ताव के पास हो जाने से साधारण सभा को यह अधिकार प्राप्त हो गया है कि यदि सुरक्षा परिषद अपने सदस्यों के एकमत न होने पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करने में असफल रहती है तो सुरक्षा एवं शान्ति के मामले पर वह विचार कर सकती है।

यही नहीं, साधारण सभा उस समय सामूहिक कदम उठाने का अनुरोध कर सकती है जबकि सुरक्षा परिषद किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाती है। कोरिया के प्रश्न पर रूसी हस्तक्षेप के विरुद्ध साधारण सभा इस अधिकार का प्रयोग कर चुकी है।

2. **सुरक्षा परिषद्** (Security Council)

सुरक्षा परिषद के संगठन, मतदान कार्य एवं अधिकारों का उल्लेख संघ के चार्टर के पंचम अध्याय की धारा 23 से 32 में है। **इसका विवरण निम्नवत् है :**

(अ) संगठन—सुरक्षा परिषद् में 10 सदस्य अस्थायी तथा 5 स्थायी होते हैं। अमेरिका, रूस, चीन, फ्रांस एवं इंगलैण्ड इसके स्थायी सदस्य हैं। **अस्थायी सदस्यों का चयन साधारण सभा द्वारा दो वर्ष के लिए किया जाता है।** इसके स्थायी सदस्यों के प्रतिनिधि स्थायी रूप से न्यूयार्क में रहते हैं, जो कि निरन्तर बैठकों में संलग्न रहते हैं, परन्तु दो बैठकों के बीच का अन्तराल 14 दिन का हो सकता है। सुरक्षा परिषद के अधीन विश्व निःशस्त्रीकरण आयोग है जो कि 11 जनवरी, 1952 में स्थापित किया गया था।

(ब) मतदान—सुरक्षा परिषद किसी भी मामले में निर्णय सदस्यों का मतदान कराकर लेती है। प्रक्रिया सम्बन्धी मामले में तो स्थायी सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, परन्तु महत्वपूर्ण मामलों में स्थायी सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। यदि स्थायी सदस्यों में से किसी ने भी निर्णय के विरुद्ध मत दे दिया तो निर्णय अमान्य माना जाता है। इसे सुरक्षा परिषद के स्थायी परिषद के स्थायी सदस्यों को प्राप्त वीटो का अधिकार कहते हैं।

(स) वीटो का अधिकार—यू. एन. ओ. के चार्टर की धारा 27 में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार का अधिकार दिया गया है। इसका प्रयोग कर सुरक्षा परिषद का कोई भी स्थायी सदस्य किसी भी महत्वपूर्ण मामले के निर्णय को रद्द कर सकता है। वास्तव में वीटो का अधिकार प्राप्त करने के स्थायी सदस्यों का (रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, चीन एवं फ्रांस) जो उद्देश्य था, वह यह था कि कहीं बहुमत के आधार पर रक्षा परिषद के अन्य राष्ट्र उनकी शक्ति को सीमित न कर दें। ब्रायरले ने ठीक ही लिखा है, '**निषेधाधिकार वह मूल्य है जो संयुक्त राष्ट्र ने सामूहिक सुरक्षा के कार्य करने वाली संस्था की स्थापना के लिए चुकाया है, और यह भी स्पष्ट है कि वह मूल्य बहुत अधिक है।**''[1] प्रश्न यह उठता है कि निषेधाधिकार समाप्त करने से क्या कोई लाभ होगा? श्लाइचर ने इसका सटीक उत्तर देते हुए कहा है, "**निषेधाधिकार तो असहमति का परिणाम है, न कि उसका कारण। अतः इसको समाप्त करने से कोई विशेष लाभ होगा।**"[2] उल्लेखनीय बात तो यह हैं निषेधाधिकार ने विश्व-शान्ति में महत्वपूर्ण भूमिका तो निभाई ही है। कश्मीर के प्रश्न पर रूस ने वीटो की शक्ति का प्रयोग कर अमेरिका की इच्छा को पूर्ण होने से रोका तो 1964 ई. में रूस से ही सीरिया एवं इजरायल के प्रश्न पर वीटो का प्रयोग किया था।

---

1 **"The veto is the price that united Nations has paid in order to obtain an organ which should have power to decide and act in a corporate capacity and it is already clear the price has been a higher one."** —*Brierly.*

2 **"The veto is a symptom of disagreement rather than its cause : its avolition would accomplish tittle."** —*Schleicher.*

(द) कार्य—सुरक्षा परिषद के कार्य अत्यन्त व्यापक है। **संक्षेप में इनको निम्नवत् इंगित किया जा सकता हैं :**

1. चार्टर की धारा 24 के अनुसार सुरक्षा परिषद का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना है। इस सम्बन्ध में संघ के सभी सदस्य सुरक्षा परिषद के निर्णय को मानने के लिए बाध्य हैं। सुरक्षा परिषद समझौते द्वारा समस्या का समाधान न हो पाने पर सशस्त्र सैन्य बल का प्रयोग कर सकती है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के सम्बन्ध में लिये गये अपने निर्णयों को क्रियान्वित रूप देने का कार्य भी सुरक्षा परिषद का ही है।
3. सुरक्षा परिषद शान्ति एवं सुरक्षा भंग होने की सम्भावना पर झगड़ों की जांच कर इसकी रिपोर्ट साधारण सभा को देती है।
4. सुरक्षा परिषद जिन कार्यों को करती है उनकी योजना बनाना भी उसी का कार्य है।
5. नये सदस्यों को संघ में प्रवेश कराने का कार्य भी सुरक्षा परिषद के पास है।
6. सुरक्षा परिषद को अपनी वार्षिक रिपोर्ट साधारण सभा को प्रेषित करनी होती है।

इस प्रकार माना जा सकता है कि सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र संघ का एक महत्वपूर्ण अंग है। ई. पी. चैज ने ठीक ही लिखा है—**"सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र संघ का हृदय है। संकट का समय हो या शान्ति का, संघ के दूसरे अंग कार्य कर रहे हों या न कर रहे हों, वर्ष का कोई भी समय हो......सुरक्षा परिषद अपना कार्य करती रहती है।"**[1]

3. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (Economic and Social Council)

(अ) संगठन—आर्थिक एवं सामाजिक परिषद संयुक्त राष्ट्र का वह तीसरा महत्वपूर्ण अंग है जो कि विभिन्न राष्ट्रों में शान्ति एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। चार्टर की धारा 61 के अनुसार यह व्यवस्था की गयी है कि सामान्य सभा द्वारा निर्वाचित 18 सदस्यों से युक्त यह परिषद होगी, परन्तु 1965 में हुए प्रथम संशोधन द्वारा यह संख्या 27 कर दी गयी है। इसके 9 सदस्य प्रति तीन वर्ष के पश्चात् परिषद के कार्य से मुक्त हो जाते हैं। परिषद अपने अध्यक्ष का चयन स्वयं करती है। निर्णय का आधार बहुमत है। वर्ष में इसकी बैठक दो बार बुलाई जाती है। आवश्यकतानुसार विशेष परिस्थिति में भी इसकी बैठक आयोजित की जा सकती है।

(ब) परिषद के कार्य—परिषद के प्रमुख कार्य निम्नवत् हैं :

1. सुरक्षा परिषद की प्रार्थना पर किसी भी आक्रान्ता देश पर आर्थिक दण्ड लगाने में यह सुरक्षा परिषद की सहायता करती है।

2. संघ के अधीन कार्य करने वाली सभी संस्थाओं में आपस में सामंजस्य स्थापित कराना तथा संस्थाओं से परामर्श करना।

3. सदस्य राष्ट्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करना तथा तकनीकी सलाह देना।

4. साधारण सभा, सुरक्षा परिषद एवं न्याय परिषद की प्रार्थना पर यह परिषद उन्हें सहायता एवं सम्बन्धित सूचना देती है।

---

1 ई. पी. चैज, 'दि यूनाइटेड नेशन्स इन एक्शन' पृ. 170।

5. अपनी कार्यप्रणाली एवं नियमों को स्वयं बनाकर उन्हें स्वयं ही कार्यान्वित करना तथा अपने कार्यक्षेत्र के भीतर किसी भी समय पर किसी भी समय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने का अधिकार भी इसे है।

6. मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रता के रक्षार्थ सम्मान रखते हुए इनके विकास एवं प्रसार के लिए कार्य करना, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए परिषद विभिन्न समितियों एवं आयोगों का गठन कर सकती है। अब तक इसने **सांख्यिकी आयोग** (Statistical Commission), **जनसंख्या आयोग** (Population Commission), **सामाजिक विकास आयोग** (Commission for Social Development), **मानव अधिकार आयोग** (Commission on Human Rights), **नारी अधिकार सम्बन्धी आयोग** (Commission on Status of Women) एवं **मादक पदार्थ आयोग** (Commission on Narcotic Drugs) का निर्माण किया है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice)

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 92 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को संघ का महत्वपूर्ण अंग माना है। चार्टर के अध्याय 14 में धारा 92 से 96 तक इसके संगठन एवं क्षेत्राधिकार का उल्लेख है।

(अ) संगठन—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय हेग (हालैण्ड) में है। इस न्यायालय में 15 न्यायाधीश हैं। न्यायाधीशों का चयन साधारण सभा एवं सुरक्षा परिषद संयुक्त रूप से 9 वर्ष के लिए करती है। न्यायाधीश अपने कार्यकाल में दूसरा कार्य नहीं कर सकता। किसी विवाद विशेष के उपस्थित हो जाने पर न्यायालय अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकता है, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विवाद रहने तक अपने पद पर बने रहते हैं। न्यायालय अपने अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं रजिस्ट्रार की नियुक्ति स्वयं करता है। जिस देश के विवाद के विषय में न्यायालय विचार कर रहा हो, उस देश का न्यायाधीश उस मामले में भाग नहीं ले सकता है।

(ब) क्षेत्राधिकार—हेग स्थित अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रथम ऐच्छिक क्षेत्राधिकार, द्वितीय अनिवार्य क्षेत्राधिकार एवं तृतीय परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार। **ऐच्छिक क्षेत्राधिकार** के अन्तर्गत न्यायालय अपनी संविधि की धारा 36 के अन्तर्गत उन सभी मामलों पर विचार कर सकता है, जो कि सम्बन्धित राष्ट्र द्वारा उसके सामने रखे गए हों। राज्य ही न्यायालय के विचारणीय पक्ष होते हैं, व्यक्ति नहीं। **अनिवार्य क्षेत्राधिकार** के अन्तर्गत संविधि को स्वीकार करने वाला कोई भी राष्ट्र यह कह सकता है कि वह प्रस्तुत विवाद को अनिवार्य न्यायक्षेत्र में मानता है, परन्तु इसके लिए दोनों पक्षों की स्वीकृति अनिवार्य है। किसी भी सन्धि की व्याख्या, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र से सम्बन्धित सभी मामले एवं किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व के भंग होने पर मुआवजे का रूप एवं राशि निर्धारित करने सम्बन्धी मामले न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। **किसी भी राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध न्यायालय में कोई अभियोग नहीं लगाया जा सकता। इसीलिए माना जाता है कि इसका राष्ट्रों पर अनिवार्य क्षेत्राधिकार नहीं है।** परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत साधारण सभा, सुरक्षा परिषद तथा अन्य मान्यता प्राप्त संस्थाओं द्वारा सौंपे गये

प्रश्नों पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अपनी राय दे सकता है, परन्तु इस राय को मानने के लिए वे बाध्य नहीं हैं।

5. सचिवालय (Secretariat)

संघ के अध्याय 15 में अनुच्छेद 97 से 101 तक सचिवालय का विस्तृत विवरण है। सचिवालय के प्रधान कार्यालय न्यूयार्क एवं जेनेवा में हैं। सचिवालय का एक महामन्त्री होता है जिसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद के अनुमोदन पर साधारण सभा द्वारा की जाती है। महामन्त्री संघ का प्रशासनिक अधिकारी है। वह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को छोड़कर संघ के सभी अंगों की बैठकों में भाग ले सकता है। वह सुरक्षा परिषद को सुरक्षा एवं शान्ति में अवरोध उत्पन्न करने वाली स्थिति से अवगत करा सकता है तथा साधारण सभा के नियमों के अनुरूप सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। **सचिवालय को सुविधा की दृष्टि से सुरक्षा परिषद से सम्बद्ध विषयों का विभाग, सम्मेलन एवं सामान्य सेवाएं, प्रशासकीय एवं वित्तीय सेवाएं, आर्थिक विषयों से सम्बन्धित विभाग, सामाजिक विषयों से सम्बन्धित विभाग, न्याय विभाग, लोक सूचना विभाग एवं ट्रस्टीशिप विभाग—इन 8 भागों में विभक्त कर दिया गया है।**

6. न्यास परिषद (Trusteeship Council)

यू. एन. ओ. के चार्टर के अध्याय 12 में अनुच्छेद 75 से 85 तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्था का वितरण है। अध्याय 13 के अनुच्छेद 86 से 91 तक न्यास परिषद का विवरण है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पिछड़े हुए क्षेत्रों अथवा राष्ट्रों के लिए न्यास पद्धति को अपनाया। **इस पद्धति का तात्पर्य यह है कि उन्नत एवं विकसित राष्ट्र अव्यवस्थित एवं अविकसित प्रदेश का शासन धरोहर के रूप में देखें जिससे वहां की जनता में जागृति उत्पन्न हो।** राष्ट्र संघ की मैण्डेट व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले प्रदेशों को न्यास परिषद के अन्तर्गत ले लिया गया।

न्यास परिषद के उद्देश्य भी निर्धारित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की वृद्धि में सहयोग करना तथा न्यास क्षेत्रों के लोगों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से विकसित कर उनमें स्वशासन एवं स्वतन्त्रता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना न्यास परिषद का मूल उद्देश्य है।

न्यास परिषद के कार्यों के विषय में स्पष्ट किया गया है वह संरक्षित क्षेत्रों का निरीक्षण कर यह पता लगाती है कि संरक्षक राष्ट्र न्यास पद्धति से शासन कर रहे हैं या नहीं। संरक्षक राष्ट्र से वह वार्षिक रिपोर्ट मांगती है तथा संरक्षण प्राप्त प्रदेशों की जनता की शिकायतें सुनकर उनका निराकरण करती है।

7. अभिकरण एवं संस्थाएं (Organizations)

संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य अंग आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के अन्तर्गत अनेक विशिष्ट अभिकरण एवं संस्थाएं हैं। ये सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय कार्यों में संलग्न हैं। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I. L. O.), खाद्य एवं कृषि संघ (F. A. O.), संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संघ (U. N. E. S. C. O.), अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक (I. B. R. D.), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I. M. F.), विश्व डाक संघ (W. P. O.), अन्तर्राष्ट्रीय तार संचार संघ (I. T. U.), अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संघ (U. N. H. C. R.), अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ (I. D. A. O.) एवं विश्व स्वास्थ्य संघ (W. H. O.) विशेष उल्लेखनीय हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य
(WORKS OF THE U. N. O.)

संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों को मूलतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम **राजनीतिक कार्य** जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को हल करना तथा विश्व शान्ति की स्थापना उल्लेखनीय है। द्वितीय **मानवीय कार्य** जिसमें मानव जाति के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफलता एवं असफलता दोनों ही प्राप्त की हैं। **इसका परीक्षण उक्त दोनों कार्यों के सन्दर्भ में निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :**

(अ) राजनीतिक कार्य (विश्व शान्ति के सन्दर्भ में)

संयुक्त राष्ट्र संघ ने राजनीतिक क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किए :

(1) **इण्डोनेशिया का विवाद**—द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् इण्डोनेशिया को जो कि विश्व-युद्ध के काल में जापान के आधिपत्य में आ गया था, जापान के आधिपत्य से मुक्ति मिल गयी और वहां पर स्वतन्त्र गणराज्य की स्थापना हो गयी, परन्तु हालैण्ड ने इस स्थिति को स्वीकार न करते हुए इण्डोनेशिया के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। भारत एवं आस्ट्रेलिया द्वारा संघर्ष की ओर सुरक्षा परिषद का ध्यान आकर्षित कराने के पश्चात् सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से इण्डोनेशिया एवं हालैण्ड के मध्य 17 जून, 1948 ई. को एक समझौता हो गया। 18 दिसम्बर, 1948 ई. को हालैण्ड ने इस समझौते का अतिक्रमण कर इण्डोनेशिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस स्थिति में सुरक्षा परिषद के आदेशानुसार हालैण्ड को युद्ध बन्द करना पड़ा और 27 दिसम्बर, 1949 को इण्डोनेशिया में स्वतन्त्र गणतन्त्रात्मक सरकार गठित हो गयी।

(2) **यूनान का मामला**—द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान ब्रिटेन की सेनाएं यूनान में प्रवेश कर गयी थीं, परन्तु युद्ध के पश्चात् वहां से नहीं हटीं और वहां पर साम्यवादियों का दमन करने में लग गयीं। अतः साम्यवादियों व ब्रिटिश सेना के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। 21 फरवरी, 1946 में रूस ने इस मामले को सुरक्षा परिषद में उठाया। सुरक्षा परिषद ने जांच हेतु एक आयोग गठित किया जिसके प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया गया।

(3) **सीरिया एवं लेबनान का प्रश्न**—सीरिया तथा लेबनान में ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी सेनाएं जमी हुई थीं। 14 फरवरी, 1946 को सुरक्षा परिषद में इन दोनों देशों ने फ्रांसीसी सेनाओं के हटाये जाने हेतु अपील की। सुरक्षा परिषद के अनुरोध पर दोनों राष्ट्रों ने अपनी सेनाएं हटा लीं।

(4) **बर्लिन की नाकेबन्दी**—1948 ई. में पश्चिमी देशों ने पूर्वी बर्लिन में त्रिक्षेत्र की स्थापना करने के पश्चात् पोड्समाउथ समझौते की व्यवस्था का अतिक्रमण कर पश्चिमी जर्मनी में नयी मुद्रा का प्रचलन कर दिया। इससे पूर्व जर्मनी के व्यापार में बाधाएं आने पर रूस ने 24 जून, 1848 को पश्चिम बर्लिन की नाकेबन्दी कर दी। पश्चिमी भागों का मार्ग पूर्वी भाग से होकर जाता था। अतः पश्चिमी देशों को समस्या का सामना करना पड़ा। इस मामले में सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से मई 1949 को एक समझौते से शान्ति स्थापित हुई।

(5) **फिलिस्तीन की समस्या**—फिलिस्तीन में मैण्डेट व्यवस्था कायम करने का अधिकार प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् इंगलैण्ड को दिया था। फरवरी 1947 में ब्रिटेन ने घोषणा कर

दी कि उसके लिए अब फिलिस्तीन में मैण्डेट व्यवस्था कायम रखना सम्भव नहीं है। **इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि फिलिस्तीन में अरब एवं यहूदियों का संघर्ष अत्यन्त तीव्र हो गया था। यहूदी फिलिस्तीन को अपना धर्मस्थल मानते थे।** अतः वे वहां पर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहते थे। ब्रिटेन ने समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ में उठा दी। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयत्नों से अरब एवं इजराइल राष्ट्रों में सन्धियां अवश्य हो गयी हैं, परन्तु आज भी शान्ति पूर्णतः स्थापित नहीं हो पायी है।

(6) **ब्रिटेन व ईरान में तेल का मामला**—ईरान की सरकार द्वारा मई 1951 में ऐंग्लोईरानियन आयल कम्पनी का राष्ट्रीयकरण करने पर ब्रिटेन ने इसके विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अपील की और स्पष्ट कर दिया कि मामले पर जब तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अपना निर्णय नहीं देता, तब तक कम्पनी कोई उत्पादन न करे। ईरान द्वारा इस घोषणा की अवमानना पर मामला सुरक्षा परिषद में चला गया। सुरक्षा परिषद ने इसे न्यायालय के निर्णय पर छोड़ दिया। 22 जुलाई, 1952 में न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि वह इस समस्या पर विचार करने के लिए सक्षम नहीं है। अतः इंगलैण्ड द्वारा ईरान के विरुद्ध की गयी शिकायत का कोई अस्तित्व नहीं रह गया।

(7) **कोरिया का मामला**—द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् कोरिया का विभाजन उत्तरी कोरिया एवं दक्षिणी कोरिया के रूप में हो गया। **उत्तरी कोरिया में समाजवादी प्रभाव एवं दक्षिण कोरिया में अमेरिका का प्रभाव स्थापित हो गया।** 25 जून, 1950 में उत्तरी एवं दक्षिणी कोरिया के मध्य युद्ध होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से 1953 में कोरिया का युद्ध समाप्त हुआ और कोरिया में शान्ति कायम हुई।

(8) **स्वेज नहर विवाद**—1869 में निर्मित स्वेज नहर का संचालन एक स्वेज नहर कम्पनी करती थी जिसमें ब्रिटेन व फ्रांस के शेयर थे। जुलाई, 1956 में मिस्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इस पर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। फ्रांस एवं ब्रिटेन की चाल पर इजरायल ने मिस्र के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मामला संयुक्त राष्ट्र संघ तक चला। संघ ने इस विवाद को स्वेज नहर की व्यवस्था एक स्वतन्त्र निकाय को सौंपकर हल करने में सफलता प्राप्त की।

(9) **कश्मीर की समस्या**—भारत विभाजन के सन्दर्भ में पाकिस्तान की जो मांग उठी थी, उसमें पाकिस्तान को कश्मीर दिये जाने की भी मांग थी, परन्तु भारत विभाजन कर जिस पाकिस्तान का निर्माण किया, उसमें उसे कश्मीर नहीं दिया था, क्योंकि कश्मीर के राजा ने भारत में कश्मीर को मिला दिया था। अतः पाकिस्तान तभी से कश्मीर पर अपने अधिकार का दावा करता चला आ रहा है। 22 अक्टूबर, 1947 में उसने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया जो कि सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से समाप्त हुआ। 1965 एवं 1971 में भी दो बार पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किये, परन्तु उसे पराजित होना पड़ा। सुरक्षा परिषद के अनुरोध पर भारत ने युद्ध विराम किया था।

इस प्रकार उक्त विवादों को हल करने में संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, परन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि **यू. एन. ओ. निःशस्त्रीकरण की समस्या का समाधान करने में सफल नहीं रहा।** यह भी विवेच्य है कि जब भी दो महाशक्तियों के विवाद से भरा प्रश्न उसके सम्मुख आया तो वह कुछ न कर सका। वियतनाम में अमरीकी हस्तक्षेप तथा बांग्लादेश में पाकिस्तान के कार्यों को रोकने में वह असफल रहा। दक्षिण

अफ्रीका में रंग-भेद की नीति तथा पश्चिमी एशिया के संकट के स्थायी समाधान अभी भी नहीं हो पाये हैं, परन्तु फिर भी अनेक बार विश्व-शान्ति स्थापित करने में वह सफल रहा।

(ब) मानवीय कार्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानवीय कार्यों को अत्यधिक प्रधानता दी गयी है। मानवीय कार्यों के सम्पादन हेतु **राष्ट्र संघ के प्रयत्नों को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :**

(1) **आर्थिक क्षेत्र**—संघ के आर्थिक कार्यों के सम्पादन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, खाद्य एवं कृषि संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निकाय विशेष उल्लेखनीय हैं।

(2) **संचार-साधन सम्बन्धी क्षेत्र**—संचार साधन सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सैनिकतर हवाई संगठन, सार्वभौमिक पोस्टल संघ, अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ, विश्व ऋतु विज्ञानीय संगठन एवं अन्त:सरकारी सामुद्रिक परामर्शदाता संगठन की स्थापना की गयी।

(3) **सांस्कृतिक एवं शिक्षा का क्षेत्र**—सांस्कृतिक एवं शिक्षा से सम्बन्धित कार्यों के लिए संघ ने संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक संगठन की स्थापना की। इसे प्रजातन्त्र का अग्रदूत माना जाता है।

(4) **स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्र**—स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन हेतु विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की गयी। इसका मुख्य उद्देश्य **'विश्व के देशों की जनता द्वारा स्वास्थ्य की उच्चतम सम्भव दशा'** प्राप्त करना है। इस संगठन के कार्यों की सफलता का अन्दाजा इस बात से लग जाता है कि यूनान में मलेरिया निवारण के कार्य में इसके प्रयत्नों से बीमारी का औसत 95% से घटकर 5% रह गया है। भारत में भी इसने क्षय रोग के उन्मूलन हेतु बी. सी. जी. वैक्सीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करायी।

मूल्यांकन
(EVALUATION)

संयुक्त राष्ट्र संघ नि:सन्देह राष्ट्र संघ की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट संस्था के रूप में सामने आया है। यह ठीक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ नि:शस्त्रीकरण, दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों पर किये जाने वाले अत्याचार एवं कांगो के मामले में सफलता प्राप्त नहीं कर पाया है, परन्तु उसकी सफलताओं से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। **मानवीय क्षेत्र में किये गये उसके कार्य सराहनीय हैं। यह ठीक है कि संघ उतने सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पा रहा है जितना उसे करना चाहिए था, परन्तु इसके पीछे मुख्य कारण विश्व की महाशक्तियों का उसे सही दिशा में सहयोग न मिल पाना ही रहा है।** वास्तव में संघ भी एक मानव निर्मित संस्था ही है। उसकी पूर्ण सफलता तो विश्व के सभी राष्ट्रों द्वारा अपनी स्वार्थपरता का त्याग कर मानव जाति के सहयोग में अपना योगदान देने पर ही सम्भव है।

प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए इसके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को भी लिखिए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवरण दीजिए।
3. संयुक्त राष्ट्र पर एक निबन्ध लिखिए।
4. विश्व शान्ति में संयुक्त संघ की भूमिका लिखिए।

परिशिष्ट 1

यूरोप के प्रमुख राज्य एवं उनकी राजधानी

[EUROPEAN COUNTRIES AND THEIR CAPITAL]

देश का नाम (Name of the Country)	राजधानी (Capital)
अल्बानिया (Albania)	तिराना (Tirana)
आस्ट्रिया (Austria)	विएना (Vienna)
बेल्जियम (Belgium)	ब्रूसेल्स (Brussels)
बल्गारिया (Balgaria)	सोफिया (Sofia)
चैकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia)	प्राग (Prague)
डेनमार्क (Denmark)	कोपेनहेगन (Copenhagen)
पूर्वी जर्मनी (East Germany)	बर्लिन (Berlin)
पश्चिमी जर्मनी (West Germany)[1]	बॉन (Bonn)
इंग्लैण्ड (England)	लन्दन (London)
फ्रांस (France)	पेरिस (Paris)
ग्रीस (Greece)	एथेन्स (Athens)
आयरलैण्ड (Ireland)	डबलिन (Dublin)
इटली (Italy)	रोम (Rome)
नीदरलैण्ड (Netherland or Holland)	एमस्टर्डम (Amsterdam)
नोर्वे (Norway)	ओस्लो (Oslo)
पोलैण्ड (Poland)	वारसा (Warsaw)
पुर्तगाल (Portugal)	लिस्बन (Lisbon)
रूस (Russia)	मोस्को (Moscow)
स्पेन (Spain)	मेड्रिड (Madrid)
स्वीडन (Sweden)	स्टोकहोम (Stockholm)
तुर्की (Turkey)	अंकारा (Ankara)
यूगोस्लाविया (Yugoslavia)	बेलग्रेड (Belgrade)

1 अब दोनों जर्मनी का एकीकरण हो गया है।

परिशिष्ट 2

प्रमुख यूरोपीय लड़ाइयां व युद्ध

[IMPORTANT EUROPEAN BATTLES AND WARS]

लड़ाई/युद्ध	वर्ष
एडोवा (Battle of Adowa)	1896 ई.
एल्मा (Battle of Alma)	1854 ई.
आस्टरलिट्ज (Battle of Austerlitz)	1805 ई.
आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध (Austro-Prussian War)	1866 ई.
बाल्केलावा का युद्ध (Battle of Balacalava)	1854 ई.
बाल्कन युद्ध (Balkan Wars)	1912-1913 ई.
बोअर युद्ध (Boer War) प्रथम	1881 ई.
" " द्वितीय	1899-1902 ई.
क्रीमिया का युद्ध (Crimean War)	1854-56 ई.
डेस्डन की लड़ाई (Battle of Dresden)	1813 ई.
प्रथम विश्वयुद्ध (World War I)	1914-18 ई.
फ्रेंको-प्रशियन युद्ध (Franco-Prussian War)	1870-71 ई.
यूनान की स्वतन्त्रता का युद्ध (Greek War of Independence)	1821-32 ई.
इंकरमेन की लड़ाई (Battle of Inkerman)	1854 ई.
लिप्जिग की लड़ाई (Battle of Leipzig)	1813 ई.
नेपोलियन का मास्को अभियान (Napoleon's Moscow Campaign)	1812 ई.
बैटल ऑफ नेशन्स (Battle of Nations)	1813 ई.
नैवेरिनो की लड़ाई (Battle of Navarino)	1827 ई.
नाइल की लड़ाई (Battle of Nile)	1798 ई.
अफीम का युद्ध (Opium War)	1840 ई.
पेनिनसूलर युद्ध (Peninsular War)	1808-14 ई.
पिरामिड्स की लड़ाई (Battle of Pyramids)	1798 ई.
जापान-रूसी युद्ध (Russia-Japanese War)	1904-05 ई.
रूसी-तुर्की युद्ध (Russia-Turkish War)	1877 ई.
सैडोवा की लड़ाई (Battle of Sadowa)	1866 ई.
उल्म की लड़ाई (Battle of Ulm)	1805 ई.
ट्राफल्गार की लड़ाई (Battle of Trafalgar)	1805 ई.

सीडान की लड़ाई (Battle of Sedan)	1870 ई.
स्पेन का गृहयुद्ध (Spanish Civil War)	1937-38 ई.
जूलू युद्ध (Zulu Wars)	1879-80 ई.
वाटरलू की लड़ाई (Battle of Waterloo)	1815 ई.
द्वितीय विश्वयुद्ध (Second World War)	1939-45 ई.

परिशिष्ट 3

यूरोपीय प्रमुख सन्धियां, समझौते व सम्मेलन

[IMPORTANT TREATIES, ALLIANCES AND CONFERENCES]

एक्स ला शापेल सम्मेलन (Congress of Aix-La-Chapelle)	1818 ई.
तीन सम्राटों का समझौता (Alliance of Three Emperors)	1881 ई.
एड्रियानोपल की सन्धि (Treaty of Adrianople)	1829 ई.
एंग्लो-फ्रेंच ऐन्ता (Anglo-French Entente)	1904 ई.
एंग्लो-जापानीज समझौता (Anglo-Japanese Alliance)	1902 ई.
एंग्लो-रूस समझौता (Anglo-Russian Convention)	1907 ई.
बर्लिन की सन्धि (Treaty of Berlian)	1878 ई.
बुखारेस्ट की सन्धि (Treaty of Bucharest)	1918 ई.
कैरो सम्मेलन (Cairo Conference)	1943 ई.
कार्ल्सबाद के आदेश (Carlsbad Decrees)	1819 ई.
शूमान्ट की सन्धि (Treaty of Chaumont)	1814 ई.
मनुष्य के अधिकारों का घोषणा पत्र (Declaration of Rights of Man)	1789 ई.
द्विराष्ट्र सन्धि (Dual Alliance)	1879 ई.
एम्स तार (Ems Telegram)	1870 ई.
फ्रेंकफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfurt)	1871 ई.
होली एलाएन्स (Holy Alliance)	1815 ई.
लैबाख सम्मेलन (Laibach Congress)	1821 ई.
लोकार्नो की सन्धि (Treaty of Locarno)	1925 ई.
लन्दन की सन्धि (Treaty of London)	1841 ई.
मुनरो के सिद्धान्त (Monroe Doctrine)	1823 ई.
म्यूनिख समझौता (Munich Pact)	1938 ई.
पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris)	1856 ई.
प्राग सन्धि (Treaty of Prague)	1866 ई.
चतुराष्ट्र सन्धि (Quadruple Alliance)	1815 ई.
सानस्टीफेनो की संन्धि (Treaty of Sanstefano)	1878 ई.
टेनिस कोर्ट की शपथ (Oath of Tennis Court)	1789 ई.
त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance)	1882 ई.

त्रिपल एन्ता (Triple Entente)	1907 ई.
ट्रोपाऊ कांग्रेस (Troppau Congress)	1820 ई.
उन्कियार-स्केलिसी की सन्धि (Treaty of Unkiar-Skelessi)	1833 ई.
वेरोना कांग्रेस (Varona Congress)	1822 ई.
वार्साय की सन्धि (Treaty of Versailles)	1919 ई.
विएना कांग्रेस (Vienna Congress)	1815 ई.
विल्सन के चौदह सूत्र (Wilson's Fourteen Points)	1918 ई.
ज्यूरिख की सन्धि (Treaty of Zurich)	1859 ई.

परिशिष्ट 4

यूरोपीय राज्यों के शासनाध्यक्ष/शासक

(1789 ई.-1945 ई.)

[KINGS/RULERS OF THE EUROPEAN STATES]

इंग्लैण्ड
(ENGLAND)

शासक का नाम (Name of the Ruler)	कार्यकाल (Tenure)
जार्ज II (George III)	1760-1820 ई.
जार्ज IV (Geroge IV)	1820-1830 ई.
विलियम IV (William IV)	1830-1837 ई.
रानी विक्टोरिया (Queen Victoria)	1838-1901 ई.
एडवर्ड VII (Edward VII)	1901-1910 ई.
जार्ज V (Geroge V)	1910-1936 ई.
एडवर्ड VIII (Edward VIII)	1936 ई.
जार्ज VI (George VI)	1936-1952 ई.
रानी एलिजाबेथ (Queen Elizabeth)	1952—कार्यरत हैं।

फ्रांस
(FRNACE)

लुई XVI (Louis XVI)	1774-1792 ई.
प्रथम गणतन्त्र (First Republic)	1792-1799 ई.
कान्स्यूलेट (Consulate)	1799-1804 ई.
नेपोलियन (Napoleon)	1804-1814 ई.
लुई XVIII (Louis XVIII)	1814-1824 ई.
चार्ल्स X (Charles X)	1824-1830 ई.
लुई फिलिप (Louis Phillipe)	1830-1848 ई.
द्वितीय गणतन्त्र (Second Republic)	1848-1852 ई.
नेपोलियन III (Napoleon III)	1852-1870 ई.
तृतीय गणराज्य (Third Republic)	1870-1940 ई.

विची शासन (Vichy Government) 1940-1945 ई.
चतुर्थ गणराज्य (Fourth Republic) 1946-1958 ई.

सार्डीनिया
(SARDINIA)

विक्टर अमादियस III (V. Amadeous III)	1773-1796 ई.
चार्ल्स एमेनुएल IV (C. Emmanuel IV)	1796-1802 ई.
विक्टर एमेनुएल I (V. Emmanuel I)	1802-1821 ई.
चार्ल्स फेलिक्स (Charles Felix)	1821-1831 ई.
चार्ल्स एल्बर्ट (Charles Albert)	1831-1849 ई.
विक्टर एमेनुएल II (V. Emmanuel II)	1849-1861 ई.

इटली
(ITALY)

विक्टर एमेनुएल II (V. Emmanuel II)	1861-1878 ई.
हम्बर्ट I (Humbert I)	1878-1900 ई.
विक्टर एमेनुएल III (V. Emmanuel III)	1900-1946 ई.
मुसोलिनी (Dictatorship of Mussolini)	1922-1943 ई.

आस्ट्रिया
(AUSTRIA)

जोसेफ II (Joseph II)	1780-1790 ई.
लिओपोल्ड II (Leoplold II)	1790-1792 ई.
फ्रांसिस I (Francis I)	1792-1835 ई.
फर्डिनेण्ड I (Ferdinand I)	1835-1848 ई.
फ्रांसिस जोसेफ (Francis Joseph)	1848-1916 ई.
चार्ल्स I (Charles I)	1916-1918 ई.
गणतन्त्र (Republic)	1918-1938 ई.
जर्मनी के अधीन (Annexation in Germany)	1938-1945 ई.
गणतन्त्र (Republic)	1945 ई.

स्पेन
(SPAIN)

चार्ल्स IV (Charles IV)	1788-1808 ई.
जोसेफ बोनापार्ट (Joseph Bonaparte)	1808-1813 ई.
फर्डिनेण्ड VII (Ferdinand VII)	1814-1833 ई.
रानी ईसाबेला II (Isabella II)	1833-1868 ई.
अन्तरिम सरकार (Provisional Government)	1868-1870 ई.
अमेडिओ I (Amadeo I)	1870-1873 ई.
गणतन्त्र (Republic)	1873-1875 ई.

अलफांसो XII (Alfonso XII)	1875-1885 ई.
अलफांसो XIII (Alfonso XIII)	1886-1931 ई.
गणतन्त्र (Republic)	1931-1936 ई.
गृहयुद्ध (Civil War)	1936-1939 ई.
जनरल फ्रेंको (General Franco)	1939-1976 ई.

रूस
(RUSSIA)

कैथरीन II (Catherine II)	1762-1796 ई.
पॉल I (Paul I)	1796-1801 ई.
एलेक्जेण्डर I (Alexander I)	1801-1825 ई.
निकोलस I (Nicholas I)	1825-1855 ई.
एलेक्जेण्डर II (Alexander II)	1855-1881 ई.
एलेक्जेण्डर III (Alexander III)	1881-1894 ई.
निकोलस II (Nicholas II)	1894-1917 ई.
लेनिन (Lenin)	1917-1924 ई.
स्टालिन (Stalin)	1924-1953 ई.

पुर्तगाल
(PORTUGAL)

मारिया I (Maria I)	1777-1799 ई.
राजकुमार जॉन (प्रतिशास्ता के रूप में) (Prince John)	1799-1816 ई.
जॉन (John)	1816-1826 ई.
मारिया II (Maria II)	1826-1828 ई.
डॉन माइगल (Don Miguel)	1828-1833 ई.
मारिया II (Maria II)	1833-1853 ई.
पेड्रो V (Padro V)	1853-1861 ई.
लुई I (Louis I)	1861-1889 ई.
कार्लोस I (Carlos I)	1889-1908 ई.
मेनुअल II (Manuel II)	1908-1910 ई.
गणतन्त्र (Republic)	1910

तुर्की
(TURKEY)

सेलिम III (Selim III)	1789-1807 ई.
मुस्तफा IV (Mastapha IV)	1807-1808 ई.
महमूद II (Mahmud II)	1808-1839 ई.
अब्दुल मजीद (Abdul Mazid)	1839-1861 ई.
अब्दुल अजीज (Abdul Aziz)	1861-1876 ई.

अब्दुल हमीद II (Abdl Hamid II)	1876-1909 ई.
मुहम्मद V (Muhammad V)	1909-1918 ई.
मुहम्मद VI (Muhammad VI)	1918-1922 ई.
कामेल अटातुर्क (Kamel Ataturk)	1923-1938 ई.
जनरल इस्मत (General Ismet)	1938-1950 ई.

प्रशा तथा जर्मन साम्राज्य
(PRUSSIA & THE GERMAN EMPIRE)

फ्रेडरिक विलियम II (Frederick W. II)	1786-1797 ई.
फ्रेडरिक विलियम III (Frederick W. III)	1797-1840 ई.
फ्रेडरिक विलियम IV (Frederick W. IV)	1840-1861 ई.
विलियम I (William I)	1861-1888 ई.
फ्रेडरिक III (Frederick III)	1888 ई.
विलियम कैसर II (William Kaiser II)	1888-1918 ई.
वीमर गणतन्त्र (Weimer Republic)	1918-1933 ई.
एडोल्फ हिटलर (Adolf Hitler)	1934-1945 ई.

परिशिष्ट 5

यूरोप के इतिहास की प्रमुख तिथियां
[IMPORTANT DATES OF THE EUROPEAN HISTORY]

1789 ई.	फ्रांस की क्रान्ति, टेनिस कोर्ट की शपथ, बास्तील का पतन, मानव अधिकारों की घोषणा।
1791 ई.	फ्रांस का नवीन संविधान।
1792 ई.	जैकोबिन दल का उत्थान।
1793 ई.	लुई XVI को मृत्यु-दण्ड, आतंक के राज्य की स्थापना।
1795 ई.	डाइरेक्टरी का शासन प्रारम्भ।
1804 ई.	नेपोलियन सम्राट बना।
1805 ई.	ट्राफलगर का युद्ध।
1812 ई.	नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण।
1814 ई.	नेपोलियन पराजित व एल्बा द्वीप के लिए निष्कासित।
1815 ई.	वाटरलू का युद्ध, नेपोलियन सेण्ट हेलेना द्वीप निष्कासित, विएना कांग्रेस, पवित्र संघ, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था।
1819 ई.	कार्ल्सबाद नियम।
1822 ई.	वैरोना कांग्रेस।
1823 ई.	मुनरो सिद्धान्त की घोषणा।
1829 ई.	नवारिनो का युद्ध, एड्रिएनोपल की सन्धि, यूनान स्वतन्त्र।
1830 ई.	फ्रांस में क्रान्ति (जुलाई क्रान्ति)
1832 ई.	प्रथम सुधार अधिनियम
1837 ई.	विक्टोरिया इंग्लैण्ड की शासिका बनी।
1838 ई.	चार्टिस्ट आन्दोलन प्रारम्भ।
1848 ई.	फ्रांस में क्रान्ति, मेटरनिख का पतन।
1852 ई.	नेपोलियन III फ्रांस का सम्राट बना।
1854 ई.	क्रीमिया का युद्ध प्रारम्भ।
1856 ई.	क्रीमिया का युद्ध समाप्त।
1861 ई.	कैवूर की मृत्यु।

1862 ई.	बिस्मार्क प्रशा का प्रधानमन्त्री बना।
1866 ई.	आस्ट्रिया व प्रशा के मध्य युद्ध।
1870 ई.	फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध।
1871 ई.	जर्मनी का एकीकरण पूर्ण, पेरिस कम्यून।
1878 ई.	सेन स्टीफेनो की सन्धि, बर्लिन कांग्रेस।
1879 ई.	जर्मनी व आस्ट्रिया के मध्य द्विराष्ट्र सन्धि।
1880 ई.	फ्रांस की राजधानी वार्साय के स्थान पर पेरिस।
1882 ई.	जर्मनी, आस्ट्रिया व इटली के मध्य त्रिराष्ट्र सन्धि।
1888 ई.	विलियम कैसर II सिंहासनारूढ़।
1890 ई.	बिस्मार्क ने त्यागपत्र दिया।
1893 ई.	रूस व फ्रांस के मध्य सैनिक सन्धि।
1894 ई.	जार निकोलस II का शासन प्रारम्भ, फ्रांस व रूस के मध्य द्विराष्ट्र सन्धि, ड्रेफस काण्ड।
1899 ई.	बोअर युद्ध प्रारम्भ।
1901 ई.	रानी विक्टोरिया की मृत्यु।
1904 ई.	हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Entente Cordiale)
1905 ई.	रूस व जापान के मध्य युद्ध।
1907 ई.	आंग्ल-रूसी सन्धि।
1908 ई.	युवा तुर्क आन्दोलन।
1914 ई.	प्रथम विश्वयुद्ध।
1917 ई.	रूसी क्रान्ति।
1919 ई.	वार्साय की सन्धि।
1922 ई.	मुसोलिनी पदारूढ़।
1925 ई.	लोकार्नो समझौता।
1933 ई.	हिटलर जर्मनी का चांसलर बना।
1939 ई.	द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ।
1945 ई.	हिटलर द्वारा आत्महत्या।

लक्ष्मी की सरिता बहती है जहां
प्रभा के लिए प्रभाकर उगता है वहां
कविता की रजा उठती है वहां
तिरगल का बाज होता है जहां

श्रुतियों की ध्वनि उठती है वहां
महर्षियों का वास होता है जहां
जंगम जगत में इन सबका [illegible] है मिलन
उसे कहते हैं पुनीता का उपवन ।

जब इन सबका होता है संगम ।
तब खुशहाली होती है हरदम
जिस ईश को हम सब करते हैं वन्दन
उसी की कृपा है यह लघु नन्दनवन ॥